वैदिक यज्ञों का सचित्र कोश

मूल लेखक

स्व॰ एच॰ जी॰ रानाडे

अनुवादक

प्रो॰ मनोज कुमार मिश्र

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

(मानितविश्वविद्यालय)

नई दिल्ली

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

नई दिल्ली

प्रकाशक :

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

सी॰ वी॰ मेस, जनपथ, नई दिल्ली-110001

ई-मेल : hodkkignca@gmail.com

वेबसाईट : www.ignca.nic.in

© इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

प्रथम संस्करण : 2015

शब्द संयोजक :

डी॰ वी॰ प्रिंटर्स

97, यू॰ बी॰, जवाहर नगर, दिल्ली-110007

मो.: 09990279798, 09818279798

ILLUSTRATED DICTIONARY OF

VEDIC RITUALS

Editor

H.G. RANADE

Translated by

Prof. Manoj Kumar Mishra

Rashtriya Sanskrit Sansthan
(Deemed University)

New Delhi

INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS

NEW DELHI

Publisher :
INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS
C.V. Mess, Janpath, New Delhi-110001
e-mail : hodkkignca@gmail.com
website : www.ignca.nic.in

© INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS

First Edition : 2015

Lasertypesetting by
D.V. Printers
97-U.B., Jawahar Nagar, New Delhi-110007
Mob.: 09990279798, 09818279798

प्रकाशकीय

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रिय कला केन्द्र दृश्य कलाओं के शास्त्रीय एवं प्रायोगिक पक्षों का प्रमुख संसाधन केन्द्र है। यहाँ सन्दर्भ-ग्रन्थ, शब्दावलियाँ, शब्दकोश, मूल ग्रन्थ, विश्वकोश तथा अन्य अनुसन्धान एवं प्रकाशन परियोजनाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति के परम्परागत कला-कौशल एवं ज्ञान पद्धतियों तथा आधुनिक विज्ञान, दर्शन एवं प्रौद्योगिकी में परस्पर बौद्धिक संवाद की अभिवृद्धि को रेखांकित किया जाता है। इस केन्द्र का कलाकोश संविभाग अपनी प्रकाशन शृंखलाओं द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृतसंकल्प है। कला की आधारभूत संकल्पनाओं का एक बहुखण्डीय कोश कलातत्त्वकोश ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित किया जाता है। कलामूलशास्त्र शृंखला में भारतीय कलाओं के मूलभूत ग्रन्थों का समीक्षात्मक संस्करण सानुवाद एवं सटिप्पण रूप में प्रकाशित हो रहा है। कलासमालोचन में भारतीय कला विषयक आलोचनात्मक साहित्य एवं इसी विषय के मूर्धन्य विद्वानों के अप्राप्य एवं दुर्लभ लेखों का पुनर्मुद्रण किया जाता है तथा चतुर्थ शृंखला, भारतीय कलाओं के विश्वकोश के निर्माण की रूपरेखा तैयार की जा रही है।

इसी प्रसंग में भारतीय बौद्धिक एवं शास्त्रीय परम्पराओं को परिपुष्ट करने का जो कार्य कलामूलशास्त्र शृंखला द्वारा किया जा रहा है वह अप्रतिम है। इस शृंखला में वैदिक वाङ्मय, पुराण, संगीतशास्त्र, वास्तुशास्त्र, काव्यशास्त्र इत्यादि विषयों के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं के कला सम्बन्धी मूलग्रन्थ प्रकाशित किए जाते हैं। साथ ही इस शृंखला की एक आनुषंगिक शृंखला में कुछ ऐसे ग्रन्थों के प्रकाशन की भी योजना बनी, जो इन मूल ग्रन्थों के सम्यक् अवबोध में सहायक सिद्ध हों। इस कड़ी में महामहोपाध्याय प्रो. गया चरण त्रिपाठी प्रणीत 'कम्यूनिकेशन्स विद गॉड', डॉ. बिन्दु चावला द्वारा संगृहीत एवं संपादित 'कनवर्सेशन विद पण्डित अमरनाथ' एवं प्रो. एच.जी. रानाडे द्वारा संकलित एवं सम्पादित 'इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ रिचुअल्स' आदि ग्रन्थ अब तक प्रकाश में आ चुके हैं। इनमें से 'कनवर्सेशन विद पण्डित अमरनाथ' में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पण्डित अमरनाथ के साथ वार्तालाप निबद्ध है। 'कम्यूनिकेशन्स विद गॉड' में प्रो. त्रिपाठी ने उड़ीसा के प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर की शास्त्रीय परम्पराओं तथा प्रयोग पद्धतियों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है।

प्रो. एच.जी. रानाडे ने अपनी 'इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ वैदिक रिचुअल्स' के माध्यम से एक ऐसा कोश प्रस्तुत किया है, जो कलामूलशास्त्र शृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित वैदिक वाङ्मय के काण्वशतपथब्राह्मण, लाट्यायनश्रौतसूत्र, बौधायनश्रौतसूत्र एवं पुष्पसूत्र प्रभृति ग्रन्थों में आगत जटिल पारिभाषिक शब्दों एवं संकल्पनाओं की सरल व्याख्या, बहुशः चित्र संहित हमारे समक्ष प्रस्तुत कर, विषय की जटिलता को कम करके उसे बोधगम्य बनाता है। इस ग्रन्थ का मुद्रण वर्ष २००६ में हुआ था और तभी से इसकी विद्वत्वर्ग में लोकप्रियता के संकेत केन्द्र को मिलने लगे थे। अत एव यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों एवं विद्वानों में इस बहुमूल्य ग्रन्थ का प्रचार-प्रसार करने हेतु इसका हिन्दी में अनुवाद करवाया जाए। इस महत् कार्य का प्रणयन डॉ. मनोज कुमार मिश्र ने जिस दक्षता के साथ किया, उसके लिए उन्हें मेरी हार्दिक बधाई। साथ ही कलाकोश संविभाग के विभागाध्यक्ष एवं विद्वद्वृन्द भी मेरी सराहना के पात्र हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थ का सुचारु मुद्रण सुनिश्चित करवाया।

आशा है यह **वैदिक यज्ञों का सचित्र कोश** विद्वत्समुदाय में आदर के साथ स्वीकार्य होगा।

दिनांक : २१ मार्च २०१२

वी.बी. प्यारेलाल
संयुक्त संचिव,
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली

विषयसूची

प्रकाशकीय	v-vi
आत्मनिवेदन	ix-x
भूमिका	xi-xvi
शब्द-संक्षेप	xvii-xxii
ग्रन्थ-सूची	xxiii-xxvi
महत्त्वपूर्ण मन्त्रों की सूची	xxvii-xxxiv
चित्र-सूची	xxxv-xxxviii

आत्मनिवेदन

प्रस्तुत **'वैदिक यज्ञों का सचित्र कोश'** डेक्कन कालेज, पुणे के स्वनामधन्य आचार्यचर स्व. एच. जी. रानाडे द्वारा अनुस्यूत 'Illustrated Dictionary of Vedic Rituals' का हिन्दी-अनुवाद है। आंग्ल भाषा से अनभिज्ञ अथवा इस भाषा से स्वल्प परिचित विद्वज्जनों एवं वैदिक संस्कृति के जिज्ञासुओं की सुविधा एवं ज्ञानपिपासा के शमन के लिए 'इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र, नई दिल्ली के कलाकोश-विभाग की कलामूलशास्त्र परियोजना के अन्तर्गत यह कष्टसाध्य कार्य मुझें सौंपा गया। प्रस्तुत अनुवाद-कार्य को प्रारम्भ करने से पहले मेरे सम्मुख दो चुनौतीपूर्ण लक्ष्य थे- प्रथम यह कि मूल लेखक के वास्तविक अभिप्राय को सुधीवृन्द के लिए सुगम बनाना एवं द्वितीय यह कि प्रस्तुत कार्य केवल एवं केवल अनुवाद मात्र न रह जाय, अपितु इसमे कुछ नवीनता एवं मौलिकता का भी समावेश हो। मैंने दोनों के बीच अपने सामर्थ्यानुसार मञ्जुल समञ्जसता स्थापित करने का प्रयास किया है।

अनुवाद की कठिनता एवं मेरी सीमाबद्धता के कारण निरङ्कुश स्वातन्त्र्य असम्भवप्राय था, फिर भी मैंने राजभाषा-संस्करण को और अधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी बनाने के लिए कतिपय स्वोपज्ञ बातों का निर्वेशन किया है-

1. जहाँ तक सम्भव हुआ है संगृहीत शब्दों की संक्षिप्त व्याकरणिक संघटना को प्रदर्शित करने का यत्न किया गया है, ताकि कल्पशास्त्र में प्रयुक्त शब्दों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन करने वाले अध्येताओं एवं अनुसन्धानप्रवणों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी हो सके।
2. आवश्यकतानुगुण सम्बद्ध पाणिनीय व्याकरणसूत्रों को भी उद्धृत किया गया है। यद्यपि अधिक अवकाश न होने के कारण विस्तार में जाना सम्भव नहीं हो पाया।
3. हिन्दीभाषी क्षेत्र में लोकप्रियता के कारण कात्यायन-श्रौतसूत्र से उद्धरण प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किये गये हैं। क्वचित्-क्वचित् विषय को स्पष्ट करने के लिए का श्रौ. सू. की 'सरलावृत्ति' की भी यथेष्ट सहायता ली गयी है।
4. मूल में कहीं-कहीं अनवधानता अथवा टङ्कणदोषवशात् कतिपय त्रुटियां दृष्टिगत हुईं, यावच्छक्य उनको परिमार्जित करने का प्रयत्न किया गया है।
5. कुछ स्थलों पर शब्दों के चयन में उनकी संघटना अथवा अर्थ के विषय में मूल लेखक से मेरा वैषम्य है। इस सन्दर्भ में एक-दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

(i) **'अच्य'** प्रो. रानाडे ने इस शब्द को Gerund मानते हुए इसका अर्थ- 'Having bent (the Knee)= (घुटने को) मोड़कर, ऐसा किया है। लेकिन यह तथ्य ध्यातव्य है कि यह शब्द 'अच्य' नहीं अपितु 'आच्य' है। धातु की सोपसर्गता (आ उपसर्ग) के कारण ही 'ल्यप्' की प्रवृत्ति हुई है (समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्, पा. 7.1.37)। 'आच्या जानु दक्षिणतो निषद्य' (ऋ. वे. 10.15.6) इस ऋचा में भी 'आच्य' शब्द की ही प्रयुक्ति है।

(ii) **'उक्ष्णवेष्टित'** मूल लेखक ने इसका अर्थ 'Encircled or Covered with the skin of Ajagar snake' (अजगर के चर्म से घिरा हुआ अथवा आवृत)। किन्तु मैंने प्रमाणप्रस्तुति-पूर्वक इस शब्द का अर्थ 'बैल के चर्म से घिरा हुआ अथवा ढका हुआ' किया है।

(iii) 'निलेढ्य' (निर्लेढ्य) प्रो. रानाडे इस पद को भी Gerund मानकर इसका अनुवाद 'Having licked (the remanants of Agnihotra oblation)= (अग्निहोत्र के हविश्शेष को) चाटकर, इस प्रकार किया है। वस्तुतः 'नि' अथवा 'निर्' उपसर्गपूर्वक 'लिह्' धातु से 'ल्यप्' प्रत्यय जुड़ने पर 'निलिह्य' अथवा 'निर्लिह्य' शब्द

निष्पन्न होता है। निलेढ्य अथवा 'निर्लेढ्य' शब्द संरचनात्मक रूप से कभी भी ल्यबन्त नहीं हो सकता। उन्होने कात्यायन-श्रौतसूत्र के जिस सूत्र से इस शब्द को लिया है, उस सूत्र- 'उत्सृप्य निर्लेढ्याचम्योत्सिञ्चति.....' में दृष्ट 'निलेढ्याचम्य' का सन्धिच्छेद 'निलेढ्य+आचम्य' इस प्रकार न करके 'निर्लेढि+आचम्य' इस रूप में करना चाहिए। 'निलेढि' अथवा 'निर्लेढि' नि अथवा निर् उपसर्गपूर्वक 'लिह्' धातु के लट् लकार के प्र. पु. ए. व. का रूप है। इस प्रकार से न तो व्याकरण की दृष्टि से एवं न ही अर्थ की दृष्टि से कोई विसंगति होगी।

इस अर्थ के सन्दर्भ में मूल लेखक (कोशकार) प्रो. रानाडे जी से भी विस्तृत चर्चा हुई। मेरी उद्भावनाओं का श्रवण कर वे अत्यन्त आह्लादित हुए। दुर्भाग्यवश आज वह पाञ्चभौतिक शरीर से हमारे बीच नहीं रहे। यदि वे जीवित होते, तो इस पुस्तक के प्रकाशन-पर्व पर अपार प्रसन्नता का अनुभव करते। किन्तु विकराल काल की कुटिल गति को कौन रोक सकता है।

इस कार्य के परम पवित्र पर्यवसान के अवसर पर मैं 'इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र' के प्रति हार्दिक कार्तज्ञ्य प्रकट करता हूँ। इस सुप्रतिष्ठ संस्थान के अधिकारियों ने न केवल मुझे इस गम्भीर कार्य को निष्पन्न करने के योग्य समझा अपितु एतदर्थ प्रचोदित एवं प्रोत्साहित भी करते रहे। परमश्रद्धेय गुरुवर्य प्रो. गयाचरण त्रिपाठी; डॉ. नारायण दत्त शर्मा, अग्रजकल्प डॉ. विजयशङ्कर शुक्ल एवं पं. विद्याप्रसाद मिश्र का विशेषोल्लेखपूर्वक इनके प्रति सादर आभार प्रकट करता हूँ।

यदि मेरे प्रस्तुत प्रयास से वैदिक साहित्य एवं संस्कृति के अध्येताओं का कुछ उपकार हुआ, तो मैं अपने को सफलमनोरथ मानूंगा। कोई भी मानवीय कृति पूर्णतया निर्दोष नहीं हो सकती, अत: सुधीसमाज से सप्रणति निवेदन है कि इस कृति में यदि कहीं न्यूनता दीख पड़े, तो मुझे अवश्य अवगत कराने की कृपा करे। आपकी सम्मतियों का मैं सदैव स्वागत करने के लिए तत्पर रहूँगा।

विद्याचणचरणचञ्चरीक

मनोज कुमार मिश्र

भूमिका

प्रस्तुत '**वैदिक यज्ञों का सचित्र कोश**' निम्नलिखित अर्थों में एतद्विषयक पूर्ववर्ती कार्यों का वैशिष्ट्ययुक्त ईषत्संशोधित रूप है–

१. यह अपने संगत कोशीय सामग्रियों की प्रविष्टियों में अधिक व्यापक है। जहाँ पूर्ववर्ती कृतियाँ:- श्रौतपदार्थनिर्वचन (जोशीसम्पादित) 1931, Vocabulaire du Rituel Vedique (L. Renou) 1954 –पेरिस, एवं Dictionary of Vedic Ritual, C.B. Sen (1978) मुश्किल से एक हजार शब्दों का विवरण प्रस्तुत करते हैं, वहीं इस कोश में तकनीकी महत्त्व के लगभग 5000 शब्दों की प्रविष्टियां हैं।

2. पूर्ववर्ती कोश मुश्किल से किसी अथवा अधिक से अधिक कुछ ही उदाहरणात्मक व्याख्यान प्रस्तुत करते हैं, जो कोशीय सामग्री के तकनीकी वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हैं। रेनू एवं सेन वैदिक कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाले पात्रों का सीमित संख्या में चित्र प्रस्तुत करते हैं, जैसे कि विभिन्न प्रकार के कलछियों का एवं इसी प्रकार अन्य पात्रों का। अन्य कृतियां, जैसे– 'यज्ञायुधानि' (धर्माधिकारी टी.एन्.) वैदिक संशोधन मण्डल, 1992 (पुणे), एवं मीमांसा विद्यालय पुणे द्वारा पहले से प्रकाशित Picture Album (चित्र-संग्रह) चित्रों के आधिक्य के समावेश से युक्त हैं, किन्तु ये कृतियाँ इन कर्मकाण्डीय उपकरणों के कार्यान्विति के पक्ष पर प्रकाश नहीं डालते। उदाहरणार्थ 'जुहू' एवं 'उपभृत्' नाम की कलछियाँ पृथक् रूप से अगल-बगल प्रदर्शित की गई हैं। फिलहाल यह दिखाना आवश्यक है कि 'उपभृत्' जो कि समर्थक कलछी है, 'जुहू' के नीचे रखी गई है। इस तथ्य पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि आहुति प्रदान करने के लिए केवल 'जुहू' का ही प्रयोग किया जाता है, और इस उद्देश्य के लिए कभी भी उपभृत् का प्रयोग नहीं किया जाता।

कार्यान्वयन से सम्बद्ध प्रस्तुति का यह प्रकार सम्बद्ध पारिभाषिक शब्द की रचना एवं निर्वचन को इंगित करता है। प्रस्तुत कृति की यही उल्लेखनीय विशिष्टता है।

3. प्रस्तुत कोश पूर्वकथित कृतियों की अपेक्षा अधिक सम्पन्नता से वैदिकवाङ्मय के मूलपाठ्य के सन्दर्भों की सुविधा प्रदान करता है। 'श्रौतपदार्थनिर्वचन' मूलग्रन्थ के किसी सन्दर्भ को प्रस्तुत नहीं करता। विभिन्न कर्मकाण्डीय शब्दों के लिए इसकी अपनी परिभाषा है। उदाहरणार्थ इष्टि की, इसके 'पौरोडाशिक भाग' में 'सौमिक' की तुलना की गई है। यह (इष्टि) ऐसा कृत्य है, जो चार ऋत्विजों द्वारा सम्पाद्य है। ये ऋत्विज् हैं— अध्वर्यु, होतृ, ब्रह्मन् एवं अग्नीध्र। इसमें यजमान पांचवाँ होता है। यद्यपि यह परिभाषा सम्यक्तया वैदिक यज्ञों के तथ्यों पर आधृत है, पर ऐसा कोई विशेष वैदिक पाठ्य नहीं है, जो शब्दों की व्याख्या इन शब्दों में करता हो। रेनू एवं सेन की कृतियों में भी मूल ग्रन्थों के सन्दर्भ समाविष्ट नहीं हैं जो निश्चित पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या प्रस्तुत करते हों, उदाहरण के लिए 'ज्योतिष्मती' एवं 'अग्रवती' के रूप में सङ्केतित ऋचायें सन्दर्भों द्वारा समर्थित नहीं हैं कि वे कहाँ और किस सम्यक् रूप में आम्नात हैं। सेन की कृति- 'Dictionary of Vedic Ritual' (1978) रेनू की फ्रेञ्च भाषा में निबद्ध कृति- Vocabulair du rituel Vedique (1954) का लगभग आङ्ग्ल रूपान्तरण है। ये दोनों मुख्यरूप से स्रोत के रूप में कैलण्ड एवं हेनरी की पुस्तक 'L' agnistoma पर आधृत हैं। यह समझने योग्य है कि उपर्युक्त विद्वज्जनों के पास 'वैदिक संशोधन मण्डल' पुणे द्वारा 1960 एवं बाद में प्रकाशित 'श्रौतकोश' (संस्कृत एवं अंग्रेजी) की कोई जानकारी नहीं थी। क्रमश: काशिकर एवं दाण्डेकर द्वारा सम्पादित बृहत्काय 'श्रौतकोश' (संस्कृत साथ-साथ अंग्रेजी, 3 volumes) में दुर्भाग्यवश वैदिक ग्रन्थों के सन्दर्भ एवं पारिभाषिक शब्दों पर प्रकाशित सामग्रियों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। वे मूल ग्रन्थों के सन्दर्भ दिये बिना अधिकतर प्रतीकात्मक शब्दों (जैसे-ज्योतिष्मती) पर निर्भर रहे। इस कोश में उपर्युक्त न्यूनता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

इस शब्दकोश की सूचना पाँच पक्षों पर आधृत है, जैसा कि बौ.श्रौ.सू. 24.1 में इङ्गित किया गया है, इनके नाम हैं- संहिता, ब्राह्मण, प्रत्यय, न्याय एवं संस्था। स्वाभाविक रूप से अधिक जोर प्रत्यय एवं न्याय पर दिया गया है, जो श्रौत, गृह्य एवं शुल्व सूत्रों के क्षेत्र में सम्मिलित है। शब्दों को मुख्य रूप से विश्वबन्धु के वैदिक पदानुक्रमकोश (Vedic Index) होशियारपुर से सङ्कलित किया गया है किन्तु अन्य अनुसूचियों- जैसे कि ए. मिशेल (A Machael) के 'Śulba Index' एवं वैदिक ग्रन्थों एवं उनके अन्त में दी गई अनुक्रमणीयों का भी ध्यान रखा गया है। दाण्डेकर का Vedic Bibliography (5 Volms.) प्रविष्टि- शब्दों पर सामग्री को सन्दर्भित करने के लिए अत्यधिक सहायक रहा। Śrautakośa Index (वै.सं.म., पुणे) एवं पी.वी काणे 'Index of Dharmaśāstra' (vol. II) का भी अनुशीलन किया गया है।

4. शब्दों का विशदन प्रमुख रूप से हस्तनिर्मित रेखाचित्रों एवं विभिन्न वर्षों में भारतवर्ष के विभिन्न स्थलों पर विभिन्न यज्ञों के वास्तविक अनुष्ठान के समय लिये गये छायाचित्रों से किया गया है। छायाचित्र उतारने के कार्य का निष्पादन 1982 में मेरे field work के दौरान विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली की वित्तीय सहायता से किया गया। कुछ हस्तचित्रों को पहली बार प्रस्तुत किया गया है, उदाहरण के लिए - 'आधारमूलम्' एवं अन्वाधान। जहाँ तक सम्भव हुआ है, 'सामन्' के नाम यज्ञीय अवस्थिति के अनुसार दिये गये हैं, जहाँ उनका गायन होता है।

वैदिक कर्मकाण्ड की योजना- प्रचलनात्मक रीति से वैदिक कर्मकाण्ड तीन कोटियों में विभक्त है: अवश्यकरणीय (नित्य), नैमित्तिक एवं ऐच्छिक (काम्य)। सात हविर्यज्ञ संस्थायें, जिनके नाम हैं-

अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमासेष्टि, चातुर्मास्य, आग्रयण, सौत्रामणी एवं पशुबन्ध (पशुयाग) एवं सात नियमित वार्षिक संस्थायें जिनका परिगणन पृथक् रूप से किया गया है, प्रथम कोटि में परिगणित हैं। नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान यदा-कदा या तो यज्ञीय प्रक्रिया में कतिपय त्रुटियों के प्रक्षालनार्थ अथवा विशिष्ट घटनाओं को उदिद्ष्ट कर किया जाता है। साधारण रूप से इनका सन्निवेश प्रायश्चित्तिक कृत्यों के अन्तर्गत किया गया है। किसी विशिष्ट कामना की पूर्ति को लक्ष्य में रखकर अनुष्ठित होने वाले कृत्यों का वर्णन काम्य के रूप में किया गया है। समय-समय पर (समयानुसार) आहुतियाँ या तो प्रतिदिन दी जाती हैं (अग्निहोत्र), अथवा पक्षानुसार (दर्शपूर्णमास, अर्थात् हर पक्ष में), चार महीने में, ऋतु के अनुसार (चातुर्मास्य) अथवा एक वर्ष में (पशुयाग अथवा सोमयाग)।

यज्ञ में अर्पित किये जाने वाले द्रव्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक यज्ञ तीन प्रकार के हैं : हविर्यज्ञ (घृत एवं पुरोडाश आदि से साध्य), पशुयज्ञ (पशुद्रव्यक) एवं सोमयज्ञ (सोमरसद्रव्यक)

कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार सामान्य परिपाटी से वैदिक यज्ञों में तीन घटकों की आवश्यकता होती है-

1. हविस् के रूप में प्रदान किया जाने वाला द्रव्य (द्रव्य)

2. देवता, जिसको उद्दिष्ट कर हविर्दव्य अर्पित किया जाता है (देवता)

3. एवं आहुति देने का कृत्य (त्याग)

दूसरी बात यह कि, श्रौतयज्ञ के अनुष्ठान में कम से कम तीन अग्नियों की आवश्यकता पड़ती है : आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिण, जबकि गृह्य (घरेलू) कृत्यों का अनुष्ठान केवल एक अग्नि से किया जाता है, जिसे औपासन अथवा आवसध्य अग्नि कहते हैं। तार्किक रूप से, सर्वप्रथम पवित्र अग्नि की स्थापना (अग्न्याधेय) की जाती है, उसके बाद ही अन्य यज्ञों (अग्निहोत्र आदि) का क्रम आता है। आहुति-द्रव्य पर आधृत उपर्युक्त विभाजन को ध्यान में रखकर दर्शपूर्णमास इष्टि, निरूढपशुबन्ध एवं सोमयाग का अधोलिखित रूप में विवरण देना प्रस्तावित है-

दर्शपूर्णमास इष्टि = यजमान से इस यज्ञ के अनुष्ठान की अपेक्षा होती है, जो सभी प्रकार की इष्टियों की प्रकृति अथवा प्रतिदर्श हैं। इनका अनुष्ठान दो भागों में दो भिन्न-भिन्न तिथियों पर होता। पहले स्थान पर पूर्णमास का अनुष्ठान होता है। दर्शपूर्णमास में दर्श का पूर्व कथन (पूर्व निपात) 'अल्पाच्कता' (अल्पाच्तरम्, पा. २.२.३४) के कारण है न कि अनुष्ठान के प्राथम्य के कारण। पूर्णमास इष्टि का अनुष्ठान पूर्णिमा के दिन किया जाता है। इसमें मुख्य रूप से तीन आहुतियाँ होती हैं। अग्नि देवता के लिए आठ

कपालों पर संस्कृत पुरोडाश, प्रजापति के लिए उपांशु (निम्न स्वर में) घृत की आहुति एवं अग्नीषोम के लिए ग्यारह कपालों पर संस्कृत = सेंका गया पुरोडाश। इसके बाद दर्श का अनुष्ठान प्रतिपद् के दिन (अमावस्या के अनन्तर) किया जाता है। इसमें भी तीन आहुतियाँ होती हैं (इन्द्र के लिए आठ कपालों पर सेंका गया पुरोडाश, इन्द्र अथवा महेन्द्र के लिए दधिद्रव्यक आहुति एवं इन्द्र के लिए एक दुग्धाहुति, उस स्थिति में यदि सान्नाय्य का विधान हो। यदि नहीं, तो विष्णु अथवा अग्नीषोम के लिए निम्न स्वर में घृत की आहुति एवं अग्नि के लिए आहुति के स्थान पर इन्द्राग्नी के लिए बारह कपालों पर संस्कृत पुरोडाश। सामान्य रूप से दोनों इष्टियाँ दो दिनों में अनुष्ठित होती हैं, किन्तु पौर्णमास कृत्य एक दिन में समाहित किये जा सकते हैं। इस प्रकार से समिधाओं को रखने के कृत्य आदि का अनुष्ठान पूर्णमासी के दिन होता है, एवं प्रधान आहुतियों को प्रदान करने का कृत्य प्रतिपदा के दिन सम्पन्न होता है।

मुख्य आहुतियों के पहले दो आघार (पूर्वाघार एवं उत्तराघार क्रमशः प्रजापति एवं इन्द्र के लिए) पाँच पूर्वाहुतियाँ एवं दो आज्यभाग अर्पित किये जाते हैं। मुख्य आहुति के अनन्तर स्विष्टकृत् आहुति एवं तीन उत्तराहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। इसके बाद पत्नीसंयाज से सम्बद्ध आहुतियों का क्रम आता है। इन सभी के अतिरिक्त, दो दिवसात्मक दर्शेष्टि में पितरों के लिए चावल का पिण्ड पूर्ववर्ती दिन के मध्याह्नकाल में अर्पित किया जाता है। इष्टि में चार ऋत्विजों की आवश्यकता पड़ती है, जिनके नाम हैं— अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा एवं अग्नीध्र। यजमान एवं यजमान-पत्नी इसके अतिरिक्त इष्टि में भागी होते हैं। इस यज्ञ के निमित्त दक्षिणा के रूप में 'दक्षिणाग्नि' पर पकाया गया चावल विहित है। सामान्यतः इस यज्ञ का अनुष्ठान तीस वर्ष लगातार करते रहना होता है।

निरूढपशुबन्ध (पशुयाग)

इस यज्ञ का अनुष्ठान प्रत्येक वर्षा ऋतु के दौरान सम्पन्न किया जाना चाहिए। वैकल्पिक (ऐच्छिक) रूप से इसका अनुष्ठान वर्ष में दो बार भी किया जा सकता है अर्थात् क्रमशः उस समय जब सूर्य उत्तरायण में होता एवं उस समय जबकि यह दक्षिणायन में होता है (उदगयनारम्भ एवं दक्षिणायनारम्भ)। इस यज्ञ में वध्य पशु के रूप में अज (बकरे) का विधान है, जिसका समर्पण इन्द्राग्नी अथवा सूर्यदेवता अथवा प्रजापति को उद्दिष्ट कर किया जाता है। प्रतिप्रस्थाता-समेत वरुणप्रघास में कार्य-निर्वहण करने वाले पाँच ऋत्विजों के आतिरिक्त मैत्रावरुण इसमें छठवें ऋत्विज् के रूप में कार्य करता है। इस यज्ञ की प्रकृति (प्रतिदर्श) है सोमयाग का 'अग्नीषोमीय कृत्य'। पशु-याग में अर्पित किये गये पुरोडाश का सम्बन्ध उसी देवता से है, जिसके लिए अङ्गों की आहुति दी जाती है। इस यज्ञ की दक्षिणा है— एक पशु (बैल आदि) अथवा दुधारू गाय अथवा ऋत्विज् के पसन्द की कोई वस्तु।

सोमयाग — दो सम्भावित अनुक्रम में सोमयाग का अनुष्ठान सम्पन्न किया जा सकता है। यह या तो दर्शपूर्णमासादि इष्टियों के नियमित अनुष्ठान का अनुगमन कर सकता है अथवा इसका अनुष्ठान इन सबके न होने पर भी वसन्त ऋतु में अग्नि के स्थापन के तुरन्त बाद किया जा सकता है। इसमें मुख्य आहुति द्रव्य है सोम की लता से निचोड़ा गया सोमरस। चूंकि सोमलता का ठीक-ठीक पता लगाना कठिन है, अतः सोमलता के स्थान पर समान्यतया स्थानापन्न के रूप में पूतिका लता का उपयोग किया जाता है।

इस यज्ञ का अनुष्ठान बहुत भारी भरकम प्रक्रिया से किया जाता है, और यह अपनी पूर्णता की प्राप्ति के लिए पाँच दिन का समय लेता है (अर्थात् पाँच दिन में सम्पाद्य है)। इस याग को सम्पन्न करने के लिए सोलह ऋत्विजों की आवश्यकता होती है (चार-चार ऋत्विजों के चार वर्ग होते हैं, जिनका सम्बन्ध क्रमशः चारों वेदों से है। इन चार-चार के चार वर्गों में प्रत्येक में आनुपदिकता है एवं दक्षिणा का वितरण आनुपातिक रूप से होता है। यह ज्योतिष्टोम-याग एक सुत्या दिन वाले (एकाह) सभी सोमयागों की प्रकृति है। यही याग कृत्य के अन्त में प्रयुक्त स्तोम की प्रकृति के आधार पर चार नामों से जाना जाता है। इनमें प्रथम है 12 स्तोत्र एवं शस्त्रों वाला अग्निष्टोम, क्योंकि इसके अन्त में अग्निष्टोम-साम का गायन किया जाता है। इसके बाद में आने वाले तीन अर्थात् उक्थ्य, षोडशी एवं अतिरात्र, जिनमें क्रमशः 15, 16 एवं 29 स्तोत्र एवं शस्त्र होते हैं, इसकी विकृति हैं। इन तीनों का नामकरण भी इनमें प्रत्येक के अन्त में गाये जाने वाले साम के आधार पर है। इन प्रत्येक स्तोत्रों के अनन्तर सङ्गत शस्त्र (सामान्यतः ऋचाओं के एक समूह) का वाचन किया जाता है। मुख्य सुत्या दिन (जो कि पञ्चदिवसात्मक कार्यक्रम का अन्तिम

दिन होता है), में तीन सवन होते हैं। अर्थात् प्रात:, माध्यन्दिन (दोपहर) एवं तृतीय। प्रत्येक सवन में सोमरस के निस्सारण, विभिन्न प्यालों में इसे भरने, और इसे विशिष्ट देवताओं को अर्पित करने के कृत्य का सम्पादन करना पड़ता है। इसके साथ-साथ ही विभिन्न स्तोत्रों का गायन एवं शस्त्रों का वाचन भी होता रहता है। प्रात: एवं माध्यन्दिन सवन में प्रत्येक में पाँच स्तोत्र एवं पाँच शस्त्र होते हैं। इन प्रत्येक सवनों में प्रयुक्त होने वाला पहला स्तोत्र पवमान स्तोत्र के नाम से जाना जाता है। प्रात:काल यह बहिष्पवमान, महाह्न में माध्यन्दिन पवमान एवं सायंकाल में आर्भव पवमान के नाम से पुकारा जाता है। शेष स्तोत्रों के क्रमश: नाम हैं- आज्य, पृष्ठ, अग्निष्टोम एवं अग्नीमारुत। स्तोत्रों के गायन के कृत्य में - प्रस्तोता, उद्गाता एवं प्रतिहर्ता को लगाया जाता (अर्थात् ये स्तोत्र का गायन करते हैं)। प्रात: सवन का दूसरा शस्त्र 'प्रउग' शस्त्र कहलाता है एवं बाद के तीन आज्य शस्त्र कहलाते हैं। माध्यन्दिन सत्र (वेला) में प्रथम शस्त्र मरुत्वतीय के नाम से जाना जाता है एवं बाद वाले 'निष्केवल्य' शस्त्र कहलाते हैं। सायंकालिक सत्र (वेला) में प्रथम शस्त्र 'वैश्वदेव' और दूसरा अर्थात् अन्तिम आग्निमारुत। वाचन का कार्य संभालते हैं- होता, मैत्रावरुण ब्राह्मणच्छशिन् एवं अच्छावाक। प्रात:कालीन सत्र का आरम्भ होता द्वारा कुछ चुनिन्दा ऋचाओं, जो प्रातरनुवाकशस्त्र (प्रात:काल पढ़ जाने वाला शस्त्र) कहलाता है, के वाचन से होता है।

अज को मारने एवं इसके विशेष अंगों को पशुपुरोडाश के रूप में अर्पित करना भी सुत्या दिन का एक वैशिष्ट्य है। इस कृत्य की प्रक्रिया पूर्व दिन अनुष्ठित होने वाले अग्नीषोमीय पशुयाग की प्रक्रिया पर आधृत है (अर्थात् इसका अनुष्ठान अग्निषोमीय पशुयागवत् होता है)। दक्षिणाा का वितरण दक्षिणहोम के नाम से प्रसिद्ध एक विशिष्ट कृत्य के अनुष्ठान के बाद मध्याह्न के समय किया जाता है। अध्वर्यु द्वारा अर्पित सोमप्यालों के साथ-साथ चमसाध्वर्युओं द्वारा सोमपात्र का अनुष्ठान, ऋत्विजों का प्रसर्पण (पंक्तिबद्ध होकर धीरे-धीरे सरकना) एवं अन्य अवान्तर क्रियायें सुत्या दिन की मनोरञ्जक विशिष्टताएं हैं।

प्रथम चार दिनों का कार्यक्रम निम्नवत् है :

प्रथम दिन (जो कि सामान्य रूप से वसन्त ऋतु के शुक्लपक्ष की एकादशी तिथि होती है) यजमान आभ्युदयिक के साथ कृत्यों को प्रारम्भ करता है और उसके बाद ऋत्विजों का वरण (चयन) करता है। सर्वप्रथम सोमप्रवाक का चयन किया जाता है, बाद में जो सम्पादित किये जाने वाले सोम-याग में सोलहों ऋत्विजों से यज्ञ-सम्पादित कराने के लिए उनसे सम्पर्क साधता है एवं एतदर्थ उनकी सहमति प्राप्त करता है। उसके बाद यजमान अपने घर में मधुपर्क प्रदान के साथ ऋत्विजों का वरण करता है। इसके पश्चात् वह दो अरणी नाम वाली लकड़ियों में अग्नि को रखता है एवं यज्ञीय भूमि पर गमन करता है, जहाँ वे यज्ञ-शाला एवं विहार का निर्माण करते हैं और अरणियों से अग्निमन्थन कर अग्नि को तत्तत् अंगीठियों में रख देते हैं। इसके बाद शिर को मुड़ाने एवं (यजमान एवं उसकी पत्नी) के स्नान का क्रम आता है। इसके अनन्तर 'अग्राविष्णू' के लिए ग्यारह कपालों पर संस्कृत एक पुरोडाश से दीक्षणीयेष्टि का अनुष्ठान किया जाता है। इसके बाद (नवनीत, अंगुलियों को मोड़ने आदि के अनुप्रयोग के साथ) दीक्षा के कृत्य सम्पन्न किये जाते हैं। उसके बाद के कृत्य हैं- औद्ग्रभण आहुतियाँ, कृष्णाजिन दीक्षा एवं ऋत्विजों द्वारा यजमान के पवित्रीकरण (अभिषेक) की घोषणा। महावीर- सम्भरण एवं यूपच्छेदन के कृत्यों का सम्पादन भी उसी दिन किया जाता है। यजमान एवं उसकी पत्नी को व्रत के लिए अभिप्रेत दुग्ध पर ही प्रथम तीन दिन निर्वाह करना होता है, अन्तिम दो दिन वह हविष् के अवशिष्ट भाग का ही भोजन करता है। उसे अपने व्यवहार पर संयम रखना होता है।

दूसरे दिन सर्वप्रथम प्रायणीयेष्टि का अनुष्ठान किया जाता है, जिसमें अदिति के लिए 'चरु', पथ्यास्वस्ति, अग्नि, सोम एवं स्विष्टकृत् के लिए घृत के अर्पण का विधान है। इस उद्देश्य के लिए प्रयुक्त 'चरुस्थाली' एवं उपवेष (चलाने वाली छड़ी, कोचनी) एक सुरक्षित स्थान (इष्टि के अन्त में) एक सुरक्षित स्थान पर इसलिए रख दिए जाते हैं ताकि बाद में अनुष्ठित होने वाले 'उदयनीय इष्टि' में इनकों प्रयोग में लाया जा सके। इसके बाद सोम को खरीदने का और इसे यज्ञशाला में ले आने का क्रम आता है। इस समय (इस स्तर पर) अतिथि (सोमराजा) के सम्मान में विष्णु के लिए नौ कपालों पर संस्कृत एक पुरोडाश की आहुति दी जाती है। इसके आगे यजमान एवं उसकी पत्नी उन सभी कृत्यों में, जिसमें जल की आवश्यकता होती है 'मदन्ती' - संज्ञक जल का ही उपयोग करते हैं। आतिथ्या इष्टि के अनन्तर-'तानूनप्त्र' कृत्य का अनुष्ठान किया जाता है, जिसमें सभी कार्यसम्पादक ऋत्विक् घृत का स्पर्श करते हैं, एवं यज्ञ की पूर्ति-पर्यन्त साथ-साथ काम करने एवं आपस में न उलझने का सङ्कल्प लेते हैं।

यदि यजमान प्रथम बार सोम-याग का अनुष्ठान कर रहा हो, तो इसे इस स्तर पर 'प्रवर्ग्य' नाम वाले कृत्य का सम्पादन नहीं करना चाहिए। यदि यजमान प्रवर्ग्य के अनुष्ठान का निश्चय करता है तो कार्यसम्पादक ऋत्विक् क्रमशः गार्हपत्य एवं आहवनीय में उत्तर तरफ दो शर्करा (बालूमिश्रित पत्थर,) के खर = ढूहों को तैयार करते हैं और आहवनीय के दक्षिण तरफ आसन्दी पर दो महावीर पात्रों को रखते हैं। इनमें से एक पात्र घी से भरा जाता है और उसे गार्हपत्य के उत्तर स्थापित खर (ढूह) पर मूंज की घास की आग पर रखकर तप्त करते हैं। साथ ही साथ विभिन्न स्तोत्रों का गायन एवं मन्त्रों का वाचन होता रहता है। रौहिण पुरोडाश की भी आहुति विशिष्ट क्रम में दी जाती है। वे सर्वप्रथम दक्षिणी रौहिण-पुरोडाश को अर्पित करते हैं। इसके बाद अजा (बकरी) एवं गाय के दूध को दुहकर, वे अजा के दुग्ध को महावीर पात्र में अत्यन्त तप्त घृत में उड़ेलते हैं, जिसके बाद प्रकाश की उग्र दीप्ति उत्पन्न होती है। इसके बाद गाय के दुग्ध को महावीर में उड़ेला जाता है। इसके बाद अग्नि में घर्म की एवं उत्तरी रौहिण-पुरोडाश की आहुति दी जाती है। इसके बाद वह उपसद् इष्टि का अनुष्ठान करता है, जिसमें स्रुव से क्रमशः अग्नि, सोम एवं विष्णु को घृत की आहुति दी जाती है। इन दोनों कृत्यों का पुनः दूसरे दिन के दोपहर के समय, तृतीय दिन के प्रातःकाल एवं मध्याह्न, एवं चौथे दिन के प्रातःकाल में ही दोनों का साथ-साथ अनुष्ठान किया जाता है। प्रर्वग्य एवं उपसद् इष्टियों के अतिरिक्त तृतीय दिन का प्रमुख लक्ष्य है महावेदि का निर्माण, जिसमें अनेक प्रकार के मण्डप होते हैं : सदस्, हविराधान, आग्नीध्रीय, मार्जालीय शामित्र एवं उत्तरा-वेदि-चत्वर आदि (एवं अग्निवेदि, यदि प्रस्तावित हो)।

चतुर्थ दिवस प्रमुखतः अग्नि एवं सोम को आगे ले जाने (अग्नीषोमप्रणयन), अग्नीषोमीय पशुयाग एवं सायं काल वसतीवरी-संज्ञक जलों के संग्रह के प्रति समर्पित है। यदि यजमान को अपने 'दुर्ब्राह्मणत्व' को हटाने के लिए वध्य पशु को अर्पित करना हो, तो उसे ऐसा अग्नीषोमीय कृत्य के पूर्व करना चाहिए।

सोमयाग के कृत्यों का अवसान पाँचवें दिन के अन्त में 'अवभृथ' - संज्ञक स्नान के साथ होता है, जिसके बाद उदयनीय, अनुबन्ध्या पशु-याग एवं उद्वासनीय इष्टि विहित है।

द्वादशाह सोमयाग-

द्वादशाह (द्वादशदिवसीय) याग को सत्र एवं अहीन (बहुदिवसीय) दोनों प्रकार के सोमयागों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। सत्र में सभी ऋत्विज् यजमान के रूप में कार्य करते हैं। प्रधान ऋत्विक् 'गृहपति' के नाम से जाना जाता है और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह यजमान के समस्त कर्तव्यों का निर्वहण करे। किन्तु सभी ऋत्विजों को दीक्षा-क्रम से गुजरना पड़ता है। यदि यज्ञ 'अहीन' के प्रकार का हो, तो इसमें एक यजमान हो सकता है एवं ऋत्विक् दक्षिणा प्राप्त करते हैं। सत्र में दक्षिणा के वितरण का विधान नहीं है। इस अनुष्ठान में बारह दिन लगते हैं, प्रत्येक के लिए क्रमशः दीक्षा के कृत्य, उपसद् इष्टि एवं सुत्या का विधान है। यह अग्निवेदि के चयन से सम्बद्ध हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। अध्वर्यु एवं उसके सहायक सत्र के अनुष्ठान के लिए एक विशिष्ट क्रम में अन्य कार्यसम्पादक ऋत्विजों (एवं उनकी पत्नियों) की दीक्षा के कार्य का निष्पादन करते हैं।

सवनीय दिनों के लिए वध्य पशु या तो वही होते जो अग्निष्टोमवत् 'इन्द्राग्नी' को अर्पित किये जाते हैं अथवा वे पशु जो स्तोमायन अथवा एकादशिनी के अन्तर्गत नियत हैं, इनके साथ बारहवाँ पुनः अग्नि को अर्पित किया जाता है। बारह दिन के लिए सोम-याग की व्यवस्थिति निम्नवत् है।

प्रथम दिन 'प्रायणीय दिन' के नाम से जाना जाता है एवं अतिरात्र याग का अनुष्ठान उसी दिन होता है, उसके बाद पृष्ठ्य षडह (छः दिन) एवं तीन छन्दोम यागों का अनुष्ठान किया जाता है। ग्यारहवाँ दिन 'अविवाक्य' के नाम से प्रसिद्ध है। बारहवाँ दिन पुनः एक अतिरात्र होता है और इस समय इसे 'उदयनीय' के रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रथम ग्यारह दिनों के अनुष्ठान की समाप्ति 'पत्नीसंयाज' कृत्यों से होती है।

अग्नि, इन्द्र के नियमित व्यक्तिगत सोमप्यालों एवं सुत्या दिन पर युगल-देवताओं मैत्रावरुण एवं अश्विनौ को अर्पित किये जाने वाले सोमयागों के अतिरिक्त द्वादशाह में अतिग्राह्य, षोडशिन् एवं अंशु-अदाभ्य अतिरिक्त प्याले होते हैं। छन्दों की अदला

बदली के आधार पर द्वादशाह के आगे दो भेद हो जाते हैं, अर्थात् 'व्यूढ' एवं 'समूढ' नाम वाले भेद। व्यूढ क्रम में प्रायणीय एवं उदयनीय के अवसर पर ऐन्द्रवायव ग्रह (प्याले) का प्रथम स्थान पर आहरण होता है। शेष दिनों में प्रथम दिन सर्वप्रथम मैत्रावरुण प्याले का आहरण होता है, दूसरे दिन 'शुक्र' प्याले, एवं तीसरे एवं चौथे दिन आग्रयण ग्रह (प्याले), पाँचवें दिन ऐन्द्रवायव, छठें एवं सातवें दिन शुक्र, आठवें दिन आग्रयण तथा नवम एवं दशम दिन ऐन्द्रवायव प्याले का। वर्ष भर चलने वाला 'गवामयन' संज्ञक याग सत्र की प्रकृति है। इस अवसर पर एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

शब्द-संक्षेप

१. मूल-ग्रन्थ

अग्निवे.गृ.सू.	—	अग्निवेश-गृहसूत्र
अ.वे.	—	अथर्ववेद-संहिता (शौनक)
अ.वे.(परि.)	—	अथर्ववेद-परिशिष्ट
अ.वे.(प्राय.)	—	अथर्ववेद-प्रायश्चित्त
आप.ध.सू.	—	आपस्तम्बधर्मसूत्र
आप.गृ.सू.	—	आपस्तम्बगृह्यसूत्र
आ.पि.मे.	—	आपस्तम्ब पितृमेध
आप.म.ब्रा.	—	आपस्तम्ब-मन्त्रब्राह्मण
आश्व.श्रौ.सू.	—	आश्वलायन-श्रौतसूत्र
आश्व.गृ.सू.	—	आश्वलायन-गृह्यसूत्र
आप.शु.सू.	—	आपस्तम्बशुल्वसूत्र
आप.श्रौ.सू.	—	आपस्तम्ब-श्रौतसूत्र
आर्षे.ब्रा.	—	आर्षेय ब्राह्मण
ऋ.वे.	—	ऋग्वेद-संहिता
ऋक्.प्रा.	—	ऋक्प्रातिशाख्य
ऐ.ब्रा.	—	ऐतरेय-ब्राह्मण
कर्म प्र.	—	कर्म-प्रदीप
कपि.क.सं.	—	कपिष्ठल कठ संहिता
काठ.गृ.सू.	—	काठक गृह्यसूत्र
काठ.सं.	—	काठक-संहिता
का.हौत्रपरि.	—	कात्यायन हौत्रपरिशिष्ट
का.शु.सू.	—	कात्यायन शुल्वसूत्र
का.श्रौ.सू.	—	कात्यायन श्रौतसूत्र
कौशि.सू.	—	कौशिक-सूत्र
कौषी.ब्रा.	—	कौषीतकी-ब्राह्मण
क्षुद्रसू.	—	क्षुद्रसूक्त

खादि.गृ.सू.	—	खादिर गृह्यसूत्र
ग्रा.गा.	—	ग्रामगेयगान
गो.ब्रा.	—	गोपथब्राह्मण
गौत.पि.मे.	—	गौतम पितृमेध
गोभि.गृ.सू.	—	गोभिल गृह्यसूत्र
गोभि.स्मृ.	—	गोभिलस्मृति
गौ.ध.सू.	—	गौतम-धर्मसूत्र
जै.उ.ब्रा.	—	जैमिनीय उपनिषद्-ब्राह्मण
जै.गृ.सू.	—	जैमिनीय गृह्यसूत्र
जै.ब्रा.	—	जैमिनीय ब्राह्मण
जै.श्रौ.सू.	—	जैमिनीय श्रौतसूत्र
टुप्टी.	—	टुप्टीका
तन्त्रवा.	—	तन्त्रवार्तिक
ता.ब्रा.	—	ताण्ड्यब्राह्मण
तै.आ.	—	तैत्तिरीय आरण्यक
तै.उ.	—	तैत्तिरीयोपनिषद्
तै.प्राति.	—	तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
तै.ब्रा.	—	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै.सं.	—	तैत्तिरीय संहिता
द्रा.गृ.सू.	—	द्राह्यायण-गृह्यसूत्र
द्रा.श्रौ.सू.	—	द्राह्यायण श्रौतसूत्र
देव.ब्रा.	—	देवताध्याय-ब्राह्मण
धूर्त	—	धूर्तस्वामी (आपस्तम्बश्रौतसूत्र-भाष्यकार)
नार.शि.	—	नारदीयशिक्षा
निदा.सू.	—	निदान-सूत्र
निरु. (नि.)	—	निरुक्त
नैषध.	—	नैषधीयचरितम्
न्यायमञ्ज.	—	न्यायमञ्जरी
न्यायमा.वि.	—	न्यायमालाविस्तर
पञ्च.ब्रा.	—	पञ्चविंश ब्राह्मण
पा.गृ.सू.	—	पारस्कर-गृह्यसूत्र
पिण्डपि.	—	पिण्डपितृयाग

पुष्प.सू.	—	पुष्पसूत्र
बाल.भ.	—	बालमभट्टी
बृ.दे.	—	बृहद्देवता
बृह.सर्वानु.	—	बृहत् सर्वानुक्रमणी
बृहदा. उप.	—	बृहदारण्यक उपनिषद्
बौ.गृ.सू.	—	बौ(बो)धायन गृह्यसूत्र
बौ.ध.सू.	—	बौ(बो)धायन-धर्मसूत्र
बौ.पि., बो.पि.मे.	—	बौ(बो)धायन पितृमेध
बौ.शु.सू.	—	बौ(बो)धायन शुल्वसूत्र
बौ.श्रौ. सू.	—	बौ(बो)धायन श्रौतसूत्र
ब्रह्म.सू.भा.(रा.)	—	ब्रह्मसूत्रभाष्य (रामानुज)
भा.परि.	—	भारद्वाज-परिशिष्ट
भा.पि.मे.	—	भारद्वाज-पितृमेध
भा.श्रौ.सू.	—	भारद्वाज-श्रौतसूत्र
भास्क.	—	भास्करी
म.स्मृ	—	मनुस्मृति
मन्वर्थवि.	—	मन्वर्थविवृति
मश.सू.	—	मशक सूत्र
महा भा.	—	महाभारत
मा.शु.	—	मानव-शुल्वसूत्र
मा.श्रौ.सू.	—	मानव श्रौतसूत्र
मी.सू.	—	मीमांसा-सूत्र
मै.सं.	—	मैत्रायणी-संहिता
राम.मञ्ज.	—	रामायण-मञ्जरी
रु.	—	रुद्रदत्त (आप.श्रौ.सू. के भाष्यकार)
ला.श्रौ.सू.	—	लाट्यायन श्रौतसूत्र
वशि.ध.सू.	—	वशिष्ठ धर्मसूत्र
वा.सं.	—	वाजसनेय-संहिता (माध्यन्दिन)
वाधू.श्रौ.सू.	—	वाधूल श्रौतसूत्र
वारा.गृ.सू.	—	वाराह गृह्यसूत्र
वारा.ध.सू.	—	वाराहधर्मसूत्र
वारा.श्रौ.सू.	—	वाराह श्रौतसूत्र
विव.	—	विवरण-टीका (बौधायन श्रौतसूत्र)

विष्णुस्मृ.	—	विष्णुस्मृति
वीरमि.	—	वीरमित्रोदय (याज्ञवल्क्यशिक्षा पर टीका)
वैखा.गृ.सू.	—	वैखानस गृह्यसूत्र
वैखा.श्रौ.सू.	—	वैखानस श्रौत्रसूत्र
वैज.को.	—	वैजयन्ती कोश
वैता.सू.	—	वैतान सूत्र
श.ब्रा.	—	शतपथ ब्राह्मण
शा.भा.	—	शाबरभाष्य
शां.गृ.सू.	—	शाङ्खायन गृह्यसूत्र
शाङ्खा.स्मृ.	—	शाङ्खायन स्मृति
शां.श्रौ.सू.	—	शाङ्खायन श्रौतसूत्र
षड्वि.ब्रा.	—	षड्विंश ब्राह्मण
सत्या.श्रौ.सू.	—	सत्याषाढ श्रौतसूत्र
सा.वे.	—	सामवेद (ग्रामगेय एवं आर्चिक गान)
सामवि.ब्रा.	—	सामविधान ब्राह्मण
स्मृ.च.	—	स्मृतिचन्द्रिका
संहितोप.ब्रा.	—	संहितोपनिषद् ब्राह्मण
हारल.	—	हारलता
हि.गृ.सू.	—	हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र
हि.ध.सू.	—	हिरण्यकेशि-धर्मसूत्र
हि.पि.मे.	—	हिरण्यकेशि पितृमेध
हि.श्रौ.सू.	—	हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र-सत्याषाढ

पत्रिकायें एवं अन्य ग्रन्थ

A.B.O.R.I	—	एनाल्स ऑफ द भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, पुणे
A.I.O.C	—	आल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स
Apte (आप्टे)	—	द प्रैक्टिक्ल संस्कृत-इङ्ग्लिश डिक्सनरी, 1924
A L B	—	अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन (मद्रास)
Altgr	—	आल्ट इण्डिशे ग्रैमेन्तीक
A O	—	अक्टा ओरिएन्टलिया (कोपेनहगेन)
AORM	—	एनाल्स आफ ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट (मद्रास), बी.आर सक्सेना अभिनन्दन-ग्रन्थ

C A S S	—	सेन्टर आफ एड्वान्सड स्टडी इन संस्कृत, पुणे युनिवर्सिटी
C B S	—	चित्रभानु सेन (डिक्सनरी आफ वेदिक रिचुअल्स)
C H/C. H	—	कैलेण्ड एवं हेनरी (ल अग्निष्टोम)
Debour	—	डेब्रूनर
Egge	—	जे.इंग्लिंग, शतपथ ब्राह्मण, अंगेजी, अनु. आक्सफोर्ड, 1882, 1900
I H Q	—	इण्डियन हिस्ट्री क्वार्टर्ली
I I J	—	इण्डो-इरौनियन जर्नल, द हेग
I L	—	इण्डियन लिंग्विस्टिक्स
J A	—	जर्नल एशियाटीक
J A N I	—	अभिनन्दनग्रन्थ, 1983
J.A.O.S	—	जर्नल आफ अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी
J I H	—	जर्नल आफ इन्डियन हिस्ट्री (त्रिवेन्द्रम्)
J N S I	—	जर्नल आफ न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी आफ इण्डिया
J O I B	—	जर्नल आफ ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा
K Z	—	त्सितक्रिफ्त.....फान कून गोइटेन्गेन
M W	—	मोनियर विलियम्स (संस्कृत-इंग्लिश डिक्सनरी)
P A I O C	—	प्रोसीडिंग्स आफ द आल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स
P A R	—	पार्पोला आस्को (अनु. द्रा. श्रौ. सू., ला. श्रौ. सू.)
Pratar	—	प्रातरनुवाक, गोंड जे.
P W	—	पीटर्सबर्ग वुर्टरबुख
R P V U	—	रिलीजन एण्ड फिलोसफी आफ द वेद एण्ड उपनिषद्स, ए.बी कीथ 1926
Sāy (साय.)	—	सायणाचार्य
S. B. E	—	सेक्रेड. बुक आफ द ईस्ट
T P S	—	ट्रान्जैक्सन्स आफ फिलोलाजिकल सोसाइटी, आक्सफोर्ड
Vāk (वाक्)	—	जर्नल आफ द संस्कृत डिक्सनरी, डेकन कालेज, पुणे
V I J	—	जर्नल ऑफ विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर
V. V	—	वेदिक वैरिएन्ट्स (एम. ब्लूमफील्ड)
ओल्डेनबर्ग	—	गृह्यसूत्राज़, 1880-81
काशिकर	—	श्रौत धर्माचि स्वरूपचिकित्सा (शब्दसूची)
चिन्नस्वामी	—	यज्ञतत्त्वप्रकाश, 1953
तर्पण	—	मराठी

देवयाप.	—	देवयाज्ञिकप्रद्धति
धू.	—	धूर्तस्वामी (आप. श्रौ. सू. पर)
पा.	—	पाणिनि (अष्टाध्यायी)
युधि.	—	श्रौत यज्ञों का परिचय, युधिष्ठिर मीमांसक, सोनीपत, हरियाणा 1984
विद्या.	—	विद्याधर की टीका (का.श्रौ.सू.)
वेद.केश्.	—	वेदान्त केशरी (मद्रास)
श्रौ.को.(अं.)	—	श्रौतकोश (अंग्रेजी)
श्रौ.प.नि.	—	श्रौतपदार्थनिर्वचन, सम्पा. जोशी
श्रौ.को.(सं.)	—	श्रौतकोश (संस्कृत)
सं.डि.डे.	—	संस्कृत डिक्सनरी, डेकन कालेज, पुणे
हा.ओ.सि.	—	हार्वर्ड ओरिएण्टल सिरीज, कैम्ब्रिज
हि.आ.ध./हि.ध.	—	हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, काणे वाल्यू. II. ii

3- सामान्य

अश्व	—	अश्वमेध यज्ञ
अनु.	—	अनुवाद, अनूदित
आ.प.	—	आत्मनेपद
ए. व.	—	एकवचन
क्रि.वि.	—	क्रिया विशेषण
टी.भा.	—	टीका, भाष्य
द्वि.व.	—	द्विवचन
पर.प.	—	परस्मैपद
प्र.पु.	—	प्रथम पुरुष
पा.भे.	—	पाठभेद
पा.टि.	—	पादटिप्पणी
बहु.व.	—	बहुवचन
राज.	—	राजसूय यज्ञ
वाज.	—	वाजपेय
वाल्यू.	—	वाल्यूम
वि.	—	विशेषण
सप्त.	—	सप्तमी विभक्ति
सम्पा.	—	सम्पादित

ग्रन्थ-सूची

अग्नि (द वेदिक रिचुअल ऑफ द फायर आल्टर्), वाल्यू. I, फ्रित्ज स्टाल, 1983, भारतीय. संस्करण, दिल्ली 1986.

अग्निहोत्र, पी. ई. डुमण्ट, अमे. फिला. सोसा., वाल्यू. 108 भाग 4, 1964.

अग्निष्टोम-पद्धति, सम्पा. भगवत्प्रसाद शर्मा, चौ. सं. सि. 433, 455, बनारस 1934, 37.

अथर्ववेद-संहिता, सम्पा. राथ-ह्विटनी, बर्लिन 1924, सम्पा. सातवलेकर, पारडी 1957

आइडेण्टीफिकेशन ऑफ सोम, सी.जी. काशिकर, पुणे 1990

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, अनु. एच. ओल्डेनबर्ग, द गृह्यसूत्राज् II, आक्सफोर्ड 1892 (से. बु. आ. द इ. 30).

आपस्तम्ब परिभाषा सूत्र, अनु. मैक्समुलर, जेड. डी. एम. जी. वाल्यू.9, लाइप्त्सिष् 1855.

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, सम्पा. आर. गार्बे (3 वाल्यू.), कलकत्ता 1882-1902 (बी. आई 92), अनु. डब्ल्यू. कैलेण्ड, गोटिन्गेन 1921, अम्सटर्डम 1924-1928.

आश्वलायन गृह्यसूत्र, सम्पा. अनु. ए. एफ. स्टेन्त्स्लर, लाइप्त्सिष् 1864, अनु. ओल्डेनबर्ग, द गृह्यसूत्राज I, आक्सफोर्ड 1886 (से. बु. इ. 29).

आश्वलायन श्रौतसूत्र, सम्पा. रामनारायण विद्यार्थी, कलकत्ता 1874 (बी. आइ. 49), अनु. क्लाउस मायलस, त्सीतस्ख्रिफ्त फ्युर मिशनस्विसेनशाफ्त उण्ड रिलिजन, बैण्ड्स हेफ्ट 3-4, मन्स्टर, अनु. एच. जी. रानाडे (अंगेजी), I, पूना 1981, II,पुणे 1986, पी सबैथियर, 5वां अध्याय जे. ए8 XV 1890.

इण्डिया आफ द वैदिक कल्पसूत्राज्, रामगोपाल, दिल्ली 1959

इण्डियन होम रिचुअल, भाग I, मुसाशी तचिकाव, नागोया 1985

इण्डिशे स्तूदियन, लाइप्त्सिष्

ऋग्वेदसंहिता (5 वाल्यू.), सम्पा. वैदिक संशोधनमण्डल, पूना 1933-51, अनु. (जर्मन) के. एफ. गेल्डनर (3 वाल्यू.), कैम्ब्रिज 1951 (हा. ओ. सि. 33-35).

ऋग्वेद ब्राह्मणज, ए. बी. कीथ, हा. ओ. सि. 21, द्वितीय संस्करण, दिल्ली 1981.

ए डिक्सनरी ऑफ वेदिक रिचुअल्स, चित्रभानु सेन, दिल्ली 1978

एन्शिएन्ट इण्डियन् किन्गशिप फ्राम रिलिजस प्वाइन्ट ऑफ न्यु, यॉन खोंडा 1966.

ऐतरेय ब्राह्मण, सम्पा. सत्यव्रत सामश्रमी (4 वाल्यू.), कलकत्ता 1895- 1906 (बी. आइ. 134), अनु. ए. बी. कीथ, ऋग्वेद-ब्राह्मण, कैम्ब्रिज, एम.एस.एस. 1929 (हा. ओ. सि.), एम. हाग, भाग-I भाग II, बाम्बे 1863.

ऐष्टिक चातुर्मास्य-यागाचा अहवाल (मराठी), पूणे 1929.

कम्प्रीहेन्सिव शुल्वसूत्र इण्डेक्स, ए माइखेल, वीसबादेन 1983.

कातीयेष्टिदीपक, एन. पर्वतीय, बनारस 1924.

कात्यायन-श्रौतसूत्र, सम्पा. ए. वेबर, लन्दन 1859 अनु. (अंग्रेजी) मूलसहित, एच. जी. रानाडे, पूना, 1978

कौकिली सौत्रामणी, पी. ई. डुमण्ड, अमे. फिला. सो. 109.6, 1965

कौशिकसूत्र, एम. ब्लूमफील्ड, ज. आ. ओ. सो, 1890

कौषीतकी-ब्राह्मण, सम्पा. बी. लिण्डनर, जेना 1887, अनु. कीथ 1929

कौषीतकी गृह्यसूत्र, Muss 15, 1994

गोपथब्राह्मण, सम्पा. डी. गास्ट्रा, लाइडेन 1919

चातुर्मास्य, वी. वी. भिडे, पूना 1979.

चार शूल्वसूत्रे, आर. पी. कुलकर्णी (मराठी), बाम्बे 1978.

चेन्ज एण्ड कॉण्टीन्यूटी इन इण्डियन रिलिजन, यॉन खोंडा, 1985.

जैमिनीय ब्राह्मण, सम्पा. रघुवीर, नागपुर 1954, अनु. एच. डब्ल्यू बोडेवित्स 1.1.65, (1973) से (1990) 1.65 I के अन्त तक।

जैमिनीय ब्राह्मण इन औस्वाल, डब्ल्यू कैलेण्ड, अम्सटर्डम 1919

जैमिनीय श्रौतसूत्र, एस.पी. एस. 40, 1966.

तैत्तिरीय-संहिता, संम्पा. ए. वेबर (2 वाल्यू.), लाइप्त्सिष् 1871-72, अनु. वेद ऑफ द ब्लैक यजुस्, ए. बी. कीथ (2 वाल्यू.), कैम्ब्रिज, एम. एस. एस. 1914 (हा. ओ. सि. 18-19), अनु. (मराठी) पं. बापट, पूना 1994.

तैत्तिरीय ब्राह्मण, सम्पा. एन. गाडबोले (3 वाल्यू.), पूना 1898 (आनन्दाश्रम संस्कृत-ग्रन्थमाला 37), अनु. (मराठी), पं. बापट, पूना 1987.

दास आल्ट इण्डिशे....., जे. स्क्वाब, एर्लागेन 1886

दास इण्डिशे एन्र्टाफर (आग्रयण), लिण्डर 1988

द्राह्यायण श्रौतसूत्र, सम्पा. बी. आर. शर्मा, रा. सं. सं, दिल्ली 1983.

न्यू उण्ड फालमान्दसाफर, ए. हिलेब्रांड्ट, जेना 1879.

पञ्चविंशब्राह्मण अथवा ताण्ड्यमहाब्राह्मण, सम्पा. ए. वेदान्तवागीश, बी. आइ 1870 अंग्रेजी-अनु. डब्ल्यू कैलेण्ड, कलकत्ता 1931.

प्रवर्ग्य, बुइटनेन जे. ए. बी, पूना 1968.

प्रातरनुवाक (प्रात:कालीन वैदिक प्रार्थना-वैदिक मार्निंग लिटनी), यॉन खोंडा, लाइडेन 1981.

पारस्कर-गृह्यसूत्र, सम्पा. एवं अनु. ए एफ. स्टेन्त्स्लर, लिपजिग, 1876-78, एच. ओल्डेनबर्ग, द गृह्यसूत्राज. I, आक्सफोर्ड 1886 (से. बु. ई. 29).

पिण्डपितृयज्ञ, डोनर, बर्लिन 1870.

पिक्कर अल्बम ऑफ प्रैक्टिकल अपारेटस, मीमांसा-विद्यालय, पूना।

प्रेयर एण्ड ब्लेसिंग्स, यॉन खोंडा, लाइडेन 1989.

फङ्क्सन एण्ड सिग्निफिकन्स ऑफ गोल्ड इन वेद, यॉन खोंडा, 1991

ब्रह्मत्वमञ्जरी, सम्पा. अनु. एच. जी. रानाडे, पूना 1983.

बोधायन शूल्वसूत्र=चार शूल्वसूत्रे.

बोधायन श्रौतसूत्र, सम्पा. शाम शास्त्री, मैसूर 1929.

भारद्वाज श्रौतसूत्र, सम्पा. अनु. सी. जी. कशिकर (2 वाल्यू.) पूना 1964.

मन्त्राज़ इन अग्न्युपस्थान एण्ड द सौत्रामणी, यॉन खोंडा, अम्सटर्डम 1980.

मानव श्रौतसूत्र, मूल एवं अंग्रेजी-अनुवाद: जे. एम. फान गेल्डर, नई दिल्ली 1971-3.

मीमांसासूत्र (2 वाल्यू.), सम्पा. एम. न्यायरत्न, कलकत्ता 1973-89 (बी. आई 45).

मैत्रायणी संहिता, सम्पा. एल. वी. श्रोडर (4 वाल्यू.) लाइप्त्सिष् 1881-6.

यज्ञतत्त्वप्रकाश, ए. चिन्नस्वामी शास्त्री, सम्पा. रामनाथ दीक्षितार, मद्रास 1953.

यज्ञायुधानि, सम्पा. टी.एन. धर्माधिकारी, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1992.

(डाइ) यजुस् डेस अश्वमेध, एस. एस. भावे, स्टुटगर्त 1939.

यूबर डेन वाजपेय, ए. वेबर, बर्लिन 1892.

रायल कन्सेक्रेशन, जे. सी. हीस्टरमैन, ग्रेवेलहेग 1957, आज्याधान, विएन 1989.

रिलिजन एण्ड फिलॉसाफी ऑफ वेद एण्ड उपनिषदाज, ए. बी. कीथ, द्वितीय भारतीयसंस्करण, दिल्ली 1976.

रिचुअल फङ्क्सन्स एण्ड सिग्निफिकेन्स ऑफ ग्रासेज इन द रिलिजन आफ द वेद, यॉन खोंडा, एम्सटर्डम 1985.

रिचुअल लितरातुर, ए. हिलब्राण्ड, स्टासबर्ग 1897.

रिचुअल सूत्राज़, यॉन खोंडा, वीसबाडेन 1977.

ल' अग्निष्टोम (2 वाल्यू), डब्ल्यू कैलेण्ड एवं हेनरी, पेरिस 1906-7.

ल' अग्निहोत्र, पी. ई. डुमण्ट, बाल्टीमोर 1939

ल' अश्वमेध, पी. ई. डुमण्ट, पेरिस 1927

ला डाक्ट्रिन दु सेक्रिफाइस दन्स लेस ब्राह्मणास, एस. लेवी, पेरिस 1898.

वाकबुलेर दु रिचुएल वेदीक, एल. रेनू. पेरिस 1954.

वाधूल श्रौतसूत्र, सम्पा. बी. बी. चौबे, होशियारपुर 1993.

वाजसनेय-संहिता (मा.), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1971.

वाराहश्रौतसूत्र, सम्पा. डब्ल्यू कैलण्ड एवं रघुबीर, लाहौर 1933.

वेदिक रिचुअल, यॉन खोंडा, 1980.

वेदिक बिब्लियोग्राफी, आर. एन. दाण्डेकर (5 वाल्यू.), पूना.

वेदिक कान्कार्डेंस, एम. ब्लूमफील्ड, कैम्बिज, एम. एस. एस. 1906.

वेदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स (2 वाल्यू.), ए. ए. मैकडानेल एवं ए. बी. कीथ, लन्दन 1912.

वैखानसश्रौतसूत्र, सम्पा. डब्ल्यू. कैलेण्ड, कलकत्ता 1941 (बी. आई 265).

वैतान सूत्र, सम्पा. आर. गार्बे, लन्दन 1878, अनु. डब्ल्यू. कैलेण्ड, अम्सटर्डम 1910.

वैदिक पदानुक्रमकोश (वाल्यू. I-V), सम्पा. विश्वबन्धु, लाहौर 1935, होशियारपुर 1965.

वैदिक यज्ञसंस्था आणि वाजपेय यज्ञ (मराठी), पुणे 1955.

शतपथ-ब्राह्मण, सं. ए. वेबर, चौ. सं. सि. 96, 1964, अनु. जे. इग्लिंग (अंग्रेजी), पुनस्संस्करण, दिल्ली

शाङ्खायन-श्रौतसूत्र, सम्पा. लोकेश चन्द्र, नागपुर 1953, अनु. डब्ल्यू कैलेण्ड, नागपुर 1953.

श्रौतकोश, वाल्यू. I एवं II (भाग I एवं II), अंग्रेजी एवं संस्कृत, क्रमशः, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1958 आगे, वाल्यू III, 1995.

श्रौतधर्माचि स्वरूप-चिकित्सा (मराठी), सी. जी. काशिकर, पूना 1977.

श्रौतपदार्थ-निर्वचन, सम्पा. वी. जोशी, (आवृत्त) अग्निहोत्री, बनारस 1919.

सवयज्ञाज़, यॉन खोंडा, 1965.

सम वीमेन्स राइट्स..... इन द वेद, एच. पी. श्मिट्, पूना 1987.

सर्वे आफ द श्रौतसूत्राज़, सी. जी. काशिकर, बाम्बे 1968.

सामविधानब्राह्मण, सम्पा. बी. आर. शर्मा, तिरुपति 1964.

सेक्रिफाइस इन द ऋग्वेद, के. आर. पोतदार, बाम्बे 1953.

सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज़, वी. एम. आप्टे, बाम्बे 1953.

लाट्यायन श्रौतसूत्र, बी. आइ. 1872, कलकत्ता, सम्पा. आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश, समालोचनात्मक सं. एवं अंग्रेजी अनु. एच. जी. रानाडे 1992, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली (दो अध्याय), अनु. आश्को परपोला I (i) I (ii), हेलसिन्की 1968-69.

लेस एकोल्स वेदीक डे ला फार्मेशन दु वेद, एल. रेनू-,पेरिस 1947.

लेआउट एण्ड कन्स्ट्रक्सन ऑफ सिटीज़्, आर.पी. कुलकर्णी, बी. ओ. आर. आइ. पूना 1987.

हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, पी.वी. काणे, वाल्यू. II, भाग II, (भण्डा. ओ. रि. इ.), पुणे 1941

हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र, अनु. एच. ओल्डेनबर्ग, द गृह्यसूत्राज़ आक्सफोर्ड 1892 (से. बु. इ. 30)

हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्र=सत्याषाढ श्रौतसूत्र (10 वाल्यू.), पूना 1907-1932 (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला 53)

महत्त्वपूर्ण मन्त्रों की सूची

अंशुना ते अंशुः पृच्यताम्	तै.सं. 1.2.6.2 (सोमाभिमन्त्रण)
अंशुरंशुस्ते देव सोम	तै.सं. 1.2.11.1 (सोम-आप्यायन)
अक्तं रिहाणाः	तै.सं. 1.1.13.1 करछुलों में प्रस्तराञ्जन
अक्रन् कर्म कर्मकृतः	तै.सं. 1.8.3.1 वरुणप्रघास में शूर्प (सूप) से करम्भ की आहुति
अक्षन्नमीमदन्त	ऋ.वे. 1.82.2, तै.सं. 1.8.5.2 गार्हपत्य से प्रार्थना
अगन् देवान्	तै.सं. 3.5.6.2 'पत्नेजनी' संज्ञक जल को उड़ेलना
अगन्नग्निर्यथालोकम्	भा.श्रौ.सू. 5.18.1 अग्नि के पुनराधान (पुनःस्थापन में स्विष्टकृत् के अन्तर्गत अर्पित की जाने वाली आहुति।)
अगन्म सुवस्सुवरगन्म	तै.सं. 1.6.6.1 आदित्योपस्थान (आदित्य-प्रार्थना)
अगानग्नीत्	तै.सं. 2.6.5.6 अनुयाज
अग्न आयूंषि पवसे	तै.सं. 1.4.29.1, 5.5.2, 6.6.2 यह ऋचा 'गार्हपत्याभिमन्त्रण' के नाम से जानी जाती है।
अग्नये कव्यवाहनाय	भा.श्रौ.सू. 1.8.3 पिण्डपितृयज्ञ
स्विष्टकृते स्वधा नमः	
अग्नये त्वा पृथिव्यै चोन्नयामि	भा.श्रौ.सू. 6.11.4 प्रथमतया चम्मच से 'अग्निहोत्र' दुग्ध को लेना
अग्नये ज्योतिष्मते स्वाहा	भा.श्रौ.सू. 9.13.13 अग्नि-स्थान पर दी जाने वाली आठ आहुतियों में एक, अनुगतेष्टि
अग्नये त्वा वसुमते स्वाहा	तै. आ. 4.9.1; भा.श्रौ.सू. 11.10.5 प्रवर्ग्य में पाँच पश्चाद्वर्ती 'वातनाम' मन्त्रों में एक, पूर्ववर्ती 'समुद्राय त्वा' आदि
अग्नये रुद्रवते स्वाहा	भा.श्रौ.सू. 9.8.7 प्रायश्चित्त
अग्नये व्रतपतये स्वाहा	द्रष्टव्य 'अग्नये ज्योतिष्मते'
अग्नये शुचये स्वाहा	वही
अग्नये स्वाहा	वही
अग्नये सर्वौषधाय पुष्ट्यै	श्रौ.को. (सं.) 1.38 नव 'देवयजन' (यज्ञीय भूमि) में प्रथम आहुति-प्रदान के समय उच्चारित।

अग्ना ३ इ पत्नीवा३न्	तै.सं. 1.4.27.1; भा.श्रौ.सू. 14.13.17 'पात्नीवत' प्याले का अर्पण
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः	तै.सं. 1.1.7.2 नवमथित अग्नि पर चम्मच से आहुति
अग्नाविष्णू मा वामवक्रमिषम्	तै.सं. 1.1.12.1 प्रस्तर को लांघते समय उच्चारणीय
अग्निं स्तोमेन बोधय	तै.सं. 4.1.11.4 अग्नि का पुनःस्थापन, आज्यभाग
अग्निः पृथिव्याः	तै.सं. 3.2.4.4 अग्निष्टोम में वपा की आहुति के पश्चात् अग्नि पर दृष्टिपात करना।
अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान्	तै.सं. 3.1.9.1 अदाभ्य संज्ञक प्याले का आहरण
अग्निः प्रथमः प्राश्नातु	तै.ब्रा. 2.4.8.7 आग्रयण (श्यामाक)
अग्निं गृह्णामि सुरथम्	तै.सं. 3.7.4.3 उस अग्नि की प्रार्थना, जिसमें ईंधन लगाया जा रहा हो।
अग्निना देवेन पृतना जयामि	तै.सं. 3.5.3.1 विष्णु–अतिक्रमण का जप
अग्निना यज्ञश्चक्षुष्मान्	भा.श्रौ.सू. 4.13.4 दर्श में अग्नि के लिए आज्यभाग के पश्चात् 'अनुक्रमण'
अग्निना वैश्वानरेण पति स्य	भा.श्रौ.सू. 14.15.7, 'ध्रुव' संज्ञक प्याले में स्थित सोम का भक्षण (पान)
अग्निं नरो दीधितिभिः	ऋ.वे. 7.1.1 यदि मन्थन के बाद अग्नि न उत्पन्न हुई हो और कहीं अन्यत्र से लायी गयी हो, तो उस स्थिति में प्रायश्चित्त
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा	तै.ब्रा. 2.1.9.2 सांयकालिक अग्निहोत्र
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिस्सूर्यः स्वाहा	तै.सं. 2.1.2.1 सांयकालीन अग्निहोत्र (वैकल्पिक)
अग्निर्देवता गायत्री छन्दः	तै.सं. 3.1.6.2, खर (टीले) पर प्यालों का सञ्चयन
अग्निर्देवो दैवो होता	भा.श्रौ.सू. 10.1.6; श्रौ. को. (सं.) 1.36 होता का चयन (वरण)
अग्निर्देवो होता देवान्	तै.सं. 2.5.11.8 प्रवरं वृणीते
अग्निर्दैवीनां विशाम्	मै.सं. 3.9.8 पशुयाग में यजमान का चयन
अग्निर्मा दुरिष्टात् पातु	तै.सं. 1.6.3.1 दर्श में स्विष्टकृत् के लिए अनुमन्त्रण
अग्निर्मूर्धा	ऋ.वे. 8.44.16; तै.सं. 1.5.5.1; भा.श्रौ.सू. 5.20.9 अग्नि के पुनराधान में द्वितीय अर्थात् सौम्य आज्यभाग के लिए 'पुरोनुवाक्या', के रूप में पठित, अग्नि के लिए प्रधान आहुति की पुरोनुवाक्या के रूप में उच्चारित
अग्निर्यजुर्भिः	तै. आ. 3.8.1 'सम्भार–यजुष्' दर्श में 'मुष्टिकरण' के बाद यजमान से इनको पढ़वाया जाता है।
अग्निर्यज्ञं नयतु प्रजानन्	भा.श्रौ.सू. 7.5.6 पशुयाग में उत्तरावेदि में पूर्णाहुति के अनन्तर इस मन्त्र से 'अतिमुक्ति' आहुति प्रदान की जाती है।
अग्निर्वृत्राणि	श्रौ.को (अं) 1.359 पौर्णमास नामक यज्ञ में प्रथम आज्यभाग की 'पुरोनुवाक्या' के रूप में पठित।
अग्निष्टे तनुवं माति धाक्	तै.सं. 1.1.8.1 कपाल पर स्थित पुरोडाश के चारों ओर जलते हुए अंगार को घुमाते समय उच्चारित

अग्निष्टे तेजो मा विनैत्	तै.सं. 1.1.10.3 गरम करने के लिए आहवनीय अग्नि पर घृत रखते समय पठित
अग्निषोमा सवेदसा	ऋ.वे. 1.93.9 पौर्णमास इष्टि में 'अग्निष्टोमौ' की पुरोनुवाक्या के रूप में पठित
अग्ने जुषाणो नो हविः	श्रौ.को. (अं.) 11.507 सवनीय पुरोडाश के लिए स्विष्टकृत् की पुरोनुवाक्या।
अग्ने त्वं सु जागृहि	तै.सं. 1.2.31 यदि यजमान दीक्षा के समय शयन करना चाहता हो, तो उस स्थिति में अग्नि से प्रार्थना।
अग्ने नय सुपथा राये	तै.सं. 1.4.43.1 जब उपहार के रूप में गायें प्रदान की जाती हैं, उस समय आग्नीध्र अग्नि पर घृत की आहुति दी जाती है
अग्ने यदद्य	ऋ.वे.6.15.14 पौर्णमास में 'ये यजामहे अग्निस्विष्टकृत अयाट् अमुष्याह, अमुष्य' आदि निगद के साथ इष्टि में 'स्विष्टकृत्' की 'याज्या' के रूप में पठित।
अग्ने वाजजित्.....ससृवाँस	तै.ब्रा. 3.7.6; 14-17 अग्नि-सम्मार्जन (अग्नि को साफ करने) के समय अग्नीध्रकर्तृक उच्चारण।
अचित्ति यत्	श्रौ.को. (अं.) 1.671 'वैश्वदेव पर्व' के अन्तर्गत सवितृ के लिए याज्या के रूप में पठित।
अजीजनन्नमृतम्	तै.ब्रा. 1.2.1.19 जब मन्थन से अग्नि उत्पन्न की जाती है, उस समय उच्चारित।
अपश्यं गोपाम्	तै.आ. 4.7.1 तप्त महावीर पात्र पर दृष्टि डालते समय उच्चारणीय
अपि पन्थामगन्महि	तै.सं. 1.2.9.1 सोम को खरीदने के लिए उसके (सोम के) पास जाते समय उच्चार्य।
अपो अन्वचारिषम्	तै.सं. 1.4.45.3 पशुयाग के अन्त में समिधाओं के अर्पण के अनन्तर आहवनीय अग्नि की प्रार्थना के समय उच्चारणीय।
अप्सु धौतस्य सोम देव ते	तै.सं. 3.2.5.7 अग्निष्टोम के अन्त में 'धानाओं' के सूंघने के द्वारा भक्षण के समय उच्चारित।
अभित्यं देवं सवितारम्	तै.सं. 1.2.6.1 सोम के मापन (मात्रा) के समय उच्चारित।
अभूदुषा रुशत्पशुः	ऋ.वे. 5.75.9 प्रातरनुवाक के एक भाग के रूप में उच्चारित, जिसके बाद 'प्रचरणी' से एक आहुति दी जाती है।
अमीमदन्त पितरः	तै.सं. 1.8.5.4, 'चातुर्मास्य' के 'साकमेध' पर्व के अन्तर्गत पितृयज्ञ में उच्चारित
अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोतु	तै.सं. 1.3.4.1 अग्निष्टोमप्रणयन के दौरान आग्नीध्र अग्नि पर ईंधन रखते समय उच्चारित।
अश्वत्थाद्धव्यवाहाद्धि	श्रौ.को. (सं.) 1.40 दोनों अरणियों को लाते समय उच्चारित।
अस्मे रायः	तै.सं. 1.2.5.3 उस समय उच्चारित जब सोम-क्रयणी गाय के सप्तम पद द्वारा चिह्नित मिट्टी को पात्र में उड़ेला जाता है।
अहं त्वदस्मि	तै.ब्रा. 1.2.1.20; श्रौ. को. (सं.) 1.46 नव गार्हपत्य की प्रार्थना के रूप में उच्चारित
अहं भूपतिरहं भुवनपतिः	तै.ब्रा. 3.7.6.1 वृत (चयनित) ब्रह्मा (नामक ऋत्विज्) द्वारा उच्चारित।

अहाव्यग्ने हविरारस्यते	श्रौ.को. (अं.) 1.942 सौत्रामणी सुरायाग में स्विष्टकृत् की याज्या के रूप में पठित।
अहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठान्यस्य	तै.सं. 3.2.4.4 प्रवेश एवं नीचे बैठने के समय उच्चारित
अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय	तै.ब्रा. 1.1.10.3 नवस्थापित 'आवसथ्य' अग्नि के प्रति यजमानकर्तृक प्रार्थना।
आकाशो देवो दैवः सदस्यः	श्रौ.को. (सं.) 1.37 सदस्य का वरण
आकूत्यै त्वा कामाय त्वा	श्रौ.को. 1.35 अनुष्ठान के लिए 'आकूति' देवी के प्रति उद्घोषणा के लिए सम्बोधित।
आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा	तै.सं. 1.2.2.1 उस समय उच्चारित जिस समय चम्मच से ध्रुवा मे से लेकर दीक्षाहुतियाँ अर्पित की जाती हैं।
आ त्वा विशन्त्विन्दवः	तै.सं. 7.1.6.6 'वाजिन्' के भागग्रहण के मन्त्र के रूप में उच्चारित
आदित्यवद्गणस्य सोम देव ते	तै. सं. 3.2.5.3 अग्निष्टोम के तृतीय सत्र में 'चमसिन्' लोगों के पुरोडाश के शेष भाग का भक्षण करते समय उच्चारित
आदित्यो देवो	श्रौ.को. (सं.) 1.36 अध्वर्यु का चयन
अन्वग्निरुषसाम्	बौ.श्रौ.सू. 2.13.8 'अम्बरीष' अग्नि में घृत की एक आहुति डालते समय उच्चारित।
आपो अस्मान् मातरः शुन्धन्तु	तै.सं. 1.2.1.1 दीक्षा के पूर्व यजमान के स्नान (अर्थात् अप्सुदीक्षा) के समय उच्चारित
आपो हि ष्ठा मयोभुवः	तै.सं. 4.1.5.1 प्रायश्चित्त; यदि प्रणीता जल बाहर गिर जाये, तो इसे इस ऋचा से ग्रहण करते हैं।
आ प्यायस्व समेतु ते	तै.सं. 3.2.5.3 उस समय उच्चारित जिस समय उपभोग=पान के पश्चात् पानपात्र को पुनः आपूरित किया जाता है।
आ भरतं शिक्षतम्	श्रौ.को. (अं.) 1.846 पशुपुरोडाश के लिए पुरानुवाक्या के रूप में पठित।
आयुषे वो गृह्णामि	श्रौ.को. (अं.) 1.38 'अम्बरीष' से जलते अंगारों को लेते समय उच्चारित।
आ वो देवास ईमहे	तै.सं. 1.2.1.2 इसके साथ यजमान प्राग्वंश में प्रवेश करता है।
इडा देवहूः	तै.सं. 3.3.2.1 अध्वर्यु इससे एक शस्त्र नियत करता है– भा.श्रौ.सू. 13.3.1.2.
इत इन्द्रो	श्रौ. को. (अं.) 1.329, इष्टि में द्वितीय आघार के समय पठित
इदं विष्णुर्विचक्रमे	तै.सं. 1.2.13.1 घृत को दक्षिणी अग्नि पर रखता है। प्रायश्चित के रूप में भी प्रयुक्त।
इन्द्राग्नी रोचना दिवः	श्रौ.को. (अं.) 1.370 'दर्श' नामक इष्टि में इन्द्राग्नी के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
इमा म आपः	श्रौ.को. (सं.) 1.41 गोपितृ यज्ञ में उच्चारण के लिए प्रेरित होने पर उच्चारित।
इषिता दैव्या होतारो	तै.ब्रा. 3.3.8 सूक्तवाक् के लिए पुकार (प्रैष)
उक्थं वाचि	तै.सं. 3.2.9.1 माध्यन्दिन सत्र में 'शस्त्र' के अन्त में उच्चारित
उक्थं वाचीन्द्राय	तै.सं. 3.2.9.2 तृतीय सत्र (सवन) में 'शस्त्र' के अन्त में उच्चारित

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	ऋ.वे. 1.40.1; तै.आ. 4.2.9 (4) 'अग्नि' लेने के पश्चात् 'ब्रह्मा' को सम्बोधित करते समय उच्चारित
उदु त्यं जातवेदसम्	तै.सं. 1.2.8.2; तै.ब्रा. 3.7.11.2; तै. आ. 4.11.8. 1) सभी चीजों के लिए प्रायश्चित्तीय आहुतियाँ प्रदान करते समय उच्चारणीय (भा.श्रौ.सू. 3.10.2) 2) क्रीत (खरीदे गये) सोम को आवृत करते समय उच्चारित (भा.श्रौ.सू. 10.9.6) 3) गार्हपत्य से प्रार्थना के समय (भा.श्रौ.सू. 11.16.13)। 4) प्रायश्चित्त के समय गार्हपत्य में आहुति डालते समय (भा.श्रौ.सू. 11.8.2)
उद्वयं तमसस्परि	तै.ब्रा. 3.7.11.2 उपर्युक्त स्थितियों में भी उच्चारित
उद्धन्यमानस्य	श्रौ.को. (सं.) 1.40 उस समय उच्चारित जिस समय गार्हपत्य की कड़ाही पर खरोच लग जाये।
उप प्रयन्तोऽध्वरम्	तै.सं. 1.5.5.1 अग्निहोत्र के बाद आहवनीय से प्रार्थना के समय उच्चारित।
उपयामगृहीतोऽसि	तै.सं. 3.2.1.3; 1.4.27.1, 'प्याले' को लेते समय
उभा वामिन्द्राग्नी	श्रौ.को. (अं.) 1.846 पशु के अङ्गों की आहुति के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
उरु विष्णो विक्रमस्व	तै.सं. 1.3.4.1 चम्मच से 'यूपाहुति' प्रदान करते समय उच्चारित
ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामि	तै.ब्रा. 2.1.11.1 सायंकाल –अग्निहोत्र के चारों ओर जल उड़ेलते समय पठित।
एधोऽस्येधिषीमहि	तै.सं. 1.4.45.3 'हृदयशूल'–संज्ञक कृत्य के पश्चात् अग्नि में समिधायें डालते समय उच्चारित
एन्द्र सानसिम्	ऋ.वे. 1.8.1 'दर्श' में इन्द्र के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
ओषधे त्रायस्वैनम्	तै.सं. 1.2.1.1 वृक्ष एवं काटने के साधन के मध्य घास रखते समय पठित।
कदाचन स्तरीरसि	तै.सं. 1.4.22.1 आदित्य 'प्याले' में आदित्य स्थाली में से तृतीय भाग के आहरण के समय उच्चारित।
कया नश्चित्र आ भुवत्	4.2.11.2 अदाभ्य पात्र में अंशुग्रह का आहरण करते समय उच्चारित
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिम्	श्रौ.को. (अं.) 1.846 पशुपुरोडाश की याज्या के रूप में पठित।
चन्द्रमा देवो देवो ब्रह्मा	श्रौ.को. (सं.) 1.36 ब्रह्मा का वरण
चित्रं देवानाम्	तै.ब्रा. 2.8.7.3 द्रष्टव्य 'उदुत्यं जातवेदसम्'
चोदयित्री सूनृतानाम्	श्रौ.को. (अं.) 1.67 वैश्वदेव पर्व के अन्तर्गत सरस्वती के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।

जातवेदो भुवनस्य	तै.ब्रा. 1.2.1.15 अरणियों को तप्त करते समय उच्चारित
जुषाणो अग्निराज्यस्य वेतु	श्रौ.को. (अं.) 1.359 पौर्णमास इष्टि में प्रथम 'आज्यभाग' की याज्या के रूप में पठित।
जुषाणो सोम आज्यस्य	श्रौ.को. (अं.) 1.359 पौर्णमास में द्वितीय आज्यभाग की 'याज्या' के रूप में पठित।
तत्त ऋष्यताम्	श्रौ.को. (सं.) 1.35 'उपव्याहरण' का उत्तर
तत्सवितुर्वरेण्यम्	तै.सं. 1.5.6.4; श्रौ.को. (अं.) 1.671 वैश्वदेव पर्व में आहवनीय से प्रार्थना करते समय उच्चारित।
त्र्यम्बकं यजामहे	तै.सं. 1.8.6.2 साकमेध में त्र्यम्बेकष्टि में उच्चारित।
त्वं नः सोम	श्रौ.को. (अं.) 1.671 सोम को आहुति के लिए वैश्वदेव पर्व में पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
त्वं सोमासि सत्पतिः	श्रौ.को. (अं.) 1.359 पौर्णमास इष्टि में द्वितीय 'आज्यभाग' की पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
दधिक्राव्णो अकारिषम्	तै.सं. 1.5.11.4 दर्श में दधि (सान्नाय्य) के भक्षण के समय एवं अग्निष्टोम में आग्नीध्रीय मण्डप में दधि की बूँदों के भक्षण के समय उच्चारित।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे	भा.श्रौ.सू. 1.3.11, आदि स्पर्श करते समय अथवा पकड़ बनाते समय उच्चारित।
देवा गातुविदो गातुं यज्ञाय	तै.ब्रा. 3.7.4.1 दर्श में अग्नि में ईंधन जोड़ने या रखने के बाद उच्चारित।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा	तै.सं. 1.1.13.3 दर्श में प्रथम समिष्टयजुस् आहुति प्रदान करते समय उच्चारित।
धानावन्तं करम्भिणम्	श्रौ.को. (अं.) 11.506 प्रातःकालिक सत्र में सवनीय पुरोडाश के लिए 'पुरोनुवाक्या' के रूप में पठित।
नराशंसपीतस्य सोम देव	भा.श्रौ.सू. 13.32.3 नराशंस नाम वाले सोमपात्र के शेष-भाग के उपभोग के समय उच्चारित।
नर्य प्रजां मे गोपाय	तै.ब्रा. 1.1.10.2 अग्न्याधेय के अन्त में गार्हपत्य से प्रार्थना करते समय उच्चारित।
निषसाद धृतव्रतो	तै.सं. 1.8.16.1 अग्न्याधेय में अक्षक्रीडा प्रारम्भ करने के पूर्व सभ्य एवं आवसथ्य प्रत्येक को चम्मच भर आहुति देते समय उच्चारित।
परि त्वा गिर्वणो गिरः	तै.सं. 1.3.1.2 हविराधान मण्डप के चारों ओर एक चटाई रखते समय उच्चारित।
पर्जन्यो देवो दैव उद्गाता	श्रौ.को. (सं.) 1.37 'उद्गाता' का वरण।
पावीरवी कन्या	श्रौ.को. (अं.) 1.671 वैश्वदेव पर्व के अन्तर्गत सरस्वती के लिए 'याज्या' के रूप में पठित।
पवमानः सुवर्जनः	तै.ब्रा. 1.4.8.1 यजमान के 'अप्सु दीक्षा' में स्नान करने के बाद उसके उपर जल छिड़कते समय उच्चारित (सोम)
पिप्रीहि देवान्	ऋ.वे. 10.2.1 इष्टि में स्वस्तिकृत् के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।

पुत्रमिव पितरौ	श्रौ.को.(अं.) 1.919 सौत्रामणी 'सुरायाग' की 'याज्या'
पूषगा अन्वेतु	श्रौ.को. (अं.) 1.671 वैश्वदेवपर्व में 'पुरोनुवाक्या' के रूप में उच्चारित।
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु	श्रौ.को. (अं.) 1.846 पशु के अङ्गों की आहुति के लिए याज्या के रूप में पठित।
प्रजापते न त्वदेतानि	श्रौ.को. (सं.) 1.370 'पौर्णमास' इष्टि के लिए उपांशु आहुति की पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
प्र वेधसे	श्रौ.को.(सं.) 1.39 ब्रह्मौदन (पक्व चावल) में से आहुति देते समय उच्चारित।
प्र वो वाजा अभिद्यवो	ऋ.वे. 3.27.1 'सामिधेनी' की प्रथम ऋचा के रूप में उच्चारित।
प्र ससाहिषे	ऋ.वे. 10.180.1 दर्श में इन्द्र के लिए 'याज्या' के रूप में पठित।
ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम्	तै.सं. 1.3.6.2 खड़े किये गये यज्ञीय यूप के चारों तरफ मिट्टी से ढकने के समय उच्चारित।
भूवो यज्ञस्य	ऋ.वे. 10.8.6 पौर्णमासेष्टि में अग्नि के लिए प्रधान आहुति की 'याज्या' के रूप में पठित।
भूर्भुवः घर्मः शिरः	श्रौ.को. (सं.) 1.46 गार्हपत्याधान के समय उच्चारित।
महन्मेऽवोचो	श्रौ.को. 1.37 वरण के बाद जपा जाने वाला।
ममाग्ने वर्चो विवहेष्वस्तु	तै.सं. 4.7.14.1 आहवनीय में ईंधन डालते समय उच्चारित।
महाँ इन्द्रो य, महाँ इन्द्रो नृवत्	ऋ.वे. 8.6.1 एवं ऋ.वे. 6.19.1 'दर्श' में महेन्द्र के लिए पुरोनुवाक्या एवं याज्या के रूप में पठित।
मही विश्पत्नी सदने	तै.ब्रा. 1.2.1.13 अरणियों के स्वीकरण के समय उच्चारित।
यज्ञस्य पाथ उप समितम्	तै.सं. 1.1.13.2 'शंयुवाक' के अन्तर्गत अग्नि में उत्तरी एवं दक्षिणी परिधियों को फेंकने के समय उच्चारित।
यज्ञस्य संततिरसि	तै.ब्रा. 3.2.4.1 उस समय उच्चारित जिस समय दर्श में दधि में अग्निहोत्र के बचे हुए दूध को मिलाते हैं।
यं परिधिं पर्यधत्था	तै.सं. 1.1.13.2 शंयुवाक के अन्तर्गत अग्नि में मध्यम परिधि के प्रक्षेप के समय उच्चारित।
यस्मिन् अश्विना	श्रौ.को. (अं.) 1.942 सौत्रामणी सुरायाग में स्विष्टकृत् के लिए पुरोनुवाक्या।
या ते अग्ने यज्ञिया तनूः	तै.सं. 3.4.10.5 अग्नि को स्वयं के लिए नियत करते समय पठित।
या ते धामानि	श्रौ.को. (अं.) 1.671 वैश्वदेव पर्व में सोम के लिए 'याज्या' के रूप में पठित।
याः पुरस्तात् प्रस्नवति	श्रौ.को. (सं.) 1.35 यजमान 'उपव्याहरण' के लिए इस मन्त्र का जप करता है।
युञ्जते मनः	तै.सं. 1.2.13.1 प्रवर्ग्य से प्रारम्भ कर एवं अपने दीक्षित न होने की स्थिति में आहुति देते समय उच्चारित

युवमेतानि दिवि	ऋ.वे. 1.93.5 पौर्णमास में अग्नीषोम के लिए 'याज्या' के रूप में पठित।
युवं सुराममं् अश्विना	श्रौ.को. (अं.) 1.919 सौत्रामणी सुरायाग की पुरोनुवाक्या के रूप में पठित।
ये यजामहे होत्रा इन्द्रो धाना अत्तु	श्रौ.को. (अं.) 11.507 सवनीय पुरोडाश के लिए 'याज्या'।
वसुमद्गणस्य सोम देव ते	तै.सं. 3.2.5.2 इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए मुख्य ऋत्विज् से सम्बद्ध पानपात्र को पकड़ने वाले सोम-रस का पान करते हैं।
वाजस्य मा प्रसवेन	तै.सं. 1.1.13.1 दर्श में करछुलों को पृथक् करते समय उच्चारित।
(भूर्भुवः) वातः प्राणः	तै.ब्रा. 1.1.7.1; श्रौ.को. (सं.) 1.47 दक्षिणाग्नि का आधान करते समय उच्चारित।
विद्युदसि विद्य मे	तै.ब्रा. 3.10.9.2 अग्निहोत्र आहुति प्रदान करने के पूर्व जल का स्पर्श करते समय उच्चारित।
विष्णोर्नु कं वीर्याणि	तै.सं. 1.2.13.3 उत्तरी सोमशकट के निकट कील गाड़ते समय उच्चारित।
श्नथद् वृत्र उत	श्रौ.को. (अं.) 1.370 'दर्श' इष्टि में इन्द्राग्नी के लिए याज्या के रूप में पठित।
शंनो देवीरभिष्टये	तै.ब्रा. 1.2.1.1; श्रौ.को. (सं.) 1.40 खुरची हुई मिट्टी पर जल छिड़कते समय पठित।
शुक्रं ते अन्यत्	श्रौ.को. (अं.) 1.671 वैश्वदेव पर्व के अन्तर्गत 'पूषा' के लिए याज्या के रूप में पठित।
समिद्धो अग्ने मे दीदिहि	तै.सं. 1.6.6.2 गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित करते समय उच्चारित।
समिधाग्निं दुवस्यत	तै.ब्रा. 1.2.1.9 ब्रह्मौदन के सम्बन्ध में अग्नि पर समिधा रखते समय उच्चारित
समिद्धो अग्न आहुत	ऋ.वे. 5.28.5; तै.सं. 2.5.8.6; तै.ब्रा. 3.5.2.3 सामिधेनियों के दौरान पठित, जिसके बाद अनुयाज के लिए एक को छोड़कर सभी समिधायें आग पर रख दी जाती हैं।
स वेद पुत्रः	श्रौ.को. (अं.) 1.370 पौर्णमास में उपांशु आहुति के लिए याज्या के रूप में पठित।
सिद्धे मे मन्युर्व्याप्प्रे	श्रौ.को. (सं.) गोपितृयज्ञ में जल में देखते समय यजमान द्वारा उच्चारित करया जाता है।
सुमित्रा न आप ओषधयः	तै.सं. 1.4.45.2; श्रौ.को. (सं.) 1.41 हृदयशूल संज्ञक कृत्य के पश्चात् चात्वाल पर सफाई करते समय उच्चारित, जैसा की गोपितृयज्ञ में भी।
(भूर्भुवः) सुवरर्कश्चक्षु	श्रौ.को (सं.) 1.47 आहवनीयाधान के समय उच्चारित।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः	तै.ब्रा. 2.1.9.2 प्रातःकालीन अग्निहोत्र की आहुति के समय उच्चारित
सोम गीर्भिष्ट्वा वयम्	ऋ.वे. 1.91.11 'दर्शेष्टि' में द्वितीय आज्यभाग के लिए पुरोनुवाक्या के लिए पठित
हविरग्ने वीहिवौषट्	श्रौ.को. (अं.) 11.507 सवनीय पुरोडाश के स्विष्टकृत् के लिए याज्या के रूप में प्रयुक्त

चित्र-सूची

अक्षधुरोपाञ्जन	पृ. 7	अधिषवण-फलक	पृ. 53
अग्निक्षेत्र	पृ. 12	अनक्षसङ्गम्	पृ. 59
अग्निचयन	पृ. 12	अनन्तर्गर्भ	पृ. 63
अग्निमंथन	पृ. 15	अनस्	पृ. 70
अग्निष्ठ	पृ. 19	अन्तर्धान कट	पृ. 89
अग्निसंमार्ग	पृ. 20	अन्वाधान	पृ. 91
अग्निहोत्रस्थाली	पृ. 23	अपिकक्ष	पृ. 96
अग्निहोत्रहोम	पृ. 23	अभिघारण	पृ. 100
अग्निहोत्री गौः	पृ. 24	अभिज्वालन	पृ. 101
अग्नीध्र	पृ. 25	अभिषेक	पृ. 104
अग्न्यागार	पृ. 27	अभ्यात्मम्	पृ. 106
अग्न्युद्धरण	पृ. 28	अभ्रि	पृ.108
अङ्कधारणा	पृ. 30	अलङ्करण	पृ. 112
अङ्गुलीमानम्	पृ. 33	अलजचित्	पृ. 112
अच्छावाक	पृ. 36	अलेख	पृ. 112
अच्छावाकचमस	पृ. 36	अवधूनन	पृ. 115
अञ्जलि	पृ. 40	अवभृथ	पृ. 115
अतिक्रमण	पृ. 41	अवान्तरेडा	पृ. 117
अतिग्राह्य	पृ. 41	अंशु (ग्रह)	पृ. 1
अत्याधा	पृ. 47	अषाढा	पृ. 121
अत्सरुक	पृ. 48	अंसाभिमर्शन	पृ. 3
अदाभ्य	पृ. 48	असिद	पृ. 123
अधरमूलम्	पृ. 49	आकर्षफलक	पृ. 126
अधरारणि	पृ. 50	आक्रमण	पृ. 126
अधिवृणक्ति	पृ. 52	आग्नीध्र चमस	पृ. 128
अधिश्रयण	पृ. 52	आघार	पृ. 130

आचमन	पृ. 130	उपसर्जनी	पृ. 175
आज्यग्रहण	पृ. 132	उपस्तरणम्	पृ. 175
आज्यस्थाली	पृ. 133	उपाकरण	पृ. 177
आज्यावेक्षण	पृ. 134	उभयतः प्रउग	पृ. 178
आज्येडा	पृ. 134	उभयतस्तीक्ष्णा	पृ. 178
आदित्यग्रह	पृ. 136	उभयतोमुख	पृ. 179
आप्यायन	पृ. 138	उलपराजि	पृ. 179
आश्विन (ग्रह)	पृ. 145	उलूखल-मुखल	पृ. 179
आसन्दी	पृ. 145	ऋतुपात्र	पृ. 120, 184
आहवनीय	पृ. 147	ब्राह्मणाच्छंसिन-चमस	पृ. 187
इडापात्र	पृ. 149	ऐन्द्रवायवग्रह	पृ. 190
इडापात्री	पृ. 150	ओवीली	पृ. 191
इडोपाह्वान	पृ. 151	औदुम्बरी	पृ. 192
इध्मबर्हिराहरण	पृ. 151	औपासन	पृ. 193
इध्मसन्नहन	पृ. 152	कङ्कचिति	पृ. 194
इष्टका	पृ. 153	कपाल	पृ. 196
इष्टिपरिवेष	पृ. 154	कपालोपधान	पृ. 196
सोमशकट	पृ. 156	कुशा	पृ. 205
उखासम्भरण	पृ. 157	कूर्च	पृ. 206
उख्यासन्दी	पृ. 158	कूर्मचिति	पृ. 206
उत्तरारणि	पृ. 50	कृष्णविषाणा	पृ. 207
उत्तराक्षाभ्यञ्जनम्	पृ. 160	कृष्णाजिन	पृ. 208
उत्पवन	पृ. 161	केशवपन	पृ. 208
उदिङ्गन	पृ. 163	क्षुल्लकाभिषवण	पृ. 211
उद्गातृ चमस	पृ. 164	ग्रावस्तुत्	पृ. 220
उद्धरण	पृ. 165	चक्र	पृ. 223
उपभृत्	पृ. 169	चमसाध्वर्यु	पृ. 227
उपयमनी	पृ. 170	चषाल	पृ. 228
उपर	पृ. 171	चात्र	पृ. 230
उपविष्टहोम	पृ. 172	चात्वालकरण	पृ. 230
उपवीत	पृ. 173	जान्वक्र	पृ. 237
उपवेष	पृ. 173	जुहोति	पृ. 238

त्सरुक-चमस	पृ. 227	प्रमन्थ	पृ. 309
तानूनप्त्र	पृ. 242	प्रवर्ग्य	पृ. 310
त्र्यम्बकेष्टि	पृ. 247	प्रवर्ग्यसंभार	पृ. 310
दक्षिणाग्नि	पृ. 248	प्रवर्ग्योद्वासन	पृ. 311
दधिग्रह	पृ. 249	प्रशास्तृ-चमस	पृ. 311
दर्भपुञ्जील	पृ. 250	प्रसर्पण	पृ. 312
दर्वी	पृ. 250	प्रह्व (मैत्रावरुण)	पृ. 314
दशापवित्र	पृ. 251	प्रातरनुवाक	पृ. 315
दृषद् - उपला	पृ. 172	प्राशित्रपात्र	पृ. 317
देवतीर्थ	पृ. 255	प्रोक्षणी	पृ. 318
द्रोणकलश	पृ. 257	फलक	पृ. 263
द्रोणचिति	पृ. 257	फलीकरण पात्र	पृ. 319
धवित्र	पृ. 259	ब्रह्मन् ऋत्विज्	पृ. 322
धिष्णय	पृ. 260	ब्रह्मतीर्थ	पृ. 243
नाभि	पृ. 263, 265	ब्रह्मचमस	पृ. 323
निग्राभ्या	पृ. 267	ब्राह्मणाच्छासि-चमस	पृ. 324
निराञ्छन	पृ. 269	मण्डूककर्षण	पृ. 327
नीड	पृ. 271	मधुपर्क	पृ. 328
नेष्टृचमस	पृ. 272	महावीर	पृ. 331
पत्नीसंयाज	पृ. 278	मेक्षण	पृ. 336
परिप्लवा	पृ. 283	मैत्रावरुणाग्रह	पृ. 337
पशुबन्ध	पृ. 289	यजति	पृ. 338
पितृतीर्थ	पृ. 243	यजमान-यजमानपत्नी	पृ. 338
पित्र्या	पृ. 294	यजमान-चमस	पृ. 338
पुरोडाश	पृ. 296	यूपवृक्ष	पृ. 342
पोतृ	पृ. 300	यूप	पृ. 343
पोतृ-चमस	पृ. 300	यूपावटीय	पृ. 343
प्रणीता-प्रणयन	पृ. 302	योक्त्र	पृ. 344
प्रतपन	पृ. 303	रथचक्र	पृ. 231
प्रतिगर	पृ. 303	रथचक्रचिति	पृ. 345
प्रतिसरबन्ध	पृ. 306	राजासन्दी	पृ. 347

रुक्म पृ. 348
रुद्राभिषेक पृ. 348
रौहिणकपाल पृ. 349
वपा पृ. 352
वरुणप्रधास उत्तरवेदी पृ. 353
वसोर्धारा पृ. 355
वाजपेय सामन् पृ. 356
वाजपेय-रथस्पर्धा पृ. 356
विपुड्होम पृ. 362
विष्टुति पृ. 365
वेदस्तरण पृ. 368
वेदि-परिग्रह पृ. 368
वेदिमानम् पृ. 369
शफ पृ. 376
शमीगर्भ पृ. 377
शम्या पृ. 377
शाखापवित्र पृ. 379
शूर्प पृ. 382
श्येनचिति पृ. 384
षडवत्त पात्र पृ. 386
सख्यविसर्जन पृ. 391
सङ्कल्प पृ. 391
सदस्य चमस पृ. 394
सामिधेनी पृ. 407
सुब्रह्मण्य पृ. 409
सोमभक्ष पृ. 325
स्फ्य पृ. 415
स्रुक्-सम्मार्जन पृ. 416
स्रुच् पृ. 416
स्रुग्व्यूहन पृ. 373
स्रुव पृ. 416
स्वयमातृण्णा पृ. 417
सोमविक्रयिन् पृ. 411
हविर्धान-मण्डप पृ. 419
हविर्निर्वपण पृ. 420
हारियोजन ग्रह पृ. 421
होतृचमस पृ. 422
होतृ पृ. 423

अ

अ पु. संस्कृत वर्णमाला का प्रथम वर्ण [विशेषतया तीन दिन तक चलने वाले सोम-याग (त्रिरात्र) के प्रथम दिन आज्य स्तोत्र में 'अग्न आयाहि वीतये' ऋ.वे. 6.16.10 के आरम्भ में उच्चरित किया जाता है (पश्चाद्वर्ती = बाद वाले दो दिन में अर्थात् दूसरे एवं तीसरे दिन 'क' एवं 'हो' के साथ उच्चारित होता है, ऋ.वे. 8.84.4 एवं ऋ.वे. 3.27.7) ''एषा उ वा प्रत्यक्षं वाग् यज्जिह्वाग्रेण एतद्वाचो वदति यद् 'अ' इति'', पञ्च. ब्रा. 20.14.3।

अंश पु.1 अ. भाग (देवों, पितरों एवं मनुष्यों के लिए नियत) ऋ.वे. 10.31.3; अ.वे. 11.1.5;1 ब. पशु-भाग, बौ.श्रौ.सू. 2.11; 15 (दक्षिणा के रूप में देय) 2. सात आदित्यों में एक का नाम, ऋ.वे. 2.27.1, अ.वे. 6.4.12; काठ.सं. 11.12; वा.सं. 34.54; उन देवताओं में सम्मिलित, जिन्हे वाजपेय-याग में परवर्ती 'पार्थ आहुतियां प्रदान की जाती हैं, तै.सं. 1.8.13.3; काठ.सं. 15.7; 10.5; श.ब्रा. 5.3.5.9; 49 सवन दिनों वाले अतिरात्र का अनुष्ठान करने वाला इस देवता (अंश) के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, आप.श्रौ.सू. 23.7.5; हिरण्य.श्रौ.सू. 18.3.2; वह 'अग्न्याधेय' के समय अग्निमन्थन से सम्बद्ध है, मै.सं. 1.6.12; तै.ब्रा. 1.1.9.2; अन्त्येष्टि के समय इसे एक घृताहुति प्रदान की जाती है, वैखा.गृ.सू. 5.2.2; 3; 82 अक्षरों वाले एक वैदिक छन्द का नाम, ऋ प्रा. 17.4; निदा.सू. 105.20।

अंशदाह पु. (यज्ञीय पुरोडाश के) एक भाग को अतिशय जलाना, न्यायमञ्जरी विव. 331.23 (विव. 4.5 पर)।

अंशप्रास पु. अक्षक्रीडा में (द्यूत में) एक प्रक्षेप, जिसका नामकरण देवता 'अंश' के नाम के आधार पर हुआ है (अग्न्याधान के कृत्यों में अन्तः समाहित); 'अंशप्रासो अंशस्य भागधेयम्' मै.सं; अंश का प्रक्षेप; पी.वु. (पीटर्सबर्ग वुर्टरबुख)।

अंशु पु. सोम-लता का डण्ठल, ऋ.वे. 1.91.17; वा.सं. 12.114; बौ.श्रौ.सू. 7.5; 24 (1.206.9); का.श्रौ.सू. 9.4.20; वा.श्रौ.सू. (AO.06.215); आप.श्रौ.सू. 12.9.10; 2. सोमकण, सोम की टहनियों का कण, ऋ.वे. 10.17.12; तै.सं. 3.1.10.1; आप.श्रौ.सू. 12.11.10; 3. सोमरस, ऋ.वे. 7.98. 1. (सोमलता को कूटने से प्राप्त); 2. एक वर्गाकार सोम-पात्र का नाम, जो लकड़ी से निर्मित होता है और जिसके ऊपर के आधे भाग पर चारों ओर सोने के वलय से चिह्न बनाया जाता है (अङ्कित किया जाता है), तै.सं. 3.3.4.3; श.ब्रा. 4.1.1.2; भा.श्रौ.सू. 13.8.17; 13.9.1-10; का.श्रौ.सू. 12.5.7. प्याले को सोमरस से आपूरित कर विशिष्ट सोम-याग में अर्पित किया जाता है, जिसमें यजमान की सभी वस्तु (सम्पत्ति) 'विश्वजित्' याग के समान दक्षिणा के रूप में दे दी जाती है (का.श्रौ.सू. 22.1.9); वाजपेय, राजसूय एवं सत्र में भी इसे अर्पित किया जाता है। (श.ब्रा. 4.6.1.15; बौ.श्रौ.सू. 14.12; आप.श्रौ.सू. 12.8.13) इसके आहरण की प्रक्रिया निम्नवत् है।

अंशु

प्रक्रिया—वह एक प्याले भर के लिए 'सोम की डण्ठल को सवन-फलक (सिल) पर लेता है। इसके अनन्तर वह सवनार्थ प्रस्तर को मौन होकर लेता है। वह उसपर मौनपूर्वक वसतीवरी (संज्ञक) जल को उड़ेलता है। मौनपूर्वक प्रस्तर को उठाकर वह एक बार दबाता है; मौनपूर्वक वह इस आहुति को प्रदान करता है; अर्थात् 'अंश' नामक प्याले में लिये गये सोम को बिना साँस लिये—प्याला स्वर्णपट्टिका से ढक दिया जाता है (बौ.श्रौ.सू. 14.12)। राम औपताश्विनि इस अवसर पर स्वतन्त्र श्वास-निःश्वास (साँस लेने एवं छोड़ने) का विधान करते हैं; बुदिल आश्वतराश्वि का मत है कि केवल सवन-प्रस्तर

(निचोड़ने के पत्थर) को ही उठाना चाहिए। किन्तु आघात नहीं हो, किन्तु याज्ञवल्क्य ऋग्वेद के प्रामाण्य के आधार पर इस क्रिया को अमान्य ठहराते हैं (ऋ. 7.26.1); श.ब्रा. 4.6.1.3-10; बौ.श्रौ.सू. (14.12) प्रतिपादित करता है कि प्याले को भरते समय मन में 'वामदेव्य साम' या इसकी ऋचाओं का पाठ किया जाना चाहिए और यह कि 'प्रजापतये त्वा' इस मन्त्र का मध्य में बिना श्वास लिये पाठ किया जाना चाहिए। वह इसे 'प्रजापतये त्वा' इस मन्त्र के साथ अर्पित करे। वह अर्पणानन्तर एक स्वर्ण खण्ड को सूंघता है। इस प्याले को दधि एवं अदाभ्य प्यालों के अनन्तर अर्पित किया जाता है (चिन्न स्वामी, P. 67)। आप.श्रौ.सू. 12.7.17, के अनुसार प्रथमतया अंशु अथवा अदाभ्य प्याले को समर्पित किया जाता है, तब दूसरे का क्रम आता है। आहुति-दान के अनन्तर प्याले को सदस् (मण्डम) में शेष-भक्षणार्थ होतृ के पास लाया जाता है। श.ब्रा. 4.6.1 के अनुसार यदि अदाभ्य को पहले अर्पित किया जाता है, तो उसी प्याले का अंशु के आहरण के लिए उपयोग होता है। यह कृत्य का प्रारम्भ है, जब इसको लिया जाता है। इस प्याले के लिए (संकर्षण के लिए) पहली बार गर्भिणी हुई गायें एवं स्वर्णखण्ड जो पचीसवां होता है, दक्षिणा है (अर्थात् 12 गायें + उनके गर्भ में पल रहे 12 बच्चे = स्वर्णखण्ड + 25; बौ.श्रौ.सू. 14.12।

अंशुग्रह पुं, (अंशौ ग्रहः) 'अंशु'संज्ञक पात्र में सोमरस को भरना एवं 'उत्तरवेदि' पर अग्नि में आहुति देना। यह प्रथम सोमपात्र है जिसको विशिष्ट सोमयाग में आहरित किया जाता है। कुछ पाठभेद इस आहरण के विकल्प का विधान करते हैं। बारह दुधारु गायें अथवा चार वर्ष की 12 बछिया इस कृत्य की दक्षिणा हैं, वै.श्रौ.सू. 15.11.12; बौ.श्रौ.सू. 14.12।

अंशुग्रहण न. (अंशुः गृह्यतेऽनेन) सोम के डण्डल को नापते समय दाहिने हाथ (अंगुलि) में रखा गया सोने का एक टुकड़ा बौ.श्रौ.सू. 6.10.6; चित्रभानु सेन के अनुसार 'सोम के डण्ठल को नापने का बर्तन'; संस्कृत डिक्शनरी डेकन कालेज (पूना) में इसे विशेषण माना गया है। जिसका अर्थ है 'सोम की टहनी को लेने के लिए अभिप्रेत'; तु.श्रौ.को. (अंग्रेजी) I P. 401।

अंशुचमस पुं. (अंशुपूर्णः चमसः) विना दबाये (निचोड़े) गये सोम के डण्ठल से भरा एक पात्र (जिसे ऋतपेय याग की दक्षिणा के रूप में प्रदान किया जाता है); का.श्रौ.सू. 22.8.21-23 (अनभिषुत-सोमखण्डपूर्ण चमसम्)।

अंशुनिधान न. (अंशोः निधानम्) सोम खण्डों को सङ्ग्रहीत करना (सोमपात्र में) [आहुति-अर्पण के अनन्तर अन्तर्याम' पात्र को, इसमें बिना सोम की टहनी को डाले ही वापस रख दिया जाता है। यह उपांशु पात्र से भिन्न है (इसकी प्रक्रिया उपांशु पात्र की तरह नहीं है) वै.श्रौ.सू. 15.12.9; तुल.श्रौ.को. (अं.) पृ. 412।

अंशुनिवपन न. (अंशोः निवपनम्) 'अंशु' पात्र को भरने के लिए सोमरस को निकालने के लिए सम्पूर्ण मात्रा से कुछ सोम खण्डों को (उस) सवन-फलक (पात्र) पर लेना (जो अधिषवण चर्म से आच्छादित होता है) का.श्रौ.सू. 12.5.9 (अंशूनामधिषवणोपरि निनयनम्, स.वृ.)।

अंशुपरिप्लावन न. (अंशोः परिप्लावनम्) 'उन्नेतृ' द्वारा संभाले गये होतृचमस (होता के प्याले) में सोम-सवन के समय 'अध्वर्यु' एवं 'प्रतिप्रस्थातृ' द्वारा जल उड़ेलना। [उन्नेतृ (उन्नेता) अध्वर्यु के 'आहर' एवं 'उपसृज' जैसे निर्देश पर होता के पानपात्र को संभालता है एवं 'अध्वर्यु' आदि 'प्रागपाग' आदि मन्त्रों के साथ जल उड़ेलते हैं], श्रौ.प.नि. 272.286; तुल.श्रौ.को. (अंग्रेजी) II पृ. 410, 412।

अंशुपात्र न. एक वर्गाकार, काष्ठनिर्मित विशेष सोमपात्र को 'अंशु' कहा जाता है; [इसमें भरे गये सोमरस को प्रजापति को समर्पित किया जाता है] बौ.श्रौ.सू. 14.12।

अंशुमत् वि. (अंशु + मतुप्) सोमलता के प्रयोग से युक्त। [सोमयाग के प्रथम दो सोम सवन, जिन्हें प्रातः सवन एवं माध्यन्दिन-सवन के नाम से जाना जाता है, को मुख्यतया सोम डंठल के प्रयोग से युक्त माना गया है, प.ब्रा. 8.4.1; तृतीय अर्थात् सायं सवन के समय सोम के निष्यन्दित टहनी के साथ अन्य तत्त्वों का भी मिश्रण होता है] तै.सं. 3.2.2।

अंशुवत् अव्य. (अंशु + वति) जैसा कि सोमरस के 'अंशु' आहुति की स्थिति में, का.श्रौ.सू. 12.5.19, [अदाभ्य प्याले की दक्षिणा एवं दशपेय में ब्रह्मसंज्ञक ऋत्विक् के लिए दक्षिणा वही होती है, जो अंशु प्याले की अर्थात् 12 गायें] का.श्रौ.सू. 15.8.22।

अंश्वदाभ्याहरण न. (अंशोः अदाभ्यस्य च आहरणम्) 'अंशु'-संज्ञक एवं अदाभ्य-संज्ञक प्यालों में सोमरस का भरना,

का.श्रौ.सू. 12.5.6. [वैभव की कामना वाले यजमान की स्थिति में 'अध्वर्यु' 'अदाभ्य' प्याले का आहरण करता है (का.श्रौ.सू. 12.5.13) इस प्याले के आहरण कि प्रक्रिया निम्नवत् है; मौनपूर्वक 'वसतीवरी'-संज्ञक जल को होतृ के प्याले में उड़ेलने के बाद अध्वर्यु सन्नद्ध सोम से आधाव मन्त्र से सोम की 3 टहनियों से इसे सज्जित करता है। वह पुन: तीनों टहनियों को अदाभ्य प्याले में रख देता है और चिनी गई अग्नि की वेदीके अंस (स्कन्ध-कन्धा) तक ले जाता है]।

अंस पु. स्कन्ध [कन्धा (वेदि का)], श्रौ.प.नि. 6.29-30; 26.217।

अंसाभिमर्शन

असदघ्न वि. (अंस + दघ्नच्) कन्धे के बराबर गहरा (गड्ढा या छिद्र), मै.सं. 1.2.10; भूमि से उपर कन्धे के बराबर ऊँचा, श.ब्रा. 14.1.3.10 (आसन्दी); मा.श्रौ.सू. 2.2.2.28 (स्थूण); (अधिकरण सप्तम्यर्थ) कन्धे की बराबरी पर, वा.श्रौ.सू. 1.4.3.13।

अंसदेश (अंसस्य देश:) (वेदि का) स्कन्ध-प्रदेश [कन्धे का क्षेत्र] का.श्रौ.सू. 2.2.17 इष्टि में प्राशित्र-हरण की अवस्थिति के रूप में इसका विधान करता है, ब्राह्मण को जब यह (प्राशित्र) दिया जाता है, तो वह उसका तुरन्त भक्षण नहीं कर लेता।

अंसद्री स्त्री. पाक-पात्र (पकाने का बर्तन) जिसके दोनों तरफ हत्था हो। अ.वे. 11.1.23 (भाष्य. अंशध्री)।

अंसोच्चल पु. (अंसस्य उच्चल:) कन्धे की चपटी हड्डी, स्कन्ध-शिखर [आलभ्य पशु का (आलभ्य पशु के स्कन्ध-शिखर का सोम याग में अञ्जन होता है)] आप.श्रौ.सू. 7.14.2; तु. हि. श्रौ.सू. 4.3.25 अंसोच्चार।

अंहस् न. त्रुटि अथवा दोष (यज्ञीय अनुष्ठान में), कौषी.ब्रा. 26.4।

अंहसस्पति पु. विपत्ति का स्वामी [पापाधिपति (अन्तर्वेशी मास = अधिमास का नाम)] सैशिर ऋतुग्रह के अन्तर्गत 'तपस्य' के अनन्तर उसके निमित्त एक आहुति प्रदान की जाती है, वा.सं 7.30; 22.31; श.ब्रा. 4.3.1.20।

अंहस्पत्य पु. दु:खाधिपति [सूर्य के दो संक्रमण (याम्योत्तरगमन) से युक्त मास का नाम]; चातुर्मास्य याग के शुनासीरीय पर्व के समय इसको एक कपाल पर अर्पणीय वस्तु दी जाती है; तै.ब्रा. 1.4.14.1; 6.5.3.4; मै.सं. 3.12.13, आप.श्रौ.सू. 8.20.8, भार.श्रौ.सू. 8.24.7; मा.श्रौ.सू. 2.4.2.3 के अनुसार द्वितीय ऋतुग्रह सोमयाग के समय प्रतिप्रस्थातृ (प्रतिप्रस्थाता) के द्वारा इस देवता को अर्पित किया जाता है।

अंहीयस् वि. (अंहस् + ईयसुन्) लम्बाई में छोटा बौ.शु.सू. 1.41।

अकपालम् क्रि.वि. बिना पक्व कपाल के (प्रयोग के बिना); 'भूमौ अकपालं पुरोडाशं श्रपयेत्' (टीका-अकपालमिति वचनात् भूमिकपालमिति अवचनाच्च कपालधर्मरहितायां भूमौ पुरोडाशं श्रपयति), आप.श्रौ.सू. 9.15.2।

अकरण वि. (अविद्यमाने करणे प्रयोग: यस्य) (वेदमन्त्र) जो किसी विशेष कृत्य के अनुष्ठान के समय प्रयोग में नहीं लाया जाता, आप.श्रौ.सू. 4.1.3 (धू. ये दूरस्था: क्रियायास्ते अकरणा:)।

अकराल वि. (न करालः) अबहि:क्षिप्त (बाहर न निकले हुए) दाँतों वाला ('उद्गातृ' नाम के पुरोहित की अर्हता अथवा गुण), बौ.श्रौ.सू. 2.3 (अकुनखिनमध्वर्युम् अकिलासिनं ब्रह्माणम् अखण्डं होतारम् अकरालम् उद्गातारम्)।

अकर्णगृहीता वि. (न कर्णेषु गृहीता) (स्त्री.) खींचने अथवा घसीटने के लिए जिसका कान नहीं पकड़ा गया हो आप.श्रौ.सू. 10.22.9 (वह गाय जिससे सोम राजा का क्रयण होता है)।

अकर्मन् (अविद्यमानं कर्म यस्य) वि. जो व्यक्ति (यज्ञ का अनुष्ठान) नहीं करता है, ऋ.वे. 10.22.8।

अकल्माषी वि. (स्त्री.) (न कल्माषी, नञ् + कल्माष + ङीष्, अन्यतो ङीष्, पा. 4.1.40) (कुदाल) जो रक्ताभ (लाली

लिए हुए) एवं बभ्रु (भूरा) न हो, का.श्रौ.सू. 16.2.5 (चयन); देवयाप्यकल्माषी स्वभावतः परिपाकवशात विचित्रवर्णा; विद्या, परिपाकवशात् कर्बुरवर्णा; मा.श्रौ.सू. 1.1.1.36 (गेल्ड. निष्कलङ्क = बेदाग); श.ब्रा. 6.3.1.31 सायं.- कल्माषा (कृष्णबिन्दुचिह्ना) कलित- वेणुमयी; इग्गिलंग (धब्बाविहीन) कौशि.सू. 86.14; अग्नि.गृ.सू. 2.3.8.8; दर्भ-घास, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.36।

अकाम वि. (नास्ति कामः यस्मिन् यस्य वा) जो कोई विशेष कामना (जिसकी पूर्ति यज्ञानुष्ठान से अपक्षित हो) नहीं रखता हो तै.सं. 3.2.8.3।

अकामम् क्रि.वि. बिना किसी आशय के, बिना जाने; (सदोष विधि से यज्ञानुष्ठान) ऐ.ब्रा. 15.2; कौशी गृ.सू. 3.9.47।

अकामविच्छिन्न वि. (अकामं विच्छिन्नः) बिना आशय के विशृङ्खलित, मा.श्रौ.सू. 1.6.5.13।

अकामसंज्ञपन न. (अकामं संज्ञपनम्) (व्यापाद्य = शिकार को) बिना आशय के मारना आप.श्रौ.सू. 9.18.6; हिरण्यः श्रौ.सू. 15.8.9 [टीका. व्याध्यादिना मरणम् (रोगादि से मरना)।

अकार पु. संस्कृत वर्णमाला (वर्ण समाम्नाय) की (प्रथम) ध्वनि (वर्ण) औकारो वषट्कारे चतुर्मात्रः षकारश्च उत्तरो अकारः शा.श्रौ.सू. 1.2.14, 17; अधोऽङ्कित 'स्तोभ' के अङ्ग (अंश, भाग) के रूप में भी उच्चरित होता है, 'एकैकं मनसाक्षरं स्तोभैर्वाचा संयुञ्ज्यात् प्रथमस्वरैरकारैर्भकारादि-भिरकारान्तैर्द्वितीय-स्वरोत्तमाः ला.श्रौ.सू. 1.9.12।

अकाल पु. (अधि.) क्रि.वि. नियत समय (अथवा दिन) विना, अर्थात् ऋतुकाल (मासिक-धर्म के) के अनन्तर, ऐ.बा. 30.7 (786); मा.श्रौ.सू. 2.1.2.38, 3.1.7.2.15.14; मा.श्रौ.सू. 8.23.6।

अकाषाय वि. (न कषायम्) अरक्त, अगैरिक (जो गेरुये रंग का न हो (ब्रह्मचारी के पहनावे का रंग) कौशि.सू. 57.15।

अकितव पु. (न कितवः) अद्यूतकर (जो जुआरी न हो) वा.सं. 30.8; तै.बा. 3.4.5.1।

अकिलास वि. (न विद्यते किलासः यस्य) कुष्ठमुक्त, पञ्च.ब्रा. 23.16.12 तुल. अकराल।

अकिलासिन् वि. (अ + किलास + इनि) जो कुष्ठ से प्रभावित न हो ('ब्रह्मा' नामक ऋत्विक् की अयोग्यता = अवगुण के रूप में निरूपित) बौ.श्रौ.सू. 2.3.8।

अकुनखिन् वि. (न सन्ति कुत्सिताः नखाः यस्य) विद्रूप = कुत्सित नखों से रहित ('अध्वर्यु'-संज्ञक ऋत्विक् की अयोग्यता = अवगुण के रूप में निरूपित), बौ.श्रौ.सू. 2.3.7।

अकुशल (न कुशलः) अदक्ष [जो कुशल न हो (यज्ञीय-अनुष्ठान की कला में)] गो.ब्रा. 1.1.13; न. त्रुटिपूर्ण यज्ञीय अनुष्ठान, पापपूर्ण कृत्य; क्रि.वि. अक्षम, मा.श्रौ.सू. 7.2.7.12।

अकुष्ठिपृषत् वि. जो कोढ़ग्रस्त एवं धब्बेदार न हो, आ.श्रौ.सू. 4.9.4 (आलभ्य पशु के बारे में कथित)।

अकूटा वि. (आलभ्य-वध्य पशु) जो एक शृंग (सींग) से युक्त न हो अथवा जिसके पास अभग्न (न टूटे हुए) एवं अवक्र सींगे हों, श.ब्रा. 3.3.1.16; आप.श्रौ.सू. 10.14.19; 10.17.12; मो.वि. जिससे मस्तक पर कोई उभार न हो।

अकूधीची स्त्री (बहु.) ऋग्वेद के पद्यों (मन्त्रों) के विशिष्ट वर्ग (समूह) का नाम (1.120.1-9) 'का राधद्' आदि प्रवर्ग्य में प्रयुक्त, कौषी.ब्रा. 8.5; 18.4 आश्विनशस्त्र के प्रसङ्ग में; तु.श्रौ.को. (सं) II, 1 पृ 87।

अकूपतोय न. (न कूपतोयम्) कूप (कुँए) से अगृहीत जल, अग्निवे. गृ.सू. 1.7.4; हि.श्रौ.सू. 1.8.18।

अकूपारा स्त्री. अङ्गिरस् की एक स्त्री वंशज का नाम। पञ्च.ब्रा. 9.2.14।

अकूर्मपृषत् वि. (कूर्म इव पृषत् = कूर्मपृषत्, न कूर्मपृषत्) जो कच्छप (उसकी पीठ) की तरह धब्बेदार न हो, आप.श्रौ.सू. 2.11.3; भा.श्रौ.सू. 2.11.4।

अकूल न. (न कूलम्) (वह) स्थान जो किसी नदी का किनारा न हो, जै.गृ.सू. 2.5; 30.11; (आहिताग्नि की स्थिति (विषय) में उसकी पत्नी की मृत्यु की घटना के समय 'उदककरण' के अनुष्ठान के लिए ऐसा स्थान विहित है।)

अकृत वि. (नञ् + कृ + क्त) 1. अननुष्ठित, श.ब्रा. 14.4.2.28

2. अनिर्मित (ईंटें) आ.श्रौ.सू. 16.13.2;

3. न पकायी हुई, कच्ची (हविष्) गो.गृ.सू. 1.3.6; 7; द्रा.गृ.सू. 1.5.10, 4, अवितुषीकृत [जिसकी भूसी न निकाली गयी हो (हविरन्न अर्थात् धान)] वैज.को. 91.97।

अकृतचित्रायाग वि. (न कृतः चित्रायागः येन सः) जिसने चित्रायाग का अनुष्ठान न किया हो, न्या.मं, 1.152.9; (चित्रा याग के विस्तृत विवरण के लिए तै.सं. 2.46.6 देखें; (इस इष्टि के साथ सात प्रधान आहुतियां हैं : 1. अग्नि के लिए,

2. सौम्य चरु, 3. 'त्वष्टृ' के लिए, 4-5. दो आहुतियां सरस्वती के लिए, सिनीवाली के लिए एवं अन्तिम इन्द्र के लिए। इस इष्टि का अनुष्ठान पशुसम्पन्नता को प्राप्त करने के लिए किया जाता है); तु.श्रौ.को (सं) I 338; (सं) I पृ. 333।

अकृतचूड वि. (न कृता चूडा यस्य सः) जिसका चूडाकरण (शिरोमुण्डन) संस्कार न हुआ हो, म.स्मृ. 5.67।

अकृतचूडक वि. (स्वार्थे कन्) जिसका 'चूडाकरण' संस्कार न हुआ हो, शांखा. स्मृ. 15.5।

अकृतचूडाकरण वि. (न कृतं चूडाकरणं यस्य सः) जिसका 'चूडाकरण' संस्कार नहीं हुआ है, हारलता 168.17।

अकृतचौल वि. (न कृतं चौलं चूडाकर्म यस्य सः) जिसके बाल सांस्कारिक विधि से नहीं काटे गये हैं, स्मृ.च. 6.24.1, 6.18.14।

अकृतदारविधि न वि. (न कृतः दारविधिर्येन सः) जिसने पत्नी-ग्रहण के कृत्य को सम्पन्न नहीं किया है, अविवाहित, रामा.मञ्ज. 122.2।

अकृतदाराग्निपरिग्रह वि. (न कृतः दाराणाम् अग्नेश्च परिग्रहः येन सः) जिसने सांस्कारिक विधि से न तो विवाह किया हो और न ही 'अग्न्याधान', मन्वर्थवि. 1373.17 (11.60 पर)

अकृतदीक्ष वि. (न कृता दीक्षा यस्य सः) अदीक्षित (जिसकी दीक्षा न हुई हो) भास्क. 2.90.8 (2.3.2 पर)।

अकृतनवयज्ञ वि. (न कृतः नवयज्ञः येन सः) जिसने 'नव यज्ञ' का अनुष्ठान न किया हो, नवयज्ञ = प्रथम फलों का देवताओं की आहुति के रूप मे अर्पित करना, इसे आग्रयणेष्टि भी कहते हैं, स्मृ. च. 2.416.13।

अकृतप्रथमयज्ञ वि. (न कृतः प्रथमः यज्ञः येन) जिसने अभी तक प्रथम (सोम) यज्ञ का अनुष्ठान नहीं किया है, रुद्रदत्त. आप. श्रौ.सू. 9.12.11 पर।

अकृतप्रातराश वि. (न कृतः प्रातराशः येन) जिसने कलेवा नहीं किया हो (जिसने सुबह का नाश्ता नहीं किया है) (स्नानार्थ गमन तदनन्तर वेदाध्ययन प्रारम्भ करने के लिए बाध्यकारी स्थिति-शर्त) आप.गृ.सू. 1.11.23।

अकृतप्रायश्चित्त वि. (न कृतं प्रायश्चित्तं येन) जिसने प्रायश्चित्त-कर्म को सम्पादित नहीं किया है, विष्णु स्मृ. 43.23; (एक कृत्य) जिसके लिए कोई प्रायश्चित्तकर्म अनुष्ठित नहीं होता, ब्र.सू.भा. (रा.) 572.6 (3.1.8 पर)।

अकृतब्रह्मयज्ञ वि. (न कृतः ब्रह्मयज्ञः येन) जिसने ब्रह्मयज्ञ (जिसमें वैदिक-पाठ्यों के कुछ अंशों का पाठ निहित है) का अनुष्ठान नहीं किया है बालम.भा. 1.343.26, (101 पर); (ब्रह्मयज्ञ—वैदिक निवित्; सन्ध्या-कर्म में वेदों के अंशों का पाठ; पञ्च महायज्ञों में एक) मनुस्मृति 3.69-70; हि.आ.धर्म. II. 698 PP।

अकृताधान वि. (न कृतम् आधानं येन सः) जिसने पवित्र अग्नि को स्थापित नहीं किया है म.स्मृ.भा. 1.281.13. (3.161 पर); स्मृ.च. 1.73.12; आधान के लिए देखें श्रौ.को. (सं.) 1.34.54।

अकृतान्वाधान वि. (न कृतम् अन्वाधानं येन सः) जिसने 'अन्वाधान' का अनुष्ठान नहीं किया हो (ऋग्मन्त्रों के साथ प्रत्येक पर तीन-तीन करके गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीय अग्नि पर क्रमशः समिधायें रखना एवं दशवें मन्त्र के साथ आहवनीय से प्रार्थना करना) स्मृ.च. 5.410.15; अन्वाधान के लिए देखें का.श्रौ.सू. 2.1.2-5।

अकृतावसथ्य वि. (न कृतः आवसथ्यः येन सः) जिसने 'आवसथ्य'-नामक पवित्र अग्नि को स्थापित नहीं किया है (गृह्य ?) तुल.श्रौ.को. (अं) 1.पृ.31; पा.गृ.सू. 1.2.1-13।

अकृताह्निक वि. (न कृतम् आह्निकं येन सः) जिसने दैनन्दिन कृत्यों को अनुष्ठित नहीं किया है, म.भा. 2.273.17।

अकृतोदक वि. (न कृतम् उदकं यस्मै) जिसे जल नहीं प्रदान किया जाता वशि.ध.सू. 11.21; स्मृ.च. 5.405.3।

अकृत्वा (अ + कृ + क्त्वा) अनुष्ठान न करके, (कृत्यों का) बिना अनुष्ठान किये मै.स. 4.3.2; ऐ.ब्रा. 5.30.34; श.ब्रा. 9.5.2.13; का.गृ.सू. 1.1.32; 2 पाठ न करके, बिना पाठ किये आप.श्रौ.सू. 10.2.7।

अकृत्स्न (अ + कृत्स्ना) (स्त्री. आ) अपूर्ण (यजन एवं यज्ञीय अनुष्ठान) गो.ब्रा. 2.2.17; श.ब्रा. 10.5.3.8।

अकृत्स्नत्व न. पूर्णता का अभाव (अपूर्णता) आ.श्रौ.सू. 8.13.32।

अकृत्स्नसंस्थ वि. (न कृत्स्ना संस्था यस्य सः) जो समग्ररूप से पूर्ण न हो, अपूर्ण (सोमयाग) मा.श्रौ.सू. 2.2.1.23; पु. एक अपूर्ण (सोमयाग) मा.श्रौ.सू. 2.2.1.23।

अकृमिपरिसृप्त वि. (न कृमिभिः परिसृप्तः) कीट-पतंगों से न भरा हुआ, गो.गृ.सू. 2.6.6। कीट-पतंगों से अबाधित।

अकृष्ट वि. (अ + कृष् + क्त) न जोता हुआ, आ.श्रौ.सू. 16.19.10.14, हिर.श्रौ.सू. 9.6.44; 11.6.46; 2. अविलम्बित अथवा अविस्तारित (पाठ्य को 'सामस के समय में परिवर्तित करने की स्थिति में) संहि.ब्रा. 3.7; 3.8; न. न जोता हुआ खेत अथवा भूमि तै.सं. 5.2.5.2; श.ब्रा. 7.2.2.5; 7.2.17; 9.1.3; आप.श्रौ.सू. 16.19.10.14।

अकृष्टपच्य वि. (कृष्टे स्वयंमेव पच्यते कृष्टपच्यः सिं.कौ., न कृष्टपच्यः न + कृष्ट + पच् + क्यप्) बिना जोते गये खेत में उठने वाला, न. बिना जोते गये खेत में उगने वाला पौधा, तै.ब्रा. 1.6.1.11।

अक्लृप्त वि. (न क्लृप्तः, नञ् + क्लृप् + क्त) 1. अनियतक्रम से (कृत्य का अनुष्ठान) तै.सं. 3.4.8.3; 3.4.9.3; 5.4.8.5; मै.सं. 3.2.9; 3.4.1; 3.7.1; काठ.सं. 29.10 = कपि. क.सं. 46.6; पञ्च.ब्रा. 22.9.6 = 22.11.5, 22.19.11; श.ब्रा. 1.1.1.8 (अक्लृप्ति) अपूर्ति = अपूर्णता (यज्ञ की) तै.सं. 7.2.1।

अकेतु वि. (अविद्यमानः केतुर्यस्मिन्) बिना झण्डे का (रथ) 'केतुं कृण्वन् अकेतव (तै.सं. 7.6.20.1) 'इति ध्वजम् (अनुमन्त्रयते)' मा.श्रौ.सू. 9.2.3.19 (अश्वमेध)।

अकौद्रेय पु. (न कौद्रेयः) जो कुद्रि कुल का न हो, का.श्रौ.सू. 10.2.20; (दक्षिणा का वितरण; यह दक्षिणा कुद्रि के वंशजों को नहीं दी जाती है) श.ब्रा. 4.3.4.21।

अक्त (स्त्री आ) (अञ्ज् + क्त) (घृत, दुग्ध, दधि अथवा मधु से) लिप्त; लिप्त वस्तुएं : 1. बर्हिष् 2. अरणियां 3. आलभ्य पशु 4. पकाया हुआ भोजन 5. शमी काष्ठ; अ.वे. 7.98 (103) = कौशि.सू. 6.7; तै.सं. 1.3.7.1; वा.सं. 2.16; श.ब्रा. 1.8.3.14; मा.श्रौ.सू. 5.10.2; जै.गृ.सू. 1.4. (4.15); कौशि.गृ.सू. 3.2.2; (पशुभाग को काटने के लिए प्रयुक्त) घृतलिप्त (चाकू) आप.श्रौ.सू. 7.14.13।

अक्तवती स्त्री. (अक्त + मतुप् + ङीप्) लेपन के सन्दर्भ से युक्त (ऋचा), उदा., 'अञ्जन्ति त्वामध्वरे' (ऋ.वे. 3.8.1) 'यूपाञ्जन' के प्रसङ्ग में; एवम् 'अञ्जन्ति यां प्रणयन्तो -- (ऋ.वे. 5.43.7) 'प्रवर्ग्य' के सन्दर्भ में देखें श्रौ.को. (संस्कृ.) 11.87, 202।

अक्त्वा क्रि.वि. (अञ्ज् + क्त्वा), लेप लगाकर 'शरभृषतीः -- -- सर्पिषा अक्त्वा, मा.श्रौ.सू. 23.8; बौ.गृ.सू. 2.5.9; आज्यस्थाल्यां बर्हिः; बौ.गृ.सू. 1.4.36।

अक्र पुं. एक ऋषिकुल (गोत्र) का नाम मा.श्रौ.सू. 11.8.9.4।

अक्रतु वि. (अविद्यमानः क्रतुः क्रतुसन्दर्भः यस्य) बिना यज्ञ (के सन्दर्भ) वाला, आप्टे।

अक्रतुसंयुक्त वि. (स्त्री) (न क्रतुसंयुक्तः) दर्शपूर्णमासादि-सदृश श्रौत-यज्ञों से असम्बद्ध, होमादि से सम्बद्ध, हि.श्रौ.सू. 10.7.27 (दशहोत्र, चतुर्होत्र की विधियों के लिए कथित)।

अक्रम पु. (नञ् + क्रम् + घञ्) एक पग आगे बढ़ने का अभाव, अग्रगमन का अभाव, का.श्रौ.सू. 16.5.12. (उख्याग्नि के साथ विष्णुक्रम)।

अक्रव्याहुति वि. (न क्रव्याहुतिः यस्मिन्) मांसाहुति से रहित, कौशि.सू. 72.32।

अक्रान्त (नञ् + क्रम् + क्त) द्वित्व से रहित, मिथुनभाव से हीन, ला.श्रौ.सू. 2.9.12 = द्रा.श्रौ.सू. 6.1.16।

अक्रि पु. अगस्त्य-गोत्र में एक 'प्रवर' का नाम मा.श्रौ.सू. 11.8.9.8।

अक्रिया स्त्री. (न क्रियते इति, नञ् + कृ + श + क्यप् + टाप, 'कृञः श च', पा. 3.3.100) अनुष्ठान (कृत्य का) आश्व.श्रौ.सू. 5.13.9; का.श्रौ.सू. 6.7.26।

अक्रीत (नञ् + क्री + क्त) वि. न खरीदा हुआ (सोम राजा का डण्ठल) तै.सं. 6.1.10.5; पञ्च.ब्रा. 9.8.5.1; जै.ब्रा. 1.354; तै.ब्रा. 1.4.7.5 = आप.श्रौ.सू. 14.24.9; श.ब्रा. 3.2.4.7।

अक्रीतसोम वि. (न क्रीतः सोमः येन सः) जिसने सोम का क्रयण (खरीदना) नहीं किया है, गो.ब्रा. 1.3.19।

अक्रोध पु. (न क्रोधः, क्रोधस्य अभावः) क्रोध का न होना (दीक्षित याजक का एक आवश्यक गुण), श.ब्रा. 2.2.21.24।

अक्लिन्नवासस् वि. (न क्लिन्नं वासः यस्य सः) भीगे हुए अथवा चिपकाव से युक्त वस्त्र को न पहनने वाला (स्वाध्याय को आगे बढ़ाने वाले के लिए एक शर्त) आश्व.गृ.सू. 3.2.2 = अग्नि.गृ.सू. 2.6.4 (98.15)।

अक्लिष्ट वि. (न क्लिष्टम्, नञ् + क्लिश् + क्त); अधूल-धूसरित, 7, आग्नि.गृ.सू. 2.5.6 (84.6); बौ.ध.सू. 1.6.5; 2.5.12 (टिप्पणी-अक्लिष्टम् अच्छिद्रम्, न पहना हुआ)।

अक्ष पु. 1. (सोम-गाड़ी की) धुर् (इसका लेपन तै.सं. 3.1.3.1 में वर्णित, सोम सवन के समय इसके नीचे द्रोण कलश रखा जाता है, प.ब्रा. 6.5.14; रसार्पण के बाद इसके पीछे पात्रों (चमसों) को रखा जाता है। तब वे 'नराशंस' कहे जाते हैं) द्यूत-का पाँसा (सभ्याग्नि के कर्मकाण्डीय स्थापन के अङ्ग के रूप खेले जाने वाले खेल में प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 5.19.2; राजसूय याग में प्रयुक्त, श.ब्रा. 5.4.4.23) 3. एक माप का नाम, 104 अंगुल, मा.श्रौ.सू. 10.1.2.1।

अक्षकृत्या स्त्री. जादू अ.वे. 19.34.2।

अक्षघोष पु. (अक्षस्य घोषः) (सोम याग में आगे ले जाये जाने के समय दो सोम-गाड़ियों की) धुरी में उत्पन्न ध्वनि वैखा.श्रौ.सू. 14.5।

अक्षणिवाप पु. (अक्षः न्युप्यतेऽनेन, अक्ष + नि + वप् + घञ्) पाँसों को रखने वाला, मा.श्रौ.सू. 9.1.4.19 (उसके लिए सन्दर्भित जिसके लिए 'स्फ्य' रूपी काष्ठ-करवाल = लकड़ी की तलवार से आगे बढ़ाया जाता है। सोम याग में पाँसों के स्थान के निर्माण के पूर्व)।

अक्षतधाना स्त्री. (अक्षताः चेमाः धानाः) अखण्डित भुने हुए धान (चावल) कौ गृ.सू. 2.6.2 = शांखा.गृ.सू. 2.88.11; बौ.गृ.सू. 2.1 (30.16) = हि.श्रौ.सू. 2.16.3; पार.गृ.सू. 2.10.11; 2.14.3; गो.गृ.सू. 3.3.6।

अक्षतधूम पु. (अक्षतस्य धूमः) अविखण्डित चावल का धुआँ, का.गृ.सू. 4.5.11।

अक्षतोदक (अक्षतं उदकं च तयोः समाहारः) अविखण्डित चावल के दानों के साथ जल, मा.गृ.सू. 1.8.3. (विवाह)।

अक्षधूः (अक्षस्य धूः) (गाड़ी की) धुरी का भाग जिसके चारों ओर चक्के का हब घूमता या स्थिर रहता है। आप.श्रौ.सू. 9.6.5; सोम-प्रणयन के समय यजमान-पत्नी द्वारा लेपित, का.श्रौ.सू. 8.3.32; भार.श्रौ.सू. 12.6.12 = वैखा.श्रौ.सू. 14.5. भार.श्रौ.सू. 1.184.17; 1.155.1; मा.श्रौ.सू. 2.3.2.36; 2.2.2.15 (उपाञ्जन); सं.डि.डे. अक्ष के कील की शलाका; चि.भा.स. स्त्री. यजमानपत्नी द्वारा लेपित हविराधान की गाड़ी की धुरी में लगायी गयी कील, आ.श्रौ.सू. 11.6.5.7. देखें, रानाडे, 28 PAIOC 1978, 258-261।

[अक्षधुर पु. = अक्षधुरा स्त्री. क्रमशः बौ.श्रौ.सू. एवं आप.श्रौ.सू. पर अग्निष्टोमचन्द्रिका (टीका)] - ० रोपाञ्जन।

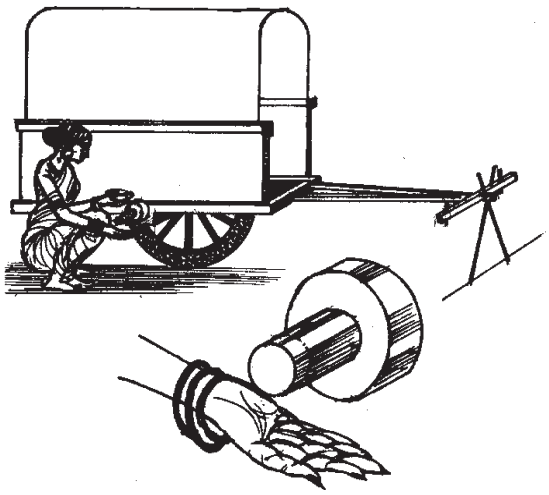

अक्षधुरोपाञ्जन

अक्षपालि पु. (अक्षस्य = अक्षसंलग्नः पालिः) धुर-शलाका (धुर के अन्त में लगा हुआ, जिससे पहिया बाहर न निकल जाये) बौ.श्रौ.सू. 1.5.1. किन्तु चि.भा.से. स्त्री. धुर का अन्तिम भाग, बौ.श्रौ.सू. 1.4।

अक्षबन्ध पु. (अक्षः बध्यतेऽनेन) गाड़ी की धुर को ईषदण्ड से बाँधने में प्रयुक्त रज्जु, वैखा.श्रौ.सू. 14.5.10।

अक्षभङ्ग पु. (अक्षस्य भङ्गः) (रथ की) धुरी का टूटना गो.गृ.सू. 2.4.3 (टिप्पणी-अक्षः रथचक्रम्; विवाह में भर्तृगृहगमन का प्रसङ्ग)।

अक्षभूमि स्त्री. (अक्षस्य भूमिः) द्यूत-स्थान, मो.वि. (दशकुमारचरित 47.19)।

अक्षभेद पु. (अक्षस्य भेदः) गाड़ी की धुरा का टूटना, बौ.गृ.सू. 4.4.3; पार.गृ.सू. 1.10.1।

अक्षमात्रम् क्रि.वि. (अक्ष + मात्रच्) आँख जितना बड़ा, आँख के बराबर (अक्षमात्रम् स्रुवस्य उद्धारः, स्रुग् अङ्गल्याकृतिः), आप.श्रौ.सू. 1.15.10।

अक्षमात्री वि. (स्त्री.) (अक्षमात्र + ङीप्) (गाड़ी के), धुर के नाप वाली वेदि की लम्बाई = 104 अङ्गुल, भा.श्रौ.सू. 7.2.18।

अक्षय्य न. (न क्षय्यम्, 'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' पा. 6.1.78) 1. एक सामन् का नाम, आर्षे. ब्रा. 4.12.4; 2. (अक्षय्य)

शब्द (का उच्चारण), बौ.गृ.सू. 2.11.44; बो.पि.मे. 2.9.21 = 2.11.8; (प्रसङ्गः-श्राद्ध); 3. अक्षीण परिणाम की प्राप्ति की स्थिति, मा.श्रौ.सू. 11.9.2.2।

अक्षरपङ्क्ति स्त्री. (बहु.) विशिष्ट ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.4.10; पाँच अक्षरों वाले चार पाद का छन्द श्रौ.को. (अंग्रे.) II. 697।

अक्षरसधातु वि. प्राथमिक=मूल ऋक् के न्यून पादों में अक्षर (अक्षरों) की एक वृद्धि से युक्त (साम) ला.श्रौ.सू. 7.9.8।

अक्षरानुस्वर वि. (अक्षरस्य अनुस्वरः यस्मिन्) (विशिष्ट सामन्) जिसमें स्तोभ ध्वनि अतिस्वर को प्राप्त करता है; अर्थात् (साम) गान के अनुसार सातवाँ स्वर, देव.ब्रा. 1.10।

अक्षरोपधान न. (सामगान में साम-योनि की ऋचा के न्यून पादों के साथ साम-गान में) (अतिरिक्त) अक्षरों को डालना, ला.श्रौ.सू. 7.9.8; द्रा.श्रौ.सू. 20.4.10।

अक्षर्य न. एक सामन् का नाम आर्षे.ब्रा. 1.460।

अक्षविष्कम्भ पु. (अक्षस्य विष्कम्भः) सोम की गाड़ी की उप धुरी (सहायक धुरी) ला.श्रौ.सू. 1.9.23 (टीका. उपाक्षो विष्कम्भः), PAR. धुरा एवं सहायक दण्ड।

अक्षवेला स्त्री. सोम गाड़ी की धुरा की सीमा (मर्यादा) के भीतर एक स्थान 'तम् इन्द्रापर्वत इति अक्षवेलायां जपित्वा', शा.श्रौ.सू. 10.21.14 (टी. तदुद्देश इत्यर्थः); कैलण्ड; धुरा का स्थान।

अक्षशब्द पु. (चलती हुई सोम की गाड़ी की) धुरा में उत्पन्न ध्वनि (खड़खड़ाहट), आप.श्रौ.सू. 11.6.12; 16.12.7।

अक्षशिरस् पु. (सोम की गाड़ी के) धुरा के शीर्ष का अन्तिम भाग, आश्व.श्रौ.सू. 5.12.3 (टी. अक्षान्त)।

अक्षसङ्क्रम क्रि.वि. इस तरह कि दण्ड का निकला हुआ भाग धुरा (की गति) को बाधित कर दे, तै.सं. 6.3.3.4; मै.सं. 3.9.2।

अक्षसम्मिता वि. (स्त्री.) (अक्षेण सम्मिता) अक्ष के बराबर, अक्ष की नाप (104 अङ्गुल), आ.श्रौ.सू. 7.3.8 (पशुयज्ञ के लिए वेदि); देखें ईषा = 80 अङ्गुल, युग-86 अङ्गुल, सामने या पूर्वी भाग)।

अक्षसूक्त न. (अक्षसम्बद्धं सूक्तम्) द्यूत के पाँसे के बारे में सूक्त (ऋ.वे. 10.34); निरु. 7.3 (134.7)।

अक्षा स्त्री. 1. एक ऋक् का नाम 'उरुं नो लोकम् अनुनेषि' (ऋ.वे. 6.47.8); शा.श्रौ.सू. 18.4.1; 18.5.1; 2. (गाड़ी की) पूर्व-पश्चिम धुरा 'यदि अक्षशम्या अणिर्वा ---- एव अग्निम् उप समाधाय आग्नेयेन स्थालीपाकेन इष्ट्वा; वारा.गृ.सू. 5.13; 3. एक रज्जु, शाब.भा. 1042.6 (III 6.8 पर)।

अक्षानतिक्रमण न. (अक्षस्य अनतिक्रमणम्) अक्ष (धुरा) के आगे हविराधान की गाड़ी के दक्षिण) धुरा (अक्ष) के आगे (द्रव के प्यालों) को न लाँघना, का.श्रौ.सू. 14.2.5 (वाजपेय)।

अक्षानह् वि. अक्ष-बन्ध (धुरे का बन्धन) अक्षानहो नह्य अतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना आ उता पिशत्', ऋ.वे. 10.53.7।

अक्षाभिहोम पु. (अग्न्याधेय के अन्तर्गत) एक कृत्य का नाम जिसमें पाँसे के ऊपर आहुति अनुष्ठित होती है, ला.श्रौ.सू. 4.12.13 = द्रा.श्रौ.सू. 12.4.18; किन्तु चि.भा.से. पु. पाँसे के साथ (युक्त) हविष् (आधेय)।

अक्षाभ्यञ्जन न. (अक्षस्य अभ्यञ्जनम्) (सोमक्रयणी गौ के सप्तम पदन्यास की धुलि से हविराधान की गाड़ी की) धुरा के लेपन का कृत्य, टुप्टी. 12.9 (4.1.25 पर); शास्त्रदीपिका 357.11 (4.1.10 पर)।

अक्षावप पु. द्यूत-शाला का अधिकारी, राजसूय याग में इस शाही अधिकारी की अग्नि में गवेधुक के भुर्ता (भरता) का अर्पण रुद्र के लिए करणीय होता है) काठ.सं. 15.4।

अक्षावपण न. (अक्षस्य आवपणम्) द्यूत-फलक, श.ब्रा. (K) 7.1.4.11; का.श्रौ.सू. 15.3.30 (राजसूय के 10वें रत्न हविष्-इष्टि की दक्षिणा के रूप नियत) = अक्षावपन।

अक्षावपन न. (अक्षस्य आवपणम्) द्यूत-फलक, श.ब्रा. 5.3.1.10; का.श्रौ.सू. 15.3.30 (राजसूय के 10वें रत्न हविष्-इष्टि की दक्षिणा के रूप नियत) = अक्षावपन।

अक्षावाप पु. द्यूत-शाला का अधिकारी ('तेन अक्षावापो अधिदेवनम् उद्धृत्य अवोक्ष्य अक्षान् निवपति, आप.श्रौ.सू. 18.18.16; का.श्रौ.सू. 15.3.12; हि.श्रौ.सू. 18.6.27; वा.श्रौ.सू. 3.3.3.22; तै.सं. 1.8.9.2 = तै.ब्रा. 1.7.3.6 = बौ.श्रौ.सू. 2.92.9; आप.श्रौ.सू. 19.10.20 = हि.श्रौ.सू. 18.4.10, मै.सं. 4.3.8; श.ब्रा. 5.3.1.10; चि.भा.से. पु. द्यूत-क्रीडाधीक्षक, राजसूय के महिमान्वित व्यक्तियों में एक, आप.श्रौ.सू. 18.18.15; वे जो खेलते हैं

अथवा कुछ के अनुसार पाशों को रखना, का.श्रौ. 15.3.17 टी.।

अक्षि न. आँख ('अक्षि इव नु खलु वा एतत् स्त्रीणां यत् षोडशी'), जै.ब्रा. 1.174; 2.110; कौषी.गृ.सू. 5.8.5।

अक्षिकट पु. (अक्ष्णः कटः = विवरः) आँख का विवर, बौ.श्रौ.सू. 18.9.37; आप.श्रौ.सू. 16.27.2 (पुरुषशिरसि हिरण्य-शल्कान् प्रत्यस्यति ---- ऋचे त्वा इति दक्षिणे अक्षिकटे); 16.27.7; हि.श्रौ.सू. 11.7.54; 11.7.56 ('चयन' कृत्य के अन्तर्गत पशुशिरस्सञ्चयन)।

अक्षिकटक पु. (न.) (मृतक की) आँख का विवर, बौ.पि.मे. 3.3.10।

अक्षिताहुति स्त्री. (अक्षिता आहुतिः) क्षीण न होने वाली आहुति, बौ.श्रौ.सू. 3.7.9; (अग्निहोत्र)।

अक्षिति स्त्री. एक ईंट का नाम (एक अग्नि की छड़ी = समिधा के रूप में) 'अक्षितिम् इष्टकाम् उपदधे', बौ.श्रौ.सू. 3.6.2; आप.श्रौ.सू. 6.9.4 (अग्निहोत्र)।

अक्षिवेप पु. (अक्ष्णः वेपः = कम्पः) (बायीं) आँख का फड़कना, कौशि.सू. 58.1 (अपशकुन के रूप में)।

अक्षिवेपन न. (अक्ष्णः वेपनम्) (बायीं) आँख का फड़कना (न्यूनता के उपचार के लिए नियत विशिष्ट घृताहुति), गो.गृ.सू. 3.3.34; द्रा.गृ.सू. 2.5.35।

अक्षीरलवण वि. (न क्षीरं न लवणं यस्मिन्) दूध एवं नमक से रहित (दूध एवं नमक से रहित भोजन उन व्यक्तियों के प्रति परुष वचनों के बोलने के प्रायश्चित्त के रूप में नियत है, जो उन परुष वचनों के पात्र नहीं हैं एवं झूठ बोलने के प्रायश्चित्त के रूप में नियत है) हि.श्रौ.सू. 26.7.14. (हविराधान की गाड़ी के)

अक्षोपाञ्जन न. (अक्षस्य उपाञ्जनम्) अक्ष-लेपन का कृत्य, भार.श्रौ.सू. 10.15.19; का.श्रौ.सू. 6.6.33 (चि.भा.से. घृत-मिश्रित मिट्टी से)।

अक्ष्णया स्त्री. कर्ण, त्रिभुज-करण, बौ.शु. 45; क्रि.वि. कर्णवत् भा.श्रौ.सू. 12.4.18 (महावेदि की माप) आड़े-बेड़े रूप से आहवनीय के दक्षिण-पश्चिम से पूर्वोत्तर आघार-आहुति), तै.सं. 5.2.7.5, इत्यादि; बौ.श्रौ.सू. 4.3.6, इत्यादि; बौ.गृ.सू. 1.3.27; 'दक्षिणतः सन्नहनं स्तृणन्ति अक्ष्णया वा', आप.श्रौ.सू. 2.9.1, इत्यपि 'अक्ष्णया वेणुं निधाय पूर्वस्मिन् इतराम्', आप.शु.सू. 3.9.9 'अक्ष्णया शुल्बं स्तृणन्ति', हि.श्रौ.सू. 1.16.17, (वैखा.श्रौ.सू. 5.6 इत्यादि) अक्ष्णया उपकर्षति, मा.श्रौ.सू. 3.4.2.6, इत्यपि, अक्ष्णयैव स्रजं परिहरति', अग्निवे. गृ.सू. 1.3.5।

अक्ष्णयादेश पु. उपदिशाएं (उत्तरपूर्व, दक्षिण-पूर्व, इत्यादि) 'एना अक्ष्णयादेशेषु उपदधाति, श.ब्रा. 8.1.4.2 (चयन में प्राणभृत् इष्टका)।

अक्ष्णयापच्छेदन न. आड़े (तिर्यक्, आरपार) विभाग बौ.शु. 4.4।

अक्ष्णयाभेद पु. आड़े-बेड़े (तिर्यक्) अविभाग आप.शु.सू. 16.7।

अक्ष्णयामान न. आड़े-बेड़े माप, कर्णवत् माप, बौ.श्रौ.सू. 6.22 : 12; 10.19 : 9।

अक्ष्णयारज्जू स्त्री. कर्णवत् रेखा या रस्सी / कर्ण पर स्थित बौ.शु. 1.45; हिर.श्रौ.सू. 25.1.5; आप.श्रौ.सू. 1.1.7, इत्यादि।

अक्ष्णयावेणु पु. कर्ण पर स्थित एक बाँस की छड़ी, आप.शु.सू. 9.3।

अक्ष्णयास्तोमीया स्त्री (बहु.) एक विशिष्ट ईंट का नाम (पाठ्य-भिन्न क्रम में उच्चारित स्तोमों के साथ अग्निवेदि के चतुर्थ स्तर = तह में सङ्गृहीत) तै.सं.5.3.3.1; श.ब्रा. 8.4.4.3; बौ.श्रौ.सू. 10.41-43; मा.श्रौ.सू. 6.2.1.23 (गेल्डर : स्तोम-इष्टका, आड़े तौर पर रखी हुई, 2 प्रथम-चक्र के लिए विधियाँ; 1,3,2,7,11, प्रयुक्त होती हैं)।

अक्ष्णा स्त्री. अग्निवेदि के पक्ष-भाग में आबन्धन इष्टकाओं के रूप में सञ्ज्ञेय ईंट (ईंटों) का नाम, ये संख्या में 5 हैं, मा.श्रौ.सू. 10.3.5.4।

अक्ष्यामय पु. (अक्ष्णः आमयः) (अश्वमेध-यज्ञ में आलभ्य अश्व की), आँख का रोग श.ब्रा. 13.3.8.4; का.श्रौ.सू. 20.14 (उपचारार्थ सूर्य-देवता को अर्पणीय एक पिण्ड)।

अखण्ड वि. हानि-रहित (दाँतों या होठ के लिए); बौ.श्रौ.सू. 2.3 ('होतृ' नामक ऋत्विक् की अर्हता); 2. (माप की रस्सी) जो एक टुकड़े में हो, का.शु. 7.14।

अखर्व वि. जो छिछला नहीं है 'पिबेत अखर्वेण वा पात्रेण', तै.सं. 2.5.1.7, सायण-अपक्व (पात्र); कीथः-पूर्ण।

अखलतिम्भावुक वि. (नञ् + खलति + मुम् + खुकञ्) गंजे होने की प्रवृत्ति न रखने वाला तै.ब्रा. 3.2.8.8।

अखाता वि. (स्त्री) न खोदी हुई (उत्तर-परिग्रह के बाद की वेदि), तै.ब्रा. 1.6.8.8 = वारा.श्रौ.सू. 1.7.4.2; भार.श्रौ.सू. 2.3.2; हिर.श्रौ.सू. 5.4.12।

अखाद्य वि. (नञ् + खाद् + ण्यत्) जो खाने के लिए अच्छा न हो (जो खाने योग्य न हो) हिर.श्रौ.सू. 26.5.39 = आप.ध.सू. 1. (5) 17.17।

अगतश्री वि. जिसने समृद्धि प्राप्त नहीं किया है, तै.सं., 2.5.4.4 (नागतश्रीर् महेन्द्रं यजेत), बौ.श्रौ.सू. 17.49:1; आप.श्रौ.सू. 1.14.9; देखें 'गतश्री' काशिकर C.G. ABORI 67, 1966, 243-45।

अगतासु वि. (न गताः आसवः यस्य सः) (उद्गातृओं में एक) जो दीर्घायु है, बौ.श्रौ.सू. 14.13.12 (तृतीय सवन में घृतपूर्ण सौम्य चरु के शेष को देखता है)।

अगन्धसेविन् वि. (न गन्धं सेवते, नञ् + सेव् + इन्) गन्ध का सेवन न करने वाला, हि.श्रौ.सू. 26.1.58; आप.ध.सू. 1 (1) 2.25 (ब्रह्मचारिन्)।

अगमनीया वि. (न गमनीया, नञ + गम् + अनीयर् + टाप्) (वह स्त्री) जिसके पास सम्भोग के लिए न जाया जाय (मासिक-स्राव के कारण अथवा छठवें दिन शास्त्रीय निषेध के कारण, टीका.) आश्व.गृ.सू. 3.6.9।

अगम्या वि. (स्त्री.) (नञ् + गम् + यत् + टाप्) (वह स्त्री) जिसके पास मासिकस्राव (रजोधर्मदर्शन) एवं शास्त्रों के अनुसार अन्य दिनों में सम्भोग के लिए गमन न किया जाय। बौ.ध.सू. 2.2.65।

अगर्भ वि. (अरणि-वर्ग) जो (शमी का) भ्रूण न हो, अर्थात् जो शमी पर उगने वाले अश्वत्थ का न बना हो का.श्रौ.सू. 4.7.20-21।

अगर्हिता वि. (स्त्री.) (नञ् + गर्ह् + क्त + टाप्) अनिन्द्य, निर्दोष (दोषरहित) अग्निवे. गृ.सू. 1.6.1 (64.11)।

अगस्ति पु. एक वैदिक ऋषि का नाम, तै.सं. 7.5.5.2 (= अगस्त्य)।

अगस्त्य पु. 'कयाशुभीय' मन्त्र के ऋषि का नाम (ऋ.वे. 1.165); तै.सं. 7.5.2; मै.सं. 2.1.8; काठ.सं. 10.11; ऐ.ब्रा. 23.16 (604); पञ्च.ब्रा. 4.17; 4.1.7 तै.ब्रा. 2.7.11.1; जै.ब्रा. 1.344; बौ.श्रौ.सू. 2.158 : 2; आप.श्रौ.सू. 14.19.10; हि.श्रौ.सू. 15.5.2; 2. 'अगस्त्यस्य च रक्षोघ्नम्' साम का ऋषि, आर्षे.ब्रा. 1.2.5 इत्यादि; 'अगस्यस्य यशः' (का ऋषि) आर्षे.ब्रा. 6 (3).4.2; जै.श्रौ.सू. 25.3 अगस्ति गोत्र के एक व्यक्ति का नाम; वैखा.ध.सू. 4.8.1; 4 एक प्रवर का नाम वैखा.ध.सू. 4.8.1।

अगस्त्यगृहपतिक वि. (अगस्त्यगोत्रः गृहपतिः यस्य) जिसके पास अगस्ति गोत्र का व्यक्ति गृहपति हो, हि.श्रौ.सू. 18.4.14।

अगस्त्यस्य कयाशुभीय न. एक मन्त्र का नाम जिस पर एक साम गाया जाता है, श्रौ.को. (सं.) II. P. 686; तै.सं. 5.7.5.2 (प्रसङ्गः-संस्रव याग)।

अगातृ पु. अव्यावसायिक गायक (साम का) पञ्च.ब्रा. 13.10.8।

अगार न. यज्ञीय-शाला (अग्नि-क्षेत्र = अग्न्यागार, अग्नि का पवित्र स्थान) श.ब्रा. 1.1.1.11; 13.4, 1.8; बौ.श्रौ.सू. 1.54 : 5; बौ.गृ.सू. 1.2.3; आश्व.गृ.सू. 1.7.21; 2.9.9। यह प्रतीत होता है कि विभिन्न पवित्र अग्नियों के लिए अलग-अलग आगार या छत होते थे, देखें - अग्न्यागार, का.श्रौ.सू. 4.2.11. कुछ स्तर (काल) बाद स्थानाभाव के कारण सभी पवित्र अग्नियां (संख्या में पाँच) एक एवं समान छत (मण्डप) के नीचे आहित होती थी, जो (गृह) या तो प्राग्वंश; 'अग्निशाला' अथवा 'विमित' के रूप में जाना जाता था। ला.श्रौ.सू. (1.2.22 इत्यादि) में अभिव्यक्त 'पत्नीशाला' (शब्द) सम्मिलित अग्नि-शाला के लिए ही प्रयुक्त हुआ है; का.श्रौ.सू. 4.7.8-10 भी देखें।

अगारदहन न. (अगारस्य दहनम्) यज्ञीय शाला मण्डप का तपना (जलना) बौ.श्रौ.सू. 29.1:11।

अगारदाह पु. (अगारस्य दाहः) घर का जलना, आश्व.श्रौ.सू. 3.13.4; मध्य = गृहमध्य का, बौ.गृ.सू 3.6.1; आश्व.गृ.सू. 2.5.2 - **स्तूप** = गृह की मुख्य धरन आश्व.गृ.सू. 7.19.7; **स्थूणा** = घर की थून, आप.गृ.सू. 8.23.9; - **रावकाश**। एक = गृह का भाग (पक्ष), आश्वला.गृ.सू. 7.17.1।

अगुण वि. (न विद्यते गुणः यस्मिन्) गुणरहित [(स्विष्टकृत् पुरोनुवाक्या) बोलने की पुकार में], 'अग्नये स्विष्टकृते अनुब्रूहि' के स्थान पर 'अग्नये अनुब्रूहि', का.श्रौ.सू. 6.7.23।

अगुरु (न गुरुः) गुरु अथवा श्रेष्ठ से भिन्न, बौ.पि.मे. 2.2.3; वा.सं. 14.17; यह इङ्गित करता हुआ प्रतीत होता है कि अगुरु का अर्थ है 'जो उच्च श्रेणी का व्यक्ति नहीं है', अर्थात साधारण; तु. मधुपर्क का शेष अब्राह्मण को नहीं दिया जाता; ठीक उसी तरह द्रव अथवा आहुति का शेष (हविःशेष) सोम याग में, ला.श्रौ.सू. प. I. एवं II.

अगृहमेधिन् वि. (न गृहमेधिन्) गृह्य (घरेलू) कृत्यों का अनुष्ठान न करने वाला, तै.ब्रा. 1.6.7.1।

अगृहीत वि. न खींचा हुआ, न ग्रहण किया हुआ, स्थित न किया गया (एक सोमपान > प्याला, आहुति = हविष् (द्रव्य) इत्यादि) तै.सं. 6.4.2.1; 3.2.1.2; मै.सं. 4.5.1; आप.श्रौ.सू. 9.20.10; 14.26.1; हि.श्रौ.सू. 15.6.29; श.ब्रा. 3.9.2.8; 4.2.3.3; 4.2.3.5; 5.1.4.2; 11.1.4.1।

अगृहीताग्नि वि.(न गृहीतः अग्निः येन सः) जिसने सांस्कारिक रूप से अग्नि को स्थापित नहीं किया है गोभि.स्मृ. 3.59।

अगोः प्रापणम् क्रि.वि. इस प्रकार से कि इसके पास गाय या बैल न पहुँच सकें, का.श्रौ.सू. 5.10.8 (त्र्यम्बकेष्टि में वृक्ष पर चावल के पिण्डों को टाँगने के लिए शर्त)।

अगोत्र वि. (न विद्यते गोत्रं यस्य सः) कुल के नाम से रहित, गोत्र से रहित, आश्व.गृ.सू. 3.3.1;7।

अगोष्पाद वि. (न गोष्पदं विद्यते यस्मिन्) गाय के खुर के चिह्न (निशान) से रहित, कौशि.गृ.सू. 39.23।

अगौपवन वि. (न गौपवनः) गोपवन-कुल से असम्बद्ध (व्यक्ति = जो गोपवन कुल का न हो) का.श्रौ.सू. 10.2.21।

अग्धाद् वि. अभुक्त-भोजी (न खाये हुए को खाने वाला) तै.सं. 3.3.8.2; = बौ.श्रौ.सू. 1.126: 18 = 1.127 : 5 = 2.176 : 2 (पशुबन्ध के अन्तिम भाग में उच्चरित मन्त्र में (स्थित) शब्द।

अग्नायी स्त्री. अग्नि की पत्नी। शूलगव = ईशानबलि कृत्य में उसे एक आहुति अर्पित की जाती है, शां.श्रौ.सू. 4.19.5।

अग्नाविष्णू पु. (द्वि.व.) (अग्निश्च विष्णुश्च) अग्नि एवं विष्णु 'इनको सोम याग के दीक्षणीयेष्टि के अवसर पर पुरोडाश अर्पित किया जाता है, श.ब्रा. 3.1.3.1; शां.श्रौ.सू. 2.4.3; आश्व.श्रौ.सू. 2.8.2।

अग्नि पु. अग्नि का अभिमानी देवता, ऋ.वे. 1.181.1, इत्यादि, इसे आवश्यकरूप से दर्शपूर्णपास-इष्टि में पुरोडाश अर्पित किया जाता है; यह देवों एवं पितरों के लिए आहुति का वहन करता है अर्थात् आहुति को देवों एवं पितरों के पास पहुँचाता है (हव्यवाट् एवं कव्यवाट्) ऋ.वे. 1.12.6; वा.सं 2.29। देवों को यज्ञ में लाने वाला (स देवान् आ इह =एह वक्षति), ऋ.वे. 1.1.2, इत्यादि; देवों का सन्देशवाहक, ऋ.वे. 5.8.6, इत्यादि; अतिथि, ऋ.वे. 1.186.3, इत्यादि, गृह एवं प्रजाओं का स्वामी ऋ.वे. 1.36.5 इत्यादि; राक्षसों को मारने वाला, ऋ.वे. 10.162.1, इत्यादि; एक सामन-पर आध्यक्ष्य करने वाला देव.ब्रा. 1.1; जन्म के समय वेत्ता 'जातवेदस्' ऋ.वे. 2.2.1, इत्यादि; अच्छे 'स्विष्टकृत्' का कर्ता, तै.सं. 1.5.2.1, इत्यादि, वैश्वानर (ऋ.वे. 4.5.2, इत्यादि), पवमान पावक, शुचि इत्यादि आगे (और अधिक) इसकी प्रकृति एवं कार्य के मूलादर्श को प्रस्तुत करते हैं; 2. (बहु.) तीन अग्नियाँः- आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिण, वा.सं. 12.50। कभी-कभी सभ्य एवं आवसथ्य के साथ पाँच; (द्वि.व.) आहवनीय एवं गार्हपत्य, 3. (संक्षे.) 'अग्निचयन' अग्निवेदि के सञ्चय अथवा अग्निवेदि के अभिप्राय को प्रकट करता है (का.श्रौ.सू. 8.8.8), 4. अग्निवेदि के लिए मिट्टी, तै.सं. 4.1.2.4; वा.सं. 11.9, 11.10; 5. अग्निवेदि का स्थल, बौ.श्रौ.सू. 2.17 : 16; आप.श्रौ.सू. 16.8.5; (बहु.) उच्चतर वेदि के सञ्चय के लिए अभिप्रेत ईंटें, का.श्रौ.सू. 17.3.20 : अन्त्येष्टि-अग्नि, ऋ.वे. 10.15.14; पाकशाला की अग्नि (आवसथ्य या पूवाग्नि); स्मार्ताग्नि, शां.गृ.सू. 1.1.2. उत्तपनीय-अग्नि (तप्त कपाल पर तैयार किया गया)।

अग्निकर्मन् न. (अग्निसम्बद्धं कर्म) पवित्र-अग्नि से सम्बद्ध कृत्य (पवित्र-अग्नि को स्थापित करने के पूर्व इस पर तीन समिधाओं का रखना एवं ब्रह्मौदनपाक करना इत्यादि सहित) आप.श्रौ.सू. 5.7.8।

अग्निकल्प पु. (अग्नेः कल्पः) अग्निवेदि को चिनना (अग्निचयन) बौ.श्रौ.सू. 22.1 : 1; 24.6 : 10; हि.श्रौ.सू. 16.1.4।

अग्निकार्य न. (अग्नेः कार्यम्) अग्निपूजा, विवाह-संस्कार के लिए नियत अग्नि के नियोजन के साथ अनुष्ठित कृत्य (या अग्नि से सम्बद्ध) वैखा.गृ.सू. 3.1.6; अग्निवे. गृ.सू. 2.7.1.2 (दीक्षित उपनीत के कर्तव्य के रूप में नियत)।

अग्निकार्यलोप पु. (अग्निकार्यस्य लोपः) अग्नि पूजा का असातत्य अथवा लोप (दीक्षित 'उपनीत' के लिए निषिद्ध) बौ.गृ.सू. 4.11.1; अग्निवे गृ.सू. 2.7.4.6, 2.7.5.2।

अग्निकाले वि.पु. (सप्तमी) अग्नि के स्थापन अथवा प्रज्वलन के समय (अर्थात् पहले), वारा.गृ.सू. 1.4.4।

अग्निकुण्ड न. अग्नि का कुण्ड (गड्ढा) (अथवा अग्नि के लिए घिरा हुआ स्थान), वैखा.गृ.सू. 1.8.13; 4.1.5, 6.14.6; वसि.ध.सू. 2.1.7; 2.3.5।

अग्निक्षेत्र न. 'महावेदि' के पूर्व में स्थित स्थल जहाँ पक्षी (श्येन) की आकृति में अग्नि के लिए चबूतरा उठाया जाता है (उठाया जाय) का.श्रौ.सू. 16.7.31, सामान्य स्वरूप 'सप्तविध' है, अर्थात् माप में सप्तपुरुष जो उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम आयाम वाला एवं पुरुष (यजमान) की नाप का सात गुना हो; आप.श्रौ.सू. 16.17.9, आप.श्रौ.सू. 16.17.9। कुछ स्थितियों में नाप द्विगुणित (दो गुना) होती है (चतुर्दश-विध) या त्रिगुणित [तीन गुना (एकविंशति-विध) होती है] जैसे अश्वमेध में, का.श्रौ.सू. 20.4.15. यह संक्षिप्तीकृत रूप में 'अग्नि' है।

अग्निक्षेत्र

अग्निगीत न. एक संगीत-शास्त्रीय गानस्वर, नार.स्मृ. 1.5.13।

अग्निगृह पु. अग्नि का घर (पुण्य-स्थान) अ.वे. (प्राय.) 5.4।

अग्निगोदान अग्नि के लिए पवित्र 'गोदान' अर्थात् बालों को गीला करने का जो कृत्य अनुष्ठित करता है, अग्निवे.गृ.सू. 2.2.5.22; आप.गृ.सू. 60.16.13 (टीका. अग्नये गोदानं यस्य स:); बौ.गृ.सू. 3.2.57; वारा.गृ.सू. 9.1; हि.गृ.सू. 2.6.18 (टीका-अग्निकार्यम् एव गोदानं यस्य स:)।

अग्निग्रहण न. अपने स्वयं में अग्नि का स्वीकार (लेना) बौ.श्रौ.सू. 22.4:5; 23.5 : 9,13।

अग्निचतुरश्रा वि. (अग्निवेदेरिव चत्वारो अश्रा: यस्या:) चार कोनों वाला (चार कोनों से युक्त) अग्निवेदि के (चार कोनों) की तरह (अर्थात् उसी दिशा में जिसमें वेदि) बौ.श्रौ.सू. 22.9.17:8 (प्रसङ्ग: स्वयमातृण्णा इष्टका = ईंट पर आहुति।

अग्निचय पु. अग्नि-निर्माण की एक विधि, बौ.श्रौ.सू. (सूची), कैलण्ड; बौ.श्रौ.सू. 1.1 के सन्दर्भ में थीबो भी; अग्निवेदि के चयन = सञ्चय (एक पर एक रखना) का कर्मकाण्डीय कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 25.27 : 1; 2.1 : 15; 23.19 : 3; 25.3 : 22।

अग्निचयन

अग्निचयन न. अग्नि-वेदि का चयन (राशीकरण = एक पर एक रखना) हि.श्रौ.सू. 15.6.6; बौ.गृ.सू. 3.1 : 23, अग्निवेदि के सञ्चय = चयन का कृत्य, उत्तरावेदि पर आहवनीयाग्नि स्थापन के लिए ईंटों से पाँच तह (स्तर) सोम याग में समाविष्ट होते हैं : श.ब्रा. में यह प्रजापति के ब्रह्माण्ड-जगत् के निर्माण की मानवीय प्रतिकृति (नकल)। वेदि में पाँच पशुओं के शिरस् का निर्माण किया जाता है एवं धड़ों को पानी में फेंक दिया जाता है। वेदि की ईंटें इस (इसी) जल से तैयार की जाती है। चींटी के बाबी की मिट्टी को एक गड्ढे की मिट्टी से मिश्रित किया जाता है, एवं आषाढा-संज्ञय प्रथम ईंट यजमान-पत्नी द्वारा बनाई जाती है। यजमान एक 'उखा' एवं तीन 'विश्वज्योति' (संज्ञक) ईंटों को तैयार करता है। ईंटों एवं उखा को आग में तपाया जाता है। दीक्षा के अनन्तर अनेक आकृतियों (में) अग्निवेदि के निर्माण का आरम्भ होता है : सुपर्ण (गरुण) श्येन (बाज) द्रोण इत्यादि (आहाव-नाद) (ये आकृतियों के नाम हैं) इत्यादि, का.श्रौ.सू. 16.5.9. ईंटों की भिन्न-भिन्न नामों वाली (जैसे-यजुष्मती) विभिन्न आकृतियाँ होती हैं, त्रिकोणीय, आयताकार, वर्गाकार, इत्यादि (मन्त्रपूर्वक रखी जाती है) प्रथम, तृतीय एवं पञ्चम तह (स्तर) का समान प्रतिदर्श (साँचा) होता है जबकि द्वितीय एवं चतुर्थ आपस में समान (किन्तु प्र. तृ. चतुर्थ से) भिन्न प्रतिदर्श वाली होती है। वह

भूमि जिस पर वेदि का निर्माण होता है, रस्सी से नापी जाती है एवं जोती जाती है, का.श्रौ.सू. 16.8. निम्नतम स्तर पर मनुष्य की स्वर्णाकृति को रख दिया जाता है। सभी पाँच स्तरों (तहों) के लिए सम्पूर्ण ईंटों की संख्या 10600 (चिन्ना 1000, P. 97-98) होती है (का.श्रौ.सू. 17.7.21-23) प्रत्येक स्तर को सघन कीचड़ (पुरीष) से ढक दिया जाता है, भूमि के स्तर (तह) पर एक जीवित कच्छप को रख दिया जाता है (आप.श्रौ.सू. 16.25.1) विभिन्न सामग्रियाँ जैसे—उलूखल (ओखली) एवं मुसल, एक उखा एक शूर्प (सूप) भिन्न-भिन्न स्थितियों (स्थानों) में रख दिये जाते हैं। चयन के लिए लगने वाले समय के बारे में मत-वैभिन्य है। प्रथम चार स्तर के लिए 8 माह एवं अन्तिम के लिए 4 माह अथवा केवल लगातार पाँच दिन, आप.श्रौ.सू. 16.35.9; 17.1.1; 11; अग्निचयन का कृत्य बाध्यकारी है, कम से कम सैद्धान्तिकरूप से, केवल कुछ परिस्थितियों में, देखें श.ब्रा. 6-10; इग्लिंग श.ब्रा.अं XLIII परिचय; आप.श्रौ.सू. 16.17; का.श्रौ.सू. 16-18; कीथ, तै.सं. CXXV-CXXXI, तै.सं. 4.1.6; गार्हपत्याग्नि-वेदि का भी चयन होता है बौ.शु.सू. 2.61, इत्यादि।

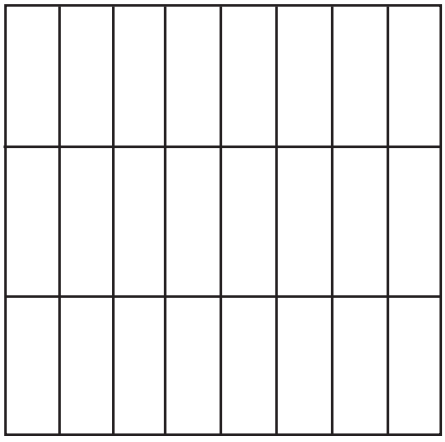

गार्हपत्य चिति

अग्निचिति (अग्नेः चितिः = चयनम्) स्त्री. अग्नि-वेदि की निर्मिति, मा.श्रौ.सू. 180.4; 218.20।

अग्निचित्य न. अग्निवेदि का चयन, वैखा.गृ.सू. 17.16।

अग्निचित्या स्त्री. अग्निवेदि का चयन, कौषी.ब्रा. 19.4; श.ब्रा. 6.6.1.1, 13.3.4.12; आप.श्रौ.सू. 18.6.6; शां.श्रौ.सू. 8.15.10; मा.श्रौ.सू. 140.16; 141.11, का.श्रौ.सू. 2.6.28; हि.श्रौ.सू. 13.2.20; 17.3.11; ला.श्रौ.सू. 5.7.12।

अग्निचित्सोमयाजिन् वि. (अग्निचित् चासौ सोमयाजी) जिसने अग्नि-वेदि के चयन के साथ सोम याग का अनुष्ठान किया हो (है) का.श्रौ.सू. 19.1.12।

अग्नितनू स्त्री (बहु.) वैदिक मन्त्रों के एक समूह का नाम, मा.श्रौ.सू. 1.6.2 ('या ते अग्ने' ऋ.वे. 3.57.6 से प्रारम्भ होने वाला, अग्न्याधान याग में यजमान द्वारा घोड़े के दाहिने कान में उच्चार्य), भार.श्रौ.सू. 5.7.9; आप.श्रौ.सू. 5.13.7; हि.श्रौ.सू. 3.4.9; वैखा.श्रौ.सू. 1.1.2।

अग्नितनू स्त्री. पाठ्य 'या वाजिन्नग्ने --- ताम् आहव्' इत्यादि; तीन मन्त्र भा.श्रौ.सू. 5.7.9 (आधान-अश्वकर्णे यजमानं वाचयति); मै.सं. 1.6.2, आप.श्रौ.सू. 5.13.7; श्रौतकोश (अं.) I.i.43।

अग्नितन्त्र न. अग्नियों के स्थापन से सम्बद्ध उबाले गये भोज्य के लिए प्रयुक्त कृत्यों का ढाँचा, मा.श्रौ.सू. 9.3.7.24।

अग्निता (अग्नि + तल् + टाप्) स्त्री. अग्नि का आवश्यक वैशिष्ट्य (नेतृत्व करना या शीर्ष पर रहना) श.ब्रा. 2.2.4.2।

अग्नितीर्थ न. अग्नि-देवता का पवित्र स्थान, अग्निवे. गृ.सू. 2.6.1.8 (अङ्गूठे के मध्य में होना अभिज्ञात = समझा जाता है)।

अग्नित्रय न. पवित्र अग्नियों का त्रित्व, हि.पि. 29.11.4।

अग्नित्रेता स्त्री. पवित्र अग्नियों का त्रित्व (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण) हि.पि. 29.11.10।

अग्निदक्षिणा स्त्री. (अध्वर्यु के लिए) अग्निवेदि के चयन के सम्बन्ध में दक्षिणा (पौरोहित्य-शुल्क), बौ.श्रौ.सू. 10.12 : 11; 9.17:40; आप.श्रौ.सू. 19.15.13; हि.श्रौ.सू. 23.3.33।

अग्निदग्ध वि. (अग्निना दग्धः) अन्त्येष्टि की अग्नि द्वारा जलाये गये (पितर्) ऋ.वे. 10.15.14; अ.वे. 18.2.35; तै.ब्रा. 3.1.1.7; गौ.पि.मे. 2.4.19।

अग्निदीक्षणीया स्त्री. दीक्षणीय-इष्टि (हविर्द्रव्य = आहुति का द्रव्य) अग्निचयन के प्रस्तुतीकरण के लिए, बौ.श्रौ.सू. 15.13.2, (10:12:11, 24.11:4; 24.33:18) चि.भा.से. चयन से सम्बद्ध दीक्षा को प्रस्तुत करने वाली आहुति, बौ.श्रौ.सू. 15.3।

अग्निदीक्षा स्त्री. 1. अग्निवेदि के चयनार्थ दीक्षा (संस्कार) का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 2.302.8; 2. अग्निवेदि के चयन के लिए दीक्षा-कृत्य के अवसर पर आहुति 'सदग्निदीक्षाः', बौ.श्रौ.सू. 15.13.8।

अग्निदीक्षाहुति स्त्री. 'वेदि-चयनार्थ' दीक्षाहुति, बौ.श्रौ.सू. 10.12 : 16।

अग्निदैवत्य वि. (स्त्री) (अग्निः मुख्या देवता यस्यां सा) प्रधान देवता के रूप में अग्नि से युक्त (जहाँ अग्नि प्रधान देवता है); विध 89.1।

अग्निध् पु. (अग्नि + इन्ध् + क्विप्, अग्निम् इन्धे) अग्नि को प्रज्वलित करने वाला ऋत्विक्, ऋ.वे. 2.1.2 = 10.91.10, इत्यादि; काठ.सं. 9.8; 9.9; 9.11; 9.12; 9.15; 28.8; 28.9 = कपि.क.सं. 41.7।

अग्निधिष्णिय पु. अग्नि-कुण्ड अंगीठी (अग्निवेदि के चयन = अग्निचयन के समय अग्नीध की छप्पर में सदो-मण्डप में ईंटो से निर्मित होता है,) बौ.श्रौ.सू. 2.57 : 12; 3.132 : 18; सदस् के दक्षिण मार्जालीय भी।

अग्निनक्षत्र न. (अग्निदेवताकं नक्षत्रम्) अग्नि की अध्यक्षता वाला कृत्तिका-नक्षत्रमण्डल, तै.ब्रा. 1.1.2.2; श.ब्रा. 2.1.2.1 (श्रौत अग्नि के आधान के लिए नियत)।

अग्निनामन् न. अग्नि का नाम [(अग्नि, सोम इत्यादि) राजसूय की पार्थ (संज्ञक) आहुति प्रदान करने के समय के पूर्व उच्चारित] श.ब्रा. 5.3.5.8-9।

अग्निनित्यधारिन् वि. (अग्निं नित्यं धर्तुं शीलमस्य) (वह) जो पवित्र-अग्नि को सतत (नित्य) धारण करता है (बनाये रखता है) का.श्रौ.सू. 4.10.16।

अग्निनिधान न. पवित्र (श्रौत) अग्नि को रखना, का.श्रौ.सू. 17.7.5।

अग्निनिवेशन न. (अग्नेः निवेशनम्) अग्निस्थान, अ.वे.परि. 33 (4). 3।

अग्निनेत्र वि. (अग्निः नेता यस्य) अग्निदेव के नेतृत्व वाला, तै.सं. 1.8.7.1; मै.सं. 2.6.3; वा.सं. 9.35; श.ब्रा. 5.2.4.5।

अग्निन्यक्त वि. (स्त्री-आ) (अग्निशब्दः न्यक्तः = न्यक्तः यस्यां सा) (वह ऋचा) जिसमें 'अग्नि' शब्द (एक विशेष स्थिति (विधि) में : पुनराधान में पत्नीसंयाज में) प्रयुक्त है, आप.श्रौ.सू. 5.28. तै.ब्रा. 13; 4.12.9।

अग्निपति पु. अग्नि का स्वामी, आप.श्रौ.सू. 6.1.8।

अग्निपद वि. (अग्नौ = अग्निस्थाने पदं यस्य) (वह घोड़ा) जिसने अग्नि-सत्यापन (आधान) के लिए अभिप्रेत अग्निस्थान में सामग्री पर पाद-प्रक्षेप किया है, बौ.श्रौ.सू. 20.17 : 9; वैता.श्रौ.सू. 5.11; 6.6; पु. वह घोड़ा जिसके पद-चिह्न पर अग्न्याधान हुआ है, का.श्रौ.सू. 4.12.8; 4.12.9।

अग्निपरिचर पु. (अग्नेः परिचरः, अग्निं परिचति इति = अग्नि + परि + चर् + अच्) अग्निसेवा करने वाला, बौ.श्रौ.सू. 26.5 : 4 (भाष्य = अग्निपरिकर्मी)।

अग्निपरिचरण न. (अग्नेः परिचरणम्) घरेलू (गृह्य) अग्नि की देखभाल करना (ब्रह्मचारी के कर्तव्य के रूप में) पा.गृ.सू. 2.5.11; वैखा.गृ.सू. 1.5.4।

अग्निपरिचर्या स्त्री. गृह्य अग्नि की देखभाल करना बौ.गृ.सू. 1.7.10।

अग्निपरिमाण न. अग्निवेदि का परिमाण (माप) वा.श्रौ.सू. 3.2.1.22।

अग्निपरिसमूहन न. (अग्नेः परि समूहनम्) अग्निस्थान के चारों तरफ राशीकरण अथवा बटोरने के द्वारा साफ करना (किन्तु सं.डि.डे.का. पवित्र अग्नि का सञ्चय), वीरमि. 71.3; आहुति-अर्पण के पूर्व एवं पश्चात्, भा.श्रौ.सू. 6.8.11-12।

अग्निपावमानी स्त्री. मन्त्रों का नाम [वर्ष भर बीते हुए अग्न्याधान के अन्तिम दिन एवं गार्हत्य के लिए द्वितीय अग्निहोत्र-आहुति के पश्चात् बोली जाने वाली प्रार्थना]।

वे निम्नलिखित मन्त्र हैं (वे मन्त्र निम्नलिखित हैं) :

1. अग्न आयूंषि पवसे ---- ऋ.वे. 9.66.19
2. अग्ने पवस्व ---- ऋ.वे. 9.66.21
3. अग्ने पावक ---- ऋ.वे. 5.26.1
4. स नः पावक ---- ऋ.वे. 3.10.8
5. अग्निः शुचिव्रततमः ---- ऋ.वे. 8.44.21
6. उद् अग्ने शुचयस्तव ---- ऋ.वे. 8.44.17

तै.सं. 1.5.5.2, श्रौ.को. (अं) 1.1.44; 94; 95; 106, 429; बौ.श्रौ.सू. 3 (श्रौ.को. के अनुसार इन मन्त्रों के साथ अध्वर्यु नव-स्थापित (आहित) तीनों अग्नियों पर अश्वत्थ की तीन समिधायें रखे (प्रत्येक समिधा अश्वत्थ की हो)] श्रौ.को. के अनुसार प्रत्येक अर्थात् तीनों अश्वत्थ-समिधायें इन तीन ऋचाओं के साथ रखी जाती हैं।

अग्निपीत वि. (अग्निना पीतम्) अग्नि द्वारा पिया गया (पी लिया गया), एक मन्त्र का प्रतीक, आप.श्रौ.सू. 13.14.14; वैखा.श्रौ.सू. 16.18।

अग्निपुच्छ न. अग्नि-वेदि की पूँछ, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.30 (इस स्थल पर कार्यनिर्वाहक ऋत्विक् द्वारा यजमान का प्रोक्षण होता है और यहाँ एक विशिष्ट साम का गायन भी होता है); ऐ.आ. 5.1. 2.5; आश्व.श्रौ.सू. 4.6.25; 4.10.10।

अग्निपूजा स्त्री. अग्नि की पूजा, हि.श्रौ.सू. 26.1.136 = आप.ध.सू. 1 (1) 4.17; हि.श्रौ.सू. 27.5.185।

अग्निप्रचरण न. तु. अग्निपरिचरण, पार.गृ.सू. 2.5.11।

अग्निप्रणयन वि. (अग्निः प्रणीयतेऽनेन) (छड़ी) आहवनीय-अग्नि को आगे ले जाने के लिए अभिप्रेत (प्रयुक्त होने वाली) मा.श्रौ.सू. 1.5.3.19; न. धार्मिक विधि से पवित्र अग्नि को आगे ले जाना (गार्हपत्य से आहवनीय तक; सोम याग में आहवनीय से उत्तरवेदि तक); आश्व.श्रौ.सू. 3.1.7; तु. आप.श्रौ.सू. 17.14.6; ला.श्रौ.सू. 5.1.7; जलता हुआ इध्मकाष्ठ परिवहन का कार्य करता है, हि.श्रौ.सू. 4.2.1; अग्नि को आगे ले जाने के लिए नियत (समय), मा.श्रौ.सू. 5.1.3.12; बौ.श्रौ.सू. 6.24 (पशु-याग); आप.श्रौ.सू. 11.5.9-19।

अग्निप्रणयनीय वि. (स्त्री.आ) अग्नि को आगे ले जाते समय बोले जाने वाले (मन्त्र), आश्व.श्रौ.सू. 2.17.2; 4.1.26; शां.श्रौ.सू. 3.14.13; मा.श्रौ.सू. 5.2.8.2; ऋ.वे. 10.176.2-4, इत्यादि; अग्निप्रणयन से सम्बद्ध (अग्नि की छड़ी = समिधा) वैखा.श्रौ.सू. 1.12; 10.5; देखें 'प्र देव देव्या धिया', श्रौ.को. (सं.) II. 162।

अग्निप्रतिष्ठापन न. (अग्नेः प्रतिष्ठापनम्) अग्नि को स्थापित करना, अग्नि.गृ.सू. 1.6.3.58।

अग्निप्रथम वि. (अग्निः प्रथमः यत्र) अग्नि की प्रधानता की स्थिति से युक्त (अग्नि की प्रमुखता वाला) भा.श्रौ.सू. 12.17.2 (अग्निसोम-प्रणयन); बौ.श्रौ.सू. 2.26 : 12; 'अग्निप्रथमाः सोमप्रथमा वा प्राञ्चो अभिप्रव्रजन्ति' आ.श्रौ.सू. 11.17.3।

अग्निप्रदानमन्त्र पु. (अग्नये प्रदानाय मन्त्रः) (मृत शरीर) को जलाने के कृत्य से सम्बद्ध मन्त्र, गो.स्मृ. 3.52; कर्मप्रदीप 3.4.7।

अग्निप्रवेश पु. (अग्नौ प्रवेशः) अग्नि में प्रवेश (द्वारा आत्म-बलिदान करना) वसि.ध.सू. 29.4।

अग्निप्रवेशन न. अग्नि में प्रवेश (द्वारा आत्म-बलिदान करना) मा.श्रौ.सू. 8.25.15 (वानप्रस्थ)।

अग्निप्रस्कन्दिन् वि. (अग्नेः प्रस्कन्दः = परित्यागः अस्य) जिसने पवित्र (श्रौत) अग्नि का परित्याग कर दिया है (अर्थात् अग्निपूजा का परित्याग कर दिया है) गो.ब्रा. 1.2.4।

अग्निप्रहरण न. (अग्नेः प्रहरणम्) पवित्र अग्नि को आगे ले जाना, कौषी.ब्रा. 9.4 (= अग्निप्रणयन); वैखा.श्रौ.सू. 10.10.7 (मथित = मन्थनोत्थ अग्नि ले जाना और उसी का आहवनीय में निक्षेप करना)।

अग्निप्रायश्चित्ति स्त्री. अग्नि-वेदि के निर्माण के दौरान होने वाली त्रुटियों के लिए किया जाने वाला प्रायश्चित्त, श.ब्रा. 6.6.4.11।

अग्निबीज न. (अग्नेः बीजम् = बीजाक्षरम्) अग्नि-देवता का प्रतिनिधि बीजाक्षर, अर्थात् 'र' अग्निवे. गृ.सू. 2.5.6.19।

अग्निभाण्ड न. औपासन गृह्य-अग्नि को आविष्ट करने वाला बर्तन, हि.पि. 35.5; 19.1-2।

अग्निमदुक्थ्य पु. (अग्निमान् उक्थ्यः) उक्थ्य याग जिसमें अग्निचयन समाहित हो, मा.श्रौ.सू. 6.3.5.36।

अग्निमन्थ पु. मन्थन से उत्पन्न अग्नि 'अग्निमन्थेन पचेत्' मा.श्रौ.सू. 4.1.5।

अग्निमन्थन न. (ऊपर एवं नीचे की अरणि > लकड़ी) के घर्षण द्वारा अग्नि को उत्पन्न करना, आश्व.श्रौ.सू. 4.5.2; का.श्रौ.सू. 5.4.33; 20.26.1; मा.श्रौ.सू. 5.1.3.17; अ.वे. (परि.) 68.5.28।

अग्निमन्थन

अग्निमन्थनीया वि. (स्त्री.) (अग्निमन्थन + छ + टाप्) मन्थन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करने से सम्बद्ध (ऋचा) आश्व.श्रौ.सू.

2.16.1, शां.श्रौ.सू. 3.13.15; 5.7.5; 5.15.4; मा.श्रौ.सू.पृ. 132.2. अग्निमन्थीय (मन्त्र) निम्नलिखित हैं : अभि त्वा देव सवितः ऋ. 1.24.3; मही द्यौ : ऋ.वे. 1.22.13; त्वामाग्ने पुष्करादिति 6.16.13; उत्तर 6.16.14-15 (अर्थात अगले दो मन्त्र) 6.16.15 के बाद यति के साथ; उत ब्रुवन्तु जन्तवः (इति जाताय) ऋ. 1.74.3; आ यं हस्ते न खादिनं (हस्तेन धार्यमाणाय) 6.16.41; उत्तरे 6.16.42-43 (अर्थात् अगले दो मन्त्र) 'अग्निना अग्निः समिध्यते' ऋ.वे. 1.12.6; त्वं ह्यग्ने अग्निना, ऋ.वे. 8.43.14; त्वं मर्जयन्त ऋ.वे. 8.43.14; त्वं मर्जयन्त ऋ.वे. 8.84.8; यज्ञेन यज्ञमयजन्त ऋ. 1.164.50; देखें श्रौ.को. (सं) II. 69-70, 203।

अग्निमान न. अग्निवेदि के लिए स्थान को नापने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 16.7.28।

अग्निमारुत न. इष्टि के अन्तर्गत एव विशिष्ट कर्मकाण्डीय युक्ति जिसमें दो आज्यभाग की पुरोनुवाक्या (यें) हैं 'हुवे वातस्वनम् -----' और 'वृषा सोम द्युम्नम् असि ----' (मै.सं. 4.11.2). संयाज हैं 'यं त्वा देवापिः' एवम् 'अग्ने बाधस्व' (मै.सं. 4.11.2); मा.श्रौ.सू. 5.1.6.21, 5.1.6.38 (स्विष्टकृत् आहुति के लिए)।

अग्निमिन्ध पु. (अग्निमिन्धते इति), अध्वर्यु नाम का ऋत्विक् (जो अग्नि को प्रज्वलित करता है), वा.सं. 25.28; वि.जो अग्नि को प्रज्वलित करता है, मा.श्रौ.सू. 9.5.4.33।

अग्निमीयाम पु. साम-विशेष का नाम, ला.श्रौ.सू. 6.11.3, पाठ्य के पूर्व प्रतिहर्ता ('प्रतिहार' इस साम के लिए 'स्तोभ' का गायन करता है)।

अग्निमुख वि. अग्निदेव की प्रथमता वाला, तै.सं. 1.6.3.3; बौ.श्रौ.सू. 22.25 : 11; सामने (रखी हुई) अग्नि से (युक्त) वा.श्रौ.सू. 1.6.4.31, न. एक (कर्मकाण्डीय) कृत्य का आरम्भ, बौ.पि. 2.7.2; बौ.गृ.सू. 1.3.32; एक गृह्य कृत्य (कर्म) का नाम (देखें आप.गृ.सू. 9.19, 2.5 'दर्शपूर्णमासवत्'); संस्कारकौस्तुभ (सूची) इसके अन्तर्गत अग्नि-स्थापना, ध्यान इत्यादि को समाहित करता है, जो आहुति-अर्पण के उपक्रमानुकूल कर्म हैं। श्रौ.को. (अं) 1.ii.1121

अग्निमुखान्त न. गृह्य आहुतियों से पहले श्रौत-अग्नि की स्थापना एवं इसकी प्रशंसा करने के कृत्य, अग्निवे.गृ.सू. 2.5.1 : 22 (52-1) = 2.2.2 (52.13); 2.5.1 (77-10); वैखा.गृ.सू. 3.2. बौ.गृ.सू. 1.3.32. बौ.पि. 2.7.2।

अग्निमुखोपधमन न. पवित्र-अग्नि को मुख से फूँकना, गौ.ध.सू. 1.9.32।

अग्निमेध पु. एक याग का नाम जिसमें (स्वयम्) अग्नि को आहुति के रूप में अर्पित किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 4.19.39।

अग्नियुक्त वि. अग्नि-देवता से युक्त, हि.श्रौ.सू. 14.6.8 (उत्तमान् अग्नियुक्तान् पुरुषान् ब्रह्मा अभिष्टौति)।

अग्नियूप पु. एक ऋषि का नाम, ऋग्वेदानुक्रमणी, 2.10.116।

अग्नियोग पु. अग्नि (वेदि) के योजन से सम्बद्ध आहुति का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.9, 'अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन' (वा.सं 18.51 इत्यादि) मन्त्र से, मी.सू. 11.3.17; शा.दी. 823.1 (1.3.9) पर।

अग्नियोजन न. [(चबूतरे की प्रतिष्ठा के अन्त में तीन मत्रों को मन्दस्वर से बोलते समय तीन परिधियों = आवरण छड़ियों के स्पर्श से युक्त अग्निवेदि (के चबूतरे को)] सज्जित करने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 17.23.1; का.श्रौ.सू. 18.6.16; देखें 18; श.ब्रा. 9.4.4.1-3; अग्निं युनज्मि ----वा.सं. 18.51; इमौ तौ पक्षौ----वा.सं. 18.52; इन्दुर्दक्षः श्येन ---- वा.सं. 18.53; वि. अग्नि (अग्निवेदि) के संयोजन (जोड़ने) से सम्बन्ध रखने वाला, जैसे-अग्निं युनज्मि (वा.सं. 18.51; तै.सं. 4.7.13.1, बौ.श्रौ.सू. 20.23:2, श.ब्रा. 9.4.4.3)।

अग्नियोनि स्त्री. अग्न्याधान के लिए अग्नि का स्रोत, कर्म प्र. 1.6.1 (टीका. वैश्यकुलाद् अम्बरीषादेः)।

अग्निरहस्य न. अग्निचयन-पुष्पिका के सैद्धान्तिक बिन्दुओं को प्रतिपादित करने वाले शतपथ ब्राह्मण के दसवें काण्ड का नाम, श.ब्रा. X।

अग्निराजन् पु. (राज्ञे अग्निः यस्य) राजा के लिए अग्नि को रखने वाला शां.श्रौ.सू. 4.21.8; काठ.गृ.सू. 24.12।

अग्निरूप न. अग्नि का रूप (संख्या में 8); श.ब्रा. 6.1.3.18; अग्निवेदि की एक ईंट का नाप, आप.श्रौ.सू. 17.5.11; 'अप्सुषद् असि इति पञ्च अग्निरूपाणि'।

अग्निरेतस् न. (अग्नेः रेतः) अग्नि का बीज, तै.ब्रा. 1.2.1.14; बौ.श्रौ.सू. 2.15:12; मा.श्रौ.सू. 1.5.2.4, हि.श्रौ.सू. 6.5.10।

अग्निवत् क्रि.वि. (अग्नि + वति) जैसा अग्निचयन के विषय में 'अग्निवद् वा दीक्षाः' का.श्रौ.सू. 21.1.45; अग्निवे.गृ.सू. 8.23; बौ.पि. 1.18.21; वि. अग्नि से युक्त (अग्नि-देवता का गुण) अग्नि को अर्पित किया जाने वाला अग्निवत्, अष्टाकपाल-पुरोडाश तै.सं. 2.2.4.5; बौ.श्रौ.सू. 2.123 : 21; बौ.श्रौ.सू. 9.4 : 3; हि.श्रौ.सू. 15.3.21; वैखा.श्रौ.सू. 20.18; ऐ.ब्रा. 32.5 (816); बौ.श्रौ.सू. 1.18 (18.15) आश्व.श्रौ.सू. 3.13)।

अग्निवरुण पु. (द्वि.व.) (अग्निश्च वरुणश्च) अग्नि एवं वरुण (देवता) काठ. सं.।

अग्निवर्ण वि. (अग्नेर्वर्णः इव वर्णः यस्य) तपकर लाल (शुद्धीकरण के लिए वस्तुओं को आग पर तपाया जाता है) बौ.श्रौ.सू. 1.4.4; अग्नि के रङ्ग (वर्ण) वाला तै.आ. 10.1.16।

अग्निवारुणी (ऋच्) स्त्री. ऋक्, ऋग्वेद 4.14; वा.सं. 21.3 (त्वन्नो अग्ने) ---- अग्नि एवं वरुण को सम्बोधित (यद्यमेध्यम् अयज्ञीयं वा अभ्युपविशेत्), भार.श्रौ.सू. 11.18.9 (प्रवर्ग्य-प्रायश्चित्तानि)।

अग्निवाह पु. (अग्निं वहति इति, अग्नि + वह् + अण् द्र-कर्मण्यण, पा 3.2.1) (पवित्र-अग्नि का वहन करने वाली गाड़ी में जुता हुआ) बैल , आप.श्रौ.सू. 18.19.3।

अग्निविकार पु. अग्नि का विकल्प या स्थानापन्न, मी.सू. 11.21.28।

अग्निविक्रय पु. अग्नि की विक्री (अग्नि को बेचना) बृहत्-सर्वानुक्रमणी 3.15।

अग्निविच्छेद पु. (अग्नेः विच्छेदः) अग्नि-संरक्षण का असातत्य (उच्छेद), गौ.पि.मे. 1.1.29।

अग्निविद् वि. (अग्निं वेत्ति इति, अग्नि + विद् + क्विप्) (वह व्यक्ति) जो अग्निचयन को जानता है (अग्निचयन को जानने वाला), मै.सं. 3.4.8; आप.श्रौ.सू. 16.10.6; वैखा.श्रौ.सू. 18.7।

अग्निविधा स्त्री. अग्निवेदि के निर्माण की प्रक्रिया 'अग्निविधया अग्निचितिः श्मशानं करोति', श.ब्रा. 13.8.1.17।

अग्निविनाश पु. पवित्र अग्नि का नाश (लोप) बौ.श्रौ.सू. 29.12 : 9-16।

अग्निविनियोग पु. यज्ञीय अग्नियों का उचित निर्दिष्टीकरण (विनियोग = प्रयोग) मा.श्रौ.सू. 8.25.2।

अग्निविपराणयनीया स्त्री. अग्नि को पीछे ले चलने अथवा दूर ले जाने के लिए एक आहुति का नाम, मा.श्रौ.सू. 1.5.4.20; आहवनीय अग्नि के सांस्कारिक स्थापन के बाद एवं इस पर 'समुद्राद् ऊर्मिः' इत्यादि के साथ तीन समिधायें रखे जाने के बाद इस (आहवनीय) को समर्पणीय एक आहुति का नाम [उस आहुति के लिए बोला गया मन्त्र है 'ये अग्नयो दिवो ----', श्रौ.को. (अं) I.i. 48]।

अग्निविमोक पु. अग्नि के वियोजन में प्रयुक्त मन्त्र (वा.सं. 18.54) का नाम, मा.श्रौ.सू. 158.15; अग्नि को विमुक्त करने की आहुति।

अग्निविमोचन न. (यज्ञायज्ञीय स्तोत्र के पहले यज्ञीय कर्तव्यों से) अग्नि का वियोजन, महीधर वा.सं. 18.54 पर; इसमें दो मन्त्रों के जपपूर्वक परिधियों को दो पश्चिमी बिन्दुओं पर छूने का कृत्य समाहित है, जहाँ दोनों परिधियां तीसरी को छूती हैं (अग्नेर्विमोकं जुहोमि), आप.श्रौ.सू. 17.23.10 (कैलेण्ड तै.सं. 5.5.10.7 'इमं स्तनं ऊर्जस्वन्तं धयापाम्' मन्त्र को इस कृत्य से सम्बद्ध सन्दर्भित करते हैं), किन्तु दो मन्त्रों को जपते हुए (दिवो मूर्धा, वा.सं. 18.53-54), का.श्रौ.सू. 18.6.18।

अग्निविमोचनीया वि. (स्त्री.) अग्नि के वियोजन के कृत्य से सम्बद्ध (मन्त्र), हि.श्रौ.सू. 12.7.7; का.श्रौ.सू. 18.6.18, 'दिवो मुर्धा----' इत्यादि (वा.सं. 18.51-54)।

अग्निविहरण न. पवित्र-अग्नि का वितरण (अग्नीध्र-अग्नि-खर से सदस् में छः धिष्ण्याओं में); सायण ऐ.ब्रा. 10.4. (266) पर।

अग्निवेला स्त्री. अग्निहोत्र के अनुष्ठान के लिए नियत (निर्धारित) समय (प्रातः एवं सायम्) मा.श्रौ.सू. 13.5; आश्व.श्रौ.सू. 4.6.5।

अग्निवेश्य न. एक वैदिक ऋषि का नाम, जै.ब्रा. 1.24।

अग्निव्रत न. एक व्रत (प्रतिज्ञा) का नाम, वारा.गृ.सू. 7.4; अग्नि में अर्पण से सम्बद्ध।

अग्निशरण न. (अग्नेः शरणम्) अग्नि का (पवित्र) स्थान, कौशि.सू. 120.1।

अग्निशाल न. अग्नि-शाला, अ.वे. 9.3.7।

अग्निशाला स्त्री (अग्नेः शाला) अग्नि-शाला, वैखा.श्रौ.सू. 1.2; वैखा.गृ.सू. 1.8; 3.3; 4.11।

अग्निशिखा स्त्री. (अग्नेः शिखा) अग्नि की लपट, श.ब्रा.1.9.3.2।

अग्निश्रोणि (स्त्री) (अग्नेः श्रोणिः) (महा) वेदि (महावेदि) का नितम्ब या पिछला भाग, का.श्रौ.सू. 17.2.11; अग्निक्षेत्र अथवा चयन के अन्तर्गत चित्र देखें।

अग्निष्टुत् पु. एक 'सुत्या' दिन वाले सोम-याग का नाम, तै.सं. 7.2.5.5; पाप को दूर करने के लिए उपयोगी, 7.3.7.1; 7.4.3.3; पञ्च.ब्रा. 17.6.4; 17.7.4; 17.8.1; 17.9.1; 18.7.1; 18.7.4; 18.8.1; जै.ब्रा. 2.134; 2.135; 2.136; आश्व.श्रौ.सू. 3.7.22; शां.श्रौ.सू. 4.5.1.1; बौ.श्रौ.सू. 2.356 : 3; ला.श्रौ.सू. 1.4.1. सर्वमेध याग का प्रथम दिन, श.ब्रा. 13.7.1.6।

अग्निष्टोम पु. (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशिन्, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्यामः इन सात सोम यागों में) प्रथम सोमयाग का नाम जिसमें 12 स्तोत्र एवं 12 शस्त्र होते हैं। (उक्थ्य, षोडशिन् एवं अतिरात्र के साथ) यह ज्योतिष्टोम के रूप में भी जाना जाता है (एवं) एक सवन (दबाने) 'सुत्या' दिन वाले सोम यागों के लिए प्रतिदर्श (प्रकृति) है, अ.वे. 9.6.40, इत्यादि; तै.सं. 1.6.9.1; जै.ब्रा. 1.4; 1.38; षड्.ब्रा. 4.2.1. पञ्च.ब्रा. 4.1.11; तै.ब्रा. 1.3.2.1; बौ.श्रौ.सू. 3.188.3; आप.श्रौ.सू. 10.2.3; 'सर्वक्रतूनां प्रकृतिः', आप.श्रौ.सू. 22.1.2; का.श्रौ.सू. 7.1.4; 2. अग्नि की प्रशंसा में गाया जाने वाला स्तोत्र, ऐ.ब्रा. 14.5 = यज्ञायज्ञीय स्तोत्र, आप.श्रौ.सू. 13.15.6; वि. अग्निष्टोम-संज्ञक स्तोत्र से समाप्त होने वाला, तै.ब्रा. 1.2.2.1; 'अग्निष्टोमा ह एव सर्वे कार्याः', पञ्च.ब्रा. 4.5.20 (टीका-अग्निष्टोम संस्थाः), यद्यपि तीन सत्रों के दौरान सोम-रस-अर्पण का सवनीय दिन का अनुष्ठान एवं सवनीय पशु मुख्य अनुष्ठान हैं, इसके पूर्ववती चार दिन की समय-सारणी होती है (जिनमें कुछ कृत्य सम्पन्न होते हैं)। प्रथम दिन याग-सम्पादनार्थ निवेदन करने के लिए सोमप्रवाक को ऋत्विजों के पास भेजा जाता है (सोमप्रवाक ऋत्विजों से यज्ञ करने का निवेदन करता है)। इसके बाद ऋत्विजों का वरण, मधुपर्क, यजमान की दीक्षा, दीक्षणीयेष्टि, प्राग्वंश का निर्माण क्रमशः सम्पन्न किये जाते हैं। दूसरे दिन निम्नलिखित कृत्य सम्पन्न होते हैं। प्रायणीयेष्टि, सोम-क्रयण, आतिथ्येष्टि, प्रातः—सायम् आप्यायन से अनुगत प्रवर्ग्य एवं उपसद् का अनुष्ठान किया जाता है, तीसरे दिन प्रवर्ग्य एवं उपसद् दुहराये जाते हैं, जिसके बाद हविर्धान-मण्डप धिष्ण्या (यों) के साथ सदस्, अग्नीध-मण्डप (छप्पर) एवं मार्जालीय का निर्माण होता है। चतुर्थ दिन प्रवर्ग्य एवं उपसद् (दोनों दो बार) का अनुष्ठान किया जाता है तदनन्तर सोम एवं अग्नि का (उच्चतर वेदि) महावेदि में स्थानान्तरण एवं अग्निषोमीय पशुयाग का अनुष्ठान किया जाता है। सायंकाल में वसतीवरी-संज्ञक जल को इकट्ठा किया जाता है और (उसे) महावेदि में निक्षिप्त किया जाता है।

अग्निष्टोमकल्पा पु. (अग्निष्टोम + कल्पक् + टाप) अग्निष्टोम के समान उसी कर्मकाण्डीय कृत्य का अनुकरण अथवा युक्तता जैसा कि अग्निष्टोम याग में, वैखा.श्रौ.सू.17.1।

अग्निष्टोमचमस पु. (अग्निष्टोमाय नियतः चमसः) अग्निष्टोम (सोम) याग के लिए निर्धारित (नियत) पात्र (प्याले), आप.श्रौ.सू. 14.1.6.8; मा.श्रौ.सू. 88.19; 158.10; 200.14।

अग्निष्टोमचमसगण पु. (अग्निष्टोमाय नियतानां चमसानां गणः) अग्निष्टोम सोमयाग में प्रयुक्त होने वाले प्यालों के एक वर्ग का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 17.1.4।

अग्निष्टोमता स्त्री. (अग्निष्टोम + तल् + टाप्) अग्निष्टोम (नाम) का महत्त्व, जै.ब्रा. 1.240।

अग्निष्टोमपक्ष वि. दोनों पक्ष (दो तरफ) में अग्निष्टोम वाला अर्थात् पहले एवं अन्त में (जिसके आदि एवं अन्त दोनों पक्षों में अग्निष्टोम हो) का.श्रौ.सू. 23.5.20।

अग्निष्टोमप्रायण वि. (प्रायणे = प्रारम्भे अग्निष्टोमः यस्य) प्रारम्भ में अग्निष्टोम वाला (जिसके आरम्भ में अग्निष्टोम हो) तै.सं. 7.2.5.1; काठ.सं. 34.8।

अग्निष्टोमभक्ति स्त्री. अग्निष्टोम साम का विभाजन (विभाग) अग्निष्टोमभक्तिर्हि स्वादिष्टा उक्थ्या भक्तिर्, 'यस्ते मद', निदा.सू. 9.8.1।

अग्निष्टोममुख वि. (अग्निष्टोमः प्रमुखः यस्मिन्) (सुत्याओं की शृङ्खला में) अग्निष्टोम याग के प्राथम्य वाला (अर्थात् जिसमें अग्निष्टोम प्रथम हो)। पञ्च.ब्रा. 22.9.1; आप.श्रौ.सू. 22.236; हि.श्रौ.सू. 17.8.24; पञ्च.ब्रा. 24.15.1 = आप.श्रौ.सू. 23.8.3; मा.श्रौ.सू. 200.22।

अग्निष्टोमयाजिन् पु. अग्निष्टोम याग करने वाला, पञ्च.ब्रा. 8.6.13।

अग्निष्टोमविष्टुति स्त्री. अग्निष्टोम के लिए-मन्त्र-पुनरुक्तियों की योजना, जै.श्रौ.सू. 1.95।

अग्निष्टोमसंस्थ वि. अग्निष्टोम स्तोत्र (अर्थात् यज्ञाङ्गयीय) से समाप्त या पर्यवसित होने वाला, शा.श्रौ.सू. 13.21.9; निदा.सू. 149.11; ला.श्रौ.सू. 4.5.11; ० स्था अग्निष्टोम स्तोत्र से जिस यज्ञ का अन्त होता है, मा.श्रौ.सू. 197.6।

अग्निष्टोमसद् वि. अग्निष्टोम याग के अनुष्ठान में भाग लेने वाला, श.ब्रा. 4.2.4.7; 4.2.4.1-2, ० सद्य न. जो अग्निष्टोम में भाग लेता है, श.ब्रा. 4.2.4.12।

अग्निष्टोमसामन् न. अग्निष्टोम याग के बारहवीं प्रशस्ति (स्तोत्र) में प्रयुक्त होने वाले एक सामवेदीय गान का नाम, तै.स. 1.8.18.1; मै.सं. 4.4.9; तै.ब्रा. 1.8.2.7; श.ब्रा. 13.5.4.10 = 13.5.4.20; आप.श्रौ.सू. 18.20.22; हि.श्रौ.सू. 13.7.10; 'यज्ञायज्ञीयं अग्निष्टोमसाम', पञ्च.ब्रा. 5.3.6 = शां.श्रौ.सू. 18.23.4; 'विशोविशीयम्', पञ्च.ब्रा. 18.5.22 आश्व.श्रौ.सू. 4.2.7; 'वारवन्तीयम्', पञ्च.ब्रा. 5.3.8 = आप.श्रौ.सू. 22.6.10; दाशस्पत्या, नार्-मेथ, जै.ब्रा. 1.170।

अग्निष्टोमस्तोत्र न. 1. अग्निष्टोम से सम्बद्ध अथवा अग्निष्टोम याग में गाया जाने वाला एक स्तोत्र, काठ.सं. 33.4; 2. अग्निष्टोम याग का अन्तिम स्तोत्र, अग्निमारुतशस्त्र का समरूप 'यज्ञायज्ञीय' संज्ञक गान, मा.श्रौ.सू. 2.5.2.19; हि.श्रौ.सू. 9.4.10, आप.श्रौ.सू. 13.15.3, यह 'एकविंश स्तोम के साथ है तु. श्रौ.को. (सं.) II. (I) 453.54. सभी ऋत्विक् जो गान में भाग लेते हैं एवं गान-मण्डली के सदस्य एक साथ कानों सहित अपने शिरस् को ढक लेते हैं (आप.श्रौ.सू. 13.15.5 के अनुसार वैकल्पिक)।

अग्निष्टोमस्तोम पु. अग्निष्टोम याग के एक स्तोत (जो ऋचाओं की संख्या पर आश्रित है) के गायन के लिए मन्त्र-पुनरुक्तियों का स्वीकृत प्रतिदर्श, शा.श्रौ.सू. 15.6.6-7 (त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश एवम् एकविंश)।

अग्निष्टोमायन न. एक सत्र याग का नाम जिसमें सम्पूर्ण वर्ष भर अग्निष्टोम याग का अनुष्ठान किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 26.12:6; आश्व.श्रौ.सू. 7.1.18, जै.ब्रा. 2.50 (सभी दिनों में)।

अग्निष्टोमीयस्तोत्र न. बारहवाँ और अन्तिम स्तोत्र जो अग्निष्टोम याग का प्रतीकरूपात्मक है, वैखा.श्रौ.सू. 16.9.1।

अग्निष्टोम्य वि. अग्निष्टोम से सम्बन्धित, ला.श्रौ.सू. 8.1.16, निदा.सू. 4.5.6।

अग्निष्ठ

अग्निष्ठ पु. केन्द्रीय यज्ञीय स्तम्भ का नाम (11 या 21 शृङ्खला में; वह (एक) जो वेपि के निकटतम पूर्व की ओर आहवनीय अग्नि के सम्मुख स्थित होता है, तै.ब्रा. 3.8.20.1; आप.श्रौ.सू. 17.14.6; 20.9.6; यह रज्जुदल के काष्ठ से निर्मित होता है, का.श्रौ.सू. 20.4.7; न. गाड़ियों का विशेषण, मै.सं. 1.5.13; 'अग्नि के पास' (दर्श), आप.श्रौ.सू. 1.2.10; आप.श्रौ.सू. 13.15.3; स्त्री. आहवनीय के सम्मुख या निकट स्थित यज्ञीय स्तम्भ का कोण, काठ.सं. 26.5 = कपि.क.सं. 41.3; श.ब्रा. 3.7.1.13; भार.श्रौ.सू. 7.8.13; आप.श्रौ.सू. 7.10.9; 7.11.19; 9.20.7; मा.श्रौ.सू. 1.8.2.28, शां.गृ.सू. 1.20.3; कौषी.गृ.सू. 1.12.8; वि. (स्त्री.आ) अग्नि (अर्थात् आहवनीय) के निकट खड़ा होने वाला (यज्ञीयस्तम्भ के कोण के बारे में कथित), तै.सं 6.3.3; 5 (रथवाहन), तै.सं. 3.3.10; काठ.सं. 21.10; (एक गाड़ी के बारे में उक्त) बौ.श्रौ.सू. 1.2 : 2; भार.श्रौ.सू. 1.2.2; भार.श्रौ.सू. 1.3.2; आप. श्रौ.सू. 1.2.10; मा.श्रौ.सू. 7.20; वैखा.श्रौ.सू. 3.3; (केन्द्रीय स्तम्भ) अग्नि के सन्निकट स्थित (खड़ा हुआ), तै.ब्रा. 3.8.20.1; 3.9.1.2; श.ब्रा. 3.7.2.4; 13.4.4.5; 6; शां.श्रौ.सू. 16.3.4; आप.श्रौ.सू. 14.5.12; मा.श्रौ.सू. 194.13; 15।

अग्निष्ठप्रथम वि. आहवनीय के निकटतम इसके पूर्व में स्थित यज्ञीय स्तम्भ से प्रारम्भ होने वाला, आप.श्रौ.सू. 14.5.6; हि.श्रौ.सू. 9.2.4।

अग्निष्ठवर्जम् क्रि.वि. आहवनीय के निकटतम स्थित यज्ञीय स्तम्भ के बिना।

अग्निष्ठादेश पु. आहवनीय अग्नि के निकटतम यज्ञीय-स्तम्भ के कोण का क्षेत्र (स्थान), का.श्रौ.सू. 6.3.5; काठ.सं. 26.5।

अग्निष्ठान्तम् क्रि.वि. आहवनीय अग्नि के निकटतम यज्ञीयस्तम्भ से समाप्त होने वाला, वारा.श्रौ.सू. 3.2.6.16। (अङ्गनादि परिव्ययनान्तमग्निष्ठान्तं सम्मिनोति)।

अग्निष्ठाश्रि स्त्री. आहवनीय के निकटतम (इसके) इसके पूर्व में (स्थित) यज्ञीय स्तम्भ का कोण, आप.श्रौ.सू. 7.3.2; वैखा.श्रौ.सू. 10.2।

अग्निष्वात्त वि. अग्नि द्वारा भुक्त (पितर्), ऋ.वे. 10.15.11 = तै.सं. 2.6.12.2; 'अमीवान्या' गौ के दूध में अर्पित (डाला गया) 'मन्थ' तै.सं. 1.8.5.1; का.श्रौ.सू. 5.8.12, अर्पित 'धाना' (यें), काठ.सं. 9.6; आप.श्रौ.सू. 8.13.16; वे वही हैं जैसे 'अयज्वानो गृहमेधिनः', मै.सं. 1.10.18; तै.ब्रा. 1.6.9.6 = आप.श्रौ.सू. 8.15.7; श.ब्रा. 2.6.1.7; अर्पित 'धूम्र रोहित त्रैयम्बक' या आहुतियाँ, आप.श्रौ.सू. 20.14.13; 'मन्थ' के लिए प्रयुक्त यव (जौ) मा.श्रौ.सू. 47.14; हि.श्रौ.सू. 5.4.11; 14.3.18; वारा.श्रौ.सू. 1.7.4.12 के अनुसार, 2. बलि के भुने हुए (अङ्ग) मै.सं. 4.13.7; काठ.सं. 18.21; वा.सं. 21.43; तै.ब्रा. 3.6.11.2।

अग्निसंयुक्त वि. (अग्निना संयुक्तः) (आहवनीय) अग्नि से जुड़ा हुआ (आह्वान) (वरुण-प्रघास पर्व में दो उत्तर वेदियों पर दो आहवनीयों को इङ्गित करने के लिए केवल एकवचन का प्रयोग किया गया है) हि.श्रौ.सू. 5.2.7।

अग्निसंयोजन वि. पवित्र अग्नि के संयोग से जुड़ा हुआ (सत्र याग में) बौ.श्रौ.सू. 23.9.11।

अग्निसंयोजनीया स्त्री. अग्निचयन की (एक इष्टि अथवा) एक आहुति का नाम बौ.श्रौ.सू. 23.9.11।

अग्निसंसर्ग पु. श्रौत अग्नि का परिचरण, बौ.श्रौ.सू. 4.11 : 1; अग्नि-ज्वलन से सम्पर्क, कौशि.सू. 93.16।

अग्निसंस्कार पु. पवित्र अग्नि का संस्कार, पवित्र-अग्नि स्थापना से सम्बद्ध कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 23.19.16; वारा.गृ.सू. 5.5।

अग्निसंस्कारार्थम् क्रि.वि. पवित्र अग्नि के संस्कार के लिए, बौ.श्रौ.सू. 24.17.5।

अग्निसंस्पृष्टा वि. स्त्री. (अग्निना संस्पृष्टा) अग्नि द्वारा छुई गयी (अग्नि द्वारा जलाई गयी) अ.वे.परि. 22.3.2।

अग्निसत्क्रिया स्त्री. अग्नि का सत्कार (अग्नि की पूजा), पवित्र अग्नि को सँभाले रखना, कर्मप्र. 3.5.16।

अग्निसमाधान न. (अग्नेः समाधानम्) स्मार्त अग्नि की स्थापना, काठ.गृ.सू. 45.2, गो.गृ.सू. 1.1.14।

अग्निसमारोप पु. (अग्नेः समारोपः, सम् + आ रुह् + णिच् + घञ्) दो ऋचाओं 'जातवेदो भुवनस्य रेत' इत्यादि के साथ ब्रह्मौदन अग्नि को दो काष्ठीय वेधनी के खाँचों में उनको गार्हपत्य पर तप्त कर अवस्थित करना, श्रौत.प.नि. 58.390।

अग्निसमारोपण न. (अरणि के खाँचों में अथवा अन्यथा) पवित्र अग्नि का अवस्थान करना, बौ.श्रौ.सू. 29.5.20 (अग्निहोत्र चेष्टायाम् आत्मन्यग्निसमारोपणं विद्यते)।

अग्निसमीप न. अग्नि का सामीप्य अथवा नैकट्य (निकटता), वा.श्रौ.सू. 20.2.3; बौ.पि. 2.10.2।

अग्निसम्मार्ग

अग्निसम्मार्ग न. (अग्नेः सम्मार्गः, सम् + मृज् + घञ्) अग्नियों को साफ करना, श्रौत.प.नि. 25. 205।

अग्निसम्मार्जन न. 'अग्ने वाजजित्' इत्यादि (मन्त्र) से सांस्कारिक रूप से अग्नि को साफ करना, वा.सं. 2.7; हि.श्रौ.सू. 5.2.8।

अग्निसव पु. अग्निवेदि के निर्माण एवं अभिषेक से युक्त एक सोम याग, तै.सं. 5.6.21 (तु. सायण-'अभिषेकयुक्तो यज्ञः सवः'), श.ब्रा. 9.3.4.7; 9; 10.1.5.3; बौ.श्रौ.सू. 2.60 : 16।

अग्निसहम् क्रि.वि. लम्बे समय तक अग्नि को बनाए रखते हुए बौ.श्रौ.सू. 27.8 : 4।

अग्निसालोक्य न. अग्नि-लोक में संयुक्त-निवास (अग्नि के लोक में समान रूप से रहना) विष्णुस्मृ. 92.13।

अग्निस्तम्भ पु. भारद्वाज के वंशजों में एक का नाम (आपस्तम्ब एवं वायुस्तम्ब के साथ), बौ.श्रौ.सू. 3.431:1।

अग्निस्तोम पु. (अग्नेः स्तोमः) अग्नि की प्रशस्ति, (स्तुति) ऐ.ब्रा. 14.5 = अग्निष्टोम।

अग्निस्तोत्र न. अग्नि की स्तुति, एक स्तोत्र, यथा एक शस्त्र से तुलित (तुलना किया हुआ) है, पञ्च.ब्रा. 17.5.1।

अग्निस्थान न. अग्नि का स्थान, जै.गृ.सू. 1.23:12।

अग्निहवन न. (अग्नौ हवनम्) पवित्र अग्नि को एक आहुति अर्पित करना, गौ.ध.सू. 1.2.8।

अग्निहविस् न. (अग्नये हविः) अग्नि के लिए समर्पणीय आहुति-द्रव्य, मी.सू. 8.4.8।

अग्निहुत् वि. (अग्नौ जुहोति इति, अग्नि + हु + क्विप्) अग्नि में आहुति देने वाला (अग्नि में समर्पित करने वाला), वा.सं. 38.28; मा.श्रौ.सू. 81.5 (अग्निहुतः इन्द्रपीतस्य मधुमतः - --भक्षयामि)।

अग्निहुत वि. (अग्नौ हुतम्) अग्नि में अर्पित (हुत), वैता.सू. 19.16।

अग्निहोतृ वि. (देव) अग्नि है होता (नामक ऋत्विक्) जिसका, (वह देवता) ऋ.वे. 10.66.8, तै.ब्रा. 3.7.10.4; बौ.श्रौ.सू. 3.375:11 = हि.श्रौ.सू. 15.8.31।

अग्निहोत्र न. आहवनीय अग्नि में द्रवार्पण का कृत्य; सात हविर्यज्ञो में एक; दैनन्दिन (एक प्रतिदिन) किया जाने वाला यज्ञ (प्रातः एवं सायंकाल में) जिसमें गो दुग्ध की आहवनीय में आहुति दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 6.1-15; एक मात्र यजुर्वेद से अनुष्ठित किया जाता है, हि.श्रौ.सू. 1.1.5। यह यज्ञीय अग्नि की स्थापना के समय प्रारब्ध (शुरु) होता है। अर्पण = हव्य (द्रव का) का परिशुद्ध समय विवाद का विषय है। या तो सूर्यास्त के पहले या थोड़ा बाद। यह नियम सायं एवं प्रातः दोनों पर लागू होता है, आप.श्रौ.सू. 6.4.7-9 तु. ऐ.ब्रा. 24.4-6, अग्निहोत्र-दुग्ध, भार.श्रौ.सू. 5.13.12। कोई (व्यक्ति) सभी तीन अग्नियों को स्थायी रूप से बनाये रखे अथवा मात्र एक को : यह प्रश्न सूत्रों में वादप्रवृत्त (विचारित) हुआ है—3 अग्नियाँ, का.श्रौ.सू. 4.13.5; यह केवल गार्हपत्य है, आप.श्रौ.सू. 6.2.13। अतः गार्हपत्य से बाहर अग्निहोत्र की आहुतियों के लिए आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि को स्थापित करना पड़ता है। केवल ईंधन को ही लगाना पड़ता है, यदि किसी ने तीनों अग्नियों को बनाये रखा है। सामान्यतः अग्निहोत्री गाय से शूद्र द्वारा दूध निकाला जाता है अर्थात् शूद्र अग्निहोत्री गाय को दुहता है, आप.श्रौ.सू. 6.3.11-14 अथवा ब्राह्मण के द्वारा, बौ.श्रौ.सू. 3.4। शूद्र दोहन कार्य के लिए निषिद्ध है, का.श्रौ. 4.14.1; गार्हपत्य से निकाले गये दहकते अङ्गारे पर दूध को गरम किया जाता है। इस (दूध) को ठण्डा होने देते हैं और अग्निहोत्र की कलछी में दुग्ध का एक भाग सायंकाल पहले अग्नि उसके बाद प्रजापति को (वा.सं. 3.9 से) अर्पित किया जाता है। प्रातः काल प्रथम आहुति सूर्य को, द्वितीय प्रजापति को दी जाती है। आहुति के बाद अध्वर्यु कलछी में लगे हुए दूध को अपने हाथ और दर्भ से पोंछता है। उसे कलछी में अवशिष्ट दुग्ध को पीना चाहिए। तब अग्निहोत्र-आहुति के बाद सायं के समय यजमान आहवनीय पशु, गृह, रात्रि और उसके बाद गार्हपत्य के प्रति प्रार्थनाओं को प्रस्तुत करता है, आप.श्रौ.सू. 6; बौ.श्रौ.सू. 3.4:9, श्रौत.को. (अं) 1 (1) 85, 198; H.Dh II (2) 998-1008। गोदुग्ध के विकल्प के रूप में यव का प्रयोग किया जाता है, श.ब्रा. 1.7.1.10; अग्निहोत्र आहुति का भी नाम है, आश्व.श्रौ.सू. 2.2.16; हविर्यज्ञ सोम यागों में एक, जहाँ (जिसमें) दो अग्निहोत्र-आहुति दो सोम यागों के स्थान पर विकल्पित होती हैं अतः एक 'अहीन', शां.श्रौ.सू. 14.3.15 (टीका : अग्निहोत्रसंज्ञकौ द्वौ हविर्यज्ञसोमौ); वह जो श्रौत अग्नि में अग्निहोत्र-आहुति अर्पित करता है, अ.वे. 6.97.1. देखें श्रौ.प.नि. 63.413-422।

अग्निहोत्रकाल पु. अग्निहोत्र-आहुति-अर्पण के लिए नियत समय, बौ.श्रौ.सू. 3.382 : 8; आप.श्रौ.सू. 7.7.4, भार.श्रौ.सू. 14.26.10; हि.श्रौ.सू. 15.3.13।

अग्निहोत्रचेष्टा स्त्री. अग्निहोत्र-आहुति-अर्पण का कार्य, बौ.श्रौ.सू. 3.375:13।

अग्निहोत्रतपनी स्त्री. अग्निहोत्र के दुग्ध को गरम करने के लिए अभिप्रेत बर्तन या मिट्टी का पात्र, का.सं. 6.3; कपि.क.सं. 4.2; श्रौ.को. (सं.) 1.70।

अग्निहोत्रत्व न. (अग्निहोत्र + त्व) अग्निहोत्र का आवश्यक वैशिष्ट्य, मै.सं. 1.8.1।

अग्निहोत्रदेवता स्त्री. अग्निहोत्र कर्म के देवता (सूर्य, अग्नि और प्रजापति) आ.गृ.सू. 1.2.2।

अग्निहोत्रद्रव्य न. अग्निहोत्र में प्रयुक्त द्रव्य (उपकरण सहित), बौ.ध.सू. 2.10.24।

अग्निहोत्रधर्म पु. (प्रातः-सायम्) अग्निहोत्र का प्रतिदर्श अथवा प्रारूप, मा.श्रौ.सू. 4.3.34, 47।

अग्निहोत्रधेनु स्त्री. अग्निहोत्र कर्म के लिए दुग्ध प्राप्त करने के लिए अभिप्रेत गाय, अ.वे.परि. 45.2.21।

अग्निहोत्रनिष्ठ वि. अग्निहोत्र के अनुष्ठान के लिए समर्पित बौ.पि. 3.4.14।

अग्निहोत्रपात्र न. अग्निहोत्र कर्म में अग्निहोत्रदुग्ध रखने के लिए प्रयुक्त पात्र, जै.ब्रा. 1.7; शा.श्रौ.सू. 4.14.34 = कौषी.गृ.सू. 5.3.23; (प्रयोग एवं मार्जन के बाद गार्हपत्य के उत्तर स्थाप्य), बौ.श्रौ.सू. 1.65:3 = 1.72:16; भा.श्रौ.सू. 6.8.14, हि.श्रौ.सू. 3.7.15।

अग्निहोत्रपूर्व वि. अग्निहोत्र है पूर्ववर्ती जिसका (कौण्डपाविनाम-यनम्), बौ.श्रौ.सू. 3.306.10।

अग्निहोत्रप्रत्याम्नाय पु. अग्निहोत्र का स्थानापन्न, आप.श्रौ.सू. 9.10.6 = हि.श्रौ.सू. 15.3.18।

अग्निहोत्रप्रायण वि. अग्निहोत्र से प्रारम्भ होने वाला, 'अग्निहोत्र-प्रायणा यज्ञाः', तै.ब्रा. 2.1.5.1।

अग्निहोत्रमन्त्र पु. अग्निहोत्र के अवसर पर पठनीय मन्त्र (वा.सं. 3.9) बौ.ध.सू. 2.10.61।

अग्निहोत्रमास पु. वह महीना जिसमें (अवश्य करणीय से भिन्न) अग्निहोत्र का अनुष्ठान किया जाता है (संवत्सरसत्र के एक भाग के रूप में) ला.श्रौ.सू. 1.4.27; 10.11.14।

अग्निहोत्रयजुस् न. अग्निहोत्र कर्म के दौरान पठित यजुष्, बौ.श्रौ.सू. 3.376:4; अग्निर्ज्योतिरिति (वा.सं. 3.9); सजूरिति वा (वा.सं. 3.10) का.श्रौ.सू. 4.14.4; तूष्णीम् उत्तराम् 4.14.17; 'अग्निर्ज्योतिरग्निः स्वाहा', वा.सं. 3.9; अथ प्रातः 'सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्य', वा.सं. 3.9; श.ब्रा. 2.3.1.30।

अग्निहोत्रलोप पु. अग्निहोत्र कृत्य का अननुष्ठान, वैखा.श्रौ.सू. 20.15:9।

अग्निहोत्रवर्जम् क्रि.वि. अग्निहोत्र को छोड़कर, आप.श्रौ.सू. 24.3.8 (समिदभावश्च अग्निहोत्रवर्जम्, अग्निहोत्र को छोड़कर जहाँ द्रवार्पण के पूर्व यह न अनिवार्य है, अग्नि पर समिधा रखने का अभाव होता है।

अग्निहोत्रवत् क्रि.वि. (अग्निहोत्र + वति) अग्निहोत्र के समान (जैसा की अग्निहोत्र में), आप.श्रौ.सू. 10.17.8 (अग्निहोत्रवत् तुष्णीम् उन्नीय)।

अग्निहोत्रविधि पु. अग्निहोत्र की विधि, बौ.श्रौ.सू. 1.128 : 17।

अग्निहोत्रविवेक पु. अग्निहोत्र के बारे में वाद, काठकगृह्योद्धार 42.24।

अग्निहोत्रवेला स्त्री. अग्निहोत्र के अनुष्ठान के लिए नियत समय, जै.उ.ब्रा. 4.53; बौ.श्रौ.सू. 3.379 : 44; 'समुद्रो वा यदहोरात्रः तस्यैते गाधे तीर्थे यत्सन्धी तस्मात्सन्धौ होतव्यम्' आ.श्रौ.सू. 6.4.7; 'नक्षत्रं दृष्ट्वा प्रदोषे निशायां वा सायम्' आप.श्रौ.सू. 6.4.8; 'उषस्युपोदयं समयाविषिते उदिते वा प्रातः' 6.4.9; चि.भा.सेन : सायं एवं प्रातः की क्रिया के लिए सूर्यास्त एवं सूर्योदय के ठीक पूर्व या थोड़ा बाद।

अग्निहोत्रशाला स्त्री. पूर्व एवं दक्षिण में द्वारयुक्त वर्गाकार या चतुष्कोणीय एक घेरा, श्रौ.प.नि.; देखें बौ.श्रौ.सू. 4.7:8-10।

अग्निहोत्रशेष पु. अग्निहोत्र-हविष् का शेष, भार.श्रौ.सू. 6.4.5।

अग्निहोत्रश्रपणी स्त्री. अग्निहोत्र के दुग्ध को गरम करने के लिए प्रयुक्त पात्र, अ.वे.परि. 45 (2).17।

अग्निहोत्रस्थाली अग्निहोत्र के दुग्ध को रखने के लिए प्रयुक्त होने वाला चौड़ा मृत्पात्र, श.ब्रा. 12.4.1.11; जै.ब्रा. 1.60; आप.श्रौ.सू. 6.3.7; वैता.श्रौ.सू. 11.9, चि.भा.से. : सीधे किनारे वाला एक मिट्टी का पात्र जिसमें, दुग्ध रखा हुआ होता है (प्रसृताकृति, ऊर्ध्वकपाल), आप.श्रौ.सू. 6.3.7; पादयोरग्निहोत्रस्थालीम् आज्यस्थालीं च निदधाति', बौ.पि.मे. 1.9.2। यह आहिताग्नि के पैर पर उसके अन्त्येष्टि के समय रखा जाता है; तु. आर्यकृता, न तो शूद्र द्वारा निर्मित एवं न कुम्भकार के चाक (चक्र) पर घुमायी गयी हो अर्थात् जिसका निर्माण न शुद्र ने किया हो एवं न ही कुम्भकार के चाक पर घुमा कर बनायी गयी हो (अचक्रवर्ता) भा.श्रौ.सू. 6.8.14; हि.श्रौ.सू. 3.7.15।

अग्निहोत्रस्थाली

अग्निहोत्रहवणी स्त्री. अग्निहोत्र में प्रयुक्त होने वाली एक करछुल (यदि इसका आकार हाथी की जीभ के बराबर हो तो 8 अंगुल के कटोरा के साथ इसकी नाप एक बीता, एक अरत्नि अथवा एक हाथ होती है; यदि यह 'वायसपुच्छ' कौवे के पूंछ की आकृति का हो, तो 5 अंगुल के कटोरे के साथ, श्रौतपदनि. 7.38); दर्श की दश वस्तुओं में परिगणित, तै.सं. 1.6.8.3; श.ब्रा. 1.1.2.1; आप.श्रौ.सू. 6.3.6; का.श्रौ.सू. 1.3.36 टीका। प्रोक्षणी-उत्पवन में प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 1.11.9; (मृत आहिताग्नि के) ऊपर रखा जाता है, शां.श्रौ.सू. 4.12.21, मुख पर रखा जाता है, बौ.पि.मे. 1.8.11; आहवनीय में डालता है, वैखा.ध.सू. 2.7.2 = ० **हवनी** मा. श्रौ.सू. 180.11; ला.श्रौ.सू. 8.8.22।

अग्निहोत्रहविष्ठ वि. अग्निहोत्र का सबसे अच्छा अनुष्ठान करने वाला, अग्निवे. गृ.सू. 3.4.4।

अग्निहोत्रहविस् न. अग्निहोत्र में अर्पणीय हविस् की सामग्री (यवागू, दधि एवं घृत) शा.श्रौ.सू. 2.7.9; आप.श्रौ.सू. 10.16.14।

अग्निहोत्रहुत् वि. (अग्निहोत्रं जुहोतीति, अग्निहोत्र + हु + क्विप्) अग्निहोत्र हवन करने वाला, अ.वे. 3.28.6; श.ब्रा. 10.1.5.4; जै.ब्रा. 1.21।

अग्निहोत्रहोम पु. अग्निहोत्र-आहुति-अर्पण का कृत्य, का.श्रौ.सू. 4.2.17; 4.6.11; 5.6.35; कौषी.गृ.सू. 1.6.7।

अग्निहोत्रातिपत्ति स्त्री. (अग्निहोत्रस्य अतिपत्तिः, अति + पद् + क्तिन्) अग्निहोत्रहोम का अननुष्ठान अथवा असातत्य, का.श्रौ.सू. 25.10.25।

अग्निहोत्रायणिन् वि. (नये अन्न से) अग्निहोत्र के अनुष्ठान द्वारा 'आग्रयण' का अनुष्ठान करने वाला, अग्निहोत्र के प्रति पूर्णतया समर्पित, का.श्रौ.सू. 4.6.11; वैता.श्रौ.सू. 43.3।

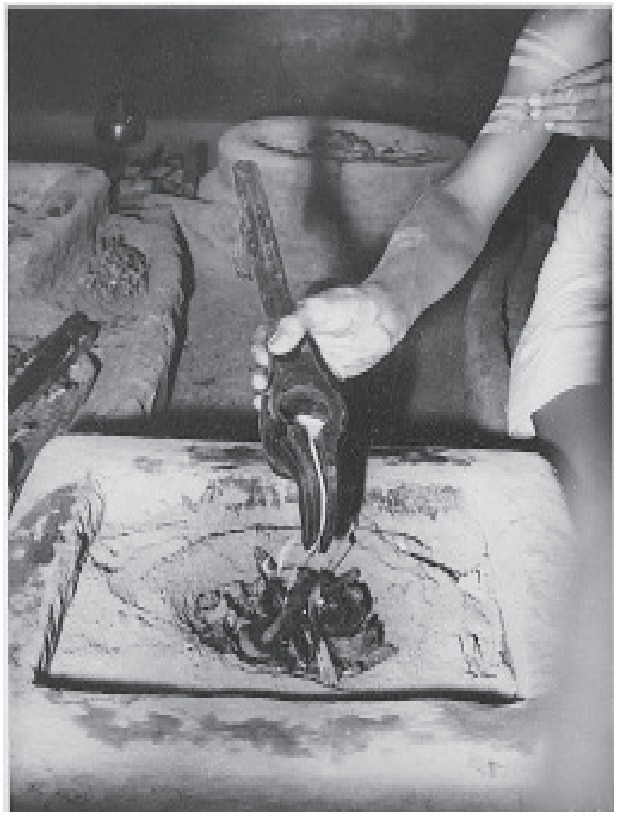

अग्निहोत्रहोम

अग्निहोत्रारम्भ पु. अग्निहोत्र का आरम्भ, हि.श्रौ.सू. 3.5.1।

अग्निहोत्रावृत् स्त्री. अग्निहोत्र का प्रतिदर्श 'अग्निहोत्रावृता हुत्वा वाजिनवद् भक्षयन्ति' हि.श्रौ.सू. 26.6.19 (टीका - अग्निहोत्रस्य आवृता इतिकर्तव्यतया --- घर्म्यं हुत्वा); बाधू.श्रौ.सू. 2.13:7।

अग्निहोत्राहुति स्त्री. अग्निहोत्र में दी जाने वाली आहुति, जै.ब्रा. 1.4; श.ब्रा. 10.1.5.1; 2.3.3.17।

अग्निहोत्राहोम पु. अग्निहोत्र याग का अननुष्ठान, आश्व.श्रौ.सू. 2.5.15।

अग्निहोत्रित्व (अग्निहोत्र + इनि + त्व) अग्निहोत्रं यस्यास्ति तस्य भाव:) न. अग्निहोत्र के अनुष्ठान करने वाले की स्थिति, अग्निवे. गृ.सू. 2.7.2.2।

अग्निहोत्रिन् पु. अग्निहोत्र करने वाला, मै.सं. 1.8.7; 1.5.12; काठ.सं. 6.6; कपि.क.सं.; आप.श्रौ.सू. 6.19.3; सायंकालीन अग्निहोत्र किये बिना कुछ नहीं खाना चाहिए, मै.सं. 1.5.7; तै.ब्रा. 2.1.5.20; श.ब्रा. 11.3; 1.5; जै.ब्रा. 1.20; बौ.ध.सू. 4.5.7।

अग्निहोत्री स्त्री. वह गाय जिसके दूध का प्रयोग अग्निहोत्र में किया जाता है (यदि यह दुहते समय बैठ जाय, तो प्रायश्चित्त करना पड़ता है), ऐ.ब्रा. 25.2 = 32.3 = आश्व.श्रौ.सू. 3.11.1; 2.9.4; कौषी.ब्रा. 4.14; शां.श्रौ.सू. 3.12.16; बौ.श्रौ.सू. 3.353:1; भा.श्रौ.सू. 6.18.12, 9.7.1; बौ.श्रौ.सू. 2.192.5, 11, का.श्रौ.सू. 25.1.14, 6.14.1; अथर्वप्रायश्चित्त 2.4; वाक् अग्निहोत्री के रूप में अभीष्ट श.ब्रा. 11.3.2.2; 12.4.1.11; जै.ब्रा. 1.60; शां.श्रौ.सू. 2.8.1; बौ.श्रौ.सू. 6.8 :15; 'अग्निहोत्री दक्षिणत उदीचीं स्थापयित्वा ब्राह्मणो दोग्धि', बौ.श्रौ.सू. 1.65:6 = 1.72:18; 1.78:1; आप.श्रौ.सू. 8.11.7; हि.श्रौ.सू. 5.3.9; वारा.श्रौ.सू. 1.7.3.20; हि.श्रौ.सू. 6.6.18; वैखा.श्रौ.सू. 1.7.3.20; हि.श्रौ.सू. 6.6.18; वैखा.श्रौ.सू. 2.7; 20.9 – वत्स।

अग्निहोत्री गौ:

अग्निहोत्रोच्छिष्ट न. (अग्निहोत्रस्य उच्छिष्टम्) अग्निहोत्र – हविष् का अवशिष्ट भाग:, श.ब्रा. 2.3.1.39; वाधू.श्रौ.सू. 4.38.5; 3.18.4; ० व्रत (सोमयाग में) जिसका व्रत-भोजन अग्निहोत्र हविष् का अवशिष्ट भाग हो (ऐसा व्यक्ति); वाधू.श्रौ.सू. 3.18.4।

अग्निहोत्रोच्छेषण न. (अग्निहोत्रस्य उच्छेषणम्) उद् + शिष् + ल्युट्) अग्निहोत्र-आहुति का शेष-भाग (जमाने के लिए प्रयुक्त, तै.सं. 2.5.3.6; बौ.श्रौ.सू. 1.1.4-1.5.10; 'पयस एव अग्निहोत्रोच्छेषणं कुर्यात्', बौ.श्रौ.सू. 3.11:6; 3.208; 4; 1.67:4 = 2.116:11; 3.318:6; भा.श्रौ.सू. 1.14.6; आप.श्रौ.सू. 1.13.15; हि.श्रौ.सू. 1.3.11; भा.श्रौ.सू. 1.11.9; 1.14.7.8; आप.श्रौ.सू. 61.11.1; वैखा.श्रौ.सू. 3.2.3.8; भा.पि.मे. 1.1.11-13 = हि.पि.मे. 28.1.3; व्रत, वि. जिसका व्रत-भोजन (सोमयाग में) अग्निहोत्र आहुति का शेष-भाग हो, बौ.श्रौ.सू. 1.67:4 = 2.116.11; सद्यस्क्री (सोमयाग) में अग्निहोत्र का शेष व्रत-भोजन होता है, बौ.श्रौ.सू. 1.318:6।

अग्निहोत्रोपचारम् क्रि.वि. जिस प्रकार अग्निहोत्र में (व्रत-दुग्ध उबाला जाता है) मा.श्रौ.सू. 2.1.4.1।

अग्निहोत्रोपस्थान न. (अग्निहोत्र के अङ्ग के रूप में अग्नियों का) मन्त्र अथवा प्रार्थना के साथ पूजन ला.श्रौ.सू. 10.12.1। सायंकाल आहवनीय, पशु, गृह, रात्रि का एवं तदनन्तर गार्हपत्य का, बौ.श्रौ.सू. 3.4-9 'उपप्रयन्तो' आदि मन्त्रों के साथ. आप.श्रौ.सू. 6.16.4-12; 6.17.1 गोष्ठ का; बछड़े का 6.18.4; गार्हपत्य का 6.19.5; तै.सं. 1.5.5 से 1.5.10 (पूर्वार्ध)।

अग्निहोम पु. सोमयाग के समय अग्नि में होम (दीक्षित यजमान के मामले में निषिद्ध), का.श्रौ.सू. 7.1.34।

अग्निहोमप्रतिषेध पु. (अग्नौ होमस्य प्रतिषेध:) अग्नि में आहुति अर्पण का निषेध, का.श्रौ.सू. 7.1.28।

अग्निह्वर वि. अग्नि-संस्कार में त्रुटि करने वाला मै.सं. 1.3.35।

अग्नीत्प्रथम (अग्नीध् प्रथम: यस्मिन्) अग्नीध् के प्राथम्य वाला (जिसमें अग्नीध प्रथम हैं।) (पुरोडाश-शेष के सहायक ऋत्विजों के मध्य आबण्टन के लिए), आप.श्रौ.सू. 3.3.44।

अग्नीध् पु. श्रौत यागों के समूह में सहायक के रूप में कार्य करने वाले अग्नि-समिन्धन सम्पादित करने वाले एक ऋत्विक् का नाम, तै.सं. 1.8.18.1 = तै.ब्रा. 1.8.2.5; तै.सं. 2.6.5.6; मै.सं. 1.4.13; 1.9.4; वा.सं. 7.15; अ.वे. 24.6; पञ्च.ब्रा. 25.18.4; 18.9.18; कौषि.ब्रा. 10.3; श.ब्रा. 2.4.13; गो.ब्रा. 2.4.5; शां.श्रौ.सू. 1.6.3; 10.14.4; बौ.श्रौ.सू. 1.213 : 8; आप.श्रौ.सू. 3.35; मा.श्रौ.सू. 19.16; 33.17 का.श्रौ.सू.

2.6.12। ब्रह्मन् का सहायक किन्तु वास्तव में अध्वर्यु का; अध्वर्यु के 'ओ श्रावय' प्रैष देने पर हाथ में स्फ्य को उठाये 'अस्तु श्रौषट्' को कहकर अनेक बार उत्तर देता है (प्रत्याश्रवण करता है) का उसे अध्वर्यु के निर्देशों का पालन भी करना होता है। जैसे प्रोक्षणी का आसादन एवं पाठ, 'मदन्ती' संज्ञक जल को गर्म करना, आलभ्य के आगे चलना, सहस् में धिष्ण्य-संज्ञक अंगीठियों पर अग्नि का वितरण इसी प्रकार और सोम-याग के समय वह सदैव अग्नियों को संभालता है, एक वृषभ या मेष उसकी दक्षिणा है, वह 'इडा' के षडवत्त का बृहत्तर भाग प्राप्त करता है। ला.श्रौ.सू. 4.12.8 के अनुसार एक पाँचवर्षीया गाय उसकी दक्षिणा है; वह इस उद्देश्य के लिए 'तृतीयिन्' के रूप में माना गया है। Debrunner 858, श्रौ.को. चटर्जी स्मृति ग्रन्थ -Vol.1955, 72-82; श्रौत प.नि. 2.6 भी देखें।

अग्नीध्र = आग्नीध्र; ला.श्रौ.सू. 4.12.8; देखें अग्निद्।

अग्नीध्र

अग्नीन्द्र पु. (दि.व.) अग्नि एवं इन्द्र देवता, वा.सं. 7.32; आश्व.श्रौ.सू. 2.9.13; मा.श्रौ.सू. 2.10.3।

अग्नीन्धन न. अग्नि में समिधाओं को रखना, गौ.ध.सू. 1.2.12 (ब्रह्मचारी के कर्तव्य)।

अग्नीपर्जन्य पु. (द्वि.व.) अग्नि एवं पर्जन्य (वर्षा) देवता, ऋ.वे. 6.52.16।

अग्नीवरुण पु. (द्विव.) अग्नि एवं वरुण (देवता) तै.सं. 6.6.3.3; स्विष्टकृदर्थे, आश्व.श्रौ.सू. 6.13.7; आप.श्रौ.सू. 8.8.8।

अग्निषोम पु. (द्विव.) अग्नि एवं सोम, ऋ.वे. 1.93.1; तै.सं. (पूर्णमास इष्टि के प्रधान देवता) 1.1.4.2; 1.6.2.3; 1.6.11.6; वा.सं. 1.10; 2.15; 6.9; काठ.सं. 1.12; ऐ.ब्रा. 2.2; कौषी.ब्रा. 3.6; सामवि.ब्रा. 1.2.7; गो.ब्रा. 2.1.20; आप.श्रौ.सू. 2.20.1; आश्व.श्रौ.सू. 1.3.9; 4.10.1; ला.श्रौ.सू. 1.6.39; कौशि.सू. 4.19; मा.गृ.सू. 2.12.2।

अग्निषोमप्रणयन न. अग्नि एवं सोम-लता को ले जाने का कृत्य (सोमयाग में प्राचीनवंश से आगे उच्चतर वेदि एवं हविराधान मण्डप तक क्रमशः), शां.श्रौ.सू. 5.6.9; का.श्रौ.सू. 11.1.7; 12.1.25; अध्वर्यु शालामुखीय (प्राचीन आहवनीय) में इध्म को रखता है एवं 'उपयमनीय' मृत् की सहायता से अग्नि का प्रणयन करता है; यजमान अध्वर्यु को पकड़े रहता है एवं पत्नी अपने पति को पकड़े रहती है; पत्नी को उसके पुत्र पकड़े रहते हैं एवं पुत्रों को पौत्र लोग एवं इसी प्रकार आगे भी; यह स्थानान्तरण 'सुत्या'दिन के पूर्व दिन आहवनीय एवं आग्नीध्रीय की अग्नि के समिन्धन के साथ सम्पन्न होता है—सोम के डण्ठलों को 'सुत्या'दिन पर हविराधान मण्डप में रखा जाता है; अब वे वैसर्जन आहुति अर्पित करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 6.30; आप.श्रौ.सू. 9.16.12-15; वे प्राचीन वंश से बाहर जाते हैं, ब्रह्मा सोम का आनयन करता है; अन्य पात्रों को शकट में भर दिया जाता है। वे आग्नीध्रीय मण्डप (छत) पहुँचते हैं, जहाँ अंगीठी प्रज्वलित होती है और ब्रह्मा प्रतिपस्थाता को सोम सौंप देता है; वहाँ से अग्नि को (महावेदि के) नव आहवनीय तक लाया जाता है एवं सोम के डण्ठलों को हविराधान गाड़ी के पास जमा कर दिया जाता है; आप.श्रौ.सू. 11.7.4-10; सोमप्रणयन कौन करता है इस पर बहुत विवाद है, cf. अग्निप्रणयन।

अग्नीषोमीय वि. 1. अग्नि एवं सोम से सम्बद्ध, अग्नि एवं सोम हैं देवता जिसके (आलभ्य पशु-छाग = बकरा) अ.वे. 4.6.6; ऐ.ब्रा. 6.3; पञ्च.ब्रा. 21.14.11; कौषी.ब्रा. 18.11 (पूर्णमास इष्टि में एकादश कपाल पुरोडाश) तै.सं. 1.8.1.1; 11.5.2.3; श.ब्रा. 1.6.2.6; 1.6.3.14; आप.श्रौ.सू. 1.24.5; 2.19.12; 3.15.6; 3.16.10; 4.9.13; 10.29.4; 11.16.1; 11.20.13; 12.3.3; 20.24.4; का.श्रौ.सू. 2.3.21; हि.श्रौ.सू. 1.1.73; ला.श्रौ.सू. 1.3.18; (स्थालीपाक) मा.गृ.सू. 2.3.3; (दुग्ध) जै.ब्रा. 1.21; (उपांशु-मन्दस्वरपूर्वक देय आहुति) गो.ब्रा. 1.3.10; आश्व.श्रौ.सू. 1.3.13; आश्व.श्रौ.सू. 1.3.13; 1.6.1; 4.11.1; 8.2.6; शां.श्रौ.सू. 1.3.12; 1.8.10; 2.3.5; 3.8.8; 2. अग्निषोम पशुयाग से सम्बद्ध, आश्व.श्रौ.सू. 6.14.10 'अग्निषोमीयेन सञ्चरेण व्रजित्वा'; पु. अग्नि एवं सोम के

सम्मान में अनुष्ठित होने वाला कृत्य (या अग्निषोमीय नाम से प्रसिद्ध पशुयाग अथवा उन्हे इष्टि आदि में समर्पित होने वाली अन्य प्रकार की आहुति), श.ब्रा. 2.4.4.7; शां.श्रौ.सू. 6.1.1; आप.श्रौ.सू. 10.4.9-10; 10.15.16; 11.20.16; हि.श्रौ.सू. 1.1.28; गो.गृ.सू. 1.8.23; द्रा.गृ.सू. 2.2.20; काल पु. अग्निषोमीय पशुयाग के लिए नियत समय, आप.श्रौ.सू. 22.3.9, मा.श्रौ.सू. 198.1।

अग्नीषोमीयदर्शन न. अग्नीषोम पशुयाग में उपस्थिति, का.श्रौ.सू. 6.10.14।

अग्नीषोमीयपशु न. अग्नि एवं सोम के सम्मान में पशुयागार्थ आलभ्य पशु (अर्थात् अज) वैखा.श्रौ.सू. 14.5.2।

अग्नीषोमीयपशुपुरोडाश पु. अग्नि एवं सोम के लिए पशुयाग के सन्दर्भ में समर्पणीय पुरोडाश, हि.श्रौ.सू. 13.5.3।

अग्नीषोमीयरशना स्त्री. यज्ञ-स्तम्भ में बाँधी जाने वाली एवं अग्नीषोम पशुयाग में आलभ्य पशु को बाँधने वाली रस्सी, बौ.श्रौ.सू. 22.14.10।

अग्नीषोमीयवपा स्त्री. अग्निषोमीय याग में समर्प्य (प्रयुज्यमान) आलभ्य पशु की चरबी (वपा), ला.श्रौ.सू. 1.3.18; 5.9.14।

अग्नीषोमीयविकार पु. अग्निषोमीय पशुयाग का विकार, बौ.श्रौ.सू. 24.3:42।

अग्नीषोमीयसंस्था स्त्री. अग्नीषोमीय पशुयाग की समाप्ति (पूर्णता) आप.ध.सू. 1.18.24; हि.ध.सू. 1.5.93।

अग्नीषोमीयस्थान न. अग्नीषोमीय-पशुयाग का स्थान अथवा अवसर (साद्यस्क्र एकाह में सम्पूर्ण अग्नीषोम - पशुयाग के स्थान पर एक पुरोडाश अर्पित किया जा सकता है), का.श्रौ.सू. 22.3.29।

अग्नीषोमीया स्त्री. अग्नीषोम के लिए सम्बोधित एक मन्त्र, अर्थात् 'अग्नीसोमाव् ----' ऋ.वे. 1.93.1, श्रौ.को. (अं) I.i 124।

अग्नेःकुलाय पु. एक एकाह (एकदिवसीय) सोमयाग का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.13.6।

[अग्नेरतिव्याध बौ.श्रौ.सू. 18.48 : 7; अग्नेरयन ला.श्रौ.सू. 10.13.5]

अग्नेरर्क पु. एक साम का नाम, जै.ब्रा. 2.255; आर्षे.ब्रा. 5 (1) 3.5; ला.श्रौ.सू. 3.6.22; जै.श्रौ.सू. 4; पुष्प सू. 2.5.1; 2.5.4. सञ्चितमग्निं सामभिरुपतिष्ठते ---- अग्नेरर्केण शिरस्।

अग्नेर्दूणाश पु. एक सुत्या (सवन)-दिन वाले एक सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.9।

अग्नेर्निधि न. मथित अग्नि को आहवनीय में डालते समय गाये जाने वाले साम का नाम, जै.श्रौ.सू. 23।

अग्नेर्विमोक पु. अग्नि के विमोचनार्थ प्रदान की जाने वाली आहुति का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.23.10।

अग्नेर्व्रत न. एक साम का नाम, आर्षेय ब्रा. 6 (4). 1.1; अग्निप्रणयन के समय प्रयुक्त, ला.श्रौ.सू. 1.6.38; जै.श्रौ.सू. 4; 25; पुष्प.सू. 2.5.2।

अग्नेर्हृदय न. चयनित अग्नि वेदि के दाहिने पक्ष के पास गाये जाने वाले एक साम का नाम, वौ.श्रौ.सू. 2.50:16; अग्निवेदि की एक ईंट का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.5.14।

अग्नेःसहस्त्रस्त्राव्य न. एक सत्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 23.12.2; मश. सू. 11.7।

अग्नेःस्तोम पु. एक एकदिवसीय सोमयाग का नाम, वैता.सू. 40.2।

अग्नेस्त्रिणिधन न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.4.1; 7.9.8।

अग्नौकरण न. अग्नि में अथवा ब्राह्मण के हाथ में अर्पण का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 250.8; कौषी.गृ.सू. 3.1:4.9; भा.श्रौ.सू. 3.17; गृ.सू. 2.5।

अग्नौकरणशेष पु. अग्नि में अथवा ब्राह्मण के हाथ में अर्पित की जाने वाली आहुति का शेषभाग, बृ.परा.स्मृ. 7.209।

अग्नौकरणहोम पु. अग्नि में अथवा ब्राह्मण के हाथ में आहुति-अर्पण का कृत्य गो.स्मृ. 2.8.12।

अग्न्यगार न. अग्निक्षेत्र (अग्निगृह) जिसमें तीन पवित्र अग्नियों को संरक्षित (संवर्धित) किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.2.10; का.श्रौ.सू. 4.2.11 दो अग्निगृहों का उल्लेख करता है। एक गार्हपत्य के लिए एवं दूसरा आहवनीय के लिए।

अग्न्यन्त पु. अग्निवेदि की बाहरी रेखा, बौ.शु.सू 2.24।

अग्न्यन्तरसंसर्ग पु. अन्य अग्नि से सम्पर्क, वैखा.गृ.सू. 3.6.4।

अग्न्यन्वाधान पु. तीन पवित्र अग्नियों में इन्धन डालना (दो समिधायें प्रत्येक में) बौ.श्रौ.सू. 1.14.17; 4.2 : 8; 10.4 : 12; 10.4:13; अध्वर्यु अथवा यजमान द्वारा अनुष्ठित होता है; का.श्रौ.सू. 2.12 (इष्टि के मुख्य दिन के पूर्व दिन 'ममाग्ने' आदि---के साथ) ऋ.वे. 10.128.1; तुष्णीं द्वितीया

का.श्रौ.सू. 2.1.2–4, महाव्याहृतीभिर्वा प्राक्संस्थम्, 2.1.6; तुष्णीं वा यथापूर्वम्, 2.1.7, हि.श्रौ.सू. 1.4.16।

अग्न्यन्वाधानप्रतिपत्का स्त्री. जो पवित्र अग्नियों में समिधा रखने के साथ प्रारम्भ होता है, बौ.श्रौ.सू. 23.14.22।

अग्न्यन्वाधानादि वि. इन्धन रखने के साथ प्रारम्भ होने वाला, वैखा.श्रौ.सू. 11.1.5।

अग्न्यभिजन पु. एक यज्ञ का नाम, निदा.सू. 7.9; 16; 23।

अग्न्यभिषेक पु. अग्निवेदि के चयन के सम्बद्ध में यजमान के ऊपर जल छिड़कने का सांस्कारिक अनुष्ठान, बौ.श्रौ.सू. 2.223:7।

अग्न्यभिहार वि. अग्नि-देवता के लिए आहुति 'सयुक्त, बौ.श्रौ.सू. 3.192:13 (अग्न्यभिहारौ दर्शपूर्णमासौ) = अग्निप्रचुर वेङ्क बौ.श्रौ.सू. 24.9.192.13 पर।

अग्न्यभीज्या स्त्री. एक यज्ञ का नाम, निदा सू. 126.13 (7.9)।

अग्न्यवभृथ पु. अग्नि से सम्पन्न किये जाने वाला अवभृथ कृत्य (अर्थात् यज्ञ की पूर्णता से पूर्व यजमान की मृत्यु होने पर उसे अग्नि से जलाना), आप.श्रौ.सू. 14.21.8; हि.श्रौ.सू. 15.5.29 (टीका देखें); वैखा.श्रौ.सू. 21.7; देखें चि.भा.से : अवभृथ के पूर्व मृत की अग्नि का जल में प्रक्षेपसम्भृत एक कृत्य, आप.श्रौ.सू. 14.21.8।

अग्न्यागार

अग्न्यागार पु. (न.) प्राचीनवंश अग्निशाला (पवित्र अग्नि का संरक्षित स्थान = गृह) वैखा.श्रौ.सू. 1.16; मा.श्रौ.सू. 2.12.3; गो.गृ.सू. 3.9.4. तु. अग्न्यगार।

अग्न्यादिसम्भार पु. अग्नि एवं अन्य सामग्री, वैखा.गृ.सू. 5.2।

अग्न्याधान न. पवित्र अग्नियों (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण) को नियमपूर्वक रखना, वैखा.गृ.सू. 6.15; 3.19; अग्न्याधान के समय यजमान द्वारा रेशमी = कौशेय वस्त्रों का प्रयोग, बौ.ध.सू. 1.6.10 देखें 'अग्न्याधान' हीस्टरमैन जे.सी; विएन 1989, पृ. 148 वाधू.श्रौ.सू. के अनुसार।

अग्न्याधेय न. यज्ञीय अग्नि के आधान (स्थापन) का कृत्य; इष्टि सदृश एक यज्ञ जिसमें दर्श के समान चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। अग्न्याधेय में दो दिन लगते हैं : प्रथम प्राथमिकों एवं द्वितीय प्रधान कर्म के लिए। नवचन्द्र (अमावस्या) अथवा पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा) वाले दिन अग्न्याधान किया जा सकता है; किन्तु यजमान की जाति के अनुसार ऋतु भिन्न हो सकती है, आप.श्रौ.सू. 5.3.17–20. अग्नि स्थापन के कई दिन पहले अरणियों एवं अन्य सम्भारों को सज्जित (तैयार) कर लिया जाता है। यजमान और उसकी पत्नी स्नानार्थ एवं नखनिकृन्तनार्थ अपने को तैयार करते हैं, इत्यादि। मध्याह्न के समय अथवा जब सूर्य वृक्ष-शिखर पर होता है तब अध्वर्यु औपासन-अग्नि को निकालता है। इसे ब्रह्मौदन-अग्नि कहा जाता है, जिसपर 4 तश्तरी-भर चावल पकाया जाता है (ब्रह्मौदन) और उसपर घी को उड़ेला जाता है और अन्ततः सभी ऋत्विज् इसी का भक्षण करते हैं अग्न्याधान-अग्निस्थापन के पूर्ववर्ती दिन पाशों का एक खेल (द्यूत) यजमान अपनी पत्नी एवं पुत्रों के साथ खेलता है, जबकि एक गाय खूँटे में बँधी रहती है। गाय की बलि दी जाती है (गोपितृयज्ञ), बौ.श्रौ.सू. 2.8–11; 15; 20.16; 24.12–13। गाय के स्थान पर अज का प्रयोग भी हो सकता है। सभी अग्नि-स्थान को साफ किया जाता है। मध्यरात्रि के व्यतीत हो जाने के अनन्तर अध्वर्यु उत्तरारणि को अधरारणि पर रखकर अग्नि-मन्थन करता है। उद्गाता—विभिन्न सामों का गायन करता है अथवा उसकी अनुपस्थिति में ब्रह्मा ऋचाओं का पाठ करता है। इस प्रकार मथित अग्नि को एक पात्र में इकट्ठा किया जाता है और गार्हपत्य औपचारिक रूप से स्थापित कर दिया जाता है, और इसमें से अध्वर्यु इन्धन-समिधाओं को प्रज्वलित करता है, और उसे एक कड़ाही में ले जाकर आहवनीय की स्थापना के लिए पूर्व की ओर प्रस्थान करता है। बाद में आहवनीय से सभ्य एवं आवसथ्य का आधान किया जाता है। अग्नीध्र गार्हपत्य अग्नि को लाता है अथवा अग्निमन्थन कर दक्षिणाग्नि का आधान करता है।

जब अध्वर्यु आहवनीय के स्थापनार्थ प्रस्थान करता है, तब आहवनीय-अग्नि-स्थान में सञ्चित निश्चित सामग्रियों पर अश्व को चलाया जाता है, अग्नियों के स्थापन के बाद विभिन्न प्रकार के अन्न एवं समधिाओं को उसमें डाला जाता है। अन्त में पूर्ण चम्मच से आहुति प्रदान की जाती है (पूर्णाहुति), का.श्रौ.सू. 4.10.5 टीका, देखें श्रौ.को. (अं) 1.78।

अग्न्याधेयक्रम पु. तीन पवित्र अग्नियों के आधान के लिए नियत क्रम, वैखा.ध.सू. 2.4.3।

अग्न्याधेयछन्दस् न. मन्त्र के सन्दर्भ में अग्न्याधेय के समय पढ़ा जाने वाला वैदिक पाठ्य (सर्वम् एव अग्न्याधेयच्छन्दो याजमानम् अग्न्याधेये) बौ.श्रौ.सू. 3.231:11।

अग्न्याधेयदक्षिणा स्त्री. अग्न्याधेय कर्म के लिए नियत दक्षिणा, बौ.श्रौ.सू. 1.44:14; (का.श्रौ.सू. 4.10.12 के अनुसार छः, बारह अथवा चौबीस गायें 'भूयसीश्च' और अधिक, का.श्रौ.सू. 4.10.13 के अनुसार)।

अग्न्याधेयदेवता स्त्री. अग्न्याधेय कर्म का देवता, पा.गृ.सू. 1.2.9 (अग्नि पवमान, अग्नि पावक अथवा अग्नि शुचि एवं अदिति)।

अग्न्याधेयनक्षत्र न. अग्न्याधेय कर्म (के अनुष्ठान) के लिए (नियत) नक्षत्र, 'कृत्तिका रोहिणी मृगशीर्षम्' हि.श्रौ.सू. 3.2.2।

अग्न्याधेयविधान न. अग्न्याधेय के लिए विहित यज्ञीय प्रक्रिया, वैखा.ध.सू. 2.5.6; तु. का.श्रौ.सू. 4.7-10।

अग्न्याधेयशर्करा स्त्री. अग्न्याधेय में प्रयुक्त होने वाला कंकड़, श.ब्रा. 13.8.4.11 [बहु. आलं. अग्न्याधेय का सदोष अनुष्ठान, मो.वि.]।

अग्न्याधेयहविस् न. अग्न्याधेय कर्म की आहुतियाँ (हविस्) श.ब्रा. 10.1.5.1; अग्नि पवमान एवम् अग्नि पावक अथवा अग्निशुचि के लिए घृत एवं अदित के लिए चरु, का.श्रौ.सू. 4.10.8-10; पूर्ण-चमस, आहुति के लिए घृत, 4.10.4।

अग्न्याधेयान्त पु. अग्न्याधेय कर्म का अन्तिम भाग, 'अग्न्याधेयान्तान् कुर्वते पूर्णाहुतिम् अक्षाभिहोमम् इष्टीरिति', ला.श्रौ.सू. 4.12.13 = द्रा.श्रौ.सू. 12.4.18।

अग्न्याधेयिक वि. अग्न्याधेय से सम्बद्ध, बौ.श्रौ.सू. 3.1 : 12।

अग्न्याधेयेष्टि स्त्री. अग्न्याधेय की अङ्ग इष्टि क्रिया (यें) मा.श्रौ.सू. 1.1.5.9 (अन्वारम्भणीया), द्रा.श्रौ.सू. 12.4.6।

अग्न्यायतन न. अग्नि-कटाह (कुण्ड) अथवा अग्नि-स्थान, गो.ब्रा. 1.3.13; ला.श्रौ.सू. 4.9.16; मा.गृ.सू. 2.1.15, वैखा.ध.सू. 6.2.4.1।

अग्न्यायतनदेश पु. वह स्थान जहाँ अग्नि का आधान और संवर्धन करना है अर्थात् अग्निस्थान अथवा अग्निकुण्ड के लिए निहित क्षेत्र (स्थान) बौ.गृ.सू. 1.3.1।

अग्न्याशा स्त्री. अग्नि के स्वामित्व वाली दिशा, अर्थात् दक्षिण-पूर्व, गो.ब्रा. 2.8.4।

अग्न्याहुति स्त्री. आहवनीय अग्नि में (मथित) अग्नि का प्रक्षेप, ऐ.ब्रा. 7.4 (टीका - आतिथ्यकर्मसु मथितस्य अग्नेराहवनीयाग्नौ प्रक्षेपरूपा)।

अग्न्युक्थ न. अग्निवेपि की प्रशंसा में प्रार्थन-गीत, कौषी.ब्रा. 19.4 (85-18); का.श्रौ.सू. 18.3.3; शां.श्रौ.सू. 9.25.1।

अग्न्युत्पात पु. अग्निजनित उत्पात सङ्कट (ऐसे अवसरों पर अनध्याय रखा जाता है) अ.वे.परि. 53.5.2; पार.गृ.सू. 2.11.2।

अग्न्युत्सादिन् वि. जिसने पवित्र अग्नि की उपासना छोड़ दिया हो, गौ.ध.सू. 3.4.34।

अग्न्युदकशेष न. अग्नि एवं अन्य यज्ञीय वस्तुओं के शुद्धीकरणपवित्रीकरण के लिए प्रयुक्त जल का बचा हुआ भाग (शेष) हि.श्रौ.सू. 26.1.139; आप.ध.सू. 1.4.20।

अग्न्युद्ग्रभण न. अग्नि को उच्चतर (बार-बार उच्चतर) स्तर पर रखना, का.श्रौ.सू. 16.5.11 (चयन के अन्तर्गत उख्याग्नि के साथ विष्णुक्रम के समय।

अग्न्युद्धरण न. गार्हपत्य से आहवनीय एवं दक्षिणाग्नि अग्निस्थान में अग्नि का वितरण, शाब.भा. 2221.13 (12.1.5 पर)।

अग्न्युद्धरण

अग्न्युद्धरणी स्त्री. वह पात्र जिसमें अग्नि को वितरण के लिए ले जाया जाता है, हि.आ.ध. II. 2.113 पा.टी.।

अग्न्युपघात पु. पवित्र अग्नि की हानि अथवा दूषित होना, आप.श्रौ.सू. 9.10.10।

अग्न्युपदेश पु. 'अग्निचयन' से सम्बद्ध पाठ्य-वर्ग में विहित निर्देशन, पार.गृ.सू. 2.13.5।

अग्न्युपसमाधान न. पवित्र अग्नि में ईंधन (समिधा) डालना, विष्णु.स्मृ. 74.3।

अग्न्युपसमिन्धन न. 1. अग्नि-प्रज्वालन के समय बोले जाने वाले मन्त्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 6.13.10 (दीदिहि दीदिदासि---)।

अग्न्युपस्थान न. अग्निहोत्र के अन्त में पवित्र अग्नियों की पूजा = स्तुति, काठ.सं. 7.5; श.ब्रा. 2.3.4.38; 2.4.1.2; भा.श्रौ.सू. 6.1.1; आप.श्रौ.सू. 6.16.1; 2. 'अग्नि की प्रशंसा' में प्रयुक्त एक मन्त्र का नाम, शा.श्रौ.सू. 2.14.6; आप.श्रौ.सू. 6.25.1; 6.15.12. तु. गोंड. प्रातर, पृ. 37।

अग्न्युपस्थानयाजमान न. अग्न्युपस्थान के सम्बन्ध में यजमान का कर्तव्य, वारा.श्रौ.सू. 1.5.4.32।

अग्न्युपस्थानवत् क्रि.वि. अग्न्युपस्थान के समान (पवित्र अग्नि को प्रार्थना अर्पित करना), आप.श्रौ.सू. 6.26.6।

अग्रतःपुष्कर वि. कटोरे के उड़ेलने वाले भाग को ऊपर की ओर रखने वाला शाखा का भाग जहाँ तक वृक्ष के भाग का प्रश्न है, बौ.श्रौ.सू. 20.16.7।

अग्रता स्त्री. आगे होने की स्थिति, कौषी.गृ.सू. 5.1.6 (कुशानाम् एवम् अग्रता)।

अग्रनाह न. (शलाका के) अग्रभाग की परिधि वैखा.श्रौ.सू. 11.7।

अग्रन्थि वि. बिना गाँठ का (औदुम्बरी काष्ठीय स्तम्भ) षड्वि.ब्रा. 4.3.1।

अग्रपाक पु. प्रथम अन्न (फसल) का पक्व भोजन, भा.श्रौ.सू. 6.15.2; आप.श्रौ.सू. 6.29.31; मा.श्रौ.सू. 38.20; वारा.श्रौ.सू. 1.5.5.3; का.श्रौ.सू. 4.6.1; मा.गृ.सू. 2.3.11; प्रथम फल, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.2।

अग्रपिण्ड पु. उबले चावल का प्रथम पिण्ड, तै.आ. 1.31.6।

अग्रवत् (स्त्री. I) 1. 'अग्र' शब्द वाला (मन्त्र), तै.सं. 2.3.14.5; बौ.श्रौ.सू. 2.187:14 (अर्पण एवं आह्वान) मन्त्र; 2. अक्षत = अभेद्य अग्रभाग वाला, वैखा.श्रौ.सू. 3.6.5 (दर्भौ); क्रि.वि. 'बुध्नाद् अग्रेण विमिमाय', तै.सं. 2.3.1.4; श्रौ.को. (सं.) 1.342।

अग्रस्त वि. (उच्चारण) जो भद्दा न हो, ला.श्रौ.सू. 6.10.18।

अग्रस्तोम पु. (त्रिवृत् स्तोम के कहे गये) स्तोमों में प्रथम, निदा. सू. 7.1.6; 10.13.17।

अग्रह वि. नियम के ग्रह भाग से हीन 'इमे चतुर्होतारः ---- होमार्था अग्रहा अस्वाहाकाराः', आप.श्रौ.सू. 14.15.3; श्रौ.को. (अं.) I. पृ.6; ग्रह (चतुर्होत्र) सूत्र = नियम का बाद वाला भाग।

अग्रहण न. सुब्रह्मण्या निगद में यजमान के नाम का उल्लेख न होना, 'ऊर्ध्वम् अतिरात्रात् अग्रहणम्' ला.श्रौ.सू. 1.4.12।

अग्राग्र वि. (वृक्ष शाखा के) ऊपरी भाग से कलछी के पृष्ठभाग की निर्मिति वाला, आप.श्रौ.सू. 1.15.12; हि.श्रौ.सू. 1.4.32।

अग्राम्यभोजिन् वि. अग्राम्य आरण्य भोजन पर जीने वाला।

अग्राम्यशूकर पु. जंगली सुअर, वी.मि. (आह्निक) 544.16 (भक्ष्याभक्ष्यविचार)।

अग्रियवती स्त्री. 'अग्रिय' (शब्द) वाला मन्त्र (ऋ.वे. 9.7.3) 'प्रयुजो वाचो अग्रियः', इत्यादि। ला.श्रौ.सू. 4.5.19।

अघमर्षण न. पापापनयन हेतु प्रयुक्त ऋग्मन्त्र 10.190 (ऋषि अघमर्षणदृष्ट = रचित), गौ.ध.सू. 3.1.12; बौ.ध.सू. 2.10.32; 2.5.12; (-वत्) क्रि.वि. ऋषि अघमर्ष की तरह, आ.श्रौ.सू. 24.9.13; (-सूक्त) न. पाप को हटाने के लिए प्रयुक्त मन्त्र, वैखा.ध.सू. 2.8.2।

अघमर्षणर्च् स्त्री. पापापनयन के लिए प्रयुक्त एक ऋग्मन्त्र, नैष. 5.18।

अघशंस वि. बुरा बोलने वाला, दुष्ट 'निष्टप्तो अघशंसः', बौ.श्रौ.सू. 1.12.2; पातु सविता अघशंसात् मा.श्रौ.सू. 26.25।

अघसूतक न. पापपूर्ण कृत्य के कारण अपवित्रता, शां.गृ.सू. 4.7.6।

अघा स्त्री. मघा नक्षत्र, अ.वे. 14.1.13।

अघायु वि. पीडा पहुँचाने के इरादे वाला, ऋ.वे. 4.2.9।

अघारिणी वि. (स्त्री) लेपन न करने वाली, अ.वे. 11.9.14।

अघाह पु. अपवित्रता का दिन, शां.श्रौ.सू. 4.15.7।

अघूर्ण वि. अवक्र, सरल = सीधा (यज्ञीय स्तम्भ), आप.श्रौ.सू. 7.1.17।

अघृष्ट वि. जो घसीटा न गया हो (आलभ्य पशु), हि.श्रौ.सू. 4.3.1 (टीका. घृष्टः गत्वरः स न)।

अघोदक न. किसी व्यक्ति के मृत्यु के पश्चात् अनुष्ठित एक प्रायश्चित्तीय कर्म का नाम। यह 'एक विशिष्ट विधि से जल में डुबोने' का विधान करता है, बौ.पि.मे. 1.12.10; अग्निवे.गृ.सू. 3.6.2; 3.7.2; अशुद्धि (अघ) के दौरान 3 दिन 6 दिन 12 दिन अथवा एक वर्ष तक मृतात्मा के लिए अनुष्ठेय जलार्पण, श्रौ.को. (सं.) 1.807.17 (अन्त्येष्टि); देखें उदक क्रिया; सं.डि.डे.का. पाप अथवा अशुद्धि के प्रक्षालनार्थ जल-परमगुरुष्वेवमघोदकमितरेषु त्रिरात्रम्; अग्निवे.गृ.सू. 3.6.2; 3.7.3; बौ.पि. 1.12.10।

अघोर न. एक साम का नाम 'रथन्तरं नाम मे साम अघोरम्', गो.ब्रा. 1.2.18; पु. रुद्र का एक स्वरूप, शिव, तै.आ. 10.45; 'अघोराय त्वा परिददामि', कौशि.सू. 56.13।

अघोषम् क्रि.वि. विना घोष के (विना ऊँची ध्वनि के); अश्रवणीयतापूर्वक-इस प्रकार की सुना न जा सके (बहिष्पवमान स्तोत्र इसी प्रकार गाया जाता है), जै.ब्रा. 1.253।

अघ्निय स्त्री. (या) गाय, तै.सं. 1.1.1.1; भा.श्रौ.सू. 1.2.25 (अभिधेयार्थ - जिसे मारा न जाय)।

अङ्क पु. वलय, अङ्कुश = नुकीले अग्र भाग वाला, कौशि.सू. 18.16, गोद, जघन 'जाते अग्निम् उपसमाधाय अङ्क आधाय पृषदाज्यस्य उपघातं जुहोति', श.ब्रा. 14.9.4.3; दीक्ष्य बालक अपनी माँ की गोद में बैठता है, वैखा.गृ.सू. 3.15।

अङ्ककरण न. शरीर पर अङ्कन अथवा चिह्नीकरण (श्वान् के पदचिह्न आदि से) गौ.ध.सू. 2.2.44।

अङ्कगत वि. गोद में बैठा हुआ 'सनाथः कुमारः -------- मातुरङ्कागतः', कौषी.गृ.सू. 1.18.2।

अङ्कति पु. सामवेद के एक ऋषि का नाम, आर्षे.ब्रा. 5.3.2; 2. जो पवित्र अग्नि को संभाले रखता है, अनेका सं. 3.232; 3. अग्निहोत्र कर्म, विश्वप्र. 60.55।

अङ्कदेश पु. गोद का स्थान, (होता) 'अन्वारभते------ अग्रीध्रम् अङ्कदेशेने सव्येन वा' (पार्श्वस्थेन पाणिना), आश्व.श्रौ.सू. 1.3.26।

अङ्कधारणा स्त्री. जघन को विशेष स्थिति में रखकर बैठना (दाहिना पैर वाम-बायें जंघे पर), आश्व.श्रौ.सू. 1.1.9 (टी. दक्षिणोत्तरीणोपस्थेन इति); 1.3.31 (टी. दक्षिणपादः उत्तरो यस्य उपस्थस्य स दक्षिणोत्तर्योपस्थः); सं.डि.डे.का : पैरों को आर-पार रखकर बैठना, श्रौ.प.नि. 22.178।

अङ्कधारणा

अङ्कलक्षण न. एक विशिष्ट चिह्न अङ्कित करना, शांखा.गृ.सू. 3.10.1।

अङ्कसम्मित वि. गोद के समीप रखा हुआ 'संहतौ'; पाणी धारयन्--------हृदयसम्मितान् अङ्कसम्मिता् वा (प्रेषितो जपति), आश्व.श्रौ.सू. 1.1.23 (प्रसङ्ग : होता के हाथ की स्थिति जब वह इष्टि में सामधेनी का पाठ करता है) तु. सं.डि.डे.का. गोद तक पहुँचने वाला।

अङ्काङ्क न. एक छन्द का नाम, तै.सं. 4.3.12.3; श.ब्रा. 7.5.2.6।

अङ्कु न. कुटिल अथवा शीघ्र गति वाला, का.सं. 40.11।

अङ्क्त्वा (अञ्ज् + क्त्वा) अञ्जन अथवा लेपन करके (एक पवित्र घास के अग्रभाग का), आप.श्रौ.सू. 6.14.2; 3.2.4; 3.9.7; 7.12.14; 7.8.14; (क्रमुक) हि.श्रौ.सू. 9.3.5; 24.5.1; (बर्हिष् का) वैखा.श्रौ.सू. 2.9; (समिधा के इध्मग्रन्थि का) हि.श्रौ.सू. 1.2.11 (काष्ठीय स्वरु-पट्टिका = पतले टुकड़े एवं छुरे का) बौ.श्रौ.सू. 1.117.1; (पशुयाग में आलभ्य पशु के रक्त से पवित्र घास के अग्रभाग का) बौ.श्रौ.सू. 1.119.6; 'होता' की तर्जनी का, भा.श्रौ.सू. 3.8.13 (अवान्तरेडा)।

अङ्ग न. 1. पवित्र अग्नि में अर्पणीय (आलभ्य पशु के) शरीर का अङ्ग विशेष, 'क्षुरेण अङ्गानि अवद्य', सामवि.ब्रा. 2.5.5; सर्वाणि अङ्गानि अध्वर्युरभिषिञ्चति, आप.श्रौ.सू. 7.18.7; एक अङ्ग (अङ्ग होम के अन्तर्गत अश्वमेध-याग में अश्व के विभिन्न अङ्गों को आहुतियाँ अर्पित की जाती हैं) ता.ब्रा. 3.8.17.4; आप.श्रौ.सू. 20.11.12; 2. एक अङ्ग कर्म (जो सोम याग के लिए पशुयाग, यह यज्ञ का तन्त्र बन जाता है) 14.5.3; यज्ञाङ्ग का अर्थ है यज्ञीय उपकरण = पात्र, 24.2.13; अङ्गों में कुछ जैसे प्रयाज इत्यादि जो 'दर्श' के अङ्ग हैं, जो फलोत्पत्ति नहीं करते, का.श्रौ.सू. 1.2.4; 3. सहायक शास्त्र, गौ.ध.सू. 2.2.19।

अङ्गकाम पु. अङ्ग कर्म से अपेक्षित फल, निदा.सू. 27.13 (2.4); मी.सू. 4.3.25; अङ्ग के (फल की) इच्छा रखने वाला निदा.सू. 27.9 (2.4)।

अङ्गचल पु. शरीर का काँपना, बौ.गृ.सू. 3.5.13।

अङ्गति पु. 1. अग्नि 'अङ्गतिः पुंसि अग्निहोतृ-ब्रह्मवह्निषु', मेदि.को. 63.86; 2. अग्निहोत्री; मेदि.को. 63.86, शब्द रस को. 137.8।

अङ्गत्व न. अङ्गता, अङ्ग अथवा सहायक (कर्म) होने की स्थिति, का.श्रौ.सू. 4.1.28।

अङ्गदोष पु. अङ्ग क्रिया से सम्बद्ध दोष, निदा.सू. 2.4.15।

अङ्गधर्म पु. अङ्गभूत द्रव्य (अथवा कर्म) से सम्बद्ध वैशिष्ट्य अथवा कृत्य 'भवन्ति वा अङ्ग धर्मा यथा युग्यस्य घासदानम् अक्षस्य उपाञ्जनम् इति, निदा.सू. 2.4.16।

अङ्गनखवादन पु. शरीर के विरुद्ध नख से खुरचना अथवा ताडन करना, वा.ध.सू. 6.33 (नाङ्गनखवादनं कुर्यात्)।

अङ्गपरुस् न. (बहु.) अङ्ग एवं पर्व (जोड़), तै.सं. 2.5.6.1; वैता.श्रौ.सू. 24.1।

अङ्गप्रधानभेद पु. प्रधान एवं अङ्ग कर्म में भेद, का.श्रौ.सू. 1.2.18; भाट्ट दी. 68.6 (IX.1.11 पर)।

अङ्गभूत वि. अङ्ग के रूप में कार्य करने वाला, आप.श्रौ.सू. 11.16.3, वैखा.श्रौ.सू. 14.14.2; निदा.सू. 6.6.1।

अङ्गयज्ञ पु. सहायक यज्ञ, शाब.भा. 1646.6 (9.1.3 पर)।

अङ्गरोग पु. शरीर का रोग। 'सिंहे मे मन्यु ------कुर्मे मेऽङ्गरोगो बस्ते मे अपसार्या', बौ.श्रौ.सू. 2.5 : 4।

अङ्गलक्षण न. (गाय के) शरीर पर अङ्कित पहचान का चिह्न, कोषी.गृ.सू. III-5.9। (प्रसङ्ग : अनाहिताग्नि द्वारा अनुष्ठेय आग्रयण)।

अङ्गलोमन् न. शरीर के रोम, गौ.गृ.सू. 3.1.4; (केशकरण)।

अङ्गविद् वि. अङ्ग-विद्याओं को अच्छी तरह जानने वाला, वासि.ध.सू. 3.20।

अङ्गविधुरता स्त्री. यज्ञाङ्ग (अर्थात् यजमान-पत्नी) की क्षति अथवा अभाव, आप.श्रौ.सू. 5.26.3 (पुनराधेय)।

अङ्गविपर्यास पु. अङ्ग कर्म का क्रम उलटा हो जाना, मी.सू. 11.3.46।

अङ्गविप्रतिषेध पु. अङ्ग कर्म से विरोध, हि.श्रौ.सू. 3.8.21 (जब प्रधान एवं अङ्गकर्म में अन्तर्विरोध हो, तो उससे जो 'प्रकृति' से सम्बद्ध हो उसे संसक्त रहना चाहिए)।

अङ्गवृद्धि स्त्री. अङ्गो (अथवा शरीर) के आकार में वृद्धि, अ.वे.परि. 68.2.7।

अङ्गव्यवाय पु. (शब्द के) किसी भाग द्वारा व्यवधान, ऋक्.प्रा. 4.5.6 सङ्करोति संस्करोति (स् द्वारा व्यवधान)।

अङ्गशस् क्रि.वि. (अङ्ग + शस्) एक-एक अङ्ग करके (प्रसङ्गः आलभ्य पशु के नियत अङ्गों को काटना), श.ब्रा. 3.8.3.10; गो.ब्रा. 2.6.7; कौशि.सू. 47.42; (द्यूत में कीलबद्ध गाय के सन्दर्भ में) मा.श्रौ.सू. 1.5.5.14 'न हिंस्युः अङ्गश एव विसर्जयेयुः', मा.गृ.सू. 2.9.1।

अङ्गसामान्य न. घटक अङ्गों की समानता। बौ.श्रौ.सू.1.44.1

अङ्गहीन वि. अंग से हीन, अङ्गों अथवा शरीर के दोष से युक्त, आप.श्रौ.सू. 7.12.2 (आलभ्य पशु); का.श्रौ.सू. 1.1.5 (अनुष्ठान के लिए अनुपयुक्त है); बौ.श्रौ.सू. 2.1.49।

अङ्गहोम पु. घोड़े के अङ्गों के लिए दी जाने वाली आहुति (वह घोड़ा जिसका तै.सं. 7.3.16 की विधि से अश्वमेध में आलम्भन किया जाता है); ता.ब्रा. 3.8.17.4; आप.श्रौ.सू. 20.11.12; वैखा.श्रौ.सू. 4.10; 6.2; 6.3।

अङ्गाध्यायिन् वि. जो वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्दस्) का अध्ययन करता है, बौ.गृ.सू. 1.7.4; श्रुतप्रकाशिका IA.33.34 (1.1.1 पर)।

अङ्गानिवृत्ति स्त्री. अङ्ग को न त्यागना, वारा.श्रौ.सू. 1.1.1.67।

अङ्गार पु. जलते हुए राल, कौषी ब्रा. 2.1 (4.7); पुरोडाश को पकाने के लिए प्रयुक्त, अग्नि (सामान्यतया गार्हपत्य) के उत्तर उन्हें स्थानान्तरित करके, तै.ब्रा. 2.1.3.1; आश्व.श्रौ.सू. 2.2.15; शां.श्रौ.सू. 2.8.8; भा.श्रौ.सू. 6.10.5; आप.श्रौ.सू. 1.12.1; 1.12.3; मा.श्रौ.सू. 14.12; का.श्रौ.सू. 2.4.26; पितृयज्ञ के लिए अभिप्रेत स्थालीपाक करने के लिए अग्नीध्र से मार्जालीय-अग्नि-स्थान तक ले जाकर, ला.श्रौ.सू. 101.10; मुख्य अग्नि के दक्षिण ले जाकर, बौ.गृ.सू. 3.12.7; काठ.गृ.सू. 4.11.11; हि.श्रौ.सू. 1.1.27; वैखा.गृ.सू. 1.12; कौशि.सू. 15.13; आज्य को गरम करने के लिए पवित्र अग्नि से निकाला गया हि.गृ.सू. 23.7।

अङ्गारकपाल न. दहकते कोयले अथवा राल से युक्त कपाल = घटशकल कौशि.सू. 26.30।

अङ्गारप्रासन न. सत्र के ऋत्विजों द्वार मथित अग्नि का गृहपति की अग्नि में प्रक्षेप, का.श्रौ.सू. 12.1.17।

अङ्गारवर्षण न. अङ्गारों की वृष्टि, अ.वे.परि. 64 (4).3।

अङ्गारवालुकाधान्य न. अङ्गार, बालू और यव (अङ्गारवालुका-धान्यं यत्र देवः प्रवर्षति। ---- क्षिप्र----भयं घोरं चतुर्विधम्) अ.वे.परि. 71.8.5।

अङ्गारसात्कृत्य (अङ्गारसात् + कृ + ल्यप्) दहकते अङ्गारों पर रखकर, आप.श्रौ.सू. 13.24.18 पर टीका।

अङ्गाराधिवर्तन न. अङ्गारों को कपालों पर (तप्त करने के लिए) रखना, बौ.श्रौ.सू. 3.19.11; कपाल का स्वयं का सन्दर्भ 'तस्य तस्य अङ्गुल्याभिनिधानम् अङ्गाधिवर्तनं च वाजसनेयिनः समामनन्ति', आप.श्रौ.सू. 1.23.4; वि. अङ्गारों को (कपालों पर) रखने से सम्बद्ध मन्त्र, बौ.श्रौ.सू. 3.19.11; 'ध्रुवमसि', धरुणमसि, इत्यादि वा.सं. 1.18।

अङ्गाराध्यूहन न. कपालों को अङ्गारों पर रखना, बौ.श्रौ.सू. 25.16:24, विधि.र. 10(58.20); तु. श्रौ.को. (अं) II P. 383।

अङ्गारिन् अङ्गार पर पकाया गया, काठ.गृ.सू. 5.8.3 (टीका. अङ्गारेषु पचेन्न स्थाल्याम्)।

अङ्गाहुति स्त्री. सहायक (गौण, पूरक) आहुति, अ.वे. प्रायश्चित्त 4.2 (ज.ए.ओ.सो. 33.113)।

अङ्गिरस् पु. अग्निपूजा एवं यज्ञीय सत्रों के अनुष्ठान को समर्पित एक ऋषि का नाम, तै.सं. 1.9.4; 7.1.1; जै.ब्रा. 1.168 'अच्छावाकीया होत्रा' के द्रष्टा (ऋषि) 'अच्छावकीयां होत्रां ददर्श', कौषी.ब्रा. 28.4 (135.24); झाड़-फूंक से सम्बद्ध, गो.ब्रा. 1.1.8; पितरों के एक गण का नाम, गो.ब्रा. 10.14.4; अथर्ववेद का नाम 'ऋग्भ्यः स्वाहा, अङ्गिरोभ्यः स्वाहा', तै.सं. 5.12.2; अङ्गिरस् द्वारा दृष्ट मन्त्रों का नाम, गो.ब्रा. 1.5.24।

अङ्गिरसामयन न. एक 'संवत्सर सत्र' वर्षभर चलने वाला यज्ञीय सत्र, ऐ.ब्रा. 18.3 (485); शां.श्रौ.सू. 13.22.1; बौ.श्रौ.सू. 2.262:13; आप.श्रौ.सू. 23.9.16; मा.श्रौ.सू. 210.5; अङ्गिरस् द्वारा स्वीकृत यज्ञ की एक प्रविधि, श.ब्रा. 4.4.5.20; इस यज्ञ के कुछ विशिष्ट लक्षण। (का.श्रौ.सू. 24.4.11-17) निम्नलिखित विवरणों को छोड़कर इनका अनुष्ठान 'आदित्यानामयनम्'-वत् होता है 1) अभिप्लव त्रिवृत्-स्तोम वाले होते हैं; 2) प्रथमार्ध में महीने 'पृष्ठ्य षडह से प्रारम्भ होते हैं; 3) द्वितीयार्ध-मास का अन्त पृष्ठ्य षडह से होना चाहिए; 4) गो, आयुस् एवं छन्दोम क्रम में उलट दिये जाते हैं।

अङ्गिरसां द्विरात्र पु. अगस्त्य के नाम के आधार पर अभिहित एक अहीन सोम याग, शाब.भा. 1965.14 (10.5.53 पर)।

अङ्गिरसां निवेष्ट पु. एक साम का नाम, जै.ब्रा. 3.250 (पशु की कामना से गाया जाता है)।

अङ्गिरसां प्रयति स्त्री. एक 'एकाह' का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.5.17।

अङ्गिरसां संक्रोश पु. एक साम का नाम (अङ्गिरसों का सामूहिक गान) पञ्च.ब्रा. 12.3.22; मश. सू. 1.4.5।

अङ्गिरस्तम (अङ्गिरस् + तमप्) पु. अङ्गिरसों में श्रेष्ठ (अधिकतर अग्नि उषस्, इन्द्र एवं सोम के लिए उक्त), ऋ.वे. 1.31.2; श.ब्रा. 7.3.2.8।

अङ्गिरसस्पति पु. अङ्गिरसों का स्वामी 'यमाय च अङ्गिरस्पतये स्वधा नमः ------ इति जुहोति, वैखा.गृ.सू. 4.5; 2.2; 5; 14।

अङ्गिरस्यानां सामन् न. मैधातिथ साम की एक अन्य नामपद्धति, जै.ब्रा. 3.237।

अङ्गिरोधाग्नी स्त्री. (पाँच स्तरीय अग्निवेदि के दूसरे स्तर की) ईंट का नाम (अभिधेयार्थ-अङ्गिरसों का आसन) अङ्गिरोधाग्नीः सप्त पश्चात् (इष्टका उपदधाति), मा.श्रौ.सू. 152.12।

अङ्गिरोवत् क्रि.वि. 'प्रवर' ऋषि अङ्गिरस् के समान, आप.श्रौ.सू. 24.6.11; का.श्रौ.सू. 3.2.7.8 (होतृ-वरण) तु. श.ब्रा. 1.5.1.9-10।

अङ्गुल न. 'अङ्गुल', एक माप का नाम (= 6 अथवा 8 यव = यव के दाने के परिमाण वाला), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4; = 14 अणु. बीज अथवा 34 तिल के दाने के परिमाण वाला, बौ.शु.सू. के अनुसार, श्रौ.प.नि. 2.9।

अङ्गुलपरिमाण एक माप जिसे 'अङ्गुल' कहा जाता है = 14 अणु के बीज एवं 34 तिल के दाने के बराबर वाला माप, श्रौ.प.नि. 2.9।

अङ्गुलप्रमाण न. 'अङ्गुल' संज्ञक माप 'अथ अङ्गुलप्रमाणं चतुर्दश अणवः' बौ.शु.सू. 1.3 (= 14 अणु के बराबर)।

अङ्गुलाग्र न. अङ्गुलि का अग्रभाग, वैखा.गृ.सू. 5.13।

अङ्गुलि स्त्री. अङ्गुलि (उँगरी) तर्जनी, अंगूठा, कौषी.ब्रा. 16.5. (17.17) (सर्पिरुपस्पर्शन); श.ब्रा. 1.2.2.18 (अङ्गुलि-प्रणेजन); 3.1.3.35; 3.2.1.36; 3.6.3.21; आश्व.श्रौ.सू. 1.7.4; शां.श्रौ.सू. 1.10.5 (इडा) 'अङ्गुष्ठेन उपमध्यमया च अङ्गुल्या व्यूह्य', आप.श्रौ.सू. 10.24.8; का.श्रौ.सू. 22.8.16; 5.4.33; आश्व.गृ.सू. 1.7.4, गौ.पि.मे. 2.1.12. (तर्जनी) श.ब्रा. 1.2.1.7; बौ.श्रौ.सू. 1.160:12; आप.श्रौ.सू. 3.7.6; बौ.गृ.सू. 3.17 (85.14); का.श्रौ.सू. 2.4.29।

अङ्गुलिकाण्ड न. दो जोड़ों के बीच अथवा जोड़ और अन्त भाग के बीच अङ्गुलि का हिस्सा, कपि. क.सं. 41.2; तै.ब्रा. 3.2.5.12; बौ.श्रौ.सू. 2.417 : 8; आप.श्रौ.सू. 7.3.6; 22.9.14।

अङ्गुलिपरिग्रह पु. अङ्गुलि-माप (रस्सी की सघनता को निश्चित करने के लिए यजमान के अङ्गुलि का आकार) 'यजमानस्य अङ्गुलिपरिग्रहो रशना-बन्धने', मा.श्रौ.सू. 177.18. (गेल्डर इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार करते हैं 'रस्सी को (स्तम्भ के चारों ओर) बाँधने के लिए यजमान का अङ्गुलि-परिमाण (माप) (प्रयुक्त होता है अर्थात यजमान की अङ्गुलि से नापा जाता है); सं.डि.डे. फिलहाल इसे इस प्रकार ग्रहण करता है 'अङ्गुलि को पकड़ना', देखें पत्यल एच.सी., बु.डे. कारि. इ. 144, 1985 पृ. 135.36।

अङ्गुलिपरु न. अग्रभाग से पर्व (जोड़) तक का अङ्गुलि का हिस्सा (शाब्दिक अर्थ - अङ्गुलिपर्व, अँगुली की गाँठ), आप.श्रौ.सू. 19.11.3 = हि.श्रौ.सू. 23.2.3; हि.श्रौ.सू. 23.3.23; (= अग्निवेदि के निर्माण में प्रयुक्त 'शर्करा' के आकार का बतलाया गया 'यावद् उत्तमम् अङ्गुलिपरु तावतीः'।

अङ्गुलिपर्वन् न. अग्रभाग से जोड़ तक का अँगुली का हिस्सा (शाब्दिक अर्थ - अँगुली का जोड़, अँगुली की गाँठ) (माप के रूप में) सामवि.ब्रा. 3.4.7; मा.श्रौ.सू. 1.7.7.19; 218; 15; का.श्रौ.सू. 22.8.6; ला.श्रौ.सू. 8.9.9; होता की तर्जनी का जिसको इष्टि में घृत से अञ्जित = लिप्त किया जाता है, 3.9.7; मा.श्रौ.सू. 22.3; वारा.श्रौ.सू. 1.3.5.7; 1.3.7.10; का.श्रौ.सू. 3.4.9; हि.श्रौ.सू. 2.3.16, 2.5.12 वैखा.श्रौ.सू. 7.9।

अङ्गुलिप्रणेजन न. वह जल जिसके द्वारा अँगुलियों से पुरोडाश की पीठी तैयार की जाती है। धोयी जाती है। पिष्ट पुरोडाश, श.ब्रा. 1.2.2.18; श.ब्रा. (को.) 2.2.1.15; श.ब्रा. 1.2.3.3; श.ब्रा. (को.) 2.2.1.17।

अङ्गुलिप्राशन न. अँगुली से खाना, आप.गृ.सू. 1.2.11 पर हरदत्त, 'अङ्गुल्यादाय प्राश्य' (प्रसङ्ग : पाकयज्ञ - दर्विलेपप्राशन)।

अङ्गुलिमात्र वि. (अङ्गुलि + मात्रच्) अँगुली के नाप आकार का (यज्ञीय स्तम्भ का चषाल-वलय के ऊपर के आकार = माप के रूप में उल्लिखित); मै.सं. 3.9.4।

अङ्गुलिमूल न. अँगुली का मूल भाग (उस स्थान के रूप में जहाँ से ऋषियों को जलाञ्जलि इत्यादि अर्पित किया जाता है), बौ.ध.सू. 1.5.13; म.स्मृ. 2.59।

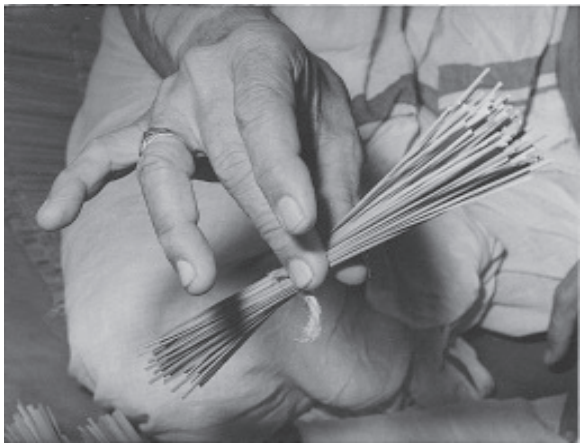

अङ्गुलीमानम्

अङ्गुली स्त्री. अँगुली, अँगूठा 'दश हस्त्या अङ्गुल्यो दश पाद्या:', पञ्च.ब्रा. 23.14.5; अँगुली, अ.वे.परि. 16.98.10; निरु. 3.8; 'आकाशवतीभिर् अङ्गुलीभिर् अपिदध्यात्', आश्व.श्रौ.सू. 5.5.9 द्विदेवत्य ग्रह; 5.6.10; आप.श्रौ.सू. 2.8.10 (पुरोडाश को काटना); मा.श्रौ.सू. 181.22; बौ.ध.सू. 1.5.14; 2.3.21।

अङ्गुलीपर्वन् न. अग्रभाग से जोड़ तक अँगुली का हिस्सा, का.श्रौ.सू. (देखें - अङ्गुलिपर्वन्); - **मान** न. एक अँगुल से नापना।

अङ्गुलीय न. अँगुठी (दक्षिणा के रूप में नियत), अग्निवे.गृ.सू. 3.11.4।

अङ्गुलीयक न. अँगूठी, वैखा.गृ.सू. 2.15; अग्निवे.गृ.सू. 3.3.2।

अङ्गुल्यग्र न. अँगुली के ऊपर का भाग (अग्रभाग), श.ब्रा. 8.1.3.8-9; आश्व.श्रौ.सू. 1.2.1; अग्निवे.गृ.सू. 2.6.1, देवतीर्थ' संज्ञक हथेली का भाग, बौ.ध.सू. 1.5.13।

अङ्गुल्यन्तर न. दो अँगुलियों के बीच का फासला (अन्तराल) का.श्रौ.सू. 9.4.11 (इसमें क्षुल्लकाभिषव के दौरान सोम की टहनियों को पकड़ा जाता है)।

अङ्गुष्ठ पु. अँगूठा, अ.वे. 20.136.16; तै.सं. 6.1.9.5; मै.सं. 4.5.8; काठ.सं. 13.7; श.ब्रा. 3.1.2.4 (यजमान) के अँगूठे के नखों को पहले काटा जाता है तदनन्तर अन्य अँगुलियों के) 10.1.1.18; (इडा) आश्व.श्रौ.सू. 1.7.4; 1.7.5; 'उपकनिष्ठिकया अङ्गुष्ठेन च प्राशित्रं गृहीत्वा', शां.श्रौ.सू. 4.7.7; 4.21.8; आप.श्रौ.सू. 2.18.10; 3.1.2; 3.19.7; 'अङ्गुष्ठेन कनिष्ठिकया च अङ्गुल्या अंशुं सङ्गृह्य', आप.श्रौ.सू. 10.24.8; 10.24.10; 15.2.14; 16.4.4; 18.8.17; मा.श्रौ.सू. 140.8; अङ्गुष्ठपर्वमात्रम् अवदानम्', अँगूठे के एक हिस्से (पर्व) के आकार में आहुति को काटना, का.श्रौ.सू. 1.9.6; 1.3.38; 2.2.18; 7.7.15; 'तस्मिन् (सौम्ये चरौ) अङ्गुष्ठानामिके अवधाय अक्षिणी विमार्जीत्', ला.श्रौ.सू. 2.10.11; 4.11.13; 'प्रादेशमात्रौ कुशौ ----- गृहीत्वा अङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्याम् उत्तानाभ्यां पाणिभ्याम्', आश्व.गृ.सू. 1.3.3; बौ.गृ.सू. 1.2.36; आप.गृ.सू. 6.14.11; वारा.गृ.सू. 5.19; 'अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्वा पित्र्यम्' (तीर्थम्), बौ.ध.सू. 1.5.13; 2.7.10; पैर का अँगूठा, श.ब्रा. 1.3.5.7; 'अवबाधते---द्वेष्यम्' (टीका-पादाङ्गुष्ठाभ्याम्); का.श्रौ.सू. 3.1.7, आप.श्रौ.सू. 12.21.1; 12.22.7; अङ्गुष्ठाभ्याम् उत्तरवेदिम् आक्रामत:', मा.श्रौ.सू. 79.21।

अङ्गुष्ठपर्वमात्र वि. अँगूठे के एक हिस्से के (बराबर) आकार में (आहुति को काटना), का.श्रौ.सू. 1.9.6।

अङ्गुष्ठपर्ववृत्तपुष्कर वि. अङ्गूठे के एक पोर के (बराबर) आकार की परिधियुक्त गोल कटोरे वाला, का.श्रौ.सू. 1.3.38 (चम्मच)।

अङ्गुष्ठपर्वाग्रमुख वि. अँगूठे के एक पोर के (बराबर) आकार के मुख वाला, अ.वे.परि. 23.4.5।

अङ्गुष्ठपाश पु. हाथ के अँगूठे एवं पैर के अँगूठे को एकसाथ बाँधने का फन्दा, गौ.पि.मे. 1.3.10।

अङ्गुष्ठबन्ध पु. (दोनों) पैर के अँगूठों एवं हाथ के अँगूठों को एक साथ (परस्पर) बाँधना, बौ.पि.में 3.2.2; 3.4.11; अग्निवे.गृ.सू. 3.4.1।

अङ्गुष्ठमात्र वि. अँगूठे की नाप का, उतना बड़ा जितना की (यजमान का) अँगूठा, हि.श्रौ.सू. 13.4.6।

अङ्गुष्ठमूल न. अंगूठे का मूल (निम्न भाग), अग्निवे.गृ.सू. 3.11.1

अङ्गुष्ठाग्रग्रह पु. अँगूठे के अग्र भाग को पकड़ने की क्रिया, मा.श्रौ.सू. 254.2।

अङ्गुष्ठाग्रप्रमाण न. अँगूठे के अग्रभाग की नाप (स्रुव के लिए) अ.वे.परि. 27.2.4।

अङ्गुष्ठाग्र्य वि. (दाहिने हाथ के) अँगूठे के अग्रभाग से सम्बद्ध (पितरों के लिए कृत्य सम्मादित करने के लिए अग्रभाग को 'तीर्थदेश' माना गया है) बौ.ध.सू. 1.5.13।

अङ्गुष्ठार्ध वि. अँगूठे के आधे भाग का नाप, अग्निवे.गृ.सू. 2.77 : 10।

अङ्गुष्ठावबाधन न. पैर की अँगुली या हाथ के अँगूठे को दबाना, वैखा.श्रौ.सू. 15.27।

अङ्गेष्टका स्त्री. ईंट (ईंटों) का नाम (154 से 158) अग्निवेदि के प्रथम स्तर = तह में लगी हुई बौ.श्रौ.सू. 10.31-36।

अचक्रवर्ता वि. (कुम्भकार के) चक्र (चाक) के भ्रमण की आवश्यकता से रहित, कुम्हार के चाक पर अनिर्मित, आप.श्रौ.सू. 6.3.7 (अग्निहोत्र-पात्र); तु. - का.श्रौ.सू. 4.14.1; भा.सौ.सू. 6.8.14।

अचक्रवृत्त वि. (स्त्री-वि.) कुम्हार के चाक पर न घुमाया गया, अर्थात् कुम्हार के द्वारा जो निर्मित न हो, काठ.सं. 6.3; 'यद् अचक्रवृत्तं तद्देवपात्रम्' कपि.क.सं. 4.2 (अग्निहोत्रतपनी) श्रौ.को. (सं.) 1.70।

अचमस वि. (ऋत्विज्) जिसके लिए सोम के प्याले का विधान नहीं किया गया है, बौ.श्रौ.सू. 25.19:3; आश्व.श्रौ.सू. 5.6.20, (अर्थात् ग्रावस्तुत्, उन्नेता एवं सुब्रह्मण्य) ग्रावस्तुत् एवं उन्नेता होता के चमस से पीते हैं और सुब्रह्मण्य उद्गाता वाले से, देखें आश्व.श्रौ.सू. 5.6.20 पर गार्ग्यनारायण।

अचय पु. अग्निवेदि का निर्माण न होना (अग्निवेदि-निर्माण का अभाव), तै.ब्रा. 3.10.3.1 (अचयेन ----- अचयनेन वा)।

अचयन न. अग्निवेदि के निर्माण का निषेध (टूटी हुई एवं काली ईंटों से, भिन्नकृष्णयोरचयनम्), का.श्रौ.सू. 16.7.27; 'अग्निवेदि का निर्माण' न होना, श.ब्रा. 9.5.2.11, का.श्रौ.सू. 16.6.14।

अचरितिन् वि. अनुचित एवं गलत व्यवहार वाला (यज्ञ में कार्यवहन करने वाले ऋत्विज् की अनर्हता), गो.ब्रा. 1.1.13।

अचषाल वि. (शीर्ष पर) जो काष्ठीय वलय से युक्त न हो, आश्व.श्रौ.सू. 9.7.17; बौ.श्रौ.सू. 20.25.12; स्फ्यो यूपो भवतीति। स्फ्यप्रकार एवायं चषालवान्यूपो भवतीति बौधायनः स्फ्य एवायमग्न्यगारिकोऽचषालो यूपः स्यादिति शालीकिः; 'पत्नीवत्' के नाम से पुकारा जाने वाला यज्ञीय स्तम्भ (यजमान-पत्नी से सम्बद्ध), आप.श्रौ.सू. 14.7.12; मा.श्रौ.सू. 137.19; ला.श्रौ.सू. 8.5.7 ('श्येन'-संज्ञक साद्यस्क्र)।

अचायम् क्रि.वि. बिना किसी क्रमबद्ध चयन (राशीकरण =निर्माण) के, बौ.श्रौ.सू. 15.14 : 218.6; 15.19 : 223.19; अश्वमेध, सं.डि.डे.का. गलत पाठ **आचामम्** के स्थान पर; कैलेण्ड-अनिश्चित।

अचित वि. जिसका चयन अथवा निर्माण नहीं हुआ हो, तै.ब्रा. 3.11.6.1; बौ.श्रौ.सू. 2.421.5 = आप.श्रौ.सू. 16.34.4 = हि.श्रौ.सू. 11.8.15 = वैखा.श्रौ.सू. 18.21; श.ब्रा. 7.2.1.15 (यत् चितो गार्हपत्यो भवति अचित आहवनीयः); 8.7.2.10, 7.3.1.1; 3.1.2।

अचित्वा (नञ् + चि + क्त्वा) (अग्निवेदि) का चयन किया बिना, आश्व.गृ.सू. 4.2.22।

अचोदित्व न. श्रुति द्वारा विहित न होने की स्थिति, का.श्रौ.सू. 1.8.33।

अच्छता स्त्री. शरीर को ढकने के लिए प्रयुक्त खोल, वि (अपपाठ **अवच्छाता** के लिए), का.श्रौ.सू. 22.1.20। अवभृथादुदेत्य - वत्सच्छव्यौ ---- अवच्छाते परिदधाते।

अच्छदिर्दर्श वि. (स्थान) जहाँ से गाँव का कोई छत दिखाई न पड़ता हो, आप.श्रौ.सू. 15.20.2 (अवान्तरदीक्षा)।

अच्छन्दस् वि. छन्दस् के सन्दर्भ (से युक्त भाग) से रहित (चमसस्य भक्ष्यः अच्छन्दसा वा), ला.श्रौ.सू. 3.1.31. न. अवैदिक गीत (Pw); (अच्छन्दसम्) क्रि.वि. छन्दस् के सन्दर्भ के बिना, का.श्रौ.सू. 25.12.8; उदाहरण : इन्दविन्द्रपीतस्य त इन्द्रियावतोऽनुष्टुप्छन्दसः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि (प.ब्रा. 1.6.2) इति षोडशिचमसस्य भक्षयेयुः (यहाँ उन्होंने 'अनुष्टुप्छन्दसः' को छोड़ दिया है) तुल.द्रा.श्रौ. सू. 7.1.19।

अच्छन्दोम वि. 'छन्दोम'-संज्ञक यज्ञ से रहित 'अपसव्यं वा एतत् सत्रं यद् अच्छन्दोमम्', पञ्च.ब्रा. 23.19.8; बौ.श्रौ.सू. 3.302 : 2; [छन्दोम 'दशरात्र' के सातवें, आठवें और नवें दिनों का नाम, 'द्वादशाह' की स्थिति में अष्टम, नवम एवं दशम दिनों (का नाम), एक विशिष्ट प्रकार के स्तोम से पहचाने जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 22.18.8]।

अच्छन्न वि. (बहिष्पवमान-स्तोत्र) जो छिपा न हो, अर्थात् देवताओं के साक्षात् सन्दर्भ वाला, जै.ब्रा. 1.274. (तैरच्छन्नैः प्रत्यक्षं निरुक्तैरुद्गायेत)।

अच्छन्नवस्त्रा वि. (स्त्री) वस्त्र से न ढकी हुई, वारा.गृ.सू. 6.20।

अच्छम्वट्कारम् पु. क्षति का अभाव, क्षति अथवा असफलता के द्योतक 'छम्वट्' इस चीत्कारात्मक (शब्द) को न बोलना, तै.सं. 5.4.7.6; तै.सं. 2.3.6.2 = 2.4.11.5; 2.5.11.4; 2.6.2.5; 2.6.7.6; मै.सं. 1.5.5; काठ.सं. 12.4; 13.100; 23.1; ता.ब्रा. 1.2.3.7; तै.आ. 5.2.8; कपि.क.सं. 35.7।

अच्छावाक पु. 'बुलानेवाला', होतृवर्ग का एक ऋत्विज्, आप.श्रौ.सू. 10.1.9. उसका यह नाम सम्भवतः इसलिए पड़ा क्योंकि ऋचाओं (ऋ.वे. 5.25.1-3) का पहला शब्द

जो वह पढ़ता है, वह शब्द है-'अच्छ'। वह इन ऋचाओं को तब पढ़ता है, जब वह अध्वर्यु द्वारा प्रदत्त 'इडा' भाग को धारण किये हुए रहता है। वह पहले धिष्ण्य 'अग्निस्थान' के सामने सदस् के बाहर बैठता है, और अपने मुख के स्तर तक भाग को धारण करता है। जब तक प्रथम सवन में अन्य ऋत्विज् अपने भाग का पहले उपभोग कर चुके होते हैं, तब वह सोम याग में सोम-पान के कर्मकाण्ड में सम्मिलित होता है और उसे सोमरस एवं पुरोडाश का अपना भाग प्राप्त करने का आदेश दिया जाता है; आप.श्रौ.सू. 12.26.1-8। वह इन्द्र के लिए सम्बोधित तृतीय 'आज्य सत्र' का पाठ करता है, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.28; 'प्रत्युपहवो अच्छावाकस्य' कौषी.ब्रा. 13.8, 25.13, तै.ब्रा. 3.12.9.4 'अथ होत्रे अच्छावाकं दीक्षयति', श.ब्रा. 12.1.1.8; 5.4. 5.22; आलभ्य (बलि) की जाँघ उससे सम्बद्ध होती है (अर्थात उसकी होती है), गो.ब्रा. 1.3.18; 1.5.24; 2.2.20; 2.3.15; 'प्रवृताहुतियों के दौरान अन्य के द्वारा 'वषट्' उच्चारित किया जाता है, उसके द्वारा नहीं, आश्व.श्रौ.सू. 5.3.12; 4.1.6; बौ.श्रौ.सू. 1.36 : 15; 1.193 : 12; आप.श्रौ.सू. 12.5 (नेष्टा द्वारा आगे लाये गये पादप्रक्षालनजल को यजमान पत्नी उसके समीप रख देती है); आप.श्रौ.सू. 10.1.9; उसका अग्निकुण्ड सदस् में नेष्टा से उत्तर दिशा में नियत होता है, आप.श्रौ.सू. 11.14.5 (जिसके दक्षिण में पोता, ब्राह्मणच्छसी एवं होता रहते हैं)। उसे सोम याग में दी जाने वाली हविराहुति का एक भाग हवि:शेष के रूप में प्राप्त होता है, आप.श्रौ.सू. 12.25.11; 14.23.13; 18.21.7; 12.1.3; 23.10.12; मा.श्रौ.सू. 85.4; का.श्रौ.सू. 7.1.6; 'यत्र अच्छावाक आसीनो ------ होतरि उपहवम् इच्छति', ला.श्रौ.सू. 2.3.5; वैता.सू. 11.3; (अच्छावाकसमस) पु. अच्छावाक का चमस (प्याला), बौ.श्रौ.सू. 2.28.9 : 11-12, प्रथम के रूप में गृहीत, दशम के रूप में गृहीत, आप.श्रौ.सू. 13.4.12-16; मा.श्रौ.सू. 81.12; नेष्टा एवं अग्नीध्र के (चमस) के बीच में रखा गया चमस, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.59; उभयत: शुक्रमच्छावाक- चमसमुन्नयति, 81.12; (आच्छावाकचमसमुख्य) अच्छावाक के चमस के प्राथम्य के साथ, आप.श्रौ.सू. 14.3.10; 12.29.9; मा.श्रौ.सू. 83.17, 86.6. देखें 'यज्ञायुधानि' पृ. 65-० चमस।

अच्छावाक

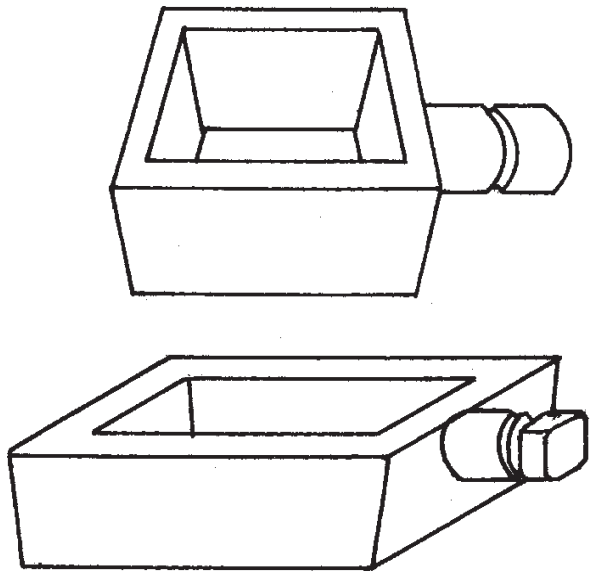

अच्छावाकचमस

अच्छावाकचमसहोम पु. अच्छावाक के चमस = प्याले (इसमें रखे हुये सोम-रस) को अग्नि में अर्पित करना, वैता:सू. 19.21 (ऐन्द्राग्नम्) टीका-अच्छावाकस्य प्रस्थितचमसहोमं ऐन्द्राग्नम्।

अच्छावाकभक्ष पु. अच्छावाक द्वारा 'इडा' का भक्षण, वै.सू. 21.7. टीका-अच्छावाकशस्त्रयाज्यानन्तरं भक्ष:।

अच्छावाकवाद पु. (वह स्थान) जहाँ से अच्छावाक प्रार्थना करता है 'अच्छावाकवादं मार्जालीयं खरं धिष्ण्यान् अन्यांश्च उपतिष्ठन्ते', वैता.सू. 18.13।

अच्छावाकविग्रह पु. उक्थ्य-रस का विभाजन, अर्थात् अच्छावाक शस्त्र के लिए उक्थ्यस्थाली में स्थित सोमरस, का.श्रौ.सू. 9.14.21।

अच्छावाकशस्त्र न. अच्छावाक द्वारा पढ़ी जाने वाली स्तुति प्रात: सत्र में यह स्तोत्रिय त्रिक 'इन्द्राग्नी आगतं सुतम्' से निर्मित होता है, जिसके बाद 'अनुरूप' त्रिक 'इन्द्राग्नी अपसस्परि' उसके बाद तीन मन्त्रों (ऋचाओं) उक्थमुख 'तोषा वृत्रहण हवे' इसके अनन्तर एक मन्त्र 'इहेन्द्राग्नी उप' एवं 9 ऋचा के (इयं वामस्य) इत्यादि का क्रमश: का पाठ होता है, = अन्तिम परिधानीय के साथ पर्यास एवं 'इन्द्राग्नी आस्तुम्' याज्या के रूप में। अच्छावाक-शस्त्र के अनन्तर अध्वर्यु को इन्द्र-अग्नि के लिए अर्पण के सङ्गत विधि से अनुगमन करना चाहिए, वै.सू. 20.13-14; प्रति-प्रस्थाता को अच्छावाक द्वारा पठित शस्त्र का उत्तर देना चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 7.20; अच्छावाक-शस्त्र एवं याज्या के बाद 'ब्रह्मा' 'अग्नि: प्रात: सवने', 'श्योनोऽसि -----' एवं सोम: प्रात: सवने, मन्त्रों के साथ क्रमश: तीन सवनों में घृताहुति अर्पित करे, श्रौ.को. (अं.) II. 619। अच्छवाक शस्त्र (माध्यन्दिनसवन में) निम्नलिखित से युक्त होता है : 'तरोभिर्वो विदद्वसुम् ----- में से प्रारम्भ होने वाले प्रगाथ, और जिसका प्रारम्भ 'तरणिरित् सिषासति---- से होता है क्रमश: 'स्तोत्रिय' एवं 'अनुरूप' के रूप (में प्रयुक्त होते हैं)। 'उदिन् न्वस्य रिच्यते' वह प्रगाथ है, जो इसके अनन्तर आता है। इसके बाद 'भूया इद् ----- एवं 'इमाम् ऊ षू' -----आते हैं 'पिबा वर्धस्व तव घा' -----' याज्या होनी चाहिए, आश्व.श्रौ.सू. 5.6.11। सौमिक आहुतियों को अच्छावाक् के धिष्ण्य के उत्तर के छोर पर (एक सिरे से दूसरे सिरे) तक जारी रखा जाना चाहिए, श्रौ.को. (अं) II. 502; अच्छावाक के लिए चमस को भरते समय एक विशिष्ट मन्त्र का उच्चारण होना चाहिए, श्रौ.को. (अं) II. 211।

अच्छावाकसाम न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 8.12.13; 8.10.10, एक स्तुति गीत पर आधृत; जै.ब्रा. I. 309।

अच्छावाकस्तोत्र न. शस्त्र पर अच्छावाक द्वारा गेय एक स्तोत्र (प्रशस्ति), शां.श्रौ.सू. 8.10.10। ० स्तोम।

अच्छावाकीय (अच्छावाक + छ) वि. अच्छावाक से सम्बद्ध (स्तोत्र), ऐ.ब्रा. 10.4; कौषी.ब्रा. 28.4; 30.9; जै.ब्रा. 2.203; गो.ब्रा. 2.3.15।

अच्छावाक्य वि. (स्त्री.आ) अच्छावाक से सम्बद्ध 'यद् अच्छावाक्या द्विदेवत्या: शंसेत्', मै.सं. 3.9.8; 4.4.8; 'एषा होत्रा यद् अच्छावाक्या'; काठ.सं. 26.9; पञ्च.ब्रा. 4.2.10; मा.श्रौ.सू. 68.21।

अच्छिद्र न. 1. एक साम का नाम 'अथा अच्छिद्रं पदनिधानं राथन्तरम्', जै.ब्रा. 3.218; 'द्वे ऐन्द्रस्य अच्छिद्रवसिष्ठे', आर्षे.ब्रा. 5.5.2; 'अरण्ये गेय: श्येन: ------ अच्छिद्रम्', पुष्प.सू. 2.4.8; 2. ता.ब्रा. के एक वर्ग का नाम (तृतीय अष्टक पर सप्तम प्रश्न); भा.श्रौ.सू. 11; (-त्व) न. छिद्र अथवा कमी का न होना, मै.सं. 3.8.7; 3.10.4; जै.ब्रा. 3.218; पञ्च.ब्रा. 14.9.36।

अच्छिन्नम् क्रि.वि. अबाध, सतत् बिना विच्छेद के, प्रणीतात्वाछिन्नमासिच्यमानमनुमन्त्रयते, मा.श्रौ.सू. 1.4.3.7।

अच्छेत्य वि. (यज्ञीय स्तम्भ) जहाँ गमन किया जाता है (आभिमुख्येन) गन्तव्यो यूप:, आप.श्रौ.सू. 7.16 (धू)।

अच्य (आ + अञ्च् + ल्यप्) (घुटने को) मोड़कर, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.18 (अन्तर्वेदि दक्षिणं जान्वाच्य अध्यञ्जलौ वेदमादाय-------जर्पीत)।

अच्युत वि. अपरिहार्य, न डिगने वाला, यदाग्नेयोऽष्टा-कपालोऽमावस्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति, तै.सं. 2.6.3.3; श.ब्रा. 1.4.2.16।

अच्युतक्षिति स्त्री. दृढ निवास-स्थान 'अच्युतक्षितये स्वाहा' तै.आ. 10.67.1।

अच्युतपर्यास वि. (शस्त्र के) अनिष्फल अन्तिम भाग वाला, कौषी. ब्रा. 30.9; तार्क्ष्य मन्त्र के साथ शस्त्र में न बदलने वाले अन्त वाला, ऋ.वे.10.178।

अज पु. बकरा, ऋ.वे. 10.90.10; अ.वे. 5.31.2; वा.सं. 3.43; प्रजापति के लिए बलि के रूप में प्रदान किया जाता है, शां.श्रौ.सू. 1.1; 'अश्वो अजस्तूपरो गोमृग इति प्राजापत्या:', आश्व.श्रौ.सू. 10.9.5; सोम-याग के अग्निषोमीय कृत्य में अर्पित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.29.4; 11.17.1;

16.8.3; 19.2.1; 'उत्तरेण गार्हपत्यायतनं कल्माषम् अजं बध्नाति', आप.श्रौ.सू. 5.7.17 (अग्न्याधेय), 'ब्रह्मन्' को दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला, अ.वे. 9.5.7, सुब्रह्मण्य निगद को गाने के अवसर पर, पञ्च.ब्रा. 18.9.19; आश्व.श्रौ.सू. 9.4.11; अग्नीध को (देय), आप.श्रौ.सू. 5.20.7; शां.श्रौ.सू. 2.3.22; ला.श्रौ.सू. 4.12.10; 'अग्निस्तुत'-संज्ञक एकदिवसीय सोम याग के अवसर पर, ला.श्रौ.सू. 8.7.1; गोदाने अजः केशप्रतिग्रहाय, द्रा.गृ.सू. 2.5.5; गो.गृ.सू. 3.1.9; अग्निदेवता के लिए पवित्र 'आग्नेयो वाजः', गो.ब्रा. 2.3.9; इसके कर्ण में आहुति 'अजस्य वा कर्णे ------ जुहुयात्', षड्.ब्रा. 4.(5). 1.12; का.श्रौ.सू. 25.4.4 (प्रायश्चित्तीय कर्म) जौ के साथ मांस पकाया जाता है और खाया जाता है, भा.मे. 1.12.4.5।

अज एकपाद वि. एक पैर वाला बकरा (एक गौण वैदिक देवता), ऋ.वे. 2.31.6; अ.वे. 13.1.6; तै.सं. 4.4.10.3, वा.सं. 5.33; पञ्च.ब्रा. 1.4.12; ता.ब्रा. 3.1.2.8; उसे आहुति दी जाती है, पार.गृ.सू. 2.15.2।

अजकर्ण पु. बकरे का कान (इसमें आहुति दी जाती है) का.श्रौ.सू. 25.4.4 (प्रायश्चित्तीय कर्म)।

अजका स्त्री. बकरे के गले के भाग में मांसल उभार, अजागलस्तनम् अजका, का.श्रौ.सू. 9.2.6 पर पद्धति।

अजकाव वि. गलप्रदेश में थन जैसा उभार (मैत्रावरुण प्याले का वैशिष्ट्य), का.श्रौ.सू. 9.2.6।

अजक्षीर न. बकरी का दूध, तै.सं. 5.1.7.4; 5.4.3.2; (अग्निरसवत् हेतु चरु के लिए प्रयुक्त); मै.सं. 3.1.8; तै.आ. 5.3.9 (602.8), मा.श्रौ.सू. 155.10 (चयन में 'शतरुद्रीय' होम हेतु प्रयुक्त)।

अजगाव न. मित्र एवं वरुण को (सोमयाग में) समर्पित एक यज्ञीय पात्र, जो स्तनाग्रसदृश आकृतियों से भूषित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.1.11 टीका; देखें अजकाव का.श्रौ.सू. 9.2.6।

अजप वि. (वह) जो वैदिक मन्त्रों को नहीं जपता, गौ.ध.सू. 1.6.13; 2.6.18 (टीका. अश्रोत्रियः)।

अजपाद वि. बकरे की तरह पैर वाला (अच्छावाक का प्याला जिसके मूँठ की आकृति बकरे के पैर के समान होती है), मा.श्रौ.सू. 8.14.1 (178.2); देखें अच्छावाकचमस।

अजलोम न. अज के बाल 'अजलोमैः संसृजति'; तै.सं. 5.1.6.2 = तै.आ. 5.2.13 = श.ब्रा. 6.5.1.4. ('उखासम्भरण'-मिट्टी में प्रयुक्त)।

अजलोमन् न. बकरे का बाल, श.ब्रा. 6.4.4.2; 7.5.2.43; आप.श्रौ.सू. 15.2.1 (प्रवर्ग्य-सम्भरण में प्रयुक्त); का.श्रौ..सू. 16.3.5; मा.श्रौ.सू. 143.11; (उखा-सम्भरण)।

अजलोमसंसृष्ट वि. बकरे के बालों से मिश्रित, वैखा.श्रौ.सू. 13.2 (उखा-सम्भरण)।

अजवशा स्त्री. (अजा चेयं वशा) एक वन्ध्या बकरी, बौ.श्रौ.सू. 20.25:55.7; देखें-तै.सं. 3.4.3.2।

अजशिरस् न. बकरे का सिर, मा.श्रौ.सू. 150.19; वैता.सू. 29.3 (अग्निवेदि के चयन के पहले इसे नीचे रखा जाता है)।

अजशृङ्ग न. बकरे की सींग, जै.गृ.सू. 2.5 (शरीराणि अव-सिञ्चति)।

अजसप्तदशन् वि. (दक्षिणा के रूप में) सत्रह बकरों वाला वैखा.श्रौ.सू. 17.11 (कुरुवाजपेय), तु. ला.श्रौ.सू. 8.11.8 एवं टीका (दक्षिणा सप्तपशवैव गावस्तं कुरुवाजपेय इत्याचक्षते अल्पको वाजपेयः यथा अल्पिका नदिका कुनदिका।

अजस्र वि. लगातार (सतत अग्नि-प्रज्वलन) आश्व.श्रौ.सू. 2.1.35; आप.श्रौ.सू. 5.22.13।

अजस्रम् क्रि.वि. निर्बाध, बिना व्यवधान के, सतत (लगातार), मा.श्रौ.सू. 29.16; आश्व.गृ.सू. 1.8.5।

अजस्राग्नि पु. (जीवन्त अथवा लगातार जलती हुई) स्थायी रूप से सँभाली गयी पवित्र अग्नि (सामान्यतया गार्हपत्याग्नि) लघ्वक्षर स्मृति 1.61।

अजा स्त्री. बकरी, ऋ.वे. 8.70.5; अ.वे. 6.11.1; तै.सं. 2.1.1.6; 'अग्नीषोमाभ्याम् अजां तया अमृतत्वम् अशीया', पञ्च.ब्रा. 1.8.6; 'अजायां होतव्यम्', ता.ब्रा. 3.7.3.1; प्रजापति के छिन्न मस्तक से उत्पन्न शग् से जन्मा हुआ, श.ब्रा. 14.1.2.13, 25; 'यदि ----- अग्निर्मथ्यमानो न जायेत दक्षिणे कर्णे होतव्यम्', आप.श्रौ.सू. 9.3.5; 'अनुनयति अजां पुंश्छागलाम्', आप.श्रौ.सू. 15.1.6 (प्रवर्ग्य अथवा महावीर पात्र के लिए मृदा-सञ्चयन के लिए जाते समय घोड़े के पीछे चलाता है); 22.6.7; ला.श्रौ.सू. 2.7.17; 'नित्यम् अभोज्यं क्षीरम् ------ सूतके अजामहिष्योश्च', गौ.ध.सू.

2.8.23; सोम के मूल्य (क्रयण) की एक इकाई, भा.श्रौ.सू. 10.17.4; प्रवर्ग्य में इसके दुग्ध का प्रयोग होता है, 11.2.10; प्राचीनवंश के दक्षिणी द्वार के बाहर एक शङ्कु से बँधा हुआ, 11.6.10।

अजाक्षीर न. बकरी का दूध, श.ब्रा. 14.1.2.13; भा.श्रौ.सू. 11.18.11; आप.श्रौ.सू. 15.18.10 (प्रवर्ग्य के दुग्ध का स्थानापन्न, यदि गाय को व्याघ्र ने मार डाला हो, इत्यादि); टीका का कथन इस प्रकार है 'बौधायन यदि ग्रामदुहां न विन्देत अन्यां दोहयेत् यदि अन्यां न विन्देत अजां दोहयेत् यदि आजां न विन्देत अर्कक्षीरैः प्रचरेत् यदि अर्कं न विन्देत् यवपिष्टानि श्यामाकपिष्टानि वा अद्भिः संसृज्य तैः प्रचरेत्', 16.6.1; 19.12.24।

अजागल वि. गलें में लटकने वाली खाल (ललरी) रूपी भूषण वाला (मैत्रावरुण चमस), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15।

अजातपुत्रकल्प पु. जिसके पास कोई पुत्र नहीं है, उसके लिए विहित कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, भा.श्रौ.सू. 6.3.6 (जिसके पास पुत्र है इस वैषम्य को बतलाने में)।

अजापयस् न. बकरी का दूध, भा.श्रौ.सू. 11.9.19 = आप.श्रौ.सू. 15.10.3; 15.10.4; आप.श्रौ.सू. 15.4.10; मा.श्रौ.सू. 106.10; का.श्रौ.सू. 16.4.23; 26.5.16; (प्रवर्ग्य)।

अजामदग्न्य वि. जमदग्नि गोत्र से असम्बद्ध (जो जमदग्नि गोत्र का न हो), आप.श्रौ.सू. ii.18.2; तु. पञ्चावत्त, त्र्यवत्त एवं चतुरवत्त।

अजामि वि. जो रिश्ते में न हो, अजनबी, ऋ.वे. 1.100.11; 1.111.3; 4.4.5 = तै.सं. 1.214.2 = काठ.श्रौ.सू. 16.15 = कपि.क.सं. 25.6; वा.सं. 13.13 = वा.सं. (को.) 14.13; कौषी.ब्रा. 2.8.6 (136.20); 28.5 (136.18); आश्व.श्रौ.सू. 5.7.3; शां.श्रौ.सू. 7.6.3, अपुनरावृत्ति, अपुनरुक्त, तै.सं. 6.3.10.5; 7.4.2.3; तै.सं. 8.4.10.2; काठ.सं. 33.2; मै.सं. 4.6.8; काठ.सं. 6.5.6.7; कपि.क.सं. 4.6; पञ्च.ब्रा. 15.3.17; कौषी.ब्रा. 3.6 (12.13); जै.ब्रा. 1.106; 1.300; ला.श्रौ.सू. 3.6.31।

अजामिता स्त्री. (डेब्रू.पृ. 620) पुनरुक्ति का अभाव अथवा अपनयन, वैभिन्न्य, एकरूपता का न होना, पञ्च.ब्रा. 7.2.5 = 16.5.21; 7.8.12; कौषी.ब्रा. 3.6 (12.4), 3.6 (12.8); 13.9 (60.24); 30.11 (146.20); श.ब्रा. 1.3.2.8 = 1.3.2.9; 1.7.1.25; श.ब्रा. 2.2.3.27; 4.2.3.18; श.ब्रा. (को.) 4.1.8; जै.ब्रा. 1.201; 3.145; 3.184।

अजामित्व न. पुनरुक्ति का अभाव अथवा अपनयन, अनेकरूपता, तै.सं. 2.6.6.4; 2.6.10.4; 5.5.6.2; 7.2.5.5; काठ.सं. 12.4; 21.7; तै.ब्रा. 2.1.4.3; 1.8.2.1; 3.3.4.6; 9.1.2।

अजावि पु. [आल्ट.ग्रा. II.1.157] बकरा एवं भेड़, ऋ.वे. 9.90.10; अ.वे. 7.60.5; वा.सं. 3.43; अ.वे. 11.2.21; 12.2.15; तै.सं. 6.5.10.1; पञ्च.ब्रा. 16.11.5; श.ब्रा. 4.5.5.6; मा.गृ.सू. 1.18.8।

अजाविक न. बकरों एवं भेड़ों का समूह, कौषी.ब्रा. 11.2 (49.22); 4.5.5.4; श.ब्रा. 12.8.1.13; जै.ब्रा. 1.263।

अजिन न. अज अथवा मृग का चर्म, सम्भवतः अज से (डेब्रू पृ. 351; एक्सेण्ट आल्ट ग्रा. II. 1.267; किन्तु 'अजुर्णा' से 2.48; अ.वे. 5.21.7, 6.67.3, ऐ.ब्रा. 1.3 (20), 33.1 (836); पञ्च.ब्रा. 17.1.14 श.ब्रा. 1.1.4.1, श.ब्रा. 5.2.1.21; 5.2.1.24; तै.आ. 2.1.1 (195.3); आश्व.श्रौ.सू. 12.9.14, आप.श्रौ.सू. 22.5.5, 22.5.9, मा.श्रौ.सू. 198.16; ला.श्रौ.सू. 8.6.15; 7.6.25; आश्व.गृ.सू. 1.19.8; भा.गृ.सू. 1.1. (1.8); वस्त्र के रूप में प्रयुक्त, हि.गृ.सू. 1.4.6; गो.गृ.सू. 2.10.9; कौशि.सू. 10.12; 10.15; आप.ध.सू. 1 (1) 3.9; 1 (1) 3.10; 1 (1) 2.40 बौ.ध.सू. 1.2.15.2; 6.17।

अजिनवासिन् वि. मृगचर्म धारण करने वाला, श.ब्रा. 3.9.1.12; जै.ब्रा. 1.337.

अजिर पु. दूत, धावक; ऋ.वे. 1.138.2; एक सेवक का नाम (जिसने सर्पसत्र में सुब्रह्मण्य नामक ऋत्विज् का कार्य किया हो), पञ्च.ब्रा. 25.15.3; बौ.श्रौ.सू. 2.298:3; आश्व.श्रौ.सू. 9.7.1; शां.श्रौ.सू. 14.22.4; सहायक वेदि का प्रतिनिधित्व करने वाली ककरीली ईंट, तै.ब्रा. 3.10.1.4।

अजिह्व वि. (न विद्यते जिह्वा यस्य)जिह्वारहित (यथा अजिह्वे अन्नं दद्यात् तादृक् तत् तस्मात् समिद्वत्येव अनादिष्ट उपसमाधाय एव होतव्यम्), बौ.श्रौ.सू. 24.8:192:7।

अजुह्वत् वि. [स्त्री.ई] (नञ् + हु + शतृ) (आहुतियाँ) न प्रदान करता हुआ (होम न करता हुआ); ऐ.ब्रा. 13.12 (385); 32.2 (808); कौषी.ब्रा. 2.8 (7.10); तै.ब्रा. 1.4.9.1; मा.श्रौ.सू. 29.16।

अज्यानि 1. पछोरने की क्रिया से अन्त होने वाले सोम को श्यामाक की आहुति से पहले आग्रयणेष्टि में दी जाने वाली पञ्च घृताहुतियों का पारिभाषिक नाम, श्रौ.को. (अं) I.1.503; इन आहुतियों के लिए प्रयुक्त होने वाली विधियाँ हैं 'शतायुधाय-----', तै.सं. 5.7.2.3.4; एक अन्य मतानुसार इनको 'स्विष्टकृत्' से पहले अर्पित करना चाहिए तस्मिन्नुदरे अज्यानी:जुहोति, बौ.पि. 3.9.3; आहवनीये अज्यानी: जुहोति, आप.श्रौ.सू. 6.29.12; बौ.श्रौ.सू. 1.82 : 8; देखें - श्रौत.प.नि: 77.458, 2. कुछ विशिष्ट ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.9.4।

अज्यानी स्त्री. 'अज्यानी' शब्द से युक्त ऋचा, काठ.गृ.सू. 4.3.3।

अञ्जन न. 1. लेपन के लिए प्रयुक्त मक्खन अथवा तेल, कौषी. ब्रा.शां. 3.7 (12.15) 'अथ यत् प्रदेशिन्याम् इडाया: पूर्वम् अञ्जनम् अधरौष्ठे निलिम्पति', शा.श्रौ.सू. 1.10.2; 2A. लेप लगाने का कृत्य (खनिज, वनस्पति अथवा दीपक के कालिख से तैयार किया गया काजल, सुरमा, चक्षुर्लेप), आप.श्रौ.सू. 10.71.2; मा.श्रौ.सू. 59.6, कौषी.गृ.सू. 3.4.10; त्रिककुद् पर्वत से लाया गया मरहम (लेप) हि.गृ.सू. 1.11.5; (उपनयन) वैखा गृ.सू. 2.15 (33.2); कौशि.सू. 35.21; सामवि. ब्रा. 3.1.2 टीका, 2B. नवनीत अथवा तेल के अञ्जन अथवा लेप का कृत्य, आश्व.श्रौ.सू. 6.14.11. अन्न स्वरोरञ्जनमेके समामनन्ति, आप.श्रौ.सू. 7.27.3; 2C. नवविवाहित युवती द्वारा घृत से रथ के धुरे का लेपन, शां.गृ.सू. 1.15.3।

अञ्जनकोश पु. अञ्जन रखने का पात्र, कौषी.गृ.सू. 1.8.4।

अञ्जलि पु. अञ्जलि (अंजली), प्रार्थना में दोनों हथेलियों के जोड़ने पर बना हुआ विवर, तै.सं. 3.3.8.4; श.ब्रा. 3.3.2.13; आप.श्रौ.सू. 2.1.5; भा.श्रौ.सू. 2.13.1; द्रवार्पणार्थ जल धारण करने एवं अग्नि में अन्य वस्तुओं को अर्पित करने के लिए 6.14.3।

अञ्जलिका स्त्री. भुग्न (मुड़ी) अथवा रिक्त हथेलियाँ, तै.आ. I.6.1 (34.2); I.6.2 (35.1)।

अञ्जलि कृ श्रद्धाञ्जलि देना, बौ.श्रौ.सू. 2.13:1।

अञ्जलिकृत वि. (स्त्री.आ) जिसने हाथ की हथेलियों को जोड़ रखा हो, गौ.गृ.सू. 2.8.1 टीका; 4.3.21; द्रा.गृ.सू. 2.4.20।

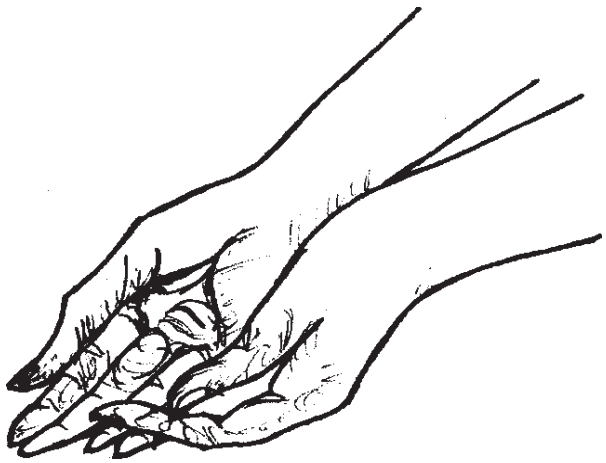

अञ्जलि

अञ्जलिपूर्णम् क्रि.वि. अञ्जलि भर कर, आश्व.श्रौ.सू. 8.14.6 (महाव्रत के लिए ब्रह्मचारी का कर्तव्य) आदित्यम् उपस्थापयेत्।

अञ्जलिहोम पु. अञ्जलि से (इसमें स्थित द्रव्य से) होम करना, शास्त्र-दीपिका 92.9 (i.4.20 पर)।

अञ्जसा क्रि.वि. ठीक से, वास्तव में, उचित रूप से, ऋ.वे. 6.53.1; 6.16.3; तै.सं. 5.2.3.5; शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योऽञ्जसा यज्ञस्य संस्थां विदाञ्चकार, श.ब्रा. 1.9.1.24; 13.2.3.1; सीधे, सीधे-सादे तरीके से, बिना बाधा अथवा कठिनाई के, सरलतापूर्वक अथवा बिनी किसी मध्यवर्ती के, सतत, सीधे तरीके से, ऋ.वे. 10.73.7; तै.सं. 5.2.8.5, पञ्च.ब्रा. 11.8.14, अञ्जसा ह वा अस्य दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्टं भवति (दाक्षायण), श.ब्रा. 2.4.4.17; 13.2.3.2; 3.7.3.7; जै.ब्रा. 2.383; 3.209; गो.ब्रा. 2.2.3; (प्रसर्पति) होता दक्षिणेनौदुम्बरीमञ्जसा इतरे उत्तरां वेदिश्रोणीम् अभिमुखम्---शां.श्रौ.सू. 5.8.2; तुरन्त, मा.श्रौ.सू. 8.17.11 (शुनासीरीयं सद्यो वा अञ्जसा), देखें-इन्स्टर एस.के.जेड. 82 (1) 1968 पृ. 1-23।

अञ्जसायनि वि. सीधे चलने या आगे बढ़ने वाला, तै.सं.7.2.1.2 = 7.3.5.3 = 7.3. 7.3 = 7.4.1.3।

अञ्जःसव पु. राजसूय का एक प्रकार; बौ.श्रौ.सू. 26.3।

अञ्जःसवकारीर पु. (स्त्री.) अग्नि को एक अष्टाकपाल पुरोडाश से (सम्पाद्य) कारीरीष्टि का एक प्रकार। वे मन्त्र जिनसें (भूने हुए यव के) पिण्डों को (शकट में) बाँधना चाहिए

(आहुति देना एवं धूम पर निगाह रखना 'कारीरी-इष्टि'-वत्, बौ.श्रौ.सू. 13.40।

अङ्गि पु. यौन-इन्द्रिय (स्त्री एवं पुरुष दोनों), शां.श्रौ.सू. 16.3.36 (अश्वमेध-अश्लील ऋचा = मन्त्र); वि. चिह्नयुक्त (वृषभ = बैल), मा.श्रौ.सू. 5.2.10.43।

अङ्गिषक्थ वि. जाँघ पर श्वेत-चिह्नयुक्त (बकरा) मै.सं. 3.13.5।

अणिकाषम् क्रि.वि. इस प्रकार की जले न, बिना झगड़े या खुरेचे, आप.श्रौ.सू. 2.11.3 (पुरोडाश)।

अणिमतःकरणी स्त्री (एक सरलरेखात्मक आकृति का) लघुतरपक्ष, बौ.शु.सू.1.55।

अणिमत्करणी स्त्री. (आयत का) लघुतर पक्ष, बौ.शु.सू 1.87।

अणिमत्त्व न. पतलापन, ह्रस्वता, अल्पता, बौ.श्रौ.सू. 2.379 : 13।

अणिमन् वि. छोटा (लघु) बौ.शु.सू 1.55।

अणिष्ठ (स्त्री.आ) सबसे छोटा या सबसे सूक्ष्म, तै.सं. 2.5.5.2; श.ब्रा. 8.2.4.20 (चयन); जै.ब्रा. 1.258; 2.6, आप.श्रौ.सू. 1.5.10, हि.श्रौ.सू. 1.2.62; मा.श्रौ.सू. 8.16; अग्निवे.गृ.सू. 2.3.2 (55.10) (विष्णु के लिए तण्डुल)।

अणु क्रि.वि. निम्न स्वर (तान) में, श.ब्रा. 11.4.2.9; (आश्रावयति), पु. अन्न का एक प्रकार, तै.सं. 4.7.4.2; वा.सं. 18.12; श.ब्रा. 14.9.3.22; मकाई (corn) का कान, कौशि.सू. 14.19।

अन्तरतः क्रि.वि. अन्दर से (प्रदत्त पक्ष = स्थान के अन्दर से), बौ.शु. 5.30।

अतिकालयति (अति + काल् + लट् प्र.पु. ए.व.) (गायों को देर तक) हाँकता है, मा.श्रौ.सू. 9.3.3.27।

अतिकाल्या स्त्री. फलदात्री (गर्भयोग्य) गाय, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.26 (190.9)।

अतिक्रम पु. लाँघना, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.13।

अतिक्रमण न. (आहवनीय के) उत्तर से दक्षिण की तरफ एवं लाँघने का कृत्य, श.ब्रा. 11.4.2.3।

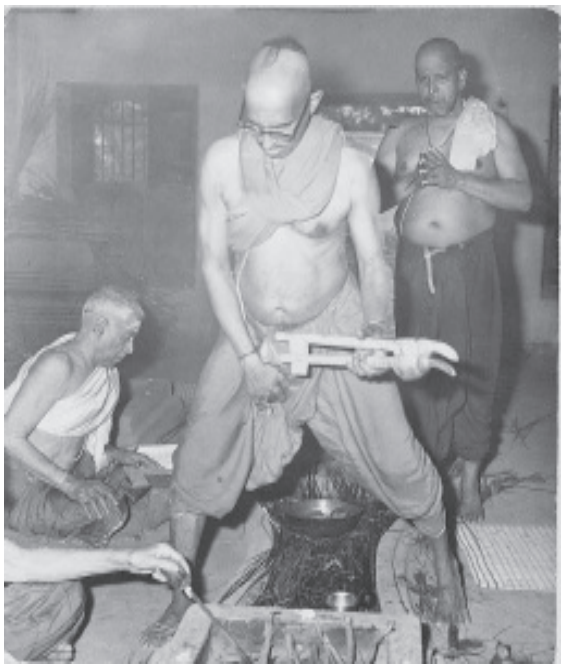

अतिक्रमण

अतिक्राम पु. ऐसा यजमान जिसके शत्रु हों, के द्वारा अनुष्ठेय कृत्य, जो उन शत्रुओं को जीतना चाहता है या उनकी बराबरी करना चाहता है, और वह जो 'अग्निना देवेन --' से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र से झाड़-फूँक का अभ्यास करना चाहता हो, बौ.श्रौ.सू. 14.20, श्रौ.को. (अं) 1.556 के अनुसार इस नाम की 3 प्रविधिया हैं, जो अभिचारिन् की स्थिति में विष्णुक्रम के बाद उच्चारित की जाती हैं।

अतिक्षारयति (अति + क्षर् + णिच् + तिप्) (कपाल की सीमा के) आगे तक बहाता है, बौ.श्रौ.सू. 1.26:3।

अतिगुरु वि. अति भारी, अति कठिन, बौ.श्रौ.सू. 26.12, 290.2 (सूची)।

अतिग्राह्य

अतिग्राह्य पु. अग्निष्टोम के प्यालों में जुड़ने वाले एक सोम के प्याले का नाम (प्रतिप्रस्थाता एक को अग्नि को समर्पित करता है, नेष्ट्रा एक को इन्द्र के लिए एवं उन्नेता एक को सूर्य को) भा.श्रौ.सू. 14.7.9; 11 (देखें-तै.सं. 4.7.7.2 कल्पन्ताम्) अतिग्राह्याः परः सामसु तै.ब्रा. 1.2.2.4; भक्षयन्ति निष्केवल्ये, आप.श्रौ.सू. 7.3.22; शां.श्रौ.सू. 10.2.6; बौ.श्रौ.सू. 2.165:17; त्रीनग्निष्टोमेऽतिग्राह्यान् गृह्णाति---आप.श्रौ.सू. 12.15.9; मा.श्रौ.सू. 166.10; भा.श्रौ.सू. 14.7.9; वाजपेय में सात अतिग्राह्य प्याले होते हैं, जिन्हें 'महेन्द्र' प्याले के बाद अर्पित करते हैं, अर्थात्, एक अग्नि को प्रतिप्रस्थाता द्वारा अर्पित किया जाता है, नेष्टा इन्द्र के लिए पाँच को समर्पित करता है और एक सूर्य के लिए उन्नेता द्वारा अर्पित किया जाता है, श्रौ.ध.चि. 46. अध्वर्यु (जो महेन्द्र प्याले पर पकड़ बनाए रहता है, के साथ-साथ 'प्रतिप्रस्थाता' आग्नेय प्याले (अतिग्राह्य), 'नेष्ट्रा' ऐन्द्र प्याले (अतिग्राह्य) एवं 'उन्नेता' सौर्य अतिग्राह्य (प्याले) पर पकड़ बनाये रहे अर्थात पकड़े रहे। आप.श्रौ.सू. 13.8.6-12; वैखा.श्रौ.सू. 16, 9-10, सत्याषा.श्रौ.सू. 9.2; तै.सं. 3.3.1 में अतिग्राह्य से सम्बद्ध मन्त्र उपलब्ध हैं। अग्नि को समर्प्य प्याले का 'अग्ने तेजस्विन्'-----इस मन्त्र से अवेक्षण करना चाहिए एवं 'दीक्षायै च त्वा-----' से अर्पित करना चाहिए। यजमान अर्पणानन्तर कहे-'तेजोविद्----' एवं मयि मेधाम्' मन्त्रपूर्वक भक्षण करना चाहिए।

अतिघातम् क्रि.वि. जोर से आघात करके, मा.श्रौ.सू. 5.2.5.9 (त्रैधातवी इष्टि ------ अतिघातम् अवद्यति)।

अतिछन्दस् चार चरण में 48 से अधिक अक्षरों वाले छन्द का नाम, जै.ब्रा. 1.283।

अतिथिगवी स्त्री. अतिथि (अर्थात् सोम) के लिए समर्पणीय गाय बौ.श्रौ.सू. 3.232:7; देखें - अतिथि, हम्बैक. H.Mss 1952।

अतिथिदेव वि. अतिथि है देवता जिसका, तै.आ. 7.11.2।

अतिथिमती स्त्री (द्वि) पुरोनुवाक्याओं अथवा संयाजों के रूप में प्रयुक्त 'अतिथि' शब्द की अभिव्यक्ति वाले दो ऋचायें (ऋ.वे. 8.44.1; 1.91.16; 10.1.95 एवं 7.8.4)।

अतिथिवती स्त्री. 'अतिथि' शब्द वाली ऋचा (दमुनवती के साथ), अर्थात् 'जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण सत्', श्रौ.को. (सं) I.473; ऋ.वे. 5.4.5।

अतिथ्यपनोद पु. अतिथि को भगाना, का.श्रौ.सू. 4.10.15।

अतिददाति (अति + दा + तिप्) आगे के पितरों को तण्डुल-पिण्ड समर्पित करता है, अर्थात् जीवित पिता का अतिक्रमण करते हुए, भा.श्रौ.सू. 1.8.11; (पिण्डपि); मा.श्रौ.सू. 9.13।

अतिदन्तुर वि. अत्यधिक उभरे हुए दाँतों वाला, ता.ब्रा. 3.4.19.1।

अतिदीर्घ वि. बहुत बड़ा, वा.सं. 33.22; ता.ब्रा. 3.4.19.1 (विरुपान् आलभते), अ.वे.परि. 3(2).3।

अतिदेश 1. (मीमांसा) मूलतः प्रतिपादित कर्म के वैशिष्ट्यों एवं कृत्यों को अन्य अनुष्ठानों पर आरोपित करना अतिदेश है, आश्व.श्रौ.सू. 3.2.1 (सिद्धैरहोभिरह्नामतिदेशः) (यथा-प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्या)।

अतिध्यायेत् (अति + ध्या + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) अन्य (दक्षिणाओं) के बारे में सोचना, भा.श्रौ.सू. 14.5.7 (ततो ब्रह्मणो यथान्यां नातिध्यायेत् तथा दद्यात्)।

अतिनिचृत् स्त्री. गायत्री-वर्ग से सम्बन्धित एक वैदिक छन्द, ऋ.प्रा. 16.14 (पाद में न्यूनाक्षर संख्या वाला) = जिसके पद में अक्षरों की संख्या न्यून हो।

अतिनीय (अति + नी + ल्यप्) (सायंकालीन भोजन) ले आकर, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.2।

अतिपदा वि. (स्त्री) अतिरिक्त अथवा अधिक पाद वाली (ऋचा = पद्य)। जै.ब्रा. 3.315 = पाँच पादों वाला पङ्क्ति छन्द।

अतिपरीयुः (अति + परि + इ + वि.लि.प्र.पु.ब.व.) यदि वे प्रवर्ग्य पात्र के चारों ओर अधिक गये हों (अर्थात् तीन आवृत्ति से अधिक), भा.श्रौ.सू. 11.17.12; आप.श्रौ.सू. 15.17.9. तु. 'प्रतिपरीयुः' बाएं से चारों ओर गये हुए हों।

अतिपवमान वि. (अति + पू + शानच्) (छन्ने से) आगे बहने वाला, ऋ.वे. 9.30.4; बौ.श्रौ.सू. 1.208.17 (उदित आदित्येऽन्तर्यामं गृह्णाति अतिपवमानस्य राज्ञः)।

अतिपवित्रेष्टि स्त्री. कुछ संवर्द्धन के साथ पवित्रेष्टि के साम्य वाली एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, अर्थात् वैश्वानर अग्नि के लिए पाँचवीं आहुति के अनन्तर, पथिकृत् अग्नि, व्रतपति अग्नि अनीकवन्त् अग्नि एवं अग्निषोम प्रत्येक के लिए एक आहुति का विधान है। कुछ के मतानुसार अन्तिम आहुति व्रतभृत् अग्नि के लिए होती है अग्निषोम के लिए नहीं। पवित्रेष्टि की पाँच उपांशु आहुतियों के अनन्तर इसके आगे

और पाँच आहुतियाँ विष्णु सरस्वती, सरस्वन्तों, प्रजापति और सवितृ के लिए होती हैं, श्रौ.को. (अं.) I. 558-59; भार.परिशेष. सू. 202।

अतिपाद्य (अति + पद् + णिच् + ल्यप्) (इष्टि की) उपेक्षा कर अथवा परित्याग कर, तै.सं. 2.2.5.4 दर्श एवं पूर्णमास के अनुष्ठान के द्वारा।

अतिपावन न. (अति + पू+ णिच् + ल्युट्) (सोम) को छानना, मा.श्रौ.सू. 135.17।

अतिपावयति (अति + पू + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) सोम को (ऊनी छन्नी से द्रोणकलश में) छानता है, भा.श्रौ.सू. 13.16.8।

अतिपूत वि. (स्त्री.आ) पवित्र (व्यक्ति) श.ब्रा. 5.5.4.11; 5.54.13; 5.5.4.33; अतिशय पवित्र भा.गृ.सू. 2.17 (49.10); अग्निवे. गृ.सू. 3.2.6 (128.19)।

अतिप्रणीत वि. (अधि.) बहु. जब समिधाओं को आगे (उत्तरावेदि की नाभि तक) ले जाया जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.8.6.26; आगे ले जायी गयी, आप.श्रौ.सू. 1.10.19; 'अतिप्रणीते वा जुहुयात्' आश्व.श्रौ.सू. 2.7.15; 2.6.9; मा.श्रौ.सू. 1.8.6.26; गौ.गृ.सू. 3.7.11; द्रा.गृ.सू. 3.2.6; लघ्वा. स्मृ 23.84।

अतिप्रणीतचर्या स्त्री. अतिशय मात्रा में अग्निप्रणयन का अनुष्ठान (अथवा आगे ले जायी जाने वाली अग्नि का प्रबन्ध), आश्व.श्रौ.सू. 2.4.14 'अतिप्रणीतचर्यायां च वैगुण्यं दर्शपूर्ण-मासयो:'।

अतिप्रणीय (अति + प्र + नी + ल्यप्) आगे ले जाकर, अतिप्रणयन कर, आश्व.श्रौ.सू. 2.7.19; 2.19.1।

अतिप्रथन न. अतिशय फैलाना, बौ.श्रौ.सू. 1.128 : 9 (कपाल और पुरोडाश को)।

अतिप्रयच्छति (अति + प्र + यम् + तिप्) (चाँदी का एक टुकड़ा) फेंकता है, भा.श्रौ.सू. = अनुप्रास्यति 5.5.12 = अतिप्रविध्येत् - दूर फेंकता है 5.5.14; देखें - अतिप्रदाय, ला.श्रौ.सू. 5.9.5 (सौंपकर)।

अतिप्रयुक्ति स्त्री. श्रेष्ठ प्रयोग (अनुष्ठान), तै.सं. 2.2.9.2; बौ.श्रौ.सू. 2.128:9 (प्रति वै परस्तादभिचरन्तमभिचरन्ति द्वे द्वे पुरोऽनुवाक्ये कुर्यात् अतिप्रयुक्त्यै इति)।

अतिप्रवण वि. अत्यधिक झुका हुआ अथवा ढलानदार, (ढलानयुक्त) बौ.श्रौ.सू. 3.233:1 ('देवयजन' यज्ञ-भूमि)।

अतिप्रवसत् वि. (अति + प्र + वस् + शतृ) दीर्घ काल के लिए यात्रा पर निकलता (निकला) हुआ, (एक वर्ष से) अधिक घर से दूर रहने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 2.12.10।

अतिप्रवृञ्ज्यात् (अति + प्र + वृञ्ज् + वि.प्र.पु.ए.व.) प्रवर्ग्य की संख्या का अतिक्रमण करना चाहिए अर्थात् उसे सोम याग में 12 से अधिक 'प्रवर्ग्य' को नहीं करना है, मा.श्रौ.सू. 4.1.5।

अतिप्रेषण न. आह्वान को स्थानान्तरित कर देना अथवा दूसरे तक पहुँचने देना, आप.श्रौ.सू. 12.27.7 (टीका)।

अतिप्रेषित न. दूसरे बिन्दु पर पहुँचाया गया विस्तारित आह्वान अथवा आदेश (वर्तमान के दूसरे दिन के सन्दर्भ से युक्त आग्नीध्र द्वारा) का.श्रौ.सू. 12.6.23।

अतिप्रेषितृ वि. दूसरे दिन के सन्दर्भ से युक्त स्थानान्तरित प्रैष (आह्वान आदेश) का दाता, आप.श्रौ.सू. 12.27.6।

अतिप्रैष पु. स्थानान्तरित प्रैष (आदेश, आह्वान) बौ.श्रौ.सू. 2.248 : 2; ला.श्रौ.सू. 5.12.5; आप.श्रौ.सू. 12.27.6 (टीका); 'अतिप्रैष'-सञ्ज्ञक विधि, अतिप्रैषस्य पुरोनुवाक्यामन्वाह, कौषी.ब्रा. 30.11. (147.6) अननुवषट् कृतेऽतिप्रैषं मैत्रावरुण आह, टीका-अतिप्रैषो नाम प्रैषविशेष:।

अतिमात्रा स्त्री. बहुत बड़ी संयोजन-इष्टका, मा.श्रौ.सू. 221.19, वारा.श्रौ.सू. 2.1.7.21 (चयन)।

अतिमार्जयति (अति + मृज् + णिच् + तिप्) (आहवनीय को करछुल की सहायता से) माँजता है, अर्थात उसे अग्नि के ऊपर तीन बार कलछुल को गुजारना चाहिए। भा.श्रौ.सू. 6.13.2 (सायम् अग्निहोत्र) तु. अतिवल्गयति, आप.श्रौ.सू. 6.11.3।

अतिमुक्ति स्त्री. एक आहुति का नाम (अग्निप्रणयन एवं पूर्णाहुति के अनन्तर 'अग्निर्वायुरादित्यो विष्णु----' इस मन्त्र से 4 आहुतियाँ) आप.श्रौ.सू. 7.7.2; भा.श्रौ.सू. 7.5.6 'अग्निर्यज्ञं नयतु प्रजानन्' इस मन्त्र से, इत्यादि (सौत्र-मन्त्र); आप.श्रौ.सू. 19.13.2।

अतिमोक्ष पु. मन्त्रों का नाम (तै.सं. 3.5.4.1 में), वारा.श्रौ.सू. 1.1.4.20 [तु. अतिमोक्ष पु. दर्श के अन्त में जब वेदि के अन्दर बैठा हो उस समय उच्चारणीय 'ये देवा यज्ञहनो

पृथिव्याम्' आदि मन्त्रों का नाम। यजमान 'वेद' को अपने अङ्क (गोद) में रखकर इन मन्त्रों को जपता है = मन्द स्वर में पढ़ता है, आप.श्रौ.सू. 4.22.1; आप.श्रौ.सू. 13.25.1-2 (अत्र विष्णुक्रमानेके समामनन्ति); भा.श्रौ.सू. 4.22.1]।

अतिरात्र पु. (सम्पूर्ण रात्रि अनुष्ठान से युक्त) एक एकाह सोम याग का नाम, ऋ.वे. 7.103.7; अ.वे. 11.6.41; 11.7.12; तै.सं. 6.6.11.4; 7.3.13.1; काठ.सं. 5. (3); तै.सं. 7.4.10.1; काठ.सं. 33.2, आप.श्रौ.सू. 11.10.13; का.श्रौ.सू. 9.3.20; ऐ.ब्रा. 14.3 (401); पञ्च.ब्रा. 9.7.11; षड्विं.ब्रा. 4 (5) 3.4; श.ब्रा. 4.2.5.14; आश्व.श्रौ.सू. 12.18.13; का.श्रौ.सू. 9.8.5; जै.ब्रा. 1.4; आश्व.श्रौ.सू. 10.1.15; शां.श्रौ.सू. 12.5.19, आप.श्रौ.सू. 14.10.4; यद्यषोडशिकोऽतिरात्रः मा.श्रौ.सू. 89.17, वौ.श्रौ.सू. 10.2.13; निदा.सू. 135.15; वैखा.श्रौ.सू. 26.1 [सत्र अथवा द्वादशाह के प्रयाणीय (प्रारम्भिक) एवं उदयनीय (अन्तिम) दिवसों पर अनुष्ठेय], तै.सं. 7.2.91, 7.3.4.2; आप.श्रौ.सू. 23.10.2; तै.सं. 8.1.4.2; आप.श्रौ.सू. 18.22.13; ऐ.ब्रा. 17.8 (477); 29.7 (749); 17.4 (463); 18.3 (484); पञ्च.ब्रा. 10.4.1; श.ब्रा. 9.4.4.15; 12.1.4.1; 12.2.4.1, षड्वि.ब्रा. 3.13 (4.6), गो.ब्रा. 1.4.22; आश्व.श्रौ.सू. 11.1.2, 12.3.2; शां.श्रौ.सू. 13.19.7; आप.श्रौ.सू. 23.12.7; मा.श्रौ.सू. 9.5.3.28; का.श्रौ.सू. 12.1.6; 13.4---3; हि.श्रौ.सू. 16.5.18; 16.9.1; निदा.सू. 164.15 (9.9); ला.श्रौ.सू. 10.3.6; वैता.श्रौ.सू. 31.15; राजसूय के अन्तिम दिन अनुष्ठित होता है, ता.ब्रा. 1.7.10.1; श.ब्रा. 5.5.3.5; आश्व.श्रौ.सू. 9.3.24; शां.श्रौ.सू. 15.16.5; 15.16.5; बौ.श्रौ.सू. 2.117 : 1; आप.श्रौ.सू. 18.22.9; मा.श्रौ.सू. 190.21; वारा.श्रौ.सू. 3.4.41; का.श्रौ.सू. 15.9.20; मा.श्रौ.सू. 13.7.29; ला.श्रौ.सू. 9.3.1; (अश्वमेध के अन्तिम दिन एवं अन्य यज्ञों के अङ्ग के रूप में अनुष्ठित होता है), तै.सं. 5.4.12.2; ऐ.ब्रा. 30.5 (777); षड्व. ब्रा. 4. (5) 2.1; शां.श्रौ.सू. 13.13.1; आप.श्रौ.सू. 22.18.1; 20.22.3; 14.23.3; मा.श्रौ.सू. 196.13; 105.4; का.श्रौ.सू. 20.8.12; 24.6.15; हि.श्रौ.सू. 14.5.10; 4.6.1; वैता.श्रौ.सू. 20.8.12; 24.6.15; हि.श्रौ.सू. 14.5.10; 15.6.1; (उस दिन) जिस दिन 'अतिरात्र' का अनुष्ठान किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 9.2.13 (टीका); 29 शस्त्रों एवं 29 स्तोत्रों के साथ दिन के समय एवं रात्रि को अनुष्ठित होने वाली पाँचवीं सोम संस्था, 12 शस्त्र एवं स्तोत्र तीन पर्याय (आवृत्ति) में प्राप्त किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 14.3.8-16. यह 'ज्योतिष्टोम' का एक वैकल्पिक रूप है।

अतिरात्रपशु पु. अतिरात्र याग में आलभ्य पशु, बौ.श्रौ.सू. 2.258 : 9; का.श्रौ.सू. 14.2.11 (आग्नेय, ऐन्द्राग्न एवं ऐन्द्रसारस्वत-संज्ञक)।

अतिरात्रब्राह्मण न. अतिरात्र की व्याख्या, बौ.श्रौ.सू. 3.303:5।

अतिरात्रवत् वि. (अतिरात्र + मतुप्) अतिरात्रयाग से युक्त, जै.ब्रा. 2.317।

अतिरात्रसामन् न. अतिरात्र-संज्ञक साम (गान), जै.ब्रा. 2.195; नरमेध साम (गान) सोम याग में अतिरात्र का प्रतिनिधित्व करता है, जै.ब्रा.।

अतिरिक्त वि. त्र्यम्बकेष्टि में अतिरिक्त (पुरोडाश), का.श्रौ.सू. 5.10.11; छूटा हुआ, शेष, अतिरिक्त, जै.ब्रा. 1.67; मा.श्रौ.स. 231.16; अतिरिक्त, (अधिक) प्रचुर, आवश्यकता से अधिक, पञ्च.ब्रा. 6.1.5; कौषी.ब्रा. 14.5 (64.15); 26.3 (126.6); श.ब्रा. 1.7.2.7; विभिन्न, विशिष्ट, तदितर, अलग, मा.श्रौ.सू. 228.10।

अतिरिक्तस्तोत्र न. अतिरिक्त स्तुति, पञ्च.ब्रा. 20.3.1; बौ.श्रौ.सू. 3.316.6; 3.178:18; ला.श्रौ.सू. 2.5.25; हि.श्रौ.सू. 13.2.28; का.श्रौ.सू. 3.1.28, 9.5.23।

अतिरेक पु. कुछ बचा हुआ, कुछ अतिरिक्त, कुछ अधिक, अधिक मात्रा, का.श्रौ.सू. 1.8.47 आज्यग्रहणम्, अतिशय आधिक्य, आवश्यकता से कुछ अधिक, आश्व.श्रौ.सू. 12.7.1; निदा.सू. 12.7 (1.8)।

अतिरोक पु. (कोने में) महावेदि के घेरे में सूक्ष्म अवकाश (छिद्र), मै.सं. 3.6.1; मा.श्रौ.सू. 58.10 (सोम)।

अतिवर पु. बहुमूल्य उपहार (अश्वादिः, धू), आप.श्रौ.सू. 5.11.4 (रु. वरजातीयं वर्तते न वर इति), यज्ञ के लिए जो उचित है, उससे बढ़कर उपहार।

अतिवरण न. बाहरी ऋत्विज् का वरण (चयन), बौ.श्रौ.सू. 24.12; (सूची) टीका-अतीत्य वरणम्।

अतिवल्गयति (अति + वल्ग् + लट् प्र.पु.ए.व.) अतिशय (अत्यधिक) हिलाता है, आप.श्रौ.सू. 6.11.3 (अग्निम् उदञ्चम् अतिवल्गयति)।

अतिवाचयति (अति + वच् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) यजमान से अधिक वाचन करवाता है, वौ.श्रौ.सू. 6.2.22 (अप्सुदीक्षा); श्रौ.को. (अं) II. पृ. 50, 'तानूनप्त्र' के बाद बौ.श्रौ.सू. 6.19.4।

अतिवाल्य (अति + वल् + णिच् + ल्यप्) मेक्षण संज्ञक कलछुल को आहवनीय से आर-पार घुमाकर (दक्षिण से उत्तर), बौ.श्रौ.सू. 3.6:13; 17; बौ.श्रौ.सू. 1.75:4 (अग्निहोत्र) सकृदतिवाल्य कूर्चे स्रुचं निधाय दक्षिणावृद् गार्हपत्यं प्रतीक्षते।

अतिवित्सन न. आगे चलना, बौ.श्रौ.सू. 3.89:9. (सोमक्रयणी)।

अतिवृत वि. (अतीत्य वृतः) (किसी की) उपेक्षा या अतिक्रमण करके के चुना गया, बौ.श्रौ.सू. 3.197:6।

अतिवृद्ध वि. अत्यधिक बढ़ा हुआ, बौ.श्रौ.सू. 2.16.18 (भस्म)।

अतिवेल वि. (अतिक्रान्तो वेलाम्) वेला का अतिक्रमण करने वाला, विलम्बित अपने उचित समय के बाद घटित होने वाला, बौ.श्रौ.सू. 1.54:1 (आधान)।

अतिव्याधिन् वि. (अति + व्यध् + णिनि) जोर से बींधने वाला, गम्भीर रूप से घायल करने वाला, श.ब्रा. 14.6.8.2; (अश्वमेध) यज्ञ का नाम, श.ब्रा. 13.3.7.9 = तै.ब्रा. 3.9.19.3।

अतिव्रजत् वि. (अति + व्रज् + शतृ) आगे बढ़ता हुआ, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.11; 4.10.6; 4.11.3; कौशि.सू. 124.13।

अतिव्रज्य (अति+व्रज्+ल्यप्) आगे अथवा आर-पार जाकर, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.11, 4.10.6, 4.11.3; कौशि.सू. 124.13.

अतिशंसन न. नियत सीमा से अधिक पाठ करना, आश्व.श्रौ.सू. स्तोमानामनतिशंसने आवापः7.12.3; वै.श्रौ.सू. 35.14; सं.डि.डे. अप्रामाणिक प्रतीत होता है ('सतत पाठ')।

अतिशय पु. (अति + शी + अच्) प्रदत्त सीमा से अधिक लम्बाई (आप.शु.सू. 3.2), जो सीमा से अधिक हो, आप.श्रौ.सू. 1.3.3।

अतिशस्त वि. (अति + शंस + क्त) जो पाठ में अधिक हो जाता है, ऐ.ब्रा. 11.11 (314), निविदा ह्येव स्तोत्रमतिशस्तं भवति।

अतिशस्य (अति + शंस् + ल्यप्) नियत सीमा से अधिक पाठ करके, आश्व.श्रौ.सू. 6.7.2. वि. पाठ में जिसका अतिक्रमण अथवा उपेक्षा पर दी जाय। ऐ.ब्रा. 17.4 (460) सूर्यो नातिशस्यः।

अतिशिष्ट वि. बचा हुआ अवशेष, छूटा हुआ, तै.सं. 7.3.20.1; कौषी.ब्रा. 3.7 (13.2); ऐ.ब्रा. कयाशुभीया सूक्त के शेष (चार) मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.46, ऋ.वे. 1.165।

अतिशुक्ल वि. (स्त्री.आ) बहुत सफेद अथवा चमकीला, वा.सं 30.22 (विरूपाणाम आलभते----अतिशुक्लम् अतिकृष्णम्) तै.ब्रा. 3.4.19.1।

अतिषङ्ग पु. एक साम का नाम (इन्द्रस्य अतिषङ्ग) आर्षे.ब्रा. 6. (1). 4.4. देखें—अतीषङ्ग।

अतिषक्त वि. (स्त्री.) (अत्यन्तं सक्ता, अति + सच् + क्त) नजदीकी से जुड़ी हुई, काठ.सं. 25.1 (अतिषक्ताभिर्यजति); आप.श्रौ.सू. 17.8.2 दशातिषक्ताः तै.सं. 5.6.6.3।

अतिष्टुत वि. (अति + स्तु + क्त) (सत्र की) सीमा से अधिक गाया गया, जै.ब्रा. I.356।

अतिसर्जन न. (अति+ सृज् + ल्युट्) आदेश (लेना या देना) आश्व.श्रौ.सू. 1.12.21 (ओं स्तुध्वम्); 2.4.25 ओं उन्नेष्याम्यतिसर्जनम्।

अतिसृष्ट वि. (स्त्री.आ) (अति + सृज् + क्त) 1. अवमुक्त, मुक्त, आदिष्ट (किसी कार्य को करने के लिए), अ.वे. 5.12.4; 15.12.7; श.ब्रा. 12.6. 1.38; आश्व.श्रौ.सू. 2.3.12; आप.ध.सू. 2 (3). 7.15।

अतिस्थूल वि. बहुत बड़ा या मोटा, (नातिस्थूलः कार्यः), (यूपावटः) मा.श्रौ.सू. 177.17; 18।

अतिस्वार पु. स्वर से बढ़कर साम के सरगम का अन्तिम स्वर, पञ्च.ब्रा. 8.9.14; बृ.दे.8.11.3 'मन्द्रकर्षणसंयुक्तमतिस्वारं प्रशंसन्ति' गाते समय विशिष्ट सामस्वर को छोड़ते हुए।

अतिस्वार्यः पु. साम के सरगम का अन्तिम स्वर, साम.वि.ब्रा. 1.1.14, बृ.दे. 8.120 (विकर्षेण तु मन्द्रस्य युक्तोऽतिस्वार्य उच्यते); तै.प्रति. 23.13 (मन्द्रादिषु त्रिषु स्थानेषु सप्त सप्त यमाः। क्रुष्टप्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थमन्द्रातिस्वार्याः)।

अतिहरत् वि. (अति + हृ + शतृ) दूर करते हुए, शां.श्रौ.सू. 1.7 (3.31); आगे ले जाते हुए, मा.श्रौ.सू. 65.16 (समयाहवनीयं प्रस्तरमतिहरन्)।

अतिहाय (अति + हा + ल्यप्) छोड़कर, अतिक्रमण कर, ऋ.वे. 1.162.20, वा.सं 25.43; तै.सं. 2.6.6.6 (बाद वाली आहुति को एक तरफ छोड़ते हुए); तै.सं; 6.3.1.3; काठ.सं. 6.5; तै.ब्रा. 2.1.4.4; पञ्च.ब्रा. 12.11.19, बौ.श्रौ.सू. 1.26 : 6; भा.श्रौ.सू. 2.19.7; आप.श्रौ.सू. 6.11.4।

अतिहृत्य (अति + हृ + ल्यप्) आगे ले जाकर अथवा अतिक्रमण करके, श.ब्रा. 1.11.21; कौषी.ब्रा. 2.2 (5.15);

वारा.श्रौ.सू. I.6.3.21; शां.श्रौ.सू. 2.8.22-23; एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले आकर, मा.श्रौ.सू. 72.14।

अतीकाश पु. छिद्र अथवा रन्ध्र, तै.सं. 6.1.1.11 'दिक्षु अतीकाशान् करोति', वि. रन्ध्र अथवा छेद से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 2.204:10 (तच्छालां कुर्वन्ति प्राचीनवंशां दिक्ष्वतीकाशां दक्षिणतो वर्षीयसीं)।

अतीमोक्ष न. मन्त्रों के एक वर्ग का नाम (मुक्ति), 'ये देवा यज्ञहणो पृथिव्याम् अध्यास्त' गार्हपत्य के लिए उच्चारित किया जाता है; 'ये देवा यज्ञहणो अन्तरिक्षे'-----दक्षिणाग्नि के लिए 'ये देवा दिवि' आहवनीय के लिए, मा.श्रौ.सू. 1.4.3.16; देखें-'अतिमोक्ष'; जब यजमान आहुति-प्रदाता अध्वर्यु को छुए हो, उस समय वैश्वकर्मण आहुतियों के अनन्तर, 'ये देवा यज्ञहनः'-------मन्त्रों से गार्हपत्य, आग्नीध्र-अग्नि एवं आहवनीय में प्रत्येक पर दो आहुतियाँ अर्पित करने का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 14.20-21।

अतीरोक पु. अन्तरवकाश, दो डारियों के मध्य का अवकाश, कपि.क.सं. 35.7; जै.ब्रा. 2.25; हि.श्रौ.सू. 7.1.25; स्रक्तिषु अतीरोकान् कुर्वन्ति, ला.श्रौ.सू. 3.12.7।

अतीषङ्ग पु. महानाम्नीवत् स्वरों वाले एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.5.3; आर्षे.ब्रा. 2.5.6 (1)।

अतीर्थ न. 1. (चात्वाल एवं उत्कर के बीच अग्निक्षेत्र को जाने वाले) नियमित मार्ग से अन्य स्थान, षड्वि.ब्रा. 3.17; आश्व.श्रौ.सू. 6.10.1; मा.श्रौ.सू. 8.19.12; 9.3.3.32, ला.श्रौ.सू. 3.4.5; 2. अनुचित अवसर जै.ब्रा. 2.130; (अतीर्थं वै प्रातःसवनं दक्षिणानाम्), 3 (दाहिने हाथ की हथेली का) तीर्थ भिन्न भाग (अर्थात् जल को बहाने के लिए प्रयुक्त होने वाला भाग), गौ.गृ.सू.।

अतीसार पु. 1 पेचिश अथवा अतीसार, आप.श्रौ.सू. 9.20.1; 5.1.7.4, (जो इससे परेशान हो);

अतुर्मुह्य न. हड़बड़ी पर काबू न होना, मा.श्रौ.सू. 5.1.7.4, (राथ, अन्तर्मुह्य-आन्तरिक हड़बड़ी), डेब्रू. 830।

अतुष वि. (स्त्री.आ.) भूसी से विहीन धान, श.ब्रा. 2.5.2.14 (अन्वाहार्य- पचने यवान्)।

अतूपर वि. जो शृङ्ग-विहीन न हो, सींग वाला, आप.श्रौ.सू. 10.29.4।

अत्कीलवत् वि. अत्कील ऋषि के समान, आप.श्रौ.सू. 24.7.4; (प्रवर)।

अत्यग्निष्टोम पु. (ज्योतिष्टोम में संशोधन से युक्त) सप्त सोम-संस्थाओं में द्वितीय का नाम, सामवि.ब्रा. 1.4.3; गो.ब्रा. 1.5.23; आश्व.श्रौ.सू. 6.11.1; शां.श्रौ.सू. 15.5.1; बौ.श्रौ.सू. 3.188.3 का.श्रौ.सू. 10.9.28; ला.श्रौ.सू. 5.4.24; वैता.सू. 26.15; षोडशिस्तोत्र को एवं साथ ही 'षोडशिन्-संज्ञक (अग्निष्टोम) आहुति (द्रवार्पण) एवं इन्द्र के लिए एक अतिरिक्त आलभ्य को सीधे जोड़कर (अत्यग्निष्टोम संस्था) की जाती है, आप.श्रौ.सू. 14.2.10 टीका; का.श्रौ.सू. 10.9.28. उस समारोह की समाप्ति पर पढ़ा जाने वाला मन्त्र भी (टीका), 'प्रागुक्ताग्निष्टोम एव षोडशिना अधिकत्वादत्या-ग्निष्टोमः' वेङ्कटेश्वर बौ.श्रौ.सू. 14.20 पर; 187.11; 24.4; 180.3 (सूची)।

अत्यग्रम् क्रि.वि. (प्रस्तर संज्ञक घास के) आगे उभरे हुए अग्रभाग से युक्त (अग्नि) तै.सं. 2.6.5.4 = काठ.सं. 25.5 = कपि.क.सं. 29.2; बौ.श्रौ.सू. 1.29.3; भा.श्रौ.सू. 3.6.2; हि.श्रौ.सू. 2.4.10; वैखा.श्रौ.सू. 7.6; अग्निवे.गृ.सू. 1.6.3 (37.21)।

अत्यणु वि. बहुत छोटा, अति सूक्ष्म, मै.सं. 3.9.4; भा.श्रौ.सू. 7.22.8; मा.श्रौ.सू. 177.18; हि.श्रौ.सू. 4.1.2; (यज्ञीय स्तम्भ)।

अत्यतिरात्र वि. (स्तोत्रों की अधिक संख्या से युक्त होने के कारण) अतिरात्र का अतिक्रमण करने वाला (आप्तोर्याम याग), ऐ.ब्रा. 14.3. (401)।

अत्यनूक्त वि. अनुवाचन में अतिशयित, तै.ब्रा. 3.7.11.1 (यजमान द्वारा उच्चारित); देखें - महेन्दले. एम.ए. 'गीर्वाण सुधा' 3 (8-9), 1982, 4-5 (कैलेण्ड एवं डुमाण्ट 'अतिदीर्घ (ज्यादा देर) उच्चारित' गलत, इसे एवंविध होना चाहिए 'असमीचीनवाचनम्, प्रयोगानुकूलवाचनम् अतीत्य यद्वर्तते'।

अत्यन्तप्रदेश पु. सामान्य नियम, बौ.श्रौ.सू. 28.3:348.1 'तत्रैषोऽत्यन्तप्रदेशः', भा.श्रौ.सू. 1.1.9. सार्वभौम अनुप्रयोग, आप.श्रौ.सू. 12.7.12; 15.2.8; आप.श्रौ.सू. 1.3.17; दर्श एवं पूर्णमास दोनों में अनुप्रयोग योग्य (लागू होने वाला)।

अत्यर्द पु. एक साम का नाम, आर्षे.ब्रा. 4.11.2 (विश्वामित्रस्य अत्यर्दः)।

अत्यवि वि. (भेड़ के ऊन) के छन्ने=छानने वाले से गुजरने वाला, ऋ.वे. 9.13.1; 9.106.11; सा.वे. II.3 (1). 18.2; ऋ.वे. 9.6.5; 9.45.5।

अत्यश् (अति + अश्) नियत क्रम का अतिक्रमण कर खाना, अत्यधिक खाना, श.ब्रा. 1.1.1.9; श.ब्रा. (को.) 2.1.4.1।

अत्यशित वि. भोजन में अतिक्रान्त, भार.श्रौ.सू. 7.23.12; (देवताओं के खाने से पहले खाने के कारण) यजमान द्वारा उपेक्षित = नजरअंदाज की गईं (अग्नियां)।

अत्याकरण (दक्षिणा की गायों को) आर-पार गुजारना, बौ.श्रौ.सू. 21.21:108.3।

अत्याक्रम् (अति + आ + क्रम्) पार करना, आगे निकल जाना, तै.ब्रा. 3.3.7.7; 3.3.7.9; श.ब्रा. (को.) 4.7.4.5; 2.4.2.10; मा.श्रौ.सू. 20.4; बढ़ जाना = अतिक्रमण कर जाना गो.ब्रा. 1.3.15; (आहवनीय के उत्तर) पीछे क्रमण करना, पीछे पार करना।

अत्याक्रमण न. आगे पादप्रक्षेप करना, पार करना, बौ.श्रौ.सू. 3.65:12; देखें श्रौ.प.नि. 26.207।

अत्याक्रमणविधि पु. अत्याक्रमण (आगे पादप्रक्षेप अथवा पार करने) की विधि, मी.कौ. 2.38.3 (2.3.6 पर)।

अत्याक्रम्य (अति + आ + क्रम् + ल्यप्) आगे पाद प्रक्षेप करके या बढ़कर, तै.सं. 6.3.3.3; बौ.श्रौ.सू. 1.24.10 उदङ् अत्याक्रम्य।

अत्याधा (अति + आ + धा) (जुहू को) पकड़ना, मा.श्रौ.सू. 2.13.4; आप.श्रौ.सू. 1.12.3; 1.21.3; 1.32.3; प्रस्तरमत्यादधाति, आप.श्रौ.सू. 2.9.13 (आहवनीय के आगे पकड़ना); (धन में) अतिशय करना, जै.ब्रा. 1.152 (2) = 2.310 (1); 1.22 (3)।

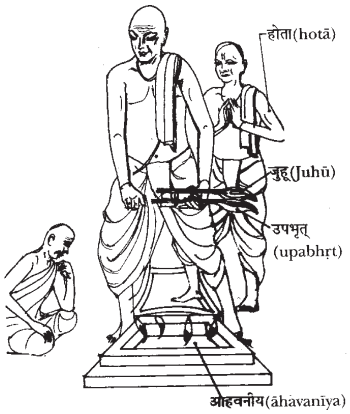

अत्याधा

अत्याधान न. ले जाने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 2.13.5 (विशेषत: जुहू को उपभृत् से, अन्यत्र भी, इसे उपभृत् के सामने से करना चाहिए); 'धृ' (धा) ऊपर रखना (कैलेण्ड)।

अत्याधाय (अति + आ + धा + ल्यप्) (अंगारों को कपालों के) ऊपर रखकर, आप.श्रौ.सू. 1.23.3 (धू : अत्याधानम् उपरिस्थापनम्); आप.श्रौ.सू. 1.4.12 (प्रस्तरम्), आप.श्रौ.सू. 1.17.8 (पादमत्याधाय)।

अत्याधि पु. विकल्प, स्थानापन्न, निदा.सू. 186.3 (10.10)।

अत्यायमन न. ले जाना, नयनम् (महाग्निसर्वस्व भाष्य), अर्थात् मै.सं.बौ.श्रौ.सू. 22.1 की सूची में; 117.19 (अश्वस्यात्याय-मनम्) (अश्वं गर्दभम् अत्यायच्छेत् तुष्णीम्) तु. बौ.श्रौ.सू. 2.4.8।

अत्यायु न. जीवित रहने वाला, अति दीर्घ-जीवन वाला (एक दिन का नाम) जै.ब्रा. 2.258।

अत्यायुपात्र न. उत्तराजीवी = दीर्घ काल तक रहने वाला पात्र, पञ्चवि. ब्रा. 6.5.7; 1.2.4 (= द्रोणकलश); अनु. अधिक जीने वाला = चलने वाला पात्र।

अत्यावप् (अति + आ + वप्) (अन्य छन्दों में ऋचाओं को) डालना, आश्व.श्रौ.सू. 4.15.4।

अत्यावृत् (अति + आ + वृत् णिच्) वापस मोड़ना, ले आना, तै.ब्रा. I.4.3.6।

अत्याशित वि. (स्त्री. आ) जिसने (देवताओं का) अतिक्रमण करके खाया हो (अर्थात् देवताओं के खाये बिना जिसने खा लिया हो), मै.सं. 3.6.2. तु. अत्यशित।

अत्याश्रावण न. 'आश्रावय'-सञ्ज्ञक प्रैष (पुकार, आदेश) का अतिशय उच्चारण, बौ.श्रौ.सू. 3.62.4।

अत्याश्रावित न. 'आश्रावय'-सञ्ज्ञक प्रैष का अतिशय उच्चारण, तै.ब्रा. 3.7.11.1।

अत्याश्रु (अति + आ + श्रु) (णिच्) अतिशय लम्बित प्रैष (आश्रावय) देना, बौ.श्रौ.सू. 3.62.4।

अत्याहृत्य (अति + आ + हृ + ल्यप्) (accent डेब्रु.पृ. 782) (बहुत) आगे ले जाकर, ऋ.वे. (खिल. 4.5.29; आप.श्रौ.सू. 10.17.8 अपरेणाहवनीयं व्रतमत्याहृत्य प्रयच्छन्नाह।

अत्युद्गृह्य (अति + उद् + ग्रह् + ल्यप्) ऊपर की ओर उठाकर, मा.श्रौ.सू. 32.11।

अत्युद्ग्रछ् ऊपर पकड़ना, ऊपर उठाना (अग्नि को), आप.श्रौ.सू. 5.14.8।

अत्युपयज् (अति + उप + यज्) अतिरिक्त अर्पण करना, श.ब्रा. 3.7.5.1।

अत्रदघ्ना वि. (स्त्री.) (अत्र + दध्नच् + टाप् व्यत्यय) इतनी अधिक ऊँचाई वाली (औदुम्बरी), श.ब्रा. 3.3.4.28।

अत्यूहति (अति + ऊह् + लट् प्र.पु.ए.व.) (अक्षरों को पुरोऽनुवाक्या से याज्या (में)) स्थानान्तरित करता है मा.श्रौ.सू. 5.1.9.22।

अत्रिकिणिन् वि. (न त्रयः किणाः सन्ति अस्य) जिसके शरीर के तीन अङ्गों (कन्धों, बाहुओं एवं गले) पर व्रण = घाव न हो, बौ.श्रौ.सू. 2.3:2।

अत्रिचतुरह = **अत्रेश्चतुर्वीर** पु. एक चतूरात्र (चार-दिवसीय) यज्ञ का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.18.12।

अत्रिहिरण्य न. (अत्रये देयं हिरण्यम्) अत्रि ऋषि को दी जाने वाली स्वर्ण-दक्षिणा (सोने की दक्षिणा) जै.ब्रा. 1.80।

अत्वरमाण वि. (अ + त्वर् + शानच्) शीघ्रता न करता हुआ, (वह) जो जल्दी में न हो, भा.श्रौ.सू. 9.4.6।

अत्सरुक पु. (न विद्यते त्सरुः यस्य) मूँठ से रहित एक प्याला (चमस) आप.श्रौ.सू. 12.2.8।

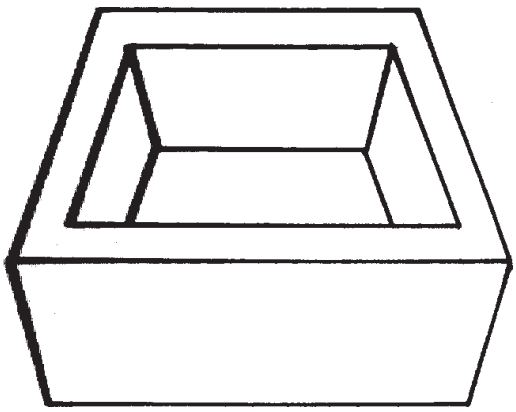

अत्सरुक

अथर्वशिरस् न. एक विशिष्ट ईंट का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.8.2 अग्निवेदि के प्रथम स्तर = सतह में, मा.श्रौ.सू. 10.2.3.4 (गेल्डर का अनुवाद 'अनिश्चित')।

अदर्विहोम पु. दर्वी (संज्ञक कलछुल) से आहुति-अर्पण अर्थात् दर्वीहोम से भिन्न, आप.श्रौ.सू. 24.3.13; 'आश्रुत-प्रत्याश्रुते याज्यानुवाक्ये अवदानेषु च उपस्तरणाभिघारणे चतुर्गृहीतं वषट्कारश्च अदर्विहोमानाम्', (देखें-दर्विहोम, आप.श्रौ.सू. 24.3.2-11)।

अदर्शन न. (वैदिक पाठ्य में) जिक्र न होना, का.श्रौ.सू. 1.4.11।

अदानीय वि. दक्षिणा के रूप में न देने योग्य, दक्षिणा के रूप में अविगणित, आप.श्रौ.सू. 13.7.13।

अदाभ्य पु. एक प्याले में 'अंशुग्रह' की स्थानापन्न एक सोमाहुति का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.7.17, अदाभ्य के लिए सोम की छः टहनियों का उपयोग किया जाता है (आप.श्रौ.सू. 12.11.11-13.14) और 'महाभिषव' में 'उशिक् त्वं देव सोम------', मन्त्र के साथ, इनमें से प्रत्येक सवन में एक टहनी को बढ़ा दिया जाता है, सत्या.श्रौ.सू. 8.3।

अदाभ्य

अदाभ्यपात्र न. सोम-रस को लेने के लिए 'अदाभ्य'-सञ्ज्ञक प्याला, भा.श्रौ.सू. 13.9.1; उदुम्बर (गूलर की) लकड़ी का बना हुआ, का.श्रौ.सू. 1.3.36 टीका। देखें-अंशु।

अदारसृत् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.6 सामवेद 1.132 पर आधृत।

अदिति स्त्री. एक देवी का नाम, जिसके लिए 'साकमेध पर्व' के अन्तर्गत इष्टि की जाती है; युधि. 94।

अदीक्षितवाद पु. ऐसे शब्द जो दीक्षित व्यक्ति द्वारा बोले जाने के लिए आज्ञप्त नहीं हैं, मा.श्रौ.सू. 2.1.2.37।

अदोह पु. दोहन का अभाव (दूध न दुहना), का.श्रौ.सू. 7.4.22. (दीक्षा)।

अद्धा वि. ('अद्धापुरुष' में) सच्चा मनुष्य, देखें Puegg BS, JA 243, 163-70; = सच्चा।

अद्भुत न. मृत्यु के अनन्तर 11 दिन प्रायश्चित्त के लिए दी जाने वाली आहुति का नाम, श्रौ.को (अं.) 1.1132; अप्राय 3.7.8।

अद्रि पु. सोम के सवन (निचोड़ने) के लिए प्रयुक्त पत्थर = ग्रावन्, का.श्रौ.सू. 11.1.5 (टीका-अभिषवार्थपाषाण)।

अद्र्यादान न. उपांशु-सवन पाषाण को लेने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 10.1.3।

अधईष पु. गाड़ी के नीचे रहने वाला (ध्रुव-धुरा) तै.सं. 6.3.3.4 (अक्षसङ्ग)।

अध:कुम्बा वि. (स्त्री.) पेंदी की ओर उन्मुख सघन अग्रभाग वाला, आप.श्रौ.सू. 11.7.5 पर टीका (जुऐं की टेक के लिए शम्या प्रयुक्त होती है)।

अध.कृष्णाजिनम् क्रि.वि. कृष्ण मृग के चर्म (खाल) के नीचे से, का.श्रौ.सू. 3.8.7 'रक्षसां भागोऽसि' भाग के साथ झाड़न समर्पित होता है।

अध:पिण्डम् क्रि.वि. निम्नाभिमुख पिण्ड के साथ, का.श्रौ.सू. 17.4.2।

अध:पुष्पी स्त्री. प्रायश्चित्त के प्रसङ्ग में जड़ के लिए उल्लिखित एक वनस्पति का नाम, मा.श्रौ.सू. 234.7।

अध:पुष्पिका स्त्री. अध:पुष्पिका, आप.गृ.सू. 6.14.14 पर टीका।

अध:प्रउगम् क्रि.वि. युग (जुआँ) के दण्ड के नीचे, का.श्रौ.सू. 8.4.28 (उपरव छिद्रों की अवस्थिति)।

अध:शया वि. (स्त्री.आ) भूमि पर पड़ी अथवा भूमि से स्पृष्ट समिधा (जिसे उख्याग्नि पर रखना होता है), का.श्रौ.सू. 16.4.39 (टीका-भूमिसल्ग्ना या सदा प्ररूढा भवति); भूमि पर शयन करने वाली, मा.श्रौ.सू. 197.13।

अध:शायिन् वि. (स्त्री.ई) भूमि पर शयन करने वाला, आश्व.गृ.सू. 1.8.10; 1.22.17; कौषी.गृ.सू. 1.10.15; हि.गृ.सू. 1.8.2; पार.गृ.सू. 2.5.10; 3.10.25; बौ.गृ.सू. 1.7.8; भा.गृ.सू. 1.19. (10.5); 1.10 (20.1); वारा.गृ.सू. 6.17।

अध:संवेशिन् वि. भूमि पर शयन करने वाला, कौषी.ब्रा. 25.15 (119.19); ला.श्रौ.सू. 10.18.11; द्रा.गृ.सू. 2.5.10।

अधस्पद वि. पैर के नीचे पड़ी हुई, पैर के नीचे रौंदी हुई, तै.सं. 5.1.2.6; तै.ब्रा. 3.8.4.2; श.ब्रा. 2.2.3.10; श.ब्रा. 12.1.2.9; आप.श्रौ.सू. 16.2.10; आप.श्रौ.सू. 20.3.13।

अधस्पदम् क्रि.वि. पैर के नीचे, अ.वे. 7.62 (64). 1; 11.1.12; तै.सं. 4.7.13.3; वा.सं. 15.51; बौ.श्रौ.सू. 1.191:7; यजमानस्याधस्पदं पांसूनुद्वपति (उपरवात्); इस प्रकार कि पैर के नीचे हो जाय, का.श्रौ.सू. 15.5.26; राजसूय।

अधस्पाद्य वि. पैर के नीचे स्थित, बौ.श्रौ.सू. 6.17 (सोम राजा)।

अधन्य वि. निर्धन, धनहीन, आश्व.गृ.सू. 1.5.6।

अधर वि. निम्न, नीचे स्थित, नीचे स्थान पर (नीची जगह पर) सव्याधरानुपस्थान्कृत्वा (उपविशेयु:), ला.श्रौ.सू. 1.11.22; दक्षिणानधरान्, बौ.पि. 2.9.1।

अधरमूलम् क्रि.वि. इस प्रकार कि प्रथम पङ्क्ति की जड़े अन्य दर्भ के पट्टियों के अग्रभाग के नीचे रहें, श.ब्रा. 1.3.3.10, का.श्रौ.सू. 2.7.25; देखें - पश्चादपवर्गम्।

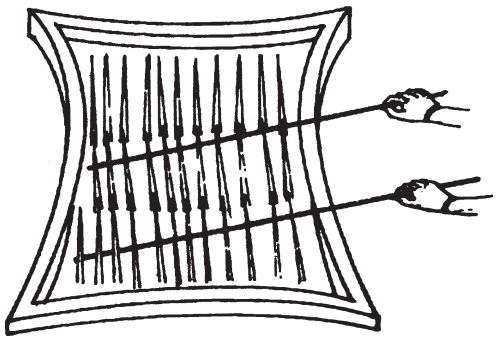

अधरमूलम्

अधरलोमन् वि. निम्नाभिमुख (नीचे की ओर) रोम वाला, बौ.पि. 3.3.1 (कृष्णाजिन)।

अधराक् क्रि.वि. नीचे की ओर, नीचे झुका हुआ, आप.श्रौ.सू. 12.9.8; मा.श्रौ.सू. 74.21; अभिषुतानंशून् प्रागपागधराक् होतृचमसे परिप्लावयति।

अधरारणि स्त्री. नीचे की अरणि (लकड़ी) जिससे अग्नि का मन्थन किया जाता है,श.ब्रा. 3.4.1.23; शां.श्रौ.सू. 10.1.16; का.श्रौ.सू. 5.1.24।

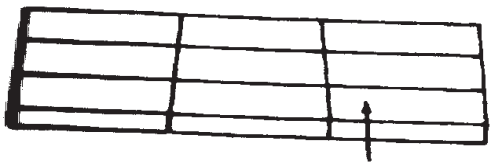

उत्तरारणि

अधरारणि

अधरोष्ठ पु. नीचे का ओठ, काठ.सं. 5.13.2; बौ.श्रौ.सू. 1.102 : 1; (होतुर्द्विरङ्गुलावनक्ति तदुत्तरोष्ठे प्रोहति वाचस्पतये त्वा-----अधरोष्ठे); कौषी. ब्रा. 3.7 (12.15); शां.श्रौ.सू. 1.10.2 (इडा)।

अधर्म पु. एक देवता का नाम (जिसके लिए एक आहुति अथवा बलि विहित है), तै.आ. 10.67.1; बौ.गृ.सू. 2.8.11; भा.गृ.सू. 3.13.1; मा.गृ.सू. 2.12.7।

अधर्मन् वि. जिसकी कोई विशेषता न हो, निदा.सू. 134.12 (8.2)।

अधर्माहृत वि. अधर्मपूर्वक अर्जित, आप.ध.सू. 1.8.11 (टीका); हि.श्रौ.सू. 26.7.47।

अध:शयन न. भूमि पर (नीचे) शयन करना, बौ.पि.मे. 1.12.10. देखें - अध:शया।

अध:शयिन् वि. भूमि पर सोने वाला, वैखा.श्रौ.सू. 2.10, देखें- अध:शायिन्।

अध:शय्या स्त्री. स्थालीपाक दिन से 3 रात्रि-पर्यन्त, नव-विवाहित दम्पती (पति-पत्नी) के लिए विहित भूमि पर शयन, मैथुन-संयम की एक अवधि, विस्तर भूमि पर रखना, शा.श्रौ.सू. 4.15.6; कौषी.गृ.सू. 2.7.21; आप.गृ.सू. 3.8.8।

अधाराग्रह पु. वह प्याला जिसमें (चलनी से) धारा रूप में प्रवाहित होते सोम रस को ग्रहण नहीं करते, आप.श्रौ.सू. 12.18.11, अर्थात् धारारूप में नहीं भरा जाता।

अधासनशयिन् वि. नीचे के विस्तर पर शयन करने वाला, आप.ध.सू. 1 (1). 2.21।

अधि क्रि.वि. के ऊपर, आप.श्रौ.सू. 24.13.13 (ओम् इति ऋचो अधि प्रणौति); आप.श्रौ.सू. 24.14.3; मा.श्रौ.सू. 2.2.1.1 (यत्र आज्येभ्यो अधि राजानम् उपचरेयु: ब्रह्मचर्यमधि) आप.श्रौ.सू. 20.11।

अधिकक्ष्य वि. मेखला से सज्जित, सन्नद्ध, बौ.श्रौ.सू. 2.73 : 5; जै.ब्रा. 1.38, अधिकक्ष्यो हस्ति वहति।

अधिकरण न. उन दर्भ-पत्तियों की पारिभाषिक संज्ञा जिन्हें इध्म के बन्धन रज्जु 'इध्म-सन्नहन' को तैयार करते समय एक रस्सी में बरने (वलयित करने के) के लिए प्रथमतया लिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 1.2-3; श्रौ.को. (अं.) 2 (1) 232. न. किसी कर्मकाण्डीय कृत्य का द्रव्य-आधार (आधारद्रव्य), किसी कृत्य का प्राथमिक द्रव्य, बौ.श्रौ.सू. 3.8.4; कौशि.सू. 8.5, सर्वत्राधिकरणं कर्तुर्दक्षिणा; 54.21; मा.गृ.सू. 2.17; 3 कर्तव्य, कार्य, स्थिति, शां.श्रौ.सू. 1.1.8, कर्तव्य, आचमन- प्रभृति येनाधिकरणेन संयुज्येत न तेन व्यावर्तेत। न तेन व्यवेयात्।

अधिकर्णी स्त्री. (षोडशी याग में सोम को खरीदने के लिए प्रयुक्त) झुके हुए कानों वाली गाय, जै.ब्रा. 1.199; मा.श्रौ.सू. 2.1.3.30; 7.2.1.30।

अधिकृत वि. (वह) जो कि यज्ञीय उपहार प्राप्त करने के लिए अधिकृत (नामित) हो, सहायक ऋत्विज्, का.श्रौ.सू. 5.5.33 (वरुणप्रघास); निषादस्थपतिर्गावेधुकेऽधिकृत:', का.श्रौ.सू. 1.1.12।

अधिकृतत्व न. उद्दिष्ट अथवा अभिप्रेत होने की स्थिति, अध्रिगुर्मन्त्रो भवति गव्याधिकृतत्वात्, बौ.ध.सू. 1.11.15।

अधिकृत्य (अधि + कृ + ल्यप्) पर रखकर; अग्ने देवयजनं वहेत्यन्यमधिकृत्योत्सृजति, मा.श्रौ.सू. 14.13।

अधिक्री क्रि. से क्रयण करना (खरीदना), कौशि.सू. 33.7।

अधिक्षिप् क्रि. (चाबुक को घोड़े) पर छोड़ना, 7.1.2.35, अर्वासि ..... इत्यश्वानधिक्षिपति।)।

अधिचर वि. अतिरिक्त (मास), जै.ब्रा. 1.132।

अधिदेवन न. अक्ष-भूमि, तै.सं. 3.4.8.2 (जुहोति); शुक्रस्य पुरोरुचा अधिदेवनं कुरुत: मै.सं. 4.4.6; मा.श्रौ.सू. 1.5.5.7. (अधिदेवने अहतं वास उदग्दिशम् आस्तीव्य); तिस्र:

पञ्चाशत: सौवर्णानक्षान् निवपत:, बौ.श्रौ.सू. 2.108:16; चि.भा.से : पाशे के खेल (अक्ष क्रीडा) के लिए स्थल के रूप में प्रयुक्त स्प्य से खोदी गयी एवं समतल की गई जगह, आप.श्रौ.सू. 5.19.2, (आधान); 17.18.16 (राज); सभ्य एवं आहवनीय के मध्य में स्थित, भा.श्रौ.सू. 5.12.4; आप.गृ.सू. 18.1; देखें पिसानी, वी, वाक् 2.P.1-25 इरिण के साथ।

अधिद्यो स्त्री. एक ईंट का नाम (अग्नि वेदि में चुनी हुई = लगी हुई); मै.सं. 2.8.14; मा.श्रौ.सू. 153.9।

अधिद्रवण न. 1. ('शुक्रामन्थी' प्यालों के अर्पण के समय अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थातृ द्वारा) उत्तरवेदिपर आरोहण (चढ़ना), बौ.श्रौ.सू. 14.20 उक्तं शुक्रामन्थिनोरधिद्रवणम्; 2. (मृत के लिए) लोष्टचिति के चयन के समय श्वेत-अश्व को छूने के समय पढ़े जाने वाले दो मन्त्र 'अपामिदं नयनम्----' एवं नमस्ते हरसे शोचिषे----' (तै.सं. 4.6.1.3) बौ.पि.मे. 1.14.16; श्रौ.को. (अं) 1. (2) 1098।

अधिनिर्णेजनीय पु. साफ करने के लिए [(एक टीला प्रवर्ग्य के प्रसङ्ग में (यज्ञगृह के बाहर) उत्तरपूर्व में निर्मित)]; मा.श्रौ.सू. 4.2.3।

अधिनिधानी स्त्री. छुरी को घास के सम्पर्क में लाते समय पढ़ी जाने वाली ऋचा 'या जाता ओषधय:', आप.श्रौ.सू. 1.5.5; परिस्तरणानां दर्भाणामभिनिधान्याच्छेदनी सन्नहनीत्येता आम्नाता भवन्ति, भा.श्रौ.सू. 1.5.1।

अधिनिधाय (अधि + नि + धा + ल्यप्) रखकर, तै.सं. 7.5.10.1; आप.श्रौ.सू. 8.6.23।

अधिपति पु. अधिपति (स्वामी)-संज्ञक प्याला (सोम याग में अर्पित किए जाने वाले प्रथम प्याले का विशेषण। सायण के अनुसार यह 'दधि-ग्रह' हैं, तै.सं. 4.7.7.2; महीधर के अनुसार यह प्रथमतम (ज्येष्ठतम) है अर्थात् पहला सोम का प्याला, अर्थात् 'अदाभ्य' वा.सं. 18.19 (भाष्य-अधिपतिशब्देन निग्राह्यो विवक्षित: तस्य च ज्येष्ठत्वादाधिपत्यम्)।

अधिपृञ्जन न. आग पर चढ़ाना, सेंकना (पकाना), बौ.श्रौ.सू. 3.279:9; अधिश्रयण, टी.बौ.श्रौ.सू. 26.6; 279.9।

अधिपृणक्ति (अधि + पृञ्ज् + तिप् + लट्) (मरुतों के लिए) पुरोडाश को सेंकने के लिए सप्त कपालों पर रखता है ('अथ अधिपृणक्ति मारुतं सप्तकपालम्'), बौ.श्रौ.सू. 5.1; 25.2।

अधिप्रधा स्त्री. मृत्यु के समय मरणासन्न व्यक्ति के दाहिने कान में गुनगुनाये जाने वाले साम का नाम, गौत.पि.मे. 1.1-4; श्रौ.को. (अं.) 1. (2) 1078।

अधिमन्त्रम् क्रि.वि. (ब्रह्मोद्य से सम्बद्ध) मन्त्रों पर आधृत होकर (उदाहरण के लिए वा.सं. 23.9-12 एवं 23.45, आदि), निदा.सू. 4.9:27. तु. ला.श्रौ.सू. 3.8.7-9।

अधिमन्थन अग्निहोत्र के पहले आहवनीय के बुझने की स्थिति में अग्नि-मन्थन करते समय उच्चार्य मन्त्र 'इषे रय्यै रमस्व.....' का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.174 (बौ.श्रौ.सू. 13.7; 27.11); न. अरणि के नीचे के भाग के रूप में प्रयुक्त लकड़ी का टुकड़ा (अधरारणि) और जिससे छेनी (छेदनी) को सम्पृक्त करते हैं। आप.श्रौ.सू. 7.3.3 (यह वृक्षशाखा से जब यूप को काटा जाता है, उस लकड़ी से प्राप्त 'शकल' नाम वाला फर्रा होता है); चि.भा.से., अग्नि-मन्थन (अग्नि को मथकर निकालने) का आधार, ऋ.वे. 3.29.1; वि: अग्नि-मन्थन के लिए अभिप्रेत, श.ब्रा. 3.4.1.20।

अधिमन्थनशकल न. अग्नि के मन्थन के लिए आधार रूप में रखा गया लकड़ी का टुकड़ा (फर्रा), भा.श्रौ.सू. 7.9.12; देखें काशिकर, B.D.C.R.T 38, 1978-79, पृ. 37-39।

अधियज्ञम् क्रि.वि. यज्ञ के अधिकार में, अथाधियज्ञम् श.ब्रा. 10.2.6.10; 14.6.7.18; कौषी.ब्रा. 52.15 (11.18); श.ब्रा. 10.2.6.10, अधिदैवमध्यात्मकधियज्ञमिति त्रयम्, शां.गृ.सू. 1.2.5; निरु. 11.4 (190.19)।

अधिरुह्य (अधि + रुह् + ल्यप्) ऊपर चढ़कर, पञ्चभिरग्निभिरधिरुह्य, आप.श्रौ.सू. 17.15.1 (अग्नि-वेदि); वि. (स्त्री.) चढ़ी जाने वाली, न दीक्षितेनासन्द्यधिरुह्या जै.ब्रा. 2.48।

अधिरुढाकर्ण वि. (आँखों को) आच्छादित किये हुए कानों वाला, 'त्वाष्ट्रोऽष्टाकपाल: शुण्ठोऽधिरुढाकर्णो वा दक्षिणा', मै.सं. 2.6.13; 3.13.5।

अधिरोहण न. चढ़ना, श.ब्रा. 7.3.2.17 (अग्निवेदि का प्रथम स्तर=तह)।

अधिवद् (अधि + वद्) बोलना, पाठ करना, इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यधिवदति यजुष्कृत्यै, तै.ब्रा. 3.8.3.2;

सूददोहसाधिवदति, श.ब्रा. 10.2.4.8; बौ.श्रौ.सू. 1.211 : 1; हि.श्रौ.सू. 1.4.1.26।

अधिवपन न. नीचे फेंकना, बिखेरना, बौ.श्रौ.सू. 1.11.3; (चावल का नीचे सिल पर) फैलाना या डालना, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.6; चरुपुरोडाशीयान् प्रागधिवपनात् विभजति, आप.श्रौ.सू. 14.3.20; देखें – श्रौ.प.नि. 15.117।

अधिवाक्या स्त्री. आगे की ओर किया जाने वाला पाठ, बौ.श्रौ.सू. 18.24।

अधिवाद पु. 1. किसी व्यक्ति अथवा वस्तु को सम्बोधित पवित्र मन्त्र 'पितरः पितामहा', अग्निवे.गृ.सू. 1.6.2 (36.21); साधिवादान् जुहोति, बौ.श्रौ.सू. 7.7; अधिवदेत् आग्राय-णोऽसि, इत्यादि। हि.श्रौ.सू. 14.1.26. 2. दोषारोपण, काठ.सं. 19.12।

अधिवास न. आच्छादन-पट (वस्त्र), मै.सं. 3.18.1; श.ब्रा. 13.5.2.2; 13.2.8.1 (अश्वमेध); बौ.गृ.सू. 1.3.20; 1.6.22; ऊपर का वस्त्र, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.10।

अधिवृक्षसूर्य 1. वह समय जब सूर्य की किरणें वृक्षों के शिखर पर पड़ती हैं, सायंकाल, वारा.श्रौ.सू. 3.2.2.35; 2. प्रातः एवं मध्याह्न भी, भा.श्रौ.सू. 1.7.1 पिण्डपितृ ० **सूर्यम्** क्रि.वि. उस समय जब कि सूर्य की किरणें वृक्षों के शिखर पर पड़ती हैं, वासि.ध.सू. 12.43।

अधिवृणक्ति (पुरोडाश को) ऊपर से सेंकता = पकाता है।

अधिवृणक्ति

अधिशय पु. (एकाधिशय एवं द्व्याधिशय स्तोत्र-पर्यायों में) स्तोम की इकाई में एक अतिरिक्त पद्य=ऋचा को जोड़ना, ला.श्रौ.सू. 6.5.18; 6.5.13; 6.5.23; 6.5.27; निदा.सू. 1.8.10।

अधिशाख्य वि. शीर्ष पर बहुत सी शाखाओं वाला (वृक्ष), मै.सं. 3.9.2; देखें मा.श्रौ.सू. (अनधिशाख्य); किन्तु सं.डि.डे : वृक्ष-वाला (शाब्दिक अर्थ-शाखा जैसी कुछ चीज) वृक्ष पर उगा हुआ (जिसे 'योनि' कहा गया है और यज्ञ के द्रव्य के रूप में निराकृत किया गया है = स्वीकृत नहीं है); देखें अधिशाख्य, जोशी एस.डी. जी.बी.अभिनन्दन ग्रन्थ; कुरुक्षेत्र, 1991, पृ. 25-30।

अधिशाययत् वि. (अधि + शी + णिच् + शतृ) (किसी वस्तु को) अनियत क्रम में लटकाए रखते हुए (जोड़ने या विकल्पित करने के द्वारा), निदा.सू. 5.10; तु. ला.श्रौ.सू. 4.7.11; दशरात्र एवं मानस आहुति के लिए देखें।

अधिश्रृत वि. पकाया हुआ, कौशि.सू. 23.8 (शष्कुलीः)।

अधिश्रय पु. (अग्नि पर) रखने का कृत्य, अनधिश्रयं दध्यग्निष्टे तेजो मा हार्षीरिति, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.4।

अधिश्रयण न. तप्त अथवा गर्म करने के लिए अग्नि इत्यादि पर रखना (चढ़ाना), बौ.श्रौ.सू. 3.20.4; गार्हपत्य, आप.श्रौ.सू. 2.6.4; भा.श्रौ.सू. 7.7.4; मा.श्रौ.सू. 97.13; का.श्रौ.सू. 6.2.5; कौशि.सू. 6.33; 'दक्षिणतो अधिश्रयणोद्वासने', का.श्रौ.सू. 25.8-9; 'दध्नः --- नाधिश्रयणप्रतिषेचने' वैखा.श्रौ. सू. 2.9; वैता.सू. 2.4; **काल** = अग्नि पर चढ़ाने का काल (समय), बौ.श्रौ.सू. 3.350:8; आप.श्रौ.सू. 8.13.10; हि.श्रौ.सू. 3.8.66 (385); - **मन्त्र** = अग्नि पर रखते समय बोला जाने वाला मन्त्र; बौ.श्रौ.सू. 3.11.13; भा.श्रौ.सू. 5.14.14; आप.श्रौ.सू. 8.13.19; हि.श्रौ.सू. 3.8.59; ० **वर्जम्** क्रि.वि. आग पर बिना चढ़ाए, दधनि क्रियते, आप.श्रौ.सू. 7.8.8।

अधिश्रयण

अधिश्रयणीय वि. एक विशिष्ट कृत्य के लिए भोजन पकाने के लिए दक्षिण वाले से ली गयी (अग्नि), का.श्रौ.सू. 1.1.21; सं.डि.डे; पु. अधिश्रयणीय (नामा वाला दिन) जिसमें (अग्नि पर) पात्र रखा जाना है, अधिश्रयणीये मांसप्रतिषेधः अधिश्रयितवै आग पर चढ़ाने के लिए, गर्म करने के लिए, श.ब्रा. 2.3.2.8; का.श्रौ.सू. 4.13.10।

अधिश्रित वि. गर्म करने के लिए आग पर रखा हुआ, अधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत्।

अधिश्रित्य (अधि + श्रि + ल्यप्) आग पर चढ़ाकार (रखकर), पका कर, का.श्रौ.सू. 4.1.12।

अधिषवण न. चर्म अथवा काष्ठीय (लकड़ी की) पाट जिससे सोम को निचोड़ा (छाना) जाता है, अ.वे. 5.20.10; जिह्वाधिषवणं ग्रावाणो दन्ताः, मै.सं. 3.8.8 = 4.5.9; अधिषवणं चर्माधिषवणे फलके, ऐत.ब्रा. 3.5.6 (887); भा.श्रौ.सू. 1.21.4; वानस्पत्यम्; वि. सोम रस को गाड़ने (सवन) के लिए प्रयुक्त होने के लिए अभिप्रेत, का.श्रौ.सू. 8.5.22।

अधिषवणचर्मफलके न. (द्वि.) सोम रस निकालने के लिए प्रयुक्त चर्म एवं काष्ठ के फलक, आप.श्रौ.सू. 13.19.6।

अधिषवणचर्मन् न. सवन (प्रस्तर को पकड़ने के लिए गोलाकार काटा हुआ एवं चार मोड़ो (पुट) वाला (लाल बैल के) चर्म का टुकड़ा; इस चर्म पर सोम के डण्ठलों को मापा जाता है, और इसे फलकों के ऊपर दबाने एवं रस के निस्सारण के लिए रख दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.2.14।

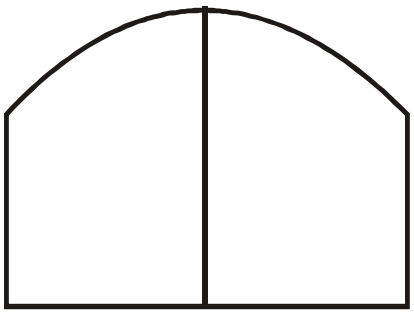

अधिषवण-फलक

अधिषवणफलक न. (द्वि.) सोम रस निकालने के लिए प्रयुक्त सवन (दबाने वाले) - फलक। वे अन्तःप्रकोष्ठीय लम्बाई वाले एवं पीछे आगे से कुछ चौड़े होते हैं। वे इस प्रकार रखे जाते हैं कि एक दक्षिण रहे ताकि वे आपस में पीछे की तरफ सटे रहें (सम्बद्धान्ते, काण्व पा.) अथवा उन दोनों के बीच दो इन्च का अन्तराल (फासला) होता है; अन्तराल को मिट्टी से भर देते हैं, श.ब्रा. 3.5.4.22; 'अवभृथ' के दौरान इनको पानी में फेंक दिया जाता है, काण्वसं. 29.3; मा.श्रौ.सू. 2.2.3.35; 2.2.3.9; 2.5.4.23; 7.1.1.30; 9.3.2.25; (समोपवृक्ष्णे पश्चात्पुरस्तात्प्रभाधिकारे बाहुभागे), दोनों काष्ठीय सवन-फलक या तो उदुम्बर, कार्श्मर्य अथवा पलाश की लकड़ी के बने होते हैं, जिनके अग्रभाग चक्र के घेरे के समान (प्रधिमुख) गोल होते हैं और पृष्ठ पर सीधे कटे होते हैं; (एकाह से भिन्न सोम में) खूंटी के माध्यम से उनकी पूँछ बत्तख जैसी होती है, और उन्हें उपरवस् के ऊपर रख दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 11.13.1-2; बौ.श्रौ.सू. 6.28. इन फलकों पर अधिषवण चर्म को रख दिया जाता है, और रस निकालने के लिए सोम के डण्ठलों को पीसा जाता है, का.श्रौ.सू. 8.5.25; 'अभिषवण' भी देखें।

अधिष्ठाप्य (अधि + स्था + णिच् + ल्यप्) (अश्व को) अश्व को चला कर, का.श्रौ.सू. 4.9.11 (आधान) सीषेषूपरि स्त्रीमधिष्ठाप्य तेनोदपात्रेणाप्लावयति, कौशि.सू. 34.5।

अधिष्ण्य वि. बगल की वेदि में स्थित अग्नि से भिन्न अग्नि कौषी.ब्रा. 17.7; ला.श्रौ.सू. 3.3.17 (वहति ऋत्विज्) जिसके लिए बगल की वेदि नियत नहीं की जाती, आश्व.श्रौ.सू. 5.3.29; शां.श्रौ.सू. 6.13.7; मा.श्रौ.सू. 141.9; बौ.श्रौ.सू. 1.217:7।

अधिसर्पण न. एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाना, शां.श्रौ.सू. 17.13.12।

अधिहृत्य (अधि + हृ + ल्यप्) (उपभृत् के) ऊपर (उसी प्रकार से) पीछे ले जाकर, प्राचीमेव स्रुचमुपावहृत्य हुत्वा तेनैवाधिहृत्य उपभृत्यभिनिदधाति, श.ब्रा. 11.4.2.15।

अधीतरस वि. (न धीतः (=धेट् + क्त) रसः यस्य) जिसका रस अभी चूसा न गया हो, ऐ.ब्रा. 28.4 (711)।

अधीतयजुस् न. दीक्षा में दो मृगचर्मों पर आरोहण के कृत्य के पूर्व अर्पित की जाने वाली पञ्च घृत-आहुतियों का नाम; चार आहुतियाँ चम्मच से 'आकूत्यै प्रयुजे---' के साथ दी जाती हैं एवं पाँचवी कलछी से, मा.श्रौ.सू. 2.12.22।

अधीतवेद वि. जिसनें वैदिक पाठ्यों को पढ़ा हो अथवा जिसने (वैदिक पाठ्यों का) पाठ किया हो, श.ब्रा. 14.6.11.1।

अधीवासस् न. आच्छादन-पट, ऊपरी वस्त्र, मा.श्रौ.सू. 160.18; वारा.श्रौ.सू. 3.2.5.16; क्रि.वि. वस्त्र के ऊपर 'मुञ्जयोक्त्रेण त्रिवृता परिहरति अधीवासो अदित्यै रास्नासीति, का.श्रौ.सू. 2.7.1 (टीका-वाससो बहिः); राज. में प्रयुक्त कालीन (विस्तारिका) का एक प्रकार, बौ.श्रौ.सू. 12.14; अश्वमेध के अश्व के नीचे बिछाया जाता है, का.श्रौ.सू. 20.6.10।

अधीतयजूंषि न. (अञ्जन के अनन्तर) आकूत्यै प्रयुजे---- के साथ दी जाने वाली छः आहुतियों विचारित यजुष् के वर्ग का नाम जिसमें छठवीं पूर्णाहुति होती है (दीक्षा) मा.श्रौ.सू. 2.1.2.1 (प्रथम चार चम्मच से एवं अन्तिम दो कलछी से)।

अधीयत् वि. पढ़ता हुआ, नियमित पाठ करता हुआ (करने वाला) ऐ.ब्रा. 13.11।

अधीलोधकर्णी वि. (स्त्री.) कान पर घाव के चिह्न वाली, आप.श्रौ.सू. 10.22.6 (कर्णस्योपरि विक्षितं यस्याः-रु); सं.डि.डे. आँखों तक फैले हुए (प्ररूढ) कानों वाली (किन्तु, कीथ 'लाल अग्रभाग वाले कानों वाली'), तै.सं. 5.6.16.1; साय. अक्षोपरिप्ररूढकर्णः, (तया षोडषिनः सोमं क्रीणाति), भा.श्रौ.सू. 10.14.19।

अक्षोऽक्षम् क्रि.वि. अक्ष (धुरा) के नीचे या अधोभाग में 'उत्तस्य हविर्धानस्याधोऽक्षं सर्पन्ति, कौषी.ब्रा. 27.6; शां.श्रौ.सू. 10.21.12; का.श्रौ.सू. 12.4.13; द्रोणकलशं----उपकर्षन्ति, हि.श्रौ.सू. 8.3.8; प्रयच्छति, जै.श्रौ.सू. 8।

अधोऽक्षेण क्रि.वि. अक्ष के नीचे, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.25 (सर्पन्ति)।

अधोऽधोऽक्षम् क्रि.वि. अक्ष के नीचे और नीचे, पञ्च.ब्रा. 6.5.14, द्रोणकलश।

अधोदूरम् क्रि.वि. (यूप के मध्य बिन्दु से) बहुत नीचे एवं दूर, आप.श्रौ.सू. 7.11.7, (परिव्ययण) तु. उपरिदूरम्।

अधोऽधस् क्रि.वि. अक्ष के नीचे, सर्पन्ति, श.ब्रा. 4.6.9.13।

अधोनाभि वि. नाभि से ऊँचा नहीं (पात्नीवतं मिनोति, अचषालम्), मा.श्रौ.सू. 5.2.12.36; हि.श्रौ.सू. 9.8.13; नाभि के नीचे लटकने वाला; अपनी गर्दन के नीचे (चारों ओर) यज्ञीय रज्जु को पहनने की विधि; इस तरीके से अन्त्येष्टि-जुलूस में सम्बन्धियों द्वारा पहना जाता है, आश्व.गृ.सू. 4.2.9।

अधोनाभिसम्मित वि. (पात्नीवत यूप) जो नाभि के नीचे के माप का होता है, आप.श्रौ.सू. 14.5.9।

अधोनिवीत वि. शरीर के केवल निम्नार्ध में कपड़े को पहने हुए (पहनने वाला); शरीर के नीचे के आधे भाग में जनेऊ पहने हुए (देवस्वामी-आश्व.गृ.सू. 4.2.9 पर)।

अधोराम वि. शरीर के नीचे वाले भाग में श्वेत अथवा काले कपड़े वाला, मै.सं. 4.7.6; तै.सं. 5.5.22.1।

अध्यधिवेदि क्रि.वि. वेदि के ऊपर, का.श्रौ.सू. 2.6.25 (प्रोक्षणी जल)।

अध्यधिश्रित वि. जलती आग पर रखा हुआ, आप.श्रौ.सू. 2.2.16।

अध्यन्ववसरण न. (स्वरित) का अनुगमन करने वाला उच्च (अर्थात् उदात्त) 'ऋच एव तेषामध्यन्ववसरणं भवति', निदा.सू. 19.16 (1.12)।

अध्ययनविधि पु. वेदाध्ययन (वेदपाठ) की विधि (तरीका) अथवा कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, वेदस्याध्ययनविधिं वक्ष्यामः, कौशि.सू. 141.1।

अध्यर्धकारम् क्रि.वि. डेढ़ ऋचा को एक साँस में पढ़ना, आप.श्रौ.सू. 1.2.19; अतिरिक्त अर्ध को लेकर; डेढ़। 'होता द्वारा अपोनप्त्रीय' ऋचाओं (ऋ.वे. 10.30.1-9,11) के पाठ का तरीका; प्रथम पद्य पूर्ण रूप से एवं ओम् से समाप्त होता है, और बिना साँस लिए दूसरे पद्य का प्रथमार्ध, विराम; द्वितीयार्ध 'ओम्' से पर्यवसित, एवं पुनः बिना साँस लिए सम्पूर्ण तीसरा पद्य ओम् से पर्यवसित, आश्व.श्रौ.सू. 5.1.5; 1.2.19; देखें श्रौ.प.नि. 23-188।

अध्यर्धशीर्षम् क्रि.वि. सिर के आधे भाग पर, बौ.श्रौ.सू. 1.115 :17।

अध्यर्धेड वि. डेढ़ इडा-निधान को लेकर साम अथवा गायन, इस प्रकार 'इड-इड्' इस रूप में गाया जाता है, पञ्च.ब्रा. 10.11.1, अध्यर्धेडं वा सोमसाम, आर्षे.ब्रा. 5.1.4; ला.श्रौ.सू. 3.6.22।

अध्यवदानीय वि. (टीका-सहावदानीय) काटे जाने वाले के साथ, बौ.श्रौ.सू., बौ.श्रौ.सू. 10.59 : 62.1; 17.50:336.9; 17.62:342.6; 22.12:135.1.2।

अध्यवसान न. (देवयजन देश का) अधिग्रहण, भार.श्रौ.सू. 10.13.5; 'प्राचीनवंश' नामक शाला में यजमान एवं

ऋत्विजों का धार्मिक विधि से प्रवेश एवं स्थानग्रहण, शाब्दि. चुने हुए स्थान पर छुड़ाने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 10.3.3 (सोम)।

अध्यस्य (अधि + अस् + ल्यप्) रखकर, हि.श्रौ.सू. 17.6.31 (तार्प्य)।

अध्याय पु. गुरु के पश्चात् (वैदिक पाठ्य) की पुनरावृत्ति अथवा पाठ, ऐत.आ. 5.3.3.26; आश्व.श्रौ.सू. 8.14.9; वैदिक पाठ्य 'स्वाध्यायो अध्येतव्य:', श.ब्रा. 11.5.6.3; अन्वाध्यायम् अपवादनिशामनम्, ला.श्रौ.सू. 6.9.5; नमस्ते इत्यध्यायेन, का.श्रौ.सू. 18.1.1; निदा.सू. 38.7 जो वाचन अथवा आवृत्ति करता है 'गोमधुपर्कार्हो वेदाध्याय:', हि.श्रौ.सू. 27.1.107।

अध्यारूढकर्ण वि. अत्यधिक बढ़े हुए कान वाला (पशु) मै.सं. 2.6.13; 3.13.5।

अध्यारोह पु. चढ़ना (अर्थात् किसी विशिष्ट कृत्य का वैशिष्ट्य अथवा आनुरूप्य प्राप्त करना), गो.ब्रा. 1.4.21 (प्रायणी-यातिरात्रेण उदयनीयातिरात्रमध्यारोहन्ति)।

अध्यालोहकर्ण वि. आँखों तक फैले हुए (बढ़े हुए) कानों वाला, वा.सं. 24.4; तु. अधीलोधकर्णी।

अध्यास पु. एक पद्य में पूर्ववर्ती पद के स्थान पर पद का विकल्पन, आश्व.श्रौ.सू. 8.8.6 एवं टीका; 'महानाम्नी' में एक विशिष्ट अभिव्यक्ति का नाम (टीका-महानाम्नीषु अध्यासेषु पदेषु षष्ठं षष्ठम् अक्षरं प्रतिहारो भवति), ला.श्रौ.सू. 7.5.6; अध्यासो-----अष्टाक्षर:, निदा.सू. 3.13।

अध्यास्थातृ पु. (वह अर्थात् धावक) जो रथ पर चढ़ता है, आप.श्रौ.सू. 22.12.8।

अध्यास्या स्त्री. योजनीय (ऋचा या शब्द) 'वासिष्ठाम् अध्यास्यायाम्', ला.श्रौ.सू. 3.6.29 = द्रा.श्रौ.सू. 9.3.9; निदा.सू. 6.3; ला.श्रौ.सू. 6.3.20; 7.5.9।

अध्याहित वि. रखा गया, श.ब्रा. 7.4.1.8 (यथा ह वा इदं पुष्करपर्णमप्स्वध्याहिता योनि:)।

अध्युद्धि स्त्री. आलभ्य पशु की जननेन्द्रिय एवं अण्डकोश, देखें-काशीकर, श्रौत-धर्माची स्वरूप-चिकित्सा (परिशिष्ट 1); थन के ऊपर का मांस; आप.श्रौ.सू. 7.26.7 (गार्बे द्वारा शुद्धीकृत-अध्यूध्नी); होत्रे हरति, हि.श्रौ.सू. 4.5.16; 7.22.6 (धू. अध्यूधनि ऊधसो मांसम्); भा.श्रौ.सू. 7.17.6; 7.19.11।

अध्युद्यम्य (अधि + उद् + यम् + ल्यप्) उठाकर, बौ.पि. 1.17.4; अग्नि.गृ.सू. 3.8.1; किन्तु सं.डि.डे. : रखकर

अध्युन्दन न. (किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के ऊपर) जल छिड़कने का कृत्य, वारा.श्रौ.सू. 3.2.1.17।

अध्युप्त वि. छितराया हुआ, फैलाया हुआ, बौ.श्रौ.सू. 3.139: 13।

अध्युप्य (अधि + वप् + ल्यप्) छितराकर, फैला कर, अध्युप्य दक्षिणार्धे गार्हपत्यस्याष्टौ कपालानि उपदधाति, मा.श्रौ.सू. 41.11।

अध्युह्य (अधि + वह् + ल्यप्) (जुए अथवा कलछी) पर रखकर, तद्यत्पूर्वमाघारमाघारयत्यध्युह्य हि धुरं युञ्जन्ति', श.ब्रा. 1.4.4.13, 'उत्तरां जुहूमध्युह्य प्राचीमवहृत्य जुहोति, का.श्रौ.सू. 3.2.25।

अध्यूढा वि. (स्त्री.) शीर्ष अथवा ऊपर रखी हुई, बढ़ाई हुई, ऐत.ब्रा. 14.3 [भाष्य-अधिकेनावस्थापिता; अध्यूढमन्येषु स्तोत्रेषु यज्ञायज्ञीयम्] जै.ब्रा. 1.254।

अध्यूधस् वि. जिसे थन के ऊपर (स्थापित किया गया है)। अवद्यति अध्यूधस: श्रोणे:, श.ब्रा. (को.) 4.8.3.11

अध्यूध्नी स्त्री. 1. वध्य (आलभ्य) के थन के ऊपर का नलिका कार पात्र आप.श्रौ.सू. 7.22.6; (पशु) = अध्युद्धि, भा.श्रौ.सू. 7.19.11; दक्षिणायै श्रोणीम् अद्ध्यूध्नीं कुरुतात्, बौ.श्रौ.सू. 1.121:7; बौ.श्रौ.सू. 1.122 : 20; भा.श्रौ.सू. 7.19.11.2. छोटी आँत, मा.श्रौ.सू. 1.8.5.35; 5.2.12.31।

अध्यूहत् वि. ऊपर रखते हुए, वैखा.श्रौ.सू. 15.14 (द्रोणकलश)।

अध्यूह्य (अधि + ऊह् + ल्यप्) ऊपर रखकर, जै.ब्रा. 1.79; कपालेषु अङ्गारान्, आप.श्रौ.सू. 1.23.6।

अध्येय वि. पठनीय, ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म: षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति, महा.भा. 1.1.19 (1.1 पर)।

अध्येष्यमाण वि. (अधि + इ + स्य + शानच्, तु.लृट: सद्वा, पा. 3.3.14) जो (वैदिक पाठ्यों) का अध्ययन करने जा रहा है अथवा करने वाला है, श.ब्रा. 11.4.1.9; भा.श्रौ.सू. 11.22.15; आप.श्रौ.सू. 15.21.10; मा.श्रौ.सू. 114.8; हि.श्रौ.सू. 26.4.20; आश्व.गृ.सू. 3.5.10।

अध्यौदुम्बरि क्रि.वि. औदुम्बरी स्तम्भ के पास, ला.श्रौ.सू. 2.4.9 (ग्लायेच्चेत्-----)।

अधिगु वि. अप्रतिरुद्ध तरीके से चलने वाला, ऋ.वे. 1.61.1; इत्यादि; पु. वह जिसकी अश्विनों और इन्द्र ने रक्षा की थी, ऋ.वे. 1.112.20; (बहु. वंशनाम, ऋ.वे. 8.22.11); मूलतः दिव्य शमितृ को सम्बोधित मन्त्र का नाम 'दैव्याः---', कौषी.ब्रा. 10.4. पशु-याग में वध्य पशु के चारों ओर आग घुमाने (पर्यग्निकरण) के बाद मैत्रावरुण के द्वारा दिये गये गौण पुकार पर होता नाम के ऋत्विज् द्वारा पढ़ा जाने वाला मन्त्र (विधि) शां.श्रौ.सू. 5.12.20. मन्त्र का पर्यवसान (अन्त) तीन बार पढ़े गए 'अधिगो शमीध्वं सुशमि शमीध्वम् अधिगो' (मन्त्र) से होता है, श्रौ.को. (अं) II.348. (सं.) 1.575; —दैव्याः शमितार आरभध्वमुत मनुष्या उपनयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधम्! प्रास्मा अग्निं भरत स्तुणीत बर्हिरन्वेनं माता मन्यतामुत पिता अनुभ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। उदीचीनाम् अस्य पदो निदधात् सूर्य चक्षुर्गमयताद्वातं प्राणमन्वसृजतादन्तरिक्षममुं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरम्! एकधास्य त्वचमाच्छ्यतात्पुरा नाभ्या अपिशसो वपामुत्खिदतात्! अन्तरेवोष्माणं वारयध्वात्! श्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसा बाहूशला दोषणी कश्यपेवांसाच्छिद्रे श्रोणी कवषोरू स्रेकपर्णाष्ठीवन्ता षड्विंशतिरस्य वंश्यस्ता अनुष्ठ्योच्च्यावयतात् गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात्! उबध्यगोहं पार्थिवं खनतात्! अस्रानक्षः संसृजतात्! वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरुकं मन्यमाना नेद्वेस्तोके तनये रविता रवच्छमितारः! अधिगो शमीध्वं सुशमि शमीध्वमधिगो! (अधिगुश्चापापश्च! उभौ देवानां शमितारौ ताविमं पशुं श्रपयतां प्रविद्वांसो! यथा-यथास्य श्रपणं तथा तथा) आश्व.श्रौ.सू. 3.2.11-30. यह बताया गया है कि विभिन्न कृत्यों में सम्बद्ध अङ्गों एवं बध्यों की संख्या के अनुसार इस मन्त्र में परिवर्तन (ऊह) किस प्रकार से प्रभावित होते हैं; 3.3.2 और 4 विधान करता है 'शमितारः, अपाप' एवं 'अस्रारक्षः संसृजतात्' शब्द का पाठ उपांशुरूप से (जैसे कि सुनाई न दे) होता है और वाक्यांश 'अधिगो----अपाप' की तीन बार आवृत्ति होती है। अधिगु को यज्ञ में वध्य के मारण का अभिमानी देवता भी माना गया है (टीका-आश्व.श्रौ.सू. 3.2.11 पर); शां.श्रौ.सू. प्रथम नौ वाक्यों के लिए प्रत्येक के अन्त में साँस लेने के लिए इसमें 9 विरामों का सन्दर्भ देता है। निरुक्त 5.11. इसे मन्त्र का वाचक समझता है (अधिगुर्मन्त्रो भवति)। मी.सू. 9.1.45-59 अतिरात्र याग में सरस्वती के लिए मेष के लिए इस विधि की अनुज्ञा नहीं देता, देखें- Wust W (Ed.) P.H.M.A, हेप्ट 1,2,3,4; 1955, 56, 57, 1958, पृ. 156।

अधिगुप्रैष पु. अधिगु मन्त्र को पढ़ने के लिए आदेश अथवा निर्देश, बौ.श्रौ.सू. 3.269:14।

अध्वन् पु. 1. मार्ग, श.ब्रा. 5.2.1.11; 2. दूरी, आप.श्रौ.सू. 11.5.4; 21.19.17।

अध्वपति पु. मार्गों का स्वामी, वा.सं. 5.33; का.श्रौ.सू. 9.8.22; पञ्च.ब्रा. 1.4.1।

अध्वमन्त्र पु. मार्ग को सन्दर्भित मन्त्र, मार्ग का मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 8.11.8।

अध्वर न. अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता द्वारा रखने के अनन्तर [अर्थात् दो जलते हुए ईंधन के गट्ठरों (जैसे आहवनीय) की अग्नियों को तत्तत्स्थानों पर वरुण प्रघास पर्व की महावेदि में आगे ले जाना एवं रखना] दी जाने वाली (चार) घृताहुति(यों) का नाम। अध्वर्यु उनको 'अग्निर्यज्ञम्', इत्यादि के साथ अर्पित करता है; प्रतिप्रस्थाता अमन्त्रक (बिना मन्त्रों के), श्रौ.को. (अं) I.ii.680 (बौ.श्रौ.सू. 25.12); 790; पु. कर्मकाण्डीय कृत्य, यज्ञ (देवों अथवा स्वर्ग के मार्ग अथवा साधन के रूप में माने गये हैं, विस्तृत सोम एवं अन्य याग ऋग्वेदोत्तर एवं अथर्व-वेद-संहितोत्तर काल में सत्ता को प्राप्त हुए); इति नु हविर्यज्ञेऽथ सौम्येऽध्वरे, श.ब्रा. 1.5.2.11; अतोऽन्यः (यूपः) सौम्यस्याध्वरस्य, आप.श्रौ.सू. 7.2.17; ला.श्रौ.सू. 10.12.12; अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति; ऋ.वे. 1.1.4 = तै.सं. 4.1.11.1 = मै. सं. 4.10.3 = काठ.सं. 2.14; वि. अहानिकारक, हिंसारहित, [सौम्य अध्वर में पशु-अर्पण को सोम याग में मिला दिया गया है, आप.श्रौ.सू. 2.7.17; देखें- बी.आर.सक्सेना अभि.ग्र., राम गोपाल, वाल्यू. 1979-83, पृ. 179-123, महेन्दले. ए.ओ.आर.एम., SJ वाल्यू. 1975, पृ. 484-91 (नौका-यज्ञ); गोंड.जे., VIJ 3(2) 1965, पृ. 163-77।

अध्वरकल्प पु. सोम याग का कर्मकाण्ड, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.32; 33।

अध्वरकल्पा स्त्री. प्रत्यर्पण (प्रत्याहुति) के रूप में अनुष्ठित होने वाली वैकल्पिक इष्टि का नाम, यदि प्रतिद्वन्द्वी यज्ञ कर रहा हो। (अष्टा-कपाल) पुरोडाश अग्नि-विष्णु के लिए; घृत सरस्वती के लिए एवं पकाया हुआ चावल

बृहस्पति के लिए प्रातः सवन के लिए। क्रमशः माध्यन्दिन एवं सायं सवन में कपालों की संख्या बढ़ जाती है। 11 एवं 12 अग्नि-विष्णु के लिए। प्रतिद्वद्वी की वसा के स्थान पर वह मित्रा-वरुण के लिए एक-कपाल पुरोडाश प्रदान करे, श्रौ.को. (अं.) I.ii.613-14, 952; बौ.श्रौ.सू. 13.16; तु. भ्रातृव्येष्टि श्रौ.को. (अं.) I.ii. 548।

अध्वरकृत् वि. जो (सोम) याग का अनुष्ठान करता है अथवा अनुष्ठान में योगदान देता है, मै.सं. 1.33; वा.सं. 1.24।

अध्वरगा स्त्री. महानाम्नी ऋचाओं के चार नामों में एक; सिमा वा मट्ण्या वा अधरमा (गा)वा, आर्षे.ब्रा. 6(4) 2.15 (साय. एताभिरिन्द्रोऽध्वरमगात्)।

अध्वरत्व न. अहिंस्य (अपराजेय) होने की स्थिति, तै.सं. 3.2.2.3; मै.सं. 3.6.10।

अध्वरदीक्षणीया स्त्री. सोम-याग से सम्बद्ध दीक्षा के लिए इष्टि, का.श्रौ.सू. 20.4.2; 20.4.5।

अध्वरदीक्षा स्त्री. सोम-याग में दीक्षा (संस्कार) का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 3.324:3।

— प्रायश्चित्त, अध्वरदीक्षा के लिए प्रायश्चित्तीय कृत्य (प्रायश्चित्त का अनुष्ठान), बौ.श्रौ.सू. 3.358:1।

— दीक्षाहुति, (अध्वर-दीक्षाहुति) स्त्री. सोम-याग में दीक्षा-संस्कार (कृत्य) में दी जाने वाली आहुति बौ.श्रौ.सू. 2.217.17।

अध्वरधिष्णिय पु. सोम-याग में सदस्-मण्डप में बगल की वेदि के रूप में रखी गई अँगीठी अथवा मिट्टी का ढूह, बौ.श्रौ.सू. 2.57:11, श.ब्रा. 9.4.3.5।

अध्वरप्रायश्चित्ति स्त्री. सोम-याग की त्रुटियों के लिए विहित प्रायश्चित्त से सम्बद्ध आहुति (जिसका नाम है 'परमेष्ठ्यादिकालाहुति'), का.श्रौ.सू. 16.7.7; 27.6.1; श.ब्रा. 6.8.2.11।

अध्वराहुति स्त्री. (बहु.) यज्ञ में (दी जाने वाली) आहुतियाँ, बौ.श्रौ.सू. 1.111 : 14 = 2.54 : 17।

अध्वरीयत् (अध्वर + क्यच् + शतृ) वि. यज्ञ में पुरोहित के रूप में कार्य करते हुए; अम्बयो यन्त्यध्वाभिर्जामयो अध्वरीयताम्, ऋ.वे. 1.23.16; ऐ.ब्रा. 8.2 (223); ऋ.वे. 4.9.5; 6.2.10. 'देवो देवेभ्यो अध्वरीयन्तो अस्थुः', काठ.सं. 18.3; 21.8।

अध्वरेष्ठा वि. यज्ञ में स्थित अथवा लगा हुआ, ऋ.वे. 10.77.7।

अध्वर्यु पु. 1. ऋत्विज्; (त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः)! विश्वा विद्वान्, ऋ.वे. 1.94.6; 2. यज्ञ में पौरोहित्य करने वाला एवं यजुर्वेद से सम्बद्ध कार्यसम्पादक ऋत्विज्, तै.सं. 2.6.5.4; 3.1.10.2; मै.सं. 3.8.7; प्रसिद्धमेवाध्वर्युदक्षिणेन प्रपद्यते प्रसिद्धं प्रतिप्रस्थाता उत्तरेण, तै.सं. 6.5.3.3; 3. बहु. यजुर्वेद से सम्बद्ध ऋत्विग्जन (अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थातृ, नेष्टृ एवं उन्नेतृ), तै.सं. 5.2.12.4; यदि त्वध्यर्यवः आज्येन समाप्नुयुस्तथैव होता कुर्यात्, आश्व.श्रौ.सू. 6.14.12; अध्वर्यवः----आजिं जापयेयुः, आश्व.श्रौ.सू. 9.9.8; औदुम्बर्यासन्दि----! तां सर्वेऽध्वर्यवो अग्रेण प्राग्वंशम्----उद्गृह्णन्ति, आप.श्रौ.सू. 10.20.7; दिग्भ्यो महाभिषवमभिषुण्वन्ति, आप.श्रौ.सू. 12.12.1; 4. (द्वि.) अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थातृ अथवा कभी-कभी अग्नीध्र भी, मै.सं.-4.6.8; घर्मान् सम्भरतः, ऐ.ब्रा. 4.1(82); उभावध्वर्यू अच्छावाकाय प्रति गृणन्ति, पञ्च.ब्रा. 18.5.14; आप.श्रौ.सू. 18.9.10, का.श्रौ.सू. 15.8.25; यज्ञीय दक्षिणा; दोनों के लिए शीशे (हिरण्मयौ प्राकाशौ अध्वर्युभ्याम्); अध्वर्यु-भ्यामिति द्वितीयोऽग्रीत्, टीका-का.श्रौ.सू. 15.9.8; 5. सामान्यतया यज्ञीय ऋत्विज्, आप.श्रौ.सू. 20.10.5 (अन्नहोमान् जुहोति) कोई पुरोहित (कुल.....) वैखा.गृ.सू. 5.1; सोम-याग में पौरोहित्य का कार्य निर्वहण करने वाले ऋत्विज् का नाम, अन्यों के मध्य सर्वप्रथम यजमान द्वारा उसी का वरण होता है। इसकी (इस शब्द की) अनेक व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं। 'यास्क-अध्वर्युरध्वरं युनक्ति अध्वरस्य नेता, अध्वरं कामयते इति वा अपि वा अधीयाने युरुपबन्धः' नि.। वह जो अध्वर को योजित करता है, अर्थात अनुष्ठित करता है अथवा जो यज्ञ का नेता है अथवा हिंसा का उन्मूलन (अहिंसा) की कामना करता है— अथवा उसको अधीति में 'यु' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न करना चाहिए। अन्य इससे सहमत नहीं हैं। वे इसे 'क्याच्छदसि परे', इस सूत्र की सहायता से अध्वर + क्यच् + उ एवं 'अ'लोपी (अ जिसका लुप्त हो गया है) 'अध्वर' शब्द से 'कव्यध्वरः' पा. 7.4.39 इस सूत्र से निष्पन्न करते हैं, इत्यादि। तीसरे मन्तव्यानुसार यह शब्द निष्पन्न होने पर 'मृगव्यादि-गण' में परिगणित किया गया है। यह-'अध्वराणि याति इति कुप्रत्ययान्तः' 'अ' का निपातनात् लोप हुआ है। चरणव्यूह इसे इस प्रकार परिभाषित करता है 'मन्त्र-ब्रह्मणाम्

अङ्गानां यजुषाम् ऋचाम्; षण्णां यः प्रविभागज्ञः सोऽध्वर्युः'। अध्वर्यव---इन्द्राय सोमं जुहोत, ऋ.वे. 2.14.9:, मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता ब्राह्मणो जातवेदाः। मित्रो अध्वर्युरिमूषिरो दमूनाः, ऋ.वे. 3.5.4 अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिः ऋ.वे. 18.4.15; स्तोत्रमुपाकुर्यात्, तै.सं. 3.1.2.4; अध्वर्युर्वा ऋत्विजां प्रथमो युज्यते, तै.सं. 3.1.10.2; प्रतिगरोऽध्वर्यूणाम्, तै.सं. 3.2.9.6; अध्वर्युराग्रयणं गृहीत्वा यज्ञमारम्य वाचं विसृजते, तै.सं. 6.4.11.3; प्रसिद्धमेवाध्वर्युर्दक्षिणेन प्रपद्यते प्रसिद्धं प्रतिप्रस्थाता उत्तरेण, तै.सं. 6.5.3.3; प्राचीनं वै धिष्णेभ्योऽध्वर्योर्लोकः, मै.सं. 3.8.10; एतद्वाध्वर्योः स्वं यदाश्रावयति, मै.सं. 4.5.6; द्विदेवत्यान् हुत्वा क्षिप्रं होतारमभ्याद्रवति, मै.सं. 4.6.1; अन्तराहवनीयं च हविर्धानं च अध्वर्योर्लोकः, मै.सं. 4.6.5; औलूखलस्योद्वदितोरध्वर्युश्च यजमानश्च वाचं यच्छेताम्, काठ.सं. 32.7; अश्विनावध्वर्यू, ऐ.ब्रा. 4.1 (82); मेध्यौ निहन्याताम्, ऐ.ब्रा. 5.3 (129); शंसाऽमोदैवोमित्यध्वर्युः प्रतिगृणाति पञ्चाक्षरेण---प्रातः सवने, ऐ.ब्रा. 12.1 (317); अन्यान् ऋत्विजः सम्प्रेषयति, ऐ.ब्रा. (632); शम्यां परास्यति ---स---गार्हपत्यः, पञ्च.ब्रा. 25.10.4; अनाड्वाहमध्वर्यवे, तै.ब्रा. 1.1.6.10; यजमानं वाचयति तै.ब्रा. 3.7.4.3; अध्वर्यवित्याहोद्गाता मा स्ममेऽनिवेद्य होत्रे प्रातरनुवाकमुपाकरोति, शां.श्रौ.सू. 1.4.1; सर्वा ह वै देवता --- अध्वर्युर्हविर्ग्रहीष्यन्तमुपतिष्ठते, श.ब्रा. 1.3.2.18; अथाज्यमवेक्षते, श.ब्रा. 1.3.1.26; प्रोक्षणीरध्वर्युरादत्ते, श.ब्रा. 1.3.9.1; अर्ध्वर्युरेव प्राशित्रमवद्यति, श.ब्रा. 2.5.2.40; शुक्रमेवाध्वर्युरादत्ते, श.ब्रा. 4.2.1.13; [अध्वर्यु एक कार्यनिर्वाहक ऋत्विज् है, जिसके लिए एक चमस नियत किया जाता है; वे संख्या में दश हैं: होता, ब्रह्मा, उद्गाता, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा, अच्छावाक, आग्नीध्र एवं यजमान, बौ.श्रौ.सू. 13.2.11] देखें श्रौ.प.नि. 1.3

अध्वर्युतस् क्रि.वि. अध्वर्यु पर आश्रित होकर, टीका- 'एतावदेवाध्वर्यवे संसवे विशेषः' बौ.श्रौ.सू. पर - 14.4:157.15; 14.10:257.6; अनुप्रवचनप्रैषयाज्यासु नित्योऽध्वर्युतः सम्प्रैषः, आश्व.श्रौ.सू. 5.5.13.

अध्वर्युद्रोण पु. अध्वर्यु की द्रोणिका अथवा पात्र 'आज्यं निरुप्य अध्वर्युद्रोणे प्रभूतं पयो निर्वपति,' आप.श्रौ.सू. 19.6.9.

अध्वर्युपथ पु. अध्वर्यु का मार्ग (आग्नीध्रीय एवं हविर्धान के मध्य) 'अध्वर्युमुखा ---सर्पन्ति ---अध्वर्युपथेन इत्येके', आश्व.श्रौ.सू. 8.13.24 (अध्वर्युपथो नाम हविर्धानाग्नीध्रीययोर्मध्यम्); 5.3.13; बौ.श्रौ.सू. 2.256.6; अध्वर्युपथे (श्यैतम्), ला. श्रौ.सू. 1.5.22; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.20, वैता.सू. 34.4.2.

अध्वर्युपात्र न. अध्वर्यु का पात्र (बर्तन), मै.सं. 4.6.2; अध्वर्युपात्रमुदूह्य, आप.श्रौ.सू. 12.21.21; तयोर्दक्षिणमध्वर्युपात्रम्---अष्टाभृष्टि, मा.श्रौ.सू. 72.3; 79.1; 82.8; 85.18;109.17.

अध्वर्युपुरुष पु. अध्वर्यु का आदमी (सहायक), बौ.श्रौ.सू. 1.36.14, आप.श्रौ.सू. 10.20.17.

अध्वर्युप्रत्यय वि. अध्वर्यु (के पास) सीखा गया अथवा जाना गया; अध्वर्युप्रत्ययं तु व्याख्यानं कामकालदेशदक्षिणानाम्, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.34 (टीका अध्वर्व्याधीनम्); पु. अध्वर्यु की (कर्मकाण्डीय प्रक्रिया का) प्रमाण, बौ.श्रौ.सू. 3.185 : 13.

अध्वर्युप्रथम वि. जिनमें अध्वर्यु प्रथम है, अध्वर्यु द्वारा नीत; अभिधून्वन्तः प्रतियन्ति, भा.श्रौ.सू. 11.8.17; मा.श्रौ.सू. 109.1; अध्वर्युप्रथमानुद्गातृप्रथमान् वा वृणीते, वैखा.श्रौ.सू. 12.1; 15.19; देखें - अध्वर्युप्रमुख्य, वैखा.श्रौ.सू. 17.17.

अध्वर्युप्रवर पु. (मानवीय 'होता' का) अध्वर्यु द्वारा ऋषिपूर्वजों का नामोल्लेखपूर्वक (चुना जाना) (इसके विपरीत 'होतृप्रवर' अर्थात् दिव्य 'होता' अर्थात अग्नि का चयन) देवाः पितरः---आप.श्रौ.सू. 4.9.6, देवाः पितर इति होत्रध्वर्युप्रवरयोः यजमानो जपति, वैखा.श्रौ.सू. 6.5.

अध्वर्युप्रेषित वि. अध्वर्यु द्वारा पुकारा गया (अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रेष्यति प्रैषैः होतारम्) आश्व.श्रौ.सू. 3.2.4; ला.श्रौ.सू. 1.6.1; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.1.

अध्वर्युबह्वच पु. अध्वर्यु एवं होता का कर्मकाण्ड अथवा कर्मकाण्डीय परम्परा (अर्थात् अध्वर्यु=यजुर्वेद एवं होता=ऋग्वेद) ला.श्रौ.सू. 4.8.23; 4.11.1; द्रा. श्रौ. सू. 9.4.18. -**भक्षः** पु. अध्वर्यु द्वारा इडा-भक्षण, बौ.श्रौ.सू. 3.291: 16; वैखा.श्रौ.सू. 15.31.

अध्वर्युमुख वि. अध्वर्यु है प्रमुख जिनमें, अध्वर्यु द्वारा नीत, आश्व.श्रौ.सू. 5.2.6.

-**वत्** क्रि.वि. अध्वर्यु की तरह, वैखा.श्रौ.सू. 17.9.

-वर्ज वि. अध्वर्यु को छोड़कर, 'यजमानः स्तोत्रमनुमन्त्रयते', वैखा.श्रौ.सू. 15.20

अध्वर्युविकार पु. अध्वर्यु का संशोधित रुप, का.श्रौ.सू. 5.5.25 (प्रतिप्रस्थाता); मैत्रावरुण होतृ-विकार है, अतः इडाभक्षण के लिए अधिकृत।

-सञ्चर - अध्वर्यु के लिए चिह्नित गमन-पथ, का.श्रौ.सू. 1.3.42-43; 3.1.17; 3.4.6.

अध्वर्युसम्प्रैष पु. अध्वर्यु द्वारा दी गयी आज्ञा अथवा की गई पुकार, ला.श्रौ.सू. 1.2.18; 4.9.8.

अध्वर्व्वासादित पु. अध्वर्यु द्वारा रखा गया (चत्वालात् अपरेण अध्वर्व्वासादितम् अप्सुसोमचमसान् वैष्णव्यर्चा निनयन्ति), वैता.श्रौ.सू. 23.14.

अध्वलोष्ट न. सड़क पर स्थित मिट्टी का ढेला अथवा मृत्पिण्ड, 'अष्टौ लोष्टान् आहरेत् सीतालोष्ठम्', मा. गृ.सू. 1.7.9.10.

अध्वाजि पु. समय की नियत-अवधि अथवा क्रमण, बौ.श्रौ.सू. 2.11.14

अनंशु वि. (सोम) की डण्ठल का विना प्रयोग किए; 'तृतीयसवनम् अवलुम्पन्ति अनंशु कुर्वन्ति', तै.सं. 3.2.2.1; बौ.श्रौ.सू. 2.162:11.

अनक्त वि. जो लीपा न गया हो, अलिप्त, 'घृतेन अनक्तं स्यात् ततः पुरोडाशस्य प्राश्नीयात्', ऐ. ब्रा. 8.5 (232). मा.श्रौ.सू. 97.6; 10.11; वारा.श्रौ.सू. 1.4.4.5; हि.श्रौ.सू. 4.2.7 (413.6); 'अनक्ताम् औदुम्बरीम्', मा.श्रौ.सू. 32.17; अनक्तया विशासति, मा.श्रौ.सू. 53.7.

० तस् क्रि.वि. ('स्वधिति' के) लिप्त भाग के साथ, वारा. श्रौ.सू. 1.6.5.20

अनक्ताशन- न. रात्रि के समय भोजन से परहेज, अग्निवे. गृ.सू. 3.10.3 (172.6)

० शिन् वि. रात्रि को भोजन न करने वाला आप.श्रौ.सू. 27.7; हि.श्रौ.सू. 26.7.32.

अनक्षसङ्ग पु. धुरे से सम्पर्क का अभाव (यूप्यस्तं वृश्चति यावति अनक्षसङ्गः स्यात्), काठ.सं. 26.3; कपि.क.सं. 41.6.

अनक्षसङ्गम् क्रि.वि. इस तरह कि धुरे के साथ छेड़खानी न हो, तै.सं. 6.3.3.3, मै.सं. 3.9.2; बौ.श्रौ.सू. 4.1.21; भार.श्रौ.सू. 7.1.7; मा.श्रौ.सू. 1.8.1.9. वैखा.श्रौ.सू. 10.1:17, हि.श्रौ.सू. 2.1.22 (यूप - वृक्ष का ठूँठ)

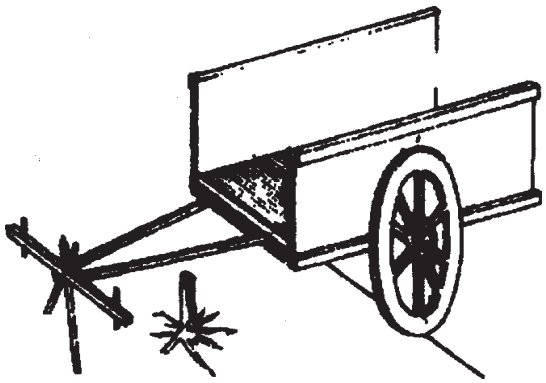

अनक्षसङ्गम्

अनक्षस्तम्भ वि. (स.) धुरे को न बाधित करने वाली (ऊँचाई पर), इस तरह कि धुरे को बाधित न करे, श.ब्रा. (को.) 4.6.4.4.

अनक्षस्तम्भम् क्रि.वि. इस प्रकार कि गाड़ी की धुरा बाधित न हो, का.श्रौ.सू. 6.1.14 (यूप); श.ब्रा. 3.6.4.11; भाष्य- शकटस्य अक्षम् अवशिष्टः स्थाणुर्न स्तभ्नाति, तथा नीचं छिन्द्याद् इत्यर्थः।

अनक्षिक पु. आँखो से रहित देवता, तै.सं. 7.5.12.1.

अनक्ष्ण वि. जो तिरछा न हो = अतिर्यक्, (आज्यभागौ), मा.श्रौ.सू. 2.2.14

अनक्ष्णया क्रि.वि. अकर्णवत्, अतिर्यक् रूप से, मा.श्रौ.सू. 20.21.

अनख वि. नख (के प्रयोग) से हीन; 'ब्राह्मणानाम् अङ्गुष्ठेन अनखेन अनुदिशति', बौ.गृ.सू. 2.11.37; बौ. पि. 2.9.19; जैमि.गृ.सू. 1.2.

अनखच्छिन्न वि. (अङ्गुलियों द्वारा) विना नख (के प्रयोग के) काटा गया, बौ.श्रौ.सू. 1.6.12; (अनखछिन्नाग्रे दर्भे = पवित्रे), बौ. श्रौ. सू. 3.210:7.

अनग्न वि. 1. जो नग्न न हुआ हो, 'जाया पतिं नग्नं न पश्यति इत्यन्तर्वासं वसीथा इति होवाच अनग्नो भवति', बौ.श्रौ.सू. 2.397:3 (पुरुरवा-ऊर्वशी-प्रसङ्ग-यज्ञक्रतु); 2. जो खुला हुआ (अनावृत) न हो, 'तक्षितो वा एष (यूपः) नग्नो--- अनग्नमेवैनमकः', मै.सं. 3.9.3.

अनग्नता स्त्री. नग्नता की स्थिति का अभाव, 'योषा वै वेदिः -- - नग्नां करोति अङ्गतया एव तस्माद् बर्हिः स्तृणाति', श.ब्रा.1.3.3.8; 'अभि एव स्तृणीयुः', श.ब्रा. 1.7.3.28;

अखुलापन 'अनग्नतया परिव्ययति (यूपम्)', श.ब्रा. 3.7.1.19.

अनग्नंम्भावुक (नञ् + नग्न + भू + खुकञ्) वि. जो नग्न नहीं होना चाहता, 'अनग्नम्भावुका ह होतुश्च यजमानस्य च भार्या भवन्ति', ऐ.ब्रा. 5.3 (128); वाधू.श्रौ.सू. III. 9.11.

अनग्नि वि. जो पवित्र अग्नि को नहीं सँभालता अथवा जिसने पवित्र (श्रौत) अग्नि को नहीं सँभाला है, जो श्रौत (पवित्र) अग्नि का चयन नहीं करता, 'अयज्ञो ह्येष अनग्निः', काठ.सं. 8.12; आश्व.श्रौ.सू. 4.1.10; 'अनग्निर्गृहस्थः---/ तेषां प्राणेषूत्क्रान्तेषु तुष्णीं स्नापयेत्', अग्निवे.गृ.सू. 3.10.1; जो गृह्य (घरेलू) अग्नि को नहीं सँभाल सकता, हि.श्रौ.सू. 27.5.119; अग्नि का प्रयोग न करने वाला (सर्वे गच्छन्ति), अनग्ना उत्तरवेदिम्, का.श्रौ.सू. 26.7.11 (टीका-अनग्नौ अग्निरहिते)।

अनग्निक वि. जिसने (पवित्र) अग्नि का आधान अथवा निर्वाह न किया हो 'ब्राह्मणस्य अनग्निकस्य नैव द्रव्यं दद्यात्', गो.ब्रा. 1.2.23; विना पवित्र अग्नि के (अनुष्ठित कृत्य), पवित्र अग्नि की आवश्यकता से रहित, 'अनग्निकान् वा यज्ञक्रतून् आहरेत्, अन्यत्र अश्वमेधात्', बौ.शु.सू. 2.7.

अनग्निका स्त्री. जो युवावस्था को नहीं प्राप्त हुई है, जै.गृ.सू. 1.20.

अनग्निचय पु. अग्निवेदि के चयन का अभाव (न होना), 'षष्ठ्यामुपषदि उत्तरवेदिं सन्निवपन्ति----अनग्निचय एव एतद् उपपद्यते न साग्निचये', बौ.श्रौ.सू. 3.290:3 = अनग्निचित्य, बौ.श्रौ.सू. 2.247:2; का.श्रौ.सू. 8.3.3.

-**चित्य** वि. (स्त्री.आ) अग्निचयन की आवश्यकता से हीन, श.ब्रा. 6.6.1.1, ला.श्रौ.सू. 5.8.12 (अग्निं प्रणीयमानम् अप्रतिरथं जपन् तुष्णीम् अनग्नचित्या चेत्); द्रा.श्रौ.सू. 14.4.13

अनग्निदग्ध वि. अग्नि द्वारा न उपभुक्त (न जलाए गए), ऋ.वे. 10.15.14 (पितर्); आग पर न तपाया गया अर्पणीय (हविष्) द्रव्य, सोम, मनु.भा. 1.292.17; (सोम देवता जिसे अतप्त = अपक्व आहुति दी जाती है) मनु. भा. 1.292.18.

अनग्निष्वात्त (न अग्निना स्वात्तः) वि. (बहु.) अन्त्येष्टि की अग्नि के द्वारा न खाए गए (पितर्); वा.सं. 19.60; आप.श्रौ.सू. 8.15.17; वैखा.श्रौ.सू. 9.8.

अनग्न्याधेय न. (विवाहित द्विज द्वारा) पवित्र अग्नि को स्थापित न करने के समान अच्छा जै. श्रौ.सू. 23.

अनघा स्त्री. एक नक्षत्र समूह का नाम (मघा) 'अन्नघाभ्यः स्वाहा', ता. ब्रा. 3.1.4.8; 2. हलकर्षण-कृत्य के समय पूजित एक देवता का नाम, गौ.गृ.सू. 4.4.29.

अनङ्ग पु. वह जो नियन्त्रित न हो, 'अङ्गिने स्वाहा अनङ्गाय स्वाहा', तै.सं. 7.5.12.2; न. जो अङ्ग (सहायक, अप्रधान) नहीं है 'न. पितृयज्ञः स्वकालविधानात् अनङ्गं स्यात्', आप. श्रौ.सू. 24.2.36; का.श्रौ.सू. 4.1.29; ला.श्रौ.सू. 10.3.1 (मानसं दशमस्य अह्नो अनङ्गम् एके).

अनडुदर्ह वि. गाड़ी खींचने वाले बैल के मूल्य का (अनड्वान् दक्षिणा, अनडुदर्हं वा हिरण्यम्), आप.श्रौ.सू. 13.25.6.

अनडुत्पर्शु स्त्री. बैल की पँसुली, 'आदाय गार्हपत्यम् अभिमन्त्रयते', भा.श्रौ.सू. 1.3.5; आप.श्रौ.सू. 1.3.1; 1.3.2;

अनडुद्यज्ञ पु. गाड़ी का वहन करने वाले बैल के लिए सम्पन्न किया जाने वाला एक कृत्य, मा.गृ.सू. 2.10.7.

अनडुद्वर पु. बैल (उपहार के रूप में प्रदेय) का वरण (पुर्णाहुतौ वरं ददाति धेनुवरं वा अनडुद्वरं वा दद्यात् इति बौधायनः), बौ.श्रौ.सू. 1.127:14; 1.204.3.

अनडुद्व्रत न. (द्वि)दो 'सामन्' का नाम, आर्षे.ब्रा. 6 (3). 7.3.

अनडुह् पु. गाड़ी खींचने वाला बैल, ऋ.वे. 3.53.18; अ.वे. 4.11.1; दक्षिणा के रूप में तै.सं. 1.5.2.4; आग्नीध्रे 1.8.18.1; अध्वर्युः, का.सं. 8.8; कौषी. ब्रा. 1.5; आश्व.श्रौ.सू. 3.10.12; आप.श्रौ.सू. 9.1.20,ला.श्रौ.सू. 1.2.23; सुब्रह्मण्याय; अग्निष्टुत्सु, ला.श्रौ.सू. 8.7.1; अन्यतरो विमुक्तः ऐ.ब्रा. 3.3; युनक्ति, श.ब्रा. 6.8.1.8.

अनुडुही स्त्री. दक्षिणा के रूप में (गाड़ी खींचने वाली) गाय, 'इन्द्रतुरीयं नाम तस्य एषा एव अनुडुही दक्षिणा', श.ब्रा. 5.2.4.3.

अनड्वाही स्त्री. दक्षिणा के रूप में गाड़ी अथवा शकट को खींचने वाली गाय, 'धेनुरनड्वाही दक्षिणा', मै.सं. 2.6.3; मा.श्रौ.सू. 185.14.

अनतिकृष्ण वि. (वह ऋत्विज्) जो (रंग-रुप से) बहुत काला न हो, ला.श्रौ.सू. 1.1.7; द्रा.श्रौ.सू. 1.1.7 (सोम याग में ऋत्विज् के कर्तव्य का निर्वहण करने के लिए अर्ह)।

अनतिक्रम पु. अतिक्रमण न होना, व्यतीत न होना, उपायनम्---आ षोडषाद् ब्राह्मणस्यानतिक्रमः, का.गृ.सू. 4.1.4; श.ब्रा. 3.3.1.5.

अनतिक्रमण न. अतिक्रमण न होना, का.श्रौ.सू. 5.9.5 (टीका-यजतिस्थाने अतिक्रमणम्---न भवति); देखें- अतिक्रमण।

अनतिक्रम्य (नञ् + अति + क्रम् + ल्यप्) आर-पार जाए बिना (आकाशीय), 'यदनतिक्रम्याश्रावयेत् अनभिजितोऽस्य यज्ञः स्यात्', मै.सं. 3.8.1; वारा श्रौ.सू. 1.3.5.7; 2. बिना अतिक्रमण किए (पार्थिव), 'जुहुयात् प्रातर्होमं च उपास्तमयं कालेन कालमनतिक्रम्य', बौ.श्रौ.सू. 3.363:5.

अनतिग्राह्य वि. विना 'अतिगाह्य'-संज्ञक प्याले के, अर्थात जिसमें तीन अतिरिक्त आहुतियों को नहीं ग्रहण करना है, 'अनतिग्राह्यः, षोडषी इत्येक आहुः', बौ.श्रौ.सू. 2.248:14.

अनतिदग्धा वि. (स्त्री) अधिक न जलायी गई, श.ब्रा. 1.4.1.14 (वह क्षेत्र भूमि जहाँ सदानीरा बहती है)।

अनतिदाह न. अत्यधिक जलने का अभाव, तै.सं. 5.2.10.3; जे.ब्रा. 3.70

अनतिदृश्रम् क्रि.वि. बिना पारदर्शी विधि के, 'अनतिदृश्रं स्तृणाति', वह घास बिछाता है जिससे की पृथ्वी दिखाई न पड़े अथवा दृश्य न रहे, तै. सं. 2.6.5.2, बौ.श्रौ.सू. 1.20.7; भा.श्रौ.सू. 2.8.13; हि.श्रौ.सू. 1.8.4; वैखा.श्रौ.सू. 5.6.

अनतिदृश्यम् क्रि.वि. बिना पारदर्शिता के, पारदर्शिता से रहित आप.श्रौ.सू. 2.9.2; वेदिं स्तृणाति बहुलमनतिदृश्यम्।

अनतिदेश पु. किसी नियम अथवा विधि के अतिदेश (अन्यत्र लागू होने) का अभाव (या लागू न होना), 'अनतिदेशे तु एका हो ज्योतिष्टोमो द्वादशशतदक्षिणः', आश्व.श्रौ.सू. 9.1.3.

अनतिनयत् वि. व्यतीत न करते हुए, न बिताते हुए, 'क्रीते सोमेऽपहृते अनतिनयन् कालम् आहृत्य अभिषुणुयात्', शां.श्रौ.सू. 13.6.1.

अनतिनेद पु. न बहने वाला 'देवा उपयड्भिरतिनेदाय', मै.सं. 3.10.4; रसो वै षष्ठमहः तस्या- अनतिनेदाय, जै. ब्रा. 3.138.

अनतिपन्न वि. (नञ् + अति + पद् + क्त) अनाक्रान्त, जिसका उल्लङ्घन न हुआ हो, काठ.सं. 6.8.

अनतिपातयत् वि. (नञ् + अति + पत् + णिच् + शतृ) (बाण को भूमि पर) अधिक न गिराते हुए ला.श्रौ.सू. 3.10.2.

अनतिपाद पु. आगे न जाना, पञ्च. ब्रा. 4.5.12; जै.ब्रा. 3.137 (आ वच्यस्व महिप्सर इति आवतीर्भवन्त्यनतिपादायैव)।

अनतिपृथु वि. (पुरोडाश) जो अधिक बड़ा न हो, का.श्रौ.सू. 2.5.20.

अनतिप्रणीत वि. अधिक आगे न ले जाया गया (प्रकृतो अग्निर्भण्यते), द्रा.गृ.सू. 3.2.6 (दक्षिणाग्नि)।

-चरत् वि. दक्षिणाग्नि में कृत्य को अनुष्ठित न करता हुआ बढ़कर अथवा आगे न ले जाया गया, आश्व.श्रौ.सू. 9.2.18.

० चर्या स्त्री. आगे ले जायी गई दक्षिण-अग्नि में कृत्य का सम्पादन न करना, आश्व.श्रौ.सू. 2.19.31.

अनतिरात्र वि. विना अतिरात्र याग (पूरी रात चलने वाला, जो सम्पूर्ण-रात्रि में अनुष्ठित होता है) के, पञ्च.ब्रा. 24.2.11; श.ब्रा. 5.1.3.2; जै.ब्रा. 2.177; 'आदेशात्तु सत्रम् अनतिरात्रम्', बौ.श्रौ.सू. 3.289:6; 'त्रैधातव्या अनतिरात्रस्य दीक्षणीया' वारा.श्रौ.सू. 3.4.1.46; 'अनतिरात्रेऽभि त्वा वृषभा सूते इति' वैता.सू. 40.10 (टीका-अतिरात्रवर्जिते अभिजिति एकाहीभूते); ला.श्रौ.सू. 8.12.9. पु. अतिरात्र याग से भिन्न 'अनतिरात्रस्य द्वादशं शतं दक्षिणा'; ला.श्रौ.सू. 8.1.17 (ज्योतिष्टोमस्य अनतिरात्रस्य); निदा.सू. 10.9.

अनतिरिक्त वि. जो बहुत अधिक अथवा अतिरिक्त नहीं है, आवश्यकता से अनधिक, पञ्च. बा. 15.7.5; (यज्ञस्य अरिष्टयै); श.ब्रा. 3.9.2.15, बौ.श्रौ.सू. 1.114:15; 1.189:7; (अनतिरिक्त); स्त्री. गैर-फ़ालतू, श.ब्रा. 11.5.2.1.

अनतिरिक्ताङ्ग वि. जिसके पास अतिरिक्त (ज़्यादा) अङ्ग न हो, ला.श्रौ.सू. 1.1.7; द्रा.श्रौ.सू. 1.1.7 (ऋत्विज्)

अनतिरिच्यमान वि. अतिरिक्त न होते हुए, बौ.श्रौ.सू. 2.259:2.

अनतिरेक पु. गैर-फालतू, अनधिक, काठ.सं. 31.1; तै.ब्रा. 3.2.2.5.

अनतिरेच पु. गैर-फालतू, अनधिक, मै.सं. 4.1.2, देखें. अनतिरेक।

अनतिवाद पु. 'उखा' (जो प्रजापति के लिए बीते भर ऊची हो) की अति-आकृति का विधान करने वाले कथन का निषेध, मै.सं. 3.1.7; अनिन्दित, उखा---- प्रादेशमात्रा कार्या प्रजापतेरनतिवादाय (सं.डि.डे.); गायन में (एक

मात्रा) बढ़कर न होने का कृत्य (अधिक पाठ न करने का कृत्य) पञ्च.ब्रा. 11.3.6; 21.5.4; = **०वादन**; न. काठ.सं. 3.12; ० **वादिन्** वि. अपशब्द न बोलने वाला, मै.सं. 4.1.13; पञ्च. ब्रा. 11.3.7; ० **वादुक** वि. जो अतिशय का विधान करने वाले कथन का निषेध करता है, तै.सं. 6.4.5.2.

अनतिशंस पु. अति-प्रशंसा का अभाव 'अहं च इति वरुणो ब्रवीत् देवतयो: सशंसाया-नतिशंसाय', गो.ब्रा. 2.4.15.

अनतिश्वेत वि. जो अधिक उजला नहीं है, ला.श्रौ.सू. 1.1.17 (ऋत्विज्)

अनतिष्टव पु. (विहित स्तोमों अथवा वर्णों से अधिक संख्या से), अतिरिक्त स्तुति न होना 'तत् पञ्चविशं कृत्वा स्तुवते व्रतस्य अनतिस्तवाय', जै.ब्रा. 4.403.

अनतिसर्पत् वि. अधिक (अथवा आगे) न सरकता हुआ, आड़े झुके हुए स्थिति में न चलता हुआ, 'अनतिसर्पन्तावध्वर्यू धिष्णियान् बर्हिर्भ्याम् औदुम्बरीं समन्वारभेते', बौ.श्रौ.सू. 2.255:10.

अनतिसृष्ट वि. अनाज्ञप्त, अनुमति न प्राप्त किया हुआ, अ.वे.15.12.8=15.12.11; विवाह में न दिया गया, बौ.ध.सू. 2.2.24.

अनतिहरन् वि. आगे (या अधिक) न ले जाता हुआ, 'चतुरो विष्णुक्रमान् प्राच: क्रामति उत्तरम् उत्तरं ज्यायांसम् अनतिहरन् सव्यम्', आप.श्रौ.सू. 4.14.6 (टीका-न च कदाचित् सव्यं पादं पुरस्तान्नयति) 'प्रस्तरस्य अग्राणि आदीपयति', मा.श्रौ.सू. 23.9 (सामने में स्थित आहवनीय से आगे नहीं)।

अनतीत कि. (वह कल) जिसने सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है, 'आ षोडषात् ब्राह्मणस्यानतीत: काल:', आश्व.गृ.सू. 1.19.5, (उपनयन।)

अनत्यन्त वि. जो निर्धारित अन्त से आगे या अधिक नहीं है, निदा.सू. 23.20; (2.1); अपूर्ण (सं.डि.डे.)।

अनत्यय पु. अधिक या आगे न जाने या न गुज़रने का कृत्य, अनतिक्रमण, श.ब्रा. 13.8.4.1.

अनत्याक्रम्य (नञ् + अति + क्रम् + ल्यप्) (वेदि को) पार किए बिना, बौ.श्रौ.सू. 3.93:12.

अनत्याश पु. अधिक न खाना, हि.श्रौ.सू. 26.4.14 (टीका-नियतभोजन:)।

अनद्धा क्रि.वि. अनिश्चय-पूर्वक, श.ब्रा. 1.2.12; 'अनद्धैव एता आहुतयो हूयन्ते', श.ब्रा. 3.1.4.10; 3.2.1.40; 5.3.4.26; 6.2.2.20; ०**पुरुष** पु. वह मनुष्य जो सच्चा नहीं है, हास्यास्पद व्यक्ति, मूर्ख अथवा मूढ, ऐ.ब्रा. 32.8; श.ब्रा. 6.3.1.24 देवताओं के लिए निरर्थक व्यक्ति की पदवी (संज्ञा), पितर एवं मनुष्य अध्वर्यु जिनको बाद वाले के निश्चित मन्त्र पढ़ते समय देखे, का.श्रौ.सू. 16.2.13 (चयन)। द्वेष्य के द्वारा इस भाग का अभिनय किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 16.2.6

अनधर वि. नीचे के स्तर पर न पकड़ने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.22 (औदुम्बरी को पकड़ने वाले हाथ)।

अनधस् क्रि.वि. नीचे नहीं (अर्थात् नग्न भूमि पर नहीं), आप.श्रौ.सू. 1.4.1; तै.ब्रा. 3.2.1.6; बौ.श्रौ.सू. 1.3.9; भा.श्रौ.सू. 1.4.10, आप.श्रौ.सू. 1.4.1; वारा.श्रौ.सू. 1.2.29; वैखा.श्रौ.सू. 3.4.

अनधिकार पु. अर्हता अथवा योग्यता का अभाव, आश्व.श्रौ.सू. 2.6.20.

अनधिकृत वि. (सोम प्याले के) वैशिष्ट्य से युक्त के रूप में अमान्य भा.श्रौ.सू. 13.7.12; (के लिए) अयोग्य 'अनधिकृतो वा सोमधर्मैर्दधिग्रहविकारत्वात्' आप.श्रौ.सू. 12.7.15

अनधिगम पु. अप्राप्ति, अनुपलब्धि, आश्व.श्रौ.सू. 2.14.27.

अनधिष्ठान न. खड़े न होने का कृत्य (बिना किसी पादत्राणके सीधे भूमि पर), का.श्रौ.सू. 15.8.24-25

अनधिशाख्य वि. (दूसरे वृक्ष) के ऊपर उगे हुए (बढ़े हुए) वृक्ष से न गढ़ा गया, मा.श्रौ.सू. 50.10; वारा.श्रौ.सू. 1.6.1.7 (यूप)।

अनधिश्रय वि. जो आग पर चढ़ाने की क्रिया से युक्त या सम्बद्ध नहीं है, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.4 (तपाने के लिए)

अनधिश्रयण न. आग पर न चढ़ाना, न तपाना, का.श्रौ.सू. 4.15.25; ०**धिश्रित**.वि. आग पर न रखा गया, न तपाया हुआ, भा.श्रौ.सू. 9.6.1.

अनधिस्कन्ना वि. (स्त्री.) मैथुन में न ढकी हुई (मेषी---- समृद्ध्यै), मै.सं. 2.5.2.

अनधिस्तृणत् वि. न बिछाते हुए, न फैलाते हुए, मा.श्रौ.सू. 19.9. (वेदि में दर्भ=पवित्र घास को)

अनधीयत् वि. (वेदों का) पाठ अथवा उच्चारण न सीखता हुआ, वेद को मनोयोगपूर्वक न सीखने (न याद करने) वाला, 'त्रिष्टुभं गायति---यदनीधयन् गायेद् अन्धा गर्भा जायेरन्', जै.ब्रा. 1.20; 1.259; 1.261.

अनधीयान वि. मनोयोगपूर्वक वेद को न पढ़ने वाला, वैदिक पाठ्यों का पाठ न करता हुआ, हि.श्रौ.सू. 27.1.69; अप्रमाणम्, निदा.सू. 23.11; अनधीयानः सुब्रह्मण्योम् इति त्रिः (आह्वयते) वैता.सू. 34.5.

अनध्ययन न. मनोयोगपूर्वक वेद के अध्ययन का न होना (या रुकना) हि.श्रौ.सू. 27.1.81

अनध्याय पु. वेद-पाठ अथवा सामगायन आदि का न होना (या रुकना), गो.ब्रा. 1.1.22; हि.श्रौ.सू. 26.3.47; बौ.श्रौ.सू. 1.297:17; बौ.गृ.सू. 3.4.33, विभिन्न प्रकार के अपशकुनों के निमित्त, जैसे- उल्का-पात, भूकम्प एवं अन्य कारण जैसे श्राद्ध खाना, किसी के गुरु की मृत्यु, पा.गृ.सू. 2.11.

अननुक्शाति स्त्री. न जलती हुई, मै.सं. 4.7.5.

अननुख्याति स्त्री. बाद वाले को न जानना या न समझना, मै.सं. 4.7.5.

अननुगत वि. न बुझी हुई (अग्नि), श.ब्रा. 12.4.3.6.

अननुगत्ति स्त्री. बुझ जाने का अभाव, काठ.सं. 8.4

अननुत्सर्ग पु. अपरित्याग, न छोड़ना 'प्राजापत्यं पशुम् आलभन्ते---यज्ञस्य अननुत्सर्गाय', तै.सं. 7.5.7.4; काठ.सं. 33.7.

अननुयाज वि. बाद के अर्पण से रहित (कर्मकाण्ड) मै.सं. 3.7.2 (प्रयाजवत् स्यात् प्रायणीयम् अननुयाजम्) काठ. सं. 23.9; ऐ.ब्रा. 2.5; आप. श्रौ.सू. 10.21.7; 'दर्विहोमाः अप्रयाजाः -----अननुयाजाः', का. श्रौ.सू. 6.10.23; ०**ज्या**-स्त्री. एक इष्टि का नाम, मा.श्रौ.सू. 64.8.

अननुयान न. अनुकरण न करना, सदृश न होना 'नानाग्निष्टोम-सामानि भवन्ति अन्योऽन्यस्य अननुयानाय', जै.ब्रा. 2.328.

अननुवषट्कार वि. बिना द्वितीयक (गौण) 'वषट्'-संज्ञक पुकार वाला, बौ.श्रौ.सू. 3.252:3; आप.श्रौ.सू. 12.23.9; 13.8.2; हि.श्रौ.सू. 8.7.18; ०**भाज्** वि. जो द्वितीयक वषट्कार का भागी नहीं है, कौषी. ब्रा. 16.6.

अननुव्रतम् क्रि.वि. व्रत (प्रतिज्ञा) अथवा कर्मकाण्ड के विना, आप.श्रौ.सू. 1.9.9 (यत् चचार अननुव्रतम्) ०**व्रता** वि. (स्त्री.) व्रत का पालन न करने वाली (प्रजा), श.ब्रा. 3.7.1.22; बौ.श्रौ.सू. 1.49:10.

अननुशस्त्र वि. पाठ के द्वारा अननुसृत (जिसका अनुसरण नहीं किया गया, वह शस्त्र), मै.सं. 1.9.7; (न हि स्तुतम् अननुशस्त्रमस्ति) 'वृद्धं वा एतत् यत् स्तुतम् अननुशस्त्रम्' काठ.सं. 34.2; बौ.श्रौ.सू. 2.190:9.

अननुष्टुभ वि. अनुष्टुप्-छन्द वाली ऋचा से हीन (अननुष्टुभम् ऐतद् अहर्भवति नानुष्टुभो आधीयते) बौ.श्रौ.सू. 2.252:10

अननूक्त वि. गुरु के उच्चारण के बाद जो उच्चारित नहीं किया गया हो; (वेदः) श.ब्रा. 14.4.2.28; हि.श्रौ.सू. 26.3.86.

अननूक्ति वि. जिसने वेदों का उच्चारण नहीं किया है, का.श्रौ.सू. 26.2.4.

अननूचान वि. जिसने (वेद एवं वेदाङ्ग का) वाचन नहीं किया है, बौ.श्रौ.सू. 1.36:8; वाधू.श्रौ.सू. 4.18.25.

अननूचीनता स्त्री. परम्परा से हीनता की स्थिति, जै.ब्रा. 2.348 (त्रयाणाम् उ चैव त्रयस्त्रिंशानाम् अननूचीनतायै)।

अननूयाज वि. पश्चात् (बाद) के अर्पण से रहित अथवा हीन, तै.सं. 1.5.3; आप.श्रौ.सू. 10.21.7; वैखा.श्रौ.सू. 12.15 (देखें- अननुयाज)।

अनन्त वि. देर तक चलने वाला, सतत (लगातार चलने वाला) 'नानन्तम् (अग्निहोत्रम्) सायं हि हुत्वा वेद प्रातर्होष्यामि इति', श.ब्रा. 2.3.1.13.

अनन्तत्व न. अन्त (समाप्त) न होने की स्थिति 'अहानि आहीनिकतन्त्राणि अनन्तत्वात्', निदा.सू. 152.5 (9.1)।

अनन्तरित वि. जो अतिक्रान्त न हुआ हो, जिसे छोड़ा या मिटाया न गया हो, श.ब्रा. 12.3.5.3; 12.3.5.7; जै.ब्रा. 3.282.

अनन्तरिति स्त्री. अपरित्याग, बाहर न निकालना, तै.सं. 5.2.5.6; ता.ब्रा. 1.6.4.3

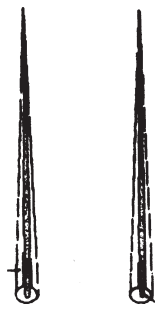

अनन्तर्गर्भ

अनन्तर्गर्भ वि. अन्दर बिना किसी अंकुर वाली (विधृति), आप.श्रौ.सू. 2.9.12; बौ.श्रौ.सू. 3.26:3; का.श्रौ.सू. 2.3.3; कौशतरुणे, शां.श्रौ.सू. 1.8.14

अनन्तर्हित वि. (स्त्री.आ)। - अपृथग्भूत, अतिआसन्न, कौषी.ब्रा. 30.8; श.ब्रा. 6.2.3.2; 'अथ विश्वज्योतिषाम् उपदधाति----ताम् अनन्तर्हितां रेतःसिग्भ्याम् उपदधाति', श.ब्रा. 7.4.2.25; 'विमतानां प्रसवसन्निपाते संसवो अनन्तानां नद्या वा', पर्वतेन' वा आश्व.श्रौ.सू. 6.6.11, 'स्तुते माध्यन्दिने पवमाने अग्निषोमीयेण चरत्य----अनन्तर्हित आग्नेयस्य वपया चरति --- अनन्तर्हित एव अनुबन्धस्य वपया चरति', बौ.श्रौ.सू. 2.369:7; 2. न ढकी या न छुपाई हुई, पञ्च.ब्रा. 19.13.9; का.श्रौ.सू. 9.2.18; ला.श्रौ.सु. 9.8.4; 3. अव्यवहित, अबाधित, सतत 'अथ दधि मधु घृतं संसृज्य अनन्तर्हितेन जातरूपे प्राशयति', श.ब्रा. 14.9.4.25; आर्षेयाणी---यावन्तो अनन्तर्हिताः समानगोत्रः तावतां सकृत्, आश्व.श्रौ.सू. 4.1.9; युञ्जः प्रथमं मन इति षड्चो अनन्तरिताः, बौ.श्रौ.सू. 2.1.22.

अनन्तर्हितम् क्रि.वि. विना व्यवधान के, 'अन्यत्रापि सन्निपातेन तृचं सूक्तं वा अनन्तर्हितम् एकासने द्विः शंसेत्' आश्व.श्रौ.सू. 1.2.15.

अनन्ध वि. जो अन्धा नहीं है, 'प्रपश्यति अनन्धो य एवं विद्वान् सौम्यं चरुम् अवेक्षते', श.ब्रा. 1.7.2; जै.ब्रा. 1.168.

अनन्न न. अनुचित अथवा वर्जित अन्न (भोजन), 'अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् अनन्नमनत्स्यन्', मै.सं. 2.12; काठ.सं. 10.3 (यो वा जिघत्सेत्)।

अनन्वारब्ध वि. न पकड़ा गया अथवा न छुआ गया, तै.सं. 6.3.8.2; का.श्रौ.सू. 4.2.27.

०दर्शपूर्णमास वि. अन्वारम्भ-संज्ञक कृत्य से आरम्भ न होने वाला दर्शपूर्णमास, बौ.श्रौ.सू. 3.40:11.

अनन्वारभमाण वि. (सीधे) स्पर्श न करता हुआ, 'पिष्टानि संयुत्य मन्थम् अनन्वारभमाण उपमन्थति' भा.श्रौ.सू. 8.17.10.

अनन्वारभ्य (अनु+आ+रभ्+ल्यप्) (चमस को) बिना छुए, तै.सं. 3.1.2.4, तै.ब्रा. 3.2.3.8; बौ.श्रौ.सू. 1.5.5; भा. श्रौ.सू. 1.41.1; आप.श्रौ.सू. 1.13.19; मा.श्रौ.सू. 11.12; हि.श्रौ.सू. 1.3.44.

अनन्वीक्षमाण वि. न देखता हुआ, न निहारता हुआ, भा.श्रौ.सू. 3.164.13; शकलम्, भा.श्रौ.सू. 9.11.7; आप.श्रौ.सू. 15.11.7.

अनपक्रम पु. बच के न निकलना, अनपसरण, अपरित्याग, 'यज्ञस्य', ऐ.ब्रा. 4.9; श.ब्रा. 3.4.2.20, वचः, जै.ब्रा. 1.102; 1.172; पशु।

अनपक्रमिन् वि. पृथक् न होने वाला, मै.सं. 2.3.2; पशु,जै.ब्रा. 3.230; श.ब्रा. 5.3.1.1.

अनपक्रान्त वि. अविलुप्त, लुप्त न हुआ (देवता) श.ब्रा. (को.) 4.2.2.23

०क्राम पु. दूर न जाना, जै.ब्रा. 1.260; वाचो।

०क्रामत् वि. लुप्त (गायब) न होता हुआ, काठ.सं 7.5

०क्रामिन् वि. लुप्त न होने वाला, जै.ब्रा. 1.148.

०क्रामुक वि. दूर जाने का अनिच्छुक, मै.सं. 4.2.4; पशु; विश्, पञ्च.ब्रा. 6.10.10, वाच्, वाधू श्रौ.सू. 4.48.8

अनपचिता वि. (स्त्री.) असम्मानित, घृणित 'परिवृक्ति', ला.श्रौ.सू. 9.10.2, टीका-अपूजिता।

अनपच्छेद पु. अव्यवधान, सातत्य, मै.सं. 4.6.5; उक्थानाम्----।

अनपच्युत वि. अस्थिरताहीन, दृढ।

अनपजय्य वि. (न जेतुं शक्यः, तु 'क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे' पा. 6.1.81) अविजित।

अनपजय्यम् अविजित रहकर, तै.ब्रा. 3.1.5.5

अनपनय पु. (देवता, आहुति अथवा आलभ्य=वध्य) का अस्थानान्तरण (स्थान न बदलना), का. श्रौ.सू. 25.9.7.

अनपनिहितम् क्रि.वि. बिना कुछ छोड़े, श.ब्रा. 2.2.1.15.

अनपभ्रंश पु. अधः पतन (नीचे गिरने) का अभाव, नीचे न गिरना, जै. ब्रा. 2.21; पञ्च.ब्रा. 12.4.3.

अनपभ्रंशिन् वि. नीचे न गिरने वाला, जै. ब्रा. 2.290.

अनपर वि. अन्तहीन, ऐ.ब्रा. 14.5; 'अनपूर्वो अनपरो यज्ञकर्तुः' (टीका-अग्निष्टोमः)।

अनपराध पु. कमी अथवा दोष का न होना, तै.ब्रा. 3.2.2.3

अनपरुध्य वि. निकाले जाने के अयोग्य, न निकाले जाने लायक, तै.सं. 2.2.8.5; बौ.श्रौ.सू. 2.133:10.

अनपवृक्त वि. जिसका (कार्य अथवा कार्ययोजन) अभी पूर्ण नहीं हुआ है, का.श्रौ.सू.; टीका- 25.5.1 पर, वैखा.श्रौ.सू. 2039-1; तु. अनपवृक्तार्थ, आप.श्रौ.सू. 9.19.15; यूप हि.श्रौ.सू. 15.8.30 (टीका-असमाप्तकार्यः)

अनपवृक्तार्थ वि. (न अपवृक्तः अर्थः यस्य) जिसने प्रयोजन को पूर्णतया सम्पन्न नहीं किया है आप.श्रौ.सू. 9.20.1, (अंकुरों को धारण करने वाला यज्ञीय स्तम्भ)।

अनपहतधाना स्त्री. (अनपहताः धानाः यस्य) अवितुषीकृत (जिसकी भूसी न हटाई गई हो) भूने हुए दाने (यव के), कौशि.सू. 19.10.

अनपेक्षम् क्रि.वि. पास में फेंकी हुई वस्तुओं को बिना पीछे देखे, नैऋति (ईटों कों), का.श्रौ.सू. 17.2.5; श.ब्रा. 12.5.2.15; 14.3.1.28; का श्रौ.सू. 5.10.23; ला.श्रौ.सू. 4.9.4.

अनपेक्षमाण वि. पीछे न देखता हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.44 (अवभृथ); श.ब्रा. 13.6.2.20.

अनपवृत्त वि. जिसका प्रयोजन समाप्त नहीं हुआ है, 'यूपे अधिरुढेऽनपवृत्ते त्वाष्ट्रम् (पशुम्) बहुरूपामालभेत, शां.श्रौ.सू. 13.4.1; **०कर्मन्** वि. जिसका काम अभी समाप्त नहीं हुआ है, 'कपालं भिन्नम् अनपवृत्तकर्म ---आपो अभ्यवहरेयुः', आश्व.श्रौ.सू. 3.14.10.

अनपवृष्ट अवर्षण का अभाव अर्थात् अतिशय-वृष्टि, हि.श्रौ.सू. 24.8.36.

अनपव्याहरत् वि. (नञ् + अप + वि + हृ + शतृ) आसङ्गत अथवा अवाच्य (अशुद्ध) न बोलता हुआ; **०न्तः** प्रचरन्ति, भा.श्रौ.सू. 2.16.1; आप.श्रौ.सू. 2.16.1; वैखा.श्रौ.सू. 6.5.

अनपश्रित वि. (दीवार अथवा इसी तरह के) किसी चीज के सहारे न झुका हुआ 'उद्गायेत्', निदा.सू. 18.9; ला.श्रौ.सू. 2.6.2; द्रा.श्रौ.सू. 5.2.5; हि.श्रौ.सू. 26.2.46 (टीका-कुड्यादौ अवाश्रितो न स्यात्)।

अनपस्थित वि. (नञ् + अप + स्था + क्त) जो त्रुटिपूर्ण (गलत ढंग से) स्थापित नहीं है, हि. श्रौ. सू. 22.6.7.

अनपस्फुरन्ती वि. (नञ् + अप + स्फुर् + शतृ + ङीप्) (दूध) देने के इच्छाराहित्य से हीन (दुधारु गाय), ऋ. वे. 4.42.10; वा. स. 7.10; श. ब्रा. 4.1.4.10; आप. श्रौ. सू. 12.14.12= अनपस्फुरा ऋ. वे. 6.48.11.

अनपस्वरी वि. (स्त्री.) ध्वनि करने से अविरत, अर्थात् देवयजन का सूखना, 'यत्र आपः अनपस्वरीः', हि.श्रौ.सू. 14.13.

अनपहतपाप्मन् वि. (न अपहतः पाप्मा यस्य) 1. जिसने पाप (बुराईयों) को कुचला नहीं है, ऐ. ब्रा. 19.3; श.ब्रा. 6.1.3.9; 2. जिसके पाप दूर नहीं हुए हैं, श.ब्रा. 2.1.3.4

अनपहान पु. अ-विदूरीकरण, न हराना, जै. ब्रा. 3.158.

अनपाकुर्वत् वि. पृथक् न करता हुआ, का.श्रौ.सू. 22.5.15.

अनपिधान न. (ढक्कन से) न ढकना 'अनपिधानम् अनवेक्षणं च द्विदेवत्यानाम्', शा. श्रौ. सू. 7.3.1 (निहितानामाच्छादनम् अवेक्षणं च न कुर्यात्)।

अनपिधाय (नञ् + अप् + धा + ल्यप्) बिना ढके 'अनपिधाय प्रत्यञ्चं तिष्ठन्तौ जुहुतः', मै.सं. 4.6.3.

अनपिमन्त्र वि. मन्त्र में भाग अथवा मन्त्र के सहारे से रहित, (मन्त्र भाग अथवा मन्त्र-साहाय्य से हीन) काठ.सं. 13.1.

अनपिसोम वि. सोम-पान में भाग न लेने वाला, जै.ब्रा. 3.123.

अनपिसोमपीथ वि. सोम-पान में भाग न लेने वाला, शा.श्रौ.सू. 14.62.2.

अनपिसोमिन् वि सोम में भाग न प्राप्त करनेवाला, जै.ब्रा. 3.124.

अनपूपाकृति वि. (न अपूपस्येव आकृतिः यस्य) जो अपूप (पिण्ड) के आकार वाला नहीं है, भा.श्रौ.सू. 1.26.2; पिण्ड=अपूप=पुआ 'अतुङ्गम्, अनपूपाकृतिं कूर्मस्य इव प्रतिकृतिम् अश्वशफमात्रं करोति,' आप.श्रौ.सू. 1.2.5.4.

अनपोद्धार्या वि. (स्त्री) जिसमें से कुछ निकाला न जाय, जिसमें से कुछ भी छोड़ा नहीं जाता है, 'आहुतयः', श.ब्रा. 11.6.35.

अनपोब्धय वि. शत्रुओं के द्वारा अधर्षणीय अथवा अजेय, शत्रुभिरप्रधृष्यः, बौ.श्रौ.सू. पर- 13.42.149.15 (इण्डेक्स = कोश)

अनपोहत् वि. (नञ् + अय + ऊह् + शतृ) दूर न फेंकता हुआ अर्थात् न बुझाता हुआ, 'उल्मुकेन अभितप्य--- उल्मुकम् अवसृज्य दर्भैस्त्वचं ग्राहयति अनपोहन् ---ज्वालाम्', वारा.श्रौ. सू. 1.3.1.26. **०पोह्य** ल्यप्, दूर न ले जाकार 'अनपोह्य -----आहुतिं जुहोति' मै.सं. 37.10.

अनभस्तन्त्र न. पा.भे. अनधस्तन्त्र के लिए, तु. काशिकर सम्पा. वारा.श्रौ.सू. 1.1.1.28; 1.1.1.29 (न दबाने की तकनीक)।

अनभिक्रम्य (नञ् + अभि + क्रम् + ल्यप्) बिना आगे बढ़े, आगे न बढ़कर, तै.सं. 3.1.2.3 (यतो मन्येत अनभिक्रम्य होष्यामीति तत् तिष्ठन् आश्रावयेत्); बौ.श्रौ.सू. 2.153:20; आप.श्रौ.सू. 12.20.22.

अनभिगमयत् वि. (नञ् + अभि + गम् + णिच् + शतृ) (रक्त) को न निकालता हुआ, 'औदुम्बरेण दतो धावते लोहितम् अनभिगमयन्', आप. श्रौ.सू. 10.5.14.

अनभिघारिता वि. (नञ् + अभि + घृ + णिच् + क्त +टाप्) (वपा) जिस पर घी को नहीं उड़ेलते हैं (वाजपेय-सारस्वतप्रभृतः पशवः), आप.श्रौ.सू. 18.6.8; तै.सं. 2.6.3.5(अनभिघारितार्भिवपाभिः प्रचरति) त्रैयम्बकान् एककपालान् --- गार्हपत्ये; 'श्रपयित्वा अनभिघारितान् उद्वास्य --- सते --- समुप्य उपास्ते,' बौ.श्रौ.सू. 1.151:6; iii 229:5; का.श्रौ.सू. 25.10.7 (मेध); 'उख्यस्य मध्यमे पर्याये --- प्राजापत्येष्वालब्धेषु अनभिधारिताभिश्चरति', वैखा.श्रौ.सू. 17.16.

अनभिघार्य (नञ् + अभि + घृ + णिच् + ल्यप्) बिना घी छिड़के, घी न छिड़ककर (अन्वाहार्यपचने ओदनं पक्त्वा अभिघार्य अनभिघार्य वा), भा.श्रौ.सू. 3.3.11; आप.श्रौ.सू. 3.3.14; (वाजिन्) भा.श्रौ.सू. 8.3.14

अनभिघृत वि. (नञ् + अभि + घृ + क्त) घृत से असिक्त (हविष्), मै.सं. 1.10.20; काठ.सं. 23.1.

अनभिघ्नत् वि. (नञ् + अभि + हन् + शतृ) अभिघात (ताडन-चोट) न करता हुआ 'वेदेन अपभासमानं करोति अनभिघ्नन पाणिना वेदशिरसा च' मा.श्रौ.सू. 18.22; हर्वीषि उद्वासयति अनभिघ्नन्, वारा.श्रौ.सू. 1.3.2.26.

अनभिचरत् वि. (नञ् + अभि + चर् + शतृ) अभिचार (जादू-टोना) न करता हुआ, मै.सं.4.5.5; मा.श्रौ.सू. 28.7; 53.23; (तुष्णीम्); 'यूपाग्रं स्वरुणा अभिनिदधाति तुष्णीम् अनभिचरतः', वारा.श्रौ.सू. 3.2.6.24.

अनभिजुह्वत् वि. (नञ् + अभि + हु + शतृ) आक्रमणात्मक तरीके से आगे धकेलते हुए हवन न करना 'आहुति जुहोति अनभिजुह्वत्' जै.गृ.सू. 1.3.

अनभिदग्ध वि. न जला हुआ 'अनभिदग्धे सोमे पार्श्वतो देवयजनम् अध्यवसाय कृतान्तादेव प्रक्रामेयुः, आप.श्रौ.सू. 14.25.2; हि.श्रौ.सू. 15.6.22.

अनभिधान न. अनुल्लेख, उल्लेख न होना, शां. श्रौ.सू. 5.1.3.

अनभिधून्वत् (नञ् + अभि + धू + शतृ) वीजन न करता हुआ, न कंपाता हुआ, न झाड़ता हुआ, 'अध्वर्युप्रथमाः त्रिः अनभिधून्वन्तः प्रतिपरियान्,' भा.श्रौ.सू. 11.8.17; आप.श्रौ.सू. 15.8.14; सव्यान् उरून् --- आप. श्रौ.सू. 10.17.14 (त्यः)

अनभिध्वंसयत् वि. (अन्य पात्रों पर) पिसे हुए भुने जौ अर्थात् सत्तू को न गिराता या फैलाता हुआ, काठ.सं. 27.8; मा. श्रौ.सू. 2.3.5.8; हि.श्रौ.सू. 8.4.17; (सक्तुभिः) आप.श्रा.सू. 12.14.15 (आत्मानम्)।

अनभिनिरुप्ता वि. (स्त्री.) (वह देवता) जिसके लिए हविर्द्रव्य को निकाला नहीं गया है, भा.श्रौ.सू. 3.1.30. (षड्भिरभिजुहोति यद्यनभिरुप्तामावाहयेत् यथावाहित माज्येनोपांशु यजेत), मा.श्रौ.सू. 96.23.

अनभिपरिहार पु. न गुज़रना, व्यवधान का अभाव 'औपयाज अङ्गार', आश्व.श्रौ.सू. 4.123 (टीका-व्यवायापहारे यज्ञः कर्तव्यः)।

०परिहृत वि. न गुज़ारा गया, बौ.श्रौ.सू. 32.24.3

अनभिप्रथन न फैलाना, न बिछाना, 'कपालकर्णे --- कपालानां स्रुवाहुतीर्जुहुयात्', बौ.श्रौ.सू. 3.325:6

०प्रपाद पु. न पहुँचने वाला 'उभयत एव परिस्तृणन्ति अनभिप्रपादाय' का.सं. 29.2.

०अभिप्रश्वसत् वि. प्रश्वास न लेता हुआ बौ.श्रौ.सू. 1.267 : 18 (प्रर्वाय पात्र)।

० अभिप्राणत् साँस न छोड़ता हुआ, भा.श्रौ.सू. 1.2.19; आप. श्रौ.सू. 15.2.11 (प्रवर्ग्य)

अनभिप्रेषित वि. अनाज्ञप्त, जिसके लिए आज्ञा नहीं दी गई है, 'न अनभिप्रेषितम् अध्वर्युणा किञ्चन क्रियते', श. ब्रा. 4.6.7.19.

०प्रोक्षत् (हविषों पर) प्रोक्षण (छिड़काव) न करता हुआ मा.श्रौ.सू. 13.13

अनभिभाषमाण वि. न बोलता हुआ 'सर्वरात्रं तिष्ठेत् स्त्रीशूद्रमनभिभाषमाणः', मा.श्रौ.सू. 113.19.

०भाष्य ल्यप्, न बोलकर, विना बोले, वैखा.गृ.सू. 2.11; (व्रतपारायणं विजानीयात्)

अनभिमुख (आचार्य) के अभिमुख (सामने) न होने वाला आप.श्रौ.सू. 1 (2).6.29; हि.श्रौ.सू. 26.2.43; (-मुखम्) क्रि.वि. बिना सामने आए, सम्मुख हुए बिना, कौशि.सू. 11.20

अनभिमृत वि. निर्दुष्ट, अशुद्ध न किया हुआ (यावद् वेदिः), मै.सं. 1.6.3 (यद्वल्मीकः)।

अनभिमृष्ट वि. (नञ् + अभि + मृष् + क्त) अस्पृष्ट, जिसे हुआ नहीं गया है, बौ.श्रौ.सू. 2.46:4, 2.421:4 (चिति)

अनभिरूपा वि. विधि द्वारा जो विहित नहीं है, आश्व.गृ.सू. 3.7.3 (नृत्यादि कर्म)

अनभिवाता वि. अ-रुग्ण, व्याधि-रहित 'अभिवातासु या अनभिवाताः स्युः तासामाज्यं मन्थयेत्', (गावः) ला.श्रौ.सू. 8.5.3 (टीका-अव्याधिता)

अनभिवादुक वि. (नञ् + अभि + वद् + उकञ्) अभिवादन (प्रणाम) न करने वाला, गो.ब्रा. 1.3.10; वैता.सू. 11.18.

अनभिविद्ध (नञ् + अभि + व्यध् + क्त) जो क्षय को प्राप्त न कराया गया हो (यज्ञस्य) तै.सं. 2.6.8.4; गो.ब्रा. 2.1.3

अनभिषिक्त (नञ् + अभि + सिञ्च + क्त) जिसका अभिषेक नहीं हुआ है, जो स्नात अथवा प्रोक्षित नहीं है, बौ.ध.सू. 2.4.1

०षुत वि. (षु + क्त) (सोम के डण्ढल, जिनको ग्रावा से) दबाया या निचोड़ा नहीं गया है, 'जीवग्रहो वा एषा यद् अदाभ्यो अनभिषुतस्य गृह्णाति', तै.सं. 6.6.9.2; मै.सं. 4.7.7.

अनभिषेक्य (राजा के रूप में) अभिषेक के अयोग्य, ला.श्रौ.सू. 9.1.22= द्रा.श्रौ.सू. 25.1.20

०षेचनीय वि. अभिषिक्त होने के लिए अयोग्य, श.ब्रा. 13.4.2.17 (विश)

०ष्टुता वि. अप्रशंसित, जै. ब्रा. 2.37.

अनभिस्वरित वि. (तृच) जिस पर कोई साम-गान नहीं होता है, जै.ब्रा. 1.112; (देखें- अभिस्वरित, पञ्च.ब्रा. 13.2.13 कैलेण्ड की टीप्पणी के साथ); सं. डि.डे. संगीत के स्वरों सहित न गाया हुआ।

अनभिहित वि. न नाथा हुआ (अश्व), तै.सं. 7.4.22.1; (साय ---रशनायुगले) -य स्वाहा, श.ब्रा. 3.2.4.13 (रज्जु), (रथ) बौ.श्रौ.सू. 2.87:6.

अनभिहुत (अग्नि) जिसमें कोई आहुति नहीं दी गई है, ऐ.ब्रा. 40.1; 'न उपस्पृशेत्', भा.श्रौ.सू. 5.9.11; (जल) बिना आहुति (अर्पण) वाला, बौ.श्रौ.सू. 2.98:10; 5.9.11 (आधान)।

अनभीष्ट वि. जिसे कोई आहुति नहीं दी जाती, मै.सं. 1.10.17

अनभ्यक्त वि. (नञ् + अभि + अञ्ज् + क्त) जिसे लिप्त न किया गया हो, ऋ.वे.(खिल) 5.13.1; शा.श्रौ.सू. 12.21.1.

अनभ्यारोढ़ वि. (उद्गाता के उदुम्बर-आसन पर) न चढ़ने वाला, जै.ब्रा. 2.417.

अनभ्यासादयत् वि. अतिक्रमण न करता हुआ अथवा न पहुँचता हुआ, 'अनो इतरे रथाः पश्चाद् अनुयूरित्', आप.श्रौ.सू. 18.4.17; हि.श्रौ.सू. 13.1.51.

अनभ्याहत वि. (नञ् + अभि + आ + हन् + क्त) अव्यवहित, व्यवधान-रहित, आश्व.श्रौ.सू. 4.15.11.

अनभ्याहतम् क्रि.वि. बिना किसी को सम्बोधित किए, आश्व. श्रौ.सू. 4.15.11; देखें रानाडे, अं. अनु. पूना 1983-86; किसी (संगीत) स्वर को बिना खीचें, श्रौ. को. (अं) 2.2.381.

अनभ्युच्छिन्दत् वि. (नञ् + अभि + उद् + छिद् + शतृ) न उठाते हुए, (जब तक ऋत्विक् की पकड़ है तब तक) सम्पर्क न खोते (छोड़ते) हुए, भा.श्रौ.सू. 5.3.10 (ब्रह्मौदनम्)।

अनभ्युत्थायिन् वि. (नञ् + अभि + उद् + स्था + णिन्) सम्मान-प्रदर्शन के लिए न उठने वाला, का.श्रौ.सू. 22.5.27.

अनभ्युद्दृष्ट वि. जिसके यज्ञ के दौरान(चन्द्रमा) दिखाई न पड़ा हो, का.श्रौ.सू. 25.4.50.

अनर्घ वि. अमूल्य, अनमोल (सीसम्), श.ब्रा. (को.) 7.3.1.9.

अनर्थक वि. बेकार, व्यर्थ, 'अध्यायानध्यायान् ह्युपदिशन्ति तदनर्थकं स्याद् वाजषनेयिबाह्मणं चेदवेक्षेत,' हि.श्रौ.सू. 26.4.7.

अनवक्लृप्त वि. (नञ् + अव + क्लृप् + क्त) अनुचित, असङ्गत 'अश्वतरः ------बर्हिषि', तै.सं. 7.1.1.3; 'एतानि छन्दांसि माध्यन्दिने', पञ्च.ब्रा. 4.4.8; देवों के भोजन करने से पहले भोजन करना, श.ब्रा. 1.1.1.8; 'यत् पुरस्तात् धाय्ये दधाति', श.ब्रा. 1.4.1.37.

अनवक्राम पु. (नञ् + अव + क्रम् + घञ्) नीचे न जाना, अवनति का अभाव 'विष्णोः क्रमोऽसि इति अतिक्रामति यज्ञस्य अवक्रामाय', मै.सं. 4.1.14 -**क्रामत्** वि.(प्रस्तर पर) पाद-प्रक्षेप न करने वाला (पैर न रखने वाला), वैखा. श्रौ. सू. 6.3.

अनवक्रामम् क्रि.वि. बिना पाद-प्रक्षेप किए (बिना पैर रखे), आप.श्रौ.सू. 2.13.7; 'अग्राविष्णू मा वामवक्रमिषमित्यग्रेण स्रुचोऽपरेण मध्यमं परिधिमनवक्रामं प्रस्तरं दक्षिणेन पदा दक्षिणातिक्रामति उदक् सव्येन।'

अनवक्लिश्नत् वि. (नञ् + अव + क्लिश् +शतृ) खिन्न न करते हुए 'अग्रेण ध्रुवाम् अनवक्लिश्नन् प्रस्तरम् अत्याक्रामति', भा.श्रौ.सू. 2.13.7.

अनवगत वि. अज्ञात, न जाना हुआ 'यच्चावगतं यच्चानवगतं सर्वस्यैव प्रायश्चित्तिः', श.ब्रा. 1.2.12.

अनवघ्नत् न. (नञ् + अव + हन् + शतृ) कूँटते हुए अथवा भूसी न निकालते हुए 'अनवघ्नन् वा हविष्कृतं ह्वयति', आप.श्रौ.सू. 1.19.8; हि.श्रौ.सू. 1.5.50.

अनवच्छित्ति स्त्री. (नञ् + अव + छिद् + क्तिन्) सातत्य, अवच्छेद (क्रमभङ्ग) का अभाव, 'यजमानस्यैवैष यज्ञस्य अन्वारम्भोऽनवच्छित्यै', तै.सं. 6.1.11.5.

०च्छिन्न, वि. सातत्ययुक्त, जै.ब्रा. 1.158; निदा.सू. 116.23.

अनवद्य वि. दोष-रहित, निर्दोष, अनिन्द्य, 'यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेव्यानि। नो इतराणि', तै.आ. 7.11.2.

अनवद्यम् दोषहीन रूप से, निर्दोषतापूर्वक 'अनवद्यं गृहधर्मं चरित्वा यज्ञान् यजति', अग्निवे.गृ.सू. 2.7.10

अनवधाय (नञ् + अव + धा + ल्यप्) स्थापित किए बिना अथवा रखे बिना 'न अनवधाय अवसृजेत् अनिन्द्रवायवे पुरोडाशवृगलम्', मा.श्रौ.सू. 81.1.

अनवधृत वि. निश्चित न किया हुआ, न जाना हुआ, (सुब्रह्मण्या), आश्व.श्रौ.सू. 10.4.20

०म् असुरक्षापूर्वक, कौषी.ब्रा. 16.4

अनवधृष्य वि. अनाक्रमणीय, अप्रहरणीय, श.ब्रा.1.4.3.1.

अनवनिज्य (नञ् + अव + निज् + ल्यप्) न धोकर, धोए बिना (हस्तौ पात्राणि), भा.श्रौ.सू. 2.3.18; आप.श्रौ.सू. 2.13.15.

अनवनीत वि. न उड़ेला हुआ, 'न कञ्चन द्विदेवत्यानाम् अनवनीतम् उत्सृजेत्', आश्व.श्रौ.सू. 5.6.68; टीका- 'द्विदेवत्यानां मध्ये कञ्चन ग्रहम् अनवनीतं नोत्सृजेत्'.

अनवमर्शम् क्रि.वि. विना सम्पर्क रखे, बिना छुए 'क्लृप्ता वेदिः तेनावमर्शम् अचारिष्ट तस्मात् पापीयांसो अभूत् तेनानवमर्शम् उत्तमं परिक्षालयेत्', श.ब्रा.1.2.5.26 'अनवमर्शम् उत्तमं परिक्षालयेत्', श.ब्रा. 1.3.18 (स्रुक्-सम्मार्जनं तस्मात् प्रतप्य प्रतप्य प्रयच्छति).

अनवमृशत् वि. (नञ् + अव + मृश् + शतृ) न छूता हुआ, श.ब्रा.1.4.3.19, का.श्रौ.सू. 3.2.22.

अनवरुद्ध वि. स्वीकृत अथवा नियत (नासोमयाजी सन्नयेत् सोमाहुतिर्वा एषा सानवरुद्धा सोमयाजिनः) श.ब्रा. 1.6.4.10

अनवरोध पु. अवरोध अथवा रुकावट न होना 'पाणौ चेद् वासे अनवरोधः', आश्व.श्रौ.सू. 3.14.18 (अतिथिब्राह्मणस्य)।

अनवलोभन न. गर्भपात को रोकने के लिए सम्पाद्य कृत्य का न होना जिसमें पति एक गोल प्रभाग की छज्जा में अपनी पत्नी की दायीं नाक में एक औषधि का रस डालता है, आश्व.गृ.सू. 1.13.1, 5-7; बृहदा.उप. 6.4.24 में उल्लिखित बतलाया गया है; देखें-गर्भरक्षण।

अनवर्तिमुखिन् वि. निर्धनता के अभाव को न बताने वाला, आप.श्रौ.सू. 8.11.10; (यथा भोजनेच्छा न भवति तथा कार्याः, चिन्नास्वामी शास्त्री) (गृहमेधीया); भा.श्रौ.सू. 8.13.20; हि.श्रौ.सू. 5.3.33, तु. अनवर्ति-अनिर्धनता, साय०: पशुतः पशुभिरनवर्तिः अदरिद्रः, पञ्च.ब्रा.7.9.21.

अनववदितृ वि. (दूसरे के बारे में) जो बुरा नहीं बोलता, जो दूसरों की बुराई नहीं करता, जै.ब्रा. 2.417

अनववृष्ट वि. जिस स्थान से वृष्टि दृष्टि-ओझल नहीं हुई है अर्थात् जहाँ अभी भी वर्षा हो रही है (न अधीयीत), आप.श्रौ.सू. 15.21.8; भा.श्रौ.सू. 11.22.10.

अनवशेषम् क्रि.वि. न बचने देते हुए, बिना बचाए (सम्पूर्ण का एक भाग), न रसान् गृहे भुञ्जीतानवशेषमतिथिभ्यः, हि.श्रौ.सू. 27.1.104.

अनवस वि. (न विद्यते अवसं यस्य) यात्रा के (अर्थात् रक्षात्मक उपाय-प्रविधि) लिए भोजन न रखने वाला, ऋ. 6.66.7; जै.ब्रा. 1.165, 2.255 (पी.वु., मो.वि.-न रुकने वाला,

पी.वु.-विश्रामरहित, आप्टे—फिलहाल खाने के लिए न रुकने वाला)

अनवसर्जन न. सम्पर्क न छोड़ना (ग्रहाणाम्), 'अनवसर्जनं च द्विदेवत्यानाम् आशेषस्य अवनयात्', शा.श्रौ.सू. 7.4.17.

अनवसर्पण न. अगमन, न जाना अर्थात् निश्चल रहना,(अथ एने शङ्कुभिः परिणिहन्ति द्वाभ्यां पुरस्तात् द्वाभ्यां पश्चात् अभितो अनवसर्पणाय), बौ.श्रौ.सू. 1.92.12 (अभिषवण-फलके); टीका (असञ्चलनार्थम्)।

अनवस्तीर्ण वि. (नञ् + अव + स्तृ + क्त) दर्भ से न ढका हुआ 'अग्रेण शालामुखीयं-पात्नीवतं मिनोति अधोनाभिम् अनवस्तीर्णे यूपावटः' भा.श्रौ.सू. 138.1.

अनवस्थितत्व न. अनिश्चितता, का.श्रौ.सू. 18.6.31.

अनवानत् वि. (नञ् + अव + अन् + शतृ) प्राणन न करता हुआ, (बीच में) साँस न लेता हुआ, अर्थात् लगातार उच्चारण करते हुए 'अनवानन् अनुब्रूयात्' श.ब्रा. 1.3.5.13; जुहोति, श.ब्रा. 4.4.1.5; का.श्रौ.सू. 21.4.6; यजति, आश्व.श्रौ.सू. 8.1.1; शां.श्रौ.सू. 7.7.7; मै.सं. 13.2.15.

अनवानम् क्रि.वि. बीच में विना साँस लिये, 'अंशुं गृह्णाति', तै.सं. 6.6.10.2; बौ.श्रौ.सू. 174:8; आप.श्रौ.सू. 12.8.5; 'द्विदेवत्यान् यजेत्', ऐ.ब्रा. 9.4; 'प्रातःसवने' ऐ.ब्रा 27.5, त्रिः प्रथमाम्----त्रिरुत्तराम्, श.ब्रा.(को.) 2.3.3.9; अध्वर्युः---गार्हपत्ये अनवानं सन्ततः सप्त प्राणाहुतीर्जुहोति, बौ.श्रौ.सू. 1.274:3; 'अध्यर्धाम् अनवानम्' आश्व. श्रौ.सू. 2.19.17; 'ऊर्ध्वज्ञुः आसीनो होता यजति अनवानम्', भा.श्रौ.सू. 8.4.1; आप.श्रौ.सू. 8.3.9; अनवानम् अनूयाजान् यजति, आप.श्रौ.सू. 24.13.7; तुष्णीम् अनवानं दक्षिणा गत्वा कुम्भम् अक्ष्णौति, का.श्रौ.सू. 21.4.7; बिना साँस लिये मन्त्र-पाठ अथवा गायन का एक प्रकार, वामदेव्यम् आ प्रतिहाराद् अनवानं गेयम्, जै.ब्रा. 1.333; उष्णिक्ककुभौ आप्रतिहाराद्; अनवानं गेये, जै.ब्रा. 1.337; बिना यति के, आप.गृ.सू. 21.9 (मासिकश्राद्ध) तु. ऋगावानम्।

अनवेक्षणम् क्रि.वि. (न अवेक्षणम् अनवेक्षणं तद्यथा स्यात्) बिना देखे, 'अनिन्द्रवायव्यं प्रतिगृह्य ऊरौ दक्षिणे निधाय अनपिधानम् अनवेक्षणं च द्विदेवत्यानाम् आ शेषस्य अवनयेत्', शां.श्रौ.सू. 7.3.1 (टीका-आच्छादनम् अवेक्षणञ्च न कुर्यात्)।

अनवेक्षम् क्रि.वि. बिना पीछे देखे 'अनवेक्षं प्रत्याव्रज्य अप उपस्पृश्य श्राद्धम् अस्मा दद्युः', आश्व.गृ.सू. 4.5.8.

०वेक्षमाण वि. पीछे न देखता हुआ 'अश्वत्थात् शमीगर्भात् अरणी आहरेत् अनवेक्षमाणः', आश्व. श्रौ.सू. 2.1.6. (टीका-पृष्ठतो अन-); मा प्रणमेति सूक्तं जपन्, आश्व.श्रौ.सू. 2.5.4; 'परास्य पात्रम्', बौ.श्रौ.सू. 1.46:7; उच्छिष्टखरे मार्जयित्वा, वैखा.श्रौ.सू. 13.18.

अनवेक्ष्य (नञ् + अव + ईक्ष् + ल्यप्) बिना देखे 'एको अनवेक्ष्य आज्यमुत्पुनाति', वाधू.श्रौ.सू. 2.14.2; ला.श्रौ.सू. 2.5.14; ०म्, पा.भे. अनवेक्षम् के लिए

अनवेत वि. (नञ् + अव + इ + क्त) अप्राप्त, अनुपलब्ध 'यदि एकं कपालं नश्येत् मासः संवत्सरस्य अनवेतः स्यात्, अथ यजमानः प्रमीयेत् यदि द्वे नश्येतं द्वौ मासौ संवत्सरस्य अनवेतौ स्याताम्', तै.सं. 2.6.3.5.

अनशन न. वह मृतात्मा जिसने 2 या 3 या 6 या 12 दिन तक वेद पढ़ा हो, की स्मृति (दुःख के चिह्न के रूप) में रखा जाने वाला अनशन (भोजन न करने) का व्रत, बौ.पि. मे. 1.8.10; पर पत्नी इस नियम से मुक्त है; वि. वह जो भोजन नहीं करता है, ऋ.वे. 10.90.4; देखें- अनशनता, श.ब्रा. 2.5.1.3.

अनशनम् क्रि.वि. बिना भोजन किए, वैखा.श्रौ.सू. 20.10

अनश्नत् वि. (नञ् + अश् + शतृ) (वह) जो कुछ नहीं खाता, अनशन व्रत रखने वाला, आप.श्रौ.सू.5.25.4; आप.श्रौ.सू. 3.12.9; आप.श्रौ.सू. 9.7.8; मा.श्रौ.सू. 99.10.

अनश्शत वि. सौ रथों वाला 'अश्वाननश्शतो दानं यमो राजाभितिष्ठति', तै.आ. 6.5.2.

अनष्टगु वि. जिसकी गायें नष्ट नहीं हुई हैं 'दार्षद्वते संवत्सरं ब्राह्मणस्य गा रक्षेतानष्टगुः', आप.श्रौ.सू. 23.13.11.

अनष्टापदी वि. (स्त्री.) जिसके आठ पैर नहीं हैं, 'अष्टापदीं भुवनानु प्रथन्तं स्वाहा इति प्रथयति एव एनाम् एतत् सुभूयो ह जयति अष्टापद्येष्ट्वा यदु च अनष्टापद्या', श.ब्रा. 4.5.2.12.

अनस् न. सोम अथवा अन्न को ढोने वाली फलक से युक्त गाड़ी जो चटाइयों अथवा तस्सदृश वस्तु से घिरी हो और एक चद्दर (छदिस्) से ढकी हो, आप.श्रौ.सू. 10.24.2 एवं टीका, इस शब्द की व्याख्या प्रायः 'शकट' के रूप में की जाती है; उत्पत्नीम् आनयति अन्वनांसि प्रवर्तयन्ति', तै.सं.

3.1.3.1; बौ.श्रौ.सू. 2.155:3; भा.श्रौ.सू. 12.16.7; आप.श्रौ.सू. 11.17.1; 'यस्य अनसो हविर्गृह्णन्ति', श. ब्रा. 1.8.3.26; (भूमा); 1.1.2.5; अवस्थिते अनसि---- राजानम् अभिमूखो अवतिष्ठते; आश्व. श्रौ.सू. 4.4.4; शाखाम् अग्निष्टे अनसि----उद्गूहति, बौ.श्रौ.सू. 1.2.2; भा.श्रौ.सू. 1.3.2; आप.श्रौ.सू. 1.2.10.

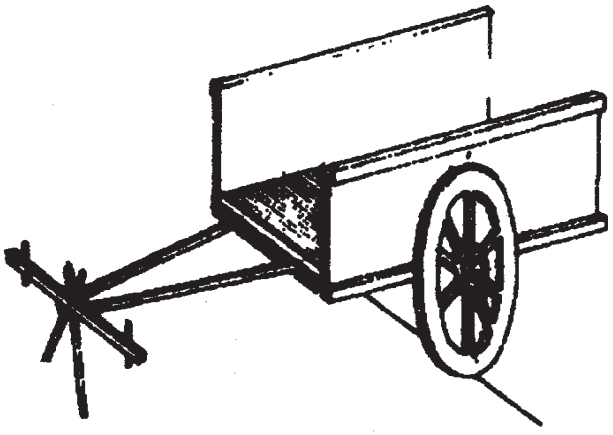

अनस्

अनसूय वि. निन्दा न करने वाला, ब्रह्मचारिन्, हि.श्रौ.सू. 26.1.90

अनसूया स्त्री. ईष्या का अभाव, 'सर्वाश्रमाणां समयपदानि', का.श्रौ.सू. 26.6.14

अनस्तमित वि. अस्त न हुआ, न डूबा हुआ (अधि. जब सूर्य अस्त न हुआ हो), जै.ब्रा. 3.307; मन्थनम्, श.ब्रा. 2.17.7; जुहुयात्, मा. श्रौ. सू. 174.3; 'अनस्तमिते पुरोडाशान्तं कृत्वा रात्रिशृतया प्रातश्चरन्ति' का. श्रौ.सू. 4.11.15.

अनस्थि वि. हड्डी से रहित, जो हड्डी नहीं है; सं डि.डे. 'अनस्थिभिरिदं वर्धयति', आप.श्रौ.सू. 7.24.1; मा.श्रौ.सू. 56.2; का. श्रौ.सू. 6.8.13.

-**चित्** वि. हड्डियों को चुनने (इकट्ठा करने) वाला, मै.सं. 3.5.1

अन:सिद्ध वि. गाड़ी द्वारा सिद्ध (निष्पन्न), गाड़ी के आकार का, 'अन:सिद्धं हविर्धानं पात्रसिद्धा: खरा:', मा.श्रौ.सू. 224.7.

अनाक्ताक्ष वि. जिसकी आँखों में अञ्जन नहीं लगा है, शा.श्रौ.सू. 16.13.10.

अनाख्या स्त्री अनुचित नाम, 'तद् ब्रूयु: अस्तोत्रं वा एतद् यद् सार्पराज्ञाम्, अनाख्यां हि मन्यते', क्षुद्र 3 (123)

अनाख्यात न. (प्रेमियों के नाम की) घोषणा न करना, का.श्रौ.सू. 5.5.8 (वरुणप्रघास)।

अनागच्छत् वि. (अधि.) प्रतीत न होता हुआ 'दिखाई न देता हुआ' 'तस्मिन् अनागच्छति अन्यं (पशुं) तद्दैवतं प्राकृत्य यजेत', आप.श्रौ.सू. 9.18.5 (आगमयितुम् अशक्ये सति)

अनागत वि. न आया हुआ, अदृष्ट, अप्राप्त, उपलब्ध न किया गया 'अनागतेन हि सोमेन यजते यो अक्रीतेन यजते', तै.सं. 6.2.1.1, श.ब्रा. 3.4.1.5

अनागूर्ति स्त्री 'आगु' का अनुच्चारण, अर्थात्, यज्ञीय कृत्य में प्रशंसात्मक उद्घोष अथवा मन्त्र ('ये यजामहे', इत्यादि); 'अथ यच्चुर्विंशम् अहरुपेत्य अनुपेत्य विषुवन्तं महाव्रतम् उपेयात् कथम् अनागूर्त्यै भवति', गो.ब्रा. 1.4.14 (105.2); (गूर्तिन्) वि. जो 'आगु' संज्ञक (मन्त्रों) को नहीं पढ़ता 'स संस्थितयोरेव दर्शपूर्णमासयोरथामुं लोकमेति तथानागूर्ती', श.ब्रा. 12.2.3.5; 'अनागूर्ति' ह वा एषे अमुं लोकम् इति यो अग्निहोत्रं जुहोति---होष्यन् सायं भवति तद् यथानागूर्ती भवति, श.ब्रा. (को.) 3.1.9.5; तु. आगु.

अनाग्निकी वि. (स्त्री) अग्नि-वेदि (के चयन) के सम्मान (सन्दर्भ) में नियत की गई (दीक्षाओं एवं उपसदों) से हीन; किन्तु अग्नि-वेदि से हीन (सं.डि.डे.); वेदि से हीन (गेल्डर) 'तीव्रसुत्----येषाम् अनाग्निक्यो दीक्षा उपसद:', मा.श्रौ.सू. 197.1;

अनाग्नेय वि. अग्नि-देवता से सम्बद्ध कृत्य से रहित, मै.सं. 1.7.3; 'यद् अनाग्नेयम् अग्रे यज्ञस्य क्रियते', काठ.सं. 18.19; नानाग्नेयं पुनराधेये कुर्यात् व्यृद्धम् एव तत्, तै.ब्रा. 1.3.1.2.

अनाचम्य ल्यप् (शुद्धि के लिए तीन बार) आचमन न कर के, 'प्रतिभक्षितं होतृचमसे किञ्चिद् अवनीय अनाचम्य उपह्वानादि पुन: सम्भक्षयित्रा---न सोमेन उच्छिष्टा भवन्ति, शेषं होतृचमसे आनीय उत्सृजेत्', आश्व.श्रौ.सू. 5.6.3.

अनाचान्त वि. (शुद्धि के लिए) जिसने जल का आचमन नहीं किया है, 'भुक्तवत्सु अनाचान्तेषु पिण्डान् निदध्यात्', आश्व.गृ.सू. 4.8.12.

अनाचार पु. आचरण न करना, प्रयुक्ति का अभाव 'अनाचार-स्तूष्णिक्षु बार्हतानाम् अनेकाक्षरणनिधानानि चात्र भूयिष्ठानि सामानि', ला.श्रौ.सू. 10.1.15; अनाचारो हि षडहे अन्यत्र तृतीयाद् अह्न: सतोबृहतीनाम्, ला.श्रौ.सू. 10.8.5.

अनाच्छादित वि. न ढका हुआ (अभिवर्षये) वैता.सू. 12.12 (अपः समुद्रात् इति मन्त्रः)।

अनाच्छिन्नस्तुक वि. (न आछिन्नामि स्तुकानि यस्य) (बहु) दो सींगो के बीच जिसकी ऊन की गाँठ बँधी नहीं है, या काटी गई, मै.सं. 3.8.5; वारा.श्रौ.सू. 1.6.1.36

अनाच्छिन्नपवित्रा वि. (स्त्री) जिसमें पवित्र (पवित्र घास की पत्तियाँ जो काटी नहीं गई हों), हि.श्रौ.सू. 1.7.24.

अनाच्छृण्ण वि. (नञ् + आ + छृद् + क्त) (पर)न उड़ेला हुआ 'आसुर्यं वै पात्रम् अनाच्छृण्णम् आच्छृणन्ति देवत्रैव करोति', काठ.सं. 19.7.

अनाज्यभाग पु. (द्वि०) दो घृत-भागों से भिन्न (प्रतिदर्श दृष्टि में), तै.ब्रा. 1.3.1.3 ०**भागा** वि. (स्त्री.) दो आज्य भागों से रहित, आश्व.श्रौ.सू. 4.3.3; (प्रायणीय)

अनाज्यलिप्त वि. (कंस या चमस), जो घृत से लिप्त न हो, बौ.श्रौ.सू. 1.132:2; (अववृ-स्रुवेण अनाज्यलिप्तेन अभिजुह्वति) बौ.श्रौ.सू. 2.236.12 वाजिनं निश्चित्य उत्करे करोति अनाज्यलिप्तं नाम्, का.श्रौ.सू. 4.4.10 (आमिक्षा); का.श्रौ.सू. 4.4.9 (वाजिन्)

अनाज्ञातदोष वि. जिसकी (या जिसमें) कमियाँ नहीं जानी गई हैं, जिसका दोष ज्ञात नहीं है 'यत्पाकत्रा मनसा, इति जुहुयात्', वैखा.श्रौ.सू. 20.26

अनाज्ञात (प्रायश्चित्त) न. एक अज्ञात (दोष) के लिए प्रायश्चित्त, 'अनाज्ञातं पुरुषसम्मितम् इत्येताभ्यां स्रुवाहुती जुहुयात्', बौ.श्रौ.सू. 3.324.4

अनाज्ञातबन्धु वि. जो अपने कुल को नहीं जानता है, 'अनाज्ञात-बन्धोः पुरोहितप्रवरेण आचार्यप्रवरेण' हि.श्रौ.सू. 21.3.17; वैखा.श्रौ.सू. 6.5

अनाज्ञातयोग पु. अज्ञात (दोष) से सम्बन्ध, 'अनाज्ञात-प्रायश्चित्तये----गायत्र्याः स्थाने द्वे बृहत्यौ निदधाति', निदा.सू. 129.6.

अनाज्ञाताज्ञातकृत वि. विज्ञात एवं अज्ञात लोगों द्वारा किया गया, 'देवकृतस्यैनसो अवयजनम् असि स्वाहा ---- आत्माकृतस्यानाज्ञात-----' वैता.सू. 23.12

अनातच्य (नञ् + आ + तञ्च् + ल्यप्) बिना जमाये, आतञ्चन किए बिना, बौ.श्रौ.सू. 1.162:15.

अनातुर वि. जो आतुर या क्षुब्ध नहीं है, अक्षुब्ध, 'विश्वदानीम् आभरन्तो अनातुरेण मनसा', आश्व.श्रौ.सू. 2.5.9; भा.श्रौ.सू. 6.5.6; आप.श्रौ.सू. 6.2.2; मा.श्रौ.सू. 38.7; वारा.श्रौ.सू. 1.5.4.36; बौ.श्रौ.सू. 6.6.2.

अनात्मन् पु. जो आत्मा नहीं है, शरीर का धड़ अथवा मध्य भाग 'आत्मने स्वाहा अनात्मने स्वाहा', तै.सं. 7.5.12.2.

अनात्रेयी स्त्री (वह स्त्री) जो ऋतु-काल (मासिक धर्म) में स्थित है, मासिक धर्म के स्राव (रजःस्राव) के प्रारम्भ से जिसने स्नान नहीं किया है, गौ.ध.सू. 3.4.17; वसि.ध.सू. 20.37

अनादरण न. अ-स्वीकृति अमान्यता किसी विशेष क्रिया का खण्डन (निषेध) 'पशुम् उपालभ्य वायव्यम् आलभेत मिथ्यासङ्कल्पदोषपरिजिहीर्षया, अनादरणं वा', का.श्रौ.सू. 25.9.3.

अनादान्त वि. (नञ् + आ + दम् + क्त) अनियन्त्रित, 'अथापि आत्मोक्तो विषुवान् तं प्राणोक्तया गायत्र्या प्रत्यपित्सीद् दान्तो अनादान्तम् इति वा', निदा.सू. 89.16

अनादिष्ट वि. किसी विधि द्वारा अविशेषीकृत (न नियत किया हुआ), विशिष्ट रूप से न निर्धारित किया गया, होता कुर्याद् अनादिष्टम्, शां.श्रौ.सू. 1.1.7; 'अनादिष्टो अग्निः', बौ.श्रौ.सू. 3.191.6; 'अथ इमे एकाहास्तेषां यानि अहानि अनादिष्टानि अग्निष्टोमा इत्येव तानि जानीयात्', बौ.श्रौ.सू. 3.313:14; 'सर्वत्र अनादिष्टेषु मनस्वती मिन्दाहुती व्याहृतयो होतार इति जुहुयात्, अध्वर्युम् एव अनादिष्टे--- कर्तरि प्रतीयात्', भा.श्रौ.सू. 1.1.18; अग्निष्ठ उपाकरोति येषां च अनादिष्टो देशः', आप.श्रौ.सू. 20.13.11; 'उत्तरपूर्वे जुहोति उपरवे चमसं दिष्टं प्रजापतये स्वाहा इति अथ अन्ये ये अनादिष्टाः तान् खरे जुहुयात्', का.श्रौ.सू. 25.12.10' ' अना० व्यूहेन भवति', निदा.सू. 148.4; 'एष न्यायो अनादिष्टानाम्', ला.श्रौ.सू. 6.6.11; 'अतिरात्रे षोडशिनि अनादिष्टे--- विराट् उपपद्यते', ला.श्रौ.सू. 10.3.8.

अनादिष्टतृचैकर्च वि. जिसके लिए कोई तृच (तीन ऋचाओं का समूह) अथवा एक ऋचा (एकर्च) विहित न हो, एकर्चस्थानेषु अनापद्यमानानि तृचेषु कुर्यात् अनादिष्ट-तृचैकर्चानि एतेन उद्देशेन कल्पयेत्, ला.श्रौ.सू. 6.4.6; द्रा.श्रौ.सू. 14.4.6.

अनादिष्टदक्षिणा वि. (न आदिष्टा दक्षिणा यस्याः यस्यां वा) (स्त्री.) जिसके लिए दक्षिणा (यज्ञीय शुल्क) नियत नहीं की गई है; 'वासोदक्षिणाः काम्या इष्टयो या अना०',

बौ.श्रौ.सू.2.120:5; 'एकधनम्', मा.श्रौ.सू. 118.8; 'वरं गां त्रिहायणीं चतुर्हायणीं वा', मा.श्रौ.सू. 134.3

अनादिष्टदेवता वि. (स्त्री.) जिसके लिए देवता निर्धारित (आदिष्ट) नहीं है (दक्षिणाः), 'प्राजापत्येन अना----- प्रतिगृणीयात्', ला.श्रौ.सू. 2.8.19; द्रा.श्रौ.सू. 5.4.28; उद्वाहकर्मसु अग्निं पुष्टिपतिं प्रजापतिं च यजेत', काठ.गृ.सू. 2.10.3; अनादिष्टदेवते--- व्याहृतिर्भिजुहोति, भा.गृ.सू. 1.4; 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' हि.गृ.सू. 1.7.19.

अनादिष्टम् क्रि.वि. बिना उल्लेख के, 'देवतायै हविर्गृह्यते', श.ब्रा. 1.8.3.24.

०याज्यापुरोनुवाक्या वि. जिसके लिए याज्या एवं पुरोनावाक्या (संज्ञक) ऋचाएं विहित=नियत नहीं हैं, शां.श्रौ.सू. 1.7.9

०वृक्ष वि. जिसके लिए किसी विशिष्ट वृक्ष का विधान नहीं किया गया है (पात्राणि), 'य. कश्च यज्ञीयो वृक्षः', बौ.श्रौ.सू. 1.16.7; वैकङ्कतानि, आप.श्रौ.सू. 12.15; हि.श्रौ.सू. 1.4.38 (समिधम् आदधाति) इत्यनादिष्टवृक्षम्.

अनादिष्टव्यूह वि. जिसमें छन्दों का पक्षान्तरण नियत नहीं किया गया है, निदा.सू. 147.20.

अनादिष्टस्थाना वि. (स्त्री.) जिसके लिए उचित स्थान एवं काल नियत नहीं किया गया है; सं.डि.डे.: जिसके लिए कर्मकाण्डीय अवस्थिति एवं अवसर निर्धारित नहीं है (इष्टि) 'अथ---पूर्वपक्षस्य पुण्याहानि एतत्तीर्थानि भवन्ति', बौ.श्रौ.सू. 2.119:4.

अनादिष्टाज्यार्थ पु. आज्य=घृत का उद्देश्य एवं स्रोत जो किसी विशिष्ट कृत्य के प्रसङ्ग में विहित नहीं है, वि. उस (कृत्य) के लिए अभिप्रेत जिसके लिए घी निर्धारित नहीं है, (ध्रुवाय एव अनादिष्टाज्यार्थाः क्रियन्ते), भा.श्रौ.सू. 2.12.6.

अनादिष्टान्त वि. (न दिष्टः अन्तः यस्य) जिसका अन्तिम भाग विशेष रूप से उल्लिखित नहीं है, ला.श्रौ.सू. 1.1.5; यावद्यजुः अनादिष्टान्तान् मन्त्रान्।

अनादृत्य (नञ् + आ + दृ + ल्यप्) परवाह न करके, उपेक्षा करके, 'दक्षिणतः प्राचीनावीती निर्वपति दक्षिणावृद् हि पितृणाम्, अनादृत्य तत् उत्तरत एव उपवीय निर्वपेत्', तै.ब्रा. 1.6.8.2; 'शामित्रे पशुकामानाम् आहवनीये स्वर्गकामानाम् इत्यनादृत्य तद् आहवनीय एवानुप्रहरति', बौ.श्रौ.सू. 2.249:8

अनादेश पु. (विशेष) विधान का अभाव, 'अनादेशे बलवन्तस्तपोऽन्विताः पावना भवन्ति', साम.वि.ब्रा. 1.5.2; 'अनादेशे त्रिरात्रम् उपवासः पुष्येण आरम्भः', साम.वि.ब्रा. 2.1.2; अना- 'अष्टकराः पादाः', सर्वानु. 3.11, 'एकाङ्गवाचने दक्षिणं प्रतीयात् अना- आश्व.श्रौ.सू. 1.1.13; 'अना विकल्पभूतौ', शां.श्रौ.सू. 1.16.14; 'अना-प्रकृतिः' आप.श्रौ.सू. 19.18.5; 'अनादेशे अध्वर्युः', मा.श्रौ.सू. 7.7; (आज्यम्) 'तस्य होमो आनादेशे', का.श्रौ.सू. 1.8.38; द्रा.श्रौ.सू. 2.3.11; 'उद्गाता', ला.श्रौ.सू. 1.5.1; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.1; 'प्रथमाभिः विष्टुतिभिः स्तोमविधानम् अनादेशे', ला.श्रौ.सू. 6.2.1; द्रा.श्रौ.सू. 21.1.2; व्यूढः छन्दोमाः सोमसामादेशात् गौरीवीतस्य च अनादेशे, ला.श्रौ.सू. 10.3.12; द्रा.श्रौ.सू. 28.4.19; 'पूर्वया द्वारा अनादेशे', द्रा.श्रौ.सू. 12.1.15; 'मन्त्रानादेशे लिङ्गवतेति भागलिः', वैता.सू. 1.3; 'नित्यम् अक्ष्णयापच्छेदनम् अनादेशे', न. एक साम का नाम, इन्डिशे स्टूडियन 3.204a

०देशम् क्रि.वि. (किसी देवता को) बिना निर्धारित किए, 'अथ यद् आज्यानि गृह्णन्ति तद् ऋतुभ्यश्छन्दोभ्यो गृह्णन्ति तद् अनादेशम् एव गृह्णन्ति', श.ब्रा. (को.) 2.3.1.7

अनाद्रियमाण वि. (नञ् + आ + दृ + यक् + शानच्) आदर न किया जाता हुआ, स्वीकार न किया जाता हुआ, जै.ब्रा.1.220

अनाधाय (नञ् + आ + धा + ल्यप्) (आग पर समिधा को) न रखकर, तै.ब्रा.1.1.9.10.

अनाप्रीत वि. 'आप्री'-संज्ञक सूक्तों द्वारा न प्रसन्न किया गया, 'एतानि पशुशीर्षाणि ----- अनाप्रीतानि हि', श.ब्रा. 6.2.1.37; प्रसन्न न किया गया 'पूर्व में प्रयोग में न लाये गए प्याले एवं तश्तरी के बारे में उक्ति, आप.गृ.सू. 14.14 (पुंसवन); पाँनी निकालने के लिए प्रयोग में न लाया गया, भा.गृ.सू. 1.22 (क्षिप्रंसवन)

अनामत्व न. कोई नाम न होना, किसी नाम के न होने की स्थिति, का.श्रौ.सू. 5.4.5 (प्रकृतेर्वा अनामत्वात्, टीका- नामधेयं हि धर्मान् प्रापयति न चैतान् नामधेयम्)।

अनामन्त्रित वि. सहमति के लिए सम्बोधित न किया गया, (ब्रह्मा अनुजानाति प्रोक्षन्तं हविः पूर्वं परिग्रह परिग्रहीष्यन्तं सामधेनीरनुवक्ष्यन्तम्), मा.श्रौ.सू. 5.2.14.13; 140.4; वारा.श्रौ.सू. 1.1.5.11.

अनामन्त्र्य (नञ् + आ + मन्त्र्+ल्यप्) बिना अनुमति प्राप्त किए 'न माम् अनामन्त्र्य प्रातरनुवाकम् उपाकुर्याः इत्यध्वर्युं ब्रूयात्', ला.श्रौ.सू. 1.8.6; द्रा.श्रौ.सू. 2.4.8.

अनामिका स्त्री. (दाहिने हाथ की) अनामिका-संज्ञक अँगुली; कनिष्ठा को छोड़कर अन्तिम (अँगूठे से चतुर्थ), अनामिका-ङ्गुष्ठाभ्याम् आदाय अन्तरेण स्तनौ वा भुवौ वा निमृज्यात्', श.ब्रा. 14.9.4.5; देवस्य त्वेति अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां प्राश्नाति', का.श्रौ.सू. 2.2.18; 'हिरण्यं बध्नीत', का.श्रौ.सू. 7.6.27; 16.3.4; वैखा.श्रौ.सू. 6.10; 'अक्षिणी विमार्जीत', ला.श्रौ.सू. 2.10.11; 'अनामिकया--- प्रदक्षिणम् आलोड्य'; आश्व. गृ.सू. 1.24.14; 'अनामिकायाः सूर्यः ---- इत्यधिदेवता भवन्ति' वैखा.गृ.सू. 1.2; (उखा के लिए मिट्टी लेने के बाद अन्य मिट्टी इस अँगुली से गड्ढे में डाल दी जाती है), का.श्रौ.सू. 16.3.4. (चयन); द्विः प्राश्नाति (अग्निहोत्र) का.श्रौ.सू. 4.14.26.

अनामृत वि. (नञ् + आ + मृ + क्त) मृत्यु से अप्रभावित, अविनश्वर, अमर, 'यदस्यै पृथिव्याम् अनामृतं देवयजनम्', श.ब्रा. 1.2.5.18; (साय.-अनामृतम् अमरणधर्मकम्), बौ.श्रौ.सू. 1.59:20; का.श्रौ.सू. 5.5.7; वारा.श्रौ.सू. 1.4.3.7.

अनाम्नात वि. (नञ् + आ + म्ना + क्त) पवित्र पाठ्य में न उल्लिखित अथवा न विहित, बौ.श्रौ.सू. 9.16.6; 'याजमानम् अनाम्नातं वा जुहुयात्', मा.श्रौ.सू. 177.15; का.श्रौ.सू. 9.6.2; पु. एक आहुति का नाम, जो 'यूप' तने को गलत विधि से काटने से उत्पन्न आकस्मिकता की स्थिति में दी जाती है। यह आहुति 'त्वं नो अग्ने' एवं 'स त्वं नो अग्ने' ऋचा के साथ दी जाती है; 'काजव' आहुति इसका विकल्प है, श्रौ.को. (अं.) I.1155; मा.श्रौ.सू. 8.13.

०मन्त्र वि. जिसके लिए पवित्र पाठ्य में कोई मन्त्र उल्लिखित या निहित नहीं है, आप.श्रौ.सू. 12.1.6 (खरे पात्राणि); (-याज्यानुवाक्या) वि. जिसके याज्या एवं पुरोनुवाक्या संज्ञक ऋचायें नियत नहीं की गई हैं, मा. श्रौ.सू. 118.19.

अनाम्नान न. (नञ् + आ + म्ना + ल्युट्), वैदिक पाठ्यों में न उल्लिखित (अनुल्लेख) हि.श्रौ.सू. 6.63.

आनायतन वि. (न विद्यते आयतनं यस्याः) (स्त्री.आ) 1. बिना किसी सहारे का, 'अनायतनं वा एतत् साम यद् अनिधनम्', पञ्च.ब्रा. 5.2.5; 2. शारीरिक सहारे अथवा विश्राम-स्थान से हीन, 'आयतनवतीर्वा अन्या आहुतयो हूयन्ते अनायतना वा अन्या आहुतयो हूयन्ते अनायतन अन्यः', तै.सं. 3.1.9.2; 'याः सौम्या ता अनायतनाः', तै.सं. 3.1.9.3; बौ.श्रौ.सू. 2.159:19; यो वा अग्निम् अयोनिम् अनायतनं चिनुते अयोनिः अनायतनो भवति', Ms 3.4.10; 'यद् अनिधानेन अग्रे स्तुयुः अनायतनो यजमानः स्यात्', ता.ब्रा. 1.6.8.8; न. जो पवित्र स्थान है उससे भिन्न, 'अन्धो अध्वर्युः स्यात् यद्यनायतने जुहुयात्', मै.सं. 1.6.11.

अनायस वि. लोह का न बना हुआ, 'आहवनीये अग्निहोत्रद्रव्याणि प्रक्षिपेत् अमृण्मयानि अनायसानि', बौ.ध.सू. 2.10.24.

अनायुक्त वि. (नञ् + आ + युज् + क्त) ध्यान न देने वाला, असावधान, 'यथा एतद् अनायुक्तो अग्निपरिचरो अल्पम् उद्धृत्य पुनरप्युद्धरति', बौ.श्रौ.सू. 3.276:11 (टीका-अविद्वान्), बौ.श्रौ.सू. 26.5.

अनारब्ध वि. (नञ् + आ + रभ् + क्त) न प्रारम्भ हुआ 'एतेन वै संवत्सरम् आरभन्ते स्तोमाँश्च छन्दांसि च एतेन सर्वा देवता अनारब्धं वै तत् छन्दो---- यद् एतस्मिन् नारभन्ते', ऐ.ब्रा. 17.6.

अनारभ्य (नञ् + आ + रभ् + ल्यप्) बिना पकड़ बनाए 'यद् अनारभ्य यज्ञम् अध्वर्युः आश्रयेत् वेपनो वा ह स्यात् अन्याम् आर्तिम् आर्चेत्', श.ब्रा. 1.5.1.2; (विशिष्ट प्रसङ्ग) से सम्बन्ध न रखने वाला, 'धर्मा अनारभ्य आम्नायन्ते उभयत्रैवटे क्रियन्ते', भा.श्रौ.सू. 1.1.9; 'यद् एतानि सामानि न च्यवन्त इति ---- सर्वत्र गवामयने अनारभ्य ह्यच्यवनं विदधाति', ला.श्रौ.सू. 10.8.8; द्रा.श्रौ.सू. 29.3.10 (इलाहाबाद संस्करण); बिना स्वामित्य प्राप्त किए, 'यो वै श्रद्धाम् अनारभ्य यज्ञेन यजते नास्येष्टाय श्रद्दधते', तै.सं. 1.6.8.1; प्रत्यक्ष रूप से न छूकर, 'अनारभ्य उपमन्थति तद् नि पितृन् गच्छति', तै.ब्रा. 1.6.8.5; बौ.श्रौ.सू. 1.144.18; आप. श्रौ.सू. 8.14.4; वैखा.श्रौ.सू. 9.6

अनारभ्यत्व न. बिना किसी विशेष प्रसङ्ग के नियत होने की स्थिति, का. श्रौ.सू. 1.3.28.

अनारम्भ पु. अननुष्ठान, (जीवत्पतिका द्वारा पिण्डपितृयज्ञका) अनुष्ठान न करना, का.श्रौ.सू. 4.1.25.

अनारम्भण न. आरम्भ न होना, श.ब्रा. 4.6.1.2.

अनारोकम् क्रि.वि. बिना किसी अवकाश (फासले) को छोड़े, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.7. (बहुलम् अनारोकं स्तृणन्ति)।

अनार्य- नीच, निकम्मा, अधम, जै.ब्रा.3.96; नार्यैर्न सम्भाषेत; साम.वि.ब्रा. 12.7.

व्यांभिभाषण न. निम्न जाति के व्यक्ति से बातचीत (वार्तालाप), आश्व.श्रौ.सू. 12.8.7.

अनाशीर्क वि. (न विद्यते आशी: यस्मिन्)कोई भी आशीर्वाद न उत्पन्न करने वाला अथवा लाने वाला, बौ.श्रौ.सू. 3.17:13 (ब्राह्मणो अनाशीर्केण यज्ञेन यजते); सन्द० व्याहृतियों के साथ वेदि के अन्दर आहुतियों को रखना (अनुमन्त्रण में), तै.सं. 1.6.10.4; बौ.श्रौ.सू. 1.88:20.

अनार्षेय पु. जो किसी ऋषि का वंशज नहीं है 'न ह वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति', कौषी.ब्रा. 3.2; गो.ब्रा. 2.3.18.

अनालम्भुका वि. (स्त्री.) अस्पृश्य, न छूने योग्य (यस्य व्रत्ये अहन् पत्नी अनालम्भुका स्यात्), भा.श्रौ.सू. 9.2.20; (मासिक धर्म के समय) बौ.श्रौ.सू. 3.383:36; भा.श्रौ.सू. 9.2.20; वैखा.श्रौ.सू. 20.3; 'नाग्निहोत्रं जुहोति', बौ.श्रौ.सू. 3.384:10; स्त्री० मासिकधर्म में वर्तमान स्त्री। यज्ञ के दिन अस्पृश्य हो जाने वाली पत्नी का निषेध करते हुए यजमान द्वारा यज्ञ को जारी रखा जाता है, आप.श्रौ.सू. 9.2.1.

अनावाह्य (नञ् + आ + वह् + णिच् + ल्यप्) आह्वान न करके 'किमु देवताम् अनावाह्य यजेत्', कौषी. ब्रा. 8.8; 'अनूयाजानां सूक्तवाकस्य शंयुवाकस्य उपरिष्टात्', आश्व.श्रौ.सू. 2.16.13.

अनाविरुपम् क्रि.वि. इस तरह की (स्तम्भ) का अधोभाग (पेंदी) दृश्य न रहे, भा.श्रौ.सू. 7.8.12 (मिनोति); आप.श्रौ.सू. 8.10.12; वैखा.गृ.सू. 10.9; हि.श्रौ.सू. 4.2.57.

अनाशक उपवास करने वाला, न खाने वाला 'उपवसथे', श.ब्रा. 9.5:1.6.

अनाश्रावयत् वि. आश्रवण न करता हुआ, (वह) जो आश्रवण (-संज्ञक पुकार विशेष) का उच्चारण नहीं करता, का.श्रौ.सू. 13.9.47.

अनाश्वस् वि. जिसने भोजन नहीं लिया है, तै.सं. 1.6.7.3-4; ता.ब्रा. 1.1.4.2; भा.श्रौ.सू. 5.16.13; आप.श्रौ.सू. 5.25:3; वैखा.श्रौ.सू. 1.16; बौ.श्रौ.सू. 1.67:3.

अनाष्ट्र वि. बुराई से मुक्त, अभये अनाष्ट्रे निवाते यज्ञम् अतन्वत', श.ब्रा. 1.1.1.17.

अनासिक पु. नासिका-विहीन, बिना नाक वाला, तै.सं. 7.5.12.1.

अनास्पृष्ट वि. जो (भूमि से इसकी शाखाओं के माध्यम से) जुड़ा हुआ नहीं है, भा.श्रौ.सू. 5.1.1 (अरणि-अश्वत्थ)

अनाहनन न. (सवन-प्रस्तर) आघात न होना, का.श्रौ.सू. 8.2.18 (दृषदुपलयो:, टीका) पीसने वाले पत्थर पर (पत्थर से) आघात का अभाव, का.श्रौ.सू. 8.2.27.

अनाहवनीय पु. आहवनीय से भिन्न अग्नि, श.ब्रा. 12.9.3.13.

अनाहार्य ल्यप् बिना लाये, न लाकर, मा.श्रौ.सू. 160.3 (पुरीषम्) खरं करोति।

अनाहित वि. I.न स्थापित की गई (पवित्र अग्नि=श्रौताग्नि) 'एतस्य अग्नि: अनाहितो यो अश्वम् अग्न्याधेय न ददाति', मै.सं. 1.6.4; ता.ब्रा. 1.1.2.3; 'अनाहितस्तस्य अग्नि: इत्याहुर्यस्समिधो अनाधाय अग्निम् आधत्ते इति', ता.ब्रा. 1.1.9.10; 'अथ यदि गार्हपत्यम् अनाहितम् आदित्यो अभ्युदियात् आदित आरभ्य अन्यस्मिन् काले आदध्यात्', बौ.श्रौ.सू. 3.386.3; 2. (अग्नि में) रखे गये से भिन्न (अर्थात् आहुति देने के पश्चात् जो बच जाता है), 'हुते च अनाहितं त्यजेत्', शा.श्रौ.सू. 2.16.3; 'उपहूतायाम् इडायाम् अनाहितम् अग्नीधे भवति', बौ.श्रौ.सू. 1.224:7.

अनाहिताग्नि वि. जिसने पवित्र अग्नि का आधान अथवा स्थापन नहीं किया है, काठ.सं. 6.7; एषा वा अनाहिताग्नेरिष्टि: यच्चतुर्होतार:', काठ.सं. 9.15; आप.श्रौ.सू. 14.13.2; 'नो हि अनाहिताग्नेर्व्रतचर्याऽस्ति मानुषो ह्येवैष भवति यावद् अनाहिताग्नि:', श.ब्रा. 2.1.4.2; आश्व.श्रौ.सू. 2.5.17; 'आहायेणानाहिताग्निं (दहेयु:)', आश्व.श्रौ.सू. 6.10.9; ला.श्रौ.सू. 3.4.5; द्रा.श्रौ.सू. 7.4.6; 'पिण्डपितृयज्ञ', शां.श्रौ.सू. 4.5.13, 'गृहपतिम् उपास्ते', शां.श्रौ.सू. 28.24.28; ला.श्रौ.सू. 4.4.20; बौ.श्रौ.सू.3.218.10; भा.श्रौ.सू. 1.10.12; आप.श्रौ.सू. 1.10.17; मा.श्रौ.सू. 10.6; द्रा.श्रौ.सू. 11.4.21; 'देवानाम् एषो अन्यतमो य आहिताग्नि:', बौ.श्रौ.सू. 1.45:2; का.श्रौ.सू. 4.1.31; 25.14.5; 'प्रवत्स्यन् गृहान् समीक्षते', शां.गृ.सू. 3.6.1; 'प्रमीतस्य विधिम्', मा.श्रौ.सू. 181.1; 'नैनं प्रशिष्यन् गृह्वे', शां.गृ.सू. 3.8.1; एवम् अनाहिताग्नेर्गृह्वे (जुहुयात्), आश्व. गृ.सू. 1.23.23; (आग्रयण) 'अनाहिताग्ने: शालाग्नौ', आश्व. गृ.सू. 2.2.5; पु. वह अग्नि जिसको सांस्कारिक रूप से स्थापित नहीं किया गया है, तै.आ.

1.44.9; (-श्रुति) स्त्री. पिण्डपितृयज्ञ के सन्दर्भ उस व्यक्ति के प्रति वैदिक वचन जिसने अग्नि का आधान नहीं किया है, का.श्रौ.सू. 4.1.29 (अनङ्गम्)।

अनाहुति स्त्री. 1. अनुचित अथवा अयोग्य आहुति 'अनाहुतिर्वा जरतिलाश्च गवीधुकाश्च', तै.सं. 5.4.3.2; 2. अग्नि के भयङ्कर रूपों में एक का नाम, 'घोरास्तनुवः---अस्नुक्च अनाहुतिश्च', तै.आ. 4.22.1; वारा.श्रौ.सू. 1.4.4.6

०मात्र वि. आहुति के लिए अपर्याप्त 'यद् अनाहुति मात्रं विप्रुड् एव सा', आप.श्रौ.सू. 9.6.8.

अनाहूय (नञ् + आ + हू + ल्यप्) आह्वान न करके (देवता को) बिना बुलाए, 'आज्य यस्तुष्णीं शंसः तेन अनाहूय सजपेन अनुशंसति', शां.श्रौ.सू. 9.25.1.

अनाहृत्य (नञ् + आ + हृ + ल्यप्) बिना लाए, न लाकर 'यां रात्रिं समिधम् अनाहृत्य वसेत् ताम् आयुषो अवरुन्धीय', गो.ब्रा. 1.2.6.

अनाह्रियमाण वि. न लाया जाता हुआ, ला.श्रौ.सू. 'अनाह्रियमाणयोः न मन्त्रं जह्यात्', ला.श्रौ.सू. 2.5.19=द्रा.श्रौ सू. 5.1.25 (उपाकरण-तृणयोः)।

अनाह्वान न. अभिव्यक्ति का अनुच्चारण (उच्चारण न करना) स्वःसुत्या अथवा अद्यसुत्या (सुब्रह्मण्या में), ला.श्रौ.सू. 1.4.16; द्रा.श्रौ.सू. 1.4.20; सुब्रह्मण्या में यजमान के नाम का उच्चारण न करना, ला.श्रौ.सू. 1.4.18; द्रा.श्रौ.सू. 1.4:24.

अनिखात वि. भूमि में न गाड़ा गया 'यूपः ---उपोप्त एव' इत्यनिखातस्तिष्ठेत् पांशुभिः प्रयुप्तः, ला.श्रौ.सू. 10.15.16.

अनिगद वि. (स्त्री.आ) उच्च स्वर से उच्चारित गद्य में समाहित अभिव्यक्ति के (उच्चारण से) हीन (अर्थात् यज्ञीय मन्त्रों का पाठ), 'पुष्टिमन्तौ विराजौ संयाजे अनिगदे', आश्व.श्रौ.सू. 2.18.5; 'अनिगदा याज्या', शां.श्रौ.सू. 5.19.23; तु.1.8.2; का.श्रौ.सू. 6.10.25

अनिङ्गन न. (सवन-प्रस्तर 'उपांशुसवन' की) गतिहीनता, का.श्रौ.सू. 10.1.5

अनिङ्गनश्रुति स्त्री. चालन अथवा हिलाने-डुलाने के कृत्य के अभाव के बारे में वैदिक-वचन,'उपांशुसवनस्य अनिङ्गनश्रुतेः', का.श्रौ.सू. 10.1.6; टीका-अचालनम्।

अनित्य वि. अनुमानतः, अनिश्चित बौ.शु.सू. 1.60.

अनिधन वि. 'निधन' संज्ञक अन्तिम भाग से हीन (साम), बौ.श्रौ.सू. 18.48:15 (क्षिप्रेम् अस्मात् लोकात् प्रैति)।

०स्वरितत्व न. अन्तिम भाग पर स्वरित न होना की (स्वरित न होने की स्थिति), निदा.सू. 2.31.8.

अनिधाय (नञ् + नि + धा + ल्यप्) (दोनो करछुलों को) न रखकर, बिना रखे का.श्रौ.सू. 3.3.12 (दर्श); 'ध्रुवामभिघारयति', वारा.श्रौ.सू. 1.4.3.21.

अनिधावमान वि. नीचे की ओर न रगड़ते हुए, आप.श्रौ.सू. 10.7.3; (रु. अप्रतिनिवर्तयन्)।

अनिधावयत् वि. विपरीत दिशा में न मोड़ता हुआ (अङ्गनम्), हि.श्रौ.सू. 10.1.46

अनिध्म वि. इध्म की आवश्यकता से विहीन 'अनिध्म' (ऋ.वे. 2.35.4); उत्यप्सु लोगं प्रविध्यति', कौशि.सू. 75.14; निरु. 10.19.

अनिन्द्र वि. इन्द्र के सन्दर्भ से विहीन, निरु. 3.10.

अनिन्धन वि. बिना ईंधन वाला, ईंधन से रहित 'अनिन्धनो अग्निर्दीपेत --- न दीप्यते सेन्धनो वा स राष्ट्रं पीडयेन्नृपम्', अ.वे.परि. 70.19.6; 71.8.2.

अनिपद्यमान वि. (सोने के लिए) न लेटने वाला, अश्रान्त (न थकने वाला), आश्व.श्रौ.सू. 4.6.3; अपश्यं गोपां अनिपद्यमानम्, ऋ.वे. 1.164.31.

अनिपातितजानु वि. (न निपातिते जानुनी येन सः) जिसने अपने घुटनों को भूमि पर नहीं टिका रखा है, घुटनों पर पूर्ण रूप से झुका हुआ, 'अनिपातितजानोश्च हरन्ति आहुतिं राक्षसाः', अ.वे.परि. 28.1.4

-क वि. जिसने अपने घुटनों से भूमि को नहीं छुआ है (न रिक्तपार्णिजुहुयात् नानिपातितजानुकः), अ.वे.परि. 28.1.4.

अनिभृष्ट वि. अपराजित, बौ.श्रौ.सू. 12.9.4; वा.सं. 10.6; तै.सं. 1.8.12.1; 'अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तुपोजा' (राजसूय); मा.श्रौ.सू. 3.3.2.28; वैखा.श्रौ.सू. 9.3.7; हि.श्रौ.सू. 13.5.20; बौ.श्रौ.सू. 12.9.8; 'सधमादो द्युम्निनीरुर्ज एत अनिभृष्टा अपस्युवो वसानाः', तै.सं. 1.8.12.1.

अनिमन्त्रितभोजिन् वि. जो बिना निमन्त्रण के भोजन ग्रहण करता है, शांखा. ध.सू. 377.14।

अनिमित्तहोम वि. जिसे किसी विशेष निमित्त के लिए अर्पित नहीं किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 24.31.4 (यायावरधर्मेण)।

अनिमिष् वि. बिना झपकी लिये 'अनिमिषाभिचष्टे', आश्व.श्रौ.सू. 6.14.16।

अनिमृष्ट वि. साफ न किया गया, 'दर्व्याम् उपस्तीर्य शरणिष्कासय दर्वीं पूरयित्वा----निमृष्टम्----अवद्याभिघार्य', हि.श्रौ.सू. 5.3.23।

अनिम्ना वि. कटोरे को आकृति देने वाले भाग का तक्षण कर (तराशकर, होने वाले) विवर से हीन (करछुल), (प्रवर्ग्य) दो 'रौहिण'-संज्ञक पुरोडाशों को अर्पित करने के लिए प्रयुक्त होने वाली, वैखा.श्रौ.सू. 13.11.1।

अनियत वि. नियत न किया गया, हि.श्रौ.सू. 3.1.3; आप.श्रौ.सू. 13.5.4।

०परिमाण (न विद्यते परिमाणं यस्य) वि. विशिष्ट परिमाण (माप) से रहित, जिसका कोई विशेष मान न हो, वैखा.श्रौ.सू. 18.16.75, **०वृक्ष** पु. अविशिष्ट वृक्ष, हि.श्रौ.सू. 1.2.60।

अनियतोदक वि. वह जलस्थान जो निश्चित न हो, अनिश्चित जलस्थान, 'अनियतोदकं दार्षद्वतवद् अवभृतादि', का.श्रौ.सू. 24.7.9।

अनियम पु. किसी विशिष्ट कर्तव्य (नियम) का अभाव (टीका यथेष्टं प्रचरन्ति), आश्व.श्रौ.सू. 1.11.14।

अनियुक्त वि. नियुक्त न किया गया, न जोड़ा गया, काम में न लगाया गया, हि.श्रौ.सू. 10.4.36।

अनिरस्य (नञ् + निर् + अस् + ल्यप्) बिना दूर फेंके, (दर्भाग्र को दक्षिण की ओर) न फेंकर; आश्व.श्रौ.सू. 5.1.19। (उपवेशन)।

अनिरादिश्य (नञ् + निर् + आ + दिश् + ल्यप्) बिना संकेत किए, संकेत न करके, हि.श्रौ.सू. 20.1.31।

अनिरिण वि. (न विद्यते इरिणं विवरो यस्मिन्) (भूमि में) बिना किसी दरार वाला (देव यजन), पुरस्ताद् उदकम् अनुसरम् अनुपहितम् अविसृदारि अनिरिणम् अनूषरम् अभङ्गुरम्, अवल्मीकं बहुलौषधि--भा.श्रौ.सू. 25.5.3; वैखा.श्रौ.सू. 12.4.1।

अनिरुक्त वि. बिना किसी विशिष्ट देवता के उल्लेख वाला, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.24 (अनिरुक्तः स्विष्टकृत्); न बोला गया; स्तोत्र गाने की एक विधि (तरीका) जिसमें ऋचा का प्रत्येक भाग अथवा वर्ण 'उद्गाता' द्वारा गेय होता है, 'ओ' वर्ण उसका स्थान-ग्रहण करता है। 'उद्गाता' प्रस्ताव को स्थानान्तरित करता है; 'उपास्मै गायता नरोम उसके उद्गीथ के द्वारा' ओम् 0202000002000001212। वह इसे मन में कहता है (मनसा), ला.श्रौ.सू. 7.10.20; आप.श्रौ.सू. 22.7.2; एक कृत्य (उपहव्य) के बारे में कहा गया, जिसमें देवताओं का नाम छिपा लिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 22.9.8; समन्ध रखने वाला 'साम' भी, अनिरुक्त्य, ला.श्रौ.सू. 8.9.1; टीका-आश्व.श्रौ.सू. 11.3.8; का.श्रौ.सू. 22.8.7; निदा.सू. 6.7.35; शां.श्रौ.सू. 13.16.5; आप.श्रौ.सू. 22.7.3; बौ.श्रौ.सू. 16.34.5; वाधू.श्रौ.सू. 3.86.13; हि.श्रौ.सू. 17.3.2; आप.गृ.सू. 1.22.27; देखें ब.कृ.घोष; IC 15, 146-58।

अनिरुक्तप्रातःसवन वि. पाठों में देवताओं के नामोल्लेख बिना प्रातः कालीन सवन वाला अथवा मूल ऋचाओं (पाठ्यों) के नियमित शब्दों के स्थान पर 'ओ' वर्ण की अभिव्यक्ति से युक्त का.श्रौ.सू. 12.5.7; ला.श्रौ.सू. 1.4.6; द्रा.श्रौ.सू. 1.4.10।

अनिरुक्तसूक्त न. बिना देवता के नाम वाला सूक्त, देवता के नामोल्लेख से रहित सूक्त, बृ.दे. 8.15।

अनिरुप्त वि. आहुतिद्रव्य से हीन, अर्थात चावल के कुछ दाने, इत्यादि जिसे निकाला जाता है (जिसका निर्वाप किया जाता है) (अनाहिताग्नि के पिण्डपितृयाग के लिए स्थालीपाक), बौ.श्रौ.सू. 6.24:32.22 (सोम); बौ.श्रौ.सू. 25.17.9; आप.श्रौ.सू. 9.4.7; हि.श्रौ.सू. 15.1.77। **०प्राभ्युदित** न. अग्निहोत्र के लिए आहुति द्रव्य के निर्वाप (निकालने) के पहले सूर्योदय, भा.श्रौ.सू. 9.6.3।

अनिरुप्य (नञ् + निर् + वप् + ल्यप्) आहुति द्रव्य बिना निकाले या न निकालकर, बाधू.श्रौ.सू. 4.22:14।

अनिर्दिष्ट न. जिसका निर्देश नहीं किया गया है, 'समानम् अनिर्दिष्टम्' (वाचंयम), शां.श्रौ.सू. 8.15.14 (ब्रह्मन्)

अनिर्मृष्ट वि. (नञ् + निर् + मृज् + क्त) न माजी गई (करछुल), मा.श्रौ.सू. 1.2.2.1।

अनिर्वचन न. (द्वादशाह के अन्तिम से भिन्न दिनों पर आकाङ्क्षा = इच्छा को) न कहना, शां.श्रौ.सू. 10.1.16।

अनिर्हरत् वि. (नञ् + निर् + हृ + शतृ) न ले जाता हुआ, ला.श्रौ.सू. 8.9.17।

अनिवर्तयत् वि. (नञ् + निर् + वृत् + णिच् + शतृ) (स्त्री.न्ती) पीछे न लौटाता हुआ (अक्ष-धुरोपाञ्जन), मा.श्रौ.सू. 2.2.2.15।

अनिवृत्ति स्त्री. लुप्त न होना, अबहिष्कार, 'प्रकृतस्य अनिवृत्तिः उद्गातृयोगात् अनिवृत्तिः क्रतुयोगात्', का.श्रौ.सू. 22.2.14।

अनिशित (नञ् + नि + शो + क्त) वि. न जीता गया अथवा अधीन न किया गया, वा.सं. 1.29; का.श्रौ.सू. 2.6.39 (बर्हि के अग्र भाग से स्रुव को साफ करना), आप.श्रौ.सू. 2.4.2; वैखा.श्रौ.सू. 5.2.12; हि.श्रौ.सू. 1.7.4।

अनिषु वि. बाण से रहित, ला.श्रौ.सू. 8.6.8।

अनिषेवयत् वि. पीछे न मलता हुआ (आँख में अञ्जन लगाना), मा.श्रौ.सू. 2.1.1.38।

अनिष्काष वि. अधिक न पकाया हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.24।

अनिष्कासिता (स्त्री.) जिससे खुरचन (छिलन = खरोंच) नहीं हटाया गया है, भा.श्रौ.सू. 8.13.2।

अनिष्कासिन् वि. (घृत के शेष) से हीन, जब पकाने (सेंकने) के लिए प्रयुक्त होता है, भा.श्रौ.सू. 2.7.1; बिना किसी बची हुई चीज के, आप.श्रौ.सू. 2.7.2 (अनिष्कासिना स्रुवेण ----- आज्यानि गृह्णान्ति)।

अनिष्पत्रम् क्रि.वि. इस प्रकार कि बाण में लगे हुए पंखे अलग न हों, का.श्रौ.सू. 13.3.16 (महाव्रत)।

अनिष्ट वि. न अनुष्ठित किया अथवा न अर्पित किया गया, (स्विष्टकृत्), बौ.श्रौ.सू. 10.55.17; 11.7.3। ० **प्रथमयज्ञ** वि. जिसने पहली बार (भी) अर्थात् पहले, (सोम) यज्ञ का अनुष्ठान नहीं किया है, निदा.सू. 5.13.26। ० **प्रथमसोम** वि. जिसने पहली बार भी अर्थात् पहले सोम यज्ञ का अनुष्ठान नहीं किया है, बौ.श्रौ.सू. 22.3.1।

अनिष्टिन् वि. जिसने (वाजपेय) यज्ञ का अनुष्ठान नहीं किया है, का.श्रौ.सू. 15.1.2।

अनिष्टुब्ध वि. (स्त्री) न काटा-छाँटा हुआ, भा.श्रौ.सू. 11.5.11 (प्रवर्ग्य); आप.श्रौ.सू. 15.9.2; हि.श्रौ.सू. 24.4.1, अर्थात् बिना किसी कटोरे वाला, काशिकर परि. 1 (करछुल)।

अनिहित वि. (स्त्री.) (जब अग्नि को) आग्नीध्रीय में नहीं रखा जाता है (अग्नीषोमप्रणयन), का.श्रौ.सू. 11.1.15।

अनीकवतीष्टि वि. (स्त्री.) चातुर्मास्य याग में साकमेध पर्व के दो दिवसीय समारोह के प्रथम दिन प्रातःकाल में की जाने वाली इष्टि का नाम। जैसे ही सूर्य दिखाई पड़े, इस इष्टि की प्रधान आहुति अर्पित की जाती है। इस इष्टि में 15 सामिधेनी, 5 प्रयाज एवं दो वार्त्रघ्न आज्यभाग होते हैं। इष्टि का समापन स्वाभाविक विधि से होता है, श.ब्रा. 11.4.24; मा.श्रौ.सू. 115.10; श्रौ.को. (अं) I.730; आप.श्रौ.सू. हौत्रपरिशिष्ट, 2.5.2-7; 750; कात्या.हौ.परि. 3.8-12। तीन गायों को दक्षिणा के रूप में दिया जाता है, 760; चातुर्मास्य के अनुष्ठान के पञ्चदिवसीय कार्यक्रम में इस इष्टि का अनुष्ठान शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन प्रातःकाल में किया जाता है, 769; 1156 न।

अनीकसंस्पृष्ट वि. मिले हुए अग्र भाग वाला (अन्य परिधियों = लकड़ियों के) सामने के अथवा अग्र भाग से सम्पर्क युक्त 'अनीकसंस्पृष्टान् एव एनान् परिदध्यात् इति शालीकिः', बौ.श्रौ.सू. 2.11.8।

अनीका स्त्री. बगल की रेखा, बौ.शु. 3.57।

अनीजान वि. (नञ् + यज् + कानच्) यज्ञ का अनुष्ठान न करने वाला, का.श्रौ.सू. 4.6.11।

अनीता वि. न ले जायी गयी (दक्षिणा = ऋत्विक् शुल्क, अर्थात् विशिष्ट मार्ग से गायें) का.श्रौ.सू. 25.11.8।

अनुकम्पन न. चमसाध्वर्युओं द्वारा नाराशंस संज्ञक प्यालों को कँपाना (प्रथम सोम-सवन में), भा.श्रौ.सू. 13.31.1।

अनुकम्प्य (अनु + कम्प् + ल्यप्) हिलाकर, कँपाकर, वैखा.श्रौ.सू. 21.15.3।

अनुकिशोरा वि. (स्त्री.) अपने बच्चे के साथ (घोड़ी = अश्वा), मा.श्रौ.सू. 5.2.11.34 (कौकिली सौत्रामणि में ऋत्विजों को दिए जाने वाले उपहारों में अन्यतम)।

अनुकृ क्रि. अनुकरण करना, पीछे चलना, बौ.श्रौ.सू. 17.41.27।

अनुक्लृप् (अनु + कृ) प्रक्रिया की स्वीकृति के अनुसार अनुसरण करना, ला.श्रौ.सू. 4.5.18; 4.6.9; द्रा.श्रौ.सू. 8.1.18; निदा.सू. 5.6.2.5।

अनुक्तत्व न. न कहा जाना, विशिष्ट रूप से उल्लेख न किए जाने की स्थिति, ला.श्रौ.सू. 5.11.14।

अनुक्रम् (अनु + क्रम्) अनुसरण करना, बौ.श्रौ.सू. 9.14.2; आप.श्रौ.सू. 13.7.16।

अनुक्रम्य (अनु + क्रम् + ल्यप्) [आज्यपर तक (निगद संज्ञक) पाठ्य के पाठ को समाप्त कर], आश्व.श्रौ.सू. 1.6.5; कर्मकाण्डीय कृत्य को पूरा करके, बौ.श्रौ.सू. 22.6.14।

अनुक्रान्त वि. जिसने (किसी विशेष कृत्य) को पूरा कर लिया है, शां.श्रौ.सू. 1.16.11।

अनुक्रामत् वि. (अनु + कृ + शतृ) सही क्रम में प्रगति करता हुआ, शां.श्रौ.सू. 1.16.11।

अनुक्री पु. तृतीय 'साद्यस्क्र' याग का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.4.3; सद्यस्क्री का प्रकार (बौ.श्रौ.सू. इण्डेक्स), मा.श्रौ.सू. 9.3.2.18; आश्व.श्रौ.सू. 9.5.12; 3.5.12; शां.श्रौ.सू. 14.42.6; बौ.श्रौ.सू. 2.370.9; हि.श्रौ.सू. 17.2.5; का.श्रौ.सू. 22.2.19; ला.श्रौ.सू. 8.4.3; 5.8; पञ्च.ब्रा. 16.14.1।

अनुक्रोश पु. अप्रसन्नता का अनुभव, का.श्रौ.सू. 25.4.30; एक साम का नाम, जै.ब्रा. 2.398। **० क्रोशिन्** वि. अप्रसन्न, आश्व.श्रौ.सू. 8.14.1; 16।

अनुख्या स्त्री. 1 ब्राह्मण अथवा श्रुति के समकक्ष आधिकारिक गद्यांश, बौ.श्रौ.सू. 20.16; 21-22; 'अग्न्याधेयं व्याख्यास्याम:। सम्भारेष्विति नाशनिहतं कुर्वीत घोररूपमिति कुर्वीतैवाशनिहतं न तु मुञ्जकुलायं न ह्येतस्यानुख्या विज्ञायते (V.I. विद्यते)'; ऋचा का नाम 'अन्वग्निरुषसाम् अग्रम्', तै.सं. 4.1.2.11, 13; 3. आधान - कृत्य के लिए सञ्चित की जाने वाली अम्बरीष (संज्ञक) अग्नि में 'अन्वह्निरुषसाम्' पूर्वक दी जाने वाली आहुति का नाम, बौ.श्रौ.सू. 2.13.8; 'अग्नीनाधास्यमानो भवति। अम्बरीषं वोपनीयं वाभिप्रव्रजन्ति तस्मिन् --- सर्वौषधं जुहोति----जयानभ्यातानानाष्ट्रभृत इति हुत्वामात्यहोमान् जुहोति। स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा जुहोति अन्वग्निरुषसामग्र----द्यावापृथिवी आततान स्वाहेति।'

अनुख्यातृ पु. समर्थक प्राधिकरण (समर्थक वचन) आप.श्रौ.सू. 4.9.6, भा.श्रौ.सू. 4.13.1; हि.श्रौ.सू. 6.3.2।

अनुग वि. अनुसर्ता, पीछे चलने वाला, आप.श्रौ.सू. 1.7.13; भा.श्रौ.सू. 1.7.8; हि.श्रौ.सू. 2.7.20।

अनुगच्छ् (गम्) 1. पीछे चलना, 'आ आग्नीघ्रात् अनुगच्छति सुन्वन्' का.श्रौ.सू. 10.2.14; 2. लुप्त हो जाना, का.श्रौ.सू. 25.3.1; अनुगमयेत्, आश्व.श्रौ.सू. 3.12.21; (गमयन्ति) वारा.श्रौ.सू. 1.4.1.22।

अनुगत वि. बुझा हुआ, न जलता हुआ, आप.श्रौ.सू. 6.2.8; शां.श्रौ.सू. 3.19.14; आश्व.श्रौ.सू. 3.12.27।

अनुगतेष्टि स्त्री. पवित्र अग्नि के असमय लुप्त होने (बुझने) से सम्बद्ध इष्टि, भा.श्रौ.सू. 9.1.12; 9.13.12; तपस्वत् जनद्वन्त्, पावकवन्त् अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश के साथ, आप.श्रौ.सू. 9.9.2; 9.9.14; हि.श्रौ.सू. 15.3.12; वैखा.श्रौ.सू. 20.17।

अनुगमन न. लुप्त होना, बुझना, का.श्रौ.सू. 25.3.24।

अनुगमयित्वा (श्रौत-अग्नि को) बुझाकर, आश्व.श्रौ.सू. 3.10.16।

अनुगमय्य (अनु + गम् + णिच् + ल्यप्) (अग्नि) को बुझाकर, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.9; 3.3.2।

अनुगम्य वि. (अनु + गम् + क + यत्) जिसे बुझाना है, आश्व.श्रौ.सू. 3.12.20।

अनुगर = प्रतिगर; काशि.वृ. 1.4.41।

अनुगान न. एक परवर्ती गान, ला.श्रौ.सू. 7.6.13; निदा.सू. 6.7.62; आर्षे. 6 (3).7.1।

अनुगुप्त वि. (अनु + गुप् + क्त) अच्छी तरह संरक्षित, भा.श्रौ.सू. 1.1.3; (अनुगुप्तम्) क्रि.वि. छिपे हुए तरीके से, चुपके के (अनुगुप्तं दुग्ध्वा), भा.श्रौ.सू. 1.1.3; आधान के ढक्कन के साथ लाया गया जल, गौ.गृ.सू. 1.1.9।

अनुगृह् प्राप्त करना, पक्ष लेना, निदा.सू. 3.1:15; हि.श्रौ.सू. 1.11.2।

अनुगृ होता की पुकार पर इस तरह उत्तर देना 'अयि होतर् तथा होतर';) अध्वर्यु यह उत्तर देता है, शां.श्रौ.सू. 10.13.28। **० गृह** पु.1 किसी विशेष कृत्य के लिए निर्धारित समय की समाप्ति के निमित्त पूरक आहुति देने का कृत्य 'अग्निहोत्र' इत्यादि 'अथातो अनुग्रहान् व्याख्यास्याम:', बौ.श्रौ.सू. 28.12.1; मा.श्रौ.सू. 8.1.1;2. (किसी के साथ) सहमति, का.श्रौ.सू. 7.5.23; (प्रकृति); ला.श्रौ.सू. 10.5.4; द्रा.श्रौ.सू. 28.5.11।

अनुग्राम पु. 1. 9.2.24 गाँव के भीतर; 2. अशालीन-कर्म, ला.श्रौ.सू. 9.2.24।

अनुचर् यज्ञ का अनुष्ठान करना, अनुसरण करना।

अनुचर पु. प्रतिपद् तृच के बाद एक 'शस्त्र' में उल्टे क्रम में गेय ऋग्वेदीय तृच्। अनुचर तृचों के सन्दर्भ में 'आहाव'

होने चाहिए, श्रौ.को. (अं) 2.601; श.ब्रा. 13.5.1.19; आश्व.श्रौ.सू. 5.10.13; शां.श्रौ.सू. 10.3.13, 'इदं वासो सुतम् अन्धः' यह तृच् ऋ.वे. 8.2.1-3; अनुसर्ता, पीछे-पीछे चलने वाला, जैसे कि 'नेष्टा' अध्वर्यु का अनुसरण करने वाला सहायक है, वैता.श्रौ.सू. 14.8; ऐ.ब्रा. 36.1 (896), आश्व.श्रौ.सू. 5.14.4।

अनुछन्दसम् क्रि.वि वैदिक पाठ्यों में (क्रम अथवा छन्दों)के अनुसार, 'आहवनीयम् उपतिष्ठते 'उपप्रयन्तो अध्वरम्' इति षड्भिरनुछन्दसम्' बौ.श्रौ.सू. 3.8.3।

अनुच्छिन्दन् वि. (अनु + छिद् + शतृ) ठीक ढंग से विभाजित करता हुआ, टीका 'अनुक्रमेण विभजन् साधारण्येनेत्यर्थः ओम्, बौ.श्रौ.सू. 15.3 : 207.9;2.14।

अनुच्छ्रित्य (नञ् + उद् + श्रि + ल्यप्) बिना उठाए, (यज्ञीय स्तम्भ को) न उठाकर; (पशु), का.श्रौ.सू. 8.8.24।

अनुच्छ्वसत् वि. (नञ् + उद् + श्वस् + शतृ) (प्रक्रिया के बीच में) साँस न छोड़ता हुआ, साँस को रोककर ('अंशु' प्याले का आहरण), का.श्रौ.सू. 12.5.8।

अनुच्छ्वासवाद पु. बीच में बिना साँस छोड़े पाठ करना, आप.श्रौ.सू. 24.11.12।

अनुजप् आगे की तरफ मन्त्र की पुनरावृत्ति करना (जो छूट गया है), शां.श्रौ.सू. 3.20.18; ला.श्रौ.सू. 1.10.7; 9.10.7।

अनुजावर वि. मृत्यु के पीछे होने वाला, मृत्यूत्तर, साधारण, मो.वि., आप.श्रौ.सू. 2.19.4; बौ.श्रौ.सू. 13.17.5; भा.श्रौ.सू. 6.9.1.7 आनुजावर।

अनुज्येष्ठम् क्रि.वि उम्र में ज्येष्ठता के अनुसार, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.13 (आज्यग्रहणम्)।

अनुज्ञा सहमति देना, बौ.श्रौ.सू. 1.8.1।

अनुज्ञात वि. जिसे सहमति अथवा अनुमति दी गई है, (ब्राह्मण द्वारा किसी विशिष्ट कृत्य को करने के लिए) का.श्रौ.सू. 2.3.3।

अनुतुन्न वि. (अनु + तुद् + क्त) साम-गायन में पुनरावृत्त, उदाहरणार्थ 'ए' अक्षर का प्रस्ताव के अन्त में पुनरावृत्ति, कैलेण्ड पञ्च ब्रा. 12.9.17 पर; ला.श्रौ.सू. 8.7.30. टीका- **० तोद**; निदा.सू. 3.12।

अनुतोद पु. पाठ की पुनरावृत्ति, पञ्च.ब्रा. 8.9.13; जै.ब्रा. 3.97।

अनुत्कीर्ण वि. (नञ् + उद् + कृ + क्त) (वह करछुल) जिसका कटोरा वाला भाग तराशा नहीं गया है, का.श्रौ.सू. 26.2.14 (दो रौहिण पुरोडाश के लिए प्रयुक्त)।

अनुत्तरवेदिक वि. उत्तर वेदि (उच्चतर वेदि) से सम्बन्ध न रखने वाला, आप.श्रौ.सू. 22.25.15; बौ.श्रौ.सू. 18.6.4; आप.श्रौ.सू. 8.1.8।

अनुत्पूत वि. (नञ् + उद् + पू + क्त) ऊपर की ओर उछालकर न पवित्र किया हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.5.20; आप.श्रौ.सू. 9.13.1; भा.श्रौ.सू. 9.15.8; आश्व.श्रौ.सू. 2.6.10; मै.सं. 1.4.13।

अनुत्पूय (नञ् + उद् + पू + ल्यप्) ऊपर उछालने के द्वारा पवित्र न करके (किये बिना), भा.श्रौ.सू. 8.11.15।

अनुत्सर्गम् क्रि.वि. बिना चूक के, 'अनुत्सर्ग बृहद्रथन्तराभ्याम् इत्वा उत्तमे मासि सकृत् पृष्ठानि उपेयुः', बौ.श्रौ.सू. 16.16:1; आप.श्रौ.सू. 1.21.4।

अनुत्सिक्त वि. (नञ् + उद् + सिञ्च + क्त) अमिश्रित, (अन्य वस्तुओं से) न मिला हुआ, का.श्रौ.सू. 7.4.25 (व्रत-भोजन के रूप में दूध)।

अनुत्सृजत् वि. (नञ् + उद् + सृज् + शतृ) ढीला न होने देता हुआ, अवमुक्त न करता हुआ, आप.श्रौ.सू. 1.19.6; भा.श्रौ.सू. 1.21.4।

अनुत्सृप्त वि. (नञ् + उद् + सृप् + क्त) सूर्य के उदित होने का अभाव, सूर्योदय का अभाव, (अधि.) सूर्योदय के पहले, का.श्रौ.सू. 4.8.19।

अनुत्सृष्ट वि. (नञ् + उद् + सृज् + क्त) अवमुक्त न किया हुआ, न छोड़ा गया, आप.श्रौ.सू. 21.25.7।

अनुदकम् क्रि.वि. जल को (छुए) बिना, बिना (जल) छुए, का.श्रौ.सू. 4.12.10; 10.3.13; आप.श्रौ.सू. 20.4.5 (तु. मा.श्रौ.सू. 2.1.1.30)।

अनुदका वि. (स्त्री) (न विद्यते उदकं यस्याम्) जल से रहित, बिना जल की, ला.श्रौ.सू. 10.17.2; द्रा.श्रौ.सू. 31.2.9 (दृषद्वती नदी)।

अनुदर्क पु. जो बन्द होने वाला भाग नहीं है, शां.श्रौ.सू. 6.2.5।

अनुदवसाय (नञ् + उद् + अव + षो + ल्यप्) न छोड़कर, न खोलकर अथवा बाहर न निकल कर, आप.श्रौ.सू. 5.3.22।

अनुदात्त पु. न उठाया हुआ, गम्भीर, निम्न तान का स्वर (अनुदात्त-स्वर), ऋक्.प्रा. 3.1; आश्व.श्रौ.सू. 1.11.12. पा., नीचैरनुदात्तः पा. 1.2.30।

अनुदाल्य (अनु + दल् + णिच् + ल्यप्) फाड़कर (पंखे के वंश-निर्मित हत्थे के अग्रभागों को, वह उनमें कृष्ण मृग के चर्म को घुसेड़ देता है), मा.श्रौ.सू. 4.2.2।

अनुदितहोम पु. सूर्योदय के पूर्व अग्निहोत्र की आहुति प्रदान करना, भा.श्रौ.सू. 9.11.4। **० होमिन्** वि. सूर्योदय के पूर्व अग्निहोत्र की आहुति प्रदान करने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 2.2.8।

अनुदिशति (अनु + दिश् + लट् प्र.पु.ए.व.) मन्त्रपूर्वक देवताओं के लिए निर्दिष्ट = नियत करता है (रु. मन्त्रसमवेतं देवार्थतया सङ्कल्पनम् अनुदेशः), आप.श्रौ.सू.10.18.8; अनुमन्त्रण मन्त्रों के साथ इङ्गित करता है, आ.श्रौ.सू. 11.14.9।

अनुदिशम् क्रि.वि. प्रत्येक दिशा (भाग) में बौ.श्रौ.सू. 6.8.9।

अनुदिश्य (अनु + दिश् + ल्यप्) (ऋतयुक्त व्यक्ति को सम्पत्ति का हिस्सा) सौंपकर; (अनुदिश्य दीक्षते विश्वजिति), मा.श्रौ.सू. 9.3.1:16; का.श्रौ.सू. 25.9.1; आप.श्रौ.सू. 10.26.15।

अनुदिष्ट वि. (किसी विशिष्ट व्यक्ति अथवा देवता के लिए) निर्धारित = निर्दिष्ट = सौंपा हुआ), ऋत्विक्शुल्क (दक्षिणा), बौ.श्रौ.सू. 6.8.9; आप.श्रौ.सू. 10.19.5; भा.श्रौ.सू. 10.12.13; मै.सं. 1.11.7।

अनुदुग्न न. (द्वि.) (नञ् + उद् + वप् + क्त) दो न छुई गईं करछुलें (दो रौहिणेय पुरोडाशों के लिए जिसका कटोरा वाला भाग तराशा नहीं गया है), मा.श्रौ.सू. 4.2.6।

अनुदेश पु. पूरक मन्त्र, जिसके साथ विभिन्न वस्तुएं जैसे आहवनीय, चात्वाल इत्यादि अध्वर्यु के द्वारा सम्बोधित किए जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 11.14.10-15; अनुदिशति, का.श्रौ.सू. 8.6.23; मा.श्रौ.सू. 1.8.6.11; आश्व.श्रौ.सू. 2.1.6; का.श्रौ.सू. 18.6.14; उल्लेख, आश्व.श्रौ.सू. 2.1.6।

अनुदेशन न. सौंपना (नीयतीकरण), नुख्सा, आप.श्रौ.सू. 10.27.4।

अनुदेश्य (अनु + दिश् + णिच् + ल्यप्) निर्दिष्टकर, शां.श्रौ.सू. 1.3।

अनुदेश्यप्रतिगृहीता (गौः) वि. (स्त्री.) बिना इङ्गन = निर्देश के स्वीकार की गई (गाय), बौ.श्रौ.सू. 24.31 (सूची)।

अनुदैवतम् क्रि.वि. (प्रातरनुवाक के लिए) अग्नि, उषस् और अश्विनों के दैवत-क्रम में देवताओं के अनुसार, आश्व.श्रौ.सू. 6.5.9 (सन्धिशस्त्र)।

अनुद्वृत न. (नञ् + उद् + ऋ + क्त) ऊपर उठाने के कृत्य का अभाव, बौ.श्रौ.सू. 18.7.5; 23.18 : 6; आप.श्रौ.सू. 22.12.20; भा.श्रौ.सू. 9.11.1।

अनुद्धृत वि. (नञ् + उद् + धृ + क्त) न निकाली गई एवं आगे न ले गयी अग्नि शां.श्रौ.सू. 3.19.9; आप.श्रौ.सू. 9.6.16; बौ.श्रौ.सू. 14.24:2; भा.श्रौ.सू. 9.9.4; मा.श्रौ.सू. 3.2.14; हि.श्रौ.सू. 15.2.20; (फलक) = (वह गाड़ी) जिसका फलक (तख्त) निकाला अथवा उठाया नहीं गया है, बौ.श्रौ.सू. 6.24:15।

अनुद्धृत्य (नञ् + उद् + धृ + ल्यप्) न निकाल कर, अथवा आगे न ले जाकर, का.श्रौ.सू. 5.6.19; आप.श्रौ.सू. 24.3.28।

अनुद्रष्टृ वि. (अनु + दृश् + तृच्) सर्वेक्षण करने वाला, 'आदित्यम् उपतिष्टन्ते', बौ.श्रौ.सू. 15.3.7।

अनुद्रुत्य (अनु + द्रु + ल्यप्) तेजी से पाठ करके, तै.सं. 5.1.1.2; श.ब्रा. 11.5.6; भा.श्रौ.सू. 5.11.2; (लगातार मन्त्रों की शृंखला), (दशहोतृ) अग्न्याधेय में, आप.श्रौ.सू. 5.22.10; मा.श्रौ.सू. 1.7.1.2।

अनुद्वात वि. (नञ् + उद् + वा + क्त) बुझी हुई, आप.श्रौ.सू. 9.9.1; बौ.श्रौ.सू. 14.24 : 29; भा.श्रौ.सू. 9.11.7; वैखा.श्रौ.सू. 20.16.1।

अनुद्वाप्य (नञ् + उद् + वप् + णिच् + ल्यप्) (अग्नि से) बाहर न निकाल कर, बौ.श्रौ.सू. 14.24 : 30।

अनुद्वासित वि. (नञ् + उद् + वस् + णिच् + क्त) (आग से) न उतारा गया अथवा दूर न ले जाया गया, बौ.श्रौ.सू. 20.12 : 7; आप.श्रौ.सू. 9.12.1।

अनुद्वास्य (नञ् + उद् + वस् + णिच् + ल्यप्) (आग से आहुति-द्रव्य को) न निकालकर अथवा बिना निकाले, का.श्रौ.सू. 5.6.15; वैखा.श्रौ.सू. 20.24.5।

अनुधा अनुक्रम में ग्रहण करना, ला.श्रौ.सू. 4.9.14; अनुदधीरन्।

अनुध्यात वि. (अनु + ध्या + क्त) ध्यानपूर्वक विचारा हुआ (विचारित = चिन्तित) (किन्तु बाद में छोड़ दिया गया, 'मान्यस्तम् आर्त्विज्यं कुर्वन्', बौ.श्रौ.सू. 24.13:3।

अनुध्वंस् (रेखा-मार्ग) पर भस्म फैला कर इसे मिटाना, मा.श्रौ.सू. 3.4.9।

अनुनिक्रान्ततर वि. (अनु + नि + क्रम् + क्त + तरप्) अनुसरण करने में सरलतर (जिसमें पादप्रक्षेप करना है), बौ.श्रौ.सू. 24.24 (सूची), 'वेदि : यावत्पार्ष्णियै श्वेतमित्येकेषामेतदेव सदन्येषामनुनिक्रान्ततरं भवति।

अनुनिधायम् क्रि.वि. आहुति के शेष भागों (हवि : शेष) बगल सञ्चित करते हुए, बौ.श्रौ.सू. 14.15:180.8; 'इतरदग्रावनुप्रहरेदिति बौधायनः अनुनिधायमेनामद्यात् (अहवशा पशु-याग)।

अनुनिक्राम् (गृहपति) के पूर्वकृत्यवत् कार्य करना (उसी प्रकार करना जैसे पहले किया था), बौ.श्रौ.सू. 16.2.8।

अनुनिर्वप् आहुति-द्रव्य का पुनः अथवा अन्ततः उड़ेलने के कृत्य की पुनरावृत्ति करना, मा.श्रौ.सू. 3.1.11। **० वपण** न. हविर्द्रव्य को उड़ेलने के कृत्य की पुनरावृत्ति करना, बौ.श्रौ.सू. 23.16 : 24।

अनुनिर्वाप्या वि. (स्त्री.) (इष्टि) अनन्तर अनुष्ठेय (पवमानेष्टि आधान के क्रम में) कौषी.ब्रा. 4.1 (14.13); आप.श्रौ.सू. 5.22.7; (वह अर्पण) जो तनूहविस् का अनुसरण करता है (आधेय), आप.श्रौ.सू. 5.22.8; मी.सू. 12.3.3।

अनुनिष्क्रम् (पदचिह्नों) के पीछे पादप्रक्षेप करना, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.38।

अनुनूता स्त्री. साम-गान में अन्तिम एक प्रकार की 'इडा' का नाम, पञ्च.ब्रा. 10.12.6 सातत्य के साथ।

अनुपघ्नत् वि. (नञ् + उप + हन् + शतृ) चोट न पहुँचाता हुआ, ला.श्रौ.सू. 1.9.23।

अनुपदम् क्रि.वि. तुरन्त, शीघ्रता से, ला.श्रौ.सू. 7.5.23।

अनुपदासुका स्त्री. जो सूखती नहीं है, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.11 (अपो अनुपदासुका उपसृजति)।

अनुपदिष्ट वि. (नञ् + उप + दिश् + क्त) न पढ़ाया गया, न सिखाया गया (अथवा इस पाठ्य = मूलपाठ में अर्थात् शां.श्रौ.सू. में न नियत किया गया) शां.श्रौ.सू. 13.1.2।

अनुपमक्षत् वि. (नञ् + उप + मक्ष् + शतृ) न धंसता हुआ, बौ.श्रौ.सू. 14.22.13 (अवभृथ); आप.श्रौ.सू. 8.8.15।

अनुपमज्जत् वि. (नञ् + उप + मज्ज् + शतृ) जल में न डूबता हुआ, ला.श्रौ.सू. 4.4.10; मा.श्रौ.सू. 2.2.4.8 (अवभृथ)।

अनुपयामगृहीत वि. किसी सम्बल अथवा ग्रहण करने के लिए विहित मन्त्र 'उपयामगृहीतो असि' इत्यादि के साथ न ग्रहण किया गया, वारा.श्रौ.सू. 3.2.2.17; देखें-उपयाम।

अनुपरिक्रामत् (अनु + परि + क्रम् + शतृ) (दीक्षणीय के) एक छोर से दूसरी ओर तक चारों ओर घूमते हुए (परिक्रमा करते हुए), मा.श्रौ.सू. 2.2.4.8।

अनुपरिचारम् क्रि.वि. उच्चतर वेदि 'उत्तर वेदि' के परिचरण (गोलाकर सञ्चरण) के समय, आप.श्रौ.सू. 17.20.14 (सर्पाहुतियाँ, संख्या में छः)।

अनुपरिधि क्रि.वि. परिधि (आवरण छड़ियों) के साथ-साथ, का.श्रौ.सू. 3.1.13।

अनुपरिलिखति (अनु + परि + लिख् + तिप्) (स्फ्यवत् विषाण से) रेखा खींचना, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.41।

अनुपरिश्रित् क्रि.वि. आसन्न प्रस्तर-इष्टिकाओं के साथ-साथ, का.श्रौ.सू. 17.2.11।

अनुपरिषिच्य (अनु + परि + सिञ्च् + ल्यप्) (टोकरी) के चारों ओर जल छिड़ककर, भा.श्रौ.सू. 8.22.6 (त्र्यम्बकेष्टि)।

अनुपरिसरणम् क्रि.वि. गोलाकार = चारों ओर, सञ्चरण के कृत्य के साथ-साथ, बौ.श्रौ.सू. 4.8 (1.17.8)।

अनुपरिहारम् क्रि.वि. अग्नि वेदि के चारों ओर ले जाते हुए, आप.श्रौ.सू. 17.1.5 (चयन)।

अनु(नू)पवपति (अनु + उप + वप् + तिप्) एक के बाद एक करके ढूह को रखता है, आप.श्रौ.सू. 15.6.20 (प्रवर्ग्य)।

अनुपवाद वि. (न विद्यते उपवादः यस्मिन्) निन्दा से मुक्त, मा.श्रौ.सू. 5.1.10.52।

अनुपसर्ग वि. बिना किसी वृद्धि (संयोजन) वाला, आप.श्रौ.सू. 19.27.13।

अनुपस्तीर्ण वि. (नञ् + उप + स्तृ + क्त) नीचे बिना किसी तह वाला, दर्भ (पवित्र घास) से न ढका हुआ, काठ.सं. 71; भा.गृ.सू. 2.29।

अनुपस्तृणत् वि. (नञ् + उप + स्तृ + शतृ) दर्भ (पवित्र घास) को न बिछाता हुआ, वारा.श्रौ.सू. 1.3.5.2।

अनुपस्थान न. प्रार्थना (स्तुति) का अभाव 'अनुपस्थानं प्रातः', शां.श्रौ.सू. 2.13.9; ला.श्रौ.सू. 2.7.3। **० स्थाय** ल्यप् स्तुति न करके 'अनुपस्थाय प्रसर्गे प्रतिदिशम् उपस्थानम्', शा.श्रौ.सू. 3.21.7; बौ.श्रौ.सू. 20.23:6। **०स्थित** वि. जिसकी स्तुति नहीं की गई है, आश्व.श्रौ.सू. 5.3.20 (धिष्ण्य)।

अनुपस्थिताग्नि वि. (न उपस्थितोऽग्निर्येन) (वह व्यक्ति) जिसने अग्नि की पूजा नहीं की है (अर्थात् यात्रा पर जाने के लिए विहित अग्न्युपस्थान का अनुष्ठान नहीं किया है), मा.श्रौ.सू. 1.6.3.18; भा.श्रौ.सू. 6.5.5।

अनुपस्पृशत् वि. (नञ् + उप + स्पृश् + शतृ) (शुद्धीकरण के लिए) जल का स्पर्श न करता हुआ, का.श्रौ.सू. 2.2.16; आप.श्रौ.सू. 7.23.10. ('उपस्पृश्' का अर्थ आचमन करना भी है)। **० स्पृश्य** ल्यप्, जल का स्पर्श न कर 'जल को बिना छुए', का.श्रौ.सू. 2.8.3; ला.श्रौ.सू. 1.11.7।

अनुपहूत वि. (नञ् + उप + हवे + क्त) न बुलाया गया (अच्छावाक), शां.श्रौ.सू. 7.6.8; आप.श्रौ.सू. 12.24.14।

अनुपाकृत वि. (नञ् + उप + आ + कृ + क्त) निर्दिष्ट न किया गया (प्रातरनुवाक), आश्व.श्रौ.सू. 6.9.1; शां.श्रौ.सू. 13.2.1; बौ.श्रौ.सू. 26.5:23।

अनुपानत्क वि. (अविद्यमाने उपानहौ यस्य) नंगे पैर वाला (जिसके पैर में जूता नहीं है), का.श्रौ.सू. 15.8.25 (राजसूय)।

अनुपिण्डम् क्रि.वि. अन्य के बाद एक पिण्ड (एक के बाद एक पिण्ड) प्रत्येक चावल के गोले को, आप.श्रौ.सू. 1.9.14; भा.श्रौ.सू. 1.9.7।

अनुपूर्व वि. पूर्व सूत्र में किये गये कथन से सहमति रखने वाला (अर्थात् आप.श्रौ.सू. 11.11.3.4); **० पूर्वम्** क्रि.वि. उचित क्रम में एक-एक करके, मा.श्रौ.सू. 2.1.18; देखें - आनुपूर्व्य; न. मन्त्रों का (क्रम), शां.श्रौ.सू. 7.27.30; **० पूर्व्येण** उचितक्रम में (क्रमानुसार), एक-एक करके।

अनुपृच् प्रदान करना (ते अश्वस्य अनुपृष्ठम् अनुपृणक्ति); बौ.श्रौ.सू. 15.5.7।

अनुपृष्ठम् क्रि.वि. आलभ्य पशु पृष्ठ भाग के एक छोर से दूसरे छोर तक (निनयति), बौ.श्रौ.सू. 4.6:54; भा.श्रौ.सू. 7.14.8।

अनुपृष्ठ्यम् क्रि.वि. (महावेदि की) 'पृष्ठ्य' - संज्ञक मध्य रेखा के आर-पार, 12.18.7; मो.वि. लम्बाई के अनुसार।

अनुपृष्ठ्या क्रि.वि. (महावेदि की) पृष्ठ्य (अथवा मध्य) रेखा के एक ओर से दूसरी ओर तक, का.श्रौ. 16.8.4।

अनुपेत वि. 'उपनयन' संस्कार से हीन व्यक्ति, वह व्यक्ति जिसका उपनयन संस्कार नहीं हुआ है। वह 'पाकयज्ञ' के अनुष्ठान के लिए अनर्ह (अयोग्य, अपात्र) है, किन्तु वह काम्य बलि नामक कृत्य को करने के लिए आदिष्ट है, आप.गृ.सू. 8.3-4।

अनुप्रकिरति (अनु + प्र + कृ + तिप्) (वेदिकरण में) वेदि पर (बालू को) छितराता है, बौ.श्रौ.सू. 4.2.25।

अनुप्रकम्पन (अनु + प्र + कम्प् + ल्युट्) नः एक क्रम में नाराशंस-संज्ञक पात्रों को हिलाना, भा.श्रौ.सू. 13.32.12, द्रष्टव्य-13.32.1।

अनुप्रकारम् 'अनुप्रकिरति' की 'पूर्णावस्था', विखेरकर, छितरा कर, बौ.श्रौ.सू. 17.24:4।

अनुप्रदिष्ट वि. (स्त्री.) (अनु + प्र + दिश् + क्त) (किसी) देवता के लिए निर्दिष्ट गाय, भा.श्रौ.सू. 10.12.13।

अनुप्रयुज्येरन् (अनु + प्र + युज् + यक् + वि.लि. प्र.पु.ब.व.) (वे) परिचित करायें (ब्राह्मण, राजन्य एवं वैश्य को), भा.श्रौ.सू. 10.7.17।

अनुप्रसर्पक पु. (अनु + प्र + सृप् + ण्वुल्) (गति करने वाला) सोमपान करने के लिए सर्पण करने वाला (राजसूय के 'दशपेय'-सञ्ज्ञक कृत्य में) 10 'चमसिन्' के अतिरिक्त दिखाई पड़ने वाले 90 ब्राह्मणों का एक समूह, ला.श्रौ.सू. 9.1.19; टीका - अनुप्रसर्पेयुः आश्व.श्रौ.सू. 1.3.19; विशिष्ट अर्हता उल्लिखित3 : उसके पितृपक्ष एवं मातृपक्ष के दस पूर्वज वेद के विद्वान् रहे हों एवं अच्छे एवं पवित्र कार्य किए हो तथा ब्राह्मण-भिन्न के साथ जिनका यौन-सम्बन्ध न रहा हो, आश्व.श्रौ.सू. 9.3.20; किन्तु आप.श्रौ.सू. 18.21.3-4 कहता है कि 10 'चमसिन्' के दस पूर्वज सोमपायी (सोम पीने वाले) रहे हों; 'प्रसर्पकों' को देखें 'जो केवल दर्शक होते हैं।

अनुप्रवचनीय पु. (किसी गुरु के सान्निध्य में) वेद के अध्ययन से सम्बद्ध कृत्य को अनुप्रवचन कहा जाता है; 'सावित्री' के पाठ के पश्चात् साथ ही साथ वेद के अन्य भागों के बाद

अनुष्ठित होता है, आश्व.गृ.सू. 1.22.10; (टीका-'महानाम्नी', महाव्रत एवं उपनिषदों के पाठ के अनन्तर); अन्य पाठ्यों के अध्ययन के पश्चात्, गौ.गृ.सू. 3.2.48-49।

अनुप्रवचनीया स्त्री. 'अनुप्रवचनीय' के लिए माँगा जाने वाला भोजन, आश्व.श्रौ.सू. 1.22.8।

अनुप्रहरण न. (अनु + प्र + हृ + ल्युट्) अग्नि में एक कर्मकाण्डीय द्रव्य (तत्त्व) का प्रक्षेपण (फेंकना), श्रौ.प.नि. 73.446।

अनुप्रह् (अग्नि) में फेंकना, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.33; शां.श्रौ.सू. 4.18.5; भा.श्रौ.सू. 6.13.12; (परिधीन् अनुप्रहरति), का.श्रौ.सू. 3.6.16; तु. अनुप्रास (IVP); का.श्रौ.सू. 6.6.26 (अग्नि में वपाश्रपणी को फेंकना)।

अनुप्रहावयति (अनु + प्र + हु + णिच् + तिप् लट्) (श्रृतदधि का) आहवनीय अग्नि के ऊपर बहाना, भा.श्रौ.सू. 11.10.15।

अनुप्राणिति (अनु + प्र + अन् + लट् तिप्) साँस को बाहर निकालता है, भा.श्रौ.सू. 3.13.13 (हुत्वा---); 'वायुं नासिकाभ्यां निष्क्रामयति; (टीका -5 बौ.श्रौ.सू. 10.31 : 29.5 = अभि-व्यनिति।

अनुप्रोहति (अनु + प्र + ऊह् + लट् तिप्) के अनुसार धारणा बनाता है, मन में धारण करता है, भा.श्रौ.सू. 1.23.7; आप.श्रौ.सू. 14.19.11।

अनुप्रोह्य (अनु + प्र + ऊह् + ल्यप्) के अनुसार धारणा बनाकर, आप.श्रौ.सू. 1.21.7।

अनु (?नू)बन्ध्या स्त्री. आलभ्य = वध्य पशु, सामान्यतया पशु-याग में वन्ध्या गाय अर्पित की जाती है, जो (कृत्य) सोमयाग में उदयनीय का अनुसरण करता है (उदयनीय के पश्चात् सम्पन्न किया जाता है), ला.श्रौ.सू. 1.6.42। **०वपान्तम्** क्रि.वि. अनुबन्ध्यापशु की वपा से सम्बन्ध रखने वाले कृत्य-पर्यन्त, वैखा.श्रौ.सू. 19.7.8। **० वपाहोम** पु. सोम याग के अन्त में अनुष्ठित होने वाले पशुयाग में वन्ध्या गाय की वपा (चर्बी) का होम, का.श्रौ.सू. 22.5.19।

अनुब्राह्मणम् क्रि.वि. ब्राह्मण ग्रन्थ (में परिस्थिति) के अनुसार, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.23; मा.श्रौ.सू. 2.10.24; द्रा.श्रौ.सू. 6.3.3; निदा.सू. 8.3:13।

अनुब्राह्माणि पु. (अनुब्राह्मण + इनि) जो ब्राह्मण सदृश (अनुब्राह्मण) ग्रन्थों के प्रमाण को स्वीकार करता है, श्रौ.को. (अं) I.i.469। ब्राह्मणसदृशो ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्, तदधीते अनुब्राह्मणी, काशिका 'अनुब्राह्मणादिनिः' पा. 4.6.62 पर (प्रातिपदिक-अनुब्राह्मणिन्)।

अनुब्रू बाद में पीछे पाठ करना, शां.श्रौ.सू. 15.16.6; का.श्रौ.सू. 9.1.10।

अनुभित्ति क्रि.वि. परिधि अथवा दीवाल के साथ-साथ, 'दक्षिणतो अनुभित्ति उच्छिष्ट-खरम्', का.श्रौ.सू. 26.2.16।

अनुभू स्त्री. (बहु.) कुछ मन्त्रों एवं आहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 20.11.10 (अग्निना तपोऽन्वभवदिति अनुभू)।

अनुमति स्त्री. द्रवीभूत घृत की आहुति वाली देवता (देवी) का नाम, शां.श्रौ.सू. 4.20.6।

अनुमती स्त्री. एक देवी का नाम, हि.श्रौ.सू. 21.2.6।

अनुमन् सहमति देना, शां.श्रौ.सू. 5.17.2।

अनुमन्त्रण (अनु + मन्त्र + ल्युट्) न. किसी यज्ञीय कृत्य के बाद आने वाले मन्त्र का पाठ, शां.श्रौ.सू. 7.2.15; 'सकृत्पुरस्ताज्जपो ये यजामहेऽनुमन्त्रणश्य' (अनु. याज्या एवं वषट् ऋचाओं के बाद में बोले गए शब्द); देखें शां.श्रौ.सू. 1.1.39; 'ये यजामहे वौषडोजः सहः सह ओजः स्वरित्युपरिष्टात्', यह स्वरित (स्वर) में पढ़ा जाता है (आश्व.श्रौ.सू. 1.1.20) एवं यज्ञ में यजमान की सहभागिता को इङ्गित करता है, आप.श्रौ.सू. 4.1.3।

अनुमन्त्रय् किसी पवित्र मन्त्र का जप (अभिमन्त्रण) करते हुए चक्षुर्दृष्टि से अनुगमन करना, आप.श्रौ.सू. 10.22.10; C H 36 (चि.भा.से.)।

अनुमन्त्रित वि. (क्त) सम्बोधित, मा.श्रौ.सू. 5.2.15.13।

अनुमर्शम् क्रि.वि. (भ्रूण, गर्भ को) छूकर, 'अनुमर्श गर्भं एष्टवै ब्रुयात्, का.श्रौ.सू. 25.10.2; देखें - अनुमृश् - छूना, स्पर्श करना, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.11।

अनुमान न. (अनु + मा + ल्युट्) अनुमिति, अनुमान, ला.श्रौ.सू. 10.20.11।

अनुमृज् ऊपर की ओर प्रहार करना, साफ करना (नीचे से ऊपर तक), मा.श्रौ.सू. 1.1.1.14 (शाखापवित्र), (दर्शपूर्णमास)।

अनुमार्ष्टि (अनु + मृज् + लट् तिप्) साफ करता है एवं कोमल बनाता है, का.श्रौ.सू. 2.6.24 (वेदि)।

अनुमृश् मा.श्रौ.सू. 2.2.3.11। **० मृश्य** ल्यप्, छूकर, हि.श्रौ.सू. 2.3.1।

अनुमोदते (अनु + मुद् + लट् तिप् आ.) (ग्रावस्तुत्; सवन-प्रस्तर की) 1. प्रशंसा करता है, भा.श्रौ.सू. 14.1.12; आप.श्रौ.सू. 13.1.11।

अनुयाज = पु. अनूयाज मुख्ययाग (प्रधानयाग) के पश्चात् अनुष्ठित होना वाला कृत्य (उत्तराहुति), इष्टि में इनकी संख्या तीन है।

(1) देवम् बर्हिस् के लिए;

(2) देव नाराशंस के लिए; एवं

(3) देव अग्निस्विष्टकृत् के लिए (यज्ञतत्त्वप्रकाश, चिन्नस्वामी. पृ. 29 पा.टि.)।

[देखें समिध्, तनूनपात्, इड्, बर्हिस एवं स्वाहा के लिए प्रयाज, वही. पृ. 25 *fn.*]। पशु में वे प्रत्येक 11 हैं, वही पृ. 41। [1. समिधा 2. तनूनपात् अथवा नराशंस 3. इड् 4. बर्हिस् 5. द्वारो देव्यः 6. दैव्यौ उषासानक्ता, 7. दैव्यौ होतारौ 8. तिस्रो देव्यः 9. त्वष्टा 10. वनस्पति 11. स्वाहाकृत्य]। अनूयाज (पृ. 44) : 1. देवं बर्हिस् 2. देव्यो द्वारः 3. देव्यौ उषासानक्ता 4. देव्यौ जोष्ट्र्यौ 5. देव्यौ उर्जाहुत्यौ 6. दैव्यौ होतारौ 7. तिस्रो देव्यः 8. देवो नराशंस 9. देवो वनस्पति 10. देवं बर्हिस् 11. देवो अग्निस्विष्टकृत्; बौ.श्रौ.सू. 3.3.7 भी देखें; मा.श्रौ.सू. 5.2.11; भा.श्रौ.सू. 5.21.5, इत्यादि; कभी-कभी अनूयाजों की संख्या नौ होती है जैसे 'चातुर्मास्य में, आप.श्रौ.सू. 8.6.18, सवनीयपशु में इसकी संख्या ग्यारह है, का.श्रौ.सू. 10.7.10; देखें - श्रौ.प.नि. 55.297-300।

अनुयाजप्रतिषेध पु. अनुयाज (पश्चाद् आहुतियों) का बहिष्करण (प्रतिषेध-निषेध), का.श्रौ.सू. 7.5.26।

अनुयाजप्रसव पु. अनुयाज के लिए आज्ञा अथवा प्रेरणा, शां.श्रौ.सू. 4.7.3।

अनुयाजयाज्या स्त्री. अनुयाजों के लिए अर्पण-ऋचा, शां.श्रौ.सू. 1.13.4।

अनुयाजवर्जम् क्रि.वि. अनुयाजों को छोड़कर (अनुयाज के सन्दर्भ में), आश्व.श्रौ.सू. 1.5.4।

अनुयाजसमिध् स्त्री. अनुयाजों के प्रारम्भ के समय उपयोग में लाने के लिए सुरक्षित की गई समिधा, वारा.श्रौ.सू. 1.1.5.20; आप.श्रौ.सू. 1.5.11।

अनुयाजानुमन्त्रण न. अनुयाजों के अनन्तर यजमान द्वारा मन्त्रों का पढ़ा जाना, का.श्रौ.सू. 3.5.14।

अनुयजुःकृष्टम् क्रि.वि. यजुर्मन्त्रों के साथ जोते गये क्षेत्र के साथ-साथ का.श्रौ.सू. 17.3.22।

अनुयुज् नियुक्त करना, लगाना, जोड़ना (घोड़े के प्रसङ्ग में), बौ.श्रौ.सू. 15.7.20।

अनुयुज्य ल्यप्, लगाकर, जोड़कर, नियोजन करके, आश्व.श्रौ.सू. 8.14.1।

अनुरज्जु क्रि.वि. (श्मशान के निर्माण के समय) रस्सी के साथ-साथ, का.श्रौ.सू. 21.4.1।

अनुरम् निवास करना, ठहरना, विराम लेना 'उप प्रतिहारम् आहावे' अनुरमति, शां.श्रौ.सू. 17.17.12।

अनुराधा स्त्री. एक नक्षत्र का नाम (इस नक्षत्र में वह व्यक्ति 'जो वृद्धि की कामना वाला है' अग्नियों का आधान करे), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.7।

अनुरूप पु. उलटा छन्द, शस्त्र के आरम्भ में होता के द्वारा पाठ किया जाने वाला तृच एवं इसका छन्द तथा वर्णों की संख्या, पूर्ववर्ती स्तोत्रिय (छन्द) की अनुरूपता वाली विशिष्टताएँ, एवं देवतागण, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.26; देखें - शां.श्रौ.सू. 7.21.8; ला.श्रौ.सू. 3.7.2; द्रा.श्रौ.सू. 9.3.15; श्रौ.को (अं.) 2.601।

अनुरूपपर्यास प्रति-छन्द (अनुरूप = उलटे छन्द) का अन्त, क्षु. 2.9.2।

अनुलिख् (एक काष्ठीय तलवार = स्फ्य से) रेखा खींचना, मा.श्रौ.सू. 5.2.15.28 (वरुणप्रघास)।

अनुलिम्प् पुताई करना, बौ.श्रौ.सू. 10.5.15 (उखा)।

अनुलोमम् क्रि.वि. बालों की दिशा में, लोम के अनुकूल, अर्थात् ऊपर से नीचे, ऊपर के अग्र भाग से स्वाभाविक दिशा में, आप.श्रौ.सू. 10.6.13; (अञ्जनम्) मा.श्रौ.सू. 1.1.3.6; 2.1.1.36; बौ.श्रौ.सू. 6.2; का.श्रौ.सू. 7.2.30; प्रतिलोमम् का उलटा; होता के प्याले (चमस) में ध्रुव से सोम को निथारते समय इसको (ध्रुवसंज्ञक पात्र को) धीरे-धीरे नीचे करना, भा.श्रौ.सू. 14.5.2; पितृमेध में आहुति को अर्पण करने वाले के सम्मुख मुड़े हुए हत्थे वाली करछुल के बारे में कहा गया, भा.पि.मे. 1.12.2।

अनुल्बणा वि. (स्त्री.) 1. दोष-रहित (इष्टि), बौ.श्रौ.सू. 9.18; 2. (प्रायश्चित्त), आप.श्रौ.सू. 19.17.13; 9.15.15; बौ.श्रौ.सू. 1.30:13।

अनुवच् कहना, घोषणा करना, शां.श्रौ.सू. 1.4.5. का.श्रौ.सू. 2.2.11। **० वचन** न. (पीछे की ओर अथवा अनुसार = अनुरूप) पाठ करना, शां.श्रौ.सू. 5.16.3; का.श्रौ.सू. 3.1.12; (मैत्रावरुण के द्वारा किया जाने वाला ऋग्वेद के पाठ्य का पाठ = उच्चारण), श्रौ.को. (अं) 2.347; गोंडा, प्रातरनुवाक, पृ. 33; मैत्रावरुण (संज्ञक ऋत्विज् द्वारा) आह्वान = पुकार का (प्रेषण किया जाना चाहिए, आह्वान-प्रेषण के साथ 'प्रातरनुवाकों' का पाठ भी (किया जाना चाहिए), शां.श्रौ.सू. 5.16.3; देखें—Schwab 63 (पृ. 97); आश्व.श्रौ.सू. 1.2.23 (टीका) के अनुसार अग्निमन्थनीय ऋचाओं (आश्व.श्रौ.सू. 2.16.1) को अनुवचन के रूप में जाना जाता है। किन्तु काशिकर इस शब्द से 'याज्या' एवं 'पुरोनुवाक्या' की ओर सङ्केत करते हैं, स्वरूप च. पृ. 85।

अनुवत्सर न. संवत्वर (वर्ष) के पीछे आने वाला वर्ष, (परिवत्सर, इदावत्सर, उद्वत्सर); मा.श्रौ.सू. 1.6.4.21; श्रौ.को. (सं.) I.487।

अनुवर्तयति (अनु + वृत् + णिच् + लट् तिप् पर.) [गद्य खण्ड (निगम) में नामों को] डालता है, शां.श्रौ.सू. 2.6.12. देखें।

अनुवर्तयते (आत्म.) (होता) सूक्तवाक में शब्दों की अनुवृत्ति करता है (अर्थात् जोड़ता है) 'संवत्सरीणं स्वस्तिम् आशास्ते' से 'दिव्यं धाम आशास्ते', आप.श्रौ.सू. 8.3.4, अर्थात् बाद वाली अभिव्यक्ति को उसके द्वारा जोड़े गये बाद वाले का अनुवर्तन कराता है।

अनुवर्त्म क्रि.वि. अन्य मार्ग का अनुसरण करते हुए, जै.बा. 1.133।

अनुवपति (अनु + वप् + लट् तिप्) (धिष्ण्याओं को) एक के बाद एक करके रखता है, आप.श्रौ.सू. 11.14.1।

अनुवषट्कार पु. एक द्वितीयक (गौण) 'वषट्कार' (वषट्-संज्ञक आह्वान), आश्व.श्रौ.सू. 2.16.15; बौ.श्रौ.सू. 25.20 :19; मा.श्रौ.सू. 4.3.27।

अनुवाक पु. ('दिवस्परि' इत्यादि से प्रारम्भ होने वाला) संहिता ग्रन्थों का भाग (वह है वा.सं. 12.18, इत्यादि); का.श्रौ.सू. 16.5.23; आश्व.श्रौ.सू. 10.7.2; आप.श्रौ.सू. 10.3.6; शां.श्रौ.सू. 5.9.27 (ऋचाओं का अध्याय = खण्ड, कैलेण्ड का अनुवाद)।

अनुवाक्या स्त्री. इसे पुरोनुवाक्या (स्त्री.) भी कहते हैं। यह देवता के आह्वान का आमन्त्रण है, जिसका उच्चारण होता 'आज्यभाग' 'आवाप' के लिए बैठते समय करता है। इसका उच्चारण अन्तिम 'ओम्' के विस्तृत उच्चारण के साथ सोमाहुति के पूर्व एकतान = एकश्रुति (ऐकश्रुत्य, आश्व.श्रौ.सू. 1.10.1 टीका) में किया जाता है। अध्वर्यु, होता को यह कहते हुए प्रेरित करता है कि—'अमुष्मा अनुबूहि', अमुक - अमुक के लिए अनुवाक्या का उच्चारण करो, का.श्रौ.सू. 1.9.13; पितरों के कृत्य के समय यह 'अनु स्वधा' होती है, आप.श्रौ.सू. 8.15.8; होता 'याज्या' के पूर्व 'अनुवाक्या' का पाठ करता है, देखें—आश्व.श्रौ.सू. 1.5.29; का.श्रौ.सू. 5.12.11।

अनुवाक्याप्रैष पु. एक आमन्त्रणात्मक ऋचा (के पाठ) के लिए आह्वान, मा.श्रौ.सू. 5.2.8.34, 38।

अनुवाचन न. अधिकतर (प्रायः) आहुति को अर्पित करने के अनन्तर अध्वर्यु के निर्देशानुसार यजमान द्वारा (यजमान-पत्नी द्वारा भी) किया जाने वाला पाठ्य का वाचन = उच्चारण, का.श्रौ.सू. 1.9.13।

अनुविसृतम् क्रि.वि. जहाँ तक (घी) फैला हुआ है, आप.श्रौ.सू. 10.23.2 (सोमक्रयणी-पद); रु. 'यावन्निसृतम्', भा.श्रौ.सू. 10.15.9।

अनुवीति स्त्री. एक देवता का नाम जिसे दीक्षणीय इष्टि में एक आहुति अर्पित की जाती है, श्रौ.को. (अं) I.ii. 639।

अनुवेदि क्रि.वि. महा-वेदि (की सीमा) के साथ-साथ, का.श्रौ.सू. 14.3.14।

अनुव्याहार पु. (अनु + वि + आ + हृ + घञ्) अभिशाप, गाली, बौ.श्रौ.सू. 26.7.12; का.श्रौ.सू. 25.10.17।

अनुव्यूहति (अनु + वि + ऊह् + लट् तिप्) एक एक कर व्यवस्थित करना या क्रम बदलना, आप.श्रौ.सू. 15.14.5।

अनुशंसन न. (अनु + शंस् + ल्युट्) चयन में एक ईंट रखने के अनन्तर होता द्वारा किया जाने वाला पाठ, आप.श्रौ.सू. 19.15.5, बौ.श्रौ.सू. 25.30.17।

अनुशातन न. एक काले द्रव्य को रखना, आप.श्रौ.सू. 19.5.7 (कौकिली सौत्रामणी) अनुवा. Schwarzes poster.

अनुशिशु वि. जो अपने युवा (शिशु = बछड़ा) के साथ हो, शां.श्रौ.सू. 15.4.12।

अनुशृन्थति (पा. भे. - अनुग्रन्थति) (सोम से युक्त वस्त्र की) लटकन = बन्धनी को ढीला करता है, बौ.श्रौ.सू. 10.16.11।

अनुश्लोक न. एक साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 21.17.2; वे इससे हविर्धान-शकट को सम्बोधित करते हैं, ग्राम. 12.11.1 सा.वे. 1.439।

अनुषज् (ञ्) जोड़ना, सम्पृक्त करना, का.श्रौ.सू. 2.2.12; आप.श्रौ.सू. 3.19.4।

अनुषङ्ग पु. साधारणतया सन्दर्भित किए जाते हुए विभिन्न उच्चारणों के पूर्ववर्ती से आपूरित किया जाने वाला पाठ्य; रिक्तस्थान-पूरक, मा.श्रौ.सू. 6.1.5.6, सम्बन्धित रूप, बौ.श्रौ.सू. 13.20.22 एक.व., बहु. एवं द्वि व. में; काशिकर, पृ. 76 सोम में तीन उपसदों के लिए क्रमशः 'या ते अग्ने अपाशया रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा स्वाहा' इस पाठ्य को तनुर्-- एवं 'या ते अग्ने हरशया' में जोड़ने के लिए उल्लेख करते हैं। तै.सं. 1.2.11 में 'अनुषङ्ग' साधारण (उभयनिष्ठ) संयोजन।

अनुष्यात् यदि कोई उपस्थित हो (यदि पत्नी न अनुष्यात्), भा.श्रौ.सू. 6.14.4 (अग्निहोत्र)।

अनुष्टुप्कारम् क्रि.वि. इस तरह कि अन्य छन्दों में निबद्ध ऋचाओं को अनुष्टुप् में परिवर्तित कर दे, आश्व.श्रौ.सू. 6.13.12; तु. अनुष्टुप् गायत्रीकारम्, आश्व.श्रौ.सू. 6.2.8।

अनुष्टुभ् स्त्री. 8 अक्षरों वाले चार चरणों (पादों) से युक्त छन्द (वह छन्द जिसके चार चरण होते हैं एवं प्रत्येक चरण में 8 अक्षर होते हैं) जै.ब्रा. I.32।

अनुष्ठान न. अनुष्ठित करना, वैखा.गृ.सू. 1.1:6।

अनुष्ठानी स्त्री. ऋचाओं का नाम 'अवसृजे' ऋचा को छोड़कर ऋचाएं, ये 'मयि एनम् अग्ने वि दहो' से प्रारम्भ होने वाली एवं 'सहस्र नीथाः से समाप्त होने वाली है। ये (ऋचाएं) मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों के द्वारा मृत के प्रति प्रार्थना के रूप में पाठ करने के लिए नियत की गईं हैं, श्रौ.को.(अं) I.ii.1086; कौशि.सू. 81.42, 43।

अनुष्ठ्या क्रि.वि. शनैः शनैः, धीरे-धीरे, जै.ब्रा. 1.8।

अनुसंसर्पम् (पूर्णकालिक कृदन्त) अन्य दो ऋत्विजों के आसन तक पहुँचकर। (पञ्चर्त्विजस्त्रीणि त्रीणि कर्माणि कुर्युः होता ध्वर्यवपोत्रीये च-----मुख्यासनेभ्यो अनुसंसर्पम् इतराणि) का.श्रौ.सू. 24.4.47।

अनुसंह जोड़ने के लिए आपूर्ति करना, ला.श्रौ.सू. 2.5.15; 7.6.16।

अनुसंभिनत्ति (अनु + सम् + भिद् + लट् तिप्) दोनों वेदियों को (जोड़ता है), भा.श्रौ.सू. 8.4.14; मा.श्रौ.सू. 1.3.4.5; 2. (अन्य दो अनुयाज - आहुतियों को भंग कर देता है, 3.5.6; तीनों अनुयाज आहुतियों के बीच भिन्नता रखता है, जहाँ तक आहवनीय अग्नि में समिध् मे इनके अधिकरण (स्थिति) का सम्बन्ध है।

अनुसवनम् क्रि.वि. प्रत्येक सोम - सवन (सोम को निचोड़ने) की बेला में, आश्व.श्रौ.सू. 1.12.20; का.श्रौ.सू. 25.13.25; बौ.श्रौ.सू. 11.2.21; मा.श्रौ.सू. 2.4.1.59।

अनुसवनभक्ष पु. प्रत्येक सोम - सवन - सत्र के पश्चात् 'इडा' का भक्षण, बौ.श्रौ.सू. 7.17:10।

अनुसृज् मुक्त करना, छोड़ना, ढीला करने देना, मा.श्रौ.सू. 1.5.3.16।

अनुसृष्ट (अनु + सृज् + क्त) वि. (वह बैल) जिसे अवमुक्त या ढीला कर दिया गया है, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.25।

अनुसृष्टि वि. वत्सकरण (बछड़े को जन्म देने) के आगे, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.22; देखें—अनुवाद।

अनुस्तरणी स्त्री. एक गाय, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.25; एक वृद्ध गाय, जिसे अन्त्येष्टि के अवसर पर मारा जाता है, अङ्ग-विच्छेद किया जाता है एवं इसके चर्म एवं अङ्गों को मृत व्यक्ति के शरीर पर फैला दिया जाता है, श्रौ.को. (सं.) I. 806; इसके मांस को भी पकाया जाता है, भा.पि.मे. 1.5.1, 4, 5; इसे राजगवी भी कहा जाता है; एक अज भी, आश्व.गृ.सू. 4.2.4, 6; का.श्रौ.सू. 25.7.37।

अनुस्तरणिकी वि. अनुस्तरणी-संज्ञक गाय से सम्बद्ध (पिछला भाग) ला.श्रौ.सू. 8.8.12; मा.श्रौ.सू. 9.3.2.25।

अनुहरण न. (किसी आगे ले जायी गयी वस्तु को) पीछे ले जाने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 14.1.16 (आसव)।

अनुहोम पु. द्वितीयक आहुति-अर्पण (होम) का.श्रौ.सू. 23.2.17; वैता.श्रौ.सू. 19.12 (बहुवचन)।

अनूक पु. चयन की गयी (चित) अग्निवेदि के मुख्य भाग पर मध्य (केन्द्रीय) रेखा, का.श्रौ.सू. 17.6.5; 16.7.22; आश्व.श्रौ.सू. 12.9.7।

अनूकाश पु. सन्दर्भ, आप.श्रौ.सू. 20.14.13।

अनूक्ता वि. (स्त्री.) पठित, जिसका पाठ किया गया, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.39।

अनूच् वि. पूर्ण रूप से न भरा हुआ, (अग्निहोत्र के साथ करछुल) 'अथ चतुरः स्रुवानुन्नयति पूर्णान्वानूचो वा भूरिडा भुव इडा सुवरिडा भूर्भुवः सुवरिडेति, बौ.श्रौ.सू. 3.5 : 12; भार.श्रौ.सू. 6.11.14।

अनूचान पु. वह ऋत्विज् जो वैदिक अध्ययन एवं पाठ की परम्परा का अनुसरण करता है, अर्थात् विद्वान्, भा.श्रौ.सू. 10.1.1; 'मार्गाद् अनुपेत', भा.परि. 133 (चि.भा.से.)।

अनूची वि. पूर्व की ओर सङ्केत करने वाला (पटरा = तख्त = फलक), आप.श्रौ.सू. 2.9.15; द्रा.श्रौ.सू. 10.4.7; (टीका - प्राचीनफलके) शां.श्रौ.सू. 9.26.1; साथ देने वाला या चलने वाला, मै.सं. 1.2.16 (विधृतियों के नीचे एवं इनके ऊपर करछुल = स्रुक् को रखना); एक दूसरे के सम्पर्क में, बौ.शु. 1.67; एक के बाद एक, एक विशिष्ट क्रम का अनुसरण करने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.16 (स्रुगासादन)।

अनूचीनम् क्रि.वि. पूर्व की ओर संकेत करने वाले अँगुली के अग्रभाग के साथ, आप.श्रौ.सू. 2.18.7 (एवं आग्नेय पुरोडाश का द्वितीय अवदान = कर्तन इस विधि से लिया जाता है)।

अनूचीनगर्भ वि. (दो भाइयों में) वह जो दूसरे (वास्तव में पहले) से तुरन्त बाद जन्मा हो, शां.श्रौ.सू. 14.39.7।

अनूच्य वि. ऊपर वाला भाग नीचे करके ऊपर रखा गया, बौ.श्रौ.सू. 6.10.166.14; टीका - (अरत्निमात्राणि शीर्षाण्यनूच्यानि; देखें-सूची वैखा.श्रौ.सू. 12.21 : 2; 18.6 : 6।

अनूत्क्रम्य (अनु + उद् + क्रम् + ल्यप्) (उसी ईषा दण्ड को) एक छोर से दूसरे छोर तक लाँघकर, ला.श्रौ.सू. 1.2.22; द्रा.श्रौ.सू. 1.2.29 (सुब्रह्मण्य)।

अनूदक न. जल से इतर (भिन्न), मा.श्रौ.सू. 1.8.6.20। (पशु-याग); तु. वारा.श्रौ.सू. 1.6.7.35।

अनून वि. सम्पूर्ण, शां.श्रौ.सू. 5.17.6 (पशु-अङ्ग)।

अनूप न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.1.6; दलदल भूमि, जलप्राय स्थान, ला.श्रौ.सू. 7.9.8; वि. 'अनूपसामन् आनूपोपक्रमा बृहती पञ्चमे' से प्रारम्भ होने वाला, द्रा.श्रौ.सू. 8.2.1. ला.श्रौ.सू. 4.6.1।

अनुपग्रक्षम् क्रि.वि. तट के समीप, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.30 (अग्निष्टोम के लिए दीक्षा के समय स्थान)।

अनूपसदम् क्रि.वि. नियमित 'उपसद्' संज्ञक आहुतियों को अर्पित करने के बाद, का.श्रौ.सू. 23.2.14 (जामदग्न्य-संज्ञक चार दिनों वाला सोम याग)।

अनूबन्ध्य पु. एक पशु-याग का नाम जिसके अनुष्ठान में आलभ्य को खम्भे में बाँध दिया जाता है। अनुबन्ध्य-संज्ञक पशु = अर्पण से सम्बद्ध 'पशुपुरोडाश' के साथ पके हुए चावल की एक आहुति 'अदिति' के लिए दी जानी चाहिए, श्रौ.को. (अं) 953; बौ.श्रौ.सू. 18.25, [तु. अनूबन्ध्या स्त्री. एक बन्ध्या गाय जिसकी सोम की समाप्ति पर 'उदयनीय' संज्ञक कृत्य के अनन्तर बलि और आहुति दी जाती है। यह सोम से सम्बद्ध पशु-याग है और यह पशु के प्रतिदर्श = प्रकृति (नमूने) का अनुगमन करता है, आप.श्रौ.सू. 13.23.6-7 (यज्ञ के अन्त में बलि चढ़ने वाली गाय के रूप में भी व्याख्यात, वही - टीका)। सूर्य के लिए नौ पशु एवं अश्व में 21 का यजन किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 20.22.10; का.श्रौ.सू. 20.8.23.]।

अनूषर वि. लवणयुक्त ऊषर भूमि से न उत्पन्न हुआ, बौ.श्रौ.सू. 25.5:2।

अनूह पु. तारतम्य न होना, शां.श्रौ.सू. 5.19.4; तु. आश्व.श्रौ.सू. 3.6.7 (टीका)।

अनूह्य (नञ् + ऊह् + यत्) असंशोधनीय, मा.श्रौ.सू. 5.2.13.2; 5.3.9.7; आश्व.श्रौ.सू. 3.2.20।

अनृगावानम् क्रि.वि. एक विस्तार (फैलाव) में सम्पूर्ण ऋचा को न बोलने के द्वारा, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.20।

अनृच वि. ऋचा से हीन ('प्रजापतेर्हृदय' कहा जाने वाला साम), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.9; वारा.श्रौ.सू. 2.2.3.13; वैखा.श्रौ.सू. 19.6 : 62।

अनृत पु. असत्य, झूठ, जै.ब्रा. I.103।

अनेडकी वि. एडक (भेड़) से भिन्न पशु का (ऊन), भा.श्रौ.सू. 8.7.6 = अनैडकी, का.श्रौ.सू. 5.3.7।

अनेहस् वि. बिना किसी प्रतिद्वन्द्वी वाला, शां.श्रौ.सू. 1.6.2; आश्व.श्रौ.सू. 3.8.1; आप.श्रौ.सू. 24.12.6।

अनैड वि. (न विद्यते 'इडा' शब्दः यस्मिन्) अन्त में 'इडा' शब्द से रहित (साम) बौ.श्रौ.सू. 18.48:15।

अनैडकी वि. भेड़ से न प्राप्त हुई, का.श्रौ.सू. 5.3.7 (ऊर्णा = ऊन) (वरुणप्रघास; ऊपर 'अनेडकी' देखें)।

अन्तःपात्य पु. तीन अथवा चार पाद = पैर (प्रक्रम) की दूरी पर (प्रवर्ग्य के) पूर्वी स्तम्भ के सामने भूमि में गाड़ी गयी कील (खूटीं) अथवा शलाके का पारिभाषिक नाम, का.श्रौ.सू. 8.3.6:15; बौ.श्रौ.सू. 6.22; प्रवर्ग्योद्वासन में अध्वर्यु को अन्तःपात्य शलाका के पास प्रवर्ग्य-पात्रों को नहीं रखना चाहिए, श्रौ.को. (अं) 2.262; का.श्रौ.सू. 26.7.1-29; अध्वर्यु को अन्तःपात्य के क्षेत्र में घृत एवं प्रोक्षणी-संज्ञक जल को पवित्र करना चाहिए और तब अग्निषोमीय पशुयाग के लिए घृत को लेना चाहिए, का.श्रौ.सू. 8.6.23-7.8; [अन्तःपतति शालाद्वार्यस्य च वेदेश्च, टीका—8.3.6-15 चि.भा. से. द्वारा उद्धृत]।

अन्तग वि. (अन्त + गम् + ड) जो किसी देश की सीमा पर रुका हुआ है, बौ.श्रौ.सू. 2.3; ['म्लेच्छदेशम्' अथवा अन्तवर्णं गच्छति शूद्रस्त्रियं गच्छति, बौ.श्रौ.सू. पर वेडक.]।

अन्तम वि. निकटतम, सबसे नजदीक (अन्तमे शकले हिरण्यं निधाय अभिषुणुयात्), बौ.श्रौ.सू. 9.3.12।

अन्तर वि. जो अन्दर है, अन्दर होने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.2।

अन्तरय पु. किसी तत्त्व (घटक, अवयव) को छोड़ देना, आप.श्रौ.सू. 9.16.10।

अन्तेवासिन् वि. जो गाँव की सीमा के निकट वास करता है, वह शिष्य जो गुरु-गृह (गुरु के घर) में निवास करता है (ठहरता है), आश्व.श्रौ.सू. 2.4.4; का.श्रौ.सू. 14.3.19 (वाजपेय)।

अन्तेस्वाहाकारा वि. (स्त्री.) (अन्ते स्वाहाकारः यस्याम्) अन्त में 'स्वाहा' के उद्घोष वाली, शां.गृ.सू. 1.20.5।

अन्त्येष्टि स्त्री. (किसी भी) मनुष्य की अन्तिम 'इष्टि' कृत्य, पितृमेध का एक भाग। मृत व्यक्ति को अग्निशाला से बाहर निकाला जाता है। उसके शिर एवं चेहरे के बाल साफ कर दिए जाते हैं (मूड़ दिये जाते हैं) एवं नख काट दिए जाते हैं। शव को नहलाया जाता है नए वस्त्र से अलङ्कृत किया जाता है। 'नलद' (खस) के फूलों की एक माला सिर के चारो ओर डाल दी जाती है। मृत शरीर को एक 'उदुम्बर आसन्दी (पीठ) पर लेटा दिया जाता है और इसमें बाँध दिया जाता है, एवं एक नये वस्त्र से ढक दिया जाता है। शव के उदर (पेट) को काटकर अंतड़ियाँ बाहर निकाल ली जाती है, अँतड़ियों से विष्ठा (मलों) को बाहर निचोड़ लिया जाता है, जिन्हें 'सर्पिष्' (घी) से पूरित किया जाता है एवं पुनः वापस उदर में स्थापित कर दिया जाता है। इस अद्भुत कृत्य को, जो कि वैकल्पिक है, अन्त्येष्टि-भूमि पर भी अनुष्ठित किया जा सकता है (भा.पि.मे. 1.4.1-2)। मृत शरीर (शव) को या तो मनुष्यों द्वारा अथवा बैलों द्वारा कृष्ट गाड़ी (शकट) में ले जाया जा सकता है। सभी यज्ञीय उपकरण एवं अन्य वस्तुओं तथा श्रौत-अग्नि को अन्त्येष्टि-भूमि पर ले जाया जाता है। अन्तिम जुलुस (अन्त्येष्टि के लिए चलने वाला जन-सम्मर्द) दो अथवा तीन स्थान पर रुकता है। वाहक (शव को ले जाने वाले) जो सेवक एवं वृद्ध पुरुष होते हैं, मृत शरीर को लिटा देते हैं, पके हुए चावल पिष्ट पिण्ड पर रख देते हैं (अथवा बिना छुरी के एक अज को मार डालते हैं)। पत्नियाँ एवं रिश्तेदार अपने बाल बिखेर लेते हैं अथवा अस्त-व्यस्त करते हैं (फेंटते हैं), अपने दाहिने जंघें को थपथपाते हैं एवं शव पर अपने वस्त्रों के आँचल से हवा करते हुए तीन बार बायीं (वाम) दिशा (प्रसव्य) परिक्रमा करते हैं। यह क्रिया हर विराम (रुकने के स्थान) पर की जाती है। अनुस्तरणी-संज्ञक गाय, जिसका पिछला पैर बँधा होता है, श्मशान को ले जायी जाती है, जिसका चयन एवं तैयारी पुरुष की मृत्यु के पूर्व भी की जा सकती है (भा.पि.मे. 1.2-3)। चिता पर मृत व्यक्ति की पत्नी को लिटा दिया जाता है (वैकल्पिक रूप से उसके मृत पति के बगल में) एवं फिर उसे उठा दिया जाता है (देखें—पत्नी)। शव को आसन्दी-सहित चिता पर रख दिया जाता है। पृषदाज्य से भरे हुए यज्ञीय उपकरणों को विभिन्न अङ्गों पर रख दिया जाता है। मिट्टी के पात्रों को फेंक दिया जाता है। बलि चढ़ा दी गयी 'अनुस्तरणी' (गाय) के अङ्गों को काट दिया जाता है एवं उन अङ्गों को एक-एक करके शव पर रख दिया जाता है। गाय के चर्म से शव को ढक

दिया जाता है। गाय के मांस की एक आहुति दी जाती है। इसके बाद चिता को जला देते हैं। परिवार के सभी सदस्य तीन खाँचों में रखे हुए जल को अपने ऊपर छिड़कते है एवं जल में स्नान करते हैं। मृत व्यक्ति के नाम का उल्लेख कर वे (परिवार के सदस्य) हाथ मोड़कर तीन बार जलाञ्जलि देते हैं। वे घर वापस आते हैं एवं तीन, छः अथवा बारह दिन अथवा एक वर्ष व्रत का पालन करते हैं, बौ.पि.में 1.1-9; 2.1.6.7; भार.पि.मे 1.1-8; 'पितृमेध' के लिए देखें—श्रौ.को. (अं)। (2) 1033-1132; तु. हिलब्राण्डट्, मृत्यु एवं मृत-कर्म, ERE IV, 475-9।

अन्तरात्मेष्टकम् क्रि.वि. मुख शरीर एवं 'नैऋती' इष्टकाओं के बीच, का.श्रौ.सू. 17.2.4।

अन्तरालव्रत न. चातुर्मास्य के एक पर्व से दूसरे पर्व के बीच की अवधि के लिए निर्धारित व्रत, आप.श्रौ.सू. 8.4.4।

अन्तरीकृत्य (अन्तर + च्वि + कृ + ल्यप्) ल्यप् (दोनों प्रवर्ग्य पिण्डों = ढूहों) को निकट लाकर, मा.श्रौ.सू. 4.4.3; देखें—अनुवाद - गेल्डर।

अन्तरुक्थ्य पु. आग्रयण के भीतर लिए जाने वाले उक्थ्य प्याले से युक्त एक सोम का नाम, बौ.श्रौ.सू. 25.24; टीका - (अग्निष्टोमे आग्रयणानन्तरमुक्थ्यो गृह्यतेऽन्तरुक्थ्यः कथमु खलु अन्तरुक्थ्यो भवतीति! प्रसिद्धं तृतीयसवन आग्रयणं गृहीत्वोक्थ्यं गृह्णीयात्), काशिकर (पृ. 104) इङ्गित करते हैं कि गोतमस्तोम याग एक अन्तरुक्थ्य अग्निष्टोम है। अन्तरुक्थ्य या तो ऐन्द्रावरुण के लिए एक प्याले के समावेश के द्वारा सम्भव है अथवा स्तुति में विशिष्ट स्तोत्रियानुरूप के समायोजन के द्वारा अथवा 'साकमश्व' साम के प्रयोग द्वारा।

अन्तरुपसत्क वि. (अन्तः उपसद् यस्मिन्) अन्तःस्यूत (अन्तर्ग्रथित) 'उपसद्' से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 25.28 : 21; 'दैक्षस्य संवत्सरे द्वादशावशिष्य राजानं क्रीणीयात्सोऽन्तरुप-सत्कः अन्तर्दिवाकीर्त्य; पु. वह गाँव जहाँ कोई चाण्डाल रहता हो, जहाँ वेद का अध्ययन परिहरणीय है (अर्थात् जहाँ वेदपाठ नहीं किया जाता), पा.गृ.सू. 2.11.4 (अनध्याय)।

अन्तर्धान न. पत्नीसंयाज संज्ञक तृतीय आहुति देते समय (गार्हपत्य एवं आहवनीय के बीच) एक पर्दा (ओट,) डालने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 3.7.8; श.ब्रा. 1.9.2.12; देखें श्रौ.प.नि. 14-100; — **कट** = एक चटाई (पर्दा)।

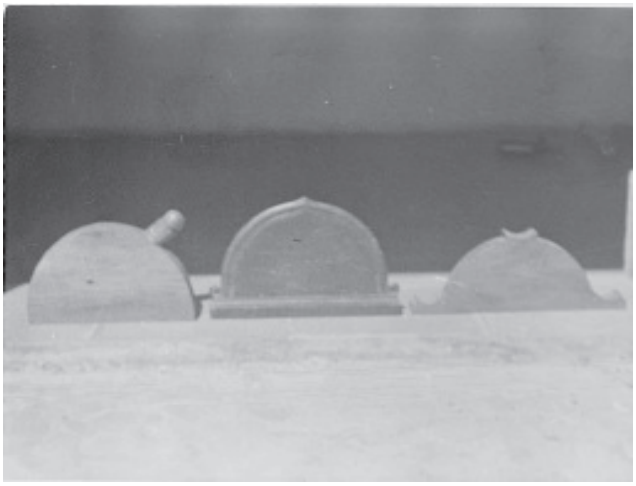

अन्तर्धान कट

अन्तर्धाय (अन्तर् + धा + ल्यप्) बीच में किसी वस्तु को रखकर (हिरण्यम् अन्तर्धाय---उत्तरवेदिम् आधारयति), भा.श्रौ.सू. 7.4.9 (काशिकर : स्वर्ण से घृत को----- उड़ेलता है)।

अन्तर्नावी वि. (स्त्री) नाव में (वर्तमान = रहने वाली), मा.श्रौ.सू. 1.5.6.15 (आधान) ['अन्वारम्भणीया इष्टि' के अनुष्ठान से एक वर्ष पूर्व एक वर्ष के लिए श्रौत-अग्नि के आधान के पश्चात्]।

अन्तर्निधन वि. (अन्तः निधनं यस्मिन्) मध्य में अन्तिमांश से युक्त = मध्ये निधन, अन्तिमांश (निधन) को बीच में प्रयुक्त करते हुए उद्गीथ में विभिन्न अंशों के साथ 'पुनानः सोम धारया' प्रगाथ पर 'यौधाजय' का गान होता है, जै.ब्रा. 1.309।

अन्तर्निर्बाधम् क्रि.वि. इस प्रकार से कि उभरे हुए अंश अन्दर की ओर अथवा पीछे की ओर चले जाएं, आप.श्रौ.सू. 16.10.9 (इसी ससङ्ग में 'बहिर्निर्बाध' देखें)।

अन्तर्मायु (सदस् की धरन को दृढ एवं स्थिर करने के लिए प्रयुक्त) एक शहतीर, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.22।

अन्तर्याम पु. एक सोम-आहुति का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 5.2.2; शां.श्रौ.सू. 6.8.2; का.श्रौ.सू. 9.4.28; (द्वितीय) सोम-आहुति के समय साँस को रोककर सोम रस को खींचना।

प्रवाह से युक्त सोम को रोकने के लिए एक मन्त्र, जिसमें 'अन्तर्यच्छ' शब्द आते हैं, साथ में बोला जाता है। इसका अनुष्ठान उस समय किया जाता है जब 'होता' के प्याले से 'अन्तर्याम' - संज्ञक प्याले में जिसे अध्वर्यु अपने हाथ में पकड़े रहता है, सोम लगातार प्रवाहित होता है, आप.श्रौ.सू. 12.13.5 (सोम)। **० पात्र** न. अन्तर्याम - संज्ञक सोमाहुति के लिए प्याला, बौ.श्रौ.सू. 7.2:9। - **होम** पु. अन्तर्याम-संज्ञक आहुति को प्रदान करना (अर्पित करना) वैखा. श्रौ.सू. 21.9 : 5।

अन्तर्वर्त वि. (वह) जो अवकाश (विवर) के बीच स्थित हो या डाला गया हो (एक चटाई 'कट' अथवा एक छड़ी तेजनी), भा.श्रौ.सू. 12.8.14; टीका - अन्तरालेषु तृणमूलान्यस्यति तेऽन्तर्वर्ता इत्युच्यन्ते, बौ.श्रौ.सू. 6.27; 'नवछदि तेजस्कास्य मिनुयादिति। त्रीणि त्रीण्येव सर्वाणि भवन्ति दक्षिणान्येवोत्तराणि करोत्यन्तर्वर्तान्करोति व्याकृत्या इति, सन्धिषु तृणवर्तान्प्रास्यति तेऽन्तर्वता' (हविर्धान-मण्डप-निर्माणम्); तै.सं. 6.2.10.7, आप.श्रौ.सू. 11.8.3; सदस्-संज्ञक मण्डप के छज्जों के जोड़ो में डाली गयी (रखी गयी) एक घास की चटाई, श्रौ.को. (अं) 2.282।

अन्तर्वसु पु. तीन-दिवसीय सोम यागों में एक का नाम, का.श्रौ.सू. 23.2.10।

अन्तर्वास पु. अन्तर्वस्त्र, अन्दर का कपड़ा, बौ.श्रौ.सू. 18.44 : 14।

अन्तर्वासस् न. एक अधोवस्त्र (कटिभाग को ढकने के लिए), इसे नया होना चाहिए (अनाहत), आप.गृ.सू. 12.8 = अन्तरीयम्, विद्यार्थिकाल के दौरान पहना जाने वाला, हि.गृ.सू. 1.9.10; ब्रह्मचारिवासस्।

अन्तर्विराज न. अग्नि अथवा अग्नियों की स्तुति में ऋचाओं के पाठ के विशिष्ट क्रम का नाम (यात्रा के आरम्भ के समय एवं वापस आने पर) जिसमें स्वाभाविक ऋचा 'मम नाम प्रथमम्' के पाठ के बाद विराज (क्रम) की ऋचाएं (ता.ब्रा. 1.2.1.25-26) पढ़ी जाती हैं, श्रौ.को (अं) I.ii.98 (इस प्रकार वहाँ तीन प्रकार हैं, अन्तर्विराज, बहिर्विराज एवम् अन्तर्बहिर्विराज, जिस पर आधृत होकर या तो साधारण (स्वाभाविक) ऋचा 'मम नाम' इत्यादि विराजक्रम ऋचाओं के पूर्व अथवा बाद में यात्रा पर निकलने या वहाँ से वापस लौटने के लिए पढ़ी जाती है)।

अन्तर्वेदि क्रि.वि. यज्ञीय भूमि के भीतर (पवित्रवति मार्जयन्ते), भा.श्रौ.सू. 3.2.6; वेदि के लिए अभिप्रेत स्थल के अन्दर, का.श्रौ.सू. 2.5.11।

अन्तर्हसत् वि. मुँह (गाल) के अन्दर हसता हुआ, वाचंयम के दौरान, बौ.श्रौ.सू. 20.5।

अन्तःशस्त्रम् क्रि.वि. शस्त्र-संज्ञक 'स्तोत्र' के अन्दर शां.श्रौ.सू. 7.19.7; आश्व.श्रौ.सू. 5.9.2।

अन्तःशालम् क्रि.वि. प्राग्वंश शाला के अन्दर, बौ.श्रौ.सू. 6.30; 14.9।

अन्तःसामन् न. (क्रि.वि.) किसी साम की परिधि के अन्दर, निदा. सू. 7.9.14; द्रा.श्रौ.सू. 20.3.31।

अन्तस्तन्त्रम् क्रि.वि. प्रतिदर्श = प्रकृति (सोम) याग की रूपरेखा (तन्त्र = वनावट) के अन्दर, का.श्रौ.सू. 25.10.1।

अन्तःस्पन्द्यम् न. रज्जु द्वारा आवृत अवकाश (रिक्त स्थान) के अन्दर, बौ.शु.सू. 4.21।

अन्त्र न. मृत व्यक्ति की आँत जिसे 'शाट्यायन ब्राह्मण के अनुसार शव के उदर को खुला काटकर बाहर निकाल लिया जाता है। इसमें से मल को निचोड़ कर बाहर कर दिया जाता है एवं अँतड़ियों को सर्पिस् से आपूरित कर उदर में पुनः स्थापित कर दिया जाता है, भा.पि.मे. 1.4.1।

अन्धस्वती स्त्री. अन्धस् 'भोजन' से युक्त ऋचा, जै.ब्रा. I.214।

अन्नपति पु. अन्न का स्वामी, शां.श्रौ.सू. 10.17.8।

अन्नपतीया स्त्री. 'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि' इस मन्त्र के साथ अग्नि पर रखी जाने वाली समिधा, बौ.श्रौ.सू. 10.1 : 12; 22.3; तै.सं. 4.2.3।

अन्नप्राशन न. पकाये हुए भोजन को बच्चे को पहली बार खिलाने का कृत्य (बच्चे को अन्न खिलाना), जिसे जन्म के छठे महीने में अनुष्ठित किया जाता है, शां.गृ.सू. 1.27.1; आश्व.गृ.सू. 1.16.1; पिता बकरे के मांस अथवा तीतर के मांस अथवा मछली को पकाकर भोजन बनाता है, यदि वह शक्ति आदि की कामना वाला है। भोजन को दधि, मधु एवं घी से मिश्रित किया जाता है एवं बच्चे को खाने के लिए दिया जाता है। वह अग्नि में आहुति डालता है। अवशिष्ट भाग का भक्षण माँ करती है, शां.गृ.सू. 1.27.1-11; आश्व.गृ.सू. 1.16.1-16 (लड़की के लिए यह कृत्य

बिना मन्त्र के सम्पन्न किया जाता है); पार.गृ.सू. 1.19.1-13।

अन्नहोम पु. घृत, अन्न एवं चूर्ण एवं अन्न एवं पीसे हुए चावल से निर्मित, संवर्धन (पालन) की आहुति जिसे अध्वर्यु अश्व पर सूर्योदय से ठीक पूर्व अर्पित करता है। तु. डुमण्ट, एल अश्व 126-130; आहुति से सम्बन्धित द्रव्य भिन्न-भिन्न है, आप.श्रौ.सू. 20.10.5; 'वाज' में अनुष्ठित किया जाता है, 18.6.5।

अन्यतोमद वि. अन्त में प्रयुक्त किये जाने वाला 'मद' (नाम से-मदा मोद इव) मन्त्र के साथ 'प्रतिग्रह' - पाठ, उदाहरण के लिए—'ओथा मोद इव मदा मोद इव', बौ.श्रौ.सू. 8.13 (वैश्वदेव शस्त्र); देखें—उभयतोमद; बौ.श्रौ.सू. 8.13:18 (V.1 'अन्यतोमद' के लिए)।

अन्याग्नि पु. अन्य की पवित्र अग्नि मा.श्रौ.सू. 3.4.3।

अन्याय पु. सामान्य रूप से पालन किये जाने वाले से भिन्न, ला.श्रौ.सू. 10.11.8; 10.7.14।

अन्यूङ्खम् क्रि.वि. 'न्यूङ्ख' शैली के पाठ के विना, शां.श्रौ.सू. 11.15.11; देखें—शां.श्रौ.सू. 12.13.4।

अन्वञ्चि वि. ऊपर की ओर निर्दिष्ट (लक्ष्यीकृत) श.ब्रा. 8.7.2.10।

अन्वयन न. (अनु + अय् + ल्युट्) संयोग (जुड़ाव), आपसी संयोजन, मा.श्रौ.सू. 2.5.5.14-15 (अनूबन्ध्या एवं एविकाहवींषि का पशु-पुरोडाश)।

अन्वर्थम् क्रि.वि. विशिष्ट विषय अथवा प्रयोजन के अनुसार, द्रा.श्रौ.सू. 10.3.6; ला.श्रौ.सू. 3.11.3।

अन्ववदिशति (अनु + अव + दिश + लट् तिप्) (अँगूठे के माध्यम से दर्भ-मुष्टि को) इङ्गित करना, बौ.श्रौ.सू. 3.6.10।

अन्ववहारम् (परिधि के दो जोड़ो के समीप आहुतियों को) ले आकर, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.31।

अन्ववहृत्य (अनु + अव + हृ + ल्यप्) से प्रारम्भकर (या उत्तरतः सन् आहुतीर्जुहोति उत्तरपरिधिम् अन्ववहृत्य जुहोति), भा.श्रौ.सू. 2.14.3; समीप लाकर अथवा बीच में प्रविष्टि करके (परिधियों के जोड़ को छूकर) आप.श्रौ.सू. 2.12.7, 2.13.11; किन्तु कैलेण्डः 'hin lekend' उत्तर-पश्चिम परिधियों के जोड़ की ओर मोड़ कर।

अन्वष्टका स्त्री. अष्टका के बाद वाला दिन (अर्थात् नवम दिन, आ.गृ.सू. 22.9), जिस पर मासिक श्राद्ध अथवा पिण्डपितृयज्ञ के रूप में पितरों के लिए कृत्य सम्पादित किया जाता है। अ 3 अथवा 4 अष्टकाओं में प्रत्येक का अनुगमन करता है----सुरा एवं चावल के झाग (माड़) को अर्पित करता है। 9 अथवा विषम संख्या में ब्राह्मणों को भोजन दिया जाता है, पकाया हुआ गोमांस (गाय के विशिष्ट अङ्गों का) स्त्री पूर्वज के लिए, पार.गृ.सू. 3.3.10-11।

अन्वाख्या स्त्री. व्याख्या, आप.श्रौ.सू. 18.21.4।

अन्वाख्यान न. पाठ्य (मूल) से नैकट्य रखने वाली व्याख्या, वाधू.श्रौ.सू. 3.12.1।

अन्वाख्याय (अनु + आ + ख्या + ल्यप्) मूल (पाठ) के आलोक में व्याख्या करके, ला.श्रौ.सू. 9.2.5।

अन्वाख्यायम् क्रि.वि. मूल पाठ के आलोक में व्याख्या के साथ।

अन्वादेश म. (अनु + अ + दिश् + घञ्) वैकलिक अभिव्यक्ति (छागस्थाने मेष, इत्यादि), आश्व.श्रौ.सू. 3.4.10। किञ्चित् कार्यं विधातुम् उपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानम् अन्वादेशः. सि.कौ.-पा. 2.4.34 पर।

अन्वाधान न. (अनु + आ + धा + ल्युट्) ईंधन की लकड़ियों को जोड़ना (बढ़ाना), यज्ञीय अग्नि में प्रत्येक में दो अथवा तीन समिधाएं (अग्न्यन्वाधान), आप.श्रौ.सू. 4.2.8; 1.1.7; शां.श्रौ.सू. 4.16.5; श्रौ.प.नि. 10.6.8।

अन्वाधान

अन्वाधि पु. (दक्षिणाग्रहण के लिए नियत पाठ में योजनीय) अतिरिक्त अभिव्यक्तियाँ, आप.श्रौ.सू. 14.12.3; [यह अतिरिक्त अभिव्यक्ति 'सवितृ पुरस्तात्' के एक सन्दर्भ से युक्त है जिसका प्रारम्भ 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिग्रह्णामि। राजा त्वा वरुणो नयतु देवि दक्षिणे' से होता है एवं अन्त 'उपरिष्टात्, तेनासृतमश्याम्' से, आप.श्रौ.सू. 14.11.2; दक्षिणा ग्रहण करते समय अग्निष्टोम में 'तेनामृतमश्याम' मन्त्र के नाम का उच्चारण करना चाहिए। (सवितृ-मन्त्र 'देवस्य त्वा---' का उच्चारण प्रारम्भ में करना चाहिए), श्रौ.को. (अं.) 2.267, आप.श्रौ.सू. 14.12.3।

अन्वायात्य पु. वह आहुति या आहुतियाँ जो स्विष्टकृत् के पहले दी जाती हैं, उदाहरणार्थ—देवसु, देविका आहुतियाँ, आश्व.श्रौ.सू. 3.5.6; अन्वायात्या-संज्ञक आहुतियों के लिए 'अन्वायात्या' 'याज्या' (संज्ञक ऋचा) है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.30; वे निम्न स्वर में (उपांशु) उच्चारित की जाती है, काशिकर 87।

अन्वारभ् स्पर्श करना, छूना, शां.श्रौ.सू. 2.4.11.2; 7.5.9; का.श्रौ.सू. 7.6.10; **० रभ्य** ल्यप्, स्पर्श करके, शां.श्रौ.सू. 1.5.8।

अन्वारम्भ पु. पौर्णमास इष्टि के प्रारम्भ के समय 'अग्राविष्णु' के लिए एक पुरोडाश, सरस्वती के लिए चरु एवं सरस्वन्त के लिए एक पुरोडाश से युक्त एक यज्ञ का नाम, बौ.श्रौ.सू. 2.21:1; चतुर्होत्र मन्त्रों के साथ आहुतियों एवं सारस्वत आहुतियों के अनन्तर [अग्राविष्णु के लिए (एकादश कपाल), सरस्वती के लिए (ओदन = पका चावल) एवं सरस्वन्त के लिए (द्वादश-कपाल पुरोडाश)] श्रौ.को. (अं) I.i. 58।

अन्वारम्भणम् न. एक-दूसरे को स्पर्श करने का कृत्य, मुख्य रूप से यजमान का कर्तव्य, वह अध्वर्यु को छूता है, पत्नी उसे छूती है एवं अन्य सम्बन्धी पत्नी को, भा.श्रौ.सू. 12.16.13।

अन्वारम्भणीयेष्टि स्त्री. अग्नि-विष्णु, सरस्वती, सरस्वन्त एवं 'भगिन् अग्नि को समर्पित 'इष्टि' का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 2.1.8; शां.श्रौ.सू. 2.1-4. एक गाय दक्षिणा के रूप में दी जाती है। दर्श का प्रस्तावनात्मक कृत्य, आप.श्रौ.सू. 5.23.4-9 एवं टीका। इस कृत्य में आठ कपालों पर पकाया गया पुरोडाश अग्नि भगिन् को अर्पित किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.21; देखें श्रौत.प.नि. 67.423-24; श्रौ.को. (अं) I. 671।

अन्वारोह पु. चढ़ना, आरोहण, (द्रवाहुति), मा.श्रौ.सू. 6.2.6.11; (चयन में इनकी संख्या पाँच है) 'स्वयं कृण्वान्' इत्यादि के साथ अर्पित की जाती है, एक मन्त्र का नाम, अर्थात्, 'श्येनोऽसि गायत्री छन्दः----' इसे यजमान द्वारा उस समय जपा जाना चाहिए जबकि 'बहिष्पवमान' स्तोत्र का पाठ किया जा रहा होता है, भा.श्रौ.सू. 13.17.2-12. वह इस मन्त्र का पाठ माध्यन्दिन सत्र में करे जिस समय 'माध्यन्दिन पवमान की मध्य ऋचा पढ़ी जा रही होती है, श्रौ.को. (अं) 2.632। सायंकाल के समय 'आर्भव पवमान' के लिए अन्वारोह मन्त्र में 'अघासि जगती छन्दः----' समाहित होता है। जब 9वम स्तोम गान में प्रारम्भ होता है उस समय इसे (अन्वारोह को) यजमान जपता है 'जब बहिष्पवमान के मध्य भाग का पाठ किया जाता है उस समय यजमान द्वारा बोला जाने वाले तीन मन्त्र जिनका आरम्भ 'श्येनोऽसि' से होता है, आप.श्रौ.सू. 16.17.15।

अन्वारोहा स्त्री. (द्वि.) याद-प्रक्षेप के लिए अभिप्रेत दो ईंटें (जिसपर पैर रखा जाता है), आप.श्रौ.सू. 16.23.10।

अन्वालभ् स्पर्श करना, छूना, आश्व.श्रौ.सू. 1.13.7; ला.श्रौ.सू. 2.10.20; द्रा.श्रौ.सू. 6.2.2।

अन्वाहार्य पु. ओदन, उबाला हुआ चावल ('प्रायणीयेष्टि' में ऋत्विक्-शुल्क के रूप में नहीं दिया जाने वाला), भा.श्रौ.सू. 10.14.2; का.श्रौ.सू. 4.11.4; ऋत्विजों के लिए यज्ञीयशुल्क = दक्षिणा के लिए अभिप्रेत चावल (चावल जो परिशिष्टीकृत किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 3.3.12; का.श्रौ.सू. 2.5.27 (दर्श); मा.श्रौ.सू. 1.4.2.12; देखें—श्रौ.प.नि. 13.95; एक पूरक (परिशिष्ट) कृत्य, प्रधान यज्ञ के पश्चात् किया जाने वाला; अथवा नान्दीमुखश्राद्ध, जो सभी गृह्य कृत्य का पूर्ववर्ती होता है, गौ.गृ.सू. 1.1-5; टीका. किन्तु यह अभिकथन सन्देहास्पद प्रतीत होता है, पिण्ड पितृयज्ञ के तुरन्त बाद किया जाने वाला एक मासिक श्राद्ध, गौ.गृ.सू. 4.4.3-4।

अन्वाहार्यपचन पु. उस 'दक्षिणाग्नि' का अन्य नाम जिस पर चावल पकाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.1.4; का.श्रौ.सू. 4.8.13; शां.श्रौ.सू. 2.7.15; बौ.श्रौ.सू. 20.1: 23; तु. आधेय।

अन्वाहार्यस्थाली स्त्री. वह बटलोई जिसमें रखकर चावल पकाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.15.9; वैता.श्रौ.सू. 11.9।

अन्वाहित वि. (अनु + आ + धा + क्त) परस्पर जोड़ा हुआ, बौ.श्रौ.सू. 1.2।

अन्वाहिताग्नि वि. (वह) जिसने पवित्र अग्नि में ईंधन को रखा है (संयोजित किया है) भा.श्रौ.सू. 9.1.8 (यदि अन्वाहिताग्नि: प्रयायात्), प्रायश्चित्तानि।

अन्विष्टि स्त्री. उत्तर-वर्ती काम्येष्टि (काम्य यज्ञ), जै.ब्रा. II.107, 163।

अप् स्त्री. (बहु.) जल 'अप उपस्पृश्य', आश्व.श्रौ.सू. 6.5.3; 'अद्भिरभिमृशति' (पुरोडाश), का.श्रौ.सू. 2.5.21।

अपकृष्य (अप + कृष् + ल्यप्) (प्रैष से 'पशुना इहि' इस अभिव्यक्ति को) अलग करके अथवा हटाकर, का.श्रौ.सू. 10.1.17; 9.5.11।

अपक्षिपति (अप + क्षिप् + लट् तिप्) व्यजन आदि डुलाते हुए गड्ढे में हवा करना, का.श्रौ.सू. 16.3.3 (चयन में उखाकरण)।

अपक्षीयमाणपक्ष पु. वह पक्ष (पाख) जिसमें चन्द्रमा क्षीण होता है, मास का कृष्ण पक्ष, शां.श्रौ.सू. 13.29.9।

अपगर पु. 1 महाव्रत के दौरान प्रतिभागियों द्वारा ऋत्विजों के प्रति चिल्लाते हुए कहा गया अपशब्द, का.श्रौ.सू. 13.3.6 (गवामयन); वारा.श्रौ.सू. 3.2.5.33; ला.श्रौ.सू. 4.3.2; द्रा.श्रौ.सू. 11.3.1; देखें—अभिगर, 2. कथन (टिप्पणी) की प्रतिकूल अभिव्यक्ति, का.श्रौ.सू. 13.3.3-4; 3. निन्दक, मा.श्रौ.सू. 7.2.7.12 (महाव्रत)।

अपगूर्य (अप + गुर् + ल्यप्) 'आगू' मन्त्रों 'ये यजामहे' इत्यादि को त्रुटिपूर्ण ढंग से पढ़कर, आश्व.श्रौ.सू. 9.7.9।

अपघाटलिका स्त्री. वीणा का एक प्रकार (भेद), आप.श्रौ.सू. 21.17.16 (टीका); अपघाटिला, पञ्च.ब्रा. 5.6.8 (महाव्रत); ला.श्रौ.सू. 4.2.8; द्रा.श्रौ.सू. 11.2.8-9।

अपगृह्य (अप + ग्रह् + ल्यप्) (कुछ क्षण के लिए) दूर ले जाकर, का.श्रौ.सू. 9.6.7 (इन्द्रवायू प्याला)।

अपचिति स्त्री. (द्वि.) 1. एक सवन दिन वाले एक सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.5.13. प्रजापति के लिए दो अपचितियाँ होती है, सम्मान की कामना वाला व्यक्ति उनका (अपचितियों का) अनुष्ठान करे, शां.श्रौ.सू. 14.33.1; का.श्रौ.सू. 22.10.28; ला.श्रौ.सू. 9.4.13; 2. 'अर्घ'-ग्रहण, स्नातक एवं अन्य के सम्मानार्थ अनुष्ठित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 13.2.3।

अपच्छाद्य (अप + छद् + ल्यप्) (शकट = गाड़ी की हविर्धानी = अन्नपात्र पर स्थित) ढक्कन (आवरण) को हटाकर, बौ.श्रौ.सू. 1.19 : 10।

अपत्नीक वि. (मासिक धर्म = रज:स्राव एवं अन्य कारणों से) जिसकी पत्नी यज्ञ में उपस्थित नहीं है (ऐसा यजमान), का.श्रौ.सू. 2.5.18; 5.8.5।

अपथ्या स्त्री. जो सामान्य (विष्टुति) नहीं है, ला.श्रौ.सू. 6.2.14।

अपदाति वि. पैदल न चलने वाला, जो पैदल नहीं है (अर्थात् रथादि पर आरोहण करने वाला), आप.श्रौ. 20.1.6।

अपदादि पु. (किसी ऋचा) के पाद का प्रारम्भ न करने वाला (अर्थात् पद के आदि में स्थित), ला.श्रौ.सू. 7.7.33।

अपदिबद्धा वि. (न पदि बद्धा) पैर में न बँधी हुयी (जिसका पैर बाँधा नहीं गया है), आ.श्रौ.सू. 10.22.9 (सोम क्रयणी)।

अपदिश्य (अप + दिश् + ल्यप्) निर्देश देकर, का.श्रौ.सू. 7.2.5।

अपदेश पु. (अप + दिश् + घञ्) निर्देश, का.श्रौ.सू. 22.1.14।

अपनाम पु. (अप + नम् + घञ्) (किसी पक्षी के पंख का) झुकाव, बौ.शु.सू. 4.53।

अपनिधन वि. (अपगतं निधनं यस्मात्) (साम के) निधन (अन्तिमांश) से रहित, जै.ब्रा. I.117, 134।

अपन्नदत् वि. (स्त्री.ई) (न उत्पन्नो दन्तो यस्या:) जिसके दाँत अभी दीखे नहीं हैं, दन्तविहीन (बच्चा), आप.श्रौ.सू. 7.12.4; 18.2.12।

अपपर्यावर्तेत (अप + परि + आ + वृत् + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) 'आहवनीय' की तरफ पीठ घुमा ले (इसके निकट सोते समय), आप.श्रौ.सू. 10.15.10; भा.श्रौ.सू. 1.1.14।

अपपात्र वि. वह व्यक्ति जिसे (उस) पात्र के उपयोग की आज्ञा नहीं दी जा सकती, जिसमें अन्य वर्णों के व्यक्ति भोजन लेने वाले हों। [अपरार्क—पतितत्वात् ज्ञाति-बहिष्कृत:]; जाति-बहिष्कृत, आप.श्रौ.सू. 15.21.9; बौ.श्रौ.सू. 27.9 : 6।

अपप्रथि वि. (वह वर्ग) जो वृत्त के बराबर बड़ा न हो, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.14।

अपप्लवन न. (अप् + प्लु + ल्युट्) पात्रों एवं अन्य द्रव्यों को डुबाना : योक्त्र, कृष्णाजिन, इत्यादि जो सोमलिप्त हैं, को अग्निष्टोम के अन्त में तु. प्रास्यति, का.श्रौ.सू. 10.9.5; प्रविध्यति, आप.श्रौ.सू. 13.20.12; प्रप्लावयन्ति, बौ.श्रौ.सू. 8.20; **० लाव्य** णिच् + ल्यप् डुबाकर, आप.श्रौ.सू. 12.5.10।

अपबर्हिष् वि. (बहु.) ('बर्हिष्' यज्ञीय घास) का होम जिसमें समाहित नहीं है, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.39; (पूर्वाहुतियाँ एवं पश्चादाहुतियाँ), आप.श्रौ.सू. 8.17.16; का.श्रौ.सू. 5.8.35; शां.श्रौ.सू. 3.16.24 (पूर्वाहुतियाँ साधारणतया समिद्, तनूनपात्, इड, बर्हिष् एवं स्वाहा को एवं उत्तराहुतियाँ 'देवं बर्हिस्, देवो नाराशंस एवं देवो अग्निस्विष्टकृत् को समर्पित की जाती हैं); देखें—श्रौ.प.नि. 101.505।

अपभरणी स्त्री. एक देवता का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.383।

अपभस्मन् वि. (अपगतं भस्म यस्य यस्माद्वा) जिससे भस्म (राख) को हटा दिया गया है (वेदेन अपभस्मानं करोति), मा.श्रौ.सू. 1.2.6.21।

अपमार्जन न. साफ करना, बुहारना, का.श्रौ.सू. 9.10.14 (शुक्रामन्थी प्यालों को)।

अपमार्ष्टि (अप + मृज्ज् + लट् तिप्) ऊपर से नीचे तक मार्जन क्रिया करने के बाद सोम के प्याले (अन्तर्याम) के बाहरी भाग को माँजता है, का.श्रौ.सू. 9.6.3 ('अंशु' पात्र के सन्दर्भ में 'उन्मार्ष्टि' का उलटा)।

अपमृष्ट वि. साफ किया गया, बुहारा गया, का.श्रौ.सू. 9.10.4।

अपयस्य वि. (न पयस्यः = पयसो विकारः) दुग्ध के उत्पाद से विहीन, दुग्ध से अनुत्पन्न (दुग्ध का न बना हुआ), ला.श्रौ.सू. 1.2.8; द्रा.श्रौ.सू. 1.2.14।

अपयस्या स्त्री. 'पयस्या' जमाये गये दूध से रहित, का.श्रौ.सू. 10.3.19।

अपर वि. (द्वि.) पश्चिम में स्थित (दो अग्नियाँ) अर्थात् गार्हपत्य एवं दक्षिण, भा.श्रौ.सू. 1.11.2; पश्चिमी, आप.श्रौ.सू. 2.19.3; अन्य, अर्थात् दूसरी बार (अपरं गृहीत्वा उदङ् गच्छन् आह) का.श्रौ.सू. 9.3.2 ('अप्सु जुहोति' अपां नपात् कृत्य के लिए 'प्रातरनुवाक' के बाद); **अपरा** स्त्री. पञ्चदश स्तोम के अनुष्ठान की द्वितीय (अन्य) विष्टुति अ अ अ ब स, अ ब स, अ ब ब ब स स स, श.ब्रा.अं XXXVI, 308; चि-भा.से : अपरेण उ द्वितीयेन 'द्वितीय के साथ' का.श्रौ.सू. 10.8.25।

अपरदक्षिणम् क्रि.वि. दक्षिण-पश्चिम दिशा में, बौ.शु.सू. 6.14।

अपरपक्ष पु. मास का द्वितीय पक्ष, (द्वितीयार्ध) बौ.श्रौ.सू. 10.12:1; का.श्रौ.सू. 24.4.22; महीने का दूसरा पक्ष अथवा भाग, अर्थात् कृष्ण पक्ष जिसमें 15 चान्द्र दिवस अथवा तिथियाँ होती हैं, आप.गृ.सू. 1.9।

अपरप्रथम वि. (अपरः प्रथमः यस्मिन्) पश्चिम वाले से शुरु होने वाले (पुरोडाश अथवा आहुति के अवदान = कर्तन), आप.श्रौ.सू. 2.19.3।

अपररात्र न. रात्रि का द्वितीयार्ध, बौ.श्रौ.सू. 24.20:3; आप.श्रौ.सू. 6.4.10; का.श्रौ.सू. 7.4.26; 9.1.1।

अपरशुवृक्ण वि. (न परशुना वृक्णः) किसी परशु = कुल्हाणी से न काटा गया (इध्म), आप.श्रौ.सू. 16.10.1 (उख्ये आदधाति); मा.श्रौ.सू. 8.1.3.28।

अपरापातिन् वि. पश्चिम की ओर न गिरने वाली (काष्ठ-पट्टिका) आप.श्रौ.सू. 7.2.5।

अपराग्नि पु. पश्चिमी दिशा में स्थित पवित्र-अग्नियाँ, अर्थात् गार्हपत्य एवं दक्षिण जिनकी तुलना पूर्व में स्थित एक अग्नि अर्थात् आहवनीय से की गई है, बौ.श्रौ.सू. 24.26 : 2; का.श्रौ.सू. 2.1.11; 6.10.10।

अपराजित न. एक छन्द का नाम जिसमें 4 पाद होते हैं एवं प्रत्येक पाद में 14 अक्षर होते हैं, जै.ब्रा. III.172।

अपराजिता वि. जिन्हें जीता नहीं गया है, (अविजित चित अग्निवेदि की द्वितीय तह में लगायी गयी सोने की ईंट), मा.श्रौ.सू. 6.2.1.16 स्त्री. उत्तर-पूर्व चतुर्थांश, शां.गृ.सू. 4.6.2।

अपराह्ण न. दिन का द्वितीय भाग, अर्थात् दोपहर के बाद का समय, वाधू.श्रौ.सू. 4.28:3; आश्व.श्रौ.सू. 2.1.1; आपराह्णिक वि. (की) स्त्री. दोपहर के बाद होने वाली, मा.श्रौ.सू. 4.3.44; बौ.श्रौ.सू. 6.24 : 5।

अपरिकर्षण न. दो सकेन्द्रित वृत्तों की त्रिज्या = अर्धव्यास की अभिन्नता, बौ.शु.सू. 5.32।

अपरिक्रामम् क्रि.वि. आहवनीय के चारों ओर घूमे बिना (बिना परिक्रमा किए) (सम्मार्ष्टि), का.श्रौ.सू. 3.5.4।

अपरिगृहीत वि. (वह वेदि) जिसका परिग्रह = चिह्नीकरण नहीं किया गया है, वैखा.श्रौ.सू. 9.4:6।

अपरिमित वि. (नञ् + परि + मा + क्त) (किसी विशेष संख्या अथवा आकार में) न बँधा हुआ = न सीमित किया हुआ, का.श्रौ.सू. 1.3.21; 21.3.6; आश्व.श्रौ.सू. 7.12.5; **० दक्षिण** वि. असीमित दक्षिणा वाली, आप.श्रौ.सू. 10.26.4; **० स्तोम.** वि. असीमित स्तोमों वाता, आप.श्रौ.सू: 25.13.37; दी गयी मात्रा में एक इकाई की वृद्धिकर प्राप्त की गयी आकृति (द्वादश दीक्षा अपरिमिता वा, यहाँ अपरिमित का अर्थ है तेरह = त्रयोदश)।

अपरिवर्गम् क्रि.वि. सम्पर्क छोड़े बिना, आप.श्रौ.सू. 2.11.3; टीका—अपरित्यजन्, बौ.श्रौ.सू. 4.4:26; भा.श्रौ.सू. 2.11.2; हि.श्रौ.सू. 1.8.28।

अपरिवासित वि. (नञ् + परि + वास् + क्त) न काटा हुआ, बौ.श्रौ.सू. 9.5.8; भा.श्रौ.सू. 11.7.4; हि.श्रौ.सू. 24.3.1।

अपरिवीत वि. (नञ् + परि + व्ये + क्त) रस्सी से चारों ओर न बँधा हुआ (स्तम्भ) वारा.श्रौ.सू. 1.6.3.24।

अपरिश्रिते क्रि.वि. (आहवनीय के सामने) उस समय जब गार्हपत्य पृथक्कृत = अलगाया हुआ अथवा आवृत = ढका हुआ न हो, भा.श्रौ.सू. 3.8.4 (पत्नीसंयाज)।

अपरिषिञ्चत् वि. (नञ् + परि + सिञ्च् + शतृ) (जल को) चारों ओर न उड़ेलता हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.15; पीछे की ओर (तीन बार) परिक्रमण करते समय।

अपरिस्तीर्ण वि. (नञ् + परि + स्तृ + क्त) जिसके लिए दर्भ = पवित्र घास नहीं फैलाया गया है, आप.श्रौ.सू. 1.15.3; बौ.श्रौ.सू. 1.4:3।

अपर्यग्निकृत वि. (अधि.) (आलभ्य = वध्य) के चारों ओर अंगारों को घुमाए बिना, मा.श्रौ.सू. 5.2.5.6।

अपर्याण पु. वह स्थान जिसका लङ्घन नहीं किया जा सकता; 'परिहृत्य गन्तुमशक्या:', टीका – बौ.श्रौ.सू. 6.9 पर; वापस लौटने के लिए प्राविधान से हीन; 'मध्ये मार्गं वर्जयित्वा गन्तुमशक्या:', टीका – बौ.श्रौ.सू. 26.21 (शम्याप्रास के अनुसार गति से युक्त सारस्वत सत्र)।

अपर्वन् पु. 'पर्व' – संज्ञक कल्याणकारी दिन से भिन्न, हि.श्रौ.सू. 7.1.10।

अपवादनिशामन न. (अपवादानां निशामनम्) अपवादों की निष्कृति, ला.श्रौ.सू. 6.9.5 (अनवध्यायम् अपवादनिशा-मनम्)।

अपवमान न. पवमान स्तोत्र का अभाव, का.श्रौ.सू. 11.1.27।

अपवर्ग पु. (अप् + वृज् + घञ्) अन्त, समाप्ति, पर्यवसान, मा.श्रौ.सू. 3.6.1; शां.श्रौ.सू. 8.15.1।

अपवित्र वि. (न विद्यते पवित्रं यस्मिन्) छन्नी से रहित, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.12, आप.श्रौ.सू. 8.9.11।

अपविनक्ति (अप + विच् + लट् तिप्) (टूटे हुए दानों से न टूटे हुए को) अलग करता है, का.श्रौ.सू. 2.4.20।

अपवृत्तकर्मन् वि. (अपवृत्तं कर्म यस्य) जिसका कार्य अथवा प्रयोजन (कार्यान्वयन) समाप्त हो चुका है, का.श्रौ.सू. 1.3.28।

अपवेष्टयत् वि. (अप + वेष्ट् + शतृ) (सिर पर स्थित) ढक्कन को हटाता हुआ, जै.ब्रा. III. 129।

अपसलवि क्रि.वि. घड़ी की सुई के विपरीत दिशा में, का.श्रौ.सू. 21.3.31 (पितृमेध)।

अपसलै: कि.वि. बायीं होर, बौ.श्रौ.सू. 1.2.27 'शुल्बं कृत्वा अपसलै: आवेष्टयति (दर्भ-मुष्टि), बौ.श्रौ.सू. 1.2.7।

अपसव्यम् क्रि.वि. दाहिने हाथ की प्रथम अंगुलि (तर्जनी) एवं अँगूठे के बीच के भाग (पितृतीर्थ) से, का.श्रौ.सू. 4.1.9; जनेऊ (उपनयन) को दाहिने कन्धे पर रखते हुए, बायें से दाहिनी ओर गति करने का कृत्य, कर्म प्रदीप—1.2.8। (० करण)।

अपस्या स्त्री. = परिश्रृत, चयन में एक आवरण इष्टका (ईंट) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.19।

अपस्राव (अप + स्रु + घञ्) पु. निम्नाभिमुखी (नीचे की ओर) आप.श्रौ.सू. 18.18.5

निर्गमव, आप.श्रौ.सू. 18.18.5.

अपहत वि. (वह व्यक्ति) जिसने कोई गलती की हो, मा.श्रौ.सू. 7.2.3.2 (द्वादश-दिवसीय कृत्य का दसवां दिन)।

अपांहोम पु. जल की आहुति प्रदान करना, आप.श्रौ.सू. 20.11.7।

अपाकरण न. (अप + आ + कृ + ल्युट्) वत्सों, जिनकी संख्या छ: होती हैं, उनको माताओं के पास से दर्भमुष्टि द्वारा दूर हटाना, आप.श्रौ.सू. 1.2.3 (दर्श); भा.श्रौ.सू. 8.1.10 (वैश्वदेव); 5.4 (वरुण प्रघास)।

अपाघ न. 'अप न: शोशुचद् अघम्' से प्रारम्भ होने वाला सूक्त (ऋ.वे. 1.97.1.8) पितृमेध के समय जब मृतक के सम्बन्धी जलस्थान पर पहुँचते हैं तब उनके स्वयं द्वारा = गिराये गये कंकड़ों का अनुगमन करते हुए इस सूक्त का पाठ उन्हीं द्वारा (मृतक-सम्बन्धियों द्वारा) किया जाता है;

यह शब्द 'व्याघापाघे' से निष्पन्न है। सूक्त अ.वे. 3.31 एवं अ.वे. 4.33 भी हैं, श्रौ.को. (अं) I.ii.1086।

अपाघा न. एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, तै.ब्रा. 3.12.1-4; आप.श्रौ.सू. 19.15.17, 18; इनकी संख्या पाँच है।

अपान न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.2.2, सा.वे. 1.318 पर आधारित, अपान वायु, अधो वायु।

अपानभृत् स्त्री. अग्नि-वेदि के प्रथम तह की ईंटों का नाम (94-148), बौ.श्रौ.सू. 10.35.15।

अपां निधि पु. वेदि के निर्माण (चयन) के समय कमल-पत्र के रखे जाने के बाद गाये जाने वाले साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.22.2।

अपान्य (अप + अन् + णिच् + ल्यप्) वायु को मध्य में (अन्दर) बहाकर, आप.श्रौ.सू. 14.11.3 (वायोरन्तर्नयनम् अपाननम्) (प्रतिग्रहणम्); अन्तः श्वास लेकर, भा.श्रौ.सू. 11.10.5, तु. अनवानम्।

अपांन्ययन न. स्थिर जल, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.22।

अपांपतीया स्त्री. अपांपति (जल के स्वामी) को संबोधित ऋचा, बौ.श्रौ.सू. 26.2; 12.8; 'अपां पतिरसि', इत्यादि (तै.सं. 1.8.11.1; वा.सं. 10.3)।

अपामार्ग पु. (अप + आ + मृज् + घञ्) एक पौधे (वनस्पति) का नाम (चिचड़ी) आप.श्रौ.सू. 18.9.16; देखें एस.आर.सहगल, सिद्धार्थ वर्मा टीका—वाल्यू. 1950, पृ. 162-63।

अपामार्गहोम पु. राक्षसों को बाहर निकाल फेंकने के लिए अध्वर्यु द्वारा दी जाने वाली अपामार्ग (शाब्दिक-साफ करने वाला) के फल की आहुति। अध्वर्यु दक्षिणाग्नि से एक अंगार लेकर अग्नि-शाला को छोड़ देता है, एवं अन्य स्थान पर अग्नि को तैयार करता है, आप.श्रौ.सू. 18.9.5-20 (राज-के प्रारम्भिक कृत्य) तु. हि.श्रौ.सू. 13.3.32।

अपामार्जनस्तोत्र न. व्याधियों को दूर करने के लिए (प्रयुक्त) एक स्तोत्र का नाम, मो.वि.।

अपारका स्त्री. एक लता का नाम, यदि वह हो तो उसे श्मशान से हटा देना चाहिए, श्रौ.को. (अं) I.ii.1044।

अपालम्ब पु. सोम-शकट (गाड़ी) के लिए (या तो किसी लकड़ी के टुकड़े अथवा रस्सी) का सहारा, का.श्रौ.सू. 7.9.13 (अपालम्बं गृहीत्वा सोमाय क्रीताय अनुवाचयति पर्यूह्यमाणाय वा); शकट-धूरी के लिए पीछे से सहारा, बौ.श्रौ.सू. 7.15; 7.17 = आप; अवालम्ब. टीका पश्चादक्षमीषायां बद्धा रज्जुर्यष्टिर्वा धारणार्था, आप.श्रौ.सू. (इन्डेक्स)।

अपाव्य न. घी की प्रदेय दो, तीन अथवा 4 आहुतियों का नाम [जिस समय 'पर्यग्निकरण' (आलभ्य पशु के चारों ओर अग्नि को घुमाना) अनुष्ठित हो रहा होता है], आप.श्रौ.सू. 7.15.4; 'शुक्रमन्थी' प्यालों से सम्बद्ध एक आहुति का नाम, श्रौ.को (अं) 2.525; देखें तै.सं. 3.1.9.4।

अपाश्रयति (अप + आ + श्रि + लट् तिप्) लटकाता है (तत् सम्बाद्ध्य उत्तरस्यां प्रेङ्खस्थूणायामपाश्रपति) शां.श्रौ.सू. 17.10.16।

अपाष्टिह पु. एक वनस्पति (पौधे) का नाम, श्रौ.को. (सं.) 1.7.1।

अपिकक्ष न. अग्निवेदि के पंख के पश्चिम में स्थित स्थान, वेदि की काँख, ला.श्रौ.सू. 3.9.11; 1.5.5; 16; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.8; देखें—महेन्दले एम.ए.; II J.3 (2), 142-43।

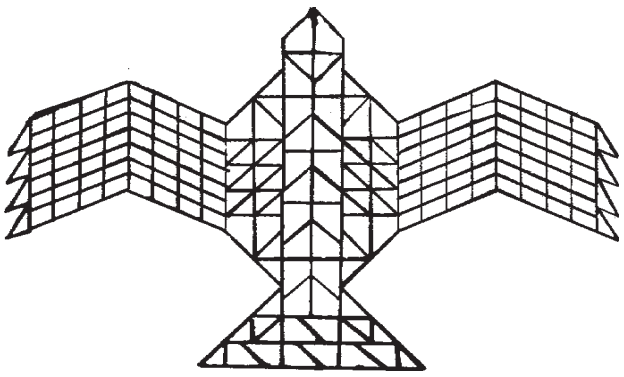

अपिकक्ष

अपिगृह्य अप + ग्रह् + ल्यप् (हाथ से प्याले को) नीचे एवं ऊपर से पकड़कर, आप.श्रौ.सू. 12.22.3; ढककर, आप.श्रौ.सू. 10.13.5।

अपित्वी पु. अंशभाक्, अंश-धारक, जै.ब्रा. I.313।

अपिधान न. लोहे अथवा लकड़ी का बना हुआ ढक्कन, किन्तु मिट्टी का नहीं, भरनी के लिए जिसमें 'दर्श' के लिए दुग्ध संग्रहीत किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.14.9; 15.1; का.श्रौ.सू. 9.10.3; बौ.श्रौ.सू. 14.10:35।

अपिधाय (अपि + धा +ल्यप्) ढककर, आश्व.श्रौ.सू. 5.5.11; शां.श्रौ.सू. 4.15.8।

अपिपक्ष पु. (दाहिने) पंख का पर्व (जोड़) एवं (चित-निर्मित अग्निवेदि का) केन्द्रीय भाग, आप.श्रौ.सू. 17.12.11; वेदि (चयन) के बगल एवं आधार का मिलन बिन्दु, (चि.भा.से.)।

अपिवपेत् (अपि + वप् + वि.लि. तिप्) (कुत्ते के पद-चिह्नों को भस्म से) आपूरित करना = भरना, आप.श्रौ.सू. 9.6.11 (चिन्नस्वामी-सम्पादित में अपि का अलग से पदम् के साथ लेकर अपिवपति पाठ है, पाठ इस प्रकार है—पदमपि वपेत्; धू. वपेत् प्रकिरेत्)।

अपिव्रत वि. (बहु.) वह जो (अपने सम्बन्धियों, मित्रों इत्यादि का साथ) मिलकर भोजन करता है, आप.श्रौ.सू. 11.17.12; पु. यजमान के परिवार से सम्बद्ध व्यक्ति (यज्ञीय अनुष्ठान में भाग लेने वाले), का.श्रौ.सू. 8.6.34।

अपिष्ट पु. बिना पूर्णतया पिसे चावल का बना हुआ पिण्ड = भुर्ता = सानी, का.श्रौ.सू. 5.1.8 (वैश्वदेव पर्वन्, 'पूषन्' के लिए)।

अपिसृजति (अपि + सृज् + लट् तिप्) (दक्षिणाग्नि में अंगार को) पीछे फेंकता है या डालता है, भा.श्रौ.सू. 1.10.1 (पिण्डपितृ)।

अपिसृज्य (अपि + सृज् + ल्यप्) (विधृतियों को बर्हिस् के साथ) मिश्रित कर = मिलाकर, भा.श्रौ.सू. 3.5.14।

अपुंश्चलू वि. वह जो वेश्या नहीं है, बौ.श्रौ.सू. 18.25:6।

अपुरोरुच् वि. सोम प्याले के लिए 'शस्त्र' में पुरोरुचभाग के संयोजन से रहित : आग्रयण, वैश्वदेव, पात्नीवत।

अपूप पु. पुआ, जिससे ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, आप.गृ.सू. 17.13 (अपूपं चतुः शरावं श्रपयति); चार प्याले अथवा कठौतियों का पुआ, आप.गृ.सू. 21.12 (अष्टका), इसे पुरोडाश की तरह 4 अथवा 8 कपालों पर पकाया जाता है, हि.गृ.सू. 2.14.4।

अपूपस् न. अग्निष्टोम-संज्ञक सोम याग के समय यजमान को खाने के लिए दिए जाने वाला एक विशिष्ट पकवान, वैखा.श्रौ.सू. 12.21-24।

अपेषण न. (चावल इत्यादि आहुति-द्रव्यों के) पेषण के कृत्य का अभाव, का.श्रौ.सू. 3.3.43।

अपोच्छन्तीपक्ष पु. मास का कृष्ण-पक्ष, जै.ब्रा. I.49; चन्द्रमा के क्षय से युक्त (जिस पक्ष में चन्द्रमा फीका पड़ता है)।

अपोनप्त्रीया स्त्री. प्रातरनुवाक शस्त्र के पूरा हो जाने के अनन्तर-जलों को उद्दिष्ट कर पठनीय ऋचा(ओं) का नाम। इसे प्रातरनुवाक शस्त्र की अन्तिम ऋचाओं के स्वर से निम्नतर स्वर में बोलना चाहिए। निगद से प्रारम्भ होने वाले इसके अंश को (उदा., जल में, अध्वर्यु इत्यादि) उत्थान के बिन्दु तक को और निम्नतर स्वर में होना चाहिए। इससे अन्त में आने वाले भाग को गम्भीर स्वर में उच्चारित करना चाहिए। आरम्भ में 'हिंकार' का उच्चारण नहीं होता। उसे 9 ऋचाओं का पाठ करना चाहिए। ये (9) ऋचाऐं हैं प्र देवत्र ब्रह्मणे----ऋ.वे. 10.30.1-9 एवं दशम ऋचा के रूप में 'हिनोता नो अध्वरम्----' ऋ.वे. 10.30.11 का पाठ होता है। जिस समय 'एकधना' संज्ञक जल का आनयन होता रहता है, जिस समय जल को देखा जा रहा होता है, जब जल समीप आ गया है, जब इसे 'वसतीवरी' के सम्पर्क में लाया जाता है, तब उसे विशिष्ट ऋचाओं का पाठ करना होता है। जब होता के चमस को जल से आपूरित किया जा रहा होता है, तो वह 'आपो न देवी:'---ऋ.वे. 1.83.2, से उपसंहार; एवं ओम् से बन्द (विराम) करे, जब अध्वर्यु उसके इस प्रश्न कि क्या उसने जल को प्राप्त कर लिया है, का उत्तर देता है, वह जल में निगद का उच्चारण करे, अध्वर्यु सोम का सवन करो, इत्यादि, आश्व.श्रौ.सू. 5.4; शां.श्रौ.सू. 6.7.1-10; श.ब्रा. 3.9.3.15; आप.श्रौ.सू. 12.5.2; 'होता' के कटोरे में वसतीवरी एवं एकधना जलों को मिला कर एक इष्टि आहुति तैयार की जाती है, ला.श्रौ.सू. 10.17.1; (दृषद्वत्या अप्यये); अपां नपात् को समर्पित एक पान (पेय), शां.श्रौ.सू. 13.29.12।

अपोर्णुते (अप + ऊर्ण् + लट् तिप् आ.) आवरण हटाता है, का.श्रौ.सू. 7.8.23; आप.श्रौ.सू. 10.26.17; भा.श्रौ.सू. 10.18.2।

अपोशनकाल पु. वह काल जिसके दौरान व्रत रखा जाता है एवं केवल जल का पान किया जाता है, अग्निवे.गृ.सू. 2.6.8.42।

अपोहन न. (अप + ऊह् + ल्युट्) (पुरोडाश पर से भस्म एवं जलते कोयलों को) हटाना, श्रौ.प.नि. 21.164 (इष्टि)।

अपोह्य (अप + ऊह् + ल्यप्) हटाकर, बगल करके, का.श्रौ.सू. 2.2.15 (भूमि पर प्राशित्र रखने के लिए बर्हिस् को); (गार्हपत्य) से कोयलों को सरकाकर या हटाकर, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.15 (अग्निहोत्र-दुग्ध को गरम करने के लिए)।

अप्तोर्याम पु. अग्निष्टोम सोम याग के एक प्रकार का नाम; तैंतीस स्तोत्रों एवं शस्त्रों वाली सातवीं सोम-संस्था। पञ्च.ब्रा. 20.3.4-5 द्वारा दी गई निरुक्ति के अनुसार यह 'आप्' अथवा अप् (प्राप्त करना) धातु से निष्पन्न है, (वह यज्ञ) जिसके माध्यम से विभिन्न कामनाओं की प्राप्ति होती है (कामनाओं का नियमन एवं स्वाम्य होता है); आप.श्रौ.सू. 12.13.19; 14.4.12-18, श.बा.इ. XLI.xx-xxiii; बौ.श्रौ.सू. 24.4।

अप्यय पु. अग्निवेदि मध्य शरीर के साथ पंखों एवं पुच्छ का जोड़ = सन्धि (चिति के केन्द्रीय भाग एवं पक्ष तथा पुच्छ के बीच) का.श्रौ.सू. 16.8.20; मा.श्रौ.सू. 6.1.6.11; 12; बौ.श्रौ.सू. 30.9; का.श्रौ.सू. 17.6.7।

अप्रगृह्य वि. 'प्रगृह्य' के रूप में न व्यवहृत होने वाला, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.11।

अप्रचरणीय वि. (महावीर पात्र) जिसे (प्रवर्ग्य में घृत को गर्म करने के लिए) प्रयुक्त नहीं किया जाता। [प्रधान महावीर पात्र प्रथम पात्र होता है एवं अन्य दो उनके ऊपर अनुष्ठित भिन्न प्रक्रिया वाले नहीं होते अर्थात उनके ऊपर अनुष्ठित प्रक्रिया भिन्न नहीं होती; वे अप्रचरणीय है,] आप.श्रौ.सू. 15.6.11; वास्तविक उपयोग में न आने वाली कोई वस्तु, विपरीत क्रम में रखी हुई; दो महावीर पात्रों के बारे में उक्ति, भा.श्रौ.सू. 11.17.11; हि.श्रौ.सू. 24.2.10।

अप्रच्छिन्नप्रान्त वि. (न प्रच्छिन्नः प्रान्तः यस्य) जिसका अग्रभाग छिन्न (टूटा हुआ) नहीं है, न टूटे हुए अग्रभाग वाला, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.11 (पवित्र)।

अप्रणीत वि. 1. (वह कृत्य) जो गार्हपत्य से 'प्रणीता' संज्ञक जल के अग्रेनयन (प्रणयन) की क्रिया से हीन है, आश्व.श्रौ.सू. 3.12.16 (उपसद्, इत्यादि); आश्व.श्रौ.सू. 1.1.5.2; अप्रणीत (आगे न ले जाई गयी) अथवा वितरित न की गई अग्नि।

अप्रताप पु. अत्यधिक ताप से रहित स्थान (का.श्रौ.सू. उष्णरहितदेशे), बौ.श्रौ.सू. 5.1:29 पर; (आमिक्षां निदधाति) 'वैश्वदेव पर्वन्'।

अप्रतिरथ न. 12 मन्त्रों के एक समूह (वर्ग) का नाम, का.श्रौ.सू. 11.1.9; सूक्त ऋ.वे. 10.103, जिसका पाठ ब्रह्मा उस समय करता है, जब सोम लता को क्रयण के अनन्तर आगे लाया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 4.8.28; शां.श्रौ.सू. 8.15.10; का.श्रौ.सू. 18.3.17; बौ.श्रौ.सू. 10.51 : 20; मा.श्रौ.सू. 6.2.5.7; श्रौ.को. (अं) 2.144; वैता.श्रौ.सू. 13.4-11. जिस समय अग्नि का उत्तरवेदि में प्रणयन होता है, उस समय ब्रह्मा अप्रतिरथ मन्त्रों का भी पाठ करता है, ला.श्रौ.सू. 5.8.11.12; द्रा.श्रौ.सू. 14.4.12।

अप्रतिवाश्यमान् वि. (नञ् + प्रति + वाश् + शानच्) ध्वनि करते हुए उत्तर न देता हुआ, अर्थात् हिनहिनाने के द्वारा ला.श्रौ.सू. 9.8.17; 19 (शबलीहोम)।

अप्रतिशीर्णाग्र वि. (स्त्री.आ.) (न प्रतिशीर्णम् अग्रं यस्य) जिसका अग्र भाग टुकड़ों में नहीं बँटा है (शीर्ण नहीं हुआ है), भा.श्रौ.सू. 11.5.23।

अप्रतिशुष्काग्रा वि. (स्त्री.) (न प्रतिशुष्कम् अग्रं यस्याः सा) (वृक्ष की शाखा) जो अग्र भाग की ओर सूखी नहीं है, आप.श्रौ.सू. 1.1.8, बौ.श्रौ.सू. 4.1:16; भा.श्रौ.सू. 1.2.9 (वत्सापाकरण)।

अप्रतिषिद्ध वि. (नञ् + प्रति + सिध् + क्त) जिसका निषेध नहीं किया गया है, जिसको अस्वीकृत नहीं किया गया है, अनिषिद्ध, मा.श्रौ.सू. 1.8.2.30।

अप्रतिषेक्य वि. (नञ् + प्रति + सिञ्च् + ण्यत्), किनारे के ऊपर न बहने वाला, आप.श्रौ.सू. 6.6.4 (अग्निहोत्र-दुग्ध) जिस पर छिड़काव (प्रोक्षण) न हो, असेचनीय, भा.श्रौ.सू. 6.10.9।

अप्रतीक्ष वि. पीछे न देखने वाला (अग्नि के प्रति), आप.श्रौ.सू. 8.18.10।

अप्रत्तदैवत वि. (आहुति द्रव्य) जिसमें से किसी देवता को आहुति नहीं दी गई है, आप.श्रौ.सू. 9.15.10।

अप्रत्यभिघारण न. (आहुति द्रव्य के) चिह्न पर जहाँ से एक अवदान किया गया है, घृत को उड़ेलने के कृत्य का अभाव, का.श्रौ.सू. 5.6.18 (देखें - प्रत्यभिघारण)।

अप्रयाज वि. (न विद्यते प्रयाजः यस्मिन्) पश्चादाहुतियों को न समाहित करने वाला, प्रयाज से रहित, आप.श्रौ.सू. 10.21.8; (उदयनीयेष्टि) का.श्रौ.सू. 6.10.21।

अप्रयाव न. एक यजुष् का प्रतीक, का.श्रौ.सू. 16.6.2, वा.सं. II.75।

अप्रवर्ग्य वि. (नास्ति प्रवर्ग्यः यस्मिन्) प्रवर्ग्य के अनुष्ठान से रहित (सोमयाग), आप.श्रौ.सू. 13.4.5 (तिस्र उपसदो अप्रवर्ग्यः), मा.श्रौ.सू. 9.3.4.5।

अप्रवीता वि. किसी वृषभ द्वारा न कामित = अकृतमैथुना (सोमक्रयणी गौ), का.श्रौ.सू. 7.6.12।

अप्रशीर्णाग्र वि. (न प्रशीर्णम् अग्रं यस्य) जिसका अग्र भाग विक्षत अथवा गिरा हुआ नहीं है, का.श्रौ.सू. 2.3.30 ('पवित्र' के निर्माण के लिए प्रयुक्त कुश की पत्तियाँ)।

अप्रस्ताव वि. (नास्ति प्रस्ताव: यस्मिन्) प्रस्ताव-संज्ञक प्रारम्भिक अंश से रहित, द्रा.श्रौ.सू. 5.2.11; (यण्व साम)।

अप्रस्ताव्या वि. जिसे 'प्रस्ताव' के साथ न गाया जाय (प्रस्तावरहित गान) ला.श्रौ.सू. 6.1.17; 18; 20; 21।

अप्रहरण न. प्रहार (चोट) न करना, का.श्रौ.सू. 12.5.12।

अप्राण वि. (नास्ति प्राण: यस्मिन्) निर्जीव, निष्प्राण (उपहार) मा.श्रौ.सू. 11.2.1।

अप्राणत् वि. (नञ् + प्र + अन् + शतृ) प्राणन न करता हुआ, साँस न लेता हुआ, निर्जीव, निष्प्राण, ला.श्रौ.सू. 2.7.16 (उपहार)।

अप्रैष वि. प्रैष (संज्ञक आह्वान), आश्व.श्रौ.सू. 1.5.30 (आगूर्य आदेशं यजति 'ये यजामहे अग्निर्जुषाण' इत्यादि रूप में)।

अप्रोषित वि. (नञ् + प्र + वस् + क्त) जिसने यज्ञ की भूमि को नहीं छोड़ा है, का.श्रौ.सू. 3.4.26 (यजमान को 'इडा' प्रदान करना)।

अप्सुदक्षा स्त्री. मुमूर्षु व्यक्ति के दाहिने कान में बुदबुदाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (अं) 1.1078 (गौ.पि.मे.)।

अप्सुदीक्षा (शाब्दि. जल से दीक्षा) इसमें निम्नलिखित क्रियायें समाहित हैं : शाला के बाहर इसके उत्तर की ओर यजमान अपने शिर के बाल, काँख एवं चेहरे के बाल को नापित (नाई) से कट (चटाईयों) से आवृत वितान के अन्दर कटवाता है, अपने हाथों के नखों का निकृन्तन करता है (पहले दाहिने हाथ का)। वह नखनिकृन्तन (दायें हाथ की) कनिष्ठिका से प्रारम्भ करके करता है और फिर (हाथ के अनन्तर) पैर के नखों को काटता है; जैमि.सू. (3.8.3-11) के मतानुसार (अध्वर्यु नहीं) अपितु यजमान नखनिकृन्तन करता है, अपना बाल कटवाता है, अपने दाँतों को साफ करता है, केवल दुग्ध का आहार लेता है; श.ब्रा. 7.1 का कहना है कि सबसे पहले वाम हस्त के नखों का निकृन्तन (काटना) होता है। दाँतों को उदुम्बर की टहनी (दतुवन) से साफ किया जाता है। इसके बाद वह जल के किसी हौज अथवा कुण्ड में विशिष्ट मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक इसमें (कुण्ड में) एक सोने का टुकड़ा रखने के पश्चात् स्नान करता है। तदनन्तर वह आचमन करता है और दीक्षा के रूप में जल पीता है। पत्नी को भी ये सब क्रियायें अमन्त्रक करनी होती हैं (तु. का.श्रौ.सू. 7.2.7; बौ.श्रौ.सू. 6.3 अकेले पत्नी के लिए बाल-कर्तन (बाल कटवाने) का विधान करता है; काणे, हि.आ.ध. II. II, 1136); काशिकर, पृ. 194. अध्वर्यु यजमान के चारों तरफ दर्भ को घुमाकर मार्जन करता है।

अप्सुमत् वि. (स्त्री. ई) (अप्सु + मतुप्) (पुरोनुवाक्या ऋचा) जिसमें, 'अप्सु' (जल में) शब्द निहित है (विद्यमान है) उदा., 'अप्सु अग्ने---''अप्सु मे सोमो----'मै.सं. 4.10.4; मा.श्रौ.सू. 5.1.3.25; आश्व.श्रौ.सू. 8.13.3.4; (द्वि.) अपस् 'जल''दिवो मूर्धासीत्----'से युक्त (दो ऋचाएं), तै.सं. 4.3.4.2-3; वा.सं. 18.54, 55; मा.श्रौ.सू. 7.2.2.8; तै.सं. 4.2.6.17; 6.2.6.20; नाम्ना, 'अप्सु अग्ने स्वधिष्टव' ऋ.वे. 8.43.9 एवं 'अप्सु मे सोमो' ऋ.वे. 10.9.6 दो घृत भागों के पुरोऽनुवाक्या के रूप में प्रयुक्त; ये ऋचाएं भी, 'अप्सु देवी रेवती' ऋ.वे. 10.30.12; श्रौ.को. (सं.) II.240.490; जै.ब्रा. III.119।

अप्सु वाचयति (वच् + णिच् + लट् तिप्) (यजमान की पत्नी से) जल के प्रति एक मन्त्र बोलवाता है, बौ.श्रौ.सू. 4.6.44 (पशु-याग)।

अप्सुषद् स्त्री. अग्निवेदि के पाँचवे तह में लगी हुई ईटों (159-163) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46।

अप्सुषोम पु. सोम का प्याला (प्याले में स्थित सोम) तलछट सहित जल से मिश्रित कर दिया जाता है। इस मिश्रण में सहायक ऋत्विज् घ्राणोपभोग (सूंघने) द्वारा अग्निष्टोम-संज्ञक सोमयाग के अन्तिम सत्र में भाग पाते हैं, बौ.श्रौ.सू. 8.16-18. एक अन्य मतानुसार 'अप्सुषोम' उस प्याले का नाम है, जिसे जल से आपूरित किया जाता है एवं 'चात्वाल' के समीप रखा जाता है। सन्द.ला.श्रौ.सू. 2.11.16।

अफलीकृत वि. न कूटा हुआ (धान-व्रीहि), बौ.श्रौ.सू. 11.5 : 24 (रौहिण-पुरोडाश)।

अबहुवादिन् वि. (अति) अधिक न बोलने वाला, अवाचाल, ला.श्रौ.सू. 3.6.7; द्रा.श्रौ.सू. 9.2.7।

अबिष्टका स्त्री. जल की आकृति (रूप) में ईंट, जल की आकृति वाली इष्टका, बौ.श्रौ.सू.10.10.1।

अब्दपूर्ति स्त्री. एक वर्ष तक जन्म दिवस पर प्रति मास एवं वार्षिक जन्मदिन पर अनुष्ठित किया जाने वाला समारोह (उत्सव), शां.गृ.सू. 1.25.10.11; गौ.गृ.सू. 2.8.19-20. अग्नि एवं इन्द्र, स्वर्ग एवं पृथ्वी, तदनन्तर तिथि एवं नक्षत्र के लिए एक होम का अनुष्ठान किया जाता है [नामकरण के पश्चात् एक वर्ष तक प्रत्येक महीने में जातकर्मवत् (जातकर्म की तरह) एक होम का अनुष्ठान किया जाता है एवं वर्ष के अन्त में एक अज (बकरे) एवं एक मेष (भेड़) के मांस की आहुति अग्नि एवं धन्वन्तरि के लिए दी जाती है एवं ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, का.गृ.सू. 36.12.14]।

अब्रह्मचर्य न. ब्रह्मचर्य का भङ्ग होना; मैथुन, शां.श्रौ.सू. 16.1.15 (अश्वमेध याग)।

अब्राह्मण वि. जिसके लिए कोई 'ब्राह्मण' व्याख्या नहीं है; ब्राह्मण ग्रन्थ में जो व्यवहृत (भावित) नहीं है, बौ.श्रौ.सू. 1.3.1.28; शां.श्रौ.सू. 1.4.17।

अभक्षण न. (सोमाहुति के अवशिष्ट-शेष ईडा का) अभक्षण न खाना, आश्व.श्रौ.सू. 5.6.24।

अभक्षित वि. (सारस्वत प्याला) जिसका भक्षण नहीं किया गया है, अर्थात् जिस प्याले में से किसी ने पान नहीं किया है, का.श्रौ.सू. 10.6.2. (महावैश्वदेव प्याले को सारस्वत प्याले में आहरित किया जाता है)।

अभया स्त्री. एक ऋचा का नाम 'मा नो विद्वान्----' (अ.वे. 1.19.1) जिसके साथ (जिस मन्त्र के साथ) अग्निहोत्र गौ जब उसके पास वत्स (बछड़े) को आगे लाया जाता है के बैठ जाने के क्षण के प्रायश्चित्त के लिए आहवनीय घृत की आहुति दी जाती है, श्रौ.को. (अं) I.i.155; अ.वे.प्राय. 2.4।

अभागा स्त्री. (वह देवता) जिसके लिए आहुति द्रव्य में अंश (भाग) नियत नहीं किया गया है, आप.श्रौ.सू. 9.15.22।

अभिकम्पयति (अभि + कम्प् + णिच् + लट् तिप्) उत्तेजित करता है, अर्थात (सोम-विक्रेता को) धमकी देता है), का.श्रौ.सू. 7.18.16।

अभिक्रामम् क्रि.वि. (पूर्व की ओर) आगे बढ़ते हुए (अभिक्रमण करते हुए), का.श्रौ.सू. 3.2.20 (प्रयाजाहुति); आगे (और आगे) बढ़ना, आप.श्रौ.सू. 2.17.5।

अभिगर पु. सदस्य के एक सहायक का नाम जो 'प्रतिगर'-संज्ञक 'आह्वान' का स्मरण कराता है, बौ.श्रौ.सू. 2.3; (वह) जो सत्र में भाग लेने वाले यजमान की प्रशंसा करता है, ला.श्रौ.सू. 4.3.1 (टीका-अभिष्टौति); मा.श्रौ.सू. 1.8.1.1; का.श्रौ.सू. 13.3.6 (अपगर के साथ); वैखा.श्रौ.सू. 12.1-4. उत्तर (प्रत्याश्रावण) का प्रकार; टीका, 'प्रतिगरस्य स्मारयिता अभिगरो ध्रुवगोप: संश्राव इति सदस्यस्य स्वप्रधाना अस्वप्रधाना इत्येके; बौ.श्रौ.सू. 2.3; श्रौ.को. (अं.) 1.9।

अभिगृह् क्रि. (ऋतु-संज्ञक प्यालों = ऋतुपात्रों में पूर्व-आहुति के अवशिष्ट = शेष भाग के साथ) नये (ताजे) सोम को ग्रहण करना, भा.श्रौ.सू. 13.301।

अभिगृह्यमाण (अभि + ग्रह् यक् (कर्मणि) + शानच्) वि. चिह्नित अथवा संकेतित किया जा रहा (कूड़े का ढेर = उत्कर), आप.श्रौ.सू. 4.5.3।

अभिग्रहणार्थ वि. प्याले को ग्रहण करने अथवा भरने के लिए अभिप्रेत (मन्त्र), बौ.श्रौ.सू. 26.9।

अभिघारण

अभिघारण न. 1. हविस् अथवा भोजन-पात्र पर धारा रूप में घी डालना, बौ.श्रौ.सू. 6.18 जैसा कि उपग्रहण एवं उपस्तरण

से भिन्न बतलाया गया है, दो बार किया जाता है, का.श्रौ.सू. 1.9.10; मी.सू. 4.1.33; देखें—श्रौ.प.नि. 31.251; 2. चमसोन्नयन क्रिया को सम्पन्न करते समय नौ चमसों में सोम को उड़ेलना। 'पूतभृत्' में से लिए गये सोमरस को आधा भरे हुए चमसों में उड़ेला जाता है, एवं पुनः द्रोणकलश से लिए गए सोम को उनमें उड़ेला जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.23.8; आप.श्रौ.सू. 7.12.9; मा.श्रौ.सू. 1.7.1.35; आप.गृ.सू. 7.4; तु. 'प्रत्यभिघारण', पहले ही काटे गये (अवत्त) हविर्द्रव्य के एक एक भाग पर घी को उड़ेलना, का.श्रौ.सू. 1.9.11।

अभिचर् जादू-टोने का अभ्यास करना, आकर्षण के रूप में बलि दिये गये पशु की (फंदे) को लकड़ी के एक टुकड़े अथवा घास के गुच्छे में बाँध दिया जाता है, भा.श्रौ.सू. 7.13.8; या तो वृक्ष अथवा वृक्ष के तने अथवा स्तम्भ में, आप.श्रौ.सू. 7.17.7 (पशु)।

अभिचरणीयशिल्प न. अभिचार के कर्मकाण्ड में सम्मिलित की गईं विशिष्ट चीजें, टीका 'शिल्पानि लोहितोष्णीषादि' बौ.श्रौ.सू. 14.20।

अभिचार पु. (अभि + चर् + घञ्) वशीकरण (आदि) मन्त्रप्रयोग मा.श्रौ.सू. 1.6.1.21, देखें—साहू.पी.सी.-जे.ओ.आर.बी. 38 (1-2), 1988, सू. 7.15।

अभिजित् पु. एक-दिवसीय सोम-याग का नाम, शां.श्रौ.सू. 13.21.6।

अभिज्वालन

अभिज्वालन न. हविर्द्रव्य को जलाने के लिए प्रयुक्त तिनका, वैता.श्रौ.सू. 7.3; तु. अभिज्वालय, आ.श्रौ.सू. 2.3.3; का.श्रौ.सू. 4.14.5 आप.श्रौ.सू. 1.25.9; जलाने का कृत्य।

अभितापयति (अभि + तप् + णिच् + लट् तिप्) (अंगारे से) तपाता है, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.17।

अभिददि स्त्री. (किसी चीज पर) घृत को उड़ेलना [अभिददि कृत्वा (आज्यम्) अवेक्षेत], बौ.श्रौ.सू. 8.14 (तृतीय सत्र में सौम्य चरु के पश्चात्); टीका = उपरिदानम् (भूय आज्यमानीय) बौ.श्रौ.सू. 8.14 पर; तै.सं. 6.6.7.2।

अभिदोष पु. स्वप्नदोष, भा.श्रौ.सू. 11.22.9 (अनध्याय)।

अभिदोहन न. प्रवर्ग्य (याग) में अजा (बकरी) को दुहने का कृत्य भा.श्रौ.सू. 11.2.11।

अभिदोहयति (अभि + दुह् + णिच् + लट् तिप्) दुहवाता है, दोहन करवाता है, आप.श्रौ.सू. 15.2.2 (रु. उपरिदोहनम्) 'मधु त्वा मधुला करोतु' तै.आ. 4.2.3 मन्त्र के साथ।

अभिद्योतन न. चारों ओर प्रकाश (ज्वाला) दिखाने = अभिज्वालन का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 3.5.4 तु. अभितापन, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.24।

अभिदधाति (अभि + धा + लट् तिप्) अश्व पर रज्जु को रखता है (अर्थात् इसमें उसको बाँधता है), आप.श्रौ.सू. 16.2.1; रस्सी से वत्स (बछड़े को) बाँधता है, भा.श्रौ.सू. 1.12.4; बैल को जकड़ता है = युक्त करता है (बाँधता है) काशिकर; बैल पाशबद्ध करता है, भा.श्रौ.सू. 10.19.13; [पशोः पाशेन दक्षिणमर्धशीर्षमभिदधाति, वह पशु के शिर के दक्षिणार्थ भाग को रस्सी से बाँधे, भा.श्रौ.सू. 7.10.7]।

अभिधानी स्त्री. वह गाय जो दर्श के लिए दूध देती है, के साथ-साथ चलने वाले वत्स को बाँधने के लिए प्रयुक्त रज्जु, आप.श्रौ.सू. 1.12.7; घर्म की आपूर्ति करने वाली गाय के लिए एक दूसरी रस्सी, 15.5.20 = रशना 9.3; जुअे को धुरी से बाँधने वाली बन्धन-रज्जु, 10.28.1, सोम को ढोने वाली गाड़ी के जुअे को धुरी से बाँधने वाली, कुछ के मतानुसार शिरोबन्धन (सिर का बन्धन) भा.श्रौ.सू. 11.5.22। दो निदान गाय के पीछे के पैरों को खुर एवं घुटनों के समीप बाँधने के लिए प्रयुक्त रस्सियाँ हैं; 'अग्निहोत्रहवणीम् उखाम् उपवेषं शाखापवित्रम् अभिधानीं

निदाने दोहन अधस्पात्रं दारुपात्रं वापीधानार्थं' सत्या.श्रौ.सू. 1.3. पृ. 93; तु. निदानम् अभिनिगृह्णाति; काशिकर इसका अनुवाद इस प्रकार से करते हैं 'सातवें पदचिह्न से मिट्टी को ग्रहण करे', भा.श्रौ.सू. 10.15.7. किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मृत्तिका का सञ्चयन (ग्रहण) सातवें पद-चिह्न के ऊपर घृत आहुति के अनन्तर सम्पन्न होता है (अर्थात् इस पर = पदचिह्न पर स्वर्ण का एक टुकड़ा रख दिया जाता है; देखें 10.15.11). अतः इसकी सम्भावना है कि इस शब्द का अर्थ है 'हाथ से स्पर्श करता है।'

अभिनिदध्यात् (अभि + नि + धा + वि.लि. तिप्) रखना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 9.4.1 (अङ्गारम्-----अभिनिदध्यात्-----अथैनम् अनुप्रहरति)।

अभिनिधन वि. ('अभि' शब्दे निधं यस्य तत्) 'अभि' से समाप्त होने वाला (कण्व-साम), जै.ब्रा. III.189।

अभिनिम्रुक्त वि. (वह व्यक्ति) जो सूर्यास्त के समय शयन करता है, आप.श्रौ.सू. 9.12.11; आप.ध.सू. 2.5.12.13; म. स्मृ. 2.220-21 (ब्रह्मचारिन्)।

अभिनिम्रुक्ता स्त्री. एक इष्टि का नाम, जिसका अनुष्ठान तब किया जाता है जब सूर्य अस्त हो चुका होता है। जब अग्नि तब तक व्यवधान रहित होती है, बौ.श्रौ.सू. 13.1।

अभिनिषीदेत् (अभि + नि + षद् + वि.लि.तिप्) यदि उखा में (स्थित) अग्नि भस्माच्छन्न हो जाय (राख से घिर जाय), आप.श्रौ.सू. 16.12.11।

अभिपरिगृहीत वि. (पूर्ववर्ती के) शेष भाग पर उलीचा जाने वाला (अगला घूँट), मा.श्रौ.सू. 2.4.2.8।

अभिपरिगृह्य (अभि + परि + ग्रह् + ल्यप्) समाविष्ट करके अथवा घेरा बनाकर (सप्तमं पदम्), मा.श्रौ.सू. 2.1.3.39।

अभिपर्यग्निकृत वि. (वह क्षेत्र) जिसके चारों ओर अग्नि को ले जाया गया है (अग्नि को घुमाया गया है) आप.श्रौ.सू. 7.16.2; (रु. शामित्रदेशे इति सत्याषाढः)।

अभिपात्य (अभि + पत् + णिच् + ल्यप्) (वाम हस्त की तरफ अथवा बाएं हाथ पर) गिराकर, बौ.श्रौ.सू. 6.2:23; 'सव्ये पाणौ अभिपात्य शालाम् आनयति।

अभिपूर्वम् क्रि.वि.पूर्व स्वीकृत क्रम में [ठीक उसी क्रम में जैसा की पूर्व में स्वीकार किया गया है (अभिपूर्वं प्रोक्षति)], बौ.श्रौ.सू. 11.6.6।

अभिप्रतिगृणाति (अभि + प्रति + गृ + लट् तिप्) 1. एक बार प्रतिगर को पढ़कर पुनः इसे दुहराता है, आप.श्रौ.सू. 12.27.16; 2. - गृणीयात्; बार-बार उत्तरित करना, भा.श्रौ.सू. 13.31.10।

अभिप्रयम्य (अभि + प्र + यम् + ल्यप्) (होता के) दक्षिण की ओर (प्रवाह को) गुजार कर, मा.श्रौ.सू. 2.3.4.28।

अभिप्रव्रजनमन्त्र पु. 'अवभृथ' के लिए प्रस्थान के समय पढ़ा जाने वाला 'ऊरुं हि राजा' इत्यादि मन्त्र ऋ.वे. 1.24.8; वा.सं. 8.23, (आप.श्रौ.सू. 8.7.18।)

अभिप्लव न. छः दिवस तक चलने वाला सोम-याग (ज्योतिरग्निष्टोम, गौरुक्थ्य, आयुरुक्थ्य, गौरुक्थ्य, आयुरुक्थ्य, ज्योतिरग्निष्टोम), मा.श्रौ.सू. 7.2.4.16; तु. [पृष्ठ्य षडहः अग्निष्टोम, उक्थ्य, उक्थ्य, षोडशी, उक्थ्य, उक्थ्य]; गवामयन एवं सत्र में प्रयुक्त, इसमें 4 उक्थ्य समाहित हैं जिसमें पूर्व एवं पर में रथन्तर एवं बृहत् साम के सातत्य से युक्त अग्निष्टोम होता है, आप.श्रौ.सू. 21.15.10; का.श्रौ.सू. 13.2.1; तु. इग्लिङ्ग, श.ब्रा.अं. XXVI.403। **० पञ्चाह** पु. अभिप्लव षडह के प्रथम पाँच दिन से युक्त पाँच दिवसीय सोमयाग, आश्व.श्रौ.सू. 11.1.12; ला.श्रौ.सू. 4.8.13।

अभिमन्त्रण न. किसी वस्तु पर मन्त्र को सम्बोधित करना - बोलना (उदाहरणार्थ-सोम), आप.श्रौ.सू. 12.9.10; समान वस्तु की उपस्थिति में मन्त्र के (साधन) द्वारा; 15.1.14; का.श्रौ.सू. 6.10.7।

अभिमर्शन न. मन्त्र का उच्चारण करते समय किसी वस्तुको स्पर्श करने का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 7.2:5; सदस् के खम्भों को छूते समय पढ़े जाने वाले मन्त्र का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 4.13.5; टीका - कई अवसरों पर यह कृत्य सम्पन्न होता है, हविराधान - मण्डप के नीचे, आप.श्रौ.सू. 9.8.11; उपरवस् का शिखर-भाग 11.4 (आमर्शन = उपरवस् के तल = निम्नभाग को छूने के कृत्य का उलटा), मा.श्रौ.सू. 1.7.1.37; अभिमर्श।

अभिमीलयेत् (अभि + मील् + वि.लि. तिप्) आँखों बन्द करना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 6.11.5।

अभिमेथति (अभि + मिथ् + लट् तिप्) सहमत होता है, इन्स्लर, 5, टी.पी.एस. 1971-73, पृ. 163-74।

अभिरूप वि. समानता रखने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 5.12.14; [अभिरूप्य; (किसी के साथ) समानता रखने का गुण (योग्यता), ला.श्रौ.सू. 1.6.16; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.17]।

अभिवदेत् (अभि + वद् + लट् तिप्) अभिवादन करे, आशीर्वचन बोले (न दीक्षितस्य अस्य अभिवदेत्) भा.श्रौ.सू. 10.9.2।

अभिवान्या स्त्री. दूसरे गाय के बच्चे की सहायता से दुही जाने वाली गाय, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.28; वह गाय जिसका बच्चा मर गया है किन्तु जिसके स्तन के दूध को दूसरे गाय का बच्चा चूसता है और जो रबड़ी के लिए दुग्ध प्रदान करती है, आप.श्रौ.सू. 8.14.14।

अभिवासन न. (पुरोडाश को भस्म एवं कोयलों के द्वारा वेद-संज्ञक घास के गुच्छे से) ढकना, मा.श्रौ.सू. 1.2.3.11; [अभिवासयति, (भस्म से) पुरोडाश को ढकता है, का.श्रौ.सू. 2.5.25]; श्रौ.प.नि. 18.146।

अभिविक्रमयति (अभि + वि + क्रम् + णिच् + लट् तिप्) (उत्तर वेदि की) तरफ (आसन्दी के साथ महावीर पात्रों को) पाद-प्रक्षेप (आगे बढ़ाना) कराना, मा.श्रौ.सू. मा.श्रौ.सू. 4.4.18।

अभिविपरिहृ क्रि. धिष्ण्य पर स्थित रालों के माध्यम से अग्नि का वितरण करना, आश्व.श्रौ. 5.13.6।

अभिव्याहृत्य (अभि + वि + आ + हृ + ल्यप्) बोलकर, वाचन करके, शां.श्रौ.सू. 1.4।

अभिव्युच्छा उगना, उदित होना (एक विशिष्ट कर्मकाण्डीय कृत्य के पूर्व सूर्य उदित होता है) मा.श्रौ.सू. 3.7.2।

अभिशस्त पु. (वह) जो नैतिक पाप का दोषी है (जो आत्महत्या करता है, उसके लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द), वसि.ध.सू. 23.14-16. इस प्रकार के व्यक्ति के सपिण्ड लोगों को उसके लिए कोई मृत्यु सम्बन्धी कृत्य अनुष्ठित नहीं करना पड़ता है। आप.ध.सू. 1.7.21.8 के अनुसार, वह ऐसा व्यक्ति है जो किसी ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी जो आत्रेयी होती है, की हत्या करता है। हरदत्त गौ.ध.सू. 2.41 पर भाष्य करते हुए 'अभिशस्त' को 'उपपातकी' के रूप में निरूपित करते हैं।

अभिशस्यमान वि. (अभि + शस् + शानच्) वह व्यक्ति जो अभिचार करने को उन्मुख है, आप.श्रौ.सू. 10.20.8 (परोक्षं गुहा वने याजयेत्); रु. 'यमकर्तारं पातकस्य कर्तारम् अपदिशति सो अभिशस्यमानः', जिसे असत्यपूर्ण घोषित किया जा रहा हो, का.श्रौ.सू. 22.8.8 (उसे उपहव्य-संज्ञक कृत्य का अनुष्ठान करना चाहिए।

अभिश्रावण न. (श्राद्ध में) वैदिक मन्त्रों का पाठ, बौ.गृ.सू. 3.12.6; 2.11.48; बौ.पि.मे 2.11.8।

अभिश्वास पु. (अभि + श्वस् + घञ्) श्वास को बाहर निकालना, का.श्रौ.सू. 4.8.26. (तुरन्त मथित अग्नि पर 'प्राणं ते दधे' के साथ) देखें श.ब्रा. 2.2.2.15।

अभिषव पु. (अभि + सु + अच्), (सोम का) सवन, भा.श्रौ.सू. 7.2.4.5 (पृष्ठ्य दिनों में 'द्वादशकृत्वः, अष्टकृत्वः एकादशकृत्वः, छन्दोम दिवसों पर उपांशु अभिषव)।

अभिषवणहोम न. याग में सोम को निचोड़े जाते समय ब्रह्मा नाम के ऋत्विक् द्वारा अनुष्ठित होम का नाम, इन्हें 'इन्द्र जुषस्व' (अ.वे. 2.5.1) इस मन्त्र के साथ अनुष्ठित किया जाता है, वैता.श्रौ.सू. 16.11।

अभिषवमन्त्र पु. सोम सवन के समय पढ़ी जाने वाली ऋचा तिस्रो यह्वस्य (ऋ.वे. 3.2.9), भा.श्रौ.सू. 13.7.13; मै.सं. 1.3.35 सोमकरणी।

अभिषवविपर्यास पु. (अभिषवे विपर्यासः) (सोम-) सवन के प्रकारों के क्रम में परिवर्तन, का.श्रौ.सू. 9.5.11 (क्षुल्लकाभिषव एवं महाभिषव)।

अभिषिक्त वि. (अधि + सिञ्च् + क्त) जिसका अभिषेक हो चुका है, शां.श्रौ.सू. 16.18.1 (यजमान राजा)।

अभिषेक न. (घञ्) (अन्य वस्तुओं से मिश्रित) अभिषेक-जल, जिससे यजमान का सेचन होता है (अर्थात् यजमान पर छिड़का जाता है), का.श्रौ.सू. 15.6.8 (कण्डूयया अभिषेकेन प्रलिम्पते) 'प्र पर्वतस्य' आदि वा.सं. 10.19 यजुष् के साथ। पु. अभिषेक जल को छिड़कना, का.श्रौ.सू. 15.4.41 : राजा के लेपन का कृत्य (अर्थात् राजा को मालिश करने का कृत्य), जिसमें विभिन्न स्थलों से लाये गये एवं पवित्रीकृत (शुद्धीकृत) जल को यजमान (राजा) के ऊपर उड़ेला जाता है। लेपन-जल को चार पात्रों में विभाजित किया जाता है। ये चारों पात्र पलाश, उदुम्बर, न्यग्रोध एवं अश्वत्थ से निर्मित होते है। यजमान एक उष्णीष (पगड़ी) एक तर्प्य-वस्त्र एवं एक लबादा (पाण्डव) धारण

करता है (पहनता है), का.श्रौ.सू. 15.5.7-11, धनुष् एवं बाण को लेता है एवं 'आविद्' मन्त्रों का पाठ करता है, आ.श्रौ.सू. 18.14.10. वह शीशे के एक टुकड़े को कुचलता है एवं दूर सरका देता है। यजमान उर्ध्वबाहु होकर (बाहुओं को ऊपर उठाए हुये) दिशाओं की ओर पादप्रक्षेप करता है। अध्वर्यु सर्वप्रथम उसके ऊपर जल उड़ेलता है, तत्पश्चात् अन्य ऋत्विक् भी उसका अनुसरण करते हैं, का.श्रौ.सू. 15.5.30; 6.9; आप.श्रौ.सू. 18.15.10; 16.8. अभिषेक, अभिषेचनीय कर्म का चरम है; देखें—राज्याभिषेक, हीस्टर. पृ. 114-22. 'चयन' के समय अभिषेक, आप.श्रौ.सू. 15.19.5; वाज. के समय 18.6.6; अश्वमेध में, 20.19.11. देखें Rau. W. Wiesbaden, 1957।

अभिषेक

अभिषेचनीय राजा के अभिषेक का कृत्य, जिसका यह महत्वपूर्ण घटक (सार भाग) है। उक्थ्य प्रकार का एक सोम याग, जो पाँच दिन तक चलता है एवं जिसमें 1 दीक्षा, 3 उपसद् एवं एक सवन दिन समाहित हैं, का.श्रौ.सू. 15.4.2; आप.श्रौ.सू. 18.12 में एक वर्ष लम्बी दीक्षा नियत की गई है; तु. (राजसूय), हीस्टर. 63-8; का.श्रौ.सू. 15.3.34, 35; 15.9.21; ला.श्रौ.सू. 9.1.4।

अभिष्टवन न. किसी की प्रशंसा में पठनीय विशिष्ट ऋचाओं का समूह, श्रौ.को. (अं) II.584; आश्व.श्रौ.सू. 1.2.23 (टीका) दिखाता है कि यह प्रशस्ति ऋक् रूप में है (आश्व.श्रौ.सू. 4.6.1) एवं इसका प्रयोग प्रैष के अनन्तर होता है।

अभिष्टि स्त्री. सहयोग, सहायता, शां.श्रौ.सू. 7.10.10।

अभिष्टु (अभि + स्तु) प्रार्थना करना, निवेदन करना (होतर् घर्म अभिष्टुहि) भा.श्रौ.सू. 11.6.1; तु. अभिष्टवन।

अभिष्टोभेत् (अभि + स्तुभ् + लट् तिप्) प्रशंसा में गायन करना चाहिए, ला.श्रौ.सू. 1.12.11; द्रा.श्रौ.सू. 3.4.25।

अभिसंनम् मूलपाठ में शब्दों को स्थानापन्न करते हुए परिवर्तन करना, शां.श्रौ.सू. 1.17.20।

अभिसमाहारम् क्रि.वि. (घास की पत्तियों का) पुनः पुनः (स्रुव के विवर की ओर के भागों से) आहरण करते हुए, आप.श्रौ.सू. 2.4.4।

अभिसृप् पास पहुँचना, मा.श्रौ.सू. 2.4.2.38।

अभिहव पु. जल में दी जाने वाली आज्याहुति (अभिहवम् अपां च गृह्णाति), मा.श्रौ.सू. 9.1.2.34 (राजसूय) [अनु. वह (घी) की आहुति देता है एवं इसमें से तीन बार आहरण करता है]; आहुति, मा.श्रौ.सू. 1.5.1.15 (आधान) (आहुति के पहले वह ऋत्विक् का वरण करता है)।

अभिहिंकार पु. अभिव्यक्ति - 'हिं, भूर्भुवस्स्वरोम', आश्व.श्रौ.सू. 1.2.4 (टीका - हिंकारश्च जपश्च 'हिं, भूर्भुवः स्वरोम'; देखें - 2.16.1; अनभिहिंकृत्य 3.1.10); हिंकार का उच्चारण एक या तीन बार किया जाता है (आश्व.श्रौ.सू. 1.2.3-4 के अनुसार) एवं इसके पश्चात् 'भूर्भुवः स्वरोम्, इन शब्दों को होता उपांशु रूप से जपता है; यह उच्चारण सामिधेनी ऋचाओं के पाठ के पूर्व सम्पन्न होता है, श्रौ.को. (अं.) I.i. 348; श्रौ.प.नि. 22.186।

अभिहिततम वि. (अभि + धा + क्त + तमप्), अत्यधिक आसन्न, कसा हुआ (अभिहिततमं दक्षिणं परिधि सन्धिं करोति), मा.श्रौ.सू. मा.श्रौ.सू. 1.2.6.9; देखें—1.2.6.16 (वह होम वाली करछुल को दृढतम स्थान प्रदान करता है)।

अभिहततर वि. (अभि + हृ + क्त + तरप्), (वेदि में फैली हुई प्रथम बर्हिर्मुष्टि वालों की तुलना में) अधिक आगे

आहृत की गयी = खींची गयी (प्रस्तर की जड़ें), आप.श्रौ.सू. 2.9.14; पाद, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.3; (होता का सञ्चरण) आश्व.श्रौ.सू. 1.1.23; (प्रपद्य) अभिहततरेण पदेन (वाम पाद की तुलना में) अधिक आगे लाया गया (दाहिना पैर)।

अभीक एक समय का नाम, जै.ब्रा. 1.344।

अभीचारानुव्याहार पु. अभिचार (जादू-टोने) के समय दुर्वचनात्मक शब्दों को बोलना, देखें - अभिचार।

अभीनामम् यजमान के नाम के अनुसार परिवर्तन करते हुए (टीका - अभिनाममूहित्वा याजमानं कुर्यात्), बौ.श्रौ.सू. 20.18:23.19।

अभीन्धते (क्रि.) (अभि + इन्ध् + लट् तिप् आ.) तै.आ. (कपालों के प्रति) ऊपर से सीधे ताप का अनुप्रयोग करता है (अभीन्धते कपालानि), बौ.श्रौ.सू. 5.1.23; (मो.वि. लपटों से घेरना)।

अभीवर्त न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 4.6.9; द्रा.श्रौ.सू. 8.2.9 (ब्रह्मा अथवा ब्रह्मणाच्छच्छी की स्तुति के समकक्ष मध्य दिन की परिचर्या में तृतीय प्रशंसात्मक वचन (स्तोत्र) के रूप में प्रयुक्त होने वाला, पञ्च.ब्रा. 4.3.1; सा. वे. 1.336 पर निगद्ध। ० **स्तोत्रीया** स्त्री. अभीवर्त साम की स्तोत्रीया ऋचा, ला.श्रौ.सू. 10.6.1; 3.6.16; द्रा.श्रौ.सू. 9.2.17।

अभ्यग्रम् क्रि.वि. तेजी से, शीघ्रतापूर्वक, शां.श्रौ.सू. 8.7.20; मा.श्रौ.सू. 2.5.2.23 (आग्निमारुत शस्त्र); मा.श्रौ.सू. 1.5.2.23।

अभ्यंगस्नान न. तैल एवं त्रिफला (हरीतकी, बहेड़ एवं आमलक) का प्रयोग करते हुए केवल शरीर को साफ करने के लिए किया जाने वाला स्नान (अवश्यकरणीय कृत्य के रूप में नहीं) स्मृ.च. 1.125 (तु. क्रिया-स्नान पुरस्कार प्राप्त करने के लिए पवित्र स्थल पर किया जाने वाला स्नान)।

अभ्यञ्जन न. (द्वि.) 1. आँखों में अञ्जन तथा शरीर पर अलंकरणों का प्रयोग करना, आश्व.श्रौ.सू. 2.7.5; 2. एक एकाह का नाम, बौ.श्रौ.सू. 18.48; 'अक्ताक्षा अलंकृता ऋत्विजः चरन्ति स आञ्जनोऽभ्यक्त शामूलवाससः सोऽभ्यञ्जनः' 3. लाट परम्परा में मैथुन (रति क्रिया = उपगमन) का पर्यायवाची (तु. तै.सं. 2.5.1. अभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अञ्जनम्, रजस्वला के लिए बनाये गये नियमों के अन्तर्गत विहित)।

अम्भृण न. चार आहावों (नादों) का संयुक्त नाम : आधावनीय, पूतभृत्, मुख-प्रक्षालन एवं थालियों को माँजने के लिए पात्र, बौ.श्रौ.सू. 6.34।

अभ्यतिरिच् (अभि + अति + रिच्) (सोम रस) को अतिशय मात्रा में रहने देना, का.श्रौ.सू. 25.13.16।

अभ्यन्तरम् क्रि.वि. अंगुलियों के बीच में अवकाश (विवर) रखते हुए, आप.श्रौ.सू. 10.5.11।

अभ्यपातयेत् (अभि + आ + पत् + णिच् + वि.लि. तिप्) (प्राची) पर रखना, बौ.शु. 158, वस्तुतः अभ्यपातयेत्।

अभ्यपान्य (अभि + अप् + अन् + ल्यप्) ऊपर की ओर या आर-पार साँस लेकर, आप.श्रौ.सू. 6.26.5।

अभ्यवहरण न. (अभि + अव + हृ + ल्युट्) (जल में) फेंकना = प्रक्षेप करना, शां.श्रौ.सू. 2.21.18; जल में उख्य भस्म को फेंकने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 17.1.1।

अभ्यस्त न. किसी विशिष्ट कर्म के समाप्त होने के पूर्व (सूर्यास्त), शां.श्रौ.सू. 3.19.9; वि. (स्त्री.) दुहराई गयी, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.22।

अभ्याकारम् क्रि.वि. पुनः पुनः, बार-बार दुहराते हुए, (सम्मार्ष्टि) भा.श्रौ.सू. 2.4.4; आप.श्रौ.सू. 2.4.4.5; 'अभ्याकारमिति ब्राह्मणे श्रवणात्पुनः पुनः तैरेव सर्म्मार्जनमिति; बौ.श्रौ.सू. 20.10 पर टीका।

अभ्यातञ्च् (अभि + आ + तञ्च्) दूध को जमाना (= तक्त) जमाया हुआ, बौ.श्रौ.सू. 20.4:34।

अभ्यातान न. एक होम का नाम, बौ.श्रौ.सू. 36.9 : 3; 2.11 : 17; आप.श्रौ.सू. 19.17.19; पु. विजय-प्रदान करने वाले एक मन्त्र (पार.गृ.सू. 1.5.10) का नाम, जिसका प्रयोग आनुषङ्गिक (गौण) आहुति के लिए किया जाता है, आप.गृ.सू. 2.77; तै.सं. 3.4.6.1; अग्न्याधान के प्रारम्भिक चरण में 'जया' आहुति के पश्चात् दी जाने वाली आहुति का नाम। अग्न्याधान के अन्त में भी यह आहुति दी जाती है। 'गोपितृ' यज्ञ के अन्त में भी यह आहुति दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 2.8-11; श्रौ.को. (अं) I.i.14; बौ.श्रौ.सू. 2.12; बौ.श्रौ.सू. 4.16 के अनुसार एक कृत्य में यजमान द्वारा आभ्यातान संज्ञक आहुतियाँ दी जानी चाहिए जिसके माध्यम

से वह समृद्धि की कामना करता है। करछुल के माध्यम से 17 आहुतियाँ एवं पितरों को एक आहुति : औपमन्यव का मत है कि अभ्यातान आहुतियों को चम्मच से देना चाहिए। कोई भी इन आहुतियों को दर्शपूर्णमास याग के साथ जोड़ सकता है।

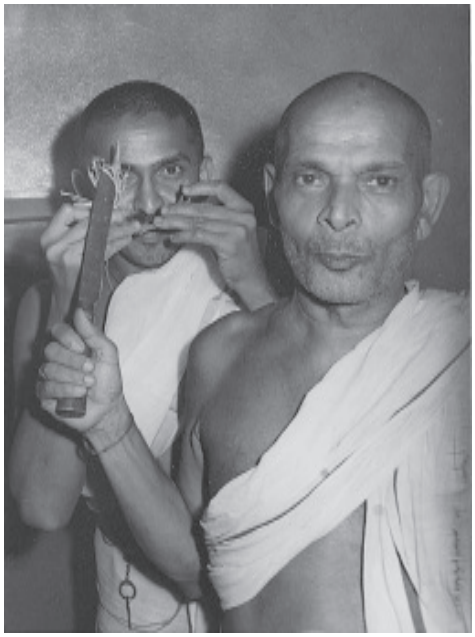

अभ्यात्मम्

अभ्यात्मम् क्रि.वि. 1. स्वयं अपनी ओर, भा.श्रौ.सू. 3.18.4; 2. (चित वेदि के) मुख्य शरीर की ओर, का.श्रौ.सू. 17.2.1 (चयन, नैर्ऋती इष्टकाएं); का.श्रौ.सू. 18.2.12 (चयन में मण्डूककर्षण)।

अभ्यादाह पु. घर को जलाने वाली अग्नि, भा.श्रौ.सू. 9.5.12 (संसृजेत्, प्रायश्चित्त)।

अभ्यादाह्य पु. (वह अग्नि) जो घर को जलाती है, आप.श्रौ.सू. 9.3.22 (तु. प्रदाव्य एवं शवाग्नि)।

अभ्यारोह पु. तीन यजुष्कण्डिकाओं 'असतो मा सद्गमय', 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' एवं 'मृत्योर्मा अमृतं गमय', बृहदा.उप. 1.3.28 के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द। बहिष्पवमान स्तोत्र के प्रथम प्रस्ताव के समय शतपथब्राह्मणवत् स्वर में यजमान द्वारा जपा जाना चाहिए। आप.श्रौ.सू. 12.17.15-16 के अनुसार यजमान इस अवसर पर 'श्येनोऽसि' मन्त्र जपता है एवं माध्यन्दिन एवं आर्भव पवमान के आरम्भ में बाद के दो मन्त्रों को क्रमशः (जपता है)। तै.सं. 3.2.1.1 में ये मन्त्र हैं 'यो वै पवमानानाम् अन्वारोहन् विद्वान् यजते अनुपवमानम् आरोहति न पवमानेभ्यो अवच्छिद्यते श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वार्भवे स्वस्ति मा सं पारय, सुपर्णोऽसि पारय सघासि जगतीछन्दा----' पारय। तु. पञ्च.ब्रा. 1.3.8; द्रा.श्रौ.सू. 3.4.27।

अभ्यारोहणीय पु. एक सोम याग का नाम, जो अग्निष्टोम प्रकार के प्रायणीय के साथ पवित्र याग भी कहलाता है; इसका अनुष्ठान राजसूय से पहले किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 18.8.3।

अभ्यावर्त वि. लौटने वाला, दुहराया हुआ, अभ्यस्त, जै.ब्रा. 1.279।

अभ्याश्रावण न. 'ओ श्रावय' आह्वानवचन का उच्चारण, आश्रावण (क) ला.श्रौ.सू. 3.3.29; द्रा.श्रौ.सू. 7.3.28; **० श्रावित** न. 'ओ श्रावय' आदि आह्वान-वचन का उच्चारण, आश्व.श्रौ.सू. 3.13.10।

अभ्याश्रावणम् क्रि.वि. आश्रावण = आह्वान-वचन के उच्चारण के समय (दीक्षा), मा.श्रौ.सू. 2.1.2.33।

अभ्यास पु. गुणन करना, आवृत्ति, दुहराना, शां.श्रौ.सू. 13.27.5; ला.श्रौ.सू. 7.1.9; 7.3.16; [**० वत्** वि. आवृत्ति से युक्त, ला.श्रौ.सू. 6.11.3; 7.1.13]; यजमान द्वारा 'स्तुत-दोह' एवं 'शस्त्र-दोह' के बाद अध्वर्यु के निर्देश पर निम्न पाठ्य ['इन्द्रियावन्तो वनामहे धुक्षीमहि प्रजाम् इषं सा मे सत्याशीर्देवेषु भूयात् ब्रह्मवर्चसं मा गम्यात्] की आवृत्ति, श्रौ.को. (अं.) II.580 fn.ii. 459; बौ.श्रौ.सू. 7.17; भा.श्रौ.सू. 13.31.15; [अध्वर्यु यजमान से 'शस्त्रस्य दोह' जो इस प्रकार है 'शस्त्रस्य शस्त्रमसि ऊर्जं मह्यं दुहान मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यात्' का पाठ करवाता है। तब वह उससे 'अभ्यास'-संज्ञक पाठ्य का पाठ करवाये, अर्थात 'इन्द्रियावन्तो मनामहे-----उपरिवत्; स्तोत्र की स्थिति (प्रसङ्ग) में यह स्तुत-दोह 'स्तुतस्य स्तुतमसि----ऊर्जं मह्यं स्तुतं दुहाना मा स्तुतस्य स्तुतं गम्यात्' के पश्चात् आता है, द्रा.श्रौ.सू. 5.2.19]।

अभ्यासङ्ग्य पु. पाँच सवन दिनों वाले सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.4.2.15; 9.4.3.38 (छः सवन दिनो से युक्त) आन्तरिक रूप से जुड़ा हुआ; (षडह अहीन सोम याग का एक प्रकार) जिसमें बाद वाले दिन वही स्तोम दुहराया जाता है, जिससे पूर्व दिन समाप्त होता है, चिन्नस्वामी,

यज्ञतत्त्वप्रकाश, मद्रास 1953, पृ. 130–131. इसके लिए स्तोमों की व्यवस्था निम्नवत् है :

प्रथम दिन	प्रातः सत्र	त्रिवृत्स्तोम
अग्निष्टोम	मध्याह्न	त्रिवृत्
	तृतीय	पञ्चदश
द्वितीय दिन	प्रातः	पञ्चदश
उक्थ्य	मध्याह्न	पञ्चदश
	तृतीय	सप्तदश
तृतीय दिन	प्रातः	सप्तदश
उक्थ्य	मध्याह्न	सप्तदश
	तृतीय सत्र (सायम्)	एकविंशति
चतुर्थ दिन	प्रातः	एकविंशति
उक्थ्य	मध्याह्न	एकविंशति
	तृतीय	सप्तविंशति
पञ्चम दिन	प्रातः	सप्तविंशति
अतिरात्र	मध्याह्न	सप्तविंशति
	तृतीय	त्रयस्त्रिंश
षष्ठ दिन अतिरात्र	,,	,,

अभ्यासृजति (अभि + आ + सृज् + लट् प्र.पु.एक.व.) समाप्त करना (सवनम् अभ्यासृजति), मा.श्रौ.सू. 2.4.3.19।

अभ्याहवम् क्रि.वि. (करछुल की) जिह्वा की तरफ, मा.श्रौ.सू. 1.2.5.2 (पोंछते समय)।

अभ्याहृत वि. समीप लाया गया, मा.श्रौ.सू. 1.6.2.3।

अभ्युक्ष् अभि + उक्ष् 'प्रोक्षण करना, छिड़कना, शां.श्रौ.सू. 8.11.13 (सोम याग में अवभृथ के समय होता यजमान पर जल छिड़कता है)।

अभ्युदयश्राद्ध न. यज्ञ के प्रारम्भ में मृत पूर्वज के सम्मान में अनुष्ठित किया जाने वाला श्राद्ध-कर्म, वैखा.श्रौ.सू. 1.4.7; वैखा.गृ.सू. 2.1:3; 6.2 : 11; तु. नान्दीश्राद्ध।

अभ्युदित पु. धान के निष्तुषीकरण (भूसी हटाने) के अनन्तर किये जाने वाले एक यज्ञ का नाम, यदि कोई यह समझता है कि चन्द्रमा उदित हो गया है (अमावास्या पर), वारा.परि. (प्राय. 4); श्रौ.को. (अं) I.i. 451; वि. (वह व्यक्ति) जो सूर्योदय के पश्चात् भी सो रहा हो, आप.श्रौ.सू. 9.12.11।

अभ्युदिता स्त्री. सूर्योदय की स्थिति में अनुष्ठेय एक वैकल्पिक इष्टि का नाम। इसका अनुष्ठान उस समय किया जाता है जब अग्निहोत्र होम के लिए अग्नि अभी तक वितरित न की गयी हो, बौ.श्रौ.सू. 13.1।

अभ्युद्दृष्ट पु. एक इष्टि का नाम जिसका अनुष्ठान तब किया जाता है, यदि दर्श याग के प्रारम्भ होने के बाद चन्द्रमा पश्चिम दिशा में दिखाई देता हो। देवता हैं पथिकृत अग्नि, वृत्रहन् इन्द्र एवं वैश्वानर अग्नि। इसकी दक्षिणा है-एक सोंटा एवं पादत्राण (पादुका = जूता), शां.श्रौ.सू. 33; श्रौ.को. (अं) I.i. 452–53।

अभ्युद्धृता स्त्री. एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, जिसे उस समय सम्पन्न किया जाता है यदि एक पवित्र अग्नि को आगे ले जाया जाता है एवं पूर्व स्थापित अग्नि पर निक्षिप्त कर दिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 13.11:6।

अभ्युन्दन न. (अभि + उन्द् + ल्युट्) उक्षण (छिड़कने) का कृत्य (दीक्षा से सम्बद्ध), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.23।

अभ्युपाकृ (अभि + उप + आ + कृ) किसी गानकर्ता के लिए (स्तोत्र) नियत करना, मा.श्रौ.सू. 3.6.19।

अभ्युपाकारम् क्रि.वि. नियतीकरण 'उपाकरण' (सौंपने) के बाद, बौ.श्रौ.सू. 14.26; 15.6।

अभ्यूढ वि. (अभि + वह् + क्त) आगे ले जाया गया या सरकाया गया, श्रौ.को. (सं) II.535 (करछुल-स्रुच्)।

अभ्यूह् अभि + ऊह् (कपाल को जलते कोयलों से) ढकना, का.श्रौ.सू. 2.4.37; मा.श्रौ.सू. 1.2.3.8।

अध्यूह पु. = उदूह, ता.ब्रा. 3.8.4.3; आप.श्रौ.सू. 20.3.16 सरकण्डे (नरकुल) के बने हुए झाड़ का एक प्रभेद जिस का प्रयोग 100 राजकुमारो, जो विभिन्न टोलियों में विभक्त होकर यज्ञीय अश्व की रक्षा के लिए नियुक्त होते हैं, को सांकेतिक रूप से पृथक् करने के लिए एवं अश्व की ओर जल को हटाने के लिए होता है, बौ.श्रौ.सू. 15.1.16; तु. डुमण्ट.एल.', अश्व 294, 300–1।

अभ्रि वि. अग्रीध का कुदाल (के सदृश) पात्र, मा.श्रौ.सू. 8.14.1; स्त्री. (सदस् मण्डप में) औदुम्बरी अथवा उखा (चयन) के स्थल को खोदने के लिए प्रयुक्त एक अरत्नि अथवा प्रादेश-मात्र लम्बी कुदाल, आप.श्रौ.सू. 16.1.17. यह चित्तीदार (कल्माषी) बाँस की (वैणवी) बनी होती है

एवं इसमें एक अथवा दो धार होते हैं, श.ब्रा. 6.3.1. 30-34; वेदि को बनाने के लिए स्फ्य से खींची गई रेखा के चारों ओर खुदाई करने के लिए अध्वर्यु द्वारा प्रयुक्त, भा.श्रौ.सू. 7.3.3 (पशु); घर के खम्भों (बाँस की थून) के लिए गड्ढा खोदने के लिए प्रयुक्त रांपी (खुरचनी) अथवा बेलचा, हि.गृ.सू. 1.27.1।

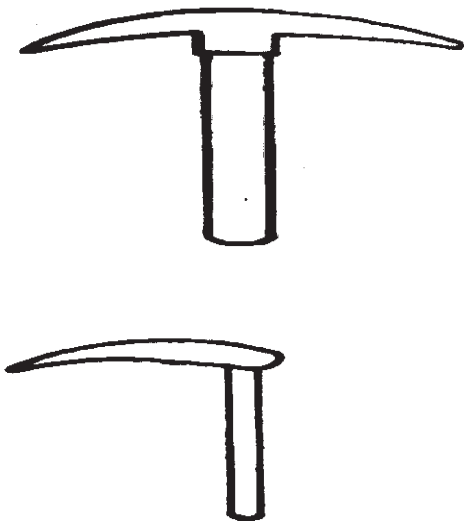

अभ्रि

अमत्र न. बृहत् पात्र, अग्निवे.गृ.सू. 1.1.4:7।

अमांसखाद वि. मांस को न खाने वाला, भा.श्रौ.सू. 7.23.11। —**साशिन्** वि. अमांसभक्षी, मांस न खाने वाला, का.श्रौ.सू. 22.7.19।

अमात्य पु. (अमा + त्य) 1. (यजमान का) एक सहवासी = साथ-साथ रहने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.1; पुत्र एवं पौत्र, आप.श्रौ.सू. 8.5.41 (कुछ के मतानुसार सम्बन्धी); 2. एक आहुति का नाम। ये आहुतियाँ अग्न्याधेय में जया, अभ्यातान एवं राष्ट्रभृत आहुतियों के बाद दी जाती हैं। वैखा.श्रौ.सू. (1.1-6) के मतानुसार ये आहुतियाँ कुष्माण्ड आहुतियों द्वारा अनुसर्तव्य हैं (अर्थात इनके बाद कुष्माण्ड आहुतियों को अर्पित किया जाता है। अमात्य आहुतियों के मन्त्रों को कुष्माण्ड, काजव एवं अतिमोक्ष भी कहते हैं, श्रौ.को (अं) I.i. 14, 23, 30; इसे गोपितृ यज्ञ के अन्त में भी अर्पित करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 2.8-11।

अमावास्या स्त्री. वह रात्रि जब सूर्य एवं चन्द्रमा एक साथ निवास करते हैं = दर्श (केवल सूर्य के द्वारा देखी गयी), आप.श्रौ.सू. 1.7.1; यह वह तिथि है जिस पर सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे के सबसे अधिक निकट रहते हैं, गौ.गृ.सू. 1.5.7।

अमुत्व न. इस संसार के परे (आगे) होने की स्थिति, जै.ब्रा. I.241।

अमेक्षण वि. भ्रममाण छड़ी से रहित, मा.श्रौ.सू. 1.5.5.6।

अमोत वि. (अमा + वे + क्त), घर का बुना, घर पर बुना गया, भा.श्रौ.सू. 10.17.16. (दशापवित्र)।

अमौत्रधौत वि. मूत्र (अथवा रसायनों) से न धोया हुआ, का.श्रौ.सू. 7.2.16 (सोमयाग में दीक्षित के लिये नियत वस्त्र)।

अम्नः क्रि.वि. तुरन्त बाद, आप.श्रौ.सू. 6.4.6 (धूः ईषदस्तमिते होमः कार्यः); तुरन्त (अम्नः अभिश्रितम्, आग पर तुरन्त चढ़ाया हुआ), भा.श्रौ.सू. 6.10.8।

अम्बरीष पु. तन्दूर में उत्पन्न की गयी एक अग्नि का नाम, श्रौ.को. (अं) I.i.14; वह कड़ाही जिसमें गृह्य अग्नि प्रज्वलित की जाती है, शां.गृ.सू. 1.1.8 एवं अग्नि की स्थापना के लिए आगे लायी जाती है, गौ.गृ.सू. 1.1.15।

अम्बुसार वि. (अम्बुनः सारः यस्मिन्) जल के सार (शक्ति) से युक्त (यज्ञ के यूप = खम्भे के लिए) भद्दा = खुरदरा (वृक्ष), मा.श्रौ.सू. 8.12.2।

अयजुष्क वि. (न विद्यते यजुः यस्मिन्) यजुर्मन्त्रों से असमवेत, आप.श्रौ.सू. 8.9.11; भा.श्रौ.सू. 8.11.9; प्रासङ्गिक = उचित यजुष् के पाठ से हीन, भा.श्रौ.सू. 8.12.8 (गृहमेधीय वत्सापाकरण)।

अयज्ञसंयुक्त वि. विशिष्ट यज्ञीय अनुष्ठानों से असम्बद्ध, आप.श्रौ.सू. 17.14.4 (यद्येनं भीर्विन्देत् उदकाञ्जलिमादाय) समुद्राय वयुनाय इत्यप्सु जुहुयाद् इत्ययज्ञसंयुक्तः कल्पः); देखें—17.14.8; 17.17.7 भी।

अयनमास पु. एक वार्षिक यज्ञीय सत्र का नाम, निदा.सू. 10.9.10; ला.श्रौ.सू. 4.7.8; द्रा.श्रौ.सू. 8.3.28।

अयनविकल्प पु. एक वार्षिक यज्ञीय सत्र में (महीने की संघटना के बारे में) विकल्प, ला.श्रौ.सू. 10.14.13; द्रा.श्रौ.सू. 8.3.23।

अयःशफ वि. लोहे के खुर वाला, मा.श्रौ.सू. 6.12.26, (युद्धाश्व)।

अयःशया स्त्री. प्रथम उपसद् होम का नाम, का.श्रौ.सू. 8.2.23 (उपसद् आहुतियाँ संख्या में तीन है एवं इन आहुतियों को चम्मच से प्रदान किया जाता है (V.1. अपाशया के लिए) भा.श्रौ.सू. 12.3.16।

अयस्पात्र न. लोहे का पात्र, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.37. (सान्नाय्य के लिए जमाये गए दुग्ध वाले पात्र पर जिसको रखा जाता है)।

अयस्मय वि. (अयस् + मयट्) अयस् (लोहे का) बना हुआ, लौहनिर्मित, आप.श्रौ.सू. 9.11.14 (असिद, स्वधिति आदि जैसे उपकरण); न. एक धातुनिर्मित पात्र, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.15 (अश्वमेध) में अवभृथ के अवसर पर इससे आहुति दी जाती है)।

अयातयामत्व न. दुर्बल अथवा तत्सदृश न होने का भाव, प्रत्यग्रता (ताजगी), बौ.श्रौ.सू. 13.28.11।

अयातयाग्नी वि. प्रयोग के द्वारा जो घिसा अथवा जीर्ण नहीं हुआ है, प्रत्यग्र (ताजा), बौ.श्रौ.सू. 6.14:13; सोम का क्रयण करते समय सोम के मापन के लिए प्रयुक्त (ऋचा) अयातयाग्नियायातयाग्नियैवेनं मिमीते (श्रौ.को. (अं.) 1.115 में अनुवाद नहीं किया गया)।

अयाशया स्त्री. लोहे को सन्दर्भित करते हुये मन्त्रपूर्वक उपसद् होम, भा.श्रौ.सू. 12.4.2; तु. रजाशया, भा.श्रौ.सू. 12.4.8 एवं हराशया, भा.श्रौ.सू. 12.5.15; श्रौ.को. (सं.) II.138-39; या तेऽग्नेऽयः शया तनूर्वषिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचे अपावधीत् स्वाहेति, श.ब्रा. 3.4.4.21-23।

अयास्य पु. (उद्गाता से समीकृत) सप्तहोतृ मन्त्र में तृतीय अभिव्यक्ति, शां.श्रौ.सू. 10.18.4।

अयुगर्थ वि. (दर्भमुष्टि के) एक विषम = अयुग् संख्या के लिए अभिप्रेत, आप.श्रौ.सू. 1.4.4।

अयुग्धातु क्रि.वि. (दर्भाग्र के तन्तुओं की विषम = अयुग्म संख्या के साथ, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.40 (रज्जु)।

अयुग्म वि. सम-संख्या को न बनाने वाली, का.श्रौ.सू. 9.2.22।

अयुग्मवली वि. (न विद्यन्ते युग्मा वल्यः यस्मिन्) वलियों (मोड़ो) की विषम संख्या से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.1.2.30 (कृष्ण-विषाण)।

अयुज् वि. विषम, अयुग्म, असमान, जै.ब्रा. II.438।

अयुतदक्षिण वि. (अयुतं दक्षिणा यस्मिन्) दस हजार की दक्षिणा (ऋत्विक् शुल्क) वाला (अर्थात् जिसकी दक्षिणा 10 हजार है) का.श्रौ.सू. 22.11.6।

अयुवन् वि. जो जवान नहीं है, का.श्रौ.सू. 4.9.11 (आधान में अश्व)।

अयूप वि. (नास्ति यूपः अस्मिन्) यज्ञीय स्तम्भ के (प्रयोग) से रहित, का. श्रौ.सू. 22.8.3 (वैश्वदेवपृष्ठ्यषडह)।

अयूप्य वि. न यूपम् अर्हति (नञ् + यूप + यत्) यज्ञीय स्तम्भ (यूप) के लिए अनुपयुक्त (वृक्ष) मा.श्रौ.सू. 1.8.1.4।

अयोदर्वी स्त्री. लोहे की बनी हुई (लौहनिर्मित) दर्वीसंज्ञक करछुल, बौ.श्रौ.सू. 10.18।

अयोनिक वि. (वह सोम प्याला) जिसके लिए 'एष ते योनिः' मन्त्र के साथ स्थापन (ग्रहासादान) का कोई कृत्य नहीं है, का.श्रौ.सू. 9.5.24।

अरणिपाणि वि. अग्नि की मथानी (अरणि) जिसके हाथ में है, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.6 (आधान); (अरणिः पाणौ यस्य सः) जिसके हाथ में दो अरणियाँ (काष्ठीय खाँचे) हैं, का.श्रौ.सू. 7.1.30 (अग्निष्टोम)।

अरणिप्रदान न. घर्षण के द्वारा अग्नि को उत्पन्न करने एवं इसे स्थापित करने के लिए अध्वर्यु द्वारा यजमान को अरणियों को उसके हाथ में देना। यजमान एवं उसकी पत्नी उत्तरारणि एवं अधरारणि को क्रमशः अपने अङ्क (गोद) में रखते हैं, का.श्रौ.सू. 4.7.22; आप.श्रौ.सू. 5.8.7. अग्नि को स्थापित करने के लिए गृह्य कर्म में यह कृत्य ऐच्छिक (वैकल्पिक) है, पा.गृ.सू. 1.2.5।

अरणी स्त्री. (द्वि.) अग्नि को मथने के लिए शमी वृक्ष से सम्बद्ध अर्थात् शमी से आवृत अथवा शमी पर उगे हुए अश्वत्थ (पीपल) के काष्ठ से निर्मित दो काष्ठीय टुकड़े, आश्व.श्रौ.सू. 2.1.17; आप.श्रौ.सू. 5.1.2; 10.7; दो टुकड़ों को काटा जाता है, पुनः उसे रदन क्रिया के द्वारा समतल बनाया जाता है, सुखाया जाता है और उसे आयत का रूप देते हैं, प्रत्येक की नाप 16 अंगुल लम्बी 12 अंगुल चौड़ी एवं 6 अंगुल ऊची (घनी) होती है, बौ.श्रौ.सू. 2.6; तु. वैखा.श्रौ.सू. 1.1; नीचे वाले टुकड़े को अधरारणि कहते हैं, जिस पर ऊपर वाले टुकड़े अर्थात उत्तरारणि को चढ़ाते

हैं। एक तर्कु = धुरी (प्रमन्थ) दोनों को जोड़ती है। धुरी को घुमाकर अग्नि को उत्पन्न किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.6; इस क्रिया को कहा गया है 'अग्निं मन्थति', आप.श्रौ.सू. 7.12.10; पृष्ठ्य षडह के चतुर्थ सुत्यादिन पर एक स्तोत्र के समर्पण पर प्रयुक्त होने वाला, मा.श्रौ.सू. 7.2.2.17, देखें - चित्र 'अधरारणि'।

अरण्येऽनुवाक्य वि. आरण्य (आरण्यक ग्रन्थ) में संरक्षित किए गए मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 17.16.6. (अपने गूढ एवं दुर्ज्ञेय विशेषता के कारणवशात्) अरण्य = वन में जिनका अध्ययन किया जाता है। 'ग्रामेऽनुवाक्य' से इसका पृथक् वैशिष्ट्य दिखाया गया है, आप.श्रौ.सू. 17.17.1. अश्व. में कुल 61 अरण्येऽनूच्य आहुतियाँ होती है। (इन मन्त्रों का प्रयोग इनकी निगूढ प्रकृति अथवा आध्यात्मिकता के कारण अरण्य में ही होता है; तु. डुमण्ट, अश्व. 205, न. (तैत्तिरीय) आरण्यक के अनुवाक से सम्बन्ध रखने वाले पाठ्य, भा.श्रौ.सू. 14.3.7।

अरण्येऽनुवाक्या वि. (स्त्री.) जिसका पाठ अरण्य में किया जाना चाहिए, अरण्य में पठनीय, भा.श्रौ.सू. 5.10.13; स्त्री. (वे ऋचाएं) जिनका पाठ अरण्य में किया जाना चाहिए 'यास्ते घोराः----' तै.आ. 4.23.24; आप.श्रौ.सू. 5.15.6 (अग्नि के आधान के समय पढ़ी जाने वाली)।

अरण्येऽनूच्य पु. (वेदि के चयन के पूर्ण हो जाने पर मरुतों के लिए वैश्वानर के अनन्तर निर्मित एवं समर्पित किए जाने वाले) पुरोडाश का नाम, का.श्रौ.सू. 18.4.20।

अरत्नि पु. पुरुष (यजमान की ऊँचाई = लम्बाई) के पाँचवे भाग को बताने वाली माप.का.श्रौ.सू. 16.8.21; बौ.शु.सू. 1.1; घुटने से लेकर कनिष्ठिका (अन्तिम अंगुलि) के अग्र भाग तक मध्य लम्बाई का एक हाथ (अर्थात् 1.5 हाथ अथवा 10 इञ्च), मो.वि. = 24 अंगुल = प्रादेश; (कात्या.शु.) खादीकर। स्त्री. 2 वितस्ति का माप (12.2 अंगुल), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4. अपरार्क एक स्मृति को उद्धृत करते हैं (पृ. 905) कि वितस्ति 12 अंगुल के बराबर होता है एवं एक अरत्नि दो वितस्ति के बराबर होती है, जब कि हेमाद्रि (व्रतखण्ड पं. I, पृ. 51) आदित्य पुराण के एक अंश को उद्धृत करते हैं, जिसमें अरत्नि को 21 अंगुल का बताया गया है, देखें - काणे, हि.आ.ध.शा. II, पृ. 209 पा.टि.

अरिष्ट न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.5.22 सा.वे. 1.565 पर निबद्ध।

अरु वि. पतली, कोमल (चित वेदि), आप.श्रौ.सू. 16.9.2।

अरुण पु. (जानुदघ्न = घुटने की ऊँचाई वाली) अग्नि-वेदि के एक भेद (प्रकार) का नाम, मा.श्रौ.सू. 10.3.4.5 (जल-इष्टिकाओं से चित = निर्मित)।

अरुणकेतुक पु. अग्नि-वेदि के चयन (अग्निचयन) के एक प्रकार का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.15.10।

अरुन्धती स्त्री. वधू को दिखाई जाने वाली नक्षत्र-विशेष (अरुन्धती) का नाम, आप.गृ.सू. 6.12 (विवाह)।

अर्कग्रह पु. (महाव्रत में) अतिग्राह्य पात्र (प्याले) का नाम, मा.श्रौ.सू. 7.2.6.3।

अर्कपर्ण न. पलाशवृक्ष का पत्ता, जिसे शतरुद्रिय होम में प्रत्यवरोह आहुति के पूर्व वेदि के उत्तर की ओर दूर फेंक दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 17.11.5।

अर्कपुष्प न. सा.वे. 1.565 पर निबद्ध एक साम का नाम पञ्च.ब्रा. 15.3.22।

अर्काहुति स्त्री. पात्र से वसतीवरी - संज्ञक जलों के छलकने के प्रायश्चित्त के रूप में अर्पित की जाने वाली पञ्च आहुतियों के समूह का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.20.10; मन्त्र हैं 'सुवर्ण घर्मः स्वाहा----' (वा.सं. 18.50; श.ब्रा. 9.4.2.19.25)।

अर्क्य वि. अर्क से सम्बन्ध रखने वाला, अर्क-सम्बद्ध, जै.ब्रा. II.433; अग्निवेदि से सम्बद्ध एक शस्त्र अथवा साम का नाम, जै.ब्रा. I.292।

अर्घ पु.1. वर के सम्मान में उसके श्वसुर द्वारा अथवा नवविवाहित दम्पती (पति-पत्नी) के वर के घर आगमन के अवसर पर आयोजित किया जाने वाला स्वागत-समारोह। योग्य अतिथियों को मधुपर्क एवं गाय उपहार के रूप में समर्पित किये जाते हैं, आप.गृ.सू. 3.3-8; शां.गृ.सू. 1.12.10; 2. 'अर्घ्य' (अर्घ के योग्य) के नाम से संबोधित किये जाने वाले अतिथियों के सम्मान में स्वागत (समारोह), पा.गृ.सू. 1.3.1; छः की गणना की गयी है : आचार्य, ऋत्विज्, राजा, प्रिय (मित्र), स्नातक एवं विवाह्य (टीका वर = श्वसुर अथवा वर, हरिहर.पा.गृ.सू. पर); ये चीजें दी जाती हैं : कूर्च अथवा विष्टर, पाद्य, मुख-प्रक्षालन (मुह धोने) एवं आचमन के लिए अर्घ्य जल, मधुपर्क एवं गाय; अतिथि तीन बार उपभोग करता है, आप.गृ.सू. 13.2-10, इत्यादि।

अर्घ्य न. किसी व्यक्ति को सम्मानित करने के लिए प्रयुक्त होने वाले द्रव्य-जलादि, शां.श्रौ.सू. 4.21.4।

अर्चि:प्रत्यवाय पु. अर्चिष् (लपट) का लोप (बुझना), का.श्रौ.सू. 4.15.18 (अग्निहोत्र)।

अर्जुन न. एक घास का नाम, श्रौ.को. (अं) I.230।

अर्थद्रव्यविरोध पु. (अर्थद्रव्ययो: विरोध:) यज्ञ के उद्देश्य एवं उसमें प्रयुक्त होने वाले द्रव्य के मध्य विरोध, का.श्रौ.सू. 1.4.16।

अर्थनिवृत्ति स्त्री. यज्ञ के विशेष प्रयोजन की पूर्णता = समाप्ति = निवृत्ति, का.श्रौ.सू. 1.5.2।

अर्थप्रसङ्ख्या स्त्री. कृत्यों अथवा आहुतियों की संख्या, का.श्रौ.सू. 1.10.3।

अर्थवाद पु. यज्ञ की विधि (नियम) की प्रशंसा करने वाले व्याख्यात्मक शब्द अथवा कथन। ब्राह्मण ग्रन्थ में विधि के अतिरिक्त इस प्रकार के (अर्थवादात्मक) कथन समाहित हैं। इसमे निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प (परम्परा) परकृति (कहानी, दूसरों के चरित) समाहित हैं। ये अर्थवादात्मक वाक्य नियमों को स्पष्ट करने में सहायता देते हैं, आप.श्रौ.सू. 24.1.33; ये अंश (वाक्यांश) अथवा मन्त्र यज्ञों में किसी विशिष्ट चीज को इंगित नहीं करते अथवा ये अपरिवर्तित दशा में रहते हैं, 3.51; तु. oldenberg, श.ब्रा.अं. XXX 324, 351।

अर्थावेक्ष वि. (वह व्यक्ति) जो श्राद्ध में ब्राह्मण का वरण करते समय सांसारिक कामनाओं (इच्छाओं) का ध्यान रखता है, आप.गृ.सू. 21.2।

अर्थिन् वि. (वह व्यक्ति) जो किसी वस्तु की इच्छा अथवा कामना करता है (येन च अर्थी), भा.श्रौ.सू. 1.7.2; जो प्रक्रियाओं से गुजर सकता है, भा.श्रौ.सू. 7.6.6; (वह जिस चीज को चाहे, काशिकर)।

अर्ह्य वि. (वह वस्तु) जो यज्ञ के अनुष्ठान के लिए उपयोगी है (दधि, आज्य, इत्यादि) बौ.श्रौ.सू. 12.8 उपयोगार्ह।

अर्धग्रह पु. प्याले का आधा। का.श्रौ.सू. 2.3.5.4 (सन्दर्भ = इन्द्र-वायु-ग्रह)।

अर्धपद्या वि. (स्त्री.) यजमान के पैर की आधी लम्बाई के नाप की (एक इष्टका), का.श्रौ.सू. 17.1.15 (चयन)।

अर्धपिष्ट आधा पिसी हुई (चावल की लोई = पीठी), का.श्रौ.सू. 5.1.6; (सोमापूषन् के लिए) चरु, जिसका अर्ध भाग (स) पिष्ट (-धान्य) होता है, मा.श्रौ.सू. 5.1.5.74 (अनुवाद - गेल्डर)।

अर्धबृहती स्त्री. चित गार्हपत्य अग्नि के केन्द्र (मध्य) में रखी हुई (चार) इष्टकाओं - ईंटों का नाम, का.श्रौ.सू. 17.1.8।

अर्धमासस्तोम पु. प्रत्येक अर्धमास (पक्ष) में अनुष्ठित होने वाले एक सोम याग का नाम, शां.श्रौ.सू. 14.77.1।

अर्धर्चभाग पु. आधी ऋचा से युक्त भाग, मा.श्रौ.सू. 5.1.4.20, 'द्वे पुरोऽनुवाक्ये, तासामृचाम् अर्धर्चभागं करोति', अर्थात् वह पहली ऋचा के बाद 'ओम्' का पाठ नहीं करता है।

अर्धर्चशस् क्रि.वि. एक विस्तार में अर्धर्च (आधी ऋचा) करके (पाठ करना), आश्व.श्रौ.सू. 5.9.20; सावित्री के पाठ करने की प्रविधि = तरीका (तै.सं. 1.5.6.4) जिसमें उपनयन के समय गुरु द्वारा आधी-आधी ऋचा करके पाठ किया जाता है, आप.गृ.सू. 11.20 (द्र. बह्वल्पार्थाच्छ-स्कारकादन्यतरस्याम् पा. 5.2.42)।

अर्धवेला स्त्री. मात्रा की आधी, आधी मात्रा, आधे की सीमा तक प्रतिबन्धित मात्रा (अर्धवेलां राज्ञां मिमीते) बौ.श्रौ.सू. 14:17।

अर्धायाम पु. आयम (चौड़ाई अर्थात् उत्तर-दक्षिण दूरी) के नाप का आधा, का.श्रौ.सू. 8.6.5।

अर्धिन् पु. उन सहायक ऋत्विजों का पारिभाषिक नाम जो मुख्य ऋत्विजों के लिए नामित (नियत) दक्षिणा की संख्या के आधे भाग के अधिकारी होते हैं, श्रौ.को. (अं) II.668; सोमयाग में (ऋत्विज्) हैं—मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छसी एवं प्रस्तोता।

अर्धेडाब्राह्मण न. अर्ध-इडा (निधान) के सन्दर्भ में ब्राह्मण (ग्रन्थ) - वचन, निदा.सू. 3.11:5।

अर्मकपाल न. शून्यीकृत (वीरान) स्थान का कपाल, बौ.श्रौ.सू. 9.1; 'शून्यग्रामकपालानि (विव.); (नदीपुलिनेषु निशुष्क पङ्कस्य कपालानि दृश्यन्ते तानि विनष्टग्राममध्यगतानि बहुशो अभिवर्षणेन शुद्धानि कपालानि, केश. (बौ.श्रौ.सू. सूची); (बहु.) (उखाकरण के लिए पुरीष से मिले हुए = पुरीषमिश्रित) छोटे-छोटे टूटे हुए कपाल, मा.श्रौ.सू. 6.1.2.3; मृत्पात्र के टुकड़े, आप.श्रौ.सू. 16.4.1 (उखासम्भरण);

देखें - बरो.टी. JIH 41 (1) 1963, पृ. 159-166; रामगोपाल, 38 PAIOC, 1978; 245-255 = झील।

अर्व न. एक माप का नाम = 6 अंगुल के बराबर, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.3।

अर्वाग्वसु पु. अग्न्युपस्थान में पढ़े जाने वाले विशिष्ट मन्त्र का नाम, भा.श्रौ.सू. 6.2.2; 'अर्वाग्वसो स्वस्ति ते पारमशीय' प्रातःकाल के समय।

अर्वाचीनम् क्रि.वि. (एकादश पशुओं) से कम; (ये अर्वाचीनम् एकादशिन्याः पशव आलभ्यन्ते तान् उत्तरस्य यूपस्य नियुनक्ति), भा.श्रौ.सू. 7.10.9।

अर्ष्टु पु. वह व्यक्ति, जो चावल पकाता है (अन्नपक्तुः = अन्न को पकाने वाला) बौ.श्रौ.सू. 14.4; तै.सं. 3.1.7.1; 'इष्टर्गो वा अध्वर्युर्यजमान्येष्टर्गः खलु वै पूवोऽर्ष्टुः क्षीयते, (सूची) इष्टर्गो वा इति। दर्वीरिति केचित्! अङ्गारकर्षणार्थं काष्ठाङ्गमित्यन्ये! उल्मुकमित्यन्ये।

अलङ्करण न. शोक मनाने वाले का अलङ्करण जिसमें वपन आदि (क्षौर कर्म) सम्मिलित हैं (नापित कर्माणि), भा.पि.मे. 1.12; 7.8; स्त्रियों द्वारा आँख में काजल या सूरमा लगाना, 11.14; देखें - श्रौ.प.नि. II.71।

अलङ्करण

अलङ्करणकाल पु. वह समय जब उपस्तरण सम्पन्न होता है, आप.श्रौ.सू. 8.2.10।

अलङ्कार पु. अँगीठियों (चुल्ली) को साफ करना, स्थान के चारों ओर हाथ से झाड़ू लगाना (परिसमूहन), आप.श्रौ.सू. 6.3.1।

अलज पु. अलज नाम के पक्षी की आकृति वाली एक चित वेदि का प्रकार, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.20।

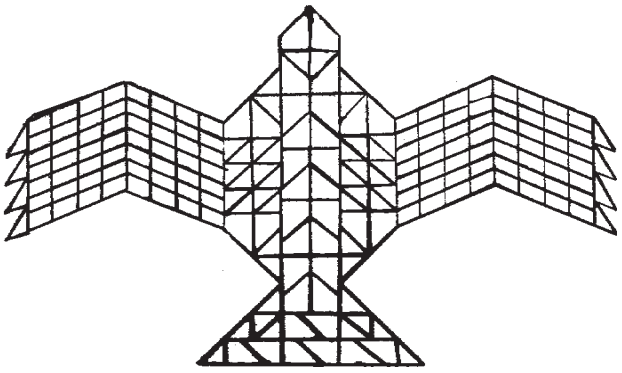

अलजचित्

अलजचित् स्त्री. अलज नाम के पक्षी के स्वरूप वाली एवं चित अग्निवेदि का प्रकार, बौ.श्रौ.सू. 17.28; 30.13।

अलेख वि. बिना किसी खरोंच के चिह्न वाला (होता का पात्र चमस), मा.श्रौ.सू. 8.14.1; होता से सम्बन्ध रखने वाले चमस का हत्था, आकृति में गोलाकार होता है, पृ. 58।

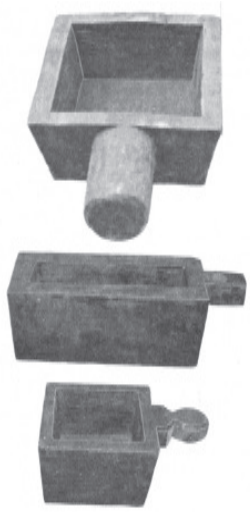

अलेख

अल्कसमर न. छाल पर छुर्रियों का मिलन बिन्दु, मा.श्रौ.सू. 1.8.1.5; देखें 'सल्क समर' वह बिन्दु जहाँ जटाएँ वृक्ष से मिलती हैं, वही।

अल्ग पु. वृक्ष की एक शाखा, आप.श्रौ.सू. 7.2.8।

अवका स्त्री. एक वनस्पति का नाम। (सोम याग के प्रारम्भ के समय) यजमान को ऐसे स्थान पर स्नान करना चाहिए, जिसके चारों ओर अवका के पौधे हों, भा.श्रौ.सू. 10.3.10-5.8; आप.श्रौ.सू. 10.5.6-8.4; उत्तर वेदि पर प्रवर्ग्य की कल्पित आकृति = रूप पर फैलाने के लिए प्रवर्ग्य के निवर्तन के समय भी इस वनस्पति का प्रयोग होता है, श्रौ.को. (अं) 2.252; दलदली वनस्पति, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.6 (चयन में इसके ऊपर ऋत्विया-संज्ञक इष्टकाओं को रखा जाता है)।

अवकावल वि. अवका नामक वनस्पति से पूर्ण, अवका से युक्त, भा.श्रौ.सू. 10.3.21।

अवकाश पु. 1. विधियाँ, जिस समय यजमान को सोम को एवं विभिन्न प्यालों को दिखाया जाता है उस समय पढ़े जाने वाले मन्त्र (तै.सं. 3.2.3), बौ.श्रौ.सू. 7.8 (अवकाशान् चरति) 2. कक्ष = प्रकोष्ठ = खाली स्थान (होतृचमसे ध्रुवस्य अवकाशं कृत्वा), मा.श्रौ.सू. 2.5.2.19; 3. एक सूत्र विधि का नाम '(किसी चीज को) देखने के लिए निर्दिष्ट।' का.श्रौ.सू. 9.7.13 के अनुसार वह व्यक्ति प्रख्यात कुल से सम्बद्ध हो अथवा सौम्यदर्शन हो अथवा वेदों में अच्छी तरह पारङ्गत हो, इस 'अवकाश' विधि का अधिकारी होता है। केवल उस व्यक्ति के यज्ञ में जो 'अवकाश' विधि का अधिकारी हो, प्रवर्ग्य का अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहिए, का.श्रौ.सू. 26.7.52-53. अध्वर्यु के 'रुचितो धर्मः' उद्घोषणा के अनन्तर होता को 'अवकाश' मन्त्रों के अनुवाक से महावीर की प्रार्थना करनी चाहिए, शां.श्रौ.सू. 5.9.25; (महावीरं) पर दत्तदृष्टिता = दृष्टिपात के लिए निर्दिष्ट, तै.आ. 5.6.9; 'अपश्य गोपाम्' इत्यादि। सम्भवतः केवल अध्वर्यु ही वह है जो इनका पाठ करता है, जबकि अन्य लोग उसका (अध्वर्यु का) अन्वारम्भण (पकड़ना, छुए रहना) करते हैं (अन्वारभन्ते); तु.श.ब्रा. 14.1.4.1; बौ.श्रौ.सू. 9.8; यजमान इस अनुवाक का पाठ आश्विन प्याले के आपूरित हो जाने एवं इसे 'खर (-संज्ञक टीले) पर रख दिये जाने के बाद स्तुति (प्रार्थना) के लिए करता है। वह 'परिभूरग्निं परिभूरिन्द्रम्' आदि के साथ प्रारम्भ करता है।

अवकाशचरण न. मन्त्रों के उच्चारण (पाठ) का कृत्य, तै.सं. 3.2.3, जिस समय यजमान को सोम एवं विभिन्न प्यालों को दिखाया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 7.8; का.श्रौ.सू. 9.7.9; इग्लिंग-श.ब्रा.अं. XXVI. 409।

अवकिनी स्त्री. अवका नामक वनस्पति से पूर्ण = (जल), आप.श्रौ.सू. 10.5.15।

अवकिरेत् (अव + कृ + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) यदि वीर्य को स्खलित करे या बहाये (अपने ब्रह्मचर्य होने के बावजूद भी), आप.श्रौ.सू. 14.29.3।

अवकीर्णिन् वि. (वह व्यक्ति) जो ब्रह्मचर्य पालन के बावजूद वीर्य स्खलित अथवा नष्ट करता है, का.श्रौ.सू. 1.1.13; वि. (ब्रह्मचारी विद्यार्थी) जिसने ब्रह्मचर्य आश्रय के दौरान मैथुन क्रिया करके अपने व्रत (प्रतिज्ञा) का उल्लंघन किया है, पा.गृ.सू. 3.12.1; तै.आ. 2.18; उसे पाकयज्ञ के तरीके से 'गर्दभेज्या' संज्ञक प्रायश्चित्तकर्म का अनुष्ठान करना चाहिए; तु.हि.आ.ध. IV.112।

अवक्रमम् क्रि.वि. अवरोही क्रम में, उतरते क्रम में, पश्चिम की ओर बढ़ते हुए (अग्निहोत्रं प्रातः जुहोति), आप.श्रौ.सू. 6.9.4।

अवकाभार पु. अवका संज्ञक वनस्पति का गुच्छा, बौ.श्रौ.सू. 9.16।

अवक्षाण न. एक सुलगता हुआ दाल (अंगार), भा.श्रौ.सू. 6.6.11; भा.श्रौ.सू. 9.12.4-5; अंगार (उल्मुक), आप.श्रौ.सू. 6.28.8; (धू)।

अवक्षायम् क्रि.वि. ताडन (पीटने) के द्वारा, ताडनपूर्वक (वरत्राकाण्डेन अवक्षायं सोमविक्रयिणं नाशयन्ति), भा.श्रौ.सू. 10.18.13; इसलिए कि आँख से ओझल हो जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.27.6।

अवगध पु. मिश्रण (गध मिश्रीकरणे), बौ.श्रौ.सू. 17.48, 17.51, 52 (सूची, कोश)।

अवगृह्य (अव + ग्रह् + ल्यप्) दबाकर, निचोड़कर (टीका-अवपीड्य), आप.श्रौ.सू. 12.22.7।

अवग्राहशस् क्रि.वि. लेते-लेते हुए, ग्रहण करते-करते, बौ.श्रौ.सू. 20.6; 21.6 (प्रोक्षण), ताकि दाहिने पैर की एड़ी को छूता रहे), भा.श्रौ.सू. 2.13.9; (अत्याक्रमण); [अनुवाद - ताकि वाम पाद दक्षिण पाद की एड़ी को छूता रहे], आप.श्रौ.सू. 2.13.10 (रु)।

अवघ्र वि. सूँघने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 8.16.2; न. सूँघना, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.29।

अवघ्रापण न. (अव + घ्रा + णिच् + ल्युट्) अश्व को प्रवर्ग्य-सम्भार को सुँघाने का कृत्य भा.श्रौ.सू. 11.2.11।

अवचन न. (जुहु से भिन्न करछुल के प्रयोग को दिखाने वाले) वचन का अभाव, का.श्रौ.सू. 1.8.44; किसी विधि का न होना, आप.श्रौ.सू. 9.1.7।

अवचृतेत् (अव + चृत् + वि.लि. प्र.पु. एक व.) (कृष्ण मृग की सींग को) दूर करना, भा.श्रौ.सू. 10.8.2; छोड़ देना (चाहिए), आप.श्रौ.सू. 10.13.3 (रु-उत्सृजेत्)।

अवच्छाद्य (अव + छद् + ल्यप्), मानव की स्वर्णिम अभिव्यक्ति को झुकाकर (अर्थात् ढककर), का.श्रौ.सू. 17.4.10।

अवट पु. (यज्ञीय यूप = स्तम्भ को गाड़ने अथवा स्थिर करने के लिए) भूमि में एक विवर = रन्ध्र, (= यूपावट), बौ.श्रौ.सू. 4.20; आप.श्रौ.सू. 7.9.9; उखा के लिए छिद्र, 15.3.20; इसका नाम 'उपरव' भी रखा गया है, 11.12.5।

अवतक्षण न. लकड़ी की फर्री (यज्ञीय यूप से छीली गयी) आप.श्रौ.सू. 3.3।

अवतम् (अव + तम्) ओम् (प्रणव) का उच्चारण करने के बाद साँस को रोके रखना, मन्त्र के अन्त में जब तक साँस बाहर न निकल जाय, आप.श्रौ.सू. 8.18.9।

अवतान न. 'शहस्राणि सहस्रशो---(तै.सं. 4.5.11 अ-क) के साथ शतरुद्रिय होम में दी जाने वाली 10 आहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.1.4, आप.श्रौ.सू. 17.11.4।

अवदधाति (अव + धा + लट् प्र.पु.ए.व.), (अग्निहोत्र-हवणी = करछुल) पर हाथ की हथेली को रखता है; अर्थात् हाथ को इस प्रकार रखता है कि हथेली नीचे की ओर रहे, भा.श्रौ.सू. 6.13.14।

अवदान न. (अव + दो + ल्युट्), द्रव्य को काटने का कृत्य, विशेषत: पुरोडाश को, और इस प्रकार काटा हुआ (अवखण्डित) अंश भी, का.श्रौ.सू. 1.9.6; काटे गये अंश का आकार अँगूठे की प्रथम जोड़ (अङ्गुष्ठ-पर्व) के आकार का होता है, आप.श्रौ.सू. 2.18.9; पुरोडाश के बीच के हिस्से में तीन अंगुलियों को गोदकर अवदान लिया जाता है किन्तु केवल मांसल भाग का प्रयोग करते हुए न कि नख से, 2.18.10; 'अवदान' पशु में पशु के हृदय, जिह्वा एवं अंगों में से काटे गये अंशों से युक्त होता है (अर्थात् अवदान में पशु के विभिन्न अंगों को काटा जाता है) ['अनवदानीय' वे अंश हैं जिनको काटा नहीं जाता है, बौ.श्रौ.सू. 11.5; तु. चतुरवत्त, पञ्चावत्त एवं षडवत्त; 'औपभृत' एवं 'जौहव' भी देखें]; (निरवदान) आहुति के लिए 'इडा' को अंशों में काटना, आप.श्रौ.सू. 12.25.8; [सममवदा—दो द्रव्यों में से स्वत: = अपने आप काटना, आप.श्रौ.सू. 2.20.3; अध्यवदानीय, जिसे काटना है, बौ.श्रौ.सू. 10.59]।

1. (गृह्यसूत्र में) यज्ञीय भोजन के (अवत्त) काटे गये अंश, करछुल (स्रुक्) से गृहीत (लिए गए), इन पर आज्य को उड़ेलते = छिड़कते हैं और अन्तत: आहुति दे दी जाती है, गौ.गृ.सू. 1.8.7 अथवा लोई को दो भागों में काटना, आप.श्रौ.सू. 7.4.8।

2. गाय के अंगों के काटे हुए भाग को पकाया जाता है और पकाये गये भोजन के गदले के साथ मिश्रित कर दिया जाता है, इसके बाद इसे अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, भव, महादेव एवं ईशान को अर्पित कर दिया जाता है, पा.गृ.सू. (शूलगव); वपा = चर्बी, पा.गृ.सू. 3.11.6-7 (पशुयज्ञ)।

अवदानश्रपणी स्त्री. (द्वि.) वपा को भूनने (पकाने) के लिए प्रयुक्त दो नोक वाली पैनी (सीख, सीखचा), मा.श्रौ.सू. 1.8.1.21 (पशुयाग)।

अवदाह्य वि. (अव + दह् + ण्यत्), (अग्निहोत्र में) जलायी जाने वाली (समिधा अग्निकाष्ठ =) मा.श्रौ.सू. 1.6.34।

अवदीपयति (अव + दीप् + णिच् लट् प्र.पु. एक.व.) (अग्नि को) जलाता है, अग्नि को लपटयुक्त करता है, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.19।

अवद्रवण न. (अव + द्रु + ल्युट्), नीचे उतरने का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 22.4; 23.14; 'अधिद्रवण' का उल्टा (विलोम)।

अवधूनन न. अव + धू + ल्युट्, हिलाकर (या झटक) कर साफ करना (झाड़ना), देखें का.श्रौ.सू. 2.4.2।

अवनर्दन न. अव + नर्द् + ल्युट्, अन्तर्माध्यमिक स्वर का समावेश करते हुए संगीतीय स्वर को खींचना (अनुस्वरति, सायण); तु. पञ्च.वि.ब्रा. 7.1.2 पर कैलेण्ड; ला.श्रौ.सू. 7.10.22; CH 466।

अवनेग पु. (अव+णिजिर् (निज्) + घञ्), अग्निहोत्र के अनन्तर अग्नि को सम्बोधित प्रार्थना (स्तुति), श्रौ.को. (सं.) 1.67।

अवनेजन न. (अव + निज् + ल्युट्), (जिस समय अग्निहोत्र-दुग्ध को आग पर चढ़ा दिया जाता है, अथवा जब इसे

अग्निहोत्र हवणी में लिया जा रहा हो उस समय) उचित एवं सङ्गत मन्त्रों के साथ हस्तप्रक्षालन (हाथ धोने) का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 6.3.11; न. हस्त-प्रक्षालन का, पा.गृ.सू. 2.6.19 (समावर्तन); साँपों को उनके लिए जल उड़ेलते हुए मार्जन, 2,14.11 (श्रवणा); **अवनिक्त** (अव + निज् + क्त) जल को उड़लते हुए स्वच्छ करने का कृत्य, 2.14.13।

अवधूनन

अवनेजनप्रवादा स्त्री. जिस समय अग्निहोत्र - दुग्ध को अग्नि पर चढ़ा दिया जाता है अथवा जिस समय इसे अग्निहोत्र हवणी में उड़ेल दिया जाता है, उस समय पढ़ी जाने वाली ऋचाएं, भा.श्रौ.सू. 6.3.11 (पहली चार ऋचायें विहव्य सूक्त की हैं, ऋ.वे. 10.128; तै.सं. 4.7.14; मै.सं. 1.5.7; आप.श्रौ.सू. 6.20.1)।

अवभृथ न. 'अवभृथ'-संज्ञक कृत्य के लिए आवश्यक द्रव्य, भा.श्रौ.सू. 14.20.11; 'अवभृथ' कृत्य के अन्तर्गत समाहित (अन्तर्भुक्त) सामग्रियां, आज्यस्थाली.....प्रतिवसनीय इत्यादि। बौ.श्रौ.सू. 8.19; ऋ.वे. 8.93.23 इसे एक पात्र के रूप में परिगणित कराता है; (शाब्दिक) जल को ले जाना अथवा जल में अवतरण (उतरना); सोम याग का अन्तिम शुद्धीकरण-स्नान। यह वरुणप्रघास से सम्बद्ध एक इष्टि है : इसके अन्तर्गत यजमान, यजमान की पत्नी एवं ऋत्विजों का किसी बहती हुई नदी अथवा हौज में स्नान करना (का.श्रौ.सू. 10.8.9), एवं विभिन्न यज्ञीय पात्रों का इनमें सोम का लेपन करके जल में तथा कृष्णमृगचर्म, योक्त्र आदि का चत्वाल (-संज्ञक गर्त = गड्ढे) में विसर्जन समाहित है आप.श्रौ.सू. 13.19.8-9; 21.12; का.श्रौ.सू. 10.8.24. यह साथ-साथ होने वाला कृत्य 'अवभृथ' नाम से जाना जाता है, बौ.श्रौ.सू. 8.19-20; आप.श्रौ.सू. 13.20.67. मार्ग में गाये जाने वाले साम को 'अवभृत साम' के नाम से पुकारते हैं, ला.श्रौ.सू. 2.12.1, इसका गान प्रस्तोता द्वारा किया जाता है। यह कृत्य जल में सम्पन्न होता है अग्नि में नहीं, निदा.सू. 11.2.28; अन्य कृत्यों में भी प्रयुक्त: चातुर्मास्य, आप.श्रौ.सू. 18.7.14.8-12; सौत्रामणि 19.4.6; अश्वमेध; का.श्रौ.सू. 20.22.5; (पार्वण) स्थालीपाक के बर्हिस् पर पात्र से जल उड़ेलते हुए समारोह की पूर्ति अथवा समापन, आश्व.गृ.सू. 1.10.25; श्रौ.प.नि. 98.493।

अवभृथ

अवभृथयजुस् न. (बहु.) जलावतरण के समय जपा जाने वाला यजुष् (मन्त्र) श्रौ.को. (अं) II.476।

अवभृथसामन् न. अवभृथ-संज्ञक जल के पास गमन करते समय गाया जाने वाला साम (सुर), श्रौ.को. (सं) II.478; 'अग्निम् होतारम्' ऋ.वे. 1.127.1 (पर प्रयुक्त साम)।

अवमृष्ट वि. (अव + मृज् + क्त), धारीदार बनाया गया (एक रेखा से चिह्नित); (उद्गाता का चमस), मा.श्रौ.सू. 8.14.1; तु. यज्ञायुधानि, पृ. 60।

अवर वि. निम्न श्रेणी का (व्रीहि-धान्य), जिसका प्रयोग पाक यज्ञ में नहीं किया जाता, आप.गृ.सू. 7.3।

अवरार्ध्य वि. कम से कम (तीन एकधना), भा.श्रौ.सू. 13.4.3; कम से कम संख्या में (छः) न्यूनतम (छः) संख्यामें; 'षड् अवरार्ध्यान् वत्सान् अपाकरोति', आप.श्रौ.सू. 1.2.1।

अवरोहण न. (अव + रुह् + ल्युट्), पाठ का एक विशेष प्रकार जिसमें (हंसः शुचिसद् इस ऋचा के) प्रथम तीन पादों का अर्धर्चवत्, चतुर्थ पाद को पदवत् पढ़ा जाता है एवं उसके अनन्तर 'मध्य' एवं 'ओम्' के बीच बिना साँस लिए, चतुर्थपाद के साथ अवसान होता है, श्रौत.ध.चि. 102।

अवलम्बककुष्ठ पु. समद्विबाहु (जिसके दोनों पक्ष समान हो), दक्षिणकोणीय त्रिभुज, मा.श्रौ.सू. 10.3.4.1; किन्तु आर.पी.कुलकर्णी (कोश) : एक आयत जिसके दो पक्ष समान हों।

अवलेखन न. अलंकरणात्मक विखण्डन अथवा केशबन्ध (चोटी), इत्यादि, श्रौ.को. (अं.) I.ii.676 (पा.टि. 2); 'आश्व.श्रौ.सू. गार्ग्यनारायणः केशप्रसाधनादीनि स्वैरकर्माणि अवलेखनशब्देन उच्यन्ते।'

अववर्ष् बरसना, आप.श्रौ.सू. 9.2.6 (यस्य अग्निहोत्रम् अव वर्षेत्)।

अववर्षण न. (अव + वृष् + ल्युट्), (किसी चीज पर) बरसना (अर्थात् दीक्षा ऐसी होनी चाहिए कि उस समय उसपर वृष्टि न हो) मा.श्रौ.सू. 2.1.2.32।

अवषट्कर्तृ वि. वह व्यक्ति जो वषवट्कार नहीं करता अर्थात् वषट् का उच्चारण नहीं करता, बौ.श्रौ.सू. 7.11:14।

अवषट्कार वि. वषट्कार से रहित, का.श्रौ.सू. 5.10.5; शां.श्रौ.सू. 2.9.3।

अवसर्जनीया स्त्री. (बहु.) शरीर के दाहकर्म के अनन्तर पढ़ी जाने वाली, ऋचाएं (जिनकी संज्ञा चार है), के दाहकर्म के श्रौ.को. (सं.) I.8.9, 'अवसृज् पुनरग्ने' इत्यादि।

अवसान न. (अव + षो + ल्युट्), यति, विराम (पाठ में), आश्व.श्रौ.सू. 1.2.11।

अवसाय (अव + षो + ल्यप्), विराम लेकर अथवा यति ग्रहण कर, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.27।

अवसित न. अव + षो + क्त, विराम अथवा यति, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.8।

अवसृज् (अव + सृज्), (यूप से) सम्बन्ध-विच्छेद करना, मा.श्रौ.सू. 1.8.2.15।

अवसृष्टाग्नि (अवसृष्टः अग्निः येन यस्य वा) (वह व्यक्ति) जो (एक वर्ष तक) बिना अग्नि के रहता है, भा.श्रौ.सू. 5.18.3।

अवस्तात् क्रि.वि. पीछे की तरफ, पश्चिम की ओर, बौ.शु.सू. 2.22।

अवस्तीर्य (अव + स्तृ + ल्यप्) (उपरव-छिद्रों) के अन्दर पवित्र घास को डालकर, आप.श्रौ.सू. 11.12.5 (रु. अवस्तरणम् अवटोदरस्तरणम्)।

अवस्नाता स्त्री. (अव + स्ना + क्त + टाप्), वह स्त्री जिसने स्नान कर लिया हो, अर्थात् जिसने यौवन प्राप्त कर लिया है; 'अनवस्नाता' उन लड़की को कहा जाता है जिसने अभी यौवन प्राप्त नहीं किया है, न्यग्रोध की शाखा = टहनी को कूटने के लिए वह अनुमत है, आप.गृ.सू. 14.11. (पुंसवन)।

अवस्राव पु. (अव + स्रु + घञ्) (शाला से) जल की निकासी (जल को प्रणाली द्वारा बाहर करना), बौ.श्रौ.सू. 12.4; -मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 13.18.10 (I.27.7)।

अवहनन न. (अव + हन् + ल्युट्), उलूखल में धान को कूटना (निष्तुषीकरणार्थ), का.श्रौ.सू. 5.8.14।

अवहन्त्री स्त्री. (अव + हन् + तृच् + ङीप्), अन्न को फटकने वाली, बौ.श्रौ.सू. 1.6 (एक स्त्री)।

अवहरति (अव + हृ + लट् प्र.पु.ए.व.) उखा पात्र को नीचे उतारता है (अर्थात् यजमान के गले से रज्जु को हटाता है और इसे नाभि से निम्नतर भाग में लाता है), का.श्रौ.सू. 16.5.20।

अवाचीनपाणि वि. (अवाचीनः पाणिः यस्य) (वह व्यक्ति) जो पितरों को हाथ को नीचे उलट कर पिण्ड देता है, हि.गृ.सू. 2.12.3।

अवाचीनम् क्रि.वि. निम्नाभिमुख, नीचे की ओर अर्थात चञ्चु से चषक तक (लेपम् अवमार्ष्टि), भा.श्रौ.सू. 6.12.7 (अग्निहोत्र)।

अवाङ्ननपिष्टा वि. (स्त्री.) अत्यन्त बारीक बनाई गयी (शर्करा) (प्रवर्ग्य), बौ.श्रौ.सू. 9.1:5; टीका-श्लक्ष्ण-पिष्टा (विव.),

क्षुण्णपिष्टा, केश; अञ्चनादपि सूक्ष्मं पिष्टः, बौ.श्रौ.सू. 5.5; 9.1.3; 10.1; 10.5।

अवाञ्चनम् क्रि.वि. नीचे की तरफ अञ्चन (लेपन) करना, बौ.श्रौ.सू. 10.13।

अवान्तरदिक्त्रक्ति वि. अवान्तर दिशाओं में कोनों से युक्त, का.श्रौ.सू. 5.8.21 (पित्र्या वेदि)।

अवान्तरदीक्षा स्त्री. अन्तर्माध्यमिक (अवान्तर) दीक्षा, भा.श्रौ.सू. 12.2.1; आप.श्रौ.सू. 11.8.3 ('सुवरभिविख्येषम्' के साथ दक्षिण-हविराधान से 'विहार' को देखने के अनन्तर अवमुक्त किया जाता है, वास्तव में जिस समय 'सोमप्रणयन' सम्पन्न हो जाता है = समाप्त हो जाता है), बौ.श्रौ.सू. 9.19-20 (श्रौ.को. (सं. पृ. 512-13 में उद्धृत); 'शान्तिं कृत्वा प्रवर्ग्यदेवताभ्य आसनानि कल्पयति---चतस्रः औदुम्बरीः समिधो अभ्याधापयन् वाचयति पृथिवी समिदित्येतैः प्रतिमन्त्रम्----देवता उपतिष्ठते-----संवत्सरमेत् व्रतं चरेत् उपनयन्ति, श्रौ.को. (सं.) II.530 प्रथम प्रवर्ग्य के पूर्व, विसर्जयति II.546 'अग्ने व्रतपते' इत्यादि; एषा वै परोवरीयसी अवान्तरदीक्षा (चतुरोऽग्रेः अथ त्रीनथ द्वावथैकम्), श्रौ.को. (सं) II.63।

अवान्तरदेश पु. उप-दिशा, आप.श्रौ.सू. 11.11.1 (उपरवान् प्रादेशमुखान् प्रादेशान्तरालान् करोति)।

अवान्तरशफ न. अन्तर्माध्यमिक (मध्यवर्ती) खुर, पदान्तःखुर-स्थाने, विव. पदस्थाने शफस्थानस्य द्वेधा विभक्तस्य दक्षिणार्ध इति यावत्, बौ.श्रौ.सू. 10.3 पर टीका।

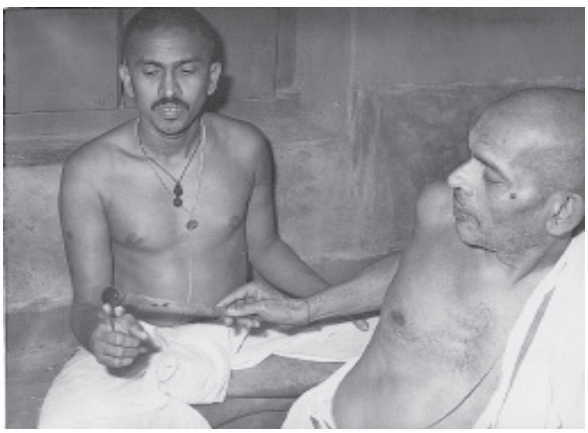

अवान्तरेडा

अवान्तरेडा स्त्री. (इष्टि में आज्य की) मध्यवर्तिनी इडा, देखें इडा, देखें—श्रौ.प.नि. 33.274।

अवालम्ब पु. अक्ष का सहारा, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.20।

अवाश्यमान (वि. नञ् + वाश् + शानच्, शोर न मचाता हुआ), न चिल्लाता हुआ (आलभ्य पशु), का.श्रौ.सू. 6.5.17. तु. 'विभ्यसन्तो ववाशिरे', निरुक्त में उद्धृत।

अवि पु. भेंड़, मेष (अज, के विपरीत, मेढ़ा), का.श्रौ.सु. 15.10.3; आप.श्रौ.सू. 19.27.4; ला.श्रौ.सू. 8.6.15।

अविद्वस् वि. (नञ् + विद् + वसु 'विदेः शतुर्वसुः', पा.7.1.36) अविद्वान्, अविज्ञ (प्रथम तह में 'स्वयमातृण्णा' के स्थापन में योगदान देने वाला), मा.श्रौ.सू. 6.2.1.13।

अविधान न. (नञ् + वि + धा + ल्युट्), कर्मकाण्डीय निर्देश (विधान) का अभाव, ला.श्रौ.सू. 4.10.19; द्रा.श्रौ.सू. 12.2.18; का.श्रौ.सू. 1.7.7।

अविधृति वि. (न विद्येते विधृती यस्याम् सा) (दो) विधृतियों (दर्भयत्र) से अयुक्त, का.श्रौ.सू. 5.8.30 (न विद्येते विधृती यस्याम्) (पित्र्येष्टि)।

अविप्रतिपत्ति स्त्री. (न विप्रतिपत्तिः, नञ् + वि + प्रति + पद् + क्तिन्) विरोधवचन अथवा आक्षेप (आपत्ति) का न होना, का.श्रौ.सू. 1.4.9।

अविप्रतिषेध पु. (नञ् + वि + प्रति + सिध् + घञ्) इनकार अथवा विरुद्धवचन (प्रतिषेध) का अभाव, ला.श्रौ.सू. 6.3.11।

अविमोकम् क्रि.वि. बिना मुक्त किये, बिना छोड़े, जै.ब्रा. II. 393।

अविवाक्य न. द्वादशाह याग के दसवें (11रहवें) दिन का नाम (24 ऋचाओं की प्रशस्ति = चतुर्विंश स्तोम से युक्त अग्निष्टोम), मा.श्रौ.सू. 7.2.3.1; शां.श्रौ.सू. 10.12.1; (अग्निष्टोम के लिए तैंतीस ऋचाओं वाले स्तोम); जिस पर किसी प्रकार संशोधन अथवा भर्त्सना अनुमत नहीं है; वि. (शाब्दिक, वह दिन) जब (अन्य व्यक्ति द्वारा की गई गलती के बारे में प्रतिभागी द्वारा) कोई निर्देश देय नहीं होता, आप.श्रौ.सू. 21.9.1, देखें चिन्नस्वामी, पृ. 126।

अविवेकम् क्रि.वि. बिना हटाए, टूटे हुए दानों को पूर्ण (अक्षतः न टूटे हुए) दानों से अलग न करते हुए, भा.श्रौ.सू. 1.7.7 (पिण्डपितृ)।

अविवेचम् क्रि.वि. निष्तुषीकृत (भूसी हटाए हुए) एवं

अतुषीकृत (भूसी न हटाए हुए) को अलग किए बिना, आश्व.श्रौ.सू. 2.6.7।

अविसृष्टहिंकारा वि. (न विसृष्टः हिंकारः यस्याम्) (स्त्री.) 'विसर्ग' से हीन हिंकार वाली, ला.श्रौ.सू. 1.12.10; द्रा.श्रौ.सू. 3.4.24।

अविहृत वि. (नञ् (अ) वि + हृ + क्त), (न विहृतः) व्यवधान हीन, जै.ब्रा. II.47।

अवृत्त वि. (बहु.) (अ + वृत् + क्त), न दुहराया हुआ, जिसका क्रम उलटा है, मा.श्रौ.सू. 7.2.5.6,8; वर्ष के (द्वितीय अर्ध) में 'स्वरसामन् दिवस एवं 'अभिप्लव' ऋतु = काल के दिन उलट दिये जाते हैं।

अवेक्षण न. (अव + ईक्ष् (दर्शने) + ल्युट्), पेय-द्रव्य को निरखने (देखने) का कृत्य, (चरु के गर्म पेय में उड़ेले गये द्रवीभूत नवनीत = घृत में अध्वर्यु अपनी स्वयं की छवि को देखता है), आप.श्रौ.सू. 13.14.2, मैत्रावरुणग्रह-भक्षणम्, आश्व.श्रौ.सू. 5.6.8।

अवेदि वि. (नास्ति वेदिः यस्य) बिना किसी उच्चतर वेदि वाला, का.श्रौ.सू. 15.10.9 (सौत्रामणी में आहवनीय दक्षिणस्थ महावेदि पर किसी उच्चतर वेदि से रहित होती है)।

अवेष्टि स्त्री. (अव + यज् इष् वा + क्तिन्) दिशाओं पर आरोहण के लिए तनूकरण में दिशाओं के लिए प्रायश्चित्तिक (प्रसादात्मक) इष्टि (दिशो व्यास्थापयति), आप.श्रौ.सू. 18.14.17; (राज); यह एक इष्टि, तु. हीस्टरमैन, 196-9; इसे एक स्वतन्त्र कृत्य भी समझा जाता है, मी.सू. 2.3.3।

अवोक्षण न. (अव + उक्ष् (उक्षी सेचने) + ल्युट्) छिड़कना, उक्षण करना, श्रौ.प.नि. 2.4.1.36 (होता एवं अन्य दोनों मैत्रावरुण प्याले का आनन्द लेते हैं)।

अव्यतिहारम् (नञ् + वि + अति + हृ + घञ् + अम्) क्रि.वि. पात्रों कि अदला-बदली किये बिना, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.36 (दोनों-होता एवं अन्य, मैत्रावरुण के प्याले का आनन्द उठाते हैं।

अव्यत्यादधत् वि. (अ (नञ्) वि + अति + आ + धा + शतृ), (आवरण समिधिओं को (पर्वों = जोड़ों पर) उभरने न देता हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.9।

अव्यन्त वि. (वेदि की) सीमारेखा पर पड़ा हुआ, अर्थात् वेदि के मध्य में पड़ी हुई घास आप.श्रौ.सू. 1.15.1 (धू. अविगतान्तं मध्यवर्ति)।

अव्यवहित वि. (अ + वि + अव + धा + क्त) पारिवारिक सम्बन्ध में अलग न किया हुआ (वृणीते समानगोत्रान् अव्यवहितान् सकृत् सकृत् व्यवहितान् प्रतिपुरुषम्), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.18।

अव्यवानम् क्रि.वि. पूरी तरह साँस न लेते हुए, मा.श्रौ.सू. 5.1.3.11 (होता यजति वाजिनस्य)।

अव्यवाय पु. (धिष्ण्यसंज्ञक अंगीठियों=कुण्डों) के बीच गमन का अभाव, अन्तःरोधन का अभाव, का.श्रौ.सू. 8.7.11; ला.श्रौ.सू. 1.2.15; द्रा.श्रौ.सू. 1.2.21।

अव्यावृत्त वि. (नञ् + वि + आ + वृतु वर्तन + क्त) न मरोड़ा हुआ, आप.श्रौ.सू. 7.1.12. (यूप वृक्ष)।

अव्याहरत् वि. (अ + वि + आ + हृ + शतृ), आवाज न करने वाला (वृषभ), का.श्रौ.सू. 5.6.33 (चातुर्मास्य में दर्वीहोम)।

अव्युप्तवह वि. स्कन्ध पर बाल से हीन, वह व्यक्ति जिसके कन्धे पर बाल न उगा हो, आप.श्रौ.सू. 18.10.11 (अश्व); न जुता हुआ, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.41 (काम्यपशु की निर्धारित दक्षिणा)।

अव्युष्टा वि. (अ + वि + उष् (वस्) + क्त + टाप्) उषाकाल से हीन, दिवसस्फुरण अर्थात् दिन के प्रकाश का अभाव अग्निवे.गृ.सू. 3.7.3; 4।

अव्यूढ वि. (नञ् + वि + वह् + क्त) छन्दों के स्थान या क्रम-परिवर्तन से हीन (अहीन याग), का.श्रौ.सू. 12.6.16।

अव्रण वि. (नास्ति व्रणः यस्मिन् यस्य वा) (कृक्ष के) ग्रन्थियों अथवा उभारों से हीन, का.श्रौ. 6.1.8 (टीका - व्रणं ग्रन्थिः), यूपवृक्ष।

अव्रत्य वि. (न व्रत्यः) वि. किसी दीक्षावर्ती के द्वारा न बोले जाने योग्य (शब्द), का.श्रौ.सू. 7.5.1।

अशन न. (अश् भक्षणे + ल्युट्) व्रत-ग्रहण के पूर्व अथवा पश्चात् भोजन ग्रहण करना, आप.श्रौ.सू. 4.2.8; 4.3.2 (दर्शः यजमान के कर्तव्य)।

अशनिहत न. (अशनिना हतम्) उस वृक्ष का काष्ठ जिस पर आकाशीय बिजली गिरी हो, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.18 (आधान)।

अशमीगर्भ पु. (शमी गर्भः यस्य स शमीगर्भः, न शमीगर्भः अशमीगर्भः) उस से इतर शमी जिसके भूण के स्रोत के रूप में हो (अश्वत्थ का विशेषण), आप.श्रौ.सू. 5.1.3; वाजसनेय के मतानुसार इस प्रकार के अश्वत्थ से अरणियों का निर्माण हो सकता है।

अशाखाज वि. (शाखायां जायते, शाखाजः, शाखा + जन् + ड, न शाखाजः अशाखाजः), जो किसी शाखा से उत्पन्न या उगा हुआ न हो (अपितु सीधे पृथ्वी से), आप.श्रौ.सू. 7.1.12 (यूपवृक्ष)।

अशिता वि. (स्त्री.) (अश + क्त + टाप्), (नवान्न से) खिलाई गयी, अर्थात् जिसे नया अन्न खिलाया गया है, का.श्रौ.सू. 4.6.13; (आग्रयण) इष्टि का अनुष्ठान एक अग्निहोत्र के रूप में इस प्रकार की गाय के दुग्ध से करना चाहिए।

अशिपिविष्ट वि. (न शिपिविष्टः), जो चर्म रोग से ग्रस्त न हो, बौ.श्रौ.सू. 2.3; कोश-शिपिविष्ट 2.3 : दुश्चर्मा, विवरण; केशरहितशिराः, वेङ्क.। निघण्टु एवं निरुक्त में शिपिविष्ट को विष्णु का विशेषण माना गया है। यास्क ने शिपिविष्ट का शोभन एवं अशोभन दोनों प्रकार का अर्थ किया है।

अशून्यासन न. वह आसन जो खाली न हो ('ब्रह्मा' के आसन के बारे में कहा गया है), मा.श्रौ.सू. 5.2.15.9।

अशौच न. किसी व्यक्ति की मृत्यु के कारण उत्पन्न अशुद्धि, जिसमें सम्बन्धियों को रात्रि के समय जब वे अन्त्येष्टि करके तुरन्त लौटे हों भोजन नहीं पकाना चाहिए। तीन दिन तक वे खनिज अथवा साधारण नमक नहीं खायेंगे। जब महासुरों (माता-पिता, गुरु जिसने उपनयन संस्कार कराया एवं वेद का अध्यापन किया) में कोई मर जाय तो उस समय किसी भी प्रकार के उपहार का वितरण अथवा वेद का अध्ययन नहीं होगा। गुरु का सपिण्ड जो कि किसी अविवाहित स्त्री के सम्बन्धों का सपिण्ड न हो, की मृत्यु के बाद 10 दिन तक यह नियम (निषेध) लागू होता है, अन्य गुरुओं, असपिण्ड सम्बन्धी, अविवाहित स्त्री एवं बालक की मृत्यु के बाद तीन रात्रि तक, सतीर्थ्य एवं समानग्रामवासी श्रोत्रिय की मृत्यु के बाद एक दिन (उपर्युक्त नियम लागू होता है, आश्व.गृ.सू. 4.4.14-27. पा.गृ.सू. 3.10.4 के अनुसार यह एक अथवा 3 रात तक चलता है, यदि दो वर्ष से कम उम्र का बच्चा मरता है, तो माता-पिता अशुद्ध होते हैं, पा.गृ.सू. 3.10.2; इस दशा में शव को गाड़ने (दफ़न करने) का विधान किया गया है, पा.गृ.सू. 3.10.5।

अश्मन् पु. वह पत्थर जिस पर अनाज को उड़ेला जाता है, चक्की का पत्थर (जाँत), आप.श्रौ.सू. 1.20.2; चार अथवा कुछ के मतानुसार 5 पत्थर का नाम जिनमें प्रत्येक एक बित्ता लम्बा, ऊपर वाले अन्तिम भाग में संकरा होता है। इनका उपयोग सोम-निष्पीडन में किया जाता है, 12.2.15; ईंटों के साथ-साथ रखे गये 4 पत्थरों के बारे में भी कहा गया है, 17.9.5. (चपन)।

अश्मारोहण न. जिस समय वर वधू को तीन बार अग्नि के चारों ओर (स्वयं आगे चलते हुए) फिराता है, उस समय पत्थर पर चढ़ने अथवा उसको दबाने का कृत्य; प्रत्येक आवृत्ति में अग्नि के उत्तर की ओर रखे गये पत्थर पर पुरोहित उसे चलवाता है। वह 'शत्रुओं को दबाने (कुचल डालने) को कहता है', आश्व.गृ.सू. 1.7.7; शां.गृ.सू. 1.13.12; पा.गृ.सू. 1.7.1. गौ.गृ.सू. 2.2.3; हि.गृ.सू. 1.19.8; आप.श्रौ.सू. 5.3.7 (आस्थापन)।

अश्रोत्रिय वि. (न श्रोत्रियः) (वह व्यक्ति) जिसने वेद का पाठ अथवा अध्ययन नहीं किया है, का.श्रौ.सू. 1.15।

अश्वचरित न. 'इङ्काराय स्वाहा' (तै.सं. 7.1.19) के साथ अश्वमेध में दी जाने वाली घृताहुतियों एवं 'अज्ञेताय स्वाहा', इत्यादि (तै.सं. 7.3.17) अश्वरूप आहुतियों का नाम; कैलेण्ड का अनुवाद drei und achtrig = 'अपानाय स्वाहा' इत्यादि तै.सं. 7.1.13 के साथ संख्या में तिरासी। ये आहुतियाँ स्विष्टकृत् के पूर्व दी जाती हैं तु. बौ.श्रौ.सू. 15.6:22; हि.श्रौ.सू. 14.2.3; वारा.श्रौ.सू. 3.4.1.33।

अश्वतर पु. खच्चर, मा.श्रौ.सू. 11.2.1; पुरुष गर्दभ एवं घोड़ी के सम्पर्क से उत्पन्न (उस समय इन्हें दक्षिणा के रूप में दे दिया जाता है, जब सहस्र अथवा सर्ववेदस् दक्षिणार्थ दी जाती है), आप.श्रौ.सू. 1.3.5.1-3।

अश्वत्थ पु. एक पात्र का नाम, ऋ.वे. 1.135.8; एक यज्ञीय वृक्ष (पीपल) का नाम, देखें—अरणि।

अश्वपदिक पु. वह स्थान जहाँ अश्व अपना पैर रखता है, प्रज्वलित की गयी अग्नि, बौ.श्रौ.सू. 2.7।

अश्वपर्शु पु. (अश्वस्य पर्शुः) घोड़े की पँसुली, का.श्रौ.सू. 1.3.5 (देखें - अनडुत्पर्शु, वही) जिसे काटने के औजार के रूप

में प्रयुक्त किया जाता है; अश्व के बगल की हड्डी, आप.श्रौ.सू. 1.3.2 (असिद के विकल्प के रूप में)।

अश्वपूर्वा वि. सामने घोड़े के सञ्चरण से युक्त, का.श्रौ.सू. 17.3.21 (चितिं हृत्वा) चयन; 'अश्वपूर्वां चितिं' हृत्वा पुच्छाद् पुच्छाद्दक्षिणं निदधाति।

अश्वप्रथम वि. (अश्वः प्रथमः यस्मिन्) जिसमें अश्व प्रथम स्थान पर हो, आप.श्रौ.सू. 16.2.3; देखें - 'गर्दभप्रथम' उसी में (उखाकरण)।

अश्वमेध पु. अश्वमेध-संज्ञक यज्ञ, ऋग्वेद 1.162 एवं 163 में अंकित। इस यज्ञ का अनुष्ठान सम्प्रभु (सार्वभौम) अथवा मुर्धाभिषिक्त राजन्य, जो अभी सार्वभौम न हो, करता है, आप.श्रौ.सू. 20.1.1. यह यज्ञ मार्च-अप्रैल (चैत्र) में सम्पन्न होता है 20.4; किन्तु काल भिन्न-भिन्न है, का.श्रौ.सू. 20.1.2-3. यह तीन सवन दिनों (की मुख्यता) वाला सोम याग है, किन्तु उपक्रमात्मक (प्रारम्भिक) कृत्य एक वर्ष से अधिक अथवा दो वर्ष तक बढ़ा दिये जाते हैं। वस्तुतः यह पशुयागों, सोम एवं विभिन्न अन्य लोकप्रिय वैशिष्ट्यों का सम्मिलित रूप है। इसके प्रतिभागी राजा के अतिरिक्त उसकी चार पत्नियां, 400 सहायक एवं बहुत से ऋत्विज् होते हैं। प्रारम्भिक कृत्यों के अनन्तर, एक विशिष्टगुणोपेत अश्व का चयन किया जाता है, का.श्रौ.सू. इस अश्व को स्नान कराया जाता है, उस पर जल छिड़का जाता है एवं उसे एक वर्ष के लिए (इस दौरान उसे सहवास नहीं करने दिया जाता) 400 रक्षकों के संरक्षण में, जिनमें 100 राजपुत्र भी सम्मिलित होते हैं, पूरे देश में भ्रमणार्थ छोड़ दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 20.5.13. इस अवधि के दौरान स्तुत्यात्मक सूक्तों से राजा का मनोरञ्जन किया जाता है एवं विभिन्न इष्टियों, धृति आदि का अनुष्ठान किया जाता है। वर्ष के अन्त में अश्व वापस लौटता है और तब प्रधान कृत्यों का सम्पादन किया जाता है : एक पशुयाग, बारह दिन तक चलने वाली दीक्षा, वेदि की माप, द्वादश उपसद् दिवस जिनके बाद 3 सुत्या दिन होते हैं। सवन का प्रथम दिन एक सामान्य अग्निष्टोम है। दूसरा दिन सबसे अधिक रोचक होता है : अश्व को तालाब के पास ले जाता है, रानियों द्वारा उसका लेपन (अञ्जन) होता है और उसे 101 सोने की लड़ियों से सजाया जाता है। इसके बाद बृहत् पशुयाग का अनुष्ठान किया जाता है। अश्व को उसका गला घोंटकर मार डाला जाता है। रानियां मरे हुए आलभ्य के चारों ओर गमन करती हैं और अपने वस्त्रों से उस पर हवा करती हैं एवं अपने बालों को ढीलाकर अपने बाम हस्तों से अपने दक्षिण जघनों को पीटती है (जैसा की विलाप करने वाले करते हैं, भा.पि.मे 1.2.15)। मुख्यरानी (पट्टमहिषी-पटरानी) मृत अश्व के बगल में एक लबादे के आवरण के नीचे लेट जाती है। वह इसके साथ (मृत अश्व के साथ) संभोग करती है और इसे गाली देती है, आप.श्रौ.सू. 20.18.2-4; का.श्रौ.सू. 20.6.15-17. ऋत्विज् एवं रानी आपस में अश्लील वार्ता आदान-प्रदान करते हैं, 18. इसके बाद ऋत्विज् एवं यजमान के बीच में एक प्रहेलिकात्मक वार्तालाप (ब्रह्मोद्य) सम्पन्न होता है। अश्व एवं अन्य पशुओं को काट दिया जाता है एवं उनकी आहुति दे दी जाती है। सवन का तृतीय दिन एक अतिरात्र है। अवभृथ अश्वमेध की समाप्ति की सूचना देता है अर्थात् अवभृथ के साथ यह याग समाप्त होता है। इस यज्ञ की दक्षिणा की राशि काफी भारी-भरकम है। चारों प्रधान ऋत्विजों में प्रत्येक को 48000 गाये दक्षिणा-स्वरूप प्रदान की जाती हैं, ला.श्रौ.सू. 9.10.19-11.4; का.श्रौ.सू. 20.4.27-28।

अश्वरथ पु. अश्व का रथ, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.3।

अश्वशफ न. (अश्वस्य शफम्) घोड़े का खुर, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.15 (अश्वमेध के पत्नीसंयाज आहुतियों को घोड़े के खुर के साधन से ही दिया जाता है)।

अश्वशफबुध्न वि. (अश्वशफः इव बुध्नः यस्य) निम्नभाग (तल) में घोड़े के खुर के आकार वाला (ऋतुपात्र) (अर्थात जिसका तल घोड़े के खुर के आकार का हो), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.5; तु. यज्ञायुधानि, पृ. 51।

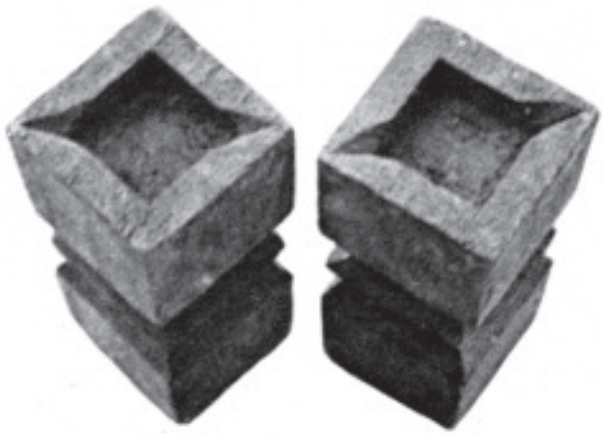

ऋतुपात्र

अश्वसंक्रन्दन वि. (अश्वस्य संक्रन्दनम्) (अश्वमेध में घोड़ी = अश्वा से समीप) घोड़े का हिनहिनाना, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.14।

अश्वसूक्त न. (अश्वस्तावकं सूक्तम्) तै.सं. 4.6.7.8 के क्रमशः तीन अनुवाकों 'यदक्रन्दः------', 'मा नो मित्रो वरुणो अर्यमा' एवं 'वाजिनं परिपश्यन्ति' इत्यादि से युक्त अश्व की प्रशंसा वाले सूक्त का नाम। इसे एक 'साम' के नाम के रूप में स्वीकार किया गया है, आप.श्रौ.सू. 6.19.9; टीका; रु.; देखें श्रौ.को. (सं.) II. 204 'यदिन्द्राह यथा', ऋ.वे. 8.14; ऐ.आ. 5.2.5; जब वपा का होम (वपाहोम) होता है उस समय प्रस्तोता 'द्वारा' इसे गाया जाता है।

अश्वस्तोमीय पु. अश्व के प्रशंसा वाली आहुति (इनकी संख्या 16 है, एवं ये आहुतियाँ अश्वमेध के द्वितीय दिवस पर दी जाती हैं), मा.श्रौ.सू. 9.2.5.19।

अश्विनोर्व्रत न. (द्वि.) प्रर्वग्य में घर्माहुति के अनन्तर उद्गाता द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.34; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.38।

अषडुत्तरिन् वि. छः की वृद्धि द्वारा न प्राप्त किया गया (स्तोम), जै.ब्रा. III.324।

अषाढा

अषाढा स्त्री. आप.श्रौ.सू. 16.1.2 पर धूर्त टीका के अनुसार एक ईंट का नाम [वैखा.श्रौ.सू. में एवंविध पाठ है—'आषाढायाम् अधिकृत्य ० एके'; वारा.श्रौ.सू. 'आषाढाभ्याम् इत्येके' आषाढा इष्टका की ओर इंगित करता हुआ प्रतीत होता है]।

अष्टका स्त्री. प्रत्येक पूर्ण चन्द्र (पूर्णिमा) के पश्चात् आठ दिन, हेमन्त एवं शिशिर ऋतुओं अर्थात् मार्गशीर्ष, पौष अथवा तैष, माघ एवं फाल्गुन [के चार महीनों (अथवा पूर्णिमा के बाद किसी महीने) के कृष्ण पक्ष की 8 वीं तिथि का गृह्य कृत्य]। अष्टका के नाम से अभिज्ञात यह कृत्य मृत पूर्वजों (पितरों) के लिए अनुष्ठित किया जाता है। सामान्यतया इसकी संख्या तीन है, शां.गृ.सू. 3.12; पा.गृ.सू. 3.3; इसका अनुष्ठान मार्गशीर्ष जिसे आग्रहायणी भी कहा जाता है, पौष (तैष) एवं माघ मास के कृष्णपक्ष की आठवीं तिथि को सम्पन्न किया जाता है। (एक के विकल्प के साथ 4 महीने भी), आश्व.गृ.सू. 2.4.1-2. अष्टका को तीन दिन में भी समेटा जा सकता है; माघ मास के कृष्णपक्ष की सातवीं, आठवीं एवं नवमी तिथि (संक्षिप्तीकृत 3 दिन) अथवा केवल एक दिन अर्थात् मघा की अष्टमी (अर्थात् अष्टका को एक दिन में भी संक्षिप्तीकृत किया जा सकता है), बौ.गृ.सू. 2.11.1-4. अन्तिम उल्लिखित तिथि (दिन) पर किया जाने वाला कृत्य एक मात्र एकाष्टका है, ऐसा हि.गृ.सू. 2.14.2 एवं कुछ विविधताओं के साथ भा.गृ.सू. 2.15 की मान्यता है। देवताओं के विषय में सूत्रकारों के मत भिन्न-भिन्न हैं : विश्वेदेवाः, अग्नि, सूर्य, पितर्, पशु, इत्यादि। आश्व.गृ.सू. 2.4.12, यद्यपि यह कृत्य पृथक्तया एवं पूर्णतया पितरों के लिए अभिप्रेत है (तु. टीकाकार लोग)। सदृशतया (साधारणतया) आहुति में भेद है : 3 अ. के लिए प्रथम में पक्व शाक, द्वितीय में मांस (वपा) एवं अन्तिम में अपूप (पुआ)। कृत्यों के ठीक उसी क्रम में वे (कृत्य) अपूप, मांस एवं शाक से सम्पन्न होते हैं, पा.गृ.सू. 3.3.3. नाना प्रकार के अनाज, पुरोडाश, चावल एवं पशुओं की आहुति दी जा सकती है, कौशि.सू. 138.2. इस कृत्य में पशुओं की विभिन्नता की सूची लम्बी है—मृग, वृषभ, खड्ग (गैंडा) वराह (सूकर), अश्वा, कपोत (कबूतर)—यदि कोई गाय, अजा अथवा भेड़ा (मेष) उपलब्ध न हों; कुछ झुरमुट (झाड़ियों) एवं गाय के लिए जो घास है, उसकी भी आहुति दी जा सकती है, बौ.श्रौ.सू. 2.11.51-61. अष्टका का एक दिन उपक्रमात्मक है (कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि) : सायंकाल एक होम का अनुष्ठान किया जाता है एवं ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। इस दिन चार कपाल भर चावल का पुरोडाश उबाला अथवा तैयार किया जाता है। आज्यभाग का अग्नि पर क्षरण किया जाता

है, उसके बाद पुरोडाश के एक भाग की अग्नि में आहुति दे दी जाती है। पुरोडाश के शेष भाग को आठ भागों में विभक्त कर ब्राह्मणों को दे दिया जाता है। अष्टका दिन पर एक गाय को समर्पण 'उपाकरण' के अनन्तर मार दिया जाता है; पाँच आज्याहुतियाँ दी जाती हैं; उपस्तरण के अनन्तर वपा को पकाया जाता है। उबाले गये चावल एवं गाय के मांस (मांसौदन) के साथ-साथ पलाश-पत्र में 'अभिघारण' को सम्पन्न किया जाता है; पिष्टान्न एवं घृत की आहुति भी दी जाती है। स्विष्टकृत् एवं पिण्डार्पण मासिकश्राद्धवत् (अर्थात् जिस प्रकार मासिक श्राद्ध में) किये जाते हैं। वैकल्पिक रूप से अपूप-होम की विधि से दधि-होम भी किया जा सकता है, आप.गृ.सू. 21.10-13। इसके बाद अन्वष्टका का क्रम आता है। अपूप अष्टका आग्रयण के अष्टम दिन होता है, गौ.गृ.सू. 3.10.9, जिसमें अपूप का होम होता है, अष्टका उत्कृष्ट (एकाष्टका) माघ की पूर्णिमा के पश्चात् आठवाँ दिन है, निस्सन्देह नव वर्ष से पूर्व आठवां दिन, आप.श्रौ.सू. 6.30.7; तीन व्यष्टकायें महीने के कृष्ण पक्ष के तीन दिन हैं, ला.श्रौ.सू. 9.3.8; अ.वे. 15.16.2 भी देखें।

अष्टम वि. अनाज की आहुति के लिए ''आठवीं'' लघु टोकरी का नाम, बौ.श्रौ.सू. 15.16।

अष्टरात्र वि. आठ रात्रियों तक चलने वाला अहीन के प्रकार वाला सोम याग (जिसमें दो अग्निष्टोम समाहित हैं), आप.श्रौ.सू. 22.23.7; मी.सू. 12.3.1।

अष्टवर्ग वि. रस के निस्सारणार्थ (प्राप्त्यर्थ) सोम लता पर आठ प्रहार से युक्त (इकाई)। तीन आवृत्ति में प्रत्येक के आठ प्रहार होते हैं (अर्थात् प्रत्येक आवृत्ति-तीनों में आठ प्रहार होते हैं), का.श्रौ.सू. 9.4.16।

अष्टाकपाल वि. (पुरोडाश की तरह पुरोडाशवत्) आठ कपालों पर पकाये गये (अपूप के बारे में उक्ति), आप.श्रौ.सू. 21.3 (अष्टका)।

अष्टापदी वि. (स्त्री.) (अष्टौ पादाः यस्याः सा) सगर्भ = गर्भयुक्त (आलभ्य गौ), मा.श्रौ.सू. 3.5.18 (जिसके गर्भ में भ्रूण पल रहा हो)।

अष्टापदीवत् क्रि.वि. गर्भिणी गाय की बलि (याग) के समान, का.श्रौ.सू. 15.9.13।

अष्टापृड वि. (दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला) आठ बिन्दुओं अथवा विभागों वाला (स्वर्ण), मा.श्रौ.सू. 3.5.18।

अष्टाप्रुष् न. अध्वर्यु की दक्षिणा के रूप में प्रयुक्त 'अष्टप्रज' के सदृश चिह्नों से युक्त स्वर्ण-मुद्रा का एक प्रकार, आप.श्रौ.सू. 9.19.1; वाधू.श्रौ.सू. (अ.ओ. II.158, टीका.); तु. अष्टापिलक अथवा अष्टापुलक, बौ.श्रौ.सू. 26.8।

अष्टाभृष्टि वि. (अष्टौ भृष्टयः यस्य) अष्ट-कोणीय, आठ कोनों वाला (आदित्य पात्र), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15 [दक्षिणस्थ सोम-शकट के युग-अवलम्ब के आगे स्थापित किया गया]।

अष्टाश्रि वि. अष्टकोणीय यूप के शीर्ष के बारे में उक्ति, भा.श्रौ.सू. 7.2.8 (पशु)।

अष्टेळ क्रि. अन्त में आठ इडाओं वाला, जै.ब्रा. III.130।

अष्ट्रा स्त्री. (हाँकने के लिए) अंकुश अथवा साँटी, आप.श्रौ.सू. 16.18.4; हि.श्रौ.सू. 11.6.26; टीका-तुण्डिका; मै.सं. 2.7.12 में वर्तमान है, चयन में हल-कर्षण के समय (इसका) पाठ किया जाता है। [ताडम् = प्रहार करने के लिए, कुछ पाठों में 'तालम्' यह शब्द 'अष्ट्रा' के बाद में आता है]।

असंवत्सरभृतिन् वि. (अग्निचयन के पूर्व) जिसने एक वर्ष के लिए (एक वर्ष तक) 'मुख्य' अग्नि का संरक्षण न किया हो, का.श्रौ.सू. 17.5.6।

असंस्कृत वि. (नञ् + सम् + सुट् + कृ + क्त) अविशुद्धीकृत, शुद्ध न किया गया अथवा न तपाया गया (घृत), इससे यूप का अञ्जन (लेपन) किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.10.1।

असंसृष्ट न. (नञ् + सम् + सृज् + क्त) सायं एवं प्रातः अग्निहोत्र में क्रमशः 'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' एवं 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा' यजुर्मन्त्र का पारिभाषिक नाम, श्रौ.को. (अं) I.i.92।

असंस्यन्दमानम् क्रि.वि. (नञ् + सम् + स्यन्द् + शानच्) इस तरह से कि जल के कोई दो विभाग (पश्चिम की ओर) एक दूसरे से मिल न सकें, का.श्रौ.सू. 2.5.26।

असंस्यन्दयत् (नञ् (अ) सम् + स्यन्द् + णिच् + शतृ) (रेखाओं को) एक साथ न दौड़ाते हुए, आ.श्रौ.सू. 1.2.4.3।

असंहरिष्यत् (अ + सम् + हृ + स्य (लृट्) शतृ) एक भाग का दूसरे भाग में विस्तार न करता हुआ, का.श्रौ.सू. 2.5.15 (पुरोडाश)।

असञ्चर पु. (ऋत्विजों) के सञ्चरण के लिए स्वीकृत मार्ग से भिन्न चिह्न, का.श्रौ.सू. 2.3.30; सदस् (संज्ञक मण्डप) में 'नेष्टा' के 'कुण्ड' के पोषण के लिए, पन्नेजनी संज्ञक जल को यहाँ रखा जाता है, श्रौ.को. (अं) II.ii.561।

असञ्चरे अधि. सञ्चरण-पथ (हिलने-डुलने के मार्ग) पर नहीं, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.5।

असद्यः क्रि.वि. उसी दिन (पूर्णमास इष्टि की तरह) शीघ्रता पूर्वक नहीं, का.श्रौ.सू. 4.2.44।

असनीय वि. (वह वस्त्र) जिसे शरीर पर पहना गया हो और जिसे उपहार के रूप में बाद में दे दिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.11.9; 2.10:43 (V.I वसनीयम्)।

असंत्वरमाण वि. (नञ् + सम् + त्वर् + शानच्) शीघ्रता न करता हुआ, (असंत्वरमाणाः पूर्वाभ्यां सवनाभ्यां चरन्ति, सन्त्वरमाणाः तृतीयसवनेन), आप.श्रौ.सू. 12.28.12।

असंन्युप्त वि. (अ + सम् + नि + वप् + क्त) एक साथ न मिश्रित किया हुआ, आप.श्रौ.सू. 9.10.12।

असपत्ना स्त्री. (न विद्यते सपत्नः यस्याः) (किसी शुत्र से रहित) ईंट का नाम, जिसे पाँचवीं तह में सर्वप्रथम रखा जाता है, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.1 (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर, 'प्रत्येक में एक-एक)।

असंभवेप्सु पु. वह व्यक्ति जो यह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी दूसरे के साथ सम्भोग करे, आप.गृ.सू. 23.3; देखे 'आधारिका'।

असम्भिन्दन् वि. (अ + सम् + भिदि (भिन्द्) + शतृ) दो पुरोडाशों को साथ न मिलाता हुआ, आप.श्रौ.सू. 2.18.8।

असंलेत्य (अ + सम् + ली + ल्यप्) दाँत एवं होंठों से स्पर्श किये बिना (ब्रह्मा प्राशित्र का भक्षण करता है), आप.श्रौ.सू. 3.19.7।

असर्वभक्ष वि. (वह चमस) जिसके शेष को पूर्ण रूप से नहीं खाया जाता है (नाराशंस-चमस), का.श्रौ.सू. 9.12.7-8।

असि पु. तलवार (इसकी नोक वधू के शिर पर उसके पिता अथवा भाई द्वारा रखी जाती है), शां.गृ.सू. 23.3।

असिद न. (बर्हिश्छेदनार्थ = बर्हिस् को काटने के लिए प्रयुक्त) हँसुआ, आप.श्रौ.सू. 1.3.1।

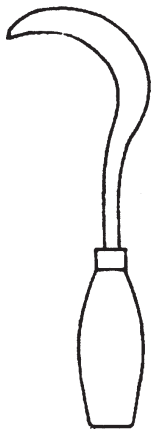

असिद

असिपथ पु. (असेः पन्थाः) चाकू का मार्ग, का.श्रौ.सू. 9.2.4.17, (सूईयों के माध्यम से अश्व के शरीर पर बनाया गया)।

असिल पु. हँसुआ (हँसिआ), मा.श्रौ.सू. 1.1.1.23।

असुषिर वि. छिद्ररहित (कीटों द्वारा बनाये गये छिद्रों से हीन), मा.श्रौ.सू. 1.2.12।

अस्तमस्तम् क्रि.वि. (यजमान पत्नी के प्रति होता द्वारा 'वेद' संज्ञक घास के गुच्छे के) प्रत्येक प्रक्षेप पर, भा.श्रौ.सू. 3.9.8।

अस्तु श्रौषट् पु. एक उच्चारण, अध्वर्यु के 'ओ श्रावय' ऐसा कहने पर अग्नीध्र का उत्तर (देखें - प्रत्याश्रावण), देखें - आगू।

अस्तु स्वधा स्त्री. 'पित्र्येष्टि' में अध्वर्यु के 'ओम स्वधा' कहने पर 'अग्नीध्र' द्वारा दिये जाने वाला उत्तर (अध्वर्यु के 'ओम स्वधा' कहने पर आग्नीध्र 'अस्तु स्वधा' कहकर उत्तर देता है), का.श्रौ.सू. 5.9.9।

अस्तोत्रस्थान न. (न स्तोत्रस्थानम्) स्तोत्र के अवसर से इतर (भिन्न), ला.श्रौ.सू. 10.3.1; 5।

अस्तोत्रिय पु. (न स्तोत्रियः) (निह्नव) स्तोत्रिय ऋचा से भिन्न, शां.श्रौ.सू. 7.26.1।

अस्थियाजनीय वि. (उपरत = मृत यजमान की) हड्डियों के लिए यजन किया जाने वाला (अग्निष्टोम), मा.श्रौ.सू. 3.8.7।

अस्तोभ (न विद्यते स्तोभः यस्मिन्) स्वर-विपरिणाम से हीन, जै.ब्रा. 1.124।

अस्थिसञ्चयन (अस्थ्नां सञ्चयनम्) जिस व्यक्ति की अन्त्येष्टि हो चुकी है, उस व्यक्ति की जली हुई हड्डियों को इकट्ठा

करने का कृत्य (अथवा केवल सञ्चयन)। हड्डियों को इकट्ठा करने की तिथि के विषय में दृष्टिकोण में महान् भेद है (अर्थात् इसके बारे में बहुत विवाद है)। अन्त्येष्टि के बाद अगले दिन अथवा 3 अथवा 5, अथवा 7 अथवा 9 या 11 विषम संख्या की रात्रियाँ बीत गयी हो (उसके बाद) अथवा एक वर्ष बाद भी, बौ.पि.मे 1.11-13. अन्त्येष्टि स्थल पर अध्वर्यु (भा.पि.मे 1.9.2) अथवा अनुष्ठाता (अनुष्ठान करने वाला) छिड़काव करता है। हड्डियों का प्रोक्षण स्त्री द्वारा किया जाता है, एवं पहली पत्नी एक पत्थर पर खड़ी होकर एक निश्चित क्रम में हड्डियों को इकट्ठा करती है और उन हड्डियों को एक मर्तबान कलश में रख देती है। मर्तबान को एक गड्ढे में बौ.पि. अथवा शमी वृक्ष पर अथवा पलाश वृक्ष के शीर्ष पर रख दिया जाता है एवं सभी लोग कर्षु में स्नान करते हैं, भा.पि.मे. 1.9.3; देखें - अन्त्येष्टि। अनुष्ठातृगण (अनुष्ठान करने वाले लोग) अन्त्येष्टि-स्थल की तीन बार 'प्रसव्य' अर्थात् बाईं दिशा में परिक्रमा करते हैं एवं शमी-शाखा द्वारा जल-मिश्रित दुग्ध से प्रोक्षण करते हैं, सञ्चयन का प्रारम्भ प्रथमतया पैरों से प्रारम्भ होता है एवं शिर पर समाप्त होता है। हड्डियों को उत्पवन-साधन से शुद्ध किया जाता है। मर्तबान (कुम्भ) पर एक ढक्कन रख दिया जाता है; बिना पीछे देखे वे दूर चले जाते हैं एवं जल में स्नान करते हैं और एक 'श्राद्ध' का अनुष्ठान करते हैं, आश्व.गृ.सू. 4.5।

अस्फ्य वि. काष्ठीय तलवार (स्फ्य) के बिना (अर्थात् पकड़े बिना), भा.श्रौ.सू. 12.19.8 (अस्फ्यो उत्तरान् ऋत्विजो वृणीते), अग्निष्टोम।

अस्थियज्ञ पु. जिस व्यक्ति का अन्तिम-संस्कार कर दिया गया हो, उसके अस्थियों से सम्बद्ध एक कृत्य, मीमा.सू. 10.2.47-48; न्यायमा. वी. 503.26।

अस्थूरि पु. एक अश्व वाला रथ, जै.ब्रा. I.67।

अस्वप्न पु. (न स्वप्नः) निद्रा का अभाव, का.श्रौ.सू. 7.5.7।

अहत वि. (नञ् + हन् + क्त) (स्त्री का) अक्षत, अप्रहत, मा.श्रौ.सू.1.1.1.12; न धुली हुयी = पु. न धुला हुआ (वस्त्र के प्रसङ्ग में। **० वासस्** न. वधू द्वारा पहना गया न धुला हुआ अर्थात् नया वस्त्र, आप.गृ.सू. 4.8।

अहरन्तिकी वि. सवन दिन के अन्तिम भाग से सम्बन्ध रहने वाली (सुब्रह्मण्या), ला.श्रौ.सू. 1.4.8; द्रा.श्रौ.सू. 1.4.13।

अहरहःशस्य वि. प्रत्येक (सवन) दिन पर पढ़ा जाने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 7.4.8.9।

अहरिका स्त्री. (न विद्यते हरिः यस्यां) 'हरि' के उल्लेख से रहित ऋचा, ला.श्रौ.सू. 3.1.14; द्रा.श्रौ.सू. 7.1.18।

अहरिष्टका स्त्री. (अहनः इष्टका) दिन के समय अर्पित की जाने वाली समिधा, आप.श्रौ.सू. 16.11.5 (देखें - रात्रिमिष्टकाम् उपदधे, 16.11.4); दोनों को उख्य अग्नि में रख दिया जाता है।

अहर्गण पु. दो से द्वादश अथवा उससे भी अधिक सवन दिनों के समूह से युक्त सोम याग। द्वादशाह (द्वादश सवन दिन वाला याग) अहर्गणों के लिए प्राथमिक कर्मकाण्ड है, जबकि अन्य सभी अहर्गण संशोधन = विकृति का विधान करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 24.5; श्रौ.को. (अं) I.ii. 947; का.श्रौ.सू. 1.7.8; द्विरात्र से शतरात्र तक के कृत्यों का नाम, मी.सू. 8.1.17; अर्थात् अहीन एवं सत्र, आ.श्रौ.सू. 24.4.4 (चि.भा.से.)।

अहर्गणन्याय पु. बहुदिवसीय 'अहर्गण' संज्ञक सोमयाग के लिए प्रतिमान=प्रकृति के रूप में स्वीकृत प्रक्रिया, निदा.सू. 8.4.6।

अहर्व्यत्यासम् क्रि.वि. वैकल्पिक अथवा स्थानापन्न दिनों पर (विष्णुक्रम एवं 'वात्सप्र' संज्ञक कृत्यों का विकल्पन-पूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए), का.श्रौ.सू. 16.6.5 (चयन)।

अहसं (स्सं) तान न. सुत्या दिनों के सातत्य (के लिए कृत्य), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.8।

अहिंकार पु. 'हिं' ध्वनि का अभाव, ला.श्रौ.सू. 2.10.23; द्रा.श्रौ.सू. 6.3.2।

अहिंकारम् क्रि.वि. हिंकार किये विना, 'हिं' ध्वनि का उच्चारण किये विना, जै.श्रौ.सू. 70।

अहिंकृता वि. (स्त्री.) हिंकार से रहित 'हिं' ध्वनि के साथ न उच्चारित की गई अथवा न प्रारम्भ की गई, जै.श्रौ.सू. 11.13; ला.श्रौ.सू. 1.12.8; 4.4.4; द्रा.श्रौ.सू. 11.4.4; जै.ब्रा. I.315।

अहीन पु. (अहन् + ख) 1.एक सवन दिन से अधिक बारह सवन दिन वाले श्रौत यज्ञ का एक प्रकार (अर्थात् जिसमें सोम-सवन दो से 12 दिन तक होता है, 100 दिनों तक भी किन्तु 360 दिनों से कम); अहीन सोम याग के विभिन्न नामों को जानने के लिए देखें - मा.श्रौ.सू. 9.3.5 से 9.5.6.

इसके अन्त में एक अतिरात्र दिन होता है जबकि सत्र के दोनों तरफ अतिरात्र होता है, अर्थात् प्रारम्भ में और अन्त में, (उभयतोऽतिरात्रं सत्रमुपादिष्टमुपरिष्टादहीनस्य), का.श्रौ.सू. 12.1.7. अहीन याग के लिए द्वादश सवनीय दिनों वाला सोमयाग प्राथमिक कृत्य है, जबकि अन्य अहीन याग संशोधन का विधान करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 24.5; श्रौ.को. (अं) I.ii. 947, 2. एक यजमान जो अहीन याग का अनुष्ठान कर चुका हो, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 1089; वि. कई दिनों तक चलने वाला (6.4.145); सवन दिन (सोम निकालना) दो से 12 दिन तक का होता है एवं दीक्षा एवं उपसद् दोनों को मिलाकर एक माह के आगे नहीं बढ़ना चाहिए (अर्थात् एक माह तक का होना चाहिए), आप.श्रौ.सू. 22.14.1; उदाहरणार्थ 'गर्ग त्रिरात्र (तीन दिन) पञ्चरात्र, षडह इत्यादि। द्वादशाह दोनों होते हैं अहीन भी सत्र भी, आश्व.श्रौ.सू. 10.5.2; अह्न ख क्रतौ, वार्तिक 4.2.41 पर; (यज्ञीय शुल्क = दक्षिणा देने में) जो निर्धन नहीं है, आप.श्रौ.सू. 10.1.3।

अहीनसन्तति स्त्री. अहीन-संज्ञक सोमयाग, जिसमें एक से अधिक सुत्या दिन होते हैं, के सन्दर्भ में बाद वाले दिन पर सातत्य (के लिए पूर्व दिन पर किये जाने वाले कृत्य), आप.श्रौ.सू. 21.13.2।

अहुत वि. एक पाकयज्ञ का वर्ग जिसमें अग्नि में आहुति नहीं डाली जाती, अर्थात् यज्ञ मरुतों के लिए बलिप्रदान द्वारा अनुष्ठित किया जाता है अर्थात् मरुतों के लिए बलि प्रदान किया जाता है। उन मरुतों को अयज्ञ का भोक्ता (खाने वाला) कहा गया है, अर्थात् जिन्हें आज्य के स्थान पर बलि प्रदान की जाती है,पा.गृ.सू. 2.15.3।

अहुताभ्युदित न. (अहुते अभ्युदितम्) अग्निहोत्र की आहुति प्रदान करने के पूर्व सूर्य का उदित होना 'अहुताभ्युदित उन्नीयातमितोरासीत', का.श्रौ.सू. 25.4.10।

अहोम पु. (न होमः) (पवित्र अग्नि में) होम का अभाव, शां.श्रौ.सू. 3.21.11।

अहोमसंयुक्त वि. (न होमसंयुक्तः = होमेन संयुक्तः होम संयुक्तः) (अग्नि में) होम के कृत्य से असम्बद्ध (न जुड़ा हुआ) 'वारणान्यहोमसंयुक्तानि', का.श्रौ.सू. 1.3.37।

अहोरात्रयोर् (व्रत्) न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.34; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.38; इस साम का गायन उस समय किया जाता है, जब प्रवर्ग्य में घर्म को अर्पित किया जाता है।

आ

आइकार पु. 'आइकार' करना, 'आइ' का उच्चारण करना, हि.श्रौ.सू. 21.2.33।

आउकार पु. 'आउ' कहना, 'आउ' का उच्चारण करना, हि.श्रौ.सू. 21.2.33।

आकर्णप्रावृत वि. (आकर्णं प्रावृतः, प्रावृत = प्र + आ वृ + क्त), कानों तक आवृत अथवा ढका हुआ, मा.श्रौ.सू. 2.5.2.20 (अग्निष्टोम के गायन = यज्ञायज्ञीय के दौरान ढका गया शिर)।

आकर्षफलक न. साँप सदृश आकृति वाला उदुम्बरकाष्ठ का फलक। यह एक बाहु लम्बा होता है, पा.गृ.सू. 2.10.17 एवं टीका। इससे तिल के बीजों की आहुति दी जाती है (उपाकरण)।

आकर्षफलक

आकार पु. 'आ' – संज्ञक वर्ण, 'आहव' की अभिव्यक्ति (उच्चारण) के साथ किसी देवता के आमन्त्रण के समय प्लुत (अथवा चार मात्रा वाला) शां.श्रौ.सू. 1.2.1; ला.श्रौ.सू. 5.12.14; 7.11.11, द्रा.श्रौ.सू. 15.4.7; निदा.सू. 2.10 : 10।

आकरणिधन वि. (आकारे निधनं यस्य) आकार (आ) में समाप्त होने वाला, ला.श्रौ.सू. 7.3.15।

आकूती स्त्री. इच्छा, अभिप्राय, इरादा, बौ.श्रौ.सू. 2.6:4; 'अथेदमग्न्याधेयं तस्य कर्मण उपक्रमो भवति श्रद्धामाहूय आकूत्या वेदनं कृत्वा' अग्न्याधेय; कृत्य का क्रम; श्रद्धा का आह्वान, यजमान की इच्छा (आकूती) का प्रकटीकरण (सञ्चार); वह यजमान की इच्छा का उद्घोष करता है, श्रौ.को. (अं.) I.पृ. 17।

आकूपार न. एक साम का नाम, जै.श्रौ.सू. 6; ला.श्रौ.सू. 4.6.3, निदा.सू. 2.2:18; क्रौञ्च के साथ युग्मीकृत, ला.श्रौ.सू. 7.2.1।

आकृतिदहन न. (आकृतेर्दहनम्) मृत (पितर्) के पुतले को जलाना, वैखा.श्रौ.सू. 22.22:11; वैखा.गृ.सू. 5.12।

आक्रमण न. (आ + क्रमु पादविक्षेपे + ल्युट्), 1. पूँछ के जोड़ = पर्व) एवं मध्यभाग पर स्थित) एक धब्बा, जहाँ से कोई महावेदि के स्थल में प्रवेश अथवा आरोहण करता है, आप.श्रौ.सू. 16.21.12 (इष्टकाम् उपदध्यात्) 2 अ. वेदि (की घास) को पार करना (आगे जाना) शां.श्रौ.सू. 1.4.1. 2 ब. ध्रुव के सामने प्रस्तर को लाँघना, भा.श्रौ.सू. 2.13.7; प्रत्याक्रमण = 'दक्षिण से उत्तर की ओर वापस आना', 2.14.2 (दर्श) एवं 'अतिक्रमण' भी देखें।

आक्रमण

आक्षार न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.1.1; निदा.सू. 3.10.23।

आखण न. उत्तर की और लक्ष्य के रूप में आग्नीध्रीय के पास दो स्तम्भों पर लटका हुआ चमड़े का टुकड़ा, ला.श्रौ.सू. 1.11.5; 3.10.6; द्रा.श्रौ.सू. 10.2.7; शां.श्रौ.सू. 17.15.4; 15.5.5 (महाव्रत), [अनुवाद – Post- स्तम्भ]।

आखर पु. मिट्टी का ढूह (टीला) = खर, वाधू.श्रौ.सू. (101.10)। (तु खनो डडरेकेकवकाः – पा. 3.3.125 वार्तिक)।

आखान पु. (आ + खन् + घञ्) गर्त, गड्ढा, मा.श्रौ.सू. 6.1.1.15, 25, 29, (तु. 'खनो घ च' पा. 3.3.125)।

आखिद्य (आ + खिद् + ल्यप्) अपने से ऊपर की तरफ उठाकर (शकट), आप.श्रौ.सू. 10.28.1।

आखुकरीष न. (आखोः करीषम्) चूहे द्वारा बिखेरी गयी मिट्टी (का ढेर) आप.श्रौ.सू. 5.1.7, (सप्त पार्थिव सम्भारों में एक)।

आखुकिरि न. = आखूत्कर, वही, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.17 (आधान) (आखोः किरि = उत्करः)।

आखूत्कर पु. (आखोः उत्करः) चूहे द्वारा निर्मित मिट्टी का ढूह, बौ.श्रौ.सू. 2.6.18; भा.श्रौ.सू. 5.5.4; अतिरिक्तमाखूत्कर उपकिर ''येषत'' इति का.श्रौ.सू. 5.10.11 (मूषकैरुत्कीर्णः पांसुराशिः), ला.श्रौ.सू. 5.3.2. (उत्कर = उद् + कृ + अप् 'ऋदोरप्' पा. 3.3.57)

आख्यान (आ + ख्या + ल्युट्) न. पुराणकथा (जैसे शुनः शेप की); देखें – पारिप्लव, शा.श्रौ.सू. 15.27.1; आश्व.श्रौ.सू. 9.3.13।

आगतवती स्त्री. आगमन के सन्दर्भ वाली 'आगन् देवा ऋतुभिर्वर्धतु' ऋ.वे. 4.53.7 ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.62।

आगन्तु वि. (आ + गम् + तुन्) (पाँच की) मूल संख्या में जोड़ा गया अतिरिक्त 'आगन्तूनां चतुर्थपञ्चमाभ्यां, स्थानात्' का.श्रौ.सू. 3.3.6 'आगन्तूनां प्राकृतसंख्यातोऽधिकानाम्', स.वृ. पूर्व आहुति)।

आगन्तुक न. (आ + गम् + तुन् + क) वह, जिसे बाहर से अतिरिक्त रूप में प्राप्त किया जाता है, बौ.शु.सू. I.68।

आगन्तुस्थान न. (आगन्तूनां स्थानम्) अतिरिक्त सोम के प्यालों के क्षेपक के लिए स्थान (अतिग्राह्यादि आग्रयण एवं उक्थ्य प्यालों के बीच में) का.श्रौ.सू. 12.5.1।

आगम पु. (आ + गम् + घञ्) किसी रज्जु की बढ़ाई हुई लम्बाई, मा.श्रौ.सू. 10.1.11।

आगू स्त्री. 'ये यजामहे' अथवा 'ये स्वधामहे' का उद्घोष, मा.श्रौ.सू. 5.1.4.22 (अर्पण-ऋचा के पूर्व); भा.श्रौ.सू. 8.19.9; तु. श्रौ.को. (सं.) I.पृ. 550 'ये स्वधा इत्यागूः ये स्वधामहे इति वा, यज्ञ के प्रारम्भ के समय होता अपनी सहमति को इंगित करता हुआ उसका उच्चारण करता है। अर्पण-ऋचा के बाद में 'वषट्' आता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.4-5 (दर्श)। एक यजुष् '(अग्निं)' का भी नाम जिसके द्वारा अध्वर्यु होता को पाठ करने के लिए प्रेरित करता है (सोम याग में मैत्रावरुण द्वारा उच्चारित 'होता यक्षत' के प्रति संशोधित) पितृ-कृत्य में 'ये यजामहे' इस यजुर्मन्त्र के स्थान पर 'ये स्वधामहे' आता है, आप.श्रौ.सू. 8.15.11 [आगू = ओ श्रोवय, अस्तु श्रौषट्, यज, ये यजामहे एवं वषट्]; चि.भा.से. 'आगू' को प्रविष्टि के रूप में ग्रहण करते हैं, देखें श्रौ.प.नि. 28.229-30. सामान्यतः इसका अर्थ सहमति अथवा प्रतिज्ञा है।

आगूर्तिन् वि. 1. (वह व्यक्ति) जिसने यज्ञ का उपक्रम किया है, मा.श्रौ.सू. 5.2.5.1; 2. 'आगू' 'यजुष्' का उच्चारणकर्ता अथवा वह व्यक्ति जिसने 'आगू' यजुष् को अपने लिए पढ़ लिया है; तु. इग्लिंग, श.ब्रा.अं. XLIV. 32।

आग्नावैष्णवीष्टि स्त्री. एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.324।

आग्निकी वि. (अग्नेरियं, अग्नि + ठक् + ङीप्) अग्निवेदि के चयन में प्रयुक्त (अभ्रि), आप.श्रौ.सू. 14.1.4 (प्रवर्ग्य)।

आग्निपावमानी स्त्री. सायं अग्निहोत्र के अनन्तर 'उपस्थान' संज्ञक स्तुति में अग्नि-पवमान के सन्दर्भ वाली (अग्नि-पवमान से सम्बद्ध) ऋचा से सम्बद्ध (इनकी संख्या छः है), बौ.श्रौ.सू. 3.8:3 ('अग्न आयूंषि' पवसे, अग्ने पवस्य, अग्ने पावक इत्यादि); आहवनीय अथवा गार्हपत्य का उपस्थान (स्तुति, प्रार्थना), बौ.श्रौ.सू. 3.8.17।

आग्निमारुत न. आज्य-भाग के दो पुरोनुवाक्याओं 'हुवे वातस्वनं कविम्-----' एवं 'वृषा सोम दुमम् असि' संयुक्त कर्मकाण्डीय तकनीक का नाम। संयाज हैं—'यं त्वा देवाजि' एवं 'अग्ने बाधस्व' (मै.सं. 4.10.2); श्रौ.को. (अं) I.540; — शस्त्र, जै.ब्रा. 1.169. (व्याकरणिक घटन के लिए देखें 'इद् वृद्धौ' पा. 5.3.27 एवं 'देवताद्वन्दे च' पा. 7.3.21)।

आग्निहोत्रिक वि. अग्निहोत्र से सम्बद्ध, हि.श्रौ.सू. 1.2.1, बौ.गृ.सू. 1.4.42।

आग्नीध्र = अग्नीध्र।

आग्नीध्रचमस पु. (आग्नीध्रस्य चमसः) सोम याग में अग्नीध्रसंज्ञक ऋत्विज् का चमस, इसका हत्था तीक्ष्ण-धार वाला (तीक्ष्णग्रह) होता है, श्रौ.प.नि. 249-207।

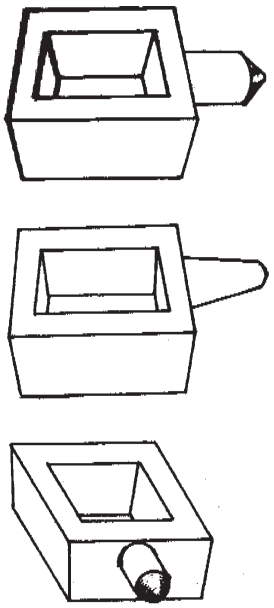

आग्नीध्र चमस

आग्नीध्रधिष्ण्या स्त्री. (आग्नीध्रस्य धिष्ण्या) अग्नीध्र-संज्ञक ऋत्विज् की अंगीठी। यह कूड़े के ढेर (उत्कर) से छः कदम की दूरी पर स्थित होता है, भा.श्रौ.सू. 12.4.9-5; 10; इसका चयन 'रौद्रेण अनीकेन----' को जोड़ते हुए 'विभुरसि प्रवाहण----' इस मन्त्र से किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 12.14.1-15.11; सात धिष्ण्याओं में 'आग्नीध्र की धिष्ण्या का सर्वप्रथम चयन किया जाता है (का.श्रौ.सू. 8.6.12-22); अग्निष्टोम-प्रणयन में अध्वर्यु उत्तर वेदि की ओर अग्नीध्र की धिष्ण्या के उत्तर, ओर से छोर तक अग्नीध्र के मण्डप के रास्ते प्रस्थान करता है (भा.श्रौ.सू. 6.31) आप.श्रौ.सू. 11.15.3-17. 5 के अनुसार अध्वर्यु को आग्नीध्र की धिष्ण्या पर अग्नि को स्थापित करना चाहिए और तब इस पर घृत के शेष भाग के आधे का होम करना चाहिए। 'अग्ने नय' इस मन्त्र में वसतीवरी को धिष्ण्या के पृष्ठ भाग में इसे अनेक स्थानों के चारों ओर ले जाने के बाद रख दिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.33, कात्यायन श्रौ.सू. के अनुसार इसे आग्नीध्र की धिष्ण्या पर विश्वेषां देवानां----इस यजुर्मन्त्र के साथ रखना चाहिए 8.9.13-26. प्रातरनुवाक का पाठ करने के लिए प्रैष (आह्वान) मिलने पर, 'होता' आग्नीध्रीय अग्नि के सम्मुख खड़ा होकर 'प्रपद्ये' इत्यादि का जप करे (शां.श्रौ.सू. 6.2-6)। वह इसके अनन्तर आग्नीध्रीय अग्नि में चम्मच (स्रुव) से छः आहुतियाँ दे। 'अग्नीध्र' आग्नीध्रीय धिष्ण्या से अंगारों को सदस् में अन्य छः धिष्ण्याओं पर फैला दे। (बौ.श्रौ.सू. 7.8); मा.श्रौ.सू. 2.3.7. 12-20; अध्वर्यु आग्नीध्र की धिष्ण्या के पृष्ठभाग में अग्नि का मन्थन करे, मा.श्रौ.सू. 2.5.11-14. अनूबन्ध्या की आहुतियों के अर्पण के अनन्तर 'होता' 'आग्नीध्र' की धिष्ण्या के सम्मुख वेद में दर्भों को फैला देता है (बिखेर देता है), शां.श्रौ.सू. 8.12.5-14।

आग्नीध्रभाग पु. (आग्नीध्रस्य भागः) 'आग्नीध्र- संज्ञक ऋत्विज् के लिए नियत इडा का भाग, मा.श्रौ.सू. 7.2.8.19।

आग्नेय पु. (अग्नेः अयम् 'अग्नेर्ढक्' पा. 4.2.33) आतिग्राह्यों के नाम से प्रसिद्ध तीन ग्रहों के वर्ग के अन्तर्गत प्रथम सोम के प्याले का नाम इसे 'अग्ने आयूंषि पवसे-----', इस ऋचा के साथ आपूरित किया जाता है, सत्या.श्रौ.सू. 8.4; वैखा.श्रौ.सू. 15.15-18 (इस वर्ग के अन्य दो प्याले हैं— ऐन्द्र चमस एवं सौर्य चमस), श्रौ.को. (अं) II.447. आग्नेय (अतिग्राह्य) प्याला प्रतिप्रस्थाता के द्वारा 'अग्ने तेजस्विन्----' के साथ अर्पित किया जाना चाहिए उसके बाद वह 'तेजोविद् असि----' का पाठ करे (ऐन्द्र एवं सौर्य का अर्पण क्रमशः नेष्टा एवं उन्नेता द्वारा किया जाना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 13.8.6-12. वैखा.श्रौ.सू. (16.9.10) के अनुसार अध्वर्यु के सोमचमस के अर्पण के साथ-साथ ही अतिग्राह्य भी अर्पित किये जाने चाहिए। अग्नि के लिए स्तोत्र एवं शस्त्र भी।

आग्नेय त्रिणिधन न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.21, सा.वे. 1.514 पर आधृत।

आग्नेयपात्र न. आग्रयण स्थाली से अग्नि के लिए आहरित सोम का प्याला, श्रौत.प.नि. 275-299; ऐन्द्र-300; सौर्य - 30।

आग्नेयीष्टि स्त्री. एक वैकल्पिक इष्टि का नाम (पुरोनुवाक्या 'अग्निमूर्धा दिवः.....' एवं 'याज्या भुवो यज्ञस्य...' से युक्त)। वज्राज प्रक्रिया का पालन करना होता है (आश्व.श्रौ.सू. 2.10.10,11, 2.11.5); किन्तु श्रौ.का. (अं.) 540-41; आश्व.श्रौ.सू. 2.1.34 देखें, जिसमें दो धाय्यायें 'पृथुपाजा अमर्त्यः....'। (ऋ.वे. 3.27.5) एवं 'तं सबाधो....'(ऋ.वे. 3.27.6) पन्द्रह सामधेनियों में जोड़ दी जानी चाहिए। वहाँ विराज संयाज होनें चहिए, अर्थात् स्विष्टकृत् की पुरोनुवाक्या है 'प्रेद्धो अग्ने....' एवं 'याज्या इमो अग्ने....', मै.सं.4.10.1

आग्नेयेष्टि स्त्री. मूर्धन्वन्त् अग्नि के सम्मान में अर्पित किये जाने वाले एक पुरोडाश वाली इष्टि (संज्ञक यज्ञ) का नाम। विरज प्रक्रिया को अपनाना चाहिए, श्रौ.को. (अं) I.ii. 561; आश्व.श्रौ.सू. 2.10.10,11; 2.11.5।

आग्न्याधेयिकी वि. अग्न्याधान से सम्बद्ध, आप.श्रौ.सू. 5.29.1; भा.श्रौ.सू. 5.20.13।

आग्रयण पु. 1. तीन भागों में बाँटकर आग्रयण स्थाली में उड़ेले गये रस से भरे जाने वाले सोम-प्याले का नाम। प्रथम दो पृथक् प्यालों में उड़ेले जाते हैं एवं तृतीय आग्रयण स्थाली में ही पड़ा रहता है, 'आग्रयणं स्वतृतीयाभ्यो धाराभ्यः' का.श्रौ.सू. 10.1.11. 2. यह एक कृषिकर्म से सम्बन्धित इष्टिप्रकार का कृत्य है, जिसको आहिताग्नि को अपने फसल का उपयोग करने के लिए अनुष्ठान करना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 6.29.2. इसकी व्याख्या एक (ऐसे) कृत्य के रूप में की गई है, जिसमें नवान्न (अग्र) का प्रथम बार उपयोग किया जाता है (अर्थात भक्षण किया जाता है), (अयन), आश्व.श्रौ.सू. 2.9.1; टीका। यह दर्शेष्टि की प्रक्रिया का अनुकरण करता है एवं इसका अनुष्ठान वसन्त ऋतु में प्रतिपदा अथवा पूर्णिमा को किया जा सकता है। नये उत्पन्न धान से 12 कपालों पर निर्मित एक पुरोडाश इन्द्राग्नि को अर्पित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 6.29.10, अथवा पुराने धान से आठ कपालों पर निर्मित पुरोडाश अतिरिक्त देवता के रूप में अभिप्रेत अग्नि को अर्पित किया जाता है, विश्वेदेवों के लिए चरु रूप में भी, 'वैश्वदेवश्चरुः', का.श्रौ.सू. 4.6.3; एक कपाल पुरोडाश द्यावापृथ्वी को 'द्यावापृथिवी एक कपालः' का.श्रौ.सू. 4.8.5; वसन्त के समय जब यव पक जाता है, यव की आहुतियाँ दी जानी चाहिए। यदि किसी ने आग्रयण का अनुष्ठान नहीं किया है, तो वह अग्निहोत्र गौ को नये अन्न को खिलाये, एवं आग्रयण के दिन उस गाय के दूध से अग्निहोत्र करे, 'अग्निहोत्रायणिनो नवैः सायम्प्रातरग्निहोत्रहोमः' का.श्रौ.सू. 4.6.11, आश्व.श्रौ.सू. 2.9.4. उसमें 17 सामधेनियाँ होती हैं। गृह्य आग्रयण कर्म श्रौत कृत्य का सन्निकटता से अनुगमन करता है, बौ.श्रौ.सू. 3.12; आप.श्रौ.सू. 6.29.2-31. वैकल्पिक रूप से दूध अथवा जल में पकाये गये पके हुए श्यामाक (साँवा) के दानों (अन्न) की हवि सोम को अर्पित की जाती है; न. यह गृह कृत्य अनाहिताग्नि (जिसने पवित्र अग्नि का आधान नहीं किया है) द्वारा अनुष्ठित किया जाता है, आप.गृ.सू. 19.6; आहिताग्नि के द्वारा भी इसका अनुष्ठान किया जाता है, आश्व.गृ.सू. 2.2.5; गृह्य आग्रयण का उद्देश्य ठीक वही है, जैसा कि—नये अन्न से सम्पन्न किये गये श्रौत आग्रयण इष्टि का। पके हुए भोजन के मिश्रण (स्थालीपाक) की हवि श्रौत कृत्य के देवताओं को (3 देवताओं को) चौथे देवता अग्निस्विष्टकृत् के साथ दी जाती है। यजमान अपने मुख को चावल के दानों से भरता है एवं उन्हें निगल जाता है; कहे गये पक्व भोजन को वह निवास-गृह के केन्द्रीय धरन (स्तूप) पर फेंक देता है, आप.गृ.सू. 19.7; शां.गृ.सू. 3.8; पा.गृ.सू. 3.1; गौ.गृ.सू. 3.8.9-24; खादि.गृ.सू. 3.3.6-15; आश्वयुजी के तुरन्त बाद आग्रयण का वर्णन किया गया है, देखें - श्रौ.प.नि. 74 - 450।

आग्रयणग्रह पु. (आग्रयणस्य ग्रहः) एक साथ चारों ऋत्विजों के द्वारा चार धाराओं में, तृतीय सवन में प्रथम सोम-आकर्षण (सोम को खींचना), आप.श्रौ.सू. 13.10.11-2. बौ.श्रौ.सू. 8.10; कै.हे. 335; [०ग्रा० भी. जै.क. I.81]।

आग्रयणस्थाली स्त्री. (आग्रयणस्य स्थाली) आग्रयण सोम-चमस के आहरण के लिए (प्रयुक्त) एक पात्र, आप.श्रौ.सू. 12.1.14।

आग्रयणाग्र (आग्रयणः अग्रः यस्मिन्) चमसों में आग्रयण चमसों के प्राथम्य वाला (जिसमें आग्रयण चमस प्रथम है), मा.श्रौ.सू. 2.3.5.2 (जागतसामनि)।

आग्रयणेष्टि स्त्री. इन्द्राग्नि के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश से वसन्त के समय अनुष्ठेय (अनुष्ठान किये जाने वाली) एक इष्टि का नाम, बौधायन के अनुसार विश्वेदेवों के लिए पका हुआ चावल एवं द्यावापृथिवी के लिए एक कपाल पुरोडाश। अन्य के अनुसार सबसे पहले आठ कपालों पर व्रीहि से निर्मित एक पुरोडाश की हवि दी जाती है। प्रथम बछिया (वत्सा) दक्षिणा है। वर्षा ऋतु में दूध अथवा जल में पकाये गये श्यामाक के दाने, जो सोम को अर्पित किये जाते हैं, से पर्व-दिन पर इसका अनुष्ठान किया जाना चाहिए। वस्त्र इसकी दक्षिणा है।

आग्रहायण पु. मार्गशीर्ष (अगहन) महीने का नाम हि.गृ.सू. 2.17.1; यह लगभग दिसम्बर माह में पड़ता है।

आग्रहायणी स्त्री. अगहन में अनुष्ठित किया जाने वाला सात पाक यज्ञों में एक, The Ritual Sutras, J. Gonda, शब्दकोश पृ. 662। अगहन के महीने (दिसम्बर) से सम्बद्ध एक गृह्य कृत्य; मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णमासी को सम्पन्न किए जाने वाले एक कृत्य का नाम, हि.गृ.सू. 2.17.1 [देखें चि.भा.से.]।

आघमर्षण वि. (अघमर्षणस्य इदम्) शुद्धीकरण के लिए अनुष्ठित किये जाने वाले एक कृत्य 'अघमर्षण' से सम्बन्ध रखने वाला; देखें—'अघमर्षण'।

आघाटी स्त्री. एक वाद्य-यन्त्र का भेद (प्रकार), बौ.श्रौ.सू. 26.17; 16.20; 16.21 (महाव्रत में प्रयुक्त), काशिकर (परिशिष्ट - 1)।

आघार

आघार पु. (आ + घृ क्षरणदीप्त्योः + घञ्) सदैव पूर्व की ओर अध्वर्यु द्वारा आहवनीय पर अर्पित की जाने वाली (दी जाने वाली) आज्य की आहुति (आज्य को उड़ेलना) 'प्राञ्चावाघारौ' का.श्रौ.सू. 1.8.42 (दर्श)। प्रथम आघार अग्नि के उत्तरी भाग में अध्वर्यु द्वारा बैठते समय पश्चिम से पूर्व की ओर अविच्छिन्न रेखा में स्रुव से प्रजापति के लिए (स्रौव अथवा प्राजापत्य) उड़ेला जाता है एवं दूसरा आघार उसी ऋत्विज् द्वारा दक्षिणी भाग से, पश्चिम से पूर्व की और (इन्द्र के लिए) स्रुच्-संज्ञक करछुल अथवा जुहू से (स्रौच्य अथवा जौहव), उड़ेला जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.19.9; 12.7; 14.1; आश्व.गृ.सू. 2.5, अध्वर्यु द्वारा द्रोणकलश में से पारिप्लव द्वारा आहरित सोम का द्रवार्पण भी, 12.20.20; भा.श्रौ.सू. 13.22.5; देखें - श्रौ.प.नि. 26.209।

आघारपथ पु. (आघारस्य पन्थाः द्र. 'ऋक्पू', पा. 5.4.74) अग्निस्थान में स्थित मार्ग, जिसके एक छोर से दूसरे छोर तक आघारद्रव को उड़ेला जाता है, बौ.श्रौ.सू. 20.13 : 18।

आघारवती स्त्री. (आघार + मतुप् + ङीष्) 'अध्वर्यो यज्ञो अयमस्तु' जिससे ऐन्द्रवायवचमस के पूर्व आधार (द्रव) का क्षारण किया जाता है, श्रौ.को. (सं) II.565।

आघारसमिध् स्त्री. (आघारे आघारस्य वा समिध्) आघार आहुतियों के सम्बन्ध में उत्तर-पूर्व एवं दक्षिण पूर्व के कोणों पर आहवनीय अग्नि के स्थान के ठीक ऊपर रखी गई दो समिधाएं, आप.श्रौ.सू. 2.9.9; 11.3.2; भा.श्रौ.सू. 12.2.20; मा.श्रौ.सू. 1.2.6.10; हि.श्रौ.सू. 7.4.14. उसे उसी स्थान पर स्थिर कर देना चाहिए, जहाँ आघार समाप्त होता है, भा.श्रौ.सू. 12.2.8; 3.25. शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा के अनुसार इसे स्वयं आहवनीय अग्नि पर ही रख देना चाहिए, श.ब्रा. 1.3.4.5-8; का.श्रौ.सू. 2.8.2-3।

आघारसम्भेद पु. (आघारयोः सम्भेदः) दो आघारों का मिलन अथवा पार करने का बिन्दु (अर्थात् वह स्थान जहाँ दोनों आघार एक बिन्दु पर मिलते हैं), आप.श्रौ.सू. 2.17.1 (अपरेण आघारसम्भेदं पञ्च प्रयाजान् प्राञ्चो यजति, टीका - प्रागपवर्गान्)।

आङ्गिरस न. (अङ्गिरसा दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.9.18, सा.वे. 1.518 पर निबद्ध।

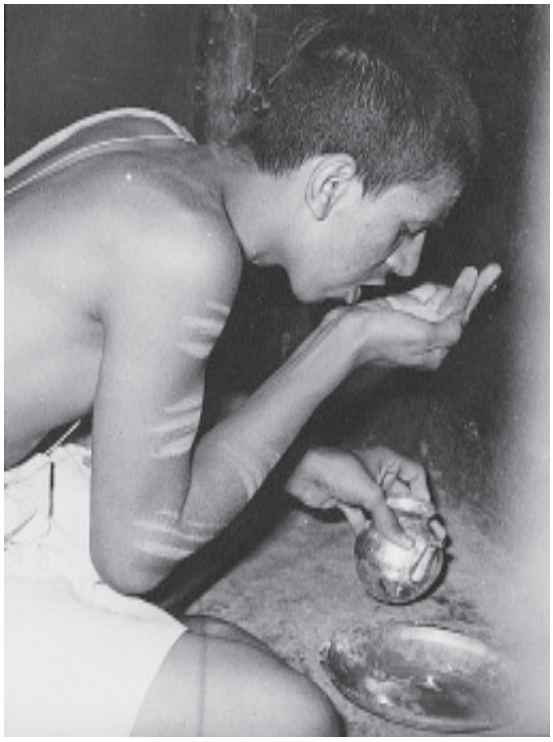

आचमन

आचमन न. (आ + चम् + ल्युट्) (शुद्धीकरण के लिए) तीन बार जल का आचमन (थोड़ा सा पीना), आश्व.श्रौ.सू. 2.2.10; शां.श्रौ.सू. 1.1.8; यज्ञ के आरम्भ के पूर्व दाहिनी हथेली में लिए गये जल को मुख से हल्के से सुड़कना, गौ.गृ.सू. 1.1.2; इसे बैठने की स्थिति में (अर्थात् बैठकर या बैठे हुए) करना चाहिए। इस कृत्य के बाद प्रायः शरीर के विभिन्न अङ्गों का स्पर्श (अङ्गन्यास) किया जाता है,

1.2.7.8; खादि.गृ.सू. 1.1.9; आप.ध.सू. 1.5.15; म.स्मृ. 2.58-62। (विशेष के लिए द्रष्टव्य पी.बी.काणे - ध.सा. का इतिहास, (हि.आ.ध. भाग-1, पृ. 362-63)।

आचान्त वि. (आ + चम् + क्त) वह (दीक्षित व्यक्ति) जिसने जल का आचमन कर लिया है, हि.गृ.सू. 1.4.13।

आचाम पु. (आ + चम् + घञ्) वह जल जिसमें व्रीहि अथवा यव को पकाया गया है, 'दक्षिणेन हृत्वा------पृथगाचामौ------तन्मासरम्', का.श्रौ.सू. 19.1.20; बलि के रूप में भूसी एवं जल से मिश्रित उबले चावल के द्रव के झाग माड़ को छानना, गौ.गृ.सू. 1.4.31; स्त्री पूर्वजों (पितरों) को समर्पित भूसी, आश्व.गृ.सू. 2.5.5 (अन्वष्टका)।

आचारिक न. विवाह संस्कार में प्रचलित (प्रथात्मक) कृत्य, का.गृ.सू. 25.7।

आचार्य पु.बहु. (आ + चर् + ण्यत्) वे आधिकारिक पुरुष (प्रमाण पुरुष) जिनके अनुष्ठान की विधि का अन्यों के द्वारा भी अनुसरण किया जाना चाहिए, का.श्रौ.सू. 1.3.7।

आच्छाद्य (आ + छद् + ल्यप्) (ऋत्विजों को) आवृत करके (ढक करके), भा.श्रौ.सू. 10.2.7; मा.श्रौ.सू. 1.5.3.14।

आच्छृणन्ति (आ + छृण् + लट् प्र.पु.ब.व.) (अजा के दुग्ध को) छिड़कते हैं; देखें - आप.श्रौ.सू. 16.6.1; (तप्त महावीरपात्र पर अजा के दुग्ध को) उड़ेलना, मा.श्रौ.सू. 4.1.29।

आच्छेदनी स्त्री. (आ + छिद् + ल्युट् + ङीप्) 'दर्भ'-संज्ञक घास को काटते समय पढ़ी जाने वाली ऋचा का नाम, भा.श्रौ.सू. 1.5.1 (अग्नि के कड़ाहों के चारों ओर दर्भ को फैला देना चाहिए); 'आ छेत्ता वो------ना रिषन् जीवानि शरदः शतम्', इत्यादि तै.ब्रा. 3.7.4, 9.10; आप.श्रौ.सू. 1.5.5 (दर्श)।

आच्य (आ + अञ्च् + ल्यप्) (अपने दाहिने घुटने को) मोड़कर,, भा.श्रौ.सू. 1.8.1; पिण्डपितृ ['दक्षिणं जानु आच्य' में]।

आजानेय वि. अच्छे नस्ल का उच्च कुल वाला, स्पृहणीय जन्म वाला, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.21 (आधान में अश्व); आजनेयान-परजने, का.श्रौ.सू. 22.2.23; 'आजनेयाः कुलीनाश्च विनीताः साधुवाहिनः', अमर. 2.8.44 तु. प्रा.फा. आजात।

आजि स्त्री. (अजन्त्यस्याम्, अज् + इण्) धावन - प्रतियोगिता, दौड़ (ऋ.वे. 1.116.15); जब तक उसकी साँस नहीं छूटती तब तक दौड़ते रहना, हि.गृ.सू. 2.20.11।

आजिग न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.9.6, सा.वे. 1.468 पर आधृत।

आजिसृत् पु. (आजौ सरतीति आजि + सृ + क्विप्) धावक सारथी, मा.श्रौ.सू. 7.1.3.12।

आज्य न. (आ + अञ्ज - क्यप्) 1. घृत की आहुति की प्रक्रिया (तन्त्र) का नाम। अन्य प्रक्रिया परिचरण के रूप में जानी जाती है। अन्त्येष्टि-संस्कार के समय निर्मित अग्नि पर इसके दक्षिणी भाग से इस प्रक्रिया से बारह चम्मच भर घृत की एक आहुति दी जाती है, श्रौ.को. (अं) I.ii.10.78; बौ.श्रौ.सू. 3.12; 20.22; 24.33; 28.5; 12; 2. पिघला हुआ घृत, आहुति के आवश्यक द्रव्यों में एक, जिसे पवित्र करने वाले पवित्रों से ढके हुए पात्र 'स्थाली' में उड़ेला जाता है, गार्हपत्य के जलते अंगारों पर पुनः पुनः पिघलाया जाता है। पवित्रों को इसके ऊपर आगे एवं पीछे की ओर घुमाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.6.1-7 (दर्श)। आज्य शब्द का अर्थ है घृत, का.श्रौ.सू. 1.8.36 (टीका); जब किसी अन्य द्रव्य का उल्लेख न हुआ हो तो आज्य ही एकमात्र आहुति द्रव्य होता है, का.श्रौ.सू. 1.8.38; - **गान** एक स्तोत्र का गायन है, ला.श्रौ.सू. 7.13.0; 3. सोम में प्रयुक्त प्रशस्ति (स्तोत्र), जै.ब्रा. I. 320।

आज्यग्रह पु. (आज्ये आज्यस्य वा ग्रहः) (करछुल में) आज्य = घृत के निकालने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.29; एक करछुल भर घृत, आप.श्रौ.सू. 12.7.9; जिस समय सुब्रह्मण्य 'सुब्रह्मण्या' का उत्कर के समीप उच्चारण करता है, उस समय अध्वर्यु द्वारा ग्रहण किये जाने वाला घृत का प्याला अथवा हवि, जै.श्रौ.सू. 1.8; श्रौ.को. (अं.) II.386; इस प्याले का ग्रहण यजमान के लिए होता है यदि वह तेजस्काम (तेज की कामना वाला) हो, आप.श्रौ.सू. 12.7.5-8.14; श्रौ.को (अं.) II.404. सत्या.श्रौ.सू. (8.2) के अनुसार इसका ग्रहण 'दधिग्रह' के स्थान पर किया जाना चाहिए।

आज्यग्रहण न. (आज्यस्य ग्रहणम्) करछुल (स्रुव) में घी को लेना 'स्रुवेणाज्यग्रहणम् चतुर्जुह्वाम्-----' का.श्रौ.सू. 2.7.9।

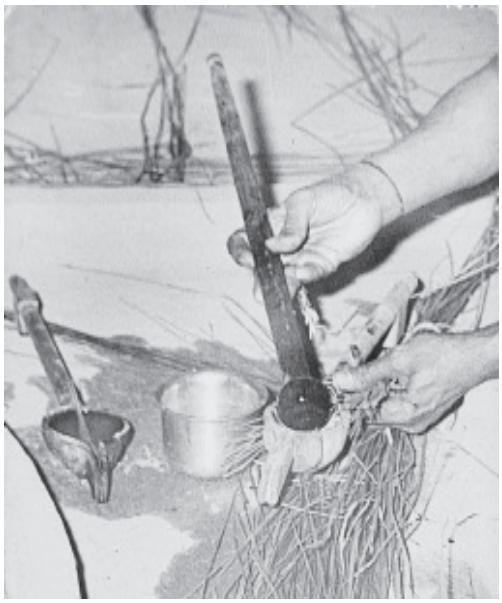

आज्यग्रहण

आज्यतन्त्र (आज्यस्य तन्त्रम्) न. घृत जिसमें मुख्य आहुति द्रव्य है, ऐसी कर्मकाण्डीय प्रक्रिया। विस्तारपूर्ण कृत्य निम्नलिखित है : मन्त्रों का जप करना, बर्हिष् को काटना, वेदि, महावेदि, अग्नि को आगे ले जाना, व्रत-ग्रहण, पवित्रों का निर्माण (पवित्रों को तैयार करना), अंगार पर प्रोक्षण, अंगारों को रखना, ब्रह्मा का अपना आसन ग्रहण करना, पवित्र घास (दर्भ) को फैलाना, जल को रखना, घृत को तप्त करना (गर्म करना), प्यालों को ग्रहण करना, प्रारम्भ में निर्मित (पुराकृत) हविस्, आज्यभाग एवं 'अभ्यातान'-संज्ञक आहुतियाँ; इससे पूर्व-भाग समाप्त होता है। बाद वाले भाग में जो कृत्य होते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—अभ्यातान, पार्वण-आहुतियाँ, सम्मृद्धिहोम, सन्तति होम, स्विष्टकृत्, प्रायश्चित्त, संस्थित-होम, चतुर्गृहीत-होम, बर्हिर्होम, संस्रावहोम, विष्णु-क्रम, व्रतविसर्जन, ऋत्विक्-शुल्क (दक्षिणा), ब्रह्मा का दूर जाना। पाकतन्त्र में अभ्यातान नहीं होता एवं मुख्य आहुति पके हुए चावल एवं पुरोडाश की होती है, काशिकर, पृ. 138; भा.श्रौ.सू. (परिशेष) 32।

आज्यदोह न. जिस व्यक्ति की मृत्यु निकट हो, किन्तु उसकी स्मृति का लोप न हुआ हो, के प्रति उसे स्वर्ग प्राप्ति कराने के उद्देश्य से गाये जाने वाले एक साम का नाम। ये गान 'आदित् प्रत्नस्य----सा.वे. (ग्रा.गा.) 1.1.34, 'उद् वयं तमसस्परि-----' (जै.ब्रा. 2.68) एवं उन्नयामि----' ऋचाओं पर आधृत है; तु. सा.वे. आरण्य 1.2.16.18; ला.श्रौ.सू. 1.5.9; 9.7.13; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.12; निदा.सू. 8.5.33; भा.श्रौ.सू. 2.17.5; देखें - श्रौ.को. (अं) I.(ii) 1078; वा.सं.11.82।

आज्यधुर् स्त्री. आज्य-स्तुति से सम्बन्धित ऋचा, जै.ब्रा. I.130।

आज्यप पु. (बहु.) (आज्यं पिबतीति आज्यपः, आज्य + पा + क), ('स्वाहाकृति', अर्थात् होता यक्षदग्निं स्वाहा, इत्यादि से सम्बन्धित) देवतागण, जिन्हें घी को पीने वाला माना गया है, मा.श्रौ.सू. 5.2.8.14-15; आश्व.श्रौ.सू. 1.5.24; शां.श्रौ.सू. 1.7.6, पाँचवें प्रयाज में, स्वाहाग्निं-----स्वाहा देवा आज्यपाः; उन देवताओं का पारिभाषिक नाम, जिन्हें आज्य की आहुति दी जाती है (अर्थात् प्रयाज एवं अनुयाज के देवता लोग), आश्व.श्रौ.सू. 5.3.1-7, 9.12।

आज्यप्रेरक पु. (आज्यस्य प्रेरकः, प्रेरक - प्र + रिच् + घञ्), आज्य = घी का शेष, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.29।

आज्यबिन्दु (आज्यस्य बिन्दुः) आज्य की बूंद, भा.श्रौ.सू. 3.7.14 (प्रत्नीसंयाज में इडा-भाग के रूप में प्रयुक्त) आप.श्रौ.सू. 3.9.7।

आज्यभाग पु. (द्वि.) दर्श में प्रधान आहुति के पूर्व अग्नि एवं सोम से सम्बन्धि घी की दो आहुतियाँ। आज्यभाग चार बार एवं कुछ के मतानुसार पाँच बार आश्रावण-प्रत्याश्रावण पूर्वक स्रुव से जुहू में एवं बाद में याज्या के साथ-साथ निकाला जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.18.1-8; हि.ध. II (2). 1060; आप.गृ.सू. 4.10 (विवाह); 2.6; शां.गृ.सू. 1.16.5; प्रतिदर्श (प्रकृति) इष्टि में प्रयाज आहुतियों के पश्चात् सामान्यतया घृत की दो आहुतियाँ दी जाती है। जिन देवताओं को ये आहुतियाँ दी जाती है, काम्य-इष्टियों में वे भिन्न-भिन्न हैं, विस्तृत विवरण के लिए देखें - श्रौ.को. (अं) I. पृ. 539-40। नाम सम्बन्धित पुरोऽनुवाक्यों में आने वाले विशिष्ट शब्दों पर आधृत है। वे (नाम) हैं—अप्सुमन्त्, जीवातुमन्त्, रक्षितवन्त्, रयिमन्त्, वार्त्रघ्न, विस्वतवन्त्, वृधन्वन्त्, वृषण्-वन्त्, हारीवन्त एवं (बहु.) (प्रायणीयेष्टि में पथ्या स्वाति, अग्नि, सोम एवं सवितृ) को घृत की आहुतियाँ, आप.श्रौ.सू. 10.21.11 (रु. यह किसी इष्टि में दो आज्य भागों की वृद्धि नहीं है) देखें, श्रौ.प.नि. 31.257।

आज्यलिप्त वि. (आज्येन लिप्तम्) घी से सने हुए अर्थात् घी को हस्तगत करने के लिए प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 2.7.2; मा.गृ.सू. 1.3.4।

आज्यलेप पु. (आज्यस्य लेपः) घी का लेप, शा.गृ.सू. 1.16.5 (विवाह)।

आज्यविकार पु. (आज्यस्य विकारः) आज्य (घृत) का स्थानापन्न अथवा विकल्प; 'दधि मधु घृतम् आपो धानास्तण्डुलाः इत्येकेषाम् आज्यविकाराः', आप.श्रौ.सू. 19.21.15।

आज्यशस्त्र न. (आज्यस्य शस्त्रम्) सोम याग के प्रातःकालीन सत्र के दौरान पढ़ी जाने वाली स्तुति (शस्त्र) का नाम जिस समय शस्त्र का पाठ किया जाता है, उस समय चषक को स्फीत कर देना चाहिए, वैता.श्रौ.सू. 19.15-20; 20.12, जिस समय होता आज्य-शस्त्र पढ़ने वाला होता है, उस समय 'पिता मातरिश्वा अच्छिद्रा पदो सिग् अशीया सोमो नीथाविन् नीथा निनेषद् बृहस्पतिरुक्थामयानि शंसिषद्' को बुदबुदाये (जप करे)। उसके बाद 'आहाव' बनाकर 'सोम सावो3' वह तुष्णींशंस का पाठ करे, अर्थात् अग्निर्ज्योतिरग्निः-------। उसके बाद वह 'पुरोरुच' यजुष् का प्रत्येक वाक्यांश पर 'अग्निर्देवेद्धः', अग्निर्मन्विद्धः---, 'सो अध्वरा करति जातवेदो; ओम्' के रूप में यति करते हुए पाठ करे। इसके शीघ्र बाद वह आज्य सूक्त, अर्थात् 'प्र वो देवाय' (ऋ.वे. 3.13) का पाठ करे। सूक्त के पाठ के बाद वह 'आहाव' का उच्चारण करे, अन्तिम मन्त्र को तीन बार पढ़कर शस्त्र को समाप्त करना चाहिए एवं तत्पश्चात् 'उक्थवीर्य यजुष्' 'भा विभा उषाः स्वर् ज्योतिः श्लोकाय त्वोक्थम् अवाचि।' उसके बाद यह मान्यता है कि वह याज्या एवं वषट् का पाठ करे, शां.श्रौ.सू. 7.9; 8.15.2 [चि.भा.से. अग्निष्टोम के प्रथम सवन में चार वाचन = पाठ; प्रथम होता द्वारा, दूसरा मैत्रावरुण द्वारा, तृतीय ब्राह्मणच्छंसी द्वारा एवं चतुर्थ अच्छावाक द्वारा, भा.श्रौ.सू. 7.17; 14.9-10; आप.श्रौ.सू. 12.27.11.7]; श्रौ.को. (सं.) II (I) 323-27; देखें - शस्त्र।

आज्य-संस्कार पु. (आज्यस्य संस्कारः) घृत का यज्ञ में इसके प्रयोग के पूर्व शुद्धीकरण (पवित्रीकरण) अथवा संस्कार का कृत्य, आप.गृ.सू. 1.22; गौ.गृ.सू. 1.7.24-28; पिघलाया जाता है (विलाप्य); स्थाली में उड़ेला जाता है, दो दर्भ को इस पर रख देते हैं, अंगारों पर चढ़ा दिया जाता है। जलते हुए घास के अग्र भाग से दीप्त किया जाता है। उल्मुक (जलती आग) को तीन बार चारों ओर घुमाया जाता है, अग्नि से बाहर निकाला जाता है, अंगारों को पीछे सरका दिया जाता है, पवित्रों से उछालने (उत्पवन) द्वारा तीन बार पवित्र किया जाता है।

आज्यस्तोक पु. (आज्यस्य स्तोकः) घी की बूंद, बौ.श्रौ.सू. 2.9:6।

आज्यस्तोत्र न. (आज्यस्य स्तोत्रम्) सोम याग में आज्य की स्तुति (स्तोत्र)। अध्वर्यु प्रस्तोता को पवित्र घास की दो पत्तियों को सौंपने के द्वारा (सौंपते हुए) औपचारिक रूप से आज्यस्तोत्र को नियत करे, (आरम्भ करें) बौ.श्रौ.सू. 7.17; भा.श्रौ.सू. 13.32.8; आप.श्रौ.सू. 12.28.5-8; 14.10.8; मा.श्रौ.सू. 2.4.2.37-39; स्तोत्रमुपाकरोति तृणाभ्याम्--- का.श्रौ.सू. 9.14.4; एवं धुर्येषु सर्वत्र, का.श्रौ.सू. 9.14.5; ला.श्रौ.सू. 2.5.18; 22-22, 26.28; 2.6.1-12. स्तोत्र में अन्तिम ऋचा का गान प्रारम्भ करने के पश्चात् प्रस्तोता को 'एषा' शब्द के साथ शस्त्र के पाठक पर दृष्टि रखनी चाहिए। (देखना चाहिए)चि.भा.से. आज्यशस्त्र की अनुकृति वाले चार गान (जिसे क्षुल्लकवैश्वदेवस्य स्तोत्र भी कहा जाता है) का गान प्रस्तोता, उद्गाता एवं प्रतिहर्ता के द्वारा प्रातः सत्र के दौरान औदुम्बरी शाखा (खम्भें) के समीप किया जाता है। प्रथम गान, ऋ.वे. 6.16. 10-12; द्वितीय, ऋ.वे. 3.62, 16-18; का तृतीय ऋ.वे. 8.17.1-3 पर एवं चतुर्थ ऋ.वे. 3.12.1-3 पर; इसे 'धूर्य' भी कहते हैं]।

आज्यस्थाली

आज्यस्तोत्रिय वि. (आज्यस्तोत्रस्येदम्, आज्यस्तोत्र + छ) आज्यस्तोत्र से सम्बन्धित (ऋचा), वैता.श्रौ.सू. 31.16।

आज्यस्थाली स्त्री. (आज्यस्य स्थाली) वह पात्र जिसमें आज्य रखा जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.7.5; आज्यस्थाली ध्रुवार्थम, का.श्रौ.सू. 8.2.28;--------आज्यस्थालीमाग्नीध्र:, का.श्रौ.सू. 3.6.21; शां.श्रौ.सू. 17.11.4. आज्यस्थाली वह पात्र है जिसमें दो पवित्रों को रखकर घृत रखा जाता है, ध.शा.का. इति 532 पा.टि.।

आज्यहविस् वि. (आज्यं हवि: = हविर्द्रव्यं यस्य स:) आज्य घृत है हवि जिसका, आज्यरूपी आहुति-द्रव्य वाला (आज्यहविषौ आज्यभागौ), आप.श्रौ.सू. 2.18.1; उपसद् इष्टि में आज्य हविर्दव्य है, श्रौ.को. (सं.) II.131।

आज्यावेक्षण

आज्यावेक्षण न. (आज्यस्य अवेक्षणम्, अवेक्षण = अव ईक्ष् + ल्युट्) इष्टि की वेदि में रखे हुए आज्य = घृत में यजमान का मन्त्रपूर्वक देखना, श्रौ.प.नि. 19.157; यजमान के अतिरिक्त यजमानपत्नी एवं अध्वर्यु भी आज्यावेक्षण करते हैं, वैसे मुख्यत: यह कृत्य यजमानपत्नी-कर्तृक ही हैं (वि.द्र. यज्ञतत्त्वप्रकाश चि. स्वा. शास्त्री 42-43), वा.सं. में आज्यावेक्षण का मन्त्र है 'अदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवपश्यामि, वा.सं 1.30)।

आज्येडा (आज्यस्य इडा, आज्यमेव इडा) स्त्री. दीक्षणीय इष्टि के पत्नीसंयाज में मुख्य आहुति द्रव्य के रूप में प्रयुक्त घृत (एवं) कार्यसम्पादक ऋत्विज् द्वारा इडा भाग-शेष के रूप में उपभुक्त (भक्षित)। दीक्षणीय का अनुष्ठान केवल आज्येडा-कृत्य-पर्यन्त ही होता है, श्रौ.को. (अं) II.60; वै.श्रौ.सू. 12.5 (चि.भा.से., आज्य से सिक्त पुरोडाश, भा.श्रौ.सू. 4.19.6 (दर्श); देखें - श्रौ.प.नि. 38.315-18।

आज्येडा

आञ्जन न. (अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु + ल्युट् अञ्जनमेव आञ्जनम्) दर्श के लिए नियत द्रव्यों में एक, आँखों के लिए अञ्जन, आप.श्रौ.सू. 1.2; शरीर के लिए अभ्यञ्जन सञ्ज्ञक मरहम; दो मिश्रित जलों से युक्त समञ्जन-संज्ञक मरहम, आप.श्रौ.सू. 12.6.3; भा.श्रौ.सू. 1.7.9; तु. उपाञ्जन, बौ.श्रौ.सू. 6.24; अवाञ्जन = श्लक्ष्णपेषण, बौ.श्रौ.सू.10.13; अञ्जन के उपयोग से युक्त कृत्य का नाम, उस कृत्य का नाम जिसमें अञ्जन का उपयोग होता है, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.11।

आञ्जीगवि पु. (अञ्जीगवस्यापत्यं पुमान्) एक आचार्य का नाम, वैदिक कर्मकाण्ड का प्रमुख-पुरुष, श्रौ.को. (अं.) I.i.41, इत्यादि; बौ.श्रौ.सू. 7.4:24।

आढारिका स्त्री. शतपदी, सौ पैरों वाली, इसे जीवित पीस दिया जाता है एवं इसका चूर्ण बना लिया जाता है। इसका चूर्ण पति द्वारा अपने पति के जनानाङ्ग में अवैध यौन सम्बन्ध के विरुद्ध निरोधात्मक आकर्षण के रूप में डाल दिया जाता है, आ.गृ.सू. 23.3।

आतञ्चन न. (आ + तञ्च् + ल्युट्) दूध को दुहा जाता है एवं यज्ञ के एक दिन पूर्व (पूर्ववर्ती दिन) इसे जमा दिया जाता है एवं ताजे गरम दूध के आतञ्चन-संघटक (जमाने वाले तत्त्व) के रूप में इसका उपयोग किया जाता है। दधि का

उपयोग हविर्दव्य के रूप में किया जाता है (दर्श) यदि दधि को जमाने का तत्त्व (वस्तु, दुग्धादि) उपलब्ध न हो, तो अनाज का उपयोग किया जा सकता है, का.श्रौ.सू. 7.88. और अधिक जानकारी के लिए देखें ध.शा.का.इति. पृ. 529 की पाद टिप्पणी संख्या 9)।

आतमितोः क्रि.वि. (आ + तमु ग्लानौ + तोसुन्) साँस की समाप्ति तक, मा.श्रौ.सू. 1.1.25 (द्र. – भावलक्षणे स्थेण् कृभवदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् पा. 3.4.16)।

आतिथ्य (अतिथये इदम्, अतिथि + ञ्य, अतिथेर्ञ्यः पा. 5.4.26) उन सोम की टहनियों की प्राप्ति (स्वागत) का कृत्य, जो खरीदी जाती हैं एवं एक शकट पर प्राचीन वंश तक लायी जाती है, एवं शाही आसन (राजासन्दी) पर रख दी जाती हैं। सोम एक राजा के रूप में समझा जाता है एवं अतिथि के रूप में उसे मधुपर्क, एक गाय आदि अर्पित किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 10.30.1–31; 31.6–7. एक इष्टि का नाम भी आतिथ्य है (अतिथि-सत्कार भी अतिथि शब्द-वाच्य है), विष्णु; स्वागत-सत्कार का एक कृत्य, जिसमें अतिथि के सम्मान में एक गाय का वध किया जाता है, आप.गृ.सू. 7.26।

आतिथ्यवती स्त्री. (द्वि.) (आतिथ्य + मतुप् + ङीप् 'उगितश्च' पा. 4.1.6) दो ऋचाएँ 'समिधाग्निं दुवस्यत', ऋ.वे. 8.44.1 एवं 'आप्यायस्व समेतु ते' ऋ.वे. 1.91.16, ये दोनों ऋचाएं दो आज्य-भागों की पुरोऽनुवाक्याओं के रूप में प्रयुक्त होती हैं = आतिथ्यमत्यौ।

आतिथ्यापरिधि पु. (आतिथ्यायाः परिधिः) आतिथ्या इष्टि की परिधि, आतिथ्या इष्टि में प्रयुक्त परिधि = आवरण काष्ठ, हि.श्रौ.सू. 7.8.4; यह कार्श्मरी-काष्ठ से निर्मित होती है, देखें श्रौ.को. (सं.) II.528।

आतिथ्यावर्हिस् न. (आतिथ्यायाः आतिथ्यायां वा बहिः) आतिथ्या इष्टि में प्रयुक्त बर्हिस्, आप.श्रौ.सू. 12.2.11 (इसी का प्रयोग उपसद् एवं अग्निषोमीय के लिए भी होता है); वे घोड़े के बाल की बनी होती है, श्रौ.को. (सं.) II.528।

अतीषाद न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.11.15, सा.वे. 1.572 पर आबद्ध (निर्मित)।

आतृण न. स्वर्णिम तश्तरी में निर्मित रन्ध्र अथवा विवर, आप.श्रौ.सू. 16.22.5 (अग्नि-वेदि के नीचे तश्तरी पर रन्ध्र के दक्षिण की ओर पुरुषाकृति बनाई जाती है)।

आतृण्ण न. (आ + तृद् + क्त) छेद, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.15।

आत्मन् पु. (अत् + मनिन्) पु. आत्मा, अग्निवेदि का मुख्य भाग (धड़), जैसा कि इसे इसकी पूंछ (पुच्छ) एवं पंखों (पक्ष) से विविक्त किया जाता है (चयन); मा.श्रौ.सू. 6.1.5.31।

आत्मनीन वि. (आत्मने हितम्, आत्मन् + ख 'आत्मन्विश्वजन भोगोत्तरपदात्खः' पा. 5.1.9) धड़ से सम्बद्ध अथवा धड़ के लिए हितकर पा. 5.1.9 (पात्र) (आदित्ये माहेन्द्रेण हुते द्युग्रहण-मात्मनीनेऽवनयति), मा.श्रौ.सू. 7.2.7.20।

आत्मेष्टका स्त्री. (आत्मनः इष्टका) 'गोचिति' नाम वाली अग्नि-वेदि में चयनित (पाँच) इष्टकाओं (ईंटों) का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.7.6; वारा.श्रौ.सू. 2.1.8.2; वैखा.श्रौ.सू. 19.5.41; हि.श्रौ.सू. 12.1.18; मुख्य शरीर पर रखे जाने वाला।

आथर्वण न. द्रव्यों के एक वर्ग का नाम जैसे वि-चिति आदि। इस द्रव्य-वर्ग का उपयोग प्रायश्चित्तिक जल (अग्न्याधेय में अश्व के लिए) को तैयार करने के लिए किया जाता है, श्रौ.को. (अं) I.37।

आदर्श पु. (आ + दृश् + घञ्) वह दर्पण जिसमें या जिसको विद्यार्थी देखता है, आप.गृ.सू. 12.11 (समावर्तन); वधू भी आगे वामहस्त में लेती है, शां.गृ.सू. 1.12.7।

आदान पु. न. (आ + दा + ल्युट्) 1. 'ग्रह'-सञ्ज्ञक प्याले के ग्रहण के लिए मन्त्र (आदानाभ्याम् उपनिष्क्रामतः), मा.श्रौ.सू. 2.4.1.10; देखें 2.4.1.6 'आप तुथ है', इत्यादि = आदनमेके, का.श्रौ.सू. 26.1.19 (प्रवर्ग्य में महावीर), (कृष्ण-मृगचर्म को) लेने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.25; 'पाणिभ्यां जुहूं परिगृह्योपभृत्याधानमादानकालेऽसंहादयन्' का.श्रौ.सू. 1.10.9।

आदार पु. एक वनस्पति का नाम, जिसकी लकड़ी का उपयोग प्रवर्ग्य-पात्रों को तैयार करने में किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 9.1–2; ऋ.वे. 1.26.5 (खदिरवल्ली)।

आदिग्रहण न. (आदेर्ग्रहणम्) मन्त्र के आरम्भिक भागों (आदि) का उल्लेख, ला.श्रौ.सू. 1.2.2; 6; 6.3.1; द्रा.श्रौ.सू. 1.1.2; साम का आदि, जै.ब्रा. I.130।

आदित्य (अदितेरिदं आदित्यम्, अदिति + ण्य 'दित्यदित्यादि-त्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' पा. 4.1.85) अदिति से सम्बद्ध (अदित्यं बहुरूपम् आलभेत), मा.श्रौ.सू. 3.7.3।

आदित्यग्रह पु. (आदित्याय ग्रहः) आदित्य के लिए सोम याग के सायंकालीन सवन में अर्पित किए जाने वाले सोम के प्याले (दधि से युक्त) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 6.33; 'अपिहितद्वार आदित्यपात्रमादाय------आदित्यग्रहं गृह्णाति------' का.श्रौ.सू. 10.4.3; मा.श्रौ.सू. 2.5.1.2।

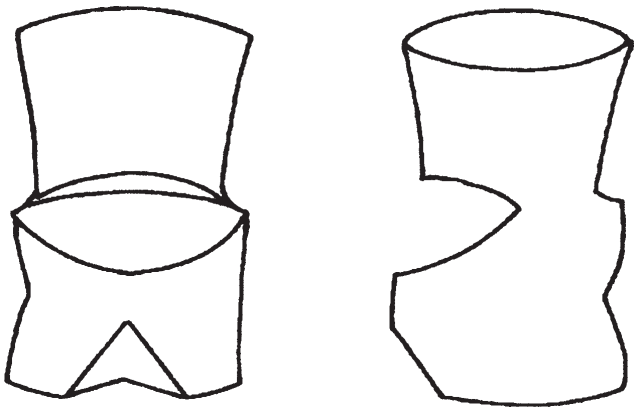

आदित्यग्रह

आदित्यवती स्त्री. (आदित्य + मतुप् + ङीप्) आदित्य के प्रति भक्ति वाली ऋचा, ऋ.वे. 8.101.11; बौ.श्रौ.सू. 21.15.6; आप.श्रौ.सू. 11.5.1; '-----बृहतीष्वादित्यवतीषु गौरीवितेन स्तुवीरन्', का.श्रौ.सू. 25.13.6; मा.श्रौ.सू. 3.7.10; 'बण्महाँ असि सूर्य', इत्यादि; देखें - श्रौ.को. (सं.) II.648; वि. सूर्य की किरणों से युक्त, श्रौ.को. (सं.) II.547, 553।

आदित्यस्थाली स्त्री. (आदित्याय आदित्यस्य वा स्थाली) आदित्य के लिए अर्पणीय सोमरस से युक्त सादा मृत्पात्र, 'तथादित्यस्थाल्युत्तरा, का.श्रौ.सू. 9.2.11; बौ.श्रौ.सू. 25.13.13; आप.श्रौ.सू. 12.2.4; मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15 (अष्टकोणीय आदित्यपात्र)।

आदित्या स्त्री. अग्निवेदि की पाँचवीं तह में प्रयुक्त ईंटो (136-143) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46।

आदित्यानामयन न. एक सत्र याग का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 12.1.1; 5; शां.श्रौ.सू. 13.28.2; आप.श्रौ.सू. 23.9.16।

आदित्यारम्भण वि. (आदित्याद् आरम्भणम् यस्य, आ + रभ् + नुम् + ल्युट्) जो आदित्य - चमस (प्याले) से आरम्भ होता है, आप.श्रौ.सू. 13.9.1 (तृतीयसवन)।

आदित्येष्टका स्त्री. (आदित्या चेयम् इष्टका) आदित्या ईंटें जो दो-दो करके पर्व पर चयनित होती हैं (लगायी जाती है), मा.श्रौ.सू. 6.2.2.11।

आदित्येष्टि स्त्री. (आदित्याय आदित्यस्य वा इष्टिः) दक्षिणा के रूप में तीन गायों के साथ आदित्य के सम्मान में की जाने वाली इष्टि (यज्ञ), श्रौ.को. (अं.) I (ii). 760; 11.56; वैता.श्रौ.सू. 9.23।

आदिप्रदिष्ट वि. (आदिना प्रदिष्टः, प्रदिष्ट = प्र + दिश् + क्त) (सूक्त के) प्रारम्भिक भाग द्वारा निर्दिष्ट, आप.श्रौ.सू. 24.2.3; भा.श्रौ.सू. 1.1.21; शां.श्रौ.सू. 6.1.25।

आदिशति (आ + दिश् + लट् प्र.पु.ए.व.) नियत करता है, 'बर्हिषि ऋत्विग्भ्य का.श्रौ.सू. 3.4.11 (चतुर्धा कृत्वा बर्हिषि ऋत्विग्भ्य आदिशति)।

आदिष्टदक्षिणा वि. (आदिष्टा दक्षिणा यस्याः सा) जिसके लिए दक्षिणा = ऋत्विक्-शुल्क स्पष्टतया (व्यक्त रूप से) नियत कर दी गयी है, शां.श्रौ.सू. 1.12.11।

आदिष्टसामन् न. (आदिष्टं च तत् साम्) नियत साम, जै.ब्रा. II.131।

आद्यर्त्विज् पु. सोमयाग में चार ऋत्विजों के वर्ग में मुख्य ऋत्विज्, 'अक्त्वैनमाद्यर्त्विग्भ्यः प्रयच्छति', का.श्रौ.सू. 20.1.5, देखें - ऋत्विज्।

आधवनीय पु. एक मिट्टी का हौज (जिसमें पानी रहता है) जिसमें गीले एवं पिष्ट सोम की टहनियाँ रखी जाती है, विभिन्न प्यालों एवं द्रोण कलश में एक पवित्र के माध्यम से इस विधि से निकाले गये रस के उड़ेले जाने के पूर्व हिलाई जाती है, आप.श्रौ.सू. 12.2.12; का.श्रौ.सू. 11.5.6,15; वि. (आ + धू + अनीयर्) वि. 'आधवनीयान् अंशून्' कँपाने योग्य टहनियों को आधवनीय हौज में, आप.श्रौ.सू. 12.8.4।

आधान न. (आ + धा + ल्युट्) 1. उखा-संज्ञक पात्र में अग्नि पर समिधाओं को रखने का कृत्य, 'अहरहरित्याधानम्' का.श्रौ.सू. 16.6.4; देखें - 'वाचं विसृज्य समिदाधानम्', का.श्रौ.सू. 16.6.2; अग्न्याधान, का.श्रौ.सू. 1.1.9; 7.1.3; आश्व.श्रौ.सू. 2.3.25; आप.श्रौ.सू. 5.11.6; 2. विवाह के समय (दारकाले) अथवा पैतृक सम्पत्ति के बटवारे के समय अनुष्ठेय (अनुष्ठान किये जाने वाला) गृह्य अग्नि की स्थापना, शां.गृ.सू. 1.1.2.3. वह वैश्य जो पशुओं से समृद्ध हो, के घर से अथवा जिसने बहुत से यज्ञ किये हों, के घर

से अग्नि लायी जाती है, गौ.गृ.सू. 1.1.16, अथवा मन्थन (घर्षण) से अग्नि को उत्पन्न किया जा सकता है।

आधानमन्त्र पु. (आधानस्य मन्त्रः) पवित्र अग्नि की स्थापना के कृत्य के लिए नियत मन्त्र, वारा.श्रौ.सू. 1.4.2.21 (भूर्भूवो घर्मः शिरस्तदयमग्निः सम्प्रियः पशुर्भिभुवत्, छर्दिस्तोकाय तनयाय यच्च, भृगुणा त्वा अङ्गिरसां व्रतपते व्रतेनादधामि इति भृग्वङ्गिरसाम्। आदित्यानां त्वां देवानां व्रतपते व्रतेनादधामि इत्यन्यासां ब्राह्मणीनां प्रजानाम्---) श्रौ.को. (सं.) I. पृ. 46।

आधानाप्रतिज्ञात वि. (आधानेन निमित्तेन अप्रतिज्ञातः) जिसे अग्नि के आधान से (धनादिजन्य कीर्ति का) लाभ नहीं हुआ है, 'पुनराधेयमाधानाप्रतिज्ञातस्य' का.श्रौ.सू. 4.11.1।

आधाव पु. (आ + धू + घञ्) 'मण्डासु ते शुक्र शुक्रम् आधिनोमि' तै.सं. 3.3.3.1 से प्रारम्भ होने वाले एवं 'शुक्रासु शुक्रम् आधिनोमि' तै.सं. 3.3.3.2 से समाप्त होने वाले 12 मन्त्रों का नाम, जो ग्रन्थिबद्ध एवं उँगलियों के विवर में पकड़े गये सोम के द्वारा होता के प्याले में (स्थित) वसतीवरी जल को हिलाते समय पढ़े जाते हैं, बौ.श्रौ.सू. 14.12; श्रौ.को. (अं.) II.401; श्रौ.प.नि. 267।

आधीतयजुस् न. (बहु.) यजमान के दीक्षा-संज्ञक से सम्बद्ध पाँच अथवा छः आहुतियों के नाम, श्रौ.को. (सं.) II.31, श.ब्रा. 3.1.4; 'आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहा' इत्यादि, तीन चम्मच के माध्यम से।

आध्वर्यव न. (अध्वर्योरिदं, अध्वर्यु + अण्) अध्वर्यु - संज्ञक ऋत्विक् के कर्तव्य, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.32; स्रुव द्वारा जुहू एवं उपभृत् में घृत लेते समय अध्वर्यु द्वारा पढ़े जाने वाले मन्त्र। ये मन्त्र तै.सं. के पुरोडाश-काण्ड में दिये गये हैं; श्रौ.को. (अं) I.i 307। प्रथम तीन स्रुवापूर्ण के लिए मन्त्र हैं 'शुक्रं त्वा-----', वा.सं. 4.26, एवं चतुर्थ के लिए 'पञ्चानां त्वा वातानाम्', भा.श्रौ.सू. 2.4-7; 4.7-6।

आनर्तन न. (आ + नृत् + ल्युट्) नृत्य, नाचना। यह नृत्य ऐसी चार अथवा 8 महिलाओं, जो कि विधवा न हों, के द्वारा उनके भोजन एवं मदिरा से तृप्त (मुग्ध) हो जाने पर किया जाता है, शां.गृ.सू. 1.11.5 (विवाह)।

आनुजावर वि. (वह व्यक्ति) जो उन लोगों का अनुवर्तन करता है जिनके सम्बन्ध उसके समुदाय से हो (रु.); 'अगुरोरनुगामी' (ऐसा बड़ा भाई जो) जीविका के लिए अपने छोटे भाई पर आश्रित हो, धू. एवं रामाण्डार; 'अत्यन्तनिकृष्टः' 'अत्यन्त निम्न योग्यता वाला अथवा अत्यन्त नीच, सायण; आप.श्रौ.सू. 2.19.2, मरणोत्तर बच्चा। कार्यसम्पादक ऋत्विज् मरणोत्तर बच्चा नहीं होना चाहिए (अर्थात् जिस ऋत्विज् का जन्म पिता की मृत्यु के बाद न हुआ हो), श्रौ.को. (सं.) II. 265।

आनुपूर्वी स्त्री. (अनुपूर्वस्य भावः, अनुपूर्व + ष्यञ् + ङीष्) एक ऐसा क्रम जिसमें चीजें एक के बाद दूसरे के क्रम में अथवा एक के बाद एक करके आवें, का.श्रौ.सू. 8.8.27।

आनुपूर्व्य न. (अनुपूर्वस्य भावः, अनुपूर्व + ष्यञ्) (कृत्यों का) नियत क्रम 'षोडशिनि त्वानुपूर्व्यभूयस्त्वात्' का.श्रौ.सू. 1.5.15. मन्त्रपाठ (मन्त्र-आवर्तन) का क्रम, 'सशस्त्रे त्वानुपूर्व्ययोगात्' का.श्रौ.सू. 10.3.5।

आनुयाजिकी स्त्री. (अनुयाजस्य इयम्, अनुयाज + ढक् + ङीप्) अनुयाज (संज्ञक) कृत्य से सम्बद्ध (समिधा), जो अनुयाज के प्रारम्भ के समय अग्नि पर रखी जाती है, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.2।

आनूप न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.16 सा.वे. 1.277 पर निबद्ध।

आन्धीगव न. सायं कालीन सत्र में गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.423, इत्यादि (तृतीयसवन); ला.श्रौ.सू. 6.11.4; 4.5.7; निदा.सू. 5.2.1; 7.2.21; पञ्च.ब्रा. 8.5.12; सा.वे. 1.545 पर निबद्ध; 'पुरोजितो वो अन्धसः'। इस साम की सभी तीन ऋचायें 'मध्ये निधन' अर्थात प्रतीहार विभक्ति में समाप्त होने वाली है (इनका अन्त प्रतीहार विभक्ति में होता है)।

आपत्काला स्त्री.(आपदः कालः आपत्कालः, यस्याः सा) एक असाधारण (कठिन) स्थिति से सम्बन्ध रखने वाली, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.2।

आपरद्वारिक वि. (अपरद्वारस्य इदम्) सदस् के पश्चिमी निष्क्रमण (निकास) द्वार से सम्बद्ध या ले जाया गया, बौ.श्रौ.सू. 21.19 (शलीकि का दृष्टिकोण); श्रौ.को. (सं.) II.520।

आपरिकर्षण न. (आ + परि + कृष् + ल्युट्) परिधि, बौ.शु.सू. 4.34 (532)।

आपर्क्यपृष्ठ पु. (आपर्क्याः पृष्ठा यस्य सः, आपर्क्य - आ +

पृच् + ण्यत्) सवन दिन, जिसमें पृष्ठ्य स्तोत्र मिश्रित प्रकार का होना चाहिए, शां.श्रौ.सू. 10.8.21; क्षुद्र.सू. 2.13:1।

आपर्क्यपृष्ठ्य पु. पृष्ठ स्तोत्र के लिए मिश्रित सामों के साथ छः दिवसीय पृष्ठ्य संज्ञक सोम-याग, आश्व.श्रौ.सू. 8.4.26।

आपस् स्त्री. (बहु.) जल, शां.श्रौ.सू. 4.11.6 (आपोहिष्ठीया) देखें - मिश्र एम., सी.ए.एस.एस., पूना विश्ववि. 1990।

आपाकम् क्रि.वि. (आ + पच् + घञ्) अग्नि-ज्वालन के लिए अर्थात् (उख, आदि) को सेंकने के लिए, मा.श्रौ.सू. 6.1.2.15।

आपाल न. (अपालया दृष्टं साम, अपाला + अण् 'दृष्टं साम', पा. 4.2.7) अपाला द्वारा दृष्ट या अपाला से सम्बद्ध साम का नाम, जै.ब्रा. 1.220।

आपि पु. एक देवता का नाम 'आपये स्वाहा, का.श्रौ.सू. 14.5.13; (वा.सं. 9.20) [वाजपेय]।

आपूर्यमाणपक्ष पु. (आपूर्यमाणः पक्षः) बढ़ते हुए चन्द्रमा वाला पक्ष अर्थात् जो पूर्णिमा के पहले आता है, आप.श्रौ.सू. 15.1.1; विवाह के लिए शुभ काल, शां.गृ.सू. 1.5.5।

आपोहिष्ठीय न. 'आपो हि ष्ठा मयोभुवः' से आरम्भ होने वाला एक सूक्त (ऋ.वे. 10.9), श्रौ.को. (सं) II.461।

आपोहिष्ठीया स्त्री. सोम-याग (अग्निष्टोम) के सायं कालीन सत्र में पढ़े गये अग्निमारुत शस्त्र के अन्तर्गत उच्चारित आपोहिष्ठीय सूक्त (ऋ.वे. 10.9) भाग का निर्माण करने वाली ऋचाओं का नाम, बौ.श्रौ.सू. 8, 14-15 (अन्यत्र शुद्धीकरण के लिए भी)। अध्वर्यु को अग्निमारुत शस्त्र के आपोहिष्ठीय सूक्त को विराम देकर उत्तर देना चाहिए, मा.श्रौ.सू. 2.5.2.23-26; 4.3.43; श्रौ.को. (सं.) II.592।

आप्ती स्त्री (साग्निसोमचयन में) सूक्तहोम एवं आकूती आहुतियों के पश्चात् प्रार्थना के रूप में यजमान द्वारा उच्चरित होने वाले मन्त्रों के वर्ग का नाम, जो अनुबन्ध्या उपहोम का अनुगमन करता है (अर्थात् बाद में आता है), आप.श्रौ.सू. 17.23.12; मा.श्रौ.सू. 6.2.6.24. भञ्जन को समाप्त कर, वह यज्ञ के स्थान से उत्तर की ओर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करता है, अरणी को मथकर अग्नि उत्पन्न करता है फिर वह भञ्जन याग के लिए फैला देता है, मा.श्रौ.सू. 2.5.5.25. वह अर्चना करता है, जब वह आगे जायेगा, इन वचनों के साथ ईंट की वेदि के पास 'दीक्षा के साथ तुम्हारे पास पहुँचा, तपस् के साथ तुम्हारे पास पहुँचा, गाय के साथ तुम्हारे पास पहुँचा; 'आपये स्वाहा' इत्यादि वा.सं. 9.20 के साथ दी जाने वाली आहुतियों के नाम (टीका-द्वादश आप्तीर्जुहोति)।

आप्त्य पु. जल-देवता, वै.श्रौ.सू. 17.7. पात्र्याङ्गुलिप्रक्षालन-माप्त्येभ्यो निनयति----का.श्रौ.सू. 2.6.26; शां.श्रौ.सू. 14.72; 21.15.2, देखें - आप्यनिनयन, न. जल-देवताओं के सम्मान में जल को उड़ेलना, बौ.श्रौ.सू. 25.8:12 (दर्श) आप्त्य देवों की संख्या तीन है (त्रित, द्वित एवं एकत)।

आप्यलेप पु. (आप्यस्य लेपः) आप्य (आप्त्य) देवताओं (के लिए अर्पण के लिए प्रयुक्त करछुल) में लेप लगाना, आप.श्रौ.सू. 1.14.17 (श्वोभूते आप्यलेपं निनीय)।

आप्यायन

आप्यायन न. (ओप्यायी 'प्या' + ल्युट्) चमसियों (चमसिन् लोगों) द्वारा 'आप्यायस्व-----' एवं सन्ते पयांसि ऋचाओं के साथ सोम रस से चमसों (प्यालों) को भरना अथवा फुलाना, वै.श्रौ.सू. 15.33; मा.श्रौ.सू. 2.4.1.44; का.श्रौ.सू. 9.12.3-8; वा.सं. 12.112-113; टहनी के लिए मन्त्र को जपने के साथ अथवा स्पर्श कर अथवा उन पर जल को छिड़ककर सोम की टहनियों को फुलाने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 11.1.8; बौ.श्रौ.सू. 6.19; मन्त्र निम्न स्वर में पढ़े जाते हैं, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.20. यह कृत्य रस निकालने के पूर्व सम्पन्न होता है। अपने-अपने प्यालों में स्थित सोम रस को पीकर चम्मच को पकड़ने वाले ऋत्विज् एक मन्त्र (ऋ.वे. 1.91.16) का उच्चारण करते हुए अपने प्यालों पर इस कृत्य का अनुष्ठान करते हैं, आप.श्रौ.सू. 12.25.24-

27; पशु में भी इसका अनुष्ठान किया जाता है, जिसमें मृत पशु का प्राण अथवा श्वास यजमान-पत्नी अथवा अध्वर्यु, जो इस पर (मृत पशु पर) जल छिड़कता है, के द्वारा फुलाया जाता है (अथवा दृढ किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 7.18.6-7; मारी हुई गाय के ज्ञानेन्द्रियों (प्राणों) को शव पर जल छिड़ककर फुलाने अथवा मजबूत बनाने का कृत्य, हि.गृ.सू. 2.15.5 (श्राद्ध); देखें मदन्ती-संज्ञक जल से सोम की टहनियों को मजबूत करना (अथवा बढ़ाना) हि.ध. II.(2) 1147; आप.श्रौ.सू. 11.1.11 की टीका के अनुसार इसका 'मन्त्रपूर्वक स्पर्श करना' किन्तु अन्य लोगों के अनुसार 'जल से तर करना', वा.सं. 5.7 एवं तै.सं. 1.2.11.1 इस अवसर पर 'आप्यायताम्' शब्द को पढ़े जाते हुए समाहित करते हैं; देखें - श्रौ.प.नि. 212.76।

आ प्रातराशम् क्रि.वि. सबेरे के भोजन अथवा नाश्ते (कलेवा) तक, कौशि. सू. 141.18।

आप्री स्त्री. 1. सूक्त के मन्त्रों के द्वारा सम्बोधित देवता । देवतागण। निरु. 8.22 ने इसे 'आप्' (प्राप्त करना) से निष्पन्न माना है। 2. वह ऋचा जो देवता को तृप्त अथवा प्रसन्न करती है, ऐ.ब्रा. 6.4; आप्रीभिराप्रीणाति, प्री 'प्रसन्न करना से; श.ब्रा. 3.8.1.2 इसे पॄ पूरणे (भरना, पूरा करना) से निष्पन्न मानता है। निरुक्त ऋग्वेद 10.110 की 7.2.2 को योग के साथ एवं उन्हें तीन वर्गों में विभाजित कर आप्री सूक्त के रूप में स्वीकार करता है : तनूनपात् एवं नराशंस; केवल नराशंस एवं केवल तनूनपात्, (सभी 11 में) जिसमें 11वां 'प्रैषाध्याय' है; विभिन्न गोत्रों के आप्रीयों का अभिज्ञान (पहचान) करता है (तु.तै.सं. 4.1.8; तै.ब्रा 2.6.12 एवं 18 एवं हागकृत ऐ.ब्रा. का अनुवाद); पशुयाग की पूर्व-आहुतियों के प्रदान के समय 'होता' नामक ऋत्विज् द्वारा पढ़े जाने वाले सूक्त का नाम। अध्वर्यु द्वारा निर्दिष्ट मैत्रावरुण होता को प्रैष देता है, जो (होता) इस पर प्रत्येक प्रैष के तारतम्य में आप्री सूक्त की ऋचाओं को एकैकशः (एक-एक करके) पढ़ता है। यजमानों के विभिन्न गोत्रों में भिन्न-भिन्न सूक्त आप्री सूक्त के रूप में स्वीकार किये गये हैं; शौनक गोत्र के यजमान के लिए 'समिधो अग्निर्निहितः' से प्रारम्भ होता है, जो वसिष्ठ गोत्र वाले यजमान हैं, उनके लिए 'जुषस्व नः समिधम्, इत्यादि एवं अन्य गोत्रों के लिए 'समिधो अद्य मानुषो' इत्यादि से प्रारम्भ होता है। अथवा इनको ऋषियों से सम्बद्ध माना जा सकता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 816. ये ऋचाएं हैं वा.सं. 29.25-36, जो याज्यायें हैं, एवं इनका पाठ होता द्वारा यजमान के गोत्र के अनुसार प्रयाज (पशु) में आहुतियों को डालते समय किया जाना चाहिए। ऋ.वे. में कुल मिलाकर 10 आप्री सूक्त हैं, जिनमें ये ऋचाएं आती हैं, प्रत्येक भिन्न गोत्र के लिए नियत', ऋ.वे. 1.13 (मेधातिथि कण्व); 1.142 (दीर्घतमस् औचथ्य, अङ्गिरस); 1.188 (अगस्त्य); ऋ.वे. 2.3 (गृत्समद एवं शौनक); ऋ.वे. 3.4 (विश्वामित्र); ऋ.वे. 5.5 (अत्रि); 7.2 (वशिष्ठ); 9.5 (कश्यप); 10.70 (वध्र्यश्व); 10.110 (जमदग्नि); आश्व.श्रौ.सू. 3.2.5.9; पशु में 11 प्रयाजों के तारतम्य अथवा सामञ्जस्यानुसार आप्री सूक्तों के लिए संयोजन, देखें - कैलेण्ड, पञ्च. ब्रा. 413.14; हि.ध. (2). 1118.19, ये आप्री ऋत्विजों के परिवारों के बीच मैत्रीभाव के लिए गीत के रूप में प्रयुक्त रही होंगी, मैक्समूलर, प्रा.सं.सा. का इतिहास 247; तु.शां.श्रौ.सू. 5.16.5; 'आप्रियो द्वादशोर्ध्वा अस्येति' का.श्रौ.सू. 16.1.12; आप.श्रौ.सू. 14.31.8; बौ.श्रौ.सू. 15.28.9; देखें - पोतदार के.आर.; PAIOC Pt.II, नागपुर 1951 पृ. 47.56।

आप्रीसूक्त पु. (आप्री चासौ सूक्तञ्च) आप्री-संज्ञक सूक्त, शां.श्रौ.सू. 11.13.7; आश्व.श्रौ.सू. 12.10.1।

आप्लवन न. (आ + प्लु + ल्युट्) नहाना, स्नान, बौ.श्रौ.सू. 21.3:8; 'आप्लवनपात्रं वा' का.श्रौ.सू. 24.6.38।

आप्लावन (आ + प्लु + णिच् + ल्युट्) (इष्टि में) पात्री-संज्ञक पात्र में स्थित आँटे में मदन्ती-संज्ञक जल को उड़ेलना, श्रौ.प.नि. 17.140।

आप्लाव्य (आ + प्लु + णिच् + ल्यप्) नहलाकर, स्नान कराकर, आश्व.श्रौ.सू. 6.9.2।

आप्लुत्य (आ + प्लु + तुक् + ल्यप्) स्नान करके, नहाकर, मा.श्रौ.सू. 1.5.1.12; शां.श्रौ.सू. 3.14.5।

आभीक न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.9.8, सामवेद 1.467 पर निबद्ध।

आभीषव न. सा.वे. 1.512 पर निबद्ध एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.9.15; पञ्च.ब्रा. 15.3.27 के रूप में भी।

आभ्युदयिक न. (अभ्युदय + ठक्) समृद्धि (मङ्गल) की प्राप्ति को उद्दिष्ट कर पूर्वजों (पितरों) के लिए श्राद्ध का

कृत्य, शां.गृ.सू. 4.4.1 इन कृत्यों का अनुष्ठान पुत्र-जन्म, पुत्र अथवा पुत्री के विवाह, चूडाकरण, नामकरण आदि जैसे अवसरों पर किया जाता है।

आभ्राज न. सा.वे. 1.27 पर निबद्ध एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 4.6.14।

आमन न. एक प्रकार के पात्र का नाम। यह मिट्टी अथवा काष्ठ से निर्मित कोश (खोल) के आकार का होता है। काम्येष्टि के सम्बन्ध में पके हुए चावल से तरल भाग इसमें उड़ेला जाता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.1.10-18; श्रौ.को. (अं) I.ii.579।

आमनपात्र (आमनस्य पात्रम्) 'स्नेह' का पात्र, मा.श्रौ.सू. 5.2.1.16, इसका उपयोग (ग्रामकाम = गाँव की कामना वाले व्यक्ति द्वारा अनुष्ठित काम्येष्टि) के स्विष्टकृत् के पूर्व चार आहुतियों (द्रवाहुतियों) को अर्पित करने के लिए किया जाता है; देखें - गेल्डर का अनुवाद।

आमन्त्र्य (आ + मन्त्र् + ल्यप्) बुलाकर, पुकार कर, निमन्त्रित कर, 'इत्यामन्त्र्य सर्वेषु' का.श्रौ.सू. 19.1.18; शेषमुपह्वास्वेत्यामन्त्र्य---- का.श्रौ.सू. 4.4.16; 20.6.18।

आमपेष न. (आमस्य = अपक्वस्य पेषः) न भुने हुए (जौ) के दानों का मिष्टान्न रोटी आप.श्रौ.सू. 8.5.40,42 (करम्भ-पात्राणि); तु. 8.6.3, 'ईषदुपतप्तानां पत्नी करम्भपात्राणि करोति'।

आमयवपिष्ट न. (आम-अपक्वयवानां पिष्टम्) कच्चे यव का आटा अथवा खाद्य (जिनसे करम्भपात्र का निर्माण किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 1.7.4.1।

आमश्राद्ध न. (आमे न श्राद्धम्) (कच्चे मांस के) प्रदान से सम्पन्न होने वाला एक विशेष श्राद्ध, अग्निवे. गृ.सू. 3.12.1:16।

आमहीयव न. सा.वे. 1.467 पर निबद्ध एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 7.5.1; सा.वे. 1.231 पर पञ्च.ब्रा. 11.11.7 भी, 'उच्चा ते जातमन्धसा', ऋ.वे. 9.61.10।

आमहीया स्त्री. 'अपाम सोममृता अभूम----' ऋचा का नाम, अन्तिम भाग 'अमृतं मर्त्यस्य' (विद्या संस्क. अमृतत्वस्य), ऋ.वे. 8.48.3; तै.सं. 3.2.5.4; ---- आमहीयां जपन्तो गच्छन्ति----। का.श्रौ.सू. 10.9.8 (अवभृथ)।

अमिक्षा स्त्री. जमाये गये एवं ताजे गरम दूध का मिश्रण। यह मिश्रण का ठोस भाग होता है। पूर्व दिन (सायंदोह) के जमाये गये दूध पर ताजे गरम दूध को उबालने के फलस्वरूप प्राप्त, आप.श्रौ.सू. 8.2.5-6; का.श्रौ.सू. 4.3.10 (आमिक्षायामुभयोस्तन्निवृत्तेः) मी.सू. 2.2.23; 4.1.22 पर शावर भाष्य के उल्लेखानुसार आमिक्षा में दुग्ध एवं दधि बचे रहते हैं; वाजिन् (का.श्रौ.सू. 4.4.9 टीका) भी देखें; साधारणतया मैत्रावरुण को अर्पित किया जाता है, श्रौ.को. (सं) II.568; श्रौ.प.नि. 79.463-65।

आमिक्षापयस् न. (आमिक्षायै पयः) दधिरूप में परिणत प्रातःकालीन दुग्ध (प्रातर्दोहविकार), आप.श्रौ.सू. 8.5.33 (वरुणप्रघास सद्यः-पक्ष)।

आमूलोच्छेदनात् (तु. पञ्चम्यपाङपरिभिः, पा.2.3.11) घास की जड़ उखाड़ नही दी जाती तब तक आमूलोच्छेदना-दोषधीनाम् का.श्रौ.सू. 2.6.1 (वेदि में)।

आम्नातमन्त्र (आम्नातः मन्त्रः यस्मै येभ्यः वा) (वे देवता) जिनके लिए मन्त्र उल्लिखित है (आम्नात हैं); अन्य केवल 'स्वाहा' के उच्चारण द्वारा पूजनीय हैं, शां.गृ.सू. 1.9.18।

आम्नान न. (आ + म्ना + ल्युट्) मन्त्रों की परम्परा, शां.श्रौ.सू. 6.1.2; 'तत्राम्नानादतिरात्रांश्चेके' का.श्रौ.सू. 23.1.4; ला.श्रौ.सू. 9.7.2; 10.3.4।

आम्नाय (आ + म्ना + घञ्, युगागम) आवृत्ति द्वारा याद किये गये (अधिगत) वैदिक पाठ्य, गौ.गृ.सू. 1.6.12, वेद या वैदिक परम्परा 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्' मी.सू. 1.2.26।

आयतन (आ + यत् + ल्युट्) अग्नि का स्थान, अग्निगृह, भा.श्रौ.सू. 1.6.14; वेदि का जहाँ करछुलों को रखना होता है, (2.6.11)।

आयवन न. (आ + यु + ल्युट्) हिलाने अथवा चलाने की छड़ी, मा.श्रौ. आयुवन्त्यनेन, सू. 1.1.2.2.11; शां.श्रौ.सू. (12.8.1)।

आयाम पु. (आ + यम् + घञ्) लम्बाई (देशान्तर पक्ष), बौ.शु.सू. 1.88।

आयास्य पु. (अयास्यस्य गोत्रापत्यं) एक सोम याग में चार प्रधान ऋत्विजों में एक के रूप में सहायक का कार्य करने के लिए अधिकृत अयास्क गोत्र से सम्बद्ध एक ऋत्विज्, वैखा.श्रौ.सू. 12.1-4; न (अयास्येन दृष्टं साम), एक साम का नाम पञ्च.ब्रा. 11.8.9, सा.वे. 1.511 पर, सामवेद 1.509

पर भी, पञ्च.ब्रा. 16.12.5, तिरश्चीनिन्धन, पञ्च.ब्रा. 14.3.21, सा.वे. 1.511 पर।

आयुध न. (आयुध्यति अनेन, आ + युध् + घञ्) हथियार (तीन बाणों के साथ धनुष्, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.7; तु.ला.श्रौ.सू. 3.10.7।

आयुर्दा स्त्री. घृत की दश आहुतियों के वर्ग का नाम। दसवीं आहुति अध्वर्यु द्वारा उस समय दी जाती है, जब वह अवभृथ के लिए दूर सञ्चरण करने वाला होता है। यह (आहुति) 'अग्ने हविषो जुषाणो-----मन्त्र के साथ दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 8.18-19; श्रौ.को. (सं.) 2.594; तु. आश्व.श्रौ.सू. 2.10.4; शां.श्रौ.सू. 2.11.3; 4.12.10; आप.श्रौ.सू. 5.6.3; भा.श्रौ.सू. 6.2.1; मा.श्रौ.सू. 2.5.4.20।

आयुवान वि. (एक मुट्ठी भर दर्भ को) पकड़ने वाला, मा. 2.3.6.4।

आयुष्टोम पु. (आयुषे स्तोमः) दीर्घायुष्य के लिए (एक सुत्या से युक्त) एक सोम याग का नाम, हि.श्रौ.सू. 18.4.35; आप.श्रौ.सू. 23.12.21; निदा.सू. 10.2.39; क्षु.सू. 2.16 : 15।

आयुष्मती स्त्री. (आयुस् + मतुप् + ङीष्) दीर्घायुष्य के लिए एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (अं) I.119।

आयुष्यहोम पु. (आयुष्याय होमः) दीर्घायुष्य (लम्बे जीवन) के लिए आहुतियाँ प्रदान करना, मा.गृ.सू. 1.17.2।

आयुष्या स्त्री. अग्नि-वेदि के पाँचवे तह में (लगी) ईंटों (169-75) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46, आप.श्रौ.सू. 17.5.21।

आयुस् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.4.12, सा.वे. 1.4.37 पर।

आयोगव (पु. अयोगव + अण्) वैश्य से उत्पन्न शूद्रा का पुत्र, युधि. पृ. 153 (अधिक जानकारी के लिए द्रष्टव्य ध.शा.का. इति, पु. 126-27, हिन्दी अनुवाद)।

आरग्वध पु. इध्म के रूप में प्रयुक्त होने वाला आरग् नामक काष्ठ का एक टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 18.7 (सर्पबलि)।

आरम्भणीया स्त्री. (आ + रभ् + अनीयर् + टाप्) प्रारम्भिक यज्ञ अथवा उपक्रमात्कम यज्ञ, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.25 (दर्शपूर्णमास प्रारम्भ करने के पूर्व); दर्श में एक प्रारम्भिक आहुति (अन्वारम्भणीया), मी.सू. 12.2.19; 'आरम्भणीयम्' गवामयन का प्रारम्भिक दिन, प्रयाणीय का अनुगमन करने वाला, आप.श्रौ.सू. 21.15.8।

आरम्भसामर्थ्य न. (आरम्भस्य सामर्थ्यम्) किसी (श्रौत) यज्ञ का अनुष्ठान करने का सामर्थ्य 'मनुष्याणां वाऽऽरम्भ-सामर्थ्यात्' का.श्रौ.सू. 1.1.4।

आराग्रा स्त्री. यज्ञीय यूपों (स्तम्भों) की सुव्यवस्था : मध्य वाला उच्चतर एवं दोनों तरफ स्थित अन्य कम ऊँचाई के, आप.श्रौ.सू. 14.6.4।

आराम पु. (आ + रम् + घञ्) दीक्षा-संस्कार के लिए बाग, जिसका एक कृत्य सम्पादित किया जाता है, शां.गृ.सू. 5.3.1।

आरूढवदाङ्गिरस न. दीक्षणीयेष्टि में तीन बार गाये जाने वाले एक साम का नाम। यह प्रथम एवं अन्तिम प्रवर्ग्य साम का रूप निर्माण करता है। यह 'इत ऐत-----' इस ऋचा पर आधृत है, ला.श्रौ.सू. 1.6.36।

आरूढे वि. (आ + रुह् + क्त + स.ए.व.) जब (उखा पात्र में अग्नि) प्रज्वलित कर दी जाती है, का.श्रौ.सू. 16.4.33 (अग्नावारूढे), देखें—अनारोहति (जब यह प्रज्वलित नहीं की जाती), का.श्रौ.सू. 16.4.34 (अनारोहत्यङ्-गारानप्यैके)।

आरोक पु. प्राचीनवंश के चारों कोनों पर छिद्र अथवा रन्ध्र, आप.श्रौ.सू. 10.5.3; भा.श्रौ.सू. 10.3.3; तु. अतीकाश, अतीरोक।

आरोहण न. (आ + रुह् + ल्युट्) 1. एक विशेष प्रकार का पाठ जिसमें (हंसः शुचिषद् ऋचा के) प्रथम तीन पाठ पदशः (एक एक पद का एवं अर्धचशः पढ़े जाते हैं, तब चतुर्थ पाद के साथ जो बीच में) साँस लिए बिना पढ़ा जाता है, के साथ एवं अन्त में 'ओम्' के साथ समाप्त किया जाता है, काशिकार पृ. 102; 2. (किसी वृक्ष पर) चढ़ना, आश्व.श्रौ.सू. 12.8.10; पु. पितृमेध (संज्ञक कृत्य) में उदम्बर की जटा से श्मशान स्थल पर छिड़काव करने के बाद उच्चारित किये जाने वाले एक मन्त्र का नाम, श्रौ.को. (अं) I.ii.1104।

आर्त्विज्य (ऋत्विजः कर्म) किसी यज्ञ में ऋत्विक का कार्य, जै.ब्रा. I.302. (द्रष्टव्य—गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च, पा. 5.1.123)।

आर्त्नी स्त्री. धनुष्कोटि (धनुष् का छोर), धनुरा'र्त्योपस्पृशति गां यजमानः----' का.श्रौ.सू. 15.6.20; तु.आप.श्रौ.सू. 20.16.7।

आर्द्रवसन न. (आर्द्रं च तद् वसनम्) गीला वस्त्र, शां.श्रौ.सू. 18.24.7 (सत्र में उदयनीयातिरात्र)।

आर्द्रीकरण न. (आर्द्र + च्वि + कृ + ल्युट्) सेंके गये पुरोडाश पर घी उड़ेलना (पुरोडाश को गीला करना), श्रौ.प.नि. 21.167।

आर्द्रौदुम्बरी न. (आर्द्रा चेयम् औदुम्बरी च) गीले उदुम्बर-काष्ठ से निर्मित औदुम्बरी संज्ञक स्तम्भ, 'आर्द्रौदुम्बरीर्घृतोषितास्तिस्र----, का.श्रौ.सू. 18.3.14।

आर्भवपवमान न. (स्तोत्र) (ऋभूणामिदम् आर्भवम्, आर्भवं च तत् पवमानम्) ऋभुओं से सम्बद्ध पवित्र करने वाले स्तोत्र का नाम। यह तृतीय पवमान भी कहलाता है एवं इसका गान तृतीय सवन में होता है। यह ग्यारह ऋचाओं से निबद्ध है (निर्मित है) किन्तु आवृत्ति के द्वारा सत्रह का गायन होता है (सप्तदश स्तोम) CH 339, इग्लिंग, श.ब्रा.अं XXVI. 315; श्रौ.को. (सं) 11 (i) 420-31।

आर्यकृता वि. (आर्येण कृता) किसी आर्य द्वारा बनाई गयी (अग्निहोत्र-स्थाली के बारे में कथन), भा.श्रौ.सू. 6.8.14।

आर्षभ न. 'अनूबन्ध्य' संज्ञक पशु-याग में जिसमें आरभ्य (वध्य पशु) बैल होता है, गाये जाने वाले साम का नाम जै.श्रौ.सू. 1.25।

आर्षेय वि. (ऋषि + ढक्) (वह व्यक्ति) जिसने वेद का अध्ययन किया हो (अर्थात् ऋषि), आप.श्रौ.सू. 5.5.9; 10.1; कात्यायन : 'ये सप्त भूयः पञ्चपुरुषं वा योनिं श्रौतवन्तः पितृवन्तः पैतृमत्य आर्षेयास्ते संहत कुलीना आत्विजीनो भवन्ति' ऋषि से सम्बद्ध (ऋग्वेद में 9.97.51 सत्तासूचक के रूप में प्रयुक्त 'हम सब जमदग्नि की तरह धन एवं आर्षेय प्राप्त करें'), अ.वे.में 13.16.25-26; 32-33, 35, इत्यादि; आर्षेय का अभिप्राय है ऋषियों की सन्तानें अथवा ऋषियों से सम्बद्ध। कार्यकारी ऋत्विज् का पूर्वज ऐसा ऋषि होना चाहिए जो यज्ञ के आचरणार्थ अग्नि से जुड़ा रहा हो। आर्षेय का पर्यायवाची प्रवर है, भा.श्रौ.सू. 2.15.8; 11 (दर्श); विस्तार के लिए देखें हि.ध. II. (I) 482.500.9; C.B.S.

आलम्भन न. (आ + लभ् + ल्युट्, नुमागमः) वध करने के लिए पशु को बाँधने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 8.8.15; अथवा वध करना (पश्वा—); 20.4.21; किसी वस्तु को छूना, 9.3.19।

आलव (आ + लू + अप्) घास का तना, भा.श्रौ.सू. 1.4.1; फसल काटने के अनन्तर पीटने पर अन्न के पौधे की टूटी हुई छोटी-छोटी टहनियाँ, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.38। वह तनों का स्पर्श करता है, ऐसा कहकर—'हे घास तु सैकड़ों अंकुरों के साथ बढ़ो; खूँटी, आप.श्रौ.सू. 1.4.9।

आलेखन पु. एक आचार्य का नाम।

आवपन न. (आ + वप् + ल्युट्) उलूखल (ओखली) में हविस् के लिए अनाज को उड़ेलने (डालने) का कृत्य भा.श्रौ.सू. 1.21.5; - **मन्त्र** आवपन संज्ञक कृत्य से सम्बन्धित मन्त्र, 13.18.10; तै.सं. 1.1.5.3।

आवर्तयति रु. (आ + वृत् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) पीछे की ओर लाता है (प्रत्यग् अपकर्षति अपने हाथ को अक्षधुरोपाञ्जन के समय), आ.श्रौ.सू. 11.6.6।

आवल वि. लम्बा, मा.श्रौ.सू. (शाखापवित्रं च प्रादेशमात्रावलम्); की लम्बाई वाला।

आवती ('आ' + मतुप् + ङीप्) 'आ' से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.131।

आवसथ पु. (आ + वस + अथच्) निवास स्थान, आवसथोन्मर्दना-------का.श्रौ.सू. 8.9.26 (आवसथो वसत्यर्थं गृहम् स.वृ.); हि.गृ.सू. 1.12.8; ला.श्रौ.सू. 1.7.1; द्रा.श्रौ.सू. 2.3.1; -**हरण** (आवसथे हरणम्) घर को (में) ले जाना, 'प्रातर्वाध्वर्योरावसथहरणम्, का.श्रौ.सू. 18.6.3।

आवसथ्य पु. अँगीठी (कुण्ड) 'आवसथ-संज्ञक एक झोपड़ी में सभ्य के पूर्व की ओर स्थित होती है, अ.वे. 9.6.7 भाष्य। कुछ लोग इसके स्थापन के विरुद्ध हैं, जब की अन्य इसको वैकल्पिक (ऐच्छिक) के रूप में ग्रहण करते हैं, एवं इसे गृह्य अथवा गार्हपत्य कुण्ड से लायी गयी अग्नि के स्थान अथवा अग्निमन्थन के द्वारा स्थापित करते हैं। यह तीन तरफ लम्बाई में 25 अंगुल की त्रिकोणीय कुण्ड है (तु.मा.श्रौ.सू. 1.5.5.5), वै.श्रौ.सू. 1.3 (C.B.S.)

आवहमान वि. (आ + वह् + शानच्) जो वर (दूल्हे) को निकट लाता है (सम्बन्धियों के बारे में उक्ति), शां.गृ.सू. 1.6.4।

आवाप पु. (आ + वप् + घञ्) योग (वृद्धि) (बौ.शु.सू. 5.23); यज्ञ का अन्तर्निविष्ट अथवा परिवर्तनीय भाग, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.7, कृत्य के एक भाग का सन्निवेश, जो किसी याग के ढाँचे (तन्त्र) के अन्दर स्थान ग्रहण करता है; विभिन्न प्रधान आहुतियाँ, दो आज्यभागों के बीच में (अथवा केवल बाद में) एवं स्विष्टकृत् के पूर्व स्थान ग्रहण करने वाली होती हैं। अन्य क्रियायें हैं : गाय को दुहना, कपालों को व्यवस्थित करना, आदि, बौ.श्रौ.सू. 24.3; शां.श्रौ.सू. 1.16.3-4। **आवापिक** (आवाप + ठक्) जिसमें अन्तर्निवेशन की आवश्यकता है, आप.श्रौ.सू. 19.16.4; तु.आश्व.श्रौ.सू. 7.5.16; द्रा.श्रौ.सू. 11.4.3; निदा.सू. 5.8:5, सामान्य प्रायश्चित्त एवं प्रजापति के लिए हवि के मध्य कृत्यों का सन्निवेश, शां.गृ.सू. 1.9.12; पा.गृ.सू. 1.5.6 (चि.भा.से.)।

आवापस्थान न. (आवापस्य स्थानम्) (आवापिक नाम वाली) तीन ऋचाओं से युक्त पर्याय चक्र; प्रथम पर्याय में आवाप-स्थान द्वितीय अवस्थिति स्थान में होता है, ला.श्रौ.सू. 6.5.2. उद्वाप, साम की अस्वीकृति आवापस्थान का (विरोधी) है, मी.सू. 10.4.31; तु.आश्व.श्रौ.सू. 11.1.8; शां.श्रौ.सू. 4.15.10; 12.2.9 (सन्निवेश का स्थल); 'अतिरात्रान्तरमावापस्थानम्' का.श्रौ.सू. 24.1.12।

आवाहन (आ + वह् + णिच् + ल्युट्) देवताओं का बुलावा अथवा निमन्त्रण, आश्व.श्रौ.सू. 1.3.17; विशेष रूप से अग्नि का, जो देवताओं के आहुतियों में भाग लेने के लिए भेजता है (आवह देवान्) 5.3.7; प्रतिचोदन 1.3.17 टीका; मा.श्रौ.सू. 5.2.8.13; श्राद्ध में पितरों को निमन्त्रित करना, शां.गृ.सू. 4.2.5।

आवाह्य (आ + वह् + णिच् + ल्यप्) निमन्त्रित करके, आश्व. गृ.सू. 1.3.22।

आविःपृष्ठ वि. (आविः प्रादुर्भूतं दृष्टं पृष्ठं यस्य सः) जिसका पृष्ठ दृष्ट हो (दिखाई दे रहा हो) (धूः. न पूर्यते वा सर्वम् अलङ्करणकाले आज्येन एककपालम् अभिपूरयति आविः-पृष्ठ्यं कृत्वा आसादयति), आप.श्रौ.सू. 6.30.19 (आग्रयण); भा.श्रौ.सू. 6.17.10।

आविद् स्त्री. (आ + विद् + क्विप्) राजसूय में अभिषेचनीय संज्ञक कृत्य के समय यजमान द्वारा पठित 'आविर्' अनावित्त से प्रारम्भ होने वाले विशिष्ट मन्त्रों का नाम, आप.श्रौ.सू. 18.14.10; 'आविर्मर्या इति वाचयति', का.श्रौ.सू. 15.5.21, जो वा.सं. 10.9 आविर्मया की ओर संकेत करता है, तु.श.ब्रा. 5.3.5.31।

आवीत वि. (आ + व्ये + क्त) पवित्र धागे (जनेऊ, उपनयन) को पहना हुआ, देखें - उपवीतिन्; पु. प्राचीनावीतिन्।

आवृत् (आ + वृतु वर्तने) घूमना, चक्कर लगाना, वा.सं. सूर्यस्वावृतमन्वावर्ते वा.सं. 2.26; (आ + वृत् + क्विप्) स्त्री. एक यज्ञीय कृत्य की प्रक्रिया (भा.-क्रिया-संस्कार), आप.श्रौ.सू. 7.8.6, उद्गीथ का भाग, ला.श्रौ.सू. 7.10.21; 'सवमानायेन्दवे अभिदेवान् यक्षते' तीन आवृतों में विभक्तः पा 2 वा 2 मानायेन्दावा 2 अभिदेवाम् इया 1212 एवं क्षते; किसी मन्त्र अथवा यज्ञीय कृत्य की आवृत्ति, आप.श्रौ.सू. 1.4.6; उन संस्कारों के लिए कहा गया है, जिनका अनुष्ठान बिना मन्त्र के (अमन्त्रक) होता है एवं लोगों के बीच प्रचलनात्मक है, अर्थात् लोकप्रिय कृत्य, आप.गृ.सू. 2.15; जातकर्म, इत्यादि (चि.भा.से)।

आवृत्तिमुख आवृत्तेर्मुखम् न. (द्वि.) दोनों संक्रान्तियों (अयनों) का आरम्भ (सूर्य के गति की आवृत्ति 'आवृत्तिमुखयोर्वा' आवृत्तिः = अयनपरिवृत्तिः, स.वृ.), का.श्रौ.सू. 6.1.2 (पशुयाग)।

आवेदन न. (आ + विद् + ल्युट्) दीक्षित को निर्देश देने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.26; 7.2.1.54 भी देखें, बौ.श्रौ.सू. 25.31.13; अध्वर्यु द्वारा घोषणा किया जाना कि यजमान को दीक्षा मिल गई है, आप.श्रौ.सू. 10.11.5-6 (आवेदयाति)।

आवश्चन न. (आ + व्रश्च् + ल्युट्) यूप की तना पर स्थित बिन्दु, जहाँ तीक्ष्ण कर्तन (छेदन प्रदेश) बनाया गया है। '-----इत्यावश्चने जुहोति', का.श्रौ.सू. 6.1.20; आप.श्रौ.सू. 9.20.3।

आशय पु. (आ + शी + अच्) (स्थाली में कृत का) शेष भाग (बचा हुआ अंश), मा.श्रौ.सू. 1.6.4.19।

आशसन न. (आ + शस् + ल्युट्) एक कटे हुए स्थान को प्रभावित करने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 1.8.4.37।

आशापाल पु. (आशायाः पालः) एक दिशा का रक्षक का.श्रौ.सू. 20.2.11, वा.सं. 22.19 की ओर संकेत (अश्वमेध)।

आशिर् स्त्री. बाजरे से मिला हुआ (मिश्रित) सोम, हि.ध. (काणे,) 11 (ii.) 1161; खट्टा दुग्ध फेंटा जाता है, गरम किया जाता है एवं पूतभृत में साम के साथ मिला दिया

जाता है (तृतीय सवन), आप.श्रौ.सू. 13.10.8-10 (आशिरम् अवनयति); तु. CH. 336।

आशिस् स्त्री. होता द्वारा उच्चारित स्वस्तिवाचन, आशीर्वाद, आशीर्वचन, यह कहते हुए कि यह यजमान लम्बा जीवनकाल (दीर्घायुष्य) चाहता है, आप.श्रौ.सू. 3.7.1; प्रत्यगशिष् यजमान द्वारा स्वयं अपने लिए जपी गयी प्रार्थना है (आत्मगामिन् एवं उत्तमपुरुषचारिन्, टीका), 4.1.3; देखें— Prayer and Blessing in ancient Indian Ritual, Gonda J, Leiden 1989.

आशीर्पदा स्त्री. 'दिवो वा विष्णव उत वा पृथिव्या:', तै.से.1.2.13.2; वा.से. 5.19, ऋचा का नाम जिसे अध्वर्यु दक्षिणी हविराधान शकट के दक्षिण की तरफ शलाका जड़ने के समय उच्चारित करता है, बौ.श्रौ.सू. 6.25; वैखा.श्रौ.सू. 14.406।

आशीर्वती स्त्री. (आशिस् + मतुप् + ङीष्) आशीर्वाद देने के लिए उच्चारित ऋचा, ऋ.वे. 1.164.40; श्रौ.को. (सं.) II. 119।

आशु पु. (बहु.) धान की विशिष्ट प्रजाति (शीघ्र उगने वाली) 'आशूनाम् अग्नये ग्रहपतये' का.श्रौ.सू. 15.4.6 (देवसूहवींषि—संज्ञक द्वितीय पुरोडाश)।

आशुभार्गव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.9 सा.वे. 1.4.69 पर निबद्ध।

आश्च्युत् (आ + श्च्युत्) टपकाना, बूंद-बूंद करके उड़ेलना, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.39।

आश्रपण न. (आ + श्रा + णिच् + ल्युट्) किसी वस्तु को आग पर रखकर सेंकने अथवा पकाने का कृत्य, निरु. 6.8।

आश्रावण (आ + श्रु + णिच् + ल्युट्) ब्रह्मा की सम्मति से अर्ध्वयु द्वारा आग्नीध्र को सुनने के लिए प्रेरित करने के लिए दिया गया पुकार (आह्वान)। उस आश्रावण-संज्ञक पुकार में निम्नलिखित में कोई हो सकता है : आश्रावय, ओश्रावय अथवा श्रावय अथवा अन्तत: ओंश्रावाय, आप.श्रौ.सू. 2.16.2; प्रथम दो अक्षर, प्रत्येक विस्तृत अथवा दीर्घकालिक (प्लुत) रूप से उच्चारित किये जाते हुए (अग्नीत्प्रेषणे परस्य पा. 8.2.92); उदा. आ 3 ओ 3, श्रा 3 वय तै.सं. 1.6.11.1 प्रवर की उद्घोषणा (अर्थात् प्रवर का नाम लेते समय) प्रयुक्त होते हैं। आश्रावण में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जाती है। अध्वर्यु ब्रह्मा को सम्बोधित करता है---------'भो ब्राह्मण 'मैं अग्नीध्र के प्रवर का नाम लेने के लिए कहूँगा' उसकी सम्मति से अध्वर्यु अग्नीध्र को उपर्युक्त आह्वान (पुकार) से उद्घोषणा के लिए प्रेरित करता है : तुम घोषणा करते हो। इसका उच्चारण उत्थित तान (उदात्त) में किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 24.1.10; पितरों के लिए किये जाने वाले कृत्य में 'आ स्वधा' का प्रयोग किया जाता है, 8.15.10; आश्रुत 'आश्रावण' का पर्यायवाची है, 2.15.6. आग्नीध्र द्वारा दिया गया उत्तर 'प्रत्याश्रावण अस्तुश्रौषट्' कहलाता है; देखें— श्रौ.प.नि. 27.225।

आश्रावम् क्रि.वि. 'ओ श्रावय' इस पुकार से (आग्नीध्र को) पुकारने के द्वारा (आश्रावम् एकादश प्रयाजान् यजति), मा.श्रौ.सू. 1.8.3.16।

आश्रावित वि. (अधि.) (आ + श्रु + णिच् + क्त) पुकारे जाने पर, जब पुकारा जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.26; 'आश्रावितेऽग्नीदाप्रत्याश्रवणात्', का.श्रौ.सू. 3.3.14; आप.श्रौ.सू. 2.16.2।

आश्राव्य (आ + श्रु + णिच् + ल्यप्) आश्रावण करके 'घृत वतीमित्युक्ते स्रुचावादायाऽतिक्रम्याऽऽश्राव्याह----' का.श्रौ.सू. 3.2.17।

आश्लेषाविधि (आश्लेषाया विधि:) आश्लेषा नक्षत्र में जन्म का एक प्रायश्चित्त करना, मा.श्रौ.सू. 11.4.1।

आश्वयुजी वि. (अश्वयुज: इयम्, अश्वयुज् + अश्व + अण् + ङीप्) आश्विन (क्वार) मास की, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.3; स्त्री. आश्विन मास की पूर्णमासी का दिन, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.3; अश्वयुज् नक्षत्र के अन्तर्गत आश्विन् मास (आश्वयुज) में अनुष्ठित होने वाला कृत्य। यजमान भोजन का मिश्रण पकाता है एवं उसे पशुपति को अर्पित करता है। संयुक्त हथेलियों (अञ्जलि) में वह धब्बेदार (चित्तीदार) नवनीत (नवनीत से मिले हुए पृषातक दुग्ध को) अर्पित करता है, आश्व.गृ.सू. 2.2.1-3; अश्विनों को आज्य की आहुति भी अर्पित करता है, शां.गृ.सू. 4.16; यह कृत्य पृषातक कहलाता है : पायस पकाया जाता है; दही का एक मिश्रण, मधु एवं घी दोनो इन्द्राणी, दो अश्विनों आदि को अर्पित किये जाते हैं। यजमान यज्ञीय भोज्य के अंश को ग्रहण करता है।

आश्ववाल (आश्व: बाल: यस्य स:, अश्वस्यायं आश्व:,) अश्व के बाल से युक्त, आप.श्रौ.सू. 10.3.3 (आतिथ्या प्रस्तर)।

आश्वसूक्त प्रात:कालीन आहुति के पश्चात् अग्नियों की प्रशंसा के लिए गाये जाने वाले साम का नाम। यह साम 'यदक्रन्द: प्रथमम्------' तै.सं. 4.6.7.1 ऋचा पर आधृत है, जै.श्रौ.सू. 22।

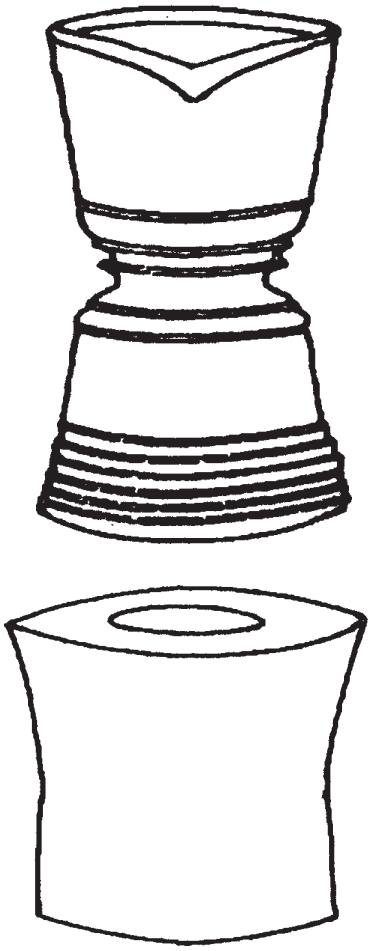

आश्विन (ग्रह)

आश्विन (ग्रह) पु. (अश्विनो: अयम् आश्विन: तस्य ग्रह:) प्रथम सवन में दोनों अश्विनों के लिए सोम का आकर्षण (निचोड़ना), बौ.श्रौ.सू. 7.8; CH 182; यज्ञायुधानि, पृ. 52।

आश्विनग्रहप्रैष पु. (आश्विनग्रहस्य ग्रहाय वा प्रैष:) अर्पित किये जाने वाले (अर्पणीय) आश्विन ग्रह (प्याले) के सम्मान में होता के लिए पाठ करने के लिए (मैत्रावरुण द्वारा दिया गया) प्रैष, श्रौत.प.नि. 178.225।

आश्विनी स्त्री. (अश्विनोरियं आश्विनी, अश्विन + अण् + ङीप्) अग्निवेदि के दूसरे तह (स्तर) में लगी हुई ईंटों (7-11) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 1.10.37-38।

आश्विनर्च् स्त्री. (आश्विनी चेयम ऋक्) अश्विनों को सम्बोधित ऋचा, 'या वां कशा मधुमती----' ऋ.वे. 1.22.3; वा.सं. 7.11; श.ब्रा. 4.1.5.17; यदि प्रवर्ग्य की गाय पर कोई पक्षी बैठ बठ जाय, तो उस समय यह ऋचा पढ़ी जाती है, आप.श्रौ.सू. 15.18.9।

अष्टादंष्ट्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.9.20 सा.वे. 1.343 पर निबद्ध (उक्थ्य)।

आसज् ध. जोड़ना, सम्बद्ध करना, ला.श्रौ.सू. 5.3.12, द्रा.श्रौ.सू. 13.3.9।

आसन्दी

आसन्दी स्त्री. (आसद्यतेऽस्याम्, आ + सद् + ट, नुमागम: + ङीप्) (सोम राजा के लिए) काष्ठनिर्मित चौपाया (कुर्सी), 'औदुम्बरीमासन्दीं नाभिदघ्नामरत्निमात्राङ्गीमूतामाहरन्ति चत्वार:', का.श्रौ.सू. 7.9.24. (यह उदुम्बर) के काष्ठ से निर्मित होती है = औदुम्बरी, नाभि तक ऊंचाई वाली = नाभिदघ्ना, तथा अन्य भागों में एक अरत्नि की नाप वाली अरत्निमात्राङ्गी होती है)। सभी भाग बंधे हुए एवं मूँज की रस्सी से बुने हुए होते हैं (ऊता)। एक कृष्णमृग का चर्म

इस पर बिछा दिया जाता है, और इस पर सोम की टहनियाँ रख दी जाती है; यह 'राजासन्दी' राजा का आसन कही जाती है, आप.श्रौ.सू. 10.29.7; 31.3-5. एतत्सदृश आसन्दी 'उखा के लिए भी है', (चयन) 16.10.16; घर्म (प्रवर्ग्य) के लिए 15.5.7 'सम्राड्' कही जाती है; यजमान के लिए (वाजपेय) 18.6.3; राजसूय 18.15.5; उद्गातृ के लिए (महाव्रत) 21.17.12; एक पर्यङ्क जिस पर मृत शरीर (शव) ले जाया जाता है, भा.पि.मे. 1.2.1; देखें—श्रौ.प.नि. 165.195-199।

आसन्य सोम-याग में सोम के प्रात:सवन के 'प्रातरनुवाक के पूर्व 'आसन्यान् मा मन्त्रात् पाहि' इस मन्त्र में आग्नीध्र-अग्नि में दी जाने वाली एक आहुति का नाम, श्रौ.को. (सं.) II. 551; बौ.श्रौ.सू. 7.1; तै.सं. 3.1.7.1।

आसपुट न. भस्म-पुञ्ज, राख की ढेर, आप.श्रौ.सू. 18.5.16।

आसम्पदः क्रि.वि. (सोम के) क्रयण पर्यन्त, जब तक (सोम का) क्रयण समाप्त नहीं हो जाता, आप.श्रौ.सू. 10.25.5।

आसादन न. (आ + सद् + णिच् + ल्युट्) नीचे रखना '---समानमासादनं प्रागभिषवात्', का.श्रौ.सू. 10.9.29; अग्नि के निकट यज्ञीय भोज्य अथवा पात्रों को नीचे रखना, शां.गृ.सू. 1.3.4।

आसिक्तवती स्त्री. (द्वि.) (आसिक्त + मतुप् + ङीप्) ऋग्वेद की दो ऋचाएं, 'आसुते सिञ्चत श्रियम्', ऋ.वे. 8.72.13 एवं '----------ऋ.वे. 8.9.7, श्रौ.को. (सं.) II.119।

आसाद्य (आ + सद् + णिच् + ल्यप्) वेदि में हविषों को उनके स्थानों पर रखकर 'आसाद्याग्निमन्थनम्', का.श्रौ.सू. 5.1.21 (आसाद्य = हवींषि वेद्यामासाद्य)। (वैश्वदेव)।

आसित न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.18 सा.वे. 1.107 एवं पञ्च.ब्रा. 15.5.27 साम.वे. 1.93 पर।

आसुरिगव्य पु. दुग्ध में उबाले गये काले चावल की आहुति वाले एक कृत्य का नाम; यह कृत्य गाँव से बाहर सम्पन्न किया जाता है; वृक्ष पर चढ़ता है एवं अपने शत्रुओं पर दृष्टिपात करता है, मा.श्रौ.सू. 4.6.1।

आसेचन न. (आसिञ्चत्यस्मिन्, आ + सिञ्च् + ल्युट्) (द्रव को समाहित करने के लिए) छिद्र, विवर या गर्त 'उद्वास्यासेचनं मध्ये कृत्वा सर्पिरासिच्यऽऽश्वत्थीस्तिस्र: समिधो घृताक्ता आदधाति-----', का.श्रौ.सू. 4.8.3।

आसेचवत् (आ + सिच् + घञ् + मतुप्) वि किसी द्रव को समाहित करने के लिए, गहराई (गर्त) से युक्त (पात्र), मा.श्रौ.सू. 6.2.19.15।

आस्कन्द पु. (आ + स्कन्द + घञ्) एक ऋचा पर तृच् (तीन के समूह) की आवृत्ति से आगे परिचरा से आवाप में, इसकी स्थिति को परिवर्तित करते समय एक योग (जोड़) वृद्धि को करते हुए गायन करने की एक अपवादात्मक विधि का नाम, काशिकर 126; द्रा.श्रौ.सू. 11.4.1-6।

आस्तारपङ्क्ति स्त्री. पाठ (पाठ करने) में एक छन्द का नाम, निदा.सू. 1.3.5; प्रथम ऋचा आठ अक्षरों वाले दो पादों से युक्त होती है अर्थात् प्रथम ऋचा में आठ अक्षरों वाले दो पाद होते हैं; द्वितीय ऋचा में 12 अक्षरों वाले दो पाद होते हैं (मो.वि.)।

आस्ताव न. (आस्तूयतेऽस्मिन्निति तत् स्थानम्, आ + स्तु + घञ्) चात्वाल के समीप बहिष्पवमान का गायन करने के लिए (नियत) स्थान, भा.श्रौ.सू. 13.19.22-21.14; आप.श्रौ.सू. 11.14.10; यह स्थान हारियोजन ग्रह के अर्पण के पश्चात् चार चमसिनों द्वारा चमसों में (स्थित) रस का उपभोग करने के लिए भी निर्धारित है, आप.श्रौ.सू. 13.17.4-18; 10; का.श्रौ.सू. 10.5.7; शां.श्रौ.सू. 6.12.7; मा.श्रौ.सू. 2.2.4.8; ला.श्रौ.सू. 1.8.14; द्रा.श्रौ.सू. 2.4.20; चत्वाल के दक्षिण की ओर महावेदि के अन्तर्गत, सदस् से बाहर स्थित। CH 106 अश्वमेध में 'अश्वेनाक्रामयन्त्या-स्तावम्', का.श्रौ.सू. 20.5.7 (बहिष्पवमानस्तवनप्रदेशम्); अश्व इस स्थल पर हिनहिनाता है (अर्थात् उससे आवाज करवाया जाता है)।

आस्थापन न. (आ + स्था + णिच् + ल्युट्) एक प्रस्तर (पत्थर) पर पादप्रक्षेप (पैर रखने) का कृत्य, इसे दो बार करना चाहिए, आप.गृ.सू. 5.6.9 (अश्मारोहण) विवाह में।

आस्पात्र न. मुख (पीने का) पात्र, आ.श्रौ.सू. 1.3.6; शां.श्रौ.सू. 1.4.2.1।

आस्यदघ्न वि. (आस्यं प्रमाणम् अस्य, आस्य + दघ्नञ् 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञमात्रच:' पा. 5.2.37) मुख के बराबर ऊँचा, मुख तक पहुँचने वाला, आप.श्रौ.सू. 7.8.3; भा.श्रौ.सू. 5.7.13; (यथा) आस्यम् अव्य. (वस्तु के) मुख के अनुसार; अर्थात् हिस्से = उचित भाग के अनुसार, आप.गृ.सू. 20.4 (शूलगव)।

आहत्य (आ + हन् + ल्यप्), (ढोल को) पीटकर अथवा (उस पर) चोट करके, ला.श्रौ.सू. 3.11.3; द्रा.श्रौ.सू. 10.3.4।

आहवनीय पु. (आ + हु + अनीयर्) तीन प्रधान यज्ञीय-अग्नियों में एक, जो देवताओं को बुलाती है। यह एक वर्गाकार टीला है, जो प्राचीनवंश के पूर्वी भाग पर स्थित होता है। अंगीठी को स्थापित कर प्रज्वलित कर देते हैं; किन्तु अग्नि गार्हपत्य से लाई जाती है 'गार्हपत्येऽनुगते ग्रामाग्निमाहृत्य चातुष्प्राश्यं पक्त्वा विहरेत', का.श्रौ.सू. 4.9.10 एवं इस पर होम का अनुष्ठान किया जाता है; इस पर पाकक्रिया भी की जा सकती है 'श्रपणं वाऽऽहवनीये' का.श्रौ.सू. 1.8.35; 44; शां.श्रौ.सू. 3.19.4; पशुयाग एवं सोमयाग में आहवनीय की अग्नि उत्तरवेदि की नाभि को स्थानान्तरित कर दी जाती है एवं बाद वाले को आहवनीय कहते हैं, आप.श्रौ.सू. 7.7.3; मूल आहवनीय तब गार्हपत्य शालामुखीय अथवा शालाद्वार्य कहलाता है (सोम), मा.श्रौ.सू. 11.5.9.10, इसे समेधनीय भी कहते हैं, बा.श्रौ.सू. 10.21; मापन के लिए देखें—आप.शु.सू. 2.4.6.8; देखें—श्रौप.नि. 4.20।

आहवनीय

आहवनीयगृह न. (आहवनीस्य गृहम्) वह गृह अथवा मण्डप (छज्जा) जहाँ आहवनीय को स्थापित किया जाता है, श्रौ.सू. 2.1.15; (**आहवनीय**) **परिश्रित्** स्त्री. परिधीय (स्तोम इष्टकाओं को) चित उत्तर वेदि = आहवनीय वेदि के चारों ओर लगा (रख) देते हैं, का.श्रौ.सू. 16.8.23।

आहवनीयागार न. (आहवनीयस्यागारम्) आहवनीय के लिए एक मण्डप का निर्माण किया जाता है। इसका (आहवनीयागार) का द्वार पूर्व की ओर, इसकी धरण पूर्व अथवा उत्तर दिशा (उदग्वंश, प्राग्वंश) की ओर होती है, का.श्रौ.सू. 4.7.8-10. इसके एवं गार्हपत्यागर के बीच कोई विभाजन नहीं होता; तु Dumont, L' Asva 2.35।

आहार्य पु. (आ + हृ + ण्यत्) उस अग्नि का नाम जिसे मथकर नहीं प्राप्त किया जाता है, अपितु जो दूसरी अग्नि से लेकर (आहरित कर) स्थापित की जाती है, आश्व.श्रौ.सू. 6.10.9; आप.गृ.सू. 5.18।

आहार्यपुरीषा वि. (स्त्री.) (आहार्यं पुरीषं यस्या: सा) अन्य स्थल से लाई गयी मिट्टी वाली 'आहार्यपुरीषां पशुकामस्य', का.श्रौ.सू. 2.6.4; उस मिट्टी की (वेदि), जो (अन्यत्र से) लाई गई है, मा.श्रौ.सू. 1.2.4.19; भा.श्रौ.सू. 2.3.1।

आहाव पु. (आ + ह्वेञ् + घञ्) 1. उदञ्चन, बाल्टी, आप.श्रौ.सू. (अवतात् उदकम् आहवेषु सिञ्चति), चयन; 2. आह्वान के मन्त्र का पारिभाषिक नाम, जिसे होता अपने शस्त्र के पाठ को प्रारम्भ करने से पूर्व ऊँचे स्वर से उच्चारित करता है। वह मन्त्र है-शोंसा 3 सोम् अथवा शोंसावो 3 (शंसाव का एक विकृत = बिगड़ा हुआ रूप), (हम दोनों स्तुति करें) जिसके उत्तर अध्वर्यु एक मन्त्र, जिसे प्रतिगर कहा जाता है, से देता है, शां.श्रौ.सू. 7.9.1; आश्व.श्रौ.सू. 5.9.1-2. शस्त्र के पाठ में आहाव की आवश्यकता होती है (और वे कई हैं), प्रात:सवन एवं तृतीय सवन के शस्त्र में चार, माध्यन्दिन (मध्य दिवस) में पाँच की आवश्यकता होती है, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.10-12, माध्यन्दिन सवन में सभी शस्त्रों के प्रारम्भ में 'अध्वर्यो शों शावो' के रूप में कई प्रकार उल्लिखित हैं, 14.3; 'अध्वर्यो शों 3 सावो3म्' तृतीय सवन में, 18.4; अथवा प्रथम सवन में आगे भी प्रकार 'शों सावो 3; मध्य-दिवस मे अध्वर्यो सोम्, शां.श्रौ.सू. 7.19.6; 8.3.5।

आहिताग्नि पु. (आहित: अग्नि: येन स:, आहित = आ + धा + क्त) वह व्यक्ति जिसने अग्नि की स्थापना की हो, अर्थात् जिसने 'अग्न्याधेय' का अनुष्ठान कर लिया है, आप.श्रौ.सू.

2.25.15 (अन्वाहिताग्नि भी 9.1.8, आहिताग्नि को कुछ सुविधायें हैं। वे उसकी मृत्यु पर, उसे उसकी अग्नि में उसके यज्ञीय पात्रों के साथ जला देते हैं, मी.सू. 11.3.34; पर शाबर भाष्य; नित्यधृत लोग भिन्न बतलाये गये हैं अर्थात् उनकी पृथक् गणना की गई है : वे जो सतत अग्नि का निर्वाह कर रहे हैं, शां.श्रौ.सू. 2.6.4; वह व्यक्ति जो औपासन-संज्ञक गृह्य अग्नि के लिए पूजा का अनुष्ठान करता है, हि.गृ.सू. 1.26.3।

आहुति स्त्री. (आ + हु + क्तिन्, स्त्रियां क्तिन्, पा. 3.3.94) अग्नि में (करछुल भर घृत) की आहुति देने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 2.14.7; इसकी प्रक्रिया निम्नवत् बतलायी गई है : एक पात्र में घृत लिया जाता है, गार्हपत्य पर पिघलाया जाता है, दो पवित्रों को उसमें डुबाकर एवं ऊपर उछालकर (उत्पवन) पवित्र किया जाता है। अध्वर्यु स्रुव से घृत को जूहू में भरता है। समिध् को पकड़ता है, आहवनीय के उत्तर की ओर भ्रमण करता है, आहवनीय के चारों ओर घास बिछाता है एवं इसमें समिधा को रखता है; अपने घुटनों पर झुककर करछुल में रखे हुए घृत को 'स्वाहा' का उच्चारण करते हुए अग्नि में उड़ेलता है; इसके बाद यजमान द्वारा उच्चारित एक मन्त्र आता है; यह दक्षिण में खड़े होकर हविस् से युक्त करछुल से भी, हि.ध. ii (2). 997 पूर्णाहुति करछुल भर घृत की आहुति है, (पा. 2.4.22-2.4.26), का.श्रौ.सू. (पुर्णस्रुचा, भाष्य); 'जुहोति', 'होम' भी देखें, आप.गृ.सू. 2.7।

आह्वान न. (आ + ह्वे ञ् + ल्युट्) उल्लेख, (विशिष्ट अभिव्यञ्जनाओं का) उच्चारण, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.13।

इ

इकारान्त वि. (इकारे अन्तः यस्य सः) 'इ' कार अथवा 'इ' ध्वनि में समाप्त होने वाला अर्थात् जिसके अन्त में 'इ' कार आवे, ला.श्रौ.सू. 7.8.19; 2.11.14।

इक्षुकाण्ड न. (इक्षोः काण्डम्) ईख (गन्ने) का पोर, आप.श्रौ.सू. 8.4.1।

इक्षुशलाका स्त्री. (इक्षोः शलाका) इख की शलाका (छपटी), मा.श्रौ.सू. 1.7.6.20 (प्रियेष्टि में अभिवान्या दुग्ध को मन्थ से हिलाने के लिए प्रयुक्त), तु.आप.श्रौ.सू. 8.4.1; भा.श्रौ.सू. 8.16.10।

इक्षुमन्थ न. (इक्षोः मन्थम्) ईख की छपटी (शलाका, खपची) के रूप में हिलाने-डुलाने की छड़ी, वैखा.श्रौ.सू. 9.6:3।

इज्या (यज् + क्यप् + टाप्, वचिस्वपि. पा. 6.1.16 इति सम्प्रसारणम्) एक हवन, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.3; चि.भा.से. के अनुसार : 1. एक प्रायश्चित्तिक कृत्य के रूप में एक इष्टि का अनुष्ठान, आप.श्रौ.सू. 9.1.3; 2. एक याज्या में एक देवता के नाम की स्थानापन्नता (विकल्प), आश्व.श्रौ.सू. 2-8.10 भाष्य।

इज्यैकत्व न. (इज्यायाः एकत्वम्) अनुष्ठान के प्रकार की एकता अथवा तथता 'अत्रैव हविष्कृदाह्वानमिज्यैकत्वात्', का.श्रौ.सू. 6.7.18।

इडसून पु. (न.) (इडायाः सूना.) (पशु-याग में प्रयुक्त) एक काष्ठीय फलक, बौ.श्रौ.सू. 4.1-2; 20.25-26; 24, 34-36; इडा कुदिका बैदली। सूना फलका, बौ.श्रौ.सू. 25.32 (इडसूनं संस्तीर्य) सरकण्डे की चटाई, जिस पर वध्य पशु की वपा रखी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 15.31 (बैदली फलका, भाष्य); पशु के अङ्गों को काटने के लिए फलक, भा.पि.मे. 1.7.7 पर काशिकर (तथा च द्रष्टव्य- ड्यापोः संज्ञा छन्दसोर्बहुलम, पा. 6.3.63)।

इडा स्त्री. हर्विद्रव्य (में) से 4 अथवा 5 बार काटा गया भाग। इस पर घी डाला जाता है और यज्ञ के सभी प्रतिभागियों द्वारा एक साथ उपयुक्त होता है (खाया जाता है), आप.श्रौ.सू. 3.1.1; श्रौ.प.नि; पृ. 8.52; हुतहविःशेषादवदाय इडापात्रे स्थास्यमाना हविर्भाग इत्युच्यते; द्रवाहुति देना (विशेषतः प्रयाज एवं अनुयाज के मध्य एक पवित्र द्रवाहुति दी जाती है, एवं दुग्ध के पाँच तैयारियों वाले जल से युक्त एक पात्र में उड़ेल दी जाती है और तब आंशिकरूप से ऋत्विजों एवं यजमानों द्वारा इसका पान किया जाता है); पवित्र वाक् (वाणी) एवं कर्म की अभिमानिनी देवी के रूप में गौ में मानवीकृत, अदिति एवं अन्य देवताओं संग-संग आहूत, किन्तु विशेषतः 'आप्री' में सरस्वती एवं मही या मनुपुत्री भारती के साथ, दक्ष की पुत्री मैत्रावारुणी एवं कश्यप की पत्नी (के साथ) शरीर के भाग में एक विशिष्ट धमनी (नाड़ी); नलिकाकार पात्र (प्राणाधार आत्मा के प्रमुख सञ्चरण-मार्गों में एक, जिसकी स्थिति शरीर के दाहिने भाग में रहती है), मो.वि.; एक (साम) गायन के अन्त (निधन) का नाम एवं रूप, निदा.सू. 9.1.31; देखें— श्रौ.को. 11.207।

इडाचमस (इडायाः चमसः) इडा के लिए एक पात्र =

इडापात्र = ० पात्री।

इडाजप पु. (इडामन्त्रस्य जपः) 'इडा देवाहुर्', आदि मन्त्र को जपना, श्रौ.प.नि. 14.101।

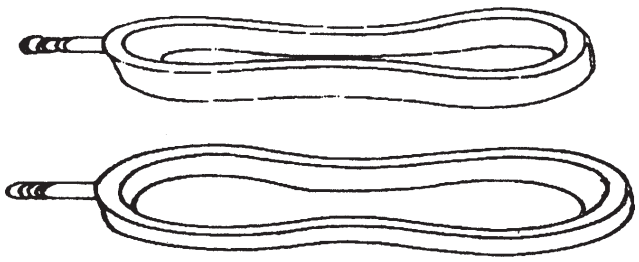

इडापात्र = ० पात्री

इडादध पु. दर्श एवं पूर्णमास याग के एक विकल्प का नाम, जिसका अनुष्ठान उसी प्रक्रिया से होता है जिस प्रक्रिया से दाक्षायण यज्ञ का अनुष्ठान (आप.श्रौ.सू. 3.17.4-22) पूर्णमासी के दिन अग्नि के लिए एक अष्टाकपाल पुरोडाश, अग्नीषोम के लिए एकादशकपाल पुरोडाश एवं इन्द्र के लिए सान्नाय्य का विधान किया गया है। अमावस्या (दर्श) के दिन अग्नि के लिए एक पुरोडाश (अष्टाकपाल), इन्द्र

के लिए (एकदशकपाल) पुरोडाश एवं मैत्रावरुण के लिए आमिक्षा, तदनन्तर वाजिन् संज्ञक जल की आहुति। उपवसथ के दिन अग्नि के लिए (अष्टाकपाल) पुरोडाश। बाद में आने वाले पूर्णमासी के लिए इसे नहीं करना चाहिए (बौ.श्रौ.सू. 17.52; 23.17); आश्व.श्रौ.सू. (2.14) के अनुसार प्रजापति इस याग का मुख्य देवता है, जिसका (जिस याग का) अनुष्ठान फाल्गुन या चैत्र की पूर्णिमा के दिन शृंखला का प्रारम्भ कर पूरे एक वर्ष भर किया जाता है। शां.श्रौ.सू. (3.9) के अनुसार इस यज्ञ की हविस् हैं— पूर्ववर्ती दिन में अग्नि के लिए पुरोडाश एवं सरस्वती के लिए पका हुआ चावल (पक्कौदन) एवं अग्नीषोम के लिए एक पुरोडाश, एक उपांशु (निम्न ध्वनि में) आहुति भी आग्नीषोम के लिए एवं सान्नाय्य (दधि) पूर्णमासी के दिन इन्द्र के लिए। अमावस्या (दर्श) के उपवसथ के लिए वह अग्नि के लिए पुरोडाश एवं सरस्वन्त् के लिए पक्व ओदन की आहुति दे। दूसरे दिन प्रातः इन्द्र-अग्नि के लिए एक पुरोडाश एवं मित्रा-वरुण के लिए आमिक्षा की आहुति तथा तदनन्तर वाजिन् के अर्पण का विधान है, श्रौ.को. (सं.) I.326।

इडानां संक्षार न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.14 सा.वे. 1.119 पर निबद्ध।

इडापथ पु. (इडायाः पन्थाः, ऋपूरब्धूःपथामानक्षे, पा. 5.4-74) पु. (होता के लिए) इडा (को वहन करने) के लिए निर्धारित मार्ग, मा.श्रौ.सू. 2.2.5.23।

इडापात्री

इडापात्री स्त्री. (इडायाः पात्री) इडा के लिए अभिप्रेत पात्र, 'शेषमिडापात्र्यामासिच्य क्रोडमनस्थीनि च प्रास्यति श्रोणिवर्जम्', का.श्रौ.सू. 6.8.13; मा.श्रौ.सू. 1.8.5.16 (इडा-पात्र) = इडाभाजन, वारा.श्रौ.सू. 1.1.3.12।

इडाभक्ष पु. (इडायाः भक्षः भक्षणमित्यर्थः) इडा-शेष (इडा के अवभिष्ट भाग) का भक्षण, आप.श्रौ.सू. 4.10.5.7।

इडामार्जन न. (इडायाः मार्जनम्) ऊध्वर्यु एवं आग्नीध्र के ऊपरी भाग के सामने जैसा कि बर्हिस् के अधोभाग में होता एवं ब्रह्मा के भी, जल को हाथों पर उड़ेलना, श्रौ.प.नि. 34.280।

इडायतन न. (इट् + आयतन) एक साम में 'इट्' की अन्त-स्थिति, जै.ब्रा. I.330।

इडारम्भण (इडायाः आरम्भणम्, आरम्भण-आ + रभ् + ल्युट्, नुमागम्) (अन्तिम) इडा का आरम्भ, निदा.सू. 9.1.31।

इडास्थान न. (इडायाः स्थानम्) अन्तिम (निधन) इडा का स्थान, ला.श्रौ.सू. 10.2.6।

इडाह्वान न. (इडायाः आह्वानम्) (अथवा इडोपाह्वान = इडायाः उपाह्वानम्) इडा-संज्ञक हविर्द्रव्य एवं साथ-साथ देवी इडा का आह्वान। वह कृत्य जो इडा के कर्तन का अनुगमन करता है, के बारे में मान्यता है कि यह देवों को यजमान को सफलता देने के लिए प्रवृत्त करता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.7.7।

इडोपाह्वान

इडोपहवन न. (इडायाः उपहवनम्) इडा-पात्र, बौ.श्रौ.सू. 1.18:1, 'अथ कंसं वा चमसे वेडोपहवनं याचति'; देखें— श्रौ.प.नि. 33.276।

इण्ड्वा न. (द्वि.) घड़े के लिए आलम्बन, घटालम्बन, श्रौ.को. I.ii. 903 [बौ.श्रौ.सू. 17.31-38; 23.16; 26.22; 14.30]; तु,का.श्रौ.सू. 16.5.3 (परिमण्डलाभ्यामिण्ड्वाभ्यामुखां परिगृहणाति------); चि.भा.से. (जिसमें अग्नि रखी जाती है, उस, उखा को ले जाने के लिए हाथों के लिए की सुरक्षा के रूप में प्रयुक्त 'मुञ्ज' संज्ञक घास को दो पत्र, श.ब्रा. 6.7.1.25; 'शिक्यरुक्मपाशेण्ड्वासन्दी: परेणास्यति------', का.श्रौ.सू. 17.2.4 (चयन); तप्त उखा-पात्र (मराठी में कम्बल) को पकड़ने के लिए प्रयुक्त घास का गुच्छा, काशिका परिशिष्ट।—काष्ठ की तश्तरी, जो गरम कड़ाही को पकड़ने के समय हाथ की रक्षा के लिए प्रयुक्त होती है, आप.गृ.सू. 23.7; तु.दर्भेड्व, खारीड्व।

इति (इण् गतौ + क्तिन्) वहाँ आने का साधन, जै.ब्रा. I.25।

इतिहास पु. (इति ह आस) सचमुच ऐसा था अथवा सचमुच ऐसा (के रूप में वेद), शां.श्रौ.सू. 16.2.24।

इतिहेति पु. निरर्थक एवं अनावश्यक बात कहने वाला, गप हाँकने वाला, शां.गृ.सू. 4.12.11।

इदंविष्णुक्रम पु. 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे' (ऋ.वे. 1.22.17) के साथ चलते या घूमते हुए कदम, अग्निवे. गृ.सू. 1.6.3 : 31।

इदावत्सर न. यह साल, वर्तमान संवत्सर, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.21।

इदावत्सरी वि. (स्त्री.) वर्तमान वर्ष (इस साल) में सम्बद्ध, भा.श्रौ.सू. 8.14.7; आ.श्रौ.सू. 8.12.5; तु.संवत्सरीया, परिवत्सरीया, अनुवत्सरीया एवं उद्वत्सरीया।

इध्म पु. (इन्ध् + मन्) पलाश अथवा खदिर (खैर) की लकड़ी से निर्मित अग्निप्रज्वालन के लिए प्रयुक्त काष्ठ-छड़ियाँ, इनकी संख्या 21 है। इनमें पन्द्रह सामिधेनी ऋचाओं के समय अग्नि में फेंक दी जाती हैं, तीन का उपयोग परिधि के रूप में होता है, 2 का दो आघारों के लिए एवं एक का अनुयाज के लिए, आप.श्रौ.सू. 1.5.6 भाष्य; किन्तु इध्मों की संख्या भिन्न-भिन्न बतलायी गई है : आतिथ्या में सत्रह, चातुर्मास्य में तेईस, शां.श्रौ.सू. 14.22.14 (गट्ठर-इन्धन); 'प्रात: पञ्चगृहीतं गृहीत्वाऽग्नी प्रणयतीध्माभ्यामुपयम्य', का.श्रौ.सू. 5.4.2; मा.श्रौ.सू. 2.2.2.3 (अग्नि-काष्ठ) ईंधन का काष्ठ = लट्ठा, आप.गृ.सू. 2-5; देखें—श्रौ.प.नि. 13.73।

इध्मचिति स्त्री. (इध्मस्य चिति:) लकड़ियों के ढेर अथवा लकड़ियों की चिता, जिस पर शव की अन्त्येष्टि की जाती है, आश्व.गृ.सू. 4.2.14।

इध्मदारु न. (इध्माय दारु, चतुर्थी तदर्थार्थ. पा.2.1.36) ईंधन के रूप में प्रयुक्त लकड़ी का लट्ठा, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.10।

इध्मपरिवासन (इध्मस्य पारिवासनम्) अग्नि-काष्ठ का फर्रा, मा.श्रौ.सू. 1.3.5.12।

इध्मप्रव्रश्चन न. (इध्मस्य प्रव्रश्चन:, प्रश्चन् - प्र + व्रश्च् + ल्युट्) आवरण छड़ियों को रंदते (समतल करते) समय प्राप्त की गई चैली अथवा खपची, आप.श्रौ.सू. 1.6.3; एक विशेष आहुति के लिए प्रयुक्त (दर्श), 3.9.12; भा.श्रौ.सू. 1.5.15।

इध्मबर्हिराहरण न. (इध्मस्य बर्हिषश्च आहरणम्) (दर्श में) इध्म (ईंधन) एवं बर्हिस् (एक घास) के आहरण से युक्त एक कृत्य (अर्थात् वह कृत्य जिसमें इध्म एवं बर्हिस् का आहरण होता है), भा.श्रौ.सू. 1.5.11-13।

इध्मशकल न. (इध्मस्य शकलम् = खण्ड:) इध्म संज्ञक अग्नि-काष्ठ की फर्री अथवा टुकड़ा 'वेदिं बर्हिरिध्यशकलम-पच्छिद्यैके', का.श्रौ.सू. 3.2.5 (होतृ-वरण के लिए आह्वान = आश्रवण 'ओश्रावय' के समय हाथ में इसको = इध्मशकल को पकड़े रहना विहित है); यह 'इध्म-सन्नहन' का एक विकल्प है, का.श्रौ.सू. 3.2.3-4; अग्नि-काष्ठ की फर्री (द्वादशाह में प्रवर के लिए प्रयुक्त), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.44; मा.श्रौ.सू. 2.4.1.18।

इध्मबर्हिराहरण

इध्मसन्नहन न. (इध्मस्य सन्नहनम्, सन्नहन=सन्नह्यते अनेन—सम् + नह् + ल्युट्) अग्नि-काष्ठादि को बाँधने के लिए

पवित्र घास की रस्सी, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.3; आप.श्रौ.सू. 2.13.1. 'निधायेध्मसन्नहानान्यादा' योश्रावये 'त्याह', का.श्रौ.सू. 3.2.3।

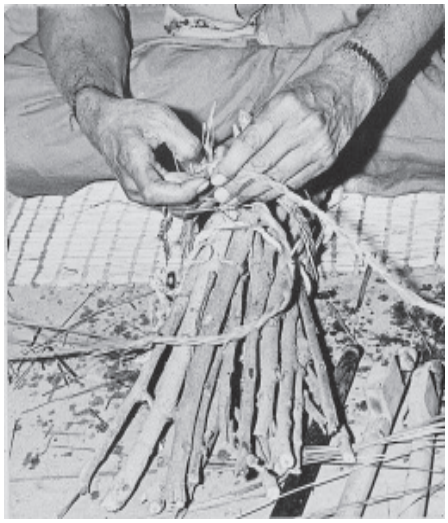

इध्मसन्नहन

इध्माबर्हिस् न. (इध्मश्च: बर्हिश्च) अग्निकाष्ठ अथवा अग्नि की छड़ियाँ एवं यज्ञीय घास (बर्हिस्), मा.श्रौ.सू. 1.1.2.1, का.श्रौ.सू. 2.2.9; देखें—इध्माबर्हिराहरण।

इन्दुमती स्त्री. 'एह्यू षु ब्रवाणि ते----', ऋ.वे. 6.16.16 ऋचा का नाम, जिसका वाचन वैखा.श्रौ.सू. 1.19-20 के अनुसार अग्न्याधान में अग्नि एवं सोम के लिए आज्य भाग-आहुति के लिए पुरोनुवाक्या के रूप में होता द्वारा किया जाना चाहिए।

इन्द्रक्रतु पु. 'इन्द्र क्रतुं न आभर' (ऋ.वे. 7.32.26), द्विपदी ऋचा का नाम, ला.श्रौ.सू. 4.7.1; 10.6.4; शां.श्रौ.सू. 12.9.17; द्रा.श्रौ.सू. 8.3.7।

इन्द्रघोष पु. पशु-याग के लिए पुष्करिणी जल से वेदि पर प्रोक्षण (छिड़काव) करने के लिए अध्वर्यु द्वारा पढ़े जाने वाले यजुर्मन्त्रों का नाम, श्रौ.को. (अं) 1.788 (बौ.श्रौ.सू. 4.2-4); इन्द्रघोषसवा----------', इत्यादि (वा.सं. 5.11; तै.सं. 1.2.12.2); तु. 'वेद्यन्तरे स्थित्वोदङ्डुत्वरवेदिं प्रोक्षति' 'न्द्रघोषत्वोति प्रतिमन्त्रं प्रतिदिशं यथालिङ्गम्', का.श्रौ.सू. 5.4.10।

इन्द्रघोषवती स्त्री. (इन्द्रघोष + मतुप् + ङीष्) पशुयाग में वेदि के प्रोक्षण के लिए प्रयुक्त 'इन्द्रघोष' शब्द से युक्त मन्त्र अथवा ऋचा का नाम, बौ.श्रौ.सू. 4.2:15; अर्थात् 'इन्द्रघोषस्त्वा वसुभि: पुरस्तात्पातु' (वा.सं. 5.11); श्रौ.को. (सं.) I. 590।

इन्द्रज्येष्ठ वि. (इन्द्रात् ज्येष्ठ) इन्द्र से उत्कृष्ट अथवा श्रेष्ठ (वरुण) 'इन्द्रज्येष्ठो न आ भर', ऋ.वे. 8.4.65; मा.श्रौ.सू. 6.2.4.1।

इन्द्रणता (इन्द्रेण नता) स्वाभाविक रूप से वक्र (टेढ़ी) ला.श्रौ.सू. 4.1.7; द्रा.श्रौ.सू. 11.1.8 (धू-मूलप्रदेशे स्वयमेव वक्रा-----इन्द्रेण नता---दैवान्नता इत्यर्थ:)।

इन्द्रतनु स्त्री. 'अग्निना विश्वाषाद्' आदि के साथ रखी गई 22 ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.6.2।

इद्रतुरीय पु. (इन्द्रस्तुरीय: हविर्देवता यस्मिन्) इन्द्र के अर्पित की गयी चतुर्थ आहुति से युक्त एक कृत्य का नाम 'इन्द्रतुरीयम्', का.श्रौ.सू. 15.1.24. (राजसूय के दूसरे साल के फाल्गुन शुक्ल पक्ष की द्वितीया के दिन इसका अनुष्ठान किया जाता है); अग्नि के लिए एक पुरोडाश, पके हुए गावेधुक के दाने रुद्र के लिए, इन्द्र के लिए दधि एवं वरुण के लिए पक्व यव के दाने वाली एक वैकल्पिक इष्टि। भार-वहन करने के लिए उद्दिष्ट गाय दक्षिणा के रूप में प्रदान की जाती है। इसका अनुष्ठान उस व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए, जिसके पास शत्रु हों, आप.श्रौ.सू. 18.9.6-9; मा.श्रौ.सू. 5.2.7.10. C.B.S. न. एक इष्टि का नाम, जिसमें चार-परत भागों का एक चौथाई इन्द्र को निवेदित कर दिया जाता है, का अनुष्ठान राजसूय के आरम्भ में दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 18.9.6; तु. राज्याभिषेक, हीस्टरमैन 34-7।

इन्द्रस्य तीव्रसुत् पु. एक सवन दिनों वाले एक सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.22।

इन्द्रयज्ञ पु. (इन्द्रस्य यज्ञ:) इन्द्र को समर्पित एक कृत्य का नाम, जिसका अनुष्ठान प्रौष्ठपदा (अगस्त-सितम्बर) की पूर्णमासी के दिन किया जाता है, जिसमें चावल के साथ पकाया गया दूध (चरु), पुरोडाश एवं इन्द्र एवं इन्द्राणी के लिए दो आज्याहुतियाँ दी जाती है एवं यज्ञीय भोज्य का एक भाग खाकर यजमान मरुतों के लिए एक बलि देता है, पा.गृ.सू. 2.15।

इन्द्रनिहव (इन्द्रस्य निहव:, निहव = नि + ह्वे + अप्) इन्द्र को आमन्त्रित करने के लिए एक प्रगाथ का नाम, 'इन्द्रे नेदीय एदिहि' ऋ.वे. 8.53.5-6।

इन्द्रसव पु. (इन्द्राय सवः, सव-सू + अप्) एक दिन में सम्पन्न होने वाले एक सोम-याग का नाम, वारा.श्रौ.सू. 3.1.2 : 46।

इन्द्रस्य रोचन न. जब महावीर पात्र पर्याप्त रूप से गरम हो जाता है, उस समय गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.97 = घर्मस्य रोचना, ला.श्रौ.सू. 1.6.23-26।

इन्द्राग्न्योः कुलाय पु. एक दिन में समाप्य एक सोम याग का नाम, ला.श्रौ.सू. 9.4.28; शां.श्रौ.सू. 14.29.1।

इन्द्राणस् न. (इन्द्रस्य अनः) इन्द्र का शकट अथवा रथ, जिसमें चार पहिये होते हैं; बौ.श्रौ.सू. 15.14:7 (अश्व); Dumount L'Asva 312, 320।

इन्द्राभिव्याहार वि. (इन्द्रस्य अभिव्याहारः यस्मिन्, अभिव्याहार—अभि + वि + आ + हृ + घञ्) (वह सूक्त) जिसमें इन्द्र सम्बोधित हुआ हो, शां.श्रौ.सू. 14.33.22; 'इन्द्र सोमं सोमपते' ऋ.वे. 3.32 एवं 'इन्द्रं स्तुवत', ऋ.वे. 10.89; तु. इन्द्रावरुणाभिव्याहार, शां.श्रौ.सू. 14.35.2 (ऋ.वे. 7.62 एवं ऋ.वे. 7.82 'उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकम्', एवं 'इन्द्रावारुणा युवम्' क्रमशः)।

इन्वका स्त्री. मृगशिरस् नाम वाली एक तारा (नक्षत्र), आप.गृ.सू. 2.16; 3.4।

इयत्ता स्त्री. (इदम् + मतुप् + तल् + टाप्, इदं प्रमाणम् अस्य तस्य भावः) इतना होना, परिमाण, जै.ब्रा. I.18।

इरा स्त्री. भोज्य, जै.ब्रा. I.17.5।

इरिण पु. स्वाभाविक रूप से खुदा हुआ भूमि का टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 5.25.9 (रु. स्वभावतः ऊषरे देशे नावस्येत् आहिताग्निव्रतानि, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.17; 6.1.5.16 (अनुवाद-स्वाभाविक रूप से बंजर); 9.1.1.12; जै.ब्रा. I.134।

इलान्द न. एक साम का नाम, द्रा.श्रौ.सू. 29.4.10; 20.3.1; ऋ.वे. 10.140.1 पर निबद्ध; पञ्च.ब्रा. 5.4.3 (महाव्रत के अन्तर्गत अग्निष्टोम साम के रूप उल्लिखित)।

इषु पु. बाण, का.श्रौ.सू. 22.5.30; शां.श्रौ.सू. 12.14.5; 6.2.7; एक यज्ञ का नाम (एकाह), का.श्रौ.सू. 22.5.30 (इषुः श्येनवदसद्यः)।

इषुमात्री वि. (इषुः प्रमाणम् अस्याः, इषु + मात्रच् + ङीप्) बाण जितनी प्रमाण वाली, चौड़ाई में एक 'इषु' (तीन फीट) की नाप वाली 'पञ्चप्रादेशामिषुमात्रीं वा तिर्यक्पञ्चपशोः', का.श्रौ.सू. 16.3.25 (इष्टका पशुबन्ध के लिए यदि आलभ्य पशुओं की संख्या पाँच हो), आप.श्रौ.सू. 16.4.8।

इषोवृधीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.9.8 सा.वे. 1.472 पर निबद्ध।

इष्टका स्त्री. अग्निवेदि के चयन के लिए ईंट (टें) [(मृण्मयीः---पादमात्र्यः, अरत्निमात्र्यः, उर्वस्थिमात्र्यः, अनूकमात्र्यः त्र्यालिखिताश्च); वे मिट्टी की बनी होती हैं एवं इनका आकार भिन्न-भिन्न होता है : पैर के बराबर, अरत्नि के बराबर, यजमान के जङ्घों की हण्डी के परिमाण वाली, दाहिने अथवा बाएं वक्रीकृत, एक सीधी रेखा अथवा तीन रेखाओं से चिह्नित। वे मन्थन से उत्पन्न अग्नि में तब तक पकायी जाती है जब तक लाल न हो जायें। यदि ईंटे भग्न (टूटी हुई) काली अथवा दागदार हों, तो उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए], आप.श्रौ.सू. 16.13.6-8; वे इष्टकायें, जो मिट्टी की नहीं बनी होती हैं, वे हैं—कमल-पत्र, रुक्म, स्वर्ण-पुरुष, पाँच घृत-इष्टकाएं, दुर्वा (दूब) नाम की घास के खण्ड, सात स्वयमातृण्णायें, सिकता (बालू), कच्छप (कछुआ), उलूखल एवं मुसल, उत्पवन-टोकरी (शूर्प = सूप) दृषद् (पत्थर), पाँच पशुओं के शिरस् एवं एक सर्प का शिरस्। मिट्टी की ईंटों को नाम दिया गया है : प्रथम इष्टका 'आषाढा' कहलाती है (जिसका निर्माण यजमान-पत्नी द्वारा किया जाता है) एवं अन्यों के नाम एवंविध हैं—यजुष्मती, लोकम्पृणा, बालखिल्य एवं चित्रिणी। अग्निवेदि के लिए आवश्यक ईष्टकाओं की कुल संख्या 10800 है।

इष्टका

किन्तु चिन्नस्वामी के उल्लेखानुसार इष्टकाओं की संख्या 1000 है। अन्त्येष्टि-भूमि पर जली हुई हड्डियों के अवशेष के ऊपर टीले के निर्माण के लिए भी ईंटों की आवश्यकता होती है, भा.पि. 2.4.3-4; तु. अस्थिसञ्चयन; प्रत्येक की नाप (परिमाण) चिति का 1/24 अथवा एक मनुष्य-पाद (मानव के एक पैर) के बराबर होती है। शालामुखीय अथवा आहवनीय (पश्चाद्वर्ती सोमयाग में गार्हपत्य कहलाता है) का चयन भी ईंटों से ही किया जाता है जैसा कि सदस् में धिष्ठ्य कुण्ड भी, देखें—जोसेफ टी.के. IHQ 1982।

इष्टकापशु पु. (चयन के आरम्भ में) पशु-याग जिसमें आलभ्य पशुओं के रक्त-रञ्जित (रक्त से सने हुए) शिरों का प्रयोग इष्टकाओं के रूप में किया जाता है। तु.वा.सं. 37.29 पर महीधर (वायव्येष्टकापशुपक्षे), वैखा.श्रौ.सू. 10.13।

इष्टप्रथमयज्ञ वि. (इष्ट: प्रथम: यज्ञ: येन स:) जिसने पहले ही प्रथम सोम-याग (अग्निष्टोम अथवा अतिरात्र) का अनुष्ठान कर लिया है, आप.श्रौ.सू. 21.2.1 (द्वादशाह); आश्व.श्रौ.सू. 4.1.6; शां.श्रौ.सू. 13.4.1; निदा.सू. 5.13:3।

इष्टम् इष्टम् क्रि.वि. प्रत्येक व्यक्तिगत आहुति-दान के पश्चात् अथवा प्रत्येक व्यक्तिगत आहुति-दान के लिए (इष्टम् इष्टम् अनुमन्त्रयते), बौ.श्रौ.सू. 3.18:7।

इष्टयजुस् वि. (इष्टं यजु: यस्यै) जिसे यज्ञीय यजुषों से आहुति दी जाती है, शां.श्रौ.सू. 8.8.6; आश्व.श्रौ.सू. 6.12.2; ला.श्रौ.सू. 3.1.17; द्रा.श्रौ.सू. 7.1.28; भक्ष - मन्त्र का अंश।

इष्टर्ग पु. 'दर्वी' नाम वाली करछुल (दर्वी, अङ्गारकर्षणार्थं काष्ठम्, उल्मुकम्), बौ.श्रौ.सू. 14.4; अध्वर्यु इसका उपयोग आहुति देने में करता है, श्रौ.को. (सं.) II.551।

इष्टापूर्ती स्त्री. पवित्र कृत्य की योग्यता अथवा गुण, जै.ब्रा. I.310।

इष्टाहोत्रीय न. (प्रवर्ग्योद्वासन के समय प्रोक्षण के अनन्तर गाये जाने वाले) एक साम का नाम, मा.श्रौ.सू. 4.4.25. प्रवर्ग्योद्वासन में उत्तरवेदि के उत्तर 'सम्राट् आसन्दी' को रखने के अनन्तर भी इसका गायन किया जाना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 15.14.2; तु.श्रौ.को. (अं.) II.249; श्रौ.को. (सं.) II. 539।

इष्टि स्त्री. (यज् + क्तिन्) याज्यानुवाक्या के पश्चात् वषट्कार द्वारा अनुगत (के साथ-साथ) वेदि के दक्षिण की तरफ से अध्वर्यु द्वारा खड़े होकर प्रदान की गयी हविस् की आहुति का.श्रौ.सू.1.3.6; 9.8. इष्टि, शब्द का 'आहुति' एवं 'होम' से अन्तर बतलाया गया है। कृत्यों के तथाकथित वर्ग का प्रतिदर्श (प्रकृति) दर्श है, इसमें इन ऋत्विजों की आवश्यकता होती है : अध्वर्यु, आग्नीध्र, होता एवं ब्रह्मा। यजमान एवं यजमान-पत्नी द्वारा सहायता एवं आयोजन किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.3।

इष्टिकाल (इष्टे: काल:) (अग्न्याधेय से सम्बद्ध) इष्टि (संज्ञक यज्ञ) के लिए निर्धारित समय, शां.श्रौ.सू. 2.2.1।

इष्टिपरिवेष (इष्टे: परिवेष:) इष्टि के लिए आवश्यक द्रव्य अथवा वस्तुएं, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.35।

इष्टिपरिवेष

इष्टिपरिवेषण न. (इष्टे: परिवेषणम्) इष्टि में प्रयुक्त होने वाले साधन (सामान) एवं द्रव्य आप.श्रौ.सू. 18.10.13।

इष्टिविध वि. (इष्टि: विधा यस्य) इष्टि के तरीके से जिसका अनुष्ठान किया गया है; दो प्रकार के पशु यागों में एक के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द दूसरे के लिए (पारिभाषिक शब्द) 'सोमविध' है। वह पशु-याग जिसका 'प्रणीता' जल आगे ले जाया जाता है, प्रणीता में स्थित जल उड़ेला जाता है एवं 'विष्णुक्रमण' किया जाता है, इष्टविध पशुयाग है, श्रौ.को. (अं) 1.852; आप.श्रौ.सू. 7.28.1।

इष्टिश्राद्ध (इष्टौ श्राद्धम्) इष्टि के प्रसङ्ग में अनुष्ठित श्राद्ध, शांखा.ध.सू. 210।

इष्टिसंस्थ वि. (स्त्री. आ) (इष्टौ संस्था = समाप्ति: यस्या: सा) इष्टि में समाप्त होने वाली, अर्थात् इष्टि से जिसकी समाप्ति

(पूर्ति) होती है, मा.श्रौ.सू. 8.6.8; ला.श्रौ.सू. 10.15.8।

इष्ट्ययन न. चातुर्मास्य, तुरायण एवं अन्य सदृश कृत्यों वाले कृत्यों के वर्ग से युक्त सत्र, आश्व.श्रौ.सू. 2.14.1 (इष्टिभिरयनं गमनं येषु कर्मसु, भाष्य)।

इहकार वि. 'इह' को अभिव्यक्त करना, 'इह' का अभिव्यक्तीकरण, ला.श्रौ.सू. 7.8.5; 7.8.9; 7.8.12; (—**कारान्त**) ला.श्रौ.सू. 7.2.7; द्रा.श्रौ.सू. 20.3.31 (जहाँ मध्य = आने वाले अन्तिम = निधन के रूप में उल्लिखित है = स्वरयुक्त होता है = अन्तर्निधन)।

इहवद् वामदेव्य न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.9.26 सा.वे. 1.22 पर।

इहा३इहा३ स्त्री. सोम की टहनियों को दबाते समय पढ़े जाने वाले यजुस् के शब्द 'इहा ३ इहा ३ इति प्रथमः पर्यायः, का.श्रौ.सू. 10.1.6; ला.श्रौ.सू. 7.4.4।

ई

ईडितवत् वि. (स्त्री. ई) (ईडित + मतुम् + ङीप्) सान्तपनीयेष्टि के स्विष्टकृत् के लिए होता द्वारा संयाजों के रूप में पढ़ी जाने वाली दो ऋचाओं 'त्वाम् ईडते अजिरं दूत्याय---' (ऋ.वे. 7.11.2) एवं 'अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणतः----' (ऋ.वे. 3.17.4) का नाम, कात्य हौत्रपरि 3.8-12।

ईडेद्यावीय (ईडे द्यावा + छ, वृ.-----) 'ईडे द्यावापृथिवी' ऋ.वे. 1.112 (25 ऋचाएं) से प्रारम्भ होने वाला सूक्त, आश्व.श्रौ.सू. 4.15.9।

ईनिधन वि. ('ई' इत्यस्मिन् निधनं यस्य तत्) वह साम जिसके अन्त में अन्तिम के रूप में 'ई' आता है, ला.श्रौ.सू. 6.11.2।

ईलन (ईल् + ल्युट्) फेंकना, प्रक्षेप, आप.श्रौ.सू. 1.16.9 भाष्य।

ईशानबलि (ईशानाय बलिः 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः पा.------) ईशान को अर्पित किया जाने वाला पका चावल, देखें—शूलगव।

ईश्वर (ईश् + वरच्, स्थेश----वरच्, पा. 3.2.175) (विपत्ति अथवा आपदा का) स्वामी, जै.ब्रा. 1.83; इत्यादि।

ईषा स्त्री. 1. एक माप का नाम = 188 अङ्गुल ('तत्राष्टाशीतिशतमीषा, का.शु. 2.2); मा.श्रौ.सू. 10.1.2.1; 2. बैलगाड़ी की 'ईषा' - संज्ञक दण्ड 'देवानामित्युप-स्थम्भनस्य पश्चादीषाम्' का.श्रौ.सू. (शकटे प्रागपरायतो काष्ठविशेष ईषा, स.वृ.); चि.भा.से. चावल के लिए शकट का दण्ड; इनकी संख्या देते हैं : एक दाहिनी तरफ एवं दूसरी बायीं तरफ (दर्श), आप.श्रौ.सू. 1.75; सोम की टहनियों को ढोने वाली गाड़ी का (दण्ड), भा.श्रौ.सू. 10.19.15; 13.3.10; पशुयाग की वेदि की लम्बाई (पूर्व-पश्चिम) की एक नाप भी जो 88 अंगुल की होती है, आप.श्रौ.सू. 3.7.8 एवं भाष्य, द्रष्टव्य—'अक्ष' भी, बौ.शु. 1.1।

ईषान्तरे क्रि.वि. (ईषयोः अन्तरे) (सोम का वहन करने वाली गाड़ी के) दो ईषा-दण्डों के बीच 'ईषान्तरे भूमिष्ठः सुब्रह्मण्यः पलाशशाखया प्राजति', का.श्रौ.सू. 7.9.12।

ईषीका स्त्री. (इष् + क्रुन्) शर अथवा दर्भ संज्ञक घास की तूलिका, जिससे यजमान की आँख में दीक्षा के अङ्ग के रूप में अञ्जन लगाया जाता है, भा.श्रौ.सू. 10.4.13 (सोम); देखें—'शरेषीका'।

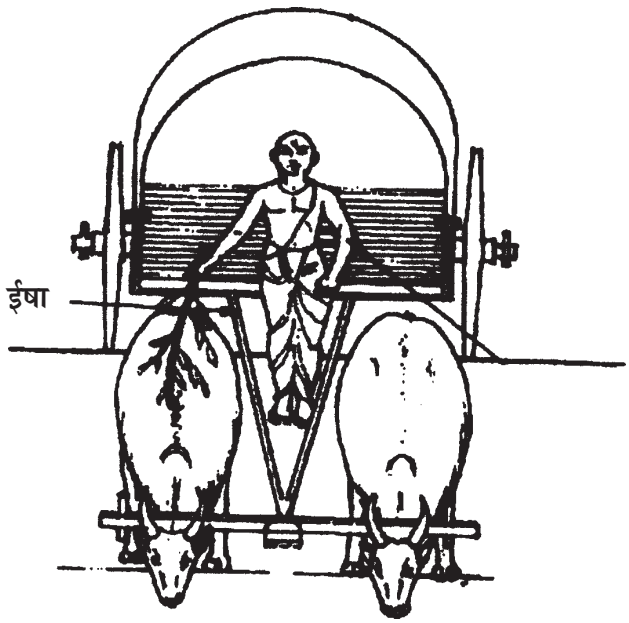

सोमशकट

उक्तब्राह्मण वि. (उक्तं ब्राह्मणं यस्य सः) जिसकी वैदिक व्याख्या पहले ही दे दी गयी है, जै.ब्रा. II. 348।

उक्थ न. (वच् + थक्, 'वचिस्वपियजतीनां क्ङिति, पा. 6.1.15' इति सम्प्रसारणम्) सामान्य (=शस्त्र) में चार भागों को (वास्तव में जो प्रधान है) एक बनाकर पाठ करना (चि.भा.से)।

उक्थपात्र न. (उक्थस्य पात्रम्) एक पात्र का नाम जिसमें द्रवाहुति से अनुगत प्रत्येक शब्द के पाठ के अनन्तर द्रवाहुतियाँ उड़ेली जाती हैं, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.26; इग्लिंग : श.ब्रा. अं XXVI; 293; मो.वि : उक्त के पाठ के समय अर्पित की जाने वाली द्रवाहुति का पात्र, निरु.।

उक्थमुख (उक्थस्य मुखम्) उक्थ का मुख, आज्य भाग का स्तोत्रिय एवं अनुरूप के बाद मुख्य एवं तृतीय भाग 'प्र वो मित्राय-----' से प्रारम्भ होने वाला पाँच ऋचाओं से युक्त सूक्त (मैत्रावरुण शस्त्र के लिए) उक्थमुख के रूप में प्रयुक्त, श्रौ.को. (सं.) II. 339, माध्यन्दिन सवन में यह प्रगाथ का रूप ग्रहण करता है, श्रौ.को. (सं.) II. 410; शां.श्रौ.सू. 7.11.3, ब्राह्मणाच्छंसिन् का (उक्थमुखीय 11.14.3, ऋ.वे. 8.17.7-13); द्र. CH 248।

उक्थवीर्य न. (उक्थस्य वीर्यम्, वीर्य = वीर + यत्) स्तुति की शक्ति; निश्चित शब्दों, जो कि विभिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न होते हैं, के साथ 'उक्थम् वाचि' शब्द को जपना, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.22-24; शस्त्र का अन्तिम भाग (आज्य); 5.10.22-24; उक्थसम्पद का पर्यायवाची, वैता.श्रौ.सू. 20.21; 'वाचं में जिन्व, प्राणं में तृम्प, चक्षुर्मे पाहि, श्रोत्रं में अव, वरुण मे यच्छ, तन्वम् मे पाहि, यशो मे धेहि, घोषाय त्वा उक्थं वाचि' होता के द्वारा उसके 'प्रउग शस्त्र' के अन्त में पढ़े जाने वाले मन्त्र, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.1-10; शां.श्रौ.सू. 7.10; 8.14.2।

उक्थशंस वि. (उक्थं शंसति यः, उक्थ + शंस् + अच्) स्तोत्र (उक्थ) का पाठ (शंसन) करने वाला, अर्थात् होता अध्वर्यु द्वारा प्रार्थनात्मक तरीके से पुकारा जाता है, जब वह (अध्वर्यु) होता को पाठ करने के लिए प्रेरित करता है, आप.श्रौ.सू. 12.27.19।

उक्थामद पु. (उक्थं च आमदः च) स्तुति करना एवं आनन्दित होना, जै.ब्रा. I.212।

उक्थ्य पु. एक सोम-याग (सात सोम-संस्थाओं में एक) जिसमें 15 स्तोत्र और उतने ही शस्त्र होते हैं (अग्निष्टोम के 12 स्तोत्रों एवं 12 शस्त्रों में तीन स्तोत्र एवं 5 शस्त्र अधिक जोड़कर)। अन्तिम तीन 'उक्थ' कहे जाते हैं : प्रत्येक होत्रक के लिए एक। एक अतिरिक्त पशुयाग और होता है : इन्द्र एवं अग्नि के लिए एक बकरा (अग्निष्टोम वाले के अतिरिक्त), आश्व.श्रौ.सू. 6.1.1-3; आप.श्रौ.सू. 16.1।

उक्थ्यग्रह पु. (उक्थ्यस्य ग्रहः) प्रातः एवं माध्यन्दिन सवन के समय एक सोम-आहुति का नाम, बौ.श्रौ.सू. 7.18; आप.श्रौ.सू. 12.28.11-13, मित्र एवं वरुण से सम्बन्ध रखने वाली।

उक्थ्यपात्र न. (उक्थ्यस्य = उक्थ्यग्रहस्य पात्रम्) उक्थ्यग्रह से सम्बद्ध आवश्यक पात्र, आप.श्रौ.सू. 12.1.14; तु. इग्लिंङ्ग श.ब्रा.अं. XXVI. 293।

उक्थ्यस्थाली स्त्री. (उक्थ्यस्य स्थाली), उक्थ्य-पात्र, श्रौ.कौ. (अं) II.i. 351; तु. उक्थ्यपात्र।

उक्षण न. (उक्ष् = उक्षी सेचने + ल्युट्) जल को छिड़कने का कृत्य, वैखा.गृ.सू. 5.10:5।

उक्षणवेष्टित (उक्ष्णेन अजगरचर्मणा वेष्टितः) अजगर के चर्म से घिरा हुआ अथवा ढका हुआ, का.श्रौ.सू. 15.3.18-20 (ग्यारहवीं रत्न-हविस् के लिए उपहार के रूप में धनुष्)। वैसे इस शब्द का वास्तविक अर्थ 'बैल का चर्म' अधिक उपयुक्त है।

उक्षवश न. (वशः उक्षा) वन्ध्य (बाँझ) वृषभ, श्रौ.को. (सं.) I.651 (काम्येष्टि)।

उखासम्भरण

उखा स्त्री. मिट्टी का पात्र (ऋ.वे. 1.162.15) सान्नाय्य के लिए (= कुम्भी, आप.श्रौ.सू.) भा.श्रौ.सू. 7.6.8; प्रवर्ग्य में भी प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 15.2.7; विशेषत: चयन में यह वर्गाकार अथवा गोलाकार होती है 'प्रादेश' की ऊँचाई वाली; एक अरत्नि चौड़ी, 16.4.7; इसमें (चार) ईंटे रख दी जाती हैं, और इसका ऊपरी भाग एक गड्ढे के ऊपर नीचे पलट दिया जाता है, एवं ईंटों को जलाने के लिए ईंधन लगा दिया जाता है, 16.5.8-12; तु. 2 'A' 9.58 एक (उबलता हुआ) पात्र, का.श्रौ.सू. 6.7.15 (पशुं चोखायाम् श्रपयति); 'उखा, शूल', वपास्रपण्यौ च, का.श्रौ.सू. 8.8.31; यजमान उखां करोति। का.श्रौ.सू. 16.3.22; मा.श्रौ.सू. 3.5.14 (पशु के भागों = अंगों को पकाने के लिए कड़ाही); 'उखा' दूध की बाल्टी, मा.श्रौ.सू. 4.1.20 (प्रवर्ग्य); वह पात्र (जिसमें गाय का दूध पकाना होता है), मा.श्रौ.सू. 1.1.3.19; देखें—यज्ञायुधा, पृ. 72।

उखाप्रवृञ्जन (उखाया: प्रवृञ्जनम्, प्रवृञ्जन—प्र + वृञ् + ल्युट्) उखा को सेंकना, बौ.श्रौ.सू. 26.28:3।

उखासंसर्जन वि. (उखा संसृज्यतऽनेन) उखापात्र के उत्पादन अथवा सज्जीकरण के लिए सार्थक अथवा उपयोगी, आप.श्रौ.सू. 6.15.2.7 (प्रवर्ग्य)। **० सम्भरण** (उखाया: सम्भरणम्) उखा-पात्र के सज्जीकरण (तैयार करने) के लिए वस्तुओं को इकट्ठा करना 'उखासम्भरणम् अष्टम्याम्', का.श्रौ.सू. 16.2.1 (उखा सम्भरण फाल्गुनी-अष्टमी के दिन किया जाता है)।

उख्यासन्दी

उखासंभार पु. (उखाया: संम्भार:, संम्भार—सम् + भृ + घञ्) 'उखा' नाम की कड़ाही के लिए वस्तुएं। मा.श्रौ.सू. 4.1.13

उख्य वि. (उखा + यत्) (चयन के अनुष्ठाता के लिए) उखा में संरक्षित, आप.श्रौ.सू. 16.9.1; 'समम्बिलां कृत्वोख्यं निवपति----', का.श्रौ.सू. 17.1.19; ला.श्रौ.सू. 5.7.13; द्रा.श्रौ.सू. 14.3.14।

उख्यासन्दी स्त्री. (उख्यस्य आसन्दी) उख्य अग्नि के विश्राम के लिए अभिप्रेत आसन, बौ.श्रौ.सू. 10.12:4।

उग्र पु. (उच् = उची संघर्षे + रन्) क्षत्रिय पुरुष एवं शूद्र स्त्री. की सन्तान (पुत्र), आप.श्रौ.सू. 20.4.2 (अश्वमेध: उग्रै: ब्रह्मा दक्षिणत: उदङ्तिष्ठन् प्रोक्षति)।

उच्चै:कर्मन् न. प्रशंसात्मक स्वर के साथ अनुष्ठित कृत्य 'प्रात: सवने चोच्चै: कर्माणि', का.श्रौ.सू. 9.6.17।

उच्छिष्ट न. (उद् + शिष् + क्त) हविस् का बचा हुआ भाग (हवि:शेष) जिससे यज्ञ के असमाप्त (अपूर्ण) भाग का अनुष्ठान किया जा सकता है, भा.श्रौ.सू. 9.17.7; ऋत्विक् लोग इसका भक्षण करते है, आप.श्रौ.सू. 18.6.11; भोजन का बचा हुआ भाग भी, भा.श्रौ.सू. 1.12.19; हि.गृ.सू. 1.13.8 (मधुपर्क)।

उच्छिष्टखर पु. यज्ञ-मण्डप के उत्तर की ओर उठा हुआ बालू का टीला। जहाँ हविस् के बचे हुए भाग के साथ यज्ञ-पात्र साफ किये जाते हैं; आप.श्रौ.सू. 15.11.16; मिट्टी का टीला जिस पर उपयमनी (जिससे अथवा जिसमें से घर्म के शेष भाग का भक्षण किया जाता है) धोयी जाती है, काशिकर परिशिष्ट।

उच्छिष्टपात्र न. (उच्छिष्टेन लिप्तं पात्रम्) द्रवहविस् के अवशेष से सना हुआ (लिप्त) पात्र; इसे मार्जालीय खर पर साफ करते हैं, देखें—भा.श्रौ.सू. 13.8.6।

उच्छ्रयणकाल पु. (उच्छ्रयणस्य काल:, उच्छ्रयण-उद् + श्री + ल्युट्) यज्ञीय यूप को उठाने का समय 'उच्छ्रयणकाले वोभयं होमच्छेदने, सन्निधे:', का.श्रौ.सू. 7.1.29।

उच्छ्रितवती स्त्री. (उच्छ्रित + मतुप् + ङीष्) यज्ञीय स्तम्भ (यूप) उत्थापन (उठाने) के प्रसङ्ग में 'उच्छ्रयस्व वनस्पते' आदि से युक्त ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.202।

उच्यर्ति वि. (युग = जुए की अगाड़ी = रस्सी) की ढीली (गाँठ), मा.श्रौ.सू. 2.1.2.9।

उच्यर्तिम् क्रि.वि. ढिलाई से, शिथिलता से (हिरण्यं बद्ध्वा दर्भेण उच्यर्तिम्), मा.श्रौ.सू. 2.1.3.32।

उज्जिती स्त्री. (बहु.) यजुर्मन्त्रों के एक वर्ग का नाम ('अग्निरेकाक्षरम् उदजयत्', आदि जिसका वाजपेय में

यजमान से पाठ कराया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.1.2.28; आप.श्रौ.सू. 18.4.19; तै.सं. 1.7.11.1-2।

उतूल पु. दास, स्वामी के मूत्र को उसके (दास के) चारों ओर छिड़केन की क्रिया (-परिमेध) स्वामी के पास से उसके भाग जाने को रोकने के लिए एक कृत्य का अनुष्ठान किया जाता है, पा.गृ.सू. 3.7.1; भारत के उत्तर-पश्चिम में (निवास करने वाली) एक जनजाति का नाम; ओल्डेनबर्ग, श.ब्रा.अं. XXIX 350।

उत्कर पु. (उद् + कृ + अप्) वेदि के एक कदम दक्षिण की ओर एवं वेदि के पूर्वी भाग से 32 अंगुल (अथवा वेदि का 1/3) पर स्थित कूड़े का ढेर, आप.श्रौ.सू. 2.1.6-7, इसे 'गोष्ठान' कहते हैं क्योंकि 'गो' वाणी है और जैसा कि अध्वर्यु उत्कर के समीप बैठता है प्रत्याश्रावण-यजुष् 'अस्तु श्रौषट्' पढ़ता है। सत्या.श्रौ.सू. 1.6. के भाष्य के अनुसार यह एक गर्त (गड्ढा) प्रतीत होता है, जिसमें कूड़ा, धूल घास की कतरन फेंकी जाती है; तु.का.श्रौ.सू. 2.6.5 (वेदिं परिसमुह्य वितृतीयेऽग्नीदुत्तरत उत्करं करोति; स.वृ. पांस्वादि-प्रक्षेपस्थानम्); 2.6.12; 5.3.16; देखें—श्रौ.प.नि. 5.25; चि.भा. से-मलबा, एक छोटा टीला जिसका निर्माण वेदि को (महावेदि को भी) तैयार करने के लिए खोदी गयी मिट्टी से किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.1.6-17 (दर्श); स्तम्बयजुषों का इसमें प्रक्षेप होता है, भा.श्रौ.सू. 2.1.10 और विभिन्न अन्य वस्तुओं का (भी इसमें प्रक्षेप होता है)।

उत्कर्षति (उद् + कृष + ल.प्र.पु.ए.व.) विशिष्ट कृत्यों के अनुष्ठान को बाद के पड़ाव (स्तर) पर स्थानान्तरित कर देता है, आप.श्रौ.सू. 12.25; 14,15; मा.श्रौ.सू. 2.14।

उत्कोद पु. एक सम्मान, जै.ब्रा. II.152।

उत्कृष्य (उद. + कृष् + ल्यप्) खींच कर (वस्त्रान्तम् उत्कृष्य), मा.श्रौ.सू. 2.1.4.18।

उत्क्षेपण न. (उद् + क्षिप् + ल्युट्) (चावल के गोले को) ऊपर की ओर उछालना, का.श्रौ.सू. 5.10.18 (त्र्यम्बकेष्टि)।

उत्खानम् क्रि.वि. उत्खनन (खोदने) के द्वारा, ला.श्रौ.सू. 8.2.5।

उत्तपनीय पु. (उद् + तप् + अनीयर्) कपालों के तपकर लाल हो जाने के पश्चात् उनके ऊपर फैली घास में कपालों के ताप के फलस्वरूप उत्पन्न अग्नि का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.i. 14।

उत्तम पु. उच्च तान (उत्तान), ऋ.वे. से लिए गये मन्त्रों के पाठ की प्रविधि; तानों (स्थानों) में एक, का.श्रौ.सू. 3.1.5; इस तरीके से शंयुवाक के पढ़े जाने तक वह सब, जो स्विष्टकृत् अथवा इडा का अनुगमन करता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.28 (इष्टि); सम्पूर्ण तृतीय सवन में यह तान प्रयोग में लाया जाता है (सोम); आप.श्रौ.सू. 24.1.14; देखं—श्रौ.प.नि. 37.313।

उत्तर वि. (उद् + तरप्) 1. उत्तरी (दिशा) (दी गयी वस्तु के) उत्तर की ओर, (बौ.शु.सू. I.28), आश्व.श्रौ.सू. 2.19.17; शां.श्रौ.सू. 17.13.2; 2. (वह) जो बाद में आता है, पश्चाद्वर्ती, दूसरा आने वाला 'उत्तर उत्तरः प्रतिप्रस्थातुः', का.श्रौ.सू. 9.13.4; 16.2.23; शां.श्रौ.सू. 16.13.11; मा.श्रौ.सू. 2.1.1.25।

उत्तरकुरु पु. (बहु.) उत्तर कुरु प्रदेश के लोग, जै.ब्रा. I.118।

उत्तरत-उपचार वि. (उत्तरतः उपचारः येषां) वे यज्ञीय कृत्य जिनका अनुष्ठान मुख्यतः उत्तरी भाग की ओर किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.1 [गेल्डरः उत्तर से पहुँचा गया = शां.श्रौ.सू. 1.1.12 (कैलेण्ड का अनुवाद)], 'उत्तरत उपचारो यज्ञः', का.श्रौ.सू. 1.8.26।

उत्तरतोलोमन् (उत्तरतो लोम यस्य सः) जिसके बाल वाले भाग ऊपर की ओर हों, ऊपर की ओर बाल वाले भाग वाला, शां.श्रौ.सू. 17.5.9 (महावीर में मृन्मृदङ्ग)।

उत्तरदश वि. (उत्तरे दश=दश अंगुलयः यस्य) जिसकी अँगुलियाँ ऊपर की ओर अथवा उत्तर की ओर हों, ऊपर की ओर अथवा उत्तर की ओर अंगुलियों वाला, भा.श्रौ.सू. 10.16.6।

उत्तरनाभि स्त्री. (उत्तरवेद्याः नाभिः) उत्तर वेदि की नाभि (प्रादेशमात्री, गोपदमात्री, अश्वशफमात्री वा), आप.श्रौ.सू. 7.5.1; एक प्रादेश की नाप वाला वर्गाकार छिद्र अथवा गाय या घोड़े के खुर के बराबर (जितने) नाप वाली। इसका पशुयाग में आज्य से प्रोक्षण होता है (7.5.4.); जब पुराने आहवनीय में से लायी गयी अग्नि इस पर रखी जाती है, (तब) कुण्ड नव आहवनीय हो जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.7.3; देखें—काशिकर 270 शब्द-सङ्केत।

उत्तरनिर्बाध वि. जिसका पीटा हुआ भाग ऊपर की ओर है, ऊपर की ओर पीटे हुए भाग वाला, बौ.श्रौ.सू. 10.15:3 (चयन में रुक्म); वैखा.श्रौ.सू. 18.17.6।

उत्तरपक्ष पु. (उत्तरः पक्षः) चित वेदि का उत्तर वाला खण्ड 'तीर्थेनाश्वमारोह्यत्युत्तरपक्षमपरेण,' का.श्रौ.सू. 17.3.23; 16.8.23।

उत्तरपरिग्रह पु. (उत्तरश्चासौ परिग्रहः) वेदि द्वितीय परिग्रहण (रेखाकरण), आप.श्रौ.सू. 11.5.11 (अग्निवति उत्तरपरिग्रहं परिगृह्णन्ति, सोम-याग में उत्तरपरिग्रह, प्रणयन के बाद में होता है और तब शाखाहरण होता है देखें—का.श्रौ.सू. 6.2.5; बौ.श्रौ.सू. 19.5:9।

उत्तरपरिधिसन्धि पु. (आहवनीय) अग्नि के पश्चिम एवं उत्तर में रखी हुई आवरण छड़ियों का उत्तरी सन्धिबिन्दु, वैखा.श्रौ.सू. 8.6:2।

उत्तरपूर्व वि. (उत्तरपूर्वयोः दिशोः अन्तरालम्, दिङ्नामान्यन्तराले, पा. 2.2.26) उत्तर-पूर्वी 'उत्तरपूर्वं त्वन्त्यम्' का.श्रौ.सू. 8.5.5 (उपरव)।

उत्तरमन्द्रा स्त्री. गायन की उच्च (जोरदार) किन्तु धीमी विधि 'गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम्', का.श्रौ.सू. 20.2.7, अश्वमेध।

उत्तरलोम वि. (ऐसा कृष्णाजिन) जिसका बाल वाला भाग ऊपर की ओर मुड़ा हो, मा.श्रौ.सू. 6.1.1.25।

उत्तरलोमन् वि. (उत्तरं लोम यस्य तत्) ऊपर की ओर लोम (बाल) वाला (कृष्णाजिन) अर्थात् वह (कृष्णाजिन) जिसके ऊपर वाले भाग में लोम हों, शां.श्रौ.सू. 4.16.2; 'चर्माणि उत्तरलोमानि प्राग्ग्रीवाणि', का.श्रौ.सू. 1.10.4; ला.श्रौ.सू. 9.2.32।

उत्तरवासस् न. (उत्तरं च तद् वासः) ऊपरी वस्त्र, उपरिवस्त्र, आप.श्रौ.सू. 14.29.1।

उत्तरवेदि स्त्री. (उत्तरा चेयं वेदिः) पूर्व में निर्मित एवं यज्ञभूमि के अन्दर किन्तु यज्ञ-शाला से बाहर स्थित ऊपरी अथवा उच्च वेदि; एक युग-शलाका (शम्या) से नापी गयी, चत्वाल से खोदी गई मिट्टी से निर्मित एक वर्गाकार टीला, आप.श्रौ.सू. 7.3.13 (पशु); किन्तु माप में भिन्नता है (अर्थात् भिन्न-भिन्न है), 16.13.11; भा.श्रौ.सू. 12.5.2. उत्तरवेदि का उपयोग सोम में भी किया जाता है (CH.74.75)। चयन में इसका चयन होता है एवं वरुणप्रघास में (दो) उत्तरवेदियाँ होती है; देखें—का.श्रौ.सू. 5.3.18 (उत्तरवेदिं निवपत्युत्तर-स्याम्); मा.श्रौ.सू. 6.2.6.30; आश्व.श्रौ.सू. 9.7.14।

उत्तरवेदिनाभि स्त्री. (उत्तरवेदेः नाभिः) नाभि-भाग, अर्थात् उत्तर वेदि के केन्द्रीय भाग में एक बित्ते का वर्ग, श्रौ.प.नि. 85.473 (पशु)। **०प्रोक्षण** (उत्तरवेदेः प्रोक्षणम्) न. उत्तर वेदि को सींचना, उसपर छिड़काव करना 'उत्तवेदि-प्रोक्षणाद्या----' का.श्रौ.सू. 17.3.27। **०श्रोणि** स्त्री. उत्तर वेदि का नितम्ब अथवा पिछला भाग 'दक्षिणेन निहत्य दक्षिणस्यामुत्तरवेदिश्रौणौ निदधाति--', का.श्रौ.सू. 8.9.16।

उत्तरान्त पु. ऊपरी वस्त्र (उपरिवस्त्र) का किनारा, मा.श्रौ.सू. 2.1.2.17 (दीक्षा)।

उत्तरापर वि. उत्तर-पश्चिमी (उपरव) 'उत्तरापरं वा प्रयमम्', का.श्रौ.सू. 8.5.3; 'उत्तरपूर्वं त्वन्त्यम्' का.श्रौ.सू. 8.5.4।

उत्तरार्ध्य वि. (उत्तरार्ध + यत्) (आहवनीय अग्नि-स्थान के) उत्तरी आधे भाग में रखी हुई (परिधि), भा.श्रौ.सू. 1.5.8।

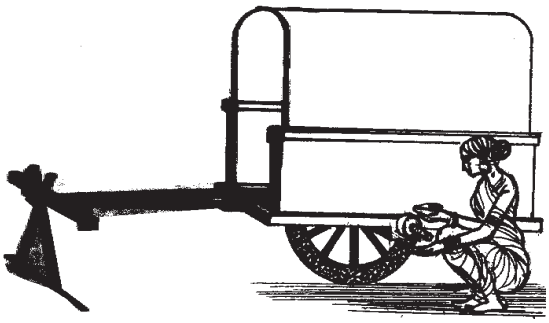

उत्तराक्षाभ्यञ्जनम्

उत्तरीय न. उपरिवस्त्र (उत्तरीयैरुपवाजनैः, पितृमेध), का.श्रौ.सू. 21.3.7; विद्यार्थी द्वारा विद्यार्थित्व अथवा अध्ययन काल में पहना जाने वाला, हि.गृ.सू. 1.9.110।

उत्तरोत्तर वि. आगे ओर आगे, बौ.शु.सू. 2.4।

उत्तरोत्तरिन् वि. दिनों दिन बढ़ने वाला (अहीन), शां.श्रौ.सू. 16.30.12।

उत्तान वि. उन्मुख (हाथ की हथेली) ऊपर की ओर (सामना करने वाली) (वर द्वारा निम्नोन्मुख अपने हाथ की हथेली से पकड़ी गई हाथ की हथेली), आप.गृ.सू. 4.11।

उत्तापनी स्त्री. (उद् + तप् + णिच् + ल्युट् + ङीप्) जिस समय शव शकट के अन्दर रखा जाता है, उस समय पढ़ी जाने वाली ऋचा 'उत्तिष्ठ प्रहि----' अ.वे. 18.3.18 का नाम; वैता.सू. 37.23; 80.35; 'प्रेहि प्रेहि----''प्रच्यवस्व----''इदन्वन्तेष्ठ-----' से प्रारम्भ होने वाली दो ऋचाएं, इत एत-----' से प्रारम्भ होने वाली 4 ऋचाएं, अग्नीषोम----' से प्रारम्भ होने वाली तीन ऋचाएं एवं पूर्वम्----', यह ऋचा, कौशि.सू. 80.20; 80.35।

उत्तिष्ठासेत् (इच्छार्थक) मध्य में ही समाप्त कर देना चाहता है, आप.श्रौ.सू. 14.23.3; (उद् + स्था + सन् प्र.पु.ए.व.)।

उत्थान न. (उद् + स्था + ल्युट्) 1. खड़े होने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 2.3.30 ('दृहितामित्युत्थानम्' इष्टि में अनाज को लेना उसके बाद खड़ा होना); 2. सोम-याग का असातत्य अथवा विच्छेद (यजमान की मृत्यु पर एवं उसके निकटतम के दीक्षा के लिए उपलब्ध न होने पर), आश्व.श्रौ.सू. 6.10.26; शिशु के जन्म के पश्चात् दसवें / ग्यारहवें दिन शिशु के विस्तर से उठने का कृत्य; वे मिश्रित भोजन को सूतिकाग्नि पर पकाते हैं एवं शिशु की जन्म-तिथि तीन नक्षत्रों आदि के लिए आहुति देते हैं, शां.गृ.सू. 1.25।

उत्थापन न. (उद् + स्था + णिच् + ल्युट्, पुगागमः) ऊपर उठाना, (अग्निहोत्री गाय, जो दुहे जाते समय बैठ गयी थी, को खड़ी करना 'अग्निहोत्री चेददुहानोपविशेद्य-जुषोत्थानमेक-------' का.श्रौ.सू. 25.1.13 ('उदस्थाद्द् देवी', इत्यादि यजुर्मत्र के साथ)।

उत्थापिनी स्त्री. (उद् + स्था + णिच् + ल्युट् + ङीप्) 'उदीर्ष्व नारी-----', आदि ऋ.वे. 10.18.8; एवं उदीर्ष्वातः; 'आतो विश्वावसो' एवं 'अश्मन्वती', ऋ.वे. 10.53.8; 10.85.21-22 ऋचाओं का नाम। इन ऋचाओं का पाठ मृत व्यक्ति की पत्नी को उठाने के लिए चारों ऋत्विजों द्वारा क्रमशः किया जाता है, शां.श्रौ.सू. 16.13.13।

उत्पत्तिरूप न. (उत्पत्तेः रूपम्) प्रकृति (प्रतिदर्श) का रूप, शां.श्रौ.सू. 6.1.3।

उत्पवन न. (उद् + पू + ल्युट्) जल को अग्निहोत्र हवणी में से, 'देवो वः सविता------' (तै.सं. 1.1.5.1) मन्त्रपूर्वक उत्तर की ओर अभिमुख अग्र भाग वाले (उदग्र) दो पवित्रों के द्वारा इसे (जल को) पवित्र करने के लिए उछालना। 'देवो वः सविता-----' मन्त्र तीन भागों में पढ़ा जाता है, पहला जोर से एवं शेष चुपचाप (आप.श्रौ.सू. 1.11.9). सत्या.श्रौ.सू. 1.3. के भाष्य का मत है कि उत्पवन के लिए दो हाथों से दो पवित्रों को पकड़ने का मूल स्रोत अन्वेष्टव्य है; चि.भा.से. ऊपर की ओर अभिमुख पवित्रों को आगे एवं पीछे की तरफ घुमाने के द्वारा जलों का पवित्रीकरण (पवित्र करना), आप.श्रौ.सू. 1.11.8; तु.मा.श्रौ.सू. 1.1.3.43 (अनुवाद-पवित्रीकरण); देखें—श्रौ.प.नि. 1.5.112।

उत्पवन

उत्पात पु. (उद् + पत् + घञ्) आकस्मिक या अस्वाभाविक क्षण (घटना), यह अपशकुन समझा जाता है, जैसे—भूकम्प। उत्पात का शमन अथवा निराकरण आहुति-अर्पण के द्वारा किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 23.9।

उत्पूत वि. (उद् + पू + क्त) (दो पवित्रों के साधन से) ऊपर की ओर उछालने के द्वारा पवित्र किया गया, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.6; देखें—अनुत्पूत, वही, देखें—1.1.3.14 (पवित्रों को अंगुष्ठ एवं तर्जनी से लेता है और तब जल को पवित्र करता है)।

उत्सर्ग पु. (उद् + सृज् + घञ्) 1. यह उद्घोषणा कि कोई विशिष्ट वस्तु यजमान द्वारा समर्पित कर दी गयी है, हि.आ.ध. II.ii.892; 2. पशुओं को मुक्त करने के लिए उनका (पशुओं का) उल्लेख करने वाले मन्त्र, का.श्रौ.सू. 17.5.19 'इमं मा हिंसीः', वा.सं. 13.47, आदि, बहु. मोचन-मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.293; 3. मधुपर्क के समय गाय को मारने के बजाय उसको छोड़ देना; और उस स्थिति में अन्य मांस से एक भोज्य तैयार किया जाता है, हि.गृ.सू. 1.13; 2.14; 4. (विशिष्ट मन्त्रों अथवा अनुष्ठानों को छोड़ देना (त्यागना), का.श्रौ.सू. 1.2.16 (नोत्सर्गयोगात्) शां.श्रौ.सू. 3.16.19; 5. किसी सत्र के निश्चित दिवसों एवं कर्मकाण्डों की उपेक्षा अथवा अतिक्रमण का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 21.25.5; उस प्रकार की भूलों अथवा अनुष्ठान से युक्त कृत्य 'उत्सर्गिणामयनम्' कहलाता है, जो गवामयन का एक प्रकार है, आप.श्रौ.सू. 21.24-25।

उत्सर्जन न. (उद् + सृज् + ल्युट्) बन्द मुट्ठी में लिये गये बर्हिष् को छोड़ने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.4.6; आग को बुझ जाने देना, 5.27.3; अतिक्रमण या उपेक्षा करना अर्थात् किसी कृत्य या निश्चित क्रियाओं (को न करना), 8.21.5; ब्रह्मा नामक ऋत्विज् का,शां.श्रौ.सू.' 4.7.18; ला.श्रौ.सू. 4.8.8; वैदिक पद का निलम्बन (त्याग) = (उत्सर्ग), आश्व.गृ.सू. 3.5.13 = समापन।

उत्सर्जनधर्मन् वि. (उत्सर्जनं धर्मः यस्य) (वह व्यक्ति) जो नियमानुसार छोड़ दिया जाने वाला हो, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.6।

उत्सिक्त न. (उद् + सिञ्च् + क्त) (दूध में उड़ेला गया) जल, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.17।

उत्सृप्त न. (उद् + सृप् + क्त) सूर्योदय 'उत्सृप्तेऽग्निमन्थनमनुत्सृप्त एके ' (उत्सृप्ते = उदिते), का.श्रौ.सू. 4.8.19 (तु. अनुत्सृप्त, वही)।

उत्सृष्ट वि. (उद् + सृज् + क्त) शिथिल, ढीला-ढाला (अर्थात् बिना हत्थे का), ब्रह्मा का पानपात्र, मा.श्रौ.सू. 8.14.1।

उत्सेध पु. (उद् + सिध् + घञ्) लम्बाई, मा.श्रौ.सू. 8.2.7; एक साम का नाम।

उदक्कर्मन् न. स्त्री. (उदकस्य कर्म) मृत व्यक्ति के लिए जुड़ी हथेलियों (अञ्जलि) से दिया जाने वाला जल, किन्तु दो वर्ष से कम आयु के मृत बच्चे के लिए नहीं, पा.गृ.सू. 3.10.1-23।

उदकक्रिया स्त्री. (उदकेन उदककस्य वा क्रिया) कुछ दिनों तक मृत व्यक्ति के लिए संयुक्त हथेलियों (अञ्जलि) से जल गिराने की क्रिया, भा.पि.मे. 1.8.7 (पितृमेध)।

उदकशान्ति स्त्री. (उदकेन शान्तिः) दुष्कृत को शान्त करना, अग्नि के स्थापन (अग्न्याधान) के पूर्व रात्रि में सम्पन्न होने वाला यजमान का जल से प्रोक्षण करने का कृत्य, श्रौ.प.नि. 44.360।

उदकाञ्जलि पु. (उदकस्य अञ्जलिः) हस्तपूर्ण जल, चुल्लू भर जल, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.16; दीक्षित के संयुक्त हथेलियों (अञ्जलि) में पुनः उड़ेले गये जल से भरी हुई (अध्यापक) की अञ्जलि, आप.गृ.सू. 10.12।

उदकस्पर्शन न. (उदकस्य स्पर्शनम्) जल का स्पर्श करना, जल को छूना, आप.गृ.सू. 16.16 (गोदान)।

उदकांस्य न. (उदकेन पूर्णं कांस्यम्) जल से भरा हुआ काँसे का पात्र, मा.श्रौ.सू. 3.8.3।

उदकार्थ पु. (उदकेन अर्थः) जल के साधन से अनुष्ठित कार्य, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.5 (इस प्रसङ्ग में ये कार्य घी से किये जाते हैं), (काम्येष्टि)।

उदकाभ्यवाय पु. (उदके अभ्यवायः = प्रवेशः) जल में प्रवेश करने का कृत्य 'मांसस्त्र्यनृतानि वर्जयेदुदकाभ्यवायं (उदक प्रवेश) च प्रागवभृथात्', का.श्रौ.सू. 5.2.22।

उदकावाय पु. (उदके अवायः) जल में प्रवेश करना, का.श्रौ.सू. 7.5.4 (दीक्षा)।

उदक्की स्त्री. केतली, कड़ाही, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.2-5, 33 (दर्शपूर्णमास में प्रयुक्त) तु. पात्री।

उदक्तूला स्त्री. (उदीचि तूलं यस्या सा) जिसका (शिखरबिन्दु का) गुच्छा (तूल) उत्तर की ओर हो, मा.श्रौ.सू. 1.5.3.1 (आधरारणि)।

उदक्या स्त्री. (उदक + यत् + टाप्) रजोधर्म में स्थित स्त्री, शां.गृ.सू. 4.7.47।

उदक्शीर्ष्णी वि. (स्त्री.) (उदीचि शिरः यस्या साः) उत्तर की ओर उन्मुख शीर्ष भाग वाली, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.27।

उदग्वंश वि. (स्त्री. आ) (उदीचि वंशः यस्याः सा) उत्तर की ओर उन्मुख अथवा आयत बाँस की धरन से युक्त, का.श्रौ.सू. 8.6.3 (सदस्), [सदस् का आकार चौड़ाई में 18, 21 अथवा 24 अरत्नि का होता है और तदनुसार क्रमशः 9, 10.5, एवं 12 अरत्नि तिरछा, 'नवतिर्यगर्धायामो वा' का.श्रौ.सू. 8.6.4]; तुल. प्राचीनवंश, का.श्रौ.सू. 12.1.22।

उदघोष पु. (उदकस्य घोषः द्र.पा. 6.356-59) जल का शोर, 'यो यः सोमाङ्गं ब्रूयात् उदघोषं जनयेत्', द्रा.श्रौ.सू. 9.1.15; ला.श्रौ.सू. 3.5.14।

उदङ्न्याय (उदक् न्यायः यस्य) उत्तर के नियम से संयुक्त जैसे कि किसी कर्मकाण्डीय कृत्य के अनुष्ठान की दिशा, भा.श्रौ.सू. 1.1.12।

उदचन न. आधवनीय पात्र से (सोम रस लेने) के लिए पात्र, आ.श्रौ.सू. 13.2.2. (आग्रयणाद् उत्सिच्य द्वितीयां धारां करोति उदचनात् तृतीयम्), चि.भा.से. चम्मच अथवा पानपात्र को भरना (चमस्, आप.श्रौ.सू.) टीका; (आधवनीय से) अन्य चमसों में सोम रस उड़ेलने के लिए प्रयुक्त,

आप.श्रौ.सू. 12.13.2; बौ.श्रौ.सू. 7.6; सोम रस को ग्रहण करने के लिए उदञ्चन संज्ञक हत्थे से रहित करछुल का उपयोग भी किया जाता है, काशिकर परिशिष्ट 1 = उपशय।

उदचमस पु. (उदकपूर्णः चमसः) जल से आपूरित चमस, का.श्रौ.सू. 17.3.3 (निनयति यथाकृष्टम्) चयन।

उदञ्चन न. (उदच्यतेऽनेन, उद् + अञ्च् + ल्युट्) हत्थे से रहित डूबने वाला पात्र (दूसरे पात्र से सोम रस निकालने के लिए प्रयुक्त), का.श्रौ.सू. 10.5.3; पु. कलछी, मा.श्रौ.सू. 2.4.4.10 (सोमयाग में प्रयुक्त) = उदचन।

उदधारा स्त्री. (उदकस्य धारा) जल की धारा 'आहवनीयं पर्युक्ष्योदधारां निनयत्यागार्हपत्यात्', का.श्रौ.सू. 4.13.16; (तुल. धारावर्जम्, का.श्रौ.सू. 4.13.19)।

उदन्वत् वि. (उदक = उदन् + मतुप् तु. उदन्वानुदधौ, पा. 8.2.13) जल से युक्त (उदन्वता अयस्पात्रेण दारुपात्रेण वा अपिदधाति), भा.श्रौ.सू. 1.14.14।

उदपात्र (उदकेन पूरयितव्यं पात्रम्, 'एकहलादौ पूरयितव्येऽन्यतरस्याम्' पा. 6.3.59 जल से भरा जाने वाला पात्र 'गार्हपत्य-मुत्तरेणोदपात्रं निधाय-----' का.श्रौ.सू. 2.3.1।

उदमन्थ पु. (उदकेन मन्थः, मन्थौदनसक्तुबिन्दु------पा. 6.3.59) (मधुपर्क में मिलाने के लिए) मधु के आधिक्य से युक्त जल, श्रौ.को. (अं.) 2.310।

उदयन न. (उद् + इ = अय् + ल्युट्) सूर्योदय, शां.श्रौ.सू. 17.1.4, मा.श्रौ.सू. 6.1.1.13।

उदयनीया स्त्री. अन्तिम कृत्य (अथवा इष्टि), शां.श्रौ.सू. 8.12.1; आश्व.श्रौ.सू. 4.26; का.श्रौ.सू. 22.9.5 (सोम)।

उदयनीयेष्टि स्त्री. (उदयनीया चेयम् इष्टिः) अन्तिम इष्टि (यज्ञ), बौ.श्रौ.सू. 10.59:15 (सोम)।

उदर्क पु. मन्त्र का परिणाम, शां.श्रौ.सू. 4.12.6।

उदवसानीया स्त्री. यज्ञीय भूमि को छोड़ने का कृत्य (इष्टि), अध्यवसान का विलोम, इस कृत्य में 5 अथवा 8 कपालों पर सेंके गये पुरोडाश की आहुति अग्नि के लिए घर्षण से उत्पन्न हुई अग्नि में दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 13.25.3-5; बौ.श्रौ.सू. 8.22; शां.श्रौ.सू. 15.16.2; का.श्रौ.सू. 8.1.4, का.श्रौ.सू. 14.5.35 (उदवसनीयान्ते यूपवेष्टनान्यध्वर्यवे ददाति); देखें—उदवसान, श्रौ.प.नि. II.9.6।

उदवसाय (उद् + अव् + षो + ल्यप्) (अन्य) स्थल पर पहुँच कर, मा.श्रौ.सू. 5.31 (उदवसाय = स्थानात्प्रदेशान्तरे गत्वा, स.वृ.); आप.श्रौ.सू. 8.5.1 (वरुण-प्रघास); (यज्ञ) निपटारा करके, आश्व.श्रौ.सू. 6.8.14।

उदश्वित् न. तक्र (मट्ठे = छाछ) का घोल (2 भाग) एवं जल एक भाग, आप.श्रौ.सू. 19.5.8; अर्क के पत्ते से अर्पित (होम=) किया जाता है, श्रौ.को. (सं.) 1.144 (राष्ट्रभृत् होम)।

उदसन न. (उद् + असु क्षेपणे + ल्युट्) (रस्सियों को) दूर फेंकने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 14.7.5।

उदस्य (उद् + असु क्षेपणे + ल्यप्) दूर फेंक कर 'उदीचीं शाखामुदस्य------' का.श्रौ.सू. 17.1.4।

उदहरण पु. (उदकं ह्रियतेऽनेन इति, उदक = उद + हृ + ल्यु) (एकधना पात्र) जो जल ढोने के लिए प्रयुक्त होता है (अथवा जिसमें जल हो), का.श्रौ.सू. 9.2.23 (तीन से दश की संख्या में होते हैं), सोम।

उदायुवन न. (उद् + आ + यु + क्युन्) चावल की थाली को खुरचने के लिए प्रयुक्त चम्मच (दर्वी) का शिर, आप.श्रौ.सू. 8.11.16 (साकमेध)।

उदावर्त पु. (उद + आ + वृत् + घञ्) साँस का उदर की ओर सञ्चरण, जै.ब्रा. I.154।

उदास (उद् + अस् + घञ्) गायन का उठता हुआ तत्त्व, जै.ब्रा. III.17।

उदिङ्गन

उदिङ्गयति (उद् + इगि गतौ + लट् प्र पु. एक.व.) (करछुल के जल को) सामने ऊपर की ओर उछालता है 'सव्ये कृत्वा दक्षिणेनोदिङ्गयति----' का.श्रौ.सू. 2.3.35।

उदीच् वि. (उद् + अञ्चु + क्विन्) जिसका (अर्थात् धिष्ण्या के) रखने की प्रक्रिया उत्तर की ओर समाप्त होती है, अर्थात् वे उत्तर की ओर एवं और पहले वाली से और उत्तर की ओर रखी जाती है, आप.श्रौ.सू. 11.14.5 (उत्तरेण होत्रियम् इतरान् उदीचा आयातयति); मा.श्रौ.सू. 2.2.4.4।

उदीचीनवंश पु. उत्तर की ओर दिष्ट धरन से युक्त मण्डप, आप.श्रौ.सू. 5.4.1; देखें—आहवनीयागार।

उदीरण न. (उद् + ईर् गतौ + ल्युट्) प्रोक्षण जल का उत्थापन, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.13।

उदुह्य (उद् + वह् प्रापणे + ल्यप्) (अग्नि को) हटाकर, शां.श्रौ.सू. 2.7.8; आप.श्रौ.सू. 12.15.2।

उदूह पु. जल को हटाने के लिए सिलवटयुक्त अथवा वेण्याकार सरकण्डों की झाड़ू (अश्व.), आप.श्रौ.सू. 20.3.19; तु. अभ्यूह, मा.श्रौ.सू. 9.2.1.26 (ऐषिक); पलाश अथवा शमी के काष्ठ से निर्मित झाड़ू, जिससे गृह की भूमि साफ की जाती है, आश्व.गृ.सू. 17.1; सामवेदीय गान में उच्चीकृत तान का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.5.1 (टीका)।

उदृच् स्त्री. (यजमान की स्वीकृति का) अन्त, शां.श्रौ.सू. 5.3.7; प्रतिज्ञा अथवा व्रत का प्रकाशन, मा.श्रौ.सू. 1.4.2.6; ला.श्रौ.सू. 5.6.8।

उदृत वि. (उद् + ऋ गतौ + क्त) ऊपर उठाया हुआ एवं ले जाया गया, आप.श्रौ.सू. 9.6.1 (उत्थाप्य प्राणेतुं प्रक्रान्तम् इत्यर्थः) अग्निहोत्र-दुग्ध, प्रायश्चित्त।

उदगातृ पु. (उद् + गै (गा) तृच्, आदेच उपदेशेऽशिति, पा. 6.1.45) सोम याग में चार गानकर्ताओं के वर्ग का प्रमुख (इसके जङ्घे पर अरणि को रखकर अरणि-मन्थन से अग्नि उत्पन्न किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.18 (सत्र); ला.श्रौ.सू. 3.4.2; का.श्रौ.सू. 3.3.18 (उपाकृत उद्गातार आहोतृप्रैषात्); चार प्रधान ऋत्विजों में एक, जो सामवेद के मन्त्रों (स्तोत्र) का गायन करता है। उद्गाता के चार सहायक हैं : प्रस्तोतृ (प्रस्तोता) प्रतिहतृ (प्रतिहर्ता) एवं सुब्रह्मण्य, आप.श्रौ.सू. 10.1.9; वह कुछ अप्रधान कृत्यों में भी भाग लेता है।

उदगातृकर्मन् न. (उद्गातुः कर्म) उद्गाता नाम के सामगायक ऋत्विक् का कर्तव्य, ला.श्रौ.सू. 4.10.7, द्रा.श्रौ.सू. 12.2.6।

०चमस (उद्गातुः चमसः) पु. उद्गाता के लिए नियत चमस।

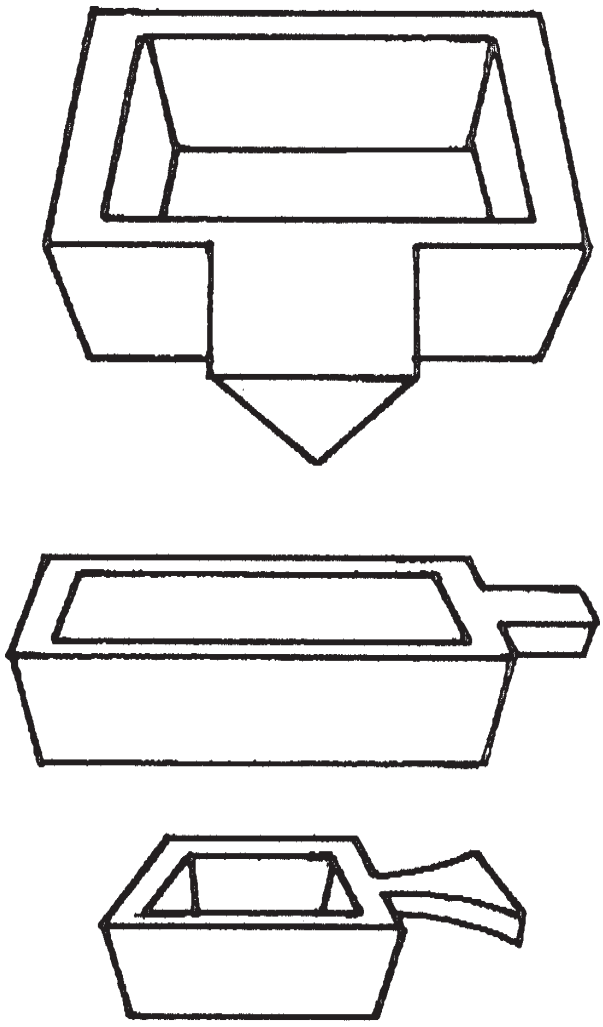

उद्गातृ चमस

०वरणक्रम पु. उद्गाता के चयन का क्रम, जै.श्रौ.सू. 15
०विकार पु. उद्गाता का सहायक, ला.श्रौ.सू. 10.9.1
०होम पु. उद्गाता द्वारा किया जाने वाला होम, का.श्रौ.सू. 25.6.6 (उद्गातृकतृको होमः, स.वृ.)।

उद्गात्रासन्दी स्त्री. (उद्गातुः आसन्दी) उद्गाता के लिए, उसके महाव्रत साम का गायन करते समय अभिप्रेत वर्गाकार काष्ठीय आसन, का.श्रौ.सू. 16.5.5।

उद्गीथ पु. एक सामविकार, उद्गाता द्वारा गाये जाने वाले स्तोत्र के गान के दूसरे भाग का नाम। इसके पूर्व ओम् आता है, आप.श्रौ.सू. 21.10.4। **०थादान** न. उद्गीथ को लेना या स्वीकारना, ला.श्रौ.सू. 6.10.13।

उद्दृष्ट पु. (उद् + दृश् + क्त) शुक्लपक्ष, मास का शुक्लपक्ष, आप.श्रौ.सू. 8.12.3।

उद्द्वार न. (महावीर पात्र के शीर्ष पर) खुला हुआ भाग, मा.श्रौ.सू. 4.1.18।

उद्धत वि. (उद् + हन् + क्त) खोदा गया (स्थान), मा.श्रौ.सू. 9.1.2.11 (तु अनुद्धत, जहाँ बार्हस्पत्य चरु रखा जाता है); खुरची गई (भूमि या मिट्टी), मा.श्रौ.सू. 1.1.2.9

उद्धतपूर्वफलक वि. (उद्धतं पूर्वफलकं यस्य सः) जिसका सामने वाला भाग ऊपर की ओर उठाया गया हो, आप.श्रौ.सू. 10.24.2 (हविराधान शकट)।

उद्धनन न. (उद् + हन् + ल्युट्) खोदना, खनना, श्रौ.प.नि. 19.153।

उद्धरण

उद्धरण न. (उद् + हृ + ल्युट्) एक अग्निकुण्ड (अर्थात् गार्हपत्य) से अग्नि को उठाकर (अर्थात् गार्हपत्य से) अग्नि को उठाकर इसका वितरण (अर्थात् इसको = अग्नि को दूसरे अग्नि-कुण्ड अर्थात् आहवनीय एवं दक्षिण में ले जाना) 'प्रतिकर्मोद्धरणप्रसङ्गे', का.श्रौ.सू. 1.3.27।

उद्धरेत् (उद् + हृ + विधिलिङ् प्र.पु. ए.व.) निकालना चाहिए, बौ.शु.सू. I.59।

उद्धव पु. (बहु.) (उद् + भू + अप्) यज्ञीय घास की अवशिष्ट पत्तियाँ, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.10; तुल. वारा.श्रौ.सू. 1.7.4.21।

उद्धार पु. (उद् + धृ + घञ्) उधार लिया हुआ तत्त्व, जै.ब्रा. I.172; (एतदतिरिक्त अर्थ के लिए द्रष्टव्य - ऐ.ब्रा. 3।21 एवं म.स्मृ. 7।79)।

उद्धावत् वि. (उद् + धाव् + शतृ) हिलाता हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.10।

उद्धि स्त्री. (उद् + धा + कि) उभार, मा.श्रौ.सू. 6.1.2.7 (उखापात्र) चि.भा.से.पु. अध्यारोपित तह या टुकड़े, जो इकट्ठे महावीर के स्वरूप का निर्माण करते हैं। वे तीन (त्र्युद्धि) 5 (पञ्चोद्धि) असीमित (अपरिमितोद्धि) तहों वाले हो सकते हैं, आप.श्रौ.सू. 15.2.14; त्र्यु—बौ.श्रौ.सू. 10.5।

उद्धूपन न. (उद् + धूप् + ल्युट्) सरसो के बीज से मिश्रित छोटे अनाज, जो कि सूतकाग्नि के राल के ऊपर प्रक्षिप्त किये जाते हैं, से नवजात शिशु (लड़के) के धूपन (धुआँ करने) का कृत्य, हि.गृ.सू. 2.3.7।

उद्धूय (उद् + धू + ल्यप्) (दर्भ की पत्तियों) को हिलाकर या झाड़कर, मा.श्रौ.सू.।

उद्धृत वि. (उद् + धृ ह्व वा + क्त) निकाला गया, बौ.शु.सू. 4.97।

उद्बर्हिष् वि. (उद्धृतः बर्हिषः) बर्हिस्-संज्ञक घास से लिया गया (प्रस्तर), मा.श्रौ.सू. 5.1.9.17 (काम्येष्टि)।

उद्भिद् पु. एक दिन में समाप्य सोम-याग का नाम, बलभिद् का प्रतिरूप, शां.श्रौ.सू. 14.11.10; ला.श्रौ.सू. 6.3.5।

उद्यतवती स्त्री. (उद्यत + मतुप् + ङीष्) एक ऋचा 'उदुष्य देव', ऋ.वे. 6.71.1।

उद्यतहोम पु. (उद्यते = अग्नौ होमः) उठी हुई अग्नि में दी गयी आहुति, जिस समय हाथ में बालू के सहारे जलता हुआ ईंधन का गट्ठर ऊपर रखा गया होता है, उत्तर वेदि के आहवनीय पर आहुति दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 7.6.5 (पशु); ['यत्ते पावक चकृमा-----' इस मन्त्र के साथ (आहरण के लिए अग्नि को उठाने के प्रसङ्ग अथवा सम्मान में आहवनीय में घृत की एक आहुति)] प्रदान करना, भा.श्रौ.सू. 7.4.7।

उद्यती स्त्री. (उद् + या + शतृ + ङीष्) बहिष्पमान स्तोत्र के त्रिवृत् स्तोम के तीन वर्गों की तीन ऋचाओं के गायन के तीन प्रकारों (विष्टुतियों) में प्रथम, जिसमें ऋचाएं 'आरोही क्रम' में व्यवस्थित होती हैं। प्रथम आवृत्ति में त्रिक (त्यृच्) को प्रथम ऋचा तीन बार, द्वितीय आवृत्ति में द्वितीय ऋचा तीन बार, तृतीय आवृत्ति में अन्तिम ऋचा तीन बार अ अ अ, ब ब ब, स स स, इग्गिलङ्ग, श.ब्रा. अं. XXVI. 310; कुलायिनी एवं परिवर्तिनी भी द्रष्टव्य, काशिकर 121।

उद्याम पु. (उद् + यम् + घञ्) (उखा को ऊपर उठाने या रखने के लिए प्रयुक्त) डोरी या रस्सी, आप.श्रौ.सू. 16.10.8 (षडुद्यामे द्वादशोद्यामे वा शिक्ये अवदधाति); तुत्व उखा।

उद्याव पु. (उद् + यु + घञ्) लड़ी ('षड्-उद्याम' में छः लड़ी या तन्तु की डोरी), मा.श्रौ.सू. 6.1.4.6।

उद्राव पु. (उद् + रु + घञ्) अश्वमेध में 'अपानाय स्वाहा' आदि के साथ देय नवनीत की आहुति का नाम, आप.श्रौ.सू. 20.6.2।

उद्रेक पु. (उद् + रिच् + घञ्) (हविष् का) अवशिष्ट भाग = हविश्शेष, आप.श्रौ.सू. 8.3.12 (वैश्वदेवपर्वन्)।

उद्वत् न. (उद् + वति, उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे पा. 5.1.118) उदयनीय इष्टि के समय 'प्रस्तोता' द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, जै.श्रौ.सू. 1.25; देखें—उद्वद्भार्गवीय, ला.श्रौ.सू. 1.6.21।

उद्वती स्त्री. (उद् + मतुप् + ङीष्) 'उद्' से युक्त ऋचा, श्रौ.प.नि. 93.492; श्रौ.को. (सं.) II.202 भी, जै.ब्रा. III.2.83।

उद्वदति (उद् + वद् + लट् प्र.पु.ए.व.) जोर से पाठ करता है, भा.श्रौ.सू. 1.13.14 (तिसृषु दुग्धासु)।

उद्वद्भार्गवीय न. (भार्गवीयम् = भार्गवेण दृष्टं साम) उदयनीय इष्टि में प्रस्तोता द्वारा गेय साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.21।

उद्वंशपुत्र न. एक साम का नाम, ला.श्रौ. 7.3.3; निदा.सू. 4.13 : 26; पञ्च.ब्रा. 13.12.9 सा.वे. 1.446 पर।

उद्वंशीय न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.49; 7.3.15; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.53; पञ्च.ब्रा. 4.2.10 सा.वे. 1.342 पर; सोम में उदयनीय इष्टि में गाया जाने वाला, श्रौ.को. (सं.) II.508।

उद्वपति (उद् + वप् + लट् प्र.पु.ए.व.) रखता है, (उद्वपति श्रपणम्), का.श्रौ.सू. 16.4.18।

उद्वपन न. (उद् + वप् + ल्युट्) हविष् वाले अनाज को पछोरने वाली टोकरी (शूर्प-सूप) में उड़ेलने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 1.22.2; सम्बद्ध यजुष्=उद्वपनमन्त्र 13.18.10; तै.सं. 1.1.5.3; अवहनन, आवपन भी द्रष्टव्य।

उद्वासयति (उद् + वस् + णिच् लट् प्र.पु. ए.व.) हृदय-शूली को घुसेड़ना (अर्थात् भूमि में गाड़ना), बौ.श्रौ.सू. 4.10.31. (पशु)।

उद्वासन न. (उद् + वस् + णिच् + ल्युट्) (किसी पात्र अथवा कपाल आदि को) अग्नि पर से हटाना (अत्रोद्वासन-मावहनीय-श्रापिणः), का.श्रौ.सू. 2.7.24;—**मन्त्र**, भा.श्रौ.सू. 8.6.17; तै.सं. 3.7.5.3।

उद्वासनीय वि. (उद् + वस् + णिच् + अनीयर्) जिस पर प्रयुक्त महावीर का परित्याग होता है (प्रवर्ग्य)।

उद्वासनीयखर पु.(उद्वासनीयश्चासौ खरः) वह खर अथवा ढूह जिस पर महावीर का उद्वासन (परित्याग) होता है, श्रौ.प.नि. 228.31।

उद्वास्य (उद् + वस् + णिच् + ल्यप्) (पात्र, कपाल आदि को) अग्नि से हटाकर, शां.श्रौ.सू. 2.8.12।

उन्दन न. (उन्दी क्लेदने + ल्युट्) (बालों को) गीला करना, आप.श्रौ.सू. 8.8.19 (अवभृथ)।

उन्नयन न. (उद् + नी + ल्युट्) प्याले में सोम रस को भरना 'तेष्वेवोन्नयनमभ्यभि------', का.श्रौ.सू. 22.10.5।

उन्नीयमानसूक्त न. (उन्नीयमानस्य सूक्तम्) सोम के प्यालों के भरे जाने के सन्दर्भ से युक्त सूक्त = ऋ.वे. 7.21.1-10, का.श्रौ.सू. 7.4.1; श्रौ.को. (सं.) II.566 (माध्यन्दिन वेला)।

उन्नेतृ पु. (उद् + नी + तृच्) एक ऋत्विक् का नाम, अध्वर्यु के सहायकों में एक जो सोम रस का आहरण करता है। उन्नेता अकेले अपने अभिधान (समाख्यान) के वैशिष्ट्य से भी इसे कर सकता है 'उन्नेतोन्नयति समाख्यानात्', 9.5.32; आप.श्रौ.सू. 12.14.11, आश्व.श्रौ.सू. 6.13.14।

उन्मर्दन न. (उद् + मृद् + ल्युट्) शरीर पर मालिश करने के लिए उबटन आदि, का.श्रौ.सू. 8.9.26। (आवसथोन्मर्दनाऽ-लङ्करण-दन्तप्रक्षालनान्यध्वर्योरदीक्षितस्य)।

उन्मान न. (उद् + मा + ल्युट्) ऊँचाई, वा.सं. 15.65 (सहस्रस्य उन्मा असि)।

उन्मार्ष्टि (उद् + मृज् + लट् प्र.पु. ए व.) सोम के प्याले को सोम रस से आपूरित करने के पश्चात् इसे (सोम के प्याले को) हथेली के ऊपर की ओर सञ्चारण के द्वारा साफ करना (माँजना), का.श्रौ.सू. 9.4.32 (स्वाङ्कृत इति हुत्वा पात्रमुन्मार्ष्टि)।

उपकनिष्ठिका स्त्री. उपान्तिम अंगुली, अर्थात् कनिष्ठा के समीप वाली अंगुली, शां.श्रौ.सू. 4.7.7 (ब्रह्मा द्वारा इससे एवं अङ्गुष्ठ से प्राशित्र को पकड़ना)।

उपकाशे क्रि.वि. जब चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश हो, आप.श्रौ.सू. 15.18.13 (तुल. उपव्युषम्, सम्याविषित, उदितानुदिते, प्रातःसङ्गवे माध्यन्दिने वा पवमाने स्तुते प्रवृञ्ज्यः)।

उपकल्पयते (उप + क्लृप् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) प्रबन्ध करता है, प्राप्त करता है, मा.श्रौ.सू. 4.2.2।

उपक्लृप्त वि. (उप + क्लृप् + क्त) उपार्जित, व्यवस्थित (उन यज्ञीय उपकरण के बारे में कथन, जो अग्नि के समीप व्यवस्थित किये जाते हैं)।

उपक्लृप्तसोम वि. (उपक्लृप्तं सोमदिकं येन सः) वह व्यक्ति जिसने अपने को सोम (लता) एवं सोम याग के लिए अन्य आवश्यक चीजों से सज्जित कर लिया है, का.श्रौ.सू. 7.1.2 (सोमेन वोपक्लृप्तसोमः)।

उपक्षिपत् वि. (उप + क्षिप् + शतृ) चोट या प्रहार करता हुआ, मा.श्रौ.सू.1.3.9 (अग्निसम्मार्जन) **०क्षिप्य** (उप + क्षिप् + ल्यप्) चोट या प्रहार करके, भा.श्रौ.सू. 8.12.7।

उपगमन न. (उप + गम् + ल्युट्) रति-क्रिया (यौन-सम्बन्ध) जो कुछ उपदेष्टाओं (आचार्यों) के अनुसार सभी अवसरों पर अथवा पत्नी के मासिक धर्म के बाद प्रथम (अवसर) पर की जाती है, हि.गृ.सू. 1.25.3-4।

उपगमनमन्त्र पु. (उपगमनस्य मन्त्रः) उपगमन के समय पढ़ा जाने वाला मन्त्र, बौ.श्रौ.सू. 29.10.23 (ताम् इष्ट्वोपह्वयेतम् अस्मि इति ऋतुकाले उपगमनमन्त्रः).

उपगातृ पु. (उप + गै-गा + तृच्) सहायक गानकर्ता, समवेत गायक (एक साथ गायन करने वाले), उपागातृ लोगों की संख्या कम से कम चार होती है, जो लगातार मन्द स्वर में 'हो' का गान करते हैं, जिसके ठीक बाद 'ओम्' का गायन यजमान द्वारा 'प्रस्ताव' एवं बहिष्पवमानस्तोत्र के अन्य तत्त्वों के बीच के अन्तरालों पर किया जाता है, ला.श्रौ.सू. 1.11.26; आप.श्रौ.सू. 12.17.11; शां.श्रौ.सू. 17.14.7; ला.श्रौ.सू. 4.2.5; द्रा.श्रौ.सू. 3.4.2।

उपगीथ न. सहायक गानकर्ताओं = 'उपगातृ लोगों' का गीत, आप.श्रौ.सू. 20.13.7।

उपगूहन न. (उप + गूह् + ल्युट्) भूमि के आर्द्र (गीले) एवं शुष्क (सूखे) की सन्धि-बिन्दु पर लौह के सीखचे को बलपूर्वक घुसेड़ना, का.श्रौ.सू. 6.10.6 (जब पशु याग में अन्त में जल प्रवाहित किया जाता है)।

उपग्रह पु. (उप + ग्रह् + अप्) 'निधन' के प्रारम्भ में स्वरित स्वर में गायी जाने वाली 'ए' ध्वनि; घर्म-संज्ञक कृत्य में गेय साम का अन्तिम भाग, ला.श्रौ.सू. 1.6.1-14; श्रौ.को. (अं) 2.265।

उपग्रहण न. (उप + ग्रह् + ल्युट्) (वाम हस्त में वेद संज्ञक कुशमुष्टि = घास की झाड़ी के साथ) ग्रहण करना अथवा पकड़ना 'एकद्रव्ये साज्ये वेदेनोपग्रहणम्', का.श्रौ.सू. 1.10.6।

उपघात पु. (उप + हन् + घञ्) 1. प्रतिदर्श कृत्य = 'प्रकृति' में संशोधन, बौ.श्रौ.सू. 26.32; 2. मेक्षण से यज्ञीय भोज्य के निकाले या उठाये हुए भाग, जिनकी अग्नि में आहुति दी जाती है। उपघात होम वह कर्म है, जिसमें यज्ञीय भोजन का 'अभिघारण' एवं उपस्तरण नहीं होता, गौ.गृ.सू. 1.8.2 (द्रव्युपघात = दर्वी से किया गया निकालने का कृत्य), पा.गृ.सू. 2.14.13 (श्रवणा)।

उपघातम् क्रि.वि. (चम्मच में) निकाल कर, बौ.श्रौ.सू 1.21।

उपचार पु. (उप + चर् + घञ्) यज्ञीय कृत्य का अनुष्ठान 'उत्तरत उपचारो विहारः'; सभी पौरोहित्य अनुष्ठान साधारणतया विहार के उत्तर तरफ सम्पन्न किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 24.2.10, का.श्रौ.सू. 1.8.26 (श.ब्रा. 3.3.3.19)।

उपजुहुयात् (उप + हु + लिङ् प्र.पु.ए.व.) चमसाध्वर्यु लोग परिप्लवा इत्यादि से 'अनुवषट्कार अर्थात् द्वितीयक वषट्कार के पूर्व अतिरिक्त सोम रस की आहुति दें।' (प्राग्होमाद् इति अनुवषट्कारहोमोऽभिप्रेतः); आप.श्रौ.सू. 14.18.2।

उपज्वलित वि. (उप + ज्वल् + क्त) (जलते हुए लट्ठे से) उद्दीप्त, मा.श्रौ.सू. 4.7.6; अवान्तर दीक्षा का अनुष्ठान करने वाले के द्वारा खाया जा रहा भोजन।

उपतल्प न. लघु तख्त, मा.श्रौ.सू. 7.1.3.7; चि.भा.से. (बहु) कई लघु तख्त, जिनकी संख्या छत्तीस होती है, और जिन पर 36 अध्वर्यु रात्रि के समय आहुति देने के लिए उठते हैं, आप.श्रौ.सू. 20.10.5.9 (अश्व)।

उपदस्येत् (उप + दस् + वि.लि प्र.पु.ए.व.) यदि (सोम) सूख जाय, आप.श्रौ.सू. 14.24.7; (रु. शोषणादिना नश्येत् आप. 14.18.1 पर); नराशंस पात्र, मा.श्रौ.सू. 3.6.12; 5.8.17।

उपदास पु. (उप + दस् + घञ्) सूखना, शुष्क हो जाना, वाष्पीकरण, आप.श्रौ.सू. 9.12.2 (प्रणीताः) टीका-रु.।

उपदीकसन्तत वि. श्वेत चीटियों द्वारा भुक्त अथवा नष्ट किया गया (दर्भ), आप.श्रौ.सू. 15.16.5; भा.श्रौ.सू. 11.16.7।

उपदीक्षिन् पु. शीघ्रता से अगली दीक्षा से युक्त, का.श्रौ.सू. 25.14.3 (उपदीक्षी स्वेष्वग्निषु नखनिकृन्तनाद्युद्वादनान्तं सान्निपातिकम्)।

उपदीक्ष्य (उप + दीक्ष् + ल्यप्) (मृत दीक्षित के अन्तिकतम सबसे निकट) को (प्रतिनिधि के रूप में) दीक्षा देकर, का.श्रौ.सू. 25.13.27।

उपदेश पु. (उप + दिश् + घञ्) विशिष्ट आदेश या विधि, नियम, शां.श्रौ.सू. 1.3.8; मा.श्रौ.सू. 4.1.5।

उपदोह न. अग्निहोत्र के उद्देश्य से पहली बार दुहे जाने के पश्चात् द्वितीय दोह में कोई गाय जो दूध देती है। कुछ आचार्यों के अनुसार यह अग्निहोत्र की दक्षिणा है, बौ.श्रौ.सू. 3.4.9:13; 17 बौ.श्रौ.सू. 24.29.2 – **नी** दुग्ध (स्थूणा या यूप)।

उपद्रव पु. साम का चतुर्थ भाग, जिसका गायन उद्गाता करता है, ला.श्रौ.सू. 6.10.1; जै.श्रौ.सू. 26.13।

उपद्रष्टृ पु. (उप + दृश् + तृच्) द्रष्टा, देखने वाला, दर्शक मा.श्रौ.सू. 7.2.3.3।

उपधान न. (उप + धा + ल्युट्) (कपालों को) रखने का कृत्य 'उपधानाद्वोभयोः', का.श्रौ.सू. 4.2.14; द्रष्टव्य– कपालोपधान; (ईंटों को) रखते (समय), बौ.शु.सू. 3.24। **०मन्त्र** पु. (ईंटों को) रखने से सम्बद्ध मन्त्र, का.श्रौ.सू. 17.5.23। **०वेला** स्त्री. ईंटों को रखने का समय, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.8।

उपध्वस्ता वि. (उप + ध्वंस् + क्त + टाप्) चितकबरी, धब्बे से युक्त, का.श्रौ.सू. 13.4.14 (गवामयन के बाद त्रिरात्र), [वह गाय जिसे हविराधान मण्डप एवं आग्नीध्र मण्डप के बीच द्रोणकलश सुँघाया जाता है]; तु. का.श्रौ.सू. 13.4.14 (हविर्धानाग्नीध्रान्तरे द्रोणकलशमेनामाघ्रापयति––)।

उपनयन न. (उप + नी + ल्युट्) (हिन्दुओं के प्रथम तीन वर्ण) के बालक की दीक्षा का कृत्य (वैखा.श्रौ.सू. 13.11:16) जिसमें वह अपने गुरु के पास ले जाया जाता है, हि.गृ.सू. 1.5.2, अथवा सम्भवतः उसे जीवन के अगले चरण में दीक्षा = उपनयन के द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है, बाल्य से युवावस्था में। यह एक प्रकार का पुनर्जन्म है (श.ब्रा. 11.5.4.12) यह कृत्य विद्यार्थित्व से जुड़ा हुआ है। बालक के लिए नियत अवधि में वैभिन्न्य है : ब्राह्मण के लिए सातवाँ अथवा आठवां वर्ष (हि.गृ.सू. 1.1.2) अथवा गर्भ में आने से आठवाँ वर्ष (गर्भाष्टम), आप.श्रौ.सू. 10.2, शां.गृ.सू. 2.1.1; क्षत्रिय बालक के लिए ग्यारहवाँ वर्ष एवं वैश्य के लिए बारहवाँ वर्ष। उपनयन के लिए नियत काल में भी विभिन्नता है : वसन्त, ग्रीष्म एवं शरद् (क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए), आप.गृ.सू. 10.4. उपनेतव्य दो वस्त्र पहनता है, एक शरीर के नीचे वाले भाग के लिए (अन्तरं वासः) एवं दूसरा ऊपरी भाग के लिए (उत्तरीय), जो सन (जूट), कृष्ण मृग का चर्म (अजिन) अथवा ऊन से निर्मित होते हैं, पा.गृ.सू. 2.5.16; कृष्णमृग एवं गाय के चर्म की कालिमा = कालापन क्रमशः तीनों जातियों के लिए निर्धारित है, आश्व.गृ.सू.; क्षौम, सन, सूत (कार्पास) का भी, गौ.गृ.सू. 2.10.8. इस कृत्य के लिए दण्ड आवश्यक तत्त्व है। दण्ड किस वृक्ष का हो और उसका आकार क्या हो, उपनेतव्य के वर्णानुसार इसमें विभिन्नता है, आप.गृ.सू. 11.15–16; आश्व.गृ.सू. 1.19.13 : 20.1; शां.गृ.सू. 2.1.21–23. मेखला, जिसका संकेत ऋ.वे. 3.8.4 (कृत्य में मन्त्र के रूप में प्रयुक्त है), भी समान रूप से आवश्यक है; आप.गृ.सू. 1.20.8; पा.गृ.सू. 2.2.9; भा.गृ.सू. 1.8. आश्चर्य की बात है सूत्रकारों में कोई भी 'उपवीत' का उल्लेख नहीं करता। इसका उल्लेख बौ.गृ.सू. 2.5.7–8 में किया गया है। दूसरी तरफ वह प्रारम्भ करने से पूर्व पहले से ही (अपने आप) जनेऊ धारण करने के कृत्य में भाग लेता है, हि.गृ.सू. 1.2.6 गुरु उपनेतव्य के शिर को मुण्डित करता है। वह होम करता है जबकि दूसरा उसका हाथ पकड़ता है। वह अग्नि के उत्तर बैठकर उपनेतव्य और अपनी अञ्जलि में जल उड़ेलता है। गुरु उसे सूर्य को देखने के लिए कहता है। वह बालक के कंधे के ऊपर उसके हाथ का स्पर्श करता है और उसके हृदय का स्पर्श करता है। इसके अनन्तर उपनेतव्य द्वारा मन्त्र के साथ अग्नि में लकड़ी के लट्ठों को रखने का क्रम आता है। गुरु सावित्री का पदशः उसके बाद अर्धर्चशः और अन्ततः सम्पूर्ण ऋचा का पाठ करता है। उपनेतव्य के चारों ओर एक त्रिवृत् मेखला बाँध दी जाती है एवं उसे एक दण्ड दिया जाता है। इसके अनन्तर बालक अपनी माता से प्रथम भिक्षा की याच्ञा के लिए जाता है। उसकी याचना अस्वीकार नहीं की जाती। उसे प्रतिदिन अग्नि में लकड़ियों को डालना चाहिए। पर्यायवाची : उपायन,

का.गृ.सू. 41.1; मौञ्जीबन्धन, बटुकरण, व्रतबन्ध, आदित्यदर्शन। (विस्तार के लिए द्र. ध.शा.का इति. प्र.भाग—उपनयन।)

उपनहन न. (उप + नह् + ल्युट्) सोम के डण्ठलों को बाधने के लिए प्रयुक्त वस्त्र, आप.श्रौ.सू. 13.22.3।

उपनिग्राहम् क्रि.वि. (नासिका के) समीप प्याले को सम्भालने या पकड़ने के द्वारा, आप.श्रौ.सू. 12.24.1; भा.श्रौ.सू. 13.26.6।

उपनिवपन न. (उप + नि + वप् + ल्युट्) ढेर से हविर्द्रव्य (आहुति-द्रव्य) को निकालने या लेने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 8.3.19।

उपपक्ष पु. काँख, आप.श्रौ.सू. 10.5.7 (तु. केशश्मश्रू)।

उपपन्नमन्त्रोपदेश पु. मन्त्र का नियतीकरण = निर्धारण, जैसा संहिता से ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहीत हैं।

उपपाययति (उप + पा + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) जल में डुबोता है, मा.श्रौ.सू. 1.2.5.2।

उपप्रैष पु. (उपगतः प्रैषः) (अध्वर्यु द्वारा होता को प्रैष देने = प्रेरित करने के लिए मैत्रावरुण को दिया गया) पूरक निर्देश, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र II.11.1121; देखें मा.श्रौ.सू. 5.2.8.22; शां.श्रौ.सू. 5.16.9; का.श्रौ.सू. 6.5.9. वपाश्रपणी के वहन के समय अध्वर्यु द्वारा प्रदत्त, श्रौत.प.नि. 129.60।

उपप्लव पु. (उप + प्लु + अप्) चित अग्नि वेदि के पक्षों के ऊपर का स्थान अथवा क्षेत्र (पा.भे.०प्लय), ला.श्रौ.सू. 1.5.7; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.10।

उपबन्ध पु. (उप + बन्ध् + घञ्) जुड़ाव, सम्बद्धता, का.श्रौ.सू. 1.8.22 (चोदनागुणेषु च, प्रक्लृप्त्युपबन्धानाम्)।

उपबर्हण न. (उप + बृह् + ल्युट्) शिरोवस्त्र, आ.श्रौ.सू. 5.20.6. ('सर्वसूत्रम्' सभी प्रकार के सूतों वाला), गद्दा, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.8 ('सर्वसूत्रम्' विभिन्न प्रकार के धागों का); अग्नीध् को दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला (आधान), भा.श्रौ.सू. 5.12.15; चि.भा.से. महापितृयज्ञ (चातुर्मास्य) में कशिपु, अञ्जन आदि के साथ यज्ञीय सामग्री के रूप में प्रयुक्त उपधान = तकिया, भा.श्रौ.सू. 8.18.7; जै.ब्रा. II.25।

उपबिलम् क्रि.वि. (बिलस्य समीपम्) (प्रणीता) पात्र के पृष्ठ तक (भरना), भा.श्रौ.सू. 1.18.3; किनारे तक, मा.श्रौ.सू. 1.2.1.11 (उपबिलं चमसं पूरयति)।

उपबिलात् न. (पञ्चमी) किनारे के निकट से।, मा.श्रौ.सू. 2.3.4.23

उपभृत् स्त्री. (उप + भृ + क्विप्, तुगागमः) सहायक कलछी, आप.श्रौ.सू. 8.2.20 (वैश्वदेव पर्व के लिए अनुयाजों में 'पृषदाज्यधानी' का प्रयोग उपभृत् के रूप में किया जाता है); अश्वत्थ के काष्ठ से निर्मित, का.श्रौ.सू. 1.3.36। यह आहुति देने में प्रयुक्त चम्मचों में अन्यतम है तथा यह अश्वत्थ के काष्ठ से निर्मित होती है 'आश्वत्थ्युपभृत्', का.श्रौ.सू. 1.3.35; आप.श्रौ.सू. 1.15.7; द्रष्टव्य – औपभृत एवं (पशु के अङ्ग) जो उपभृत् में काटे जाते है, उनकी गणना इस प्रकार की गयी है दाहिना अगला पैर (सक्थिपूर्व-नडक), वाम नितम्ब (श्रोणि), एवं गुदा का सबसे पतला तृतीय भाग, ये तीनों अङ्ग 'त्र्यङ्ग' कहे जाते हैं और अग्निस्विष्टकृत् के लिए अभिप्रेत होते हैं 'दक्षिण-सक्थिपूर्वनडकं गुदतृतीयाणिष्ठं, सव्या श्रोणिरित्यौपभृतानि', का.श्रौ.सू. 6.7.7 (पशु); तुल.हि.आ.ध. II (2); पृ. 26.27; Hamp Eric, पृ. II J 22 (2) 1980, 141-42; जौहव भी देखें।

उपभृत्

उपमध्यमा स्त्री. अङ्गुलि (मध्य एवं अन्तिम अङ्गुलि के बीच वाली), मा.श्रौ.सू. 2.1.4.1 (मध्यमा से दूसरी, उपान्तिम)।

उपमारयति (उप + मृ + णिच् लट् प्र.पु.ए.व.) (तुषस्थाली) को जल के नीचे डुबाता है, आप.श्रौ.सू. 8.8.12 (वरुणप्रघास-अवभृथ); मा.श्रौ.सू. 2.5.4.29।

उपमुञ्च् (उप + मुञ्च्) (जूता) पहनना, का.श्रौ.सू. 15.6.24 (पशूनां रसोऽसीति वराहोपानहा उपमुञ्चते); श.ब्रा. 5.4.3.14-15।

उपमूलम् क्रि.वि. (मूलस्य समीपम्) जड़ वाले भाग के निकट, का.श्रौ.सू. 4.1.11।

उपमूललून वि. (उपमूलं लूनम्) मूल = जड़ के समीप काटा गया, आप.श्रौ.सू. 8.13.12 (पितृयज्ञ के लिए बर्हिस्)।

उपमृज् (उप + मृज् शुद्धौ) माँजना, साफ करना, शां.श्रौ.सू. 2.9.10; 'प्रथमे परिधा उत्तानं पाणिं प्रागुपमार्ष्टि-----', का.श्रौ.सू. 9.4.34।

उपयज् (पशुयाग में पशु के अङ्गों की) अवान्तर या गौण आहुति देना, का.श्रौ.सू. 6.9.10। यह आहुति प्रतिप्रस्थाता द्वारा 'समुद्रं गच्छ स्वाहा' आदि मन्त्र से दी जाती है, श्रौ.को. (सं.) II.210; देखें—उपयाज, श्रौत प.नि. 138.179।

उपयमन वि. (उप + यम् + ल्यु) सहारे का काम करने वाला, अर्थात् कुश-संज्ञक घास जिस पर आज्यस्थाली रखी जाती है, पा.गृ.सू. 1.1.4; तुल. उपयमनी; चि.भा.से.न. (शाब्दिक) कन्या को समीप लाने का कृत्य, अर्थात् विवाह-संस्कार, पा.गृ.सू. 1.9.1. किन्तु उसी पर भाष्य का कथन 'उपयमनकुशानादाय' अर्थात् उपयमन कुशों को लेकर; तुल. ओल्डेनबर्ग, श.ब्रा.अं. XXIX. 286।

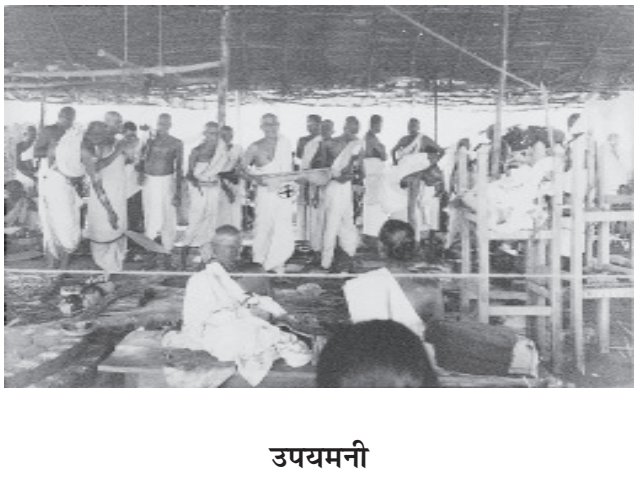

उपयमनी

उपयमनी स्त्री. (उप + यम् + ल्युट् + ङीप्) सहारा, टेक मा.श्रौ.सू. 1.5.4.3; चि.भा.से. 1. अग्नि को फकड़ने एवं वहन करने के लिए प्रयुक्त मिट्टी अथवा बालू (सिकता) का नाम। यह उस पात्र के अभोभाग में रखी जाती है, जिससे अग्नि-वहन किया जाता है, 'उपयमनीरुपनिवपति', का.श्रौ.सू. 5.4.20; बौ.श्रौ.सू. 2.17; बाद वाली अग्न्युद्धरण-पात्री कहलाती है; 2. दीर्घ वक्रित करछुल (स्रुक्) का नाम, जब इसका प्रयोग सहायक करछुल के रूप में होता है। यह उदुम्बर-काष्ठ से निर्मित होती है, भा.श्रौ.सू. 11.5.12 (सोम); अग्नि को आगे ले जाने के लिए सहायक मृदा, श्रौ.को. (सं.) II.75।

उपयष्टृ वि. (उप + यज् + तृच्) (वह व्यक्ति) जो (पशु के अङ्गों की) गौण आहुतियाँ 'उपयाग' प्रदान करता है, का.श्रौ.सू 6.9.7; प्रतिप्रस्थाता ही उपयष्टा है, का.श्रौ.सू. 6.9.10 (प्रतिप्रस्थातोपयजति------); श्रौ.को. (सं.) II.593।

उपयाज पु. (उप + यज् + घञ्) 11 अनुयाजों के समय पशुयाग की समाप्ति पर अतिरिक्त आहुतियाँ, आप.श्रौ.सू. 7.26.9; उपयाजों की संख्या 11 है अर्थात् कुल 11 उपयाज होते हैं, वाधू.श्रौ.सू. (A.O.VI.181), इसमें पशुओं की आँतें हविर्दव्य के रूप में प्रयुक्त होती है। उपयष्टा के द्वारा जलती राल पर प्रक्षिप्त, आप.श्रौ.सू. 7.26.8।

उपयाम पु. 'उपयामगृहीतोऽसि' के लिए सङ्केतात्मक अभिव्यक्ति, का.श्रौ.सू. 12.5.17 (उपयामः सर्वत्राऽविशेषात्); सहारा देने वाला पात्र (मिट्टी से निर्मित एवं सुराग्रह के रूप में प्रयुक्त), मा.श्रौ.सू. 7.1.1.43; 4.2.2; चि.भा.से. सोम के लिए एक मिट्टी के बर्तन का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.10.7; सुरा के लिए, संख्या में सत्रह, 18.1.17 (वाज.)।

उपयामसादन न. (उपयामेन सहितं सादनम्) उपयाम के साथ रखना अर्थात् 'उपयामगृहीतोऽसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यमुक्थेभ्य उक्थाव्यं मित्रावरुणाभ्यां जुष्टं गृह्णामि! एष ते योनिर्मित्रा-वरुणाभ्यां त्वा इति सादयति, श्रौ.को. (सं.) II. पृ. 335; (प्रयोगार्हों को) स्थापित करना, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.20।

उपर पु. (यज्ञीय स्तम्भ का) निचला भाग (जो काटा नहीं जाता है), मा.श्रौ.सू. 1.8.2.4; निचले सवन-प्रस्तरों में एक जिस पर सोम के डण्डल पर अन्य प्रस्तर से चोट किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.2.15 (ऋ.वे. 1.79.9, 10.94.5); पाँचवाँ, जो मध्य में सबसे बड़ा होता है, उपर कहलाता है, जिस पर कुचलने वाले (ग्रावा) से प्रहार किया जाता है; आप.श्रौ.सू. 12.9.3; पेंदी, बुध्न (बौ.शु.सू. 1.113); -**मन्त्र,** भा.श्रौ.सू. 12.12.19; तै.सं. 1.1.5.3।

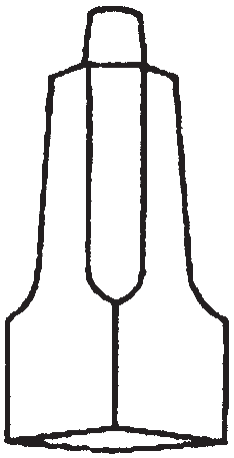

उपर

उपरतशोणिता स्त्री. (उपरतं शोणितं यस्याः सा) वह स्त्री (अर्थात् पत्नी) जिसका रजःस्राव=मासिक (शा.रक्त) प्रक्रिया के प्रारम्भ होने के बाद बन्द हो गया हो, गौ.गृ.सू. 2.5.8।

उपरम (उप + रम् + अच्) पु. वैदिक अध्ययन की उपरति = बन्द होना, शां.गृ.सू. 4.7.1 = अनध्याय।

उपरव पु. (उप + रु + अप्, उप उपरि ग्राव्णः शब्दो यत्र) अध्वर्यु द्वारा उपरव = संज्ञक गर्त (गड्ढा) निर्माण करते समय पढ़े जाने वाले यजुष् 'रक्षोहणो बलगहनो------', का नाम, श्रौ.को. (अं.) 2.292; चि.भा.से. दक्षिणी शकट (हविराधान) के सामने भूमि में अनुस्वनन = गूँज के लिए खोदे गये चारों छिद्रों के नाम, आप.श्रौ.सू. 11.11.1 यह खनन क्रिया अध्वर्युकतृक है। प्रत्येक गर्त या छिद्र एक दूसरे से एक बीता की दूरी पर होते हैं, दो उपरव दो पंक्तियों में खोदे जाते हैं, जिनकी गहराई एक हाथ होती है एवं व्यास एक बित्ता तथा पृष्ठ भाग पर पृथक्कृत किन्तु अन्तर्भूमि के रास्तों से जुड़े होते हैं, बौ.श्रौ.सू. 6.25; का.श्रौ.सू. 8.4.28 (दक्षिणस्यानसोऽधः प्रउगं खनत्युपरवान्); माप, आप.शु. 2.7.5.6; **मन्त्र** उपरव संज्ञक गर्तों (गड्ढों) को बनाने के लिए प्रयुक्त मन्त्र, मी.सू. 11.4.5.2।

उपरसम्मित वि. (उपरेण सम्मितम्, द्र. नौवयोतुल्य------ पा 4.4.91) उपर जितना गहरा, उतना गहरा जितना उपर अर्थात् यज्ञीय यूप का पाँचवाँ भाग 'उपरसम्मितं खनति' का.श्रौ.सू. 6.2.9 (उपरो नाम यूपस्य निखननीयः पञ्चमो भागः, स.वृ.)।

उपरि-उपरि क्रि.वि. (उपर्यध्यधसः सामीप्ये, पा. 8.1.7) पुनः पुनः, आप.शु.सू. 9.1।

उपरितराम् क्रि.वि. (उपरि + तरप् + टाप्) पश्चाद्वती स्थिति में (अत्राज्यं निर्वपति उपरितराम्) भा.श्रौ.सू. 1.25.12।

उपरिषद् वि. (उपरि तिष्ठतीति, उपरि + षद् + क्विप्) उपर या ऊँचे बैठकर (होता महाव्रत में पाठ करता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.7.2।

उपरिष्टाज्जप पु. उपहार की प्राप्ति का अनुगमन करते हुए या पश्चात् मन्त्र को जपना, ला.श्रौ.सू. 2.7.18; द्रा.श्रौ.सू. 5.3.19; इस प्रकार (क इदं कस्मा अदात्-----)।

उपरिष्टात् स्वाहाकृति स्त्री. स्वाहा से समाप्त होने वाले मन्त्र (अर्थात् बाद की ओर देवेभ्यः स्वाहाः इस रूप में) के साथ दी जाने वाली चम्मच भर घृत की आहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.820 (पुरस्तात्स्वाहाकृति 'स्वाहा देवेभ्यः' के विसदृश अथवा उलटा)।

उपरिष्टादतिरात्र वि. (उपरिष्टाद् अतिरात्रं यस्य यस्मिन् वा सः) अन्तिम स्थान अर्थात् बाद में अतिरात्र वाला, जिसके बाद में अतिरात्र हो, आप.श्रौ.सू. सूची. (गार्बे संस्करण)।

उपरिष्टान्निर्बाधम् क्रि.वि. सम्मुख (अथवा उपर की ओर) मूंठ स्थवा बहिर्वेशन (उभार) के साथ, मा.श्रौ.सू. 6.1.4; देखें 6.1.7.2 (पुष्करपर्ण पर रखा हुआ रुक्म)।

उपरिष्टाल्लोमन् वि. (उपरिष्टाल्लोम यस्य सः) जिसके रोम ऊपर की ओर हों, हि.श्रौ.सू. 7.6.34।

उपरुध्य (उप + रुध् + ल्यप्) बाहर करके या निकाल कर, हटा कर या दूर रखकर आप.श्रौ.सू. 9.2.1 (रु. अपहाय), यजमानपत्नी।

उपलब्धि स्त्री. (उप + लभ् + क्तिन्) प्रमाण, बौ.शु.सू 1.49।

उपला स्त्री. एक छोटा कूटने वाला पत्थर (ऊपर वाला), जो दृषद् (सिल) पर रखा जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.20.3, अन्न को कुचलने या कूटने के लिए प्रयुक्त, का.श्रौ.सू. 2.4.15।

उपलेपन न. (उप + लिप् + ल्युट्) गाय के गोबर से स्थण्डिल को लीपना, आ.गृ.सू. 1.3.1; शां.गृ.सू. 1.5.3 (उपलिप्त)।

दृषद् - उपला

उपवक्तृ पु. (उप + वच् + तृच्) आनुषङ्गिक प्रैष देने वाला, द्रष्टव्य–मैत्रावरुण।

उपवती स्त्री. (उप + मतुप् + डीष्) वह ऋचा जिसमें 'उप' शब्द हो, 'उप' से युक्त ऋचा, अर्थात् 'उपप्रयन्तो अध्वरम्' ऋ.वे. 1.74.1; श्रौ.को. (सं.) 1.75।

उपवत्स्वशन न. (उपवसत्स्वशन=उपवसत्सु + अशनम्) (यजमान के) उपवास का भोजन, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.11।

उपवपति (उप + वप् + लट् प्र.पु.ए.व.) (भस्म से) ढकता है, (पशुश्रपणे गर्भमुपवपति), मा.श्रौ.सू. 3.5.18; नीचे फैलाता है, उड़ेलता है, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.22।

उपवपन न. (उप + वप् + ल्युट्) उत्तरवेदि का चयन, भा.श्रौ.सू. 8.1.8।

उपवसति (उप + वस् + लट् प्र.पु.ए.व.) पूरी रात रुकता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.6 (पशुबन्धाय उपवसति)।

उपवसथ पु. (उप + वस् + अथ) पूर्व दिन (जिस दिन मुख्य आहुति दी जाती है, उसके पूर्ववर्ती दिन), मा.श्रौ.सू. 1.7.1.6; दर्श एवं पूर्णमास यागों के समय से पूर्ववर्ती अवधि अथवा दिन, का.श्रौ.सू. 4.15.35 (उपवसथे नियमः); चि.भा.से. मुख्य कृत्य वाले दिन का पूर्ववर्ती उपवास अथवा उपवसन का दिन, जिसमें प्रारम्भिक कृत्य (जैसे वेदि का निर्माण, यूपसज्जा आदि) किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 1.14.16 (अग्निहोत्र); 20.8.15 (सुत्यादिन से पूर्व)। यजमान एवं अन्य पवित्र अग्नि के पास जागरण करते हैं, CH 77, गोभिल के गृह्यसूत्र (1.5.13) में इसका अर्थ है 'उपवास करना' औपवसथिक; वि. (उपवास के दिन का भोजन) यजमान इसका भक्षण करता है, ताकि वह शक्तिशाली बना रहे।

उपवसथकर्मन् पु. (उपवसथसम्बद्धं कर्म). उपवसथ के दिन से सम्बद्ध कर्तव्य, ला.श्रौ.सू. 10.11.2।

उपवाक पु. अन्नों का प्रकार, कौकिल सौत्रामणी में सुत्रामन् इन्द्र को उद्दिष्ट कर दुग्धमिश्रित भुने हुए उपवाक का आटा, श्रौ.को. (अं.) I.ii.902।

उपवाकसक्तु न. (बहु.) (उपवाकस्य सक्तवः) उपवाक का सत्तू, आप.श्रौ.सू. 19.7.1 (सौत्रामणि)।

उपवाजन न. (उप + वज् + णिच् + ल्युट्) पंखा, व्यजन, का.श्रौ.सू. 21.3.7 (--------उपवाजनैर्वाजयन्तः)।

उपवाज्य (उप + वज् + णिच् + ल्यप्) पंखा झलते हुए आग में ज्वाला पैदा करना, आप.श्रौ.सू. 2.12.7, धू. उपवाजनं दीप्त्यर्थम्।

उपवात वि. (उप + वा + क्त) (वह कड़ाही) जो ठण्डी हो गयी है, (निष्टप्तोपवात), भा.श्रौ.सू. 1.24.11; सूखा हुआ, आप.श्रौ.सू. 1.24.1 (धू. – उपवात = शुष्क)।

उपवास पु. (उप + वस् + घञ्) नवविवाहित दम्पती के लिए निर्धारित उपवास, आप.गृ.सू. 5.19, उपोषित वह व्यक्ति है, जिसने किसी यज्ञ के लिए अर्ह होने के लिए उपवास किया है, 7.17।

उपविकृन्त वि. (उप + वि + कृती छेदने + अच्) वह व्यक्ति जो छुरी के प्रयोग की कला में रत हो, आप.श्रौ.सू. 17.26.17 (उपविकृन्तेन वा पत्नी भक्षमिच्छेत् इत्येके); कैलेण्ड अनु. शब्द अज्ञात है एवं स्पष्ट नहीं है।

उपविष्टहोम पु. (उपविष्टं होमः) बैठने के स्थिति में आहुति प्रदान करना, का.श्रौ.सू. 3.7.4 (जान्वाच्य) (जुहोति)।

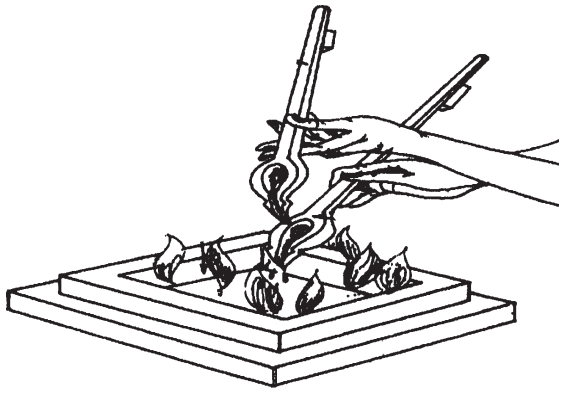

उपविष्टहोम

उपवीक्षाय पु. देखभाल करने वाला (भक्षमिच्छेत्, उपवीक्षायेण उपविकृन्तेन वा पत्नीत्येके), आप.श्रौ.सू. 17.26.17।

उपवीजन न. (उप + वीज् + ल्युट्) पंखा झलना (पृष्ठ्य षडह में तृतीय सुत्या के लिए स्तोत्र इस कृत्य के लिए नियत है) मा.श्रौ.सू. 7.2.2.13।

उपवीत = **यज्ञोपवीत** न. (उप + वेञ् + क्त) यजमान अथवा ऋत्विक् द्वारा पहना गया पवित्र धागा (जनेऊ) अथवा वस्त्र का एक टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 8.15.1, अपने वाम स्कन्ध में ऊपर एवं दक्षिण बाहु के नीचे।

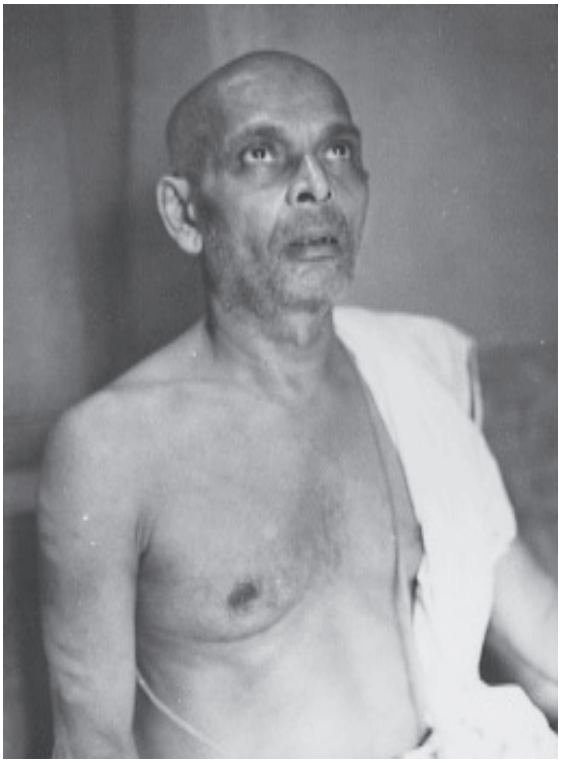

उपवीत

उपवेशन न. (उप + विश + ल्युट्) बैठना, श्रौ.प.नि. 27.222।

उपवेष पु. (उप + विष् + घञ्) (आग को चलाने के लिए प्रयुक्त कोंचनी) वरण अथवा पलाश-काष्ठ से निर्मित, एक बित्ता लम्बा, दो अथवा पाँच अंगुल का, हाथ के आकार का अंशत: जले कोयले एवं कपालों को सरकाने के लिए मुख्यत: प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 1.6.7; इसका आकार भिन्न-भिन्न है, का.श्रौ.सू. 1.3.36; टीका-धृष्टि का पर्यायवाची, चलाने के लिए प्रयुक्त छड़ी, का.श्रौ.सू. 4.2.12; शां.श्रौ.सू. 2.8.8; देखें - श्रौत प.नि. 12.80।

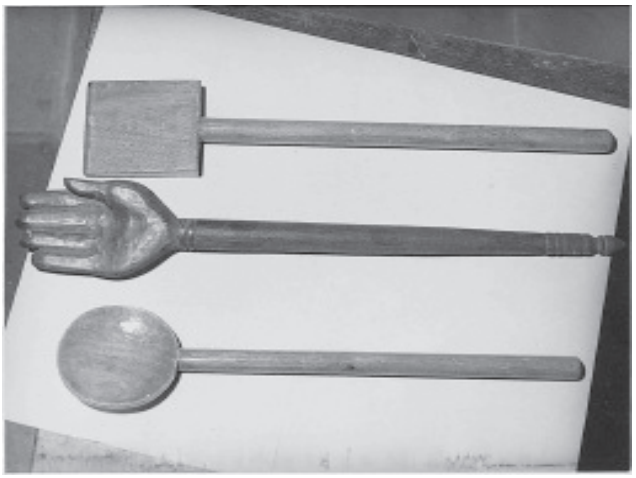

उपवेष

उपव्याहरण न. (उप + वि + आ + हृ + ल्युट्) यजमान द्वारा यज्ञ के अनुष्ठान के अपने इरादे की घोषणा, भा.श्रौ.सू. 2.1.1 (द्रष्टव्य—'उपव्याहृत्य' बौ.श्रौ.सू. 2.6.4); चि.भा.से. एक भूमिकात्मक कृत्य जो मुख्य कृत्य की घोषणा करता है, बौ.श्रौ.सू. 2.1; CH 1.

उपव्युषम् क्रि.वि. (व्युषाया: समीपम्) उषाकाल के निकटस्थ समय पर, तड़के प्रात:काल, आप.श्रौ.सू. 5.8.5; अग्नि के समीप, भा.श्रौ.सू. 5.4.4।

उपशमय्य (उप + शम् + णिच् + ल्यप्) शान्त करके, बुझाकर 'व्युष्टायामुपशमय्य दक्षिणा वा संहरेदन्वाहार्यपचनश्चेत्', का.श्रौ.सू. 4.8.3 (चातुष्प्राश्य को तैयार करने के लिए प्रयुक्त अग्नि)।

उपशय पु. (उप + शी + अच्) 1. मुख्य यूप के समीप इसके दक्षिण में रहने वाले 12वें यूप का नाम। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई रुखानी से तराशी या काटी जाती है एवं इसे गर्त में नहीं रोपित करते (आप.श्रौ.सू. 14.5.8); एकादशिनी पशु में पशु को बांधने के लिए यूप के रूप में प्रयुक्त, बौ.श्रौ.सू. 17.14; 2. स्त्री का एक शिरोवस्त्र, बौ.श्रौ.सू. 15.15 (अश्व) 3. उन दस ऋत्विजों के लिए उक्त, जो रात्रि में दी जाने वाली आहुति के लिए अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थातृ का स्थान ग्रहण करते हैं (अश्व), वाधू.श्रौ.सू. आ.ओ. IV 189; 4. प्रवर्ग्य में महावीर पात्र एवं रौहिण कपालों को बनाने के बाद बची हुई मिट्टी, श्रौ.को. (अं.) II.i 47; देखें—काशिकर 271. वे इसे उदचन नाम के हत्थे से रहित काष्ठीय करछुल के साथ समीकृत करते हैं, जिससे सोम निकाला जाता है।

उपशया वि. (स्त्री.) (उप + शी + अच् + टाप्) अवशिष्ट, बचा हुआ भाग 'मृदमुपशयां निदधाति', का.श्रौ.सू. 16.4.7 (उखा के निर्माण के लिए अभिप्रेत मिट्टी), चयन।

उपशीवरी स्त्री. (उप + शी + क्वरप्) एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.4; 10.2.4.5; गोचिति में लगने वाली 16 ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.5.16।

उपश्रुति स्त्री. (उप + श्रु + क्तिन्) सुनना, शां.श्रौ.सू. 1.14.3 (उपश्रुत्या = द्यावापृथिवी के सुनने के माध्यम से)।

उपश्रोतृ पु. (उप + श्रु + तृच्) सुनने वाले देवता = वायु, श्रौ.को. (अं.) II.500।

उपसंयम्य (उप + सम् + यम् + ल्यप्) (चम्मच के) समीप (एक लकड़ी का लट्ठा) पकड़कर, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.30 (अग्निहोत्र); द्रष्टव्य—'उपरिष्टात् स्रुग्दण्डे समिधम् उपसंयम्य'; हत्थे के नीचे एक लकड़ी का लट्ठा पकड़कर वह इसे दाहिनी तरफ अग्नि के ऊपर लाता है (समया) – – – – –; अनु. गेल्डर।

उपसंहरेत् (उप + सम् + हृ + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) हटाना, घटाना, बौ.शु.सू. 1.51।

उपसंगृह्य (उप + सम् + ग्रह + ल्यप्) काष्ठीय तलवार = स्फ्य से प्रणीता को) आलम्बन देकर, बौ.श्रौ.सू. 1.8.6 (द्रष्टव्य—अनुपसंगृह्य, भा.श्रौ.सू. 1.18.6)।

उपसद् स्त्री. समाप्ति अथवा श्रद्धाञ्जलि, श.ब्रा. 3.4.4.4; दीक्षा एवं सुत्या के समापन के मध्य में, किन्तु सदैव प्रवर्ग्य के बाद सम्पन्न किये जाने वाले कृत्यों के वर्ग से युक्त एक इष्टि। इसका अनुष्ठान कम से कम तीन दिन तक दिन में दो बार किया जाता है। करछुल से (स्रुक् से) अग्नि सोम एवं विष्णु के लिए आहवनीय में घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं (इष्टि); स्रुव से दी जाने वाली आहुति भी उपसद् कहलाती है, भा.श्रौ.सू. 6.20–21; आप.श्रौ.सू. 11.2.12–13; द्रष्टव्य – अयाशया; तुल. CH 67–70; इग्लिङ्ग श.ब्रा.इ. XXVI.150.11; ग्यारह दिन के उपसद् होते हैं, (अश्व); 12 (सत्र) मी.सू. III. 3.15.6, (चयन) आप.श्रौ.सू. 16.35.6; **औपसद** उपसदः इदम् (वि.) उपसद् से सम्बद्ध, विशेषतया वेदि के बारे में कथन, बौ.श्रौ.सू. 18.45।

उपसद्य वि. (उप + सद् + यत्) समीप बैठने योग्य, जिसके पास पहुँचना चाहिए (ब्राह्मणेन बहिष्पवमान उपसद्यः), आप.श्रौ.सू. 12.17.10 (रु. उपगन्तव्यः यजमानपञ्चमा उपगायन्ति इति भारद्वाजः); 'भरेषु हव्यो नमसोपसद्यः ऋ.वे. 2.23.13 (साय.उपसदनीयः)।

उपसन्तान पु. (उप + सम् + तन + घञ्) पूर्ववर्ती अक्षर में निविद् या कुछ भी जोड़ने के द्वारा पाठ का एक प्रकार, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.14,18।

उपसमादधाति (उप + सम् + आ + धा + लट् प्र.पु.ए.व.) ईंधन की वृद्धि के द्वारा शक्तिशाली बनाता है, स्थापयित्वा बलवन्तं करोति, आप.श्रौ.सू. 8.13.8।

उपसमाधान न. (उप + सम् + आ + धा + ल्युट्) अग्नि में लकड़ी रखने का कृत्य, आप.गृ.सू. 4.10 (विवाह) तु. 'निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः' पा. 3.3.41 (उपसमाधानं राशीकरणम्, सि.कौ.)।

उपसमास पु. (उप + सम् + अस् + घञ्) अन्त में प्रणव (ओम्) का उच्चारण करते हुए ऋग्वेद की एक पङ्क्ति का पाठ, आश्व.श्रौ.सू. 8.8.7।

उपसमिन्धन पु. अग्निहोत्र होम के पूर्व आहवनीय अग्नि के लुप्त हो जाने की स्थिति में अग्नि के मन्थन के समय पढ़े जाने वाले 'सारस्वतौ त्वोत्सौ' इस यजुर्मन्त्र का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.174 (बौ.श्रौ.सू. 13.7; 27.11)।

उपसमिन्ध् (उप + सम् + इन्धी दीप्तौ–इन्ध्) समिधा डालकर अग्नि को प्रज्वलित करना। (यजमान 'ममाग्ने वचः---' के साथ प्रत्येक पवित्र अग्नि पर एक अथवा तीन समिधायें रखता है), ऋ.वे. 10.128.1; तै.सं. 4.7.14.1 (काष्ठानि आदधीत इति बौधायनः एवं समिध आदधाति इति कात्यायनः); अथवा वे इसको व्याहृतियों के साथ भी कर सकते हैं, आप.श्रौ.सू. 1.1.4–6।

उपसमूहन न. (उप + सम् + ऊह् + ल्युट्) सोम को वापस रखना, भा.श्रौ.सू. 13.9.4।

उपसर्ग पु. (उप + सृज् + घञ्) सोम के डण्ठलों पर निग्राभ्य संज्ञक जल उड़ेलना, आप.श्रौ.सू. 12.10.10; 2. प्रथम तीन पादों के अन्त में एवं अन्तिम दो पादों के प्रारम्भ में अक्षरों का कर्मकाण्डीय क्षेपक, निदा.सू. 2.12; द्रष्टव्य–कैलण्ड पञ्च.ब्रा. 306–307 पर।

उपसर्जन न. (उप + सृज् + ल्युट्) क्लेदन, गीला करना (सोम की डण्ठलों को), मा.श्रौ.सू. 2.3.4.16।

उपसर्जनी

उपसर्जनी स्त्री. (उप + सृज् + ल्युट् + ङीप्) पुरोडाश के लिए लोई बनाने के लिए चावल के आटे में गिराया जाने वाला गरम) जल, 'का.श्रौ.सू. 2.5.12, 5.1।

उपसृज्य (उप + सृज् + ल्यप्) (सोम को) होता के चमस के जल से गीला करके (होतृचमसादुपसृज्य-----अभिमर्षणेन सतनुं करोति) मा.श्रौ.सू. 2.3.3.5।

उपसृष्टा वि. (स्त्री.) (उप + सृज् + क्त + टाप्) (वह गाय) जिसके लिए बछड़ा छोड़ दिया गया है, मा.श्रौ.सू. 3.2.1, वत्स से सङ्गत, आप.श्रौ.सू. 9.5.1 (अग्निहोत्री गाय); का.श्रौ.सू. 4.2.18 (हतु उपसृष्टां प्रब्रुतादित्याह)। एक विशेषण से युक्त देवता अर्थात् 'अग्नि तपस्वन्त्' के बारे में कथन, शां.श्रौ.सू. 1.17.5।

उपसेचनी स्त्री. (उप + सिच् + ल्युट् + डीप्) एक सेचन अथवा छिड़काव करने वाली करछुल, ऋ.वे. 10.21.2।

उपस्तम्भन पु. (उप + स्तम्भ् + ल्युट्) गिरे हुए यज्ञ मण्डप के पुनरुत्थापन या पुनः ठीक करने के सन्दर्भ से युक्त मन्त्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 14.31.7; चि.भा.से : (सोम) के शकट के दण्ड की थून, जो रज्जु के द्वारा परस्पर आसन्न दो छड़ियों की बनी होती है, जिसपर शकट का अग्र भाग रह सकता है, आप.श्रौ.सू. 10.28.1; शकट के युग (जुआ) के नीचे लगायी गयी स्थूणा, का.श्रौ.सू. 9.2.18 (पूर्वेणोपस्तम्भनमुत्तरं ध्रुवस्थालीमन्तर्हिते); युग-आलम्बन, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.13; — **स्तम्भ** पीछे धकेलना या सरकाना, जै.ब्रा. I.325।

उपस्तरण न. (उप + स्तृ + ल्युट्) 'अवदान' के पूर्व पुरोडाश के नीचे आज्य (को) फैलाने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.8.3; अभिघारण का विलोम, उसी प्रकार 'चमसग्रहण' में नौ चमसों में द्रोणकलश से आहृत सोमरस को फैलाना, भा.श्रौ.सू. 13.23.8; हविस् के नीचे आज्य को फैलाना, शां.गृ.सू. 1.13.16; आप.श्रौ.सू. 7.4 (स्थालीपाक) मधुपर्क-भोज्य खाने के पूर्व जल का आचमन,------- आश्व.गृ.सू. 1.24.13।

उपस्तरणम्

उपस्तीर्ण वि. (उप + स्तृ + क्त) घृत की एक तह से युक्त (कटोरा), मा.श्रौ.सू. 1.2.6.22; उस आज्य के साथ जो नीचे फैला दिया गया है, का.श्रौ.सू. 2.8.14।

उपस्थ पु. (न.) (उप + स्था + क, आतश्चोपसर्गे 3.1.136) गोद, भा.श्रौ.सू. 3.9.7 (वेदं होता पत्न्या उपस्थे त्रिरस्यति); सहवास के समय पति द्वारा स्पृष्ट (पत्नी) की योनि, शां.गृ.सू. 1.19.2 (गर्भाधान)।

उपस्थकृत वि. (उपस्थः कृतः येन सः) गोद को बनाने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.5.3.15 (अग्नि के स्थापन के लिए सामग्री)।

उपस्थान न. (उप + स्था + ल्युट्) 1. वात्सप्र मन्त्रों के साथ अग्निहोत्र होम के पश्चात् सायं काल में यजमान द्वारा अनुष्ठित दो अग्नियों की पूजा या उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि, का.श्रौ.सू. 4.12.1 (सायमाहुत्यां हुतायां यजमानोऽग्नी उपतिष्ठते वात्सप्रेण); अग्न्युपस्थान विभिन्न अन्य मन्त्रों का विधान करता है : अवान्तर दीक्षा के अन्त में अनुष्ठित कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 6.31; आप.श्रौ.सू. 11.18.1-2. चयन में अग्नि-वेदि के पहले, 17.12.10; उपस्थान-मन्त्र का जप उपांशु रूप से किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.20; देखें—अग्न्युपस्थान; 2. गृह के अन्दर देव-प्रतिमा के लिए उपासना-स्थल, पा.गृ.सू. 3.4.9; वि. प्रार्थना के कृत्य से सम्बद्ध (मन्त्र), आप.श्रौ.सू. 11.14.7; धिष्ण्याओं के सम्बन्ध में 'विभुरसि' इत्यादि; वही मन्त्र धिष्ण्याओं के लिए 'व्याघारणमन्त्रों के रूप में व्यवहृत होते हैं।'

उपस्थावन् पु. मध्य यूप के दोनों तरफ के दो यूपों का नाम, एक उत्तर की तरफ एवं दूसरा दक्षिण की तरफ, जिनका उपयोग आलभ्यों (वध्यों) को बाँधने के लिए होता है, (अश्व) बौ.श्रौ.सू. 15.14.22।

उपस्पर्शन न. (उप + स्पृश् + ल्युट्) किसी यज्ञ का प्रारम्भ करते समय यजमान द्वारा जल का स्पर्श करना। वह इस अवसर पर 'विद्युदसि विद्युन्मे----', इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करता है, आप.श्रौ.सू. 4.1.7, द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 12.86।

उपस्मृत्य (उप + स्मृ + ल्यप्) श्रद्धा के साथ स्मरण करके, का.श्रौ.सू. 4.15.31 (संव्रजन्मनसोपस्मृत्य दक्षिणाग्निम्)।

उपहनन न. (उप + हन् + ल्युट्) चम्मच से ध्रुवा में से घृत निकालना, श्रौ.प.नि. 24.194।

उपहत्य (उप + हन् + ल्यप्) (अनाज को चलाने वाली छड़ी को अग्नि में) घुसेड़कर या डालकर, भा.श्रौ.सू. 1.8.1 (पिण्ड पि.)।

उपहव पु. (उप + ह्वे + अप्, ऋदोरप्, पा. 3.3.57) (होता द्वारा इडा का (मन्द) आह्वान, मा.श्रौ.सू. 1.4.2.10; प्रथम उपसद् में यजमानकतृक ऋत्विजों को आमन्त्रित करने का कृत्य (सहमति के लिए), बौ.श्रौ.सू. 6.19, अथवा सोम-पान करने के लिए स्वयं ऋत्विजों द्वारा एक दूसरे को बुलाना, आप.श्रौ.सू. 12.24.16, ऋत्विज् लोग एक दूसरे को (सहमति से अनुसृत) उनके आधिकारिक पदनाम से सम्बोधित करते हैं, इस आमन्त्रण के बिना कोई सोमरस का पान नहीं कर सकता, 12.24.14-15; सहमति की पुकार हवि:शेष के भक्षण के लिए होता है, आप.श्रौ.सू. 12.24.16,17 (ये समाने पात्रे भक्षयन्ति तेषु उपहवम् इच्छते, ये वा एकपात्रम्)।

उपहव्य पु. (उप + हु + यत्) एक एकाह का नाम जिसमें देवताओं का नाम रहस्यात्मक ढंग से उच्चारित किया जाता है, ला.श्रौ.सू. 8.9.1।

उपहार पु. (उप + हृ + घञ्) बलि अथवा आहुति प्रदान करना, कौ.गृ.सू. 1.1-2।

उपहोम पु. (उपगत: होम:) (इष्टि में नरिष्टा होमों के पश्चात्) गौण आहुति प्रदान करना, आप.श्रौ.सू. 9.8.7; भा.श्रौ.सू. (परिशेष) 45; देखें—श्रौ.प.नि. 74.451।

उपह्वान न. (उप + हवेञ् + ल्युट्) सोम पान करने के लिए आमन्त्रण एवं सहमति का मन्त्र, आश्व.श्रौ.सू. 5.6.3।

उपांशु क्रि.वि. यजुष् का धीमे स्वर में उच्चारण, आप.श्रौ.सू. 24.1.9; जप का भी, 'अनुमन्त्रण', आप्यायन एवं उपस्थान मन्त्र, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.20; इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है : मन्त्र को बुदबुदाना जिसमें शब्दों को बुदबुदाने के लिए एक दृश्य प्रयास किया जाता है, किन्तु कोई ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती एवं बिना विचार शब्दों की आवृत्ति की जाती है, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.9 (भाष्य); तु. ओल्डेनवर वर्ग, श.ब्रा.इ. XXX.318; आप.श्रौ.सू. 3.8.8 भा. उपांशु की व्याख्या इस प्रकार की गयी है टहनियों (अंशु) के समीप (उप) निम्न ध्वनि में उच्चारण है, 'उपांशु काम्यदेवता', का.श्रौ.सू. 4.5.1 (काम्यदेवता के लिए, आग्रयण में विश्वेदेवों के लिए, वरुण प्रजापति को एककपाल नहीं अर्पित किया जाता, चातुर्मास्य में सावित्र, वैश्वदेवी आमिक्षा, वायव्य, तनूहवींषि, दीक्षणीय प्रायणीय, आतिथ्यदैवत, देवसूहवींषि, चयन में वायव्य पशु, मैत्रावरुण आमिक्षा, सौत्रामणी में ऐन्द्र पशु)। यह यदा-कदा होता है, जैसे सोम-चमस, देवता एवं आहुति; द्रष्टव्य L. PAIOC बाम्बे 1951।

उपांशुग्रह पु. सोमयाग के प्रात: सवन में सूर्योदय के पूर्व किये जाने वाले प्रथम सोम-निष्पीडन का नाम यह बिना पाठ के ही सम्पन्न किया जाता है, कुछ यजुषों को छोड़कर जो मौनावस्था में बिना साँस लिए बुदबुदाई जाती है, आप.श्रौ.सू. 12.1.7; तुल. इग्लिंग, श.ब्रा.इ. XXVI. 244. एक प्याले

के लिए पर्याप्त सोम की कुछ टहनियां ढेर में से निकाली जाती है और सवन-चर्म पर रख दी जाती है और उनके उपर होतृ-चमस में से 'निग्राभ्य' जल छिड़का जाता है। इसके बाद ये टहनियां उपांशु-सवन नामक पत्थर से क्रमश: 8, 11 एवं 12 प्रहार की तीन आवृत्तियों में दबायी जाती है। निस्सारित रस हस्त-विवर से सीधे प्याले या पात्र में, इसमें बिना पवित्रा रखे ही उड़ेल दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.9.1-11. यह सवन क्षुल्लकाभिषव कहा जाता है (लघुसवन); VH I49 महासवन जो इसके शीघ्र बाद आता है, से भेद बतलाने के लिए।

उपांशुदेवता वि. जिसके देवता धीमे स्वर में अभिव्यक्त किये जाते हैं, मा.श्रौ.सू. 1.5.5.4; स्त्री. धीमे स्वर में अभिहित देवता, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.19।

उपांशुपात्र न. (उपांशुग्रहस्य पात्रम्) उपांशुग्रह के लिए पात्र, मा.श्रौ.सू. 12.1.7 जिसमें अध्वर्यु द्वारा उस सवनचर्म में से जिस पर टहनियां पीसी गयी थीं, सोम रस सीधे उड़ेल दिया जाता है।

उपांशुपावन पु. एक सोम के प्याले का नाम, श्रौ.को. (अं) I.716; वैखा.श्रौ.सू. 4.10-12।

उपांशुमन्त्र पु. (वैश्य एवं शूद्र के लिए) निम्न ध्वनि में मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 1.3.2; द्रष्टव्य—श्राव्यमन्त्र।

उपांशुयाज पु. प्रधान होम के प्रारम्भ अथवा मध्य में मौनपूर्वक अथवा फुसफुसायी गई स्तुति के साथ दी जाने वाली घृत की आहुति (1 दर्श), आप.श्रौ.सू. 2.19.12; तुल. चि.भा.से।

उपांशुशंस वि. निम्न ध्वनि में पठित = तुष्णीशंस, बौ.श्रौ.सू. 7.17।

उपांशुसवन पु. उपांशुग्रह के लिए प्रयुक्त सवन-प्रस्तर का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.1.9; 'देवस्य त्वेत्यद्रिमादाय वाचं यच्छति-----', स उपांशुसवन (उपांशुग्रहार्थं सोम : सूयते यस्मिन्, स.वृ.) का.श्रौ.सू. 9.4.6।

उपांशूपहव पु. निम्न ध्वनि में 'इडोपाह्वान' का उच्चारण, आप.श्रौ.सू. 4.10.3।

उपाकरण न. (उप + आ + कृ + ल्युट्) 1. बहिष्पवमान स्तोत्र के गायन का निर्देश अथवा प्रारम्भ करना 'स्तोत्रोपाकरण'। अध्वर्यु होता को, उसे एक मुट्ठी बर्हिस् पकड़ाते हुए एक सङ्केत देता है, आप.श्रौ.सू. 12.17.6-8; 13.15-3; यज्ञ के मुख में स्तोत्रयुक्त कर दिया जाता है 'वाचमेव तद् यज्ञमुखे युनक्ति इति ब्रह्मणा वाचम्', बौ.श्रौ.सू. 14.5; देवता के लिए पशु का नियतीकरण अथवा समर्पण, अध्वर्यु दो कुशों को एवं एक पलाश की वृक्ष की शाखा को लेता है और उनसे वध्य को छूता है, और दो मन्त्रों का पाठ करता है, आप.श्रौ.सू. 7.12.5-8. वह होता को प्रातरनुवाक का पाठ करने के लिए प्रेरित करता है, आप.श्रौ.सू. 12.3.4; 2. वह कृत्य जो वेदाध्ययन के सत्र के आरम्भ को सूचित करता है, आश्व.गृ.सू. 3.5.1; शां.गृ.सू. 4.5.1; प्रति वर्ष वर्षा-ऋतु में इसका अनुष्ठान किया जाता है, किन्तु समय में भिन्नता है, दो आज्य भागों के साथ देवता भी भिन्न है, इसके बाद सावित्री, ब्रह्मा, श्रद्धा आदि के लिए आहुतियां। इसके बाद विभिन्न अवधि वाला अवकाश आता है, शां.गृ.सू.4.5.17।

उपाकरण

उपाचार पु. (उप + आ + चर् + घञ्) देखें - उपचार, शां.श्रौ.सू. 1.1.12।

उपाजते (उप + अज् + ल. आ.प्र.पु.ए.व.) समीप लाता है, मा.श्रौ.सू. 2.1.4.27 (सोम-शकट)।

उपादान न. (उप + आ + दा + ल्युट्) (अग्नि को) लेना, मा.श्रौ.सू. 8.7.1 (प्रवसन्तमेव समीज्य उपादानं सोमार्थान् अग्नीन् उत्पाद्य यजेत)।

उपानत् स्त्री. (उप + आ + नह् + क्विप्) जूते का जोड़ा (विद्यार्थी द्वारा प्रयुक्त), आप.श्रौ.सू. 12.11; आश्व.गृ.सू. 3.8.1।

उपाय पु. गायन में 'वा' की अभिव्यञ्जना, ला.श्रौ.सू. 7.6.19; 7.8.19।

उपायती स्त्री. (बहु.) 'धेनवः पयसा' ऋ.वे. 5.43.1 आदि ऋचायें।

उपायम्य (उप + आ + यम् + ल्यप्) (रज्जु को) फैलाकर या प्रतनन करके, बौ.शु. 1.35।

उपायित्व न. (उप + इ + अच् + इन् + त्व) समीप होने की स्थिति, 'स्वस्थानानन्येन वोपायित्वम्', का.श्रौ.सू. 3.5.16 (अतिरिक्त अनुयाज अर्थात् तीन से अधिक)।

उपावरोहण न. (उप + अव + रुह् + ल्युट्) कुण्ड को प्रज्वलित करते समय दोनों मन्थन-अरणियों से अग्नि का उतरना; 'समारोपण' का विलोम।

उपावहरण न. (उप + अव + हृ + ल्युट्) (विशेषतः जुहू को 'उपभृत्') के पास लाना (अन्यत्र भी इसे उपभृत् के सामने से लेना चाहिए)।

उपास्तमयम् क्रि.वि. सूर्यास्त तक (प्रातर्होमम् उपास्तमयं जुहुयात्) मा.श्रौ.सू. 8.1.2।

उपेन्धते (उप + इन्ध् + लट् आ.प्र.पु.ए.व.) बगल से (चरुस्थाली को) आँच देता है, बौ.श्रौ.सू. 5.1.23, वस्तुतः बहु.।

उपोत्थानम् क्रि.वि. (उत्थानस्य समीपम्) सत्र के अन्त के समीप, जै.ब्रा. II.10 (सत्र के)।

उपोदयम् क्रि.वि. (उदयस्य समीपम् ?) सूर्योदय-पर्यन्त, मा.श्रौ.सू. 8.1.2 (सायं होमं वा उपोदयं जुहुयात्)।

उपोलप पु. सूखे ठूँठ से दर्भ, मा.श्रौ.सू. 1.6.5.6; देखें - आप.श्रौ.सू. 5.27.11 (सम्भारेषु दर्भानुपोलपान् कुर्यात्)।

उपोलय पु. जल की थाले में उगने वाली घास, आप.श्रौ.सू. 5.17.10 (धू. 'मूलसमीपे वा लूना' जड़ के निकट काटी गयी); भा.श्रौ.सू. 5.19.8, पुनराधेय।

उपोषण न. (उप + उषी दाहे + ल्युट्) सोम-याग के अन्त में बर्हिस् को जलाने का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 4.11; द्रष्टव्य- श्रौ.प.नि. 10.112; शव की अन्त्येष्टि, भा.पि.मे. 2.1.10।

उभयतः क्रि.वि. (अ.) (उभय तसिल्) दोनों तरफ (दोनों छोरों पर), बौ.शु.सू. 1.22।

उभयतःक्ष्णू वि. दोनों छोरों पर तिक्ष्णीकृत (तेज की गयी अर्थात् जिसके दोनों ओर शान लगाया गया हो), आप.श्रौ.सू. 16.1.7।

उभयतः प्रउग समचतुर्भुज, बौ.शु.सू. 1.57; एक प्रकार की चिति, 4.111-117।

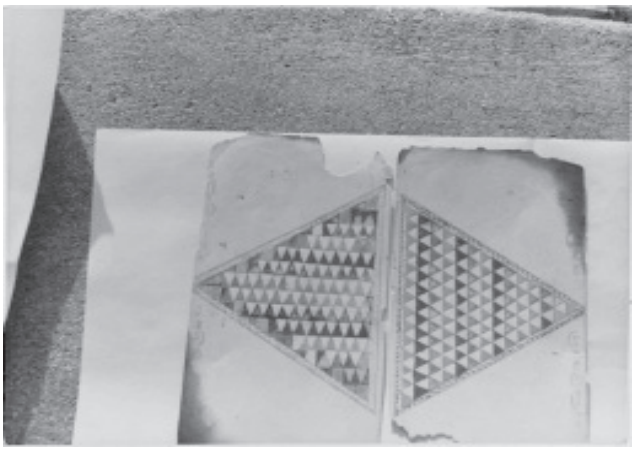

उभयतः प्रउग

उभयतः शुक्र वि. दोनों तरफ उजला; उन्नेता द्वारा प्रथम बार 'द्रोणकलश' और उसके बाद पूतभृत् तथा अन्ततः पुनः द्रोणकलश से, बौ.श्रौ.सू. 7.13। इस क्रिया को उपस्तरण एवं अभिघारण कहते हैं, आप.श्रौ.सू. 12.21.15 चमसोन्नयन के समय (सोम), CH 204-6।

उभयतस्तीक्ष्णा वि. दोनों तरफ तीखी [शानयुक्त (कुदाल)]। मा.श्रौ.सू. 6.1.1.8

उभयतस्तीक्ष्णा

उभयतोऽतिरात्र वि. (उभयतः अतिरात्रं यस्य) जिसके दोनों तरफ अतिरात्र का अनुष्ठान होता है (अर्थात् आरम्भ में एवं अन्त में), आप.श्रौ.सू. (Index-शब्दसूची, गार्बे-संस्करण)।

उभयतोमद वि. (उभयतो मदशब्दयुक्तः मन्त्रः यस्मिन्) दोनों अवसानों पर प्रयुक्त 'मद' से युक्त मन्त्र के साथ 'प्रतिगर-

संज्ञक पाठ, उदाहरणार्थ, 'मदा मोद इव, मदो मोद इव', बौ.श्रौ.सू. 8.13।

उभयतोमुख वि. (उभयतः मुखं ययोस्तौ) जिसके दोनों ओर मुख (थूथन) हो (ऋतुग्रह), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15, द्र. यज्ञायुधानि, पृ. 51।

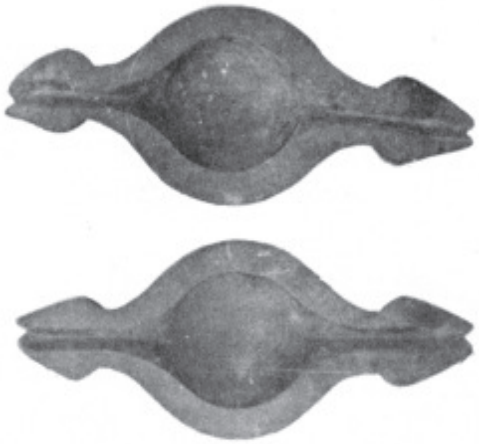

उभयतोमुख

उभयसामन् वि. (उभयं साम यस्य) दोनों साम अर्थात् रथन्तर एवं बृहत्साम से युक्त, मा.श्रौ.सू. 9.3.1.14।

उरुतन्तु पु. (उरुः तन्तुः) घने बाल (6 बाल = अङ्गुल) मा.श्रौ.सू. 10.3.2.1।

उलप पु. एक प्रकार की कोमल घास (ऋ.वे. 10.142.3) वधू के घर के प्रवेशस्थान से शयनकक्ष तक एक पङ्क्ति में बिछाई गई, का.गृ.सू. 28.1।

उलपराजि

उलपराजि स्त्री. (उलपस्य राजिः) सूखी घास की पङ्क्ति, मा.श्रौ.सू. 1.2.1.2; चि.भा.से. काटी हुई एवं सूखी हुई घास की पंक्ति, जिसका प्रयोग गार्हपत्य एवं आहवनीय के बीच में बिछाने के लिए किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.15.4 (दर्श)।

उलूखल न. पलाश-काष्ठ से निर्मित एक गोलाकार पात्र (ओखली)। इसकी ऊँचाई 12 अंगुल एवं विवर (खोखलापन) ऊपर से आधे तक होता है, श्रौ.प.नि. 8.42. उलूखल (खरल) पलाश अथवा उदुम्बर (गूलर) के काष्ठ से निर्मित होता है, का.श्रौ.सू. 1.3.36; आप.श्रौ.सू. 16.26.1; विभिन्न यज्ञों में धान को कूटने के लिए प्रयुक्त; तुल. आप.श्रौ.सू. 6.29.15। **०मुसल** ओखली (खरल) एवं मुसल, शां.श्रौ.सू. 4.3.2 द्रष्टव्य – Wüst W.REMA, 2.47.48।

उलूखल-मुखल

उल्का स्त्री. आग का जलता गोला, आप.श्रौ.सू. 11.20.10 (वसतीवरी); पा.गृ.सू. 2.24.22 (श्रावणीस्थालीपाक)।

उल्कुषी स्त्री. अग्नि का गोला (अथवा उल्का), 'उभयाभाव उल्कुषीं हिरण्यं वोपर्युपरि-----', का.श्रौ.सू. 8.9.9 (वसतीवरी)।

उल्मुक (न.) अग्नि जलाने के लिए प्रयुक्त जलता हुआ आग का गोला (अग्नि की छड़ी)। अग्नीध्र, जो शामित्र अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए, इसे हाथ में पकड़े हुए जुलुस के आगे चलने के कारण प्रथम कहा जाता है, इसका (उल्मुक) का वहन करता है, बौ.श्रौ.सू. 4.6; आप.श्रौ.सू. 7.16.2-3।

उल्लिखेत् (उद् + लिख् + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) काटना चाहिए, बौ.शु.सू. 1.51।

उशीर पु. सुगन्धित चूर्ण; द्रष्टव्य-संभार।

उषस् स्त्री. उषा देवी, जै.ब्रा. I.210।

उष्टार पु. ऊँट, मा.श्रौ.सू. I.7.8.5 (शुनासीरीय के लिए दक्षिणा के रूप में दिया जाता है); (वह) बैल जो कभी-कभी नाधा जाता है (जुए में जोड़ा जाता है), आप.श्रौ.सू. 8.20.11-12 (शुनासीरीय)।

उष्णिह् स्त्री. 28 अक्षरों वाले एक वैदिक-छन्द का नाम (8+8+12), जै.ब्रा. I.309.।

उष्णीष न. पगड़ी, दीक्षित यजमान के ऊपर इसके शिर के चारों ओर तीन बार लपेटी गयी, आप.श्रौ.सू. 10.9.9 (सोम); सोम की टहनियों को बाँधने के लिए गांठों से युक्त वस्त्र का एक टुकड़ा, 10.24.14 एवं बाद में अवभृथ में पगड़ी के रूप में प्रयुक्त, 13.22.3; विद्यार्थी के शिर के चारो ओर लपेटी गई पगड़ी, पा.गृ.सू. 2.6.25 (समावर्तन)—**वेष्टन** (उष्णीषस्य वेष्टनम्) सोमयाग में यजमान के शिर के चारों ओर लपेटा गया वस्त्र, श्रौ.प.नि. 199.39।

ऊ

ऊत वि. (वेञ् + क्त) वि. वर्धित, जोड़ा हुआ, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.3 (इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - बुना हुआ, ग्रथित)।

ऊतीकस्तम्ब पु. (ऊतीकस्य स्तम्ब) पूतिका अथवा श्वेत दुर्वा (एक घास) का तना, बौ.श्रौ.सू. 9.1.10; 9.2.22; (प्रवर्ग्य में प्रयुक्त); द्रष्टव्य-पूतिका।

ऊदल न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 4.6.17 (ऊदलत्वाष्ट्री साम)।

ऊधस् 1. 'महानाम्नी' ऋचाओं से युक्त पाठ्य के एक विशेष भाग का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.5.9; 7.5.2; निदा.सू. 3.13.7; 26. 2. थन, शां.श्रौ.सू. 4.11.1; का.श्रौ.सू. 3.3.12; जै.ब्रा. I.340।

ऊनपूर्ण वि. (ऊनं पूर्णम् च) छोटे एवं बड़े (महीने, अर्थात् जिस माह में दिनों की संख्या 30 से कम अथवा अधिक हो), ला.श्रौ.सू. 4.8.20; द्रा.श्रौ.सू. 8.4.24।

ऊनातिरिक्त वि. (उनम् च अतिरिक्तम् च) न्यून (कम) या अधिक 'उत्करं समूह्योऽसि विश्ववेदा ऊनातिरिक्तस्य प्रतिष्ठा-----' का.श्रौ.सू. 8.6.22; (उत्कर के लिए स्थान बनाते समय उच्चारणीय मन्त्र में स्थित शब्द); जै.ब्रा. I.167-68।

ऊपास्थान न. किसी साम की अन्तिम स्थिति, ला.श्रौ.सू. 7.10.1; द्रा.श्रौ.सू. 21.1.1 (अर्धा, पूर्णा या अध्यर्धा इडा, भाष्य)।

ऊबध्य न. (वध्य अथवा गाय) के उदर में न पचा हुआ भोजन, खून से सने हुए जिसे, अग्नि में प्रक्षिप्त करते हैं अथवा गड्ढे में गाड़ देते हैं, ला.श्रौ.सू. 2.3.4; पा.गृ.सू. 3.8.12; अ.गृ.सू. 4.8.26, शूलगव।

ऊबध्यगोह पु. (उबध्यस्य गोहः) ऋत्विक् अथवा श्रमिक द्वारा खोदा गया गड्ढा, जहाँ बलि दिए गये पशु की न पची हुई घास अथवा गोबर गाड़ा जाता है (पशु), आप.श्रौ.सू. 7.16.1; यह वेदि के बाहर शामित्र के पश्चिम में स्थित होता है, तुल. द्रा.श्रौ.सू. 4.3.4; ला.श्रौ.सू. 2.3.4; आश्व.श्रौ.सू. 3.3.1; शां.श्रौ.सू. 5.17.7. [अनु. (वध्य के) उदर एवं अँतड़ी में स्थित न पचे हुए भोजन के लिए बिल]।

ऊरु पु. जघन, जंघा, मा.श्रौ.सू. 2.5.2.21 (अग्निष्टोम स्तोत्र के गायन के बाद यजमान की पत्नी दक्षिण जघन की लम्बाई में हौज में स्थित जल को पलटती है); वह उलूखल एवं मुसल को जंघे एवं घुटनों पर रखता है (अन्त्येष्टि), शां.श्रौ.सू. 4.14.32, एक स्तोत्र के समनुदेश के लिए 'उद्गाता' के जंघे पर अग्निमन्थन, 'चतुर्थेऽरणिभ्यां मन्थनं चोद्गातुरुरौ होमः', का.श्रौ.सू. 12.3.10।

ऊरुदध्नपादा वि. (ऊरुदध्नाः पादाः यस्य) ऊपरी जांघ के बराबर ऊँचाई वाली (काष्ठनिर्मित आसन 'आसन्दी') मा.श्रौ.सू. 2.1.4.34।

ऊर्जाहुती स्त्री. (द्वि.व.) (ऊर्जा च आहुतिः च) दिव्य ऊर्जा एवं आहुति, शां.श्रौ.सू. 3.13.27; मा.श्रौ.सू. 4.1.11 (पोषणयुक्त करने वाली आहुति से युक्त दो देवियां), प्रवर्ग्य याग में मिट्टी से सम्बद्ध अभिव्यञ्जना।

ऊर्णासूत्र न. (ऊर्णायाः सूत्रम्) ऊनी धागा, शां.श्रौ.सू. 4.15.22; ऋ.वे. 9.6.1; दशापवित्र के सम्बन्ध में उर्णा का उल्लेख करता है।

ऊर्णास्तुक पु. (ऊर्णायास्तुकः) ऊन का जूड़ा, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.11 (पिण्डपितृयज्ञ); 1.7.6.51।

ऊर्णास्तुका स्त्री. (ऊर्णायास्तुका) सोम-विक्रयी के चेहरे पर फेंकने के लिए यज्ञीय उपकरण के रूप में प्रयुक्त ऊन का गोला, आप.श्रौ.सू. 10.26.14 (सोम); (बाँझ अज के सींगों के बीच) ऊन का जूड़ा, आप.श्रौ.सू. 7.6.1 (सम्भार के रूप में उत्तरवेदि पर सञ्चित), मा.श्रौ.सू. 2.1.4.13-14 (काले एवं श्वेत ऊन का; काला वाला सोम-विक्रयी पर फेंका जाता है)।

ऊर्ध्वकपाल वि. (स्त्री, आ) (ऊर्ध्वानि कपालानि यस्य) (वह पात्र) जिसके अगल-बगल के भाग उचित ऊँचाई वाले हों, अर्थात् सपाट न हो, का.श्रौ.सू. 4.14.1 (अग्निहोत्रीं दोहयति पुंवत्सामशूद्रेण स्थाल्यामार्यकृत्यामूर्ध्वकपालायां दक्षिणतः प्राचीमुदीचीं वा); ऊपर की ओर कपालों वाला, आप.श्रौ.सू. 6.3.7; सीधे पार्श्वों से युक्त, भा.श्रौ.सू. 6.8.14।

ऊर्ध्वग्रीव वि. (ऊर्ध्वा ग्रीवा यस्य तत्) जिसका गर्दन वाला भाग ऊपर की ओर (कृष्णाजिन), आप.श्रौ.सू. 1.19.3; भा.श्रौ.सू. 1.21.1; बौ.श्रौ.सू. 1.6:11।

ऊर्ध्वजानु वि. (ऊर्ध्वे जानुनी यस्य) उठे हुए घुटनों के साथ (नीचे बैठना), शां.श्रौ.सू. (इष्टि में होता की अवस्थिति = आसीनता का ढंग)।

ऊर्ध्वज्नु (ऊर्ध्वे जानुनी यस्य 'जानु को विकल्प से 'ज्नु' आदेश, तु. ऊर्ध्वाद् विभाषा, पा. 5.4.130) वि. (वह व्यक्ति) जो ऊपर की ओर घुटने के साथ बैठता है, आप.श्रौ.सू. 2.5.2 (तुल.ता.ब्रा. 3.3.3.1); 'पत्नीसंयाज' आहुति के समय अध्वर्यु के लिए निर्धारित बैठने की मुद्रा, बौ.श्रौ.सू. 3.7.7 (दर्श), उठे हुए घुटनों के साथ (बैठने वाला होता, मा.श्रौ.सू. 5.1.3.11 (वैश्वदेव में वाजिन् के लिए पाठ करता है)। तु.-मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः, ऋ.वे. 3.56.3।

ऊर्ध्वपात्र न. वह पात्र, जिसमें उक्थ रस उड़ेला जाता है (इस पात्र से प्रतिप्रस्थाता हिस्सा नहीं लेता है); उठे हुए किनारों से युक्त पात्र। विकङ्कत की लकड़ी से निर्मित इस पात्र को वायव्य भी कहते हैं। इसकी ऊँचाई एक प्रादेश होती है। यह मध्य में सङ्कुचित होता है। इसकी आकृति टोंटी से रहित उलूखल जैसी होती है, आप.श्रौ.सू. 12.1.4; का.श्रौ.सू. 9.2.14 (ऊर्ध्वानीतराणि प्रादेशमात्राणि मध्यसङ्गृहीतानि) एवं भाष्य; सोम रस के लिए कटोरे के रूप में प्रयुक्त, जिस (में) से देवताओं को आहुति प्रदान की जाती है, आप.श्रौ.सू. 12.29.6; ग्रहों की संख्या 12 है : दधि, उपांशु, अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, आश्विन, शुक्र, मन्थिन्, 2 ऋतु एवं आज्यस्थाली अथवा उक्थ्यस्थाली से सम्बद्ध दो औपास्य पात्र, बौ.श्रौ.सू. 25.13. अंशु, अदाभ्य एवं तीन अतिग्राह्य प्यालों को जोड़ते हुए संख्या 17 तक बढ़ाई जा सकती है, तुल.का.श्रौ.सू. 11.2.14 एवं भाष्य; वि. (वह पात्र जो) ऊपर विस्तृत या चौड़ा हो (वायव्यानि ऊर्ध्वपात्राणि), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.13।

ऊर्ध्वप्रमाण न. (ऊर्ध्वस्य = ऊर्ध्वतायाः प्रमाणम्) ऊँचाई की माप, बौ.शु.सू. 2.13; 'ऊर्ध्वप्रमाणमास्यं ब्राह्मणस्य', का.श्रौ.सू. 21.4.12 (श्मशान)। वस्तुतः ऊर्ध्वं प्रमाणं यस्य।

ऊर्ध्वबाहु पु. (ऊर्ध्वः बाहुः, 'उर्ध्वबाहुः प्रमाणं यस्य') उठाया हुआ हाथ (प्रमाणं क्षत्रियश्मशानस्य), का.श्रौ.सू. 21.4.13।

ऊर्ध्ववाच् वि. (ऊर्ध्वा वाक् यस्य सः) (वह व्यक्ति) जो सही-सही एवं ऊँचे स्वर में उच्चारण कर सकता हैं, आप.श्रौ.सू. 10.1.1 (रु. पटुस्थानकरणः)।

ऊर्ध्ववास्य वि. (ऊर्ध्वं वास्यम्) ऊपर की ओर किनारे की पंक्ति ये युक्त परिधानीय (वस्त्र का टुकड़ा अर्थात् पहने जाने वाले कपड़े का टुकड़ा, जिसके किनारे की पंक्तियां ऊपर हों), आप.श्रौ.सू. 10.9.12; (यह 10.9.11 में 'प्राचीन मात्रा' की व्याख्या करता है)।

ऊर्ध्वशकलशाख वि. (ऊर्ध्वाः शकलाः शाखाश्च यस्य) (वह वृक्ष) जिसकी वेष्टनत्वचा एवं शाखायें उपर की ओर (उगी) हो, का.श्रौ.सू. 6.1.8 (पलाशं बहुलपर्णमशुष्काग्रमूर्ध्वशकलशाखं मध्याग्रोपनतमव्रणम्)।

ऊर्ध्वशल्क वि. (ऊर्ध्वाः शल्काः यस्य सः) ऊपर की ओर इङ्गित करते हुए (उन्मुख) जटओं वाला, मा.श्रौ.सू. 1.8.1.4।

ऊर्ध्वसानु वि.(ऊर्ध्वं सानु यस्य) उठे हुए शिखरों से युक्त (वायव्य पात्र) (रु. उच्छ्रितशिरा उलूखलाकृति) आप.श्रौ.सू. 12.1.4।

ऊर्ध्वायदर्भ पु. दर्भसञ्ज्ञक घास, जो सवन के दिन औदुम्बरी के चारों ओर लपेटी जाती है, काशिकर 120।

ऊर्ध्वेड न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. III. 32।

ऊर्वस्थि एक माप का नाम = 20 अङ्गुल, आप.शु.सू. 11.6।

ऊष पु. (बहु.) क्षारीय खनिज से युक्त मिट्टी 'उदीचीं शाखामुदस्योषान्निवपति', का.श्रौ.सू. 17.1.4; लवणयुक्त भूमि की मिट्टी, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.13 (अग्न्याधान)।

ऊषपुट पु. (ऊषयुक्तः पुटः) क्षारीय मिट्टी से युक्त (अश्वत्थ की पत्तियों का) पुलिन्दा, का.श्रौ.सू. 14.5.10; नमक की मात्रा अथवा (पुञ्ज), मा.श्रौ.सू. 7.1.2.25।

ऊह (पु.) पु. मन्त्र में एक शब्द के स्थान पर दूसरे (इसके क्रम, संख्या आदि) का विकल्पन। ऐसा परिवर्तित प्रसङ्ग के अनुसार मन्त्र के अनुकूल बनाने के लिए किया जाता है; अवसरानुसार नई वस्तुओं का अनुप्रवेश होता है, जैसे 'शार घास', श्यामाक के दाने, स्थाली (पकाने के लिए बर्तन = बटलोई) एवं बर्हिस् के स्थान पर दलिया (चरु) विकृति में। क्रमशः धान्य, कपाल एवं चावल का पुरोडाश। प्रकृति में, भा.श्रौ.सू. 6.15.7-8। मन्त्र में यह परिवर्तन केवल प्रकृति में ही होता है, आप.श्रौ.सू. 24.3.49-50. चूंकि रूपान्तरित मन्त्र सामान्य मन्त्र के नियत = निर्धारित उच्चारण के नियमों का विषय नहीं होता (अर्थात् उसमें ये नियम लागू नहीं होते, अतः यह दृढ रूप से मन्त्र के रूप में वर्गीकृत नहीं है, द्रष्टव्यम् का.श्रौ.सू. 1.6.6. ऋग्बद्ध (पद्यबद्ध) मन्त्र भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता, आश्व.श्रौ.सू. 5.4.8।

ऋ

ऋक्सम वि. (ऋचा समम्) ऋचा जैसा ही (गान), अर्थात् वह गान, जो ऋचा जैसा है हो, जै.ब्रा. I.301, 311।

ऋक्षतस् क्रि.वि. (ऋक्ष + तसिल्) (चर्म का) पार्श्व में (जहाँ कर्तन किया गया है)। आप.श्रौ.सू. 10.24.6

ऋगावानम् क्रि.वि. पाठ के एक ढंग से, जिसमें चरण (पंक्तियाँ) साँस के लिए विराम के बिना सतत रूप से उनके एक के बाद दूसरे के पाठ करने के द्वारा एक साथ संग्रथित हैं, आश्व.श्रौ.सू. 4.6.1; इसकी व्याख्या इस रूप में की गयी है—'ऋचम् ऋचम् अनवानम् (बिना साँस लिए) उक्त्वा प्रणुत्य अवस्येत्', आश्व.श्रौ.सू. 4.6.2।

ऋच् स्त्री. (ऋच् + क्विन्) मन्त्र के चार वर्गों में एक नियत अक्षरों, पादों एवं यति से युक्त, का.श्रौ.सू. 1.3.1 एवं भाष्य। यजुस्, साम एवं निगद से भिन्न बतलायी गई है। तुल. 'तेषामृग् यथार्थवशेन पादव्यवस्था' मी.सू. 2.1.35, (इसकी व्युत्पत्ति है : ऋच्यते स्तूयतेऽनया)।

ऋजीष न. सोम की टहनियों की तलछट, हि.आ.ध.शा. II.ii. 11; द्रष्टव्य - Raja CK, ALB 10 (2), 90-105।

ऋजीषकुम्भ पु. (ऋजीषस्य कुम्भः) सोम लता की तलछट से युक्त घड़ा अर्थात् वह घड़ा, जिसमें सोम की तलछट हो, का.श्रौ.सू. 10.9.1 (----ऋजीषकुम्भं प्लावयति)।

ऋजीषभक्ष न. (ऋजीषस्य भक्षः) तलछट का उपभोग अथवा भक्षण, भा.श्रौ.सू. 8.11.7; तै.सं. 3.2.5.7।

ऋजीषमुख वि. (ऋजीषं मुखे यस्य) अग्रभाग में (रखी हुई) सवन की गयी सोम लता की तलछट से युक्त, का.श्रौ.सू. 9.5.12 (प्रोह्य द्रोणकलशमृजीषमुखेष्वद्रिषु निदधत्युद्गातारः); चि.भा.से (सवन-प्रस्तर) जिसकी सतह में सोमरस के अवशिष्ट भाग का लेप किया जाता है, एवं लिप्त मुखड़े तलछट का संग्रह करते समय एक-दूसरे की तरफ मोड़ दिये जाते हैं, भा.श्रौ.सू. 13.12.10।

ऋजु वि. सरल, सीधा, साधारण (ऋजुः उपवसथः) आप.श्रौ.सू. 21.4.18 (द्वादशाह)।

ऋजुदेहीय वि. सीधे अथवा सरल देह वाला (तृतीयसवने प्रसर्पणम्, मा.श्रौ.सू. 2.5.1.20)।

ऋजुलेखा स्त्री. (ऋजुः ऋज्वी वा चेयं लेखा=रेखा) सीधी रेखा, बौ.शु.सू. 3.2.32।

ऋजूदर वि. (ऋजु उदरं यस्य) सीधे पेट वाले (ऋजूदरा माध्यन्दिनाय प्रसर्पन्ति), मा.श्रौ.सू. 2.4.4.13।

ऋत (ऋ + क्त) 1. व्यवस्थित क्रम 2. आक्रान्त, जै.ब्रा. I.168।

ऋतपेय पु. एक सवन - दिन वाला सोम याग, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.3।

ऋतव्या स्त्री. (द्वि.) एक ईंट का नाम, का.श्रौ.सू. 17.4.24 (अग्नि वेदि की प्रथम, तृतीय एवं पञ्चम तह में 'विश्व ज्योतिष्' ईंटों के अनन्तर निक्षिप्त); —**वेला** (ऋतव्यायाः वेला) स्त्री. ऋतव्या ईंटों की सीमा, का.श्रौ.सू. 17.12.1 (नाकसदोऽनूकेषु पूर्ववर्जमृतव्यावेलायामाश्विनीवद्राज्ञसीति प्रतिमन्त्रम्)।

ऋतुकाल पु. (ऋतोः कालः) (यजमान-पत्नी के) मासिक रजःस्राव के बाद का समय, शां.श्रौ.सू. 1.13.30। ऋतुकाल सामान्यतः रजोदर्शन के तीन दिन बाद प्रारम्भ होता है।

ऋतुग्रह पु. (ऋतोः ग्रहः) प्रातःकालीन सवन में अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता द्वारा वैकल्पिक रूप से विभिन्न देवताओं को दी जाने वाली ऋतु की आहुति, आप.श्रौ.सू. 12.26.3-27.8; बौ.श्रौ.सू. 7.16; इग्लिंग-श.ब्रा.इ. XXVI.319-20; मा.श्रौ.सू. 2.4.2-5 (ऋतु की घूँट); का.श्रौ.सू. 9.13.1 (ऋतुग्रहैश्चरतः)।

ऋतुदीक्षा स्त्री. यजमान के मृगचर्म पर पाद-प्रक्षेप करते समय उसके लिए निश्चित मन्त्रों के पाठ का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 20.8.12 (राजसूय); बौ.श्रौ.सू. 15.20.3 (अश्वमेध)।

ऋतुदेवता वि. (ऋतुः देवता यस्मिन् यस्य वा) जिसका हविर्दानीय (जिसे हवि दी जाय) देवता ऋतु है 'ऋतुदेवता उ खलु प्रयाजा भवन्ति', बौ.श्रौ.सू. 24.3:15।

ऋतुनामन् न. (ऋतोः नाम) ऋतु का नाम, बौ.श्रौ.सू. 21.1 : 33, 'ऋतुनामभिर्जुहोति' (चातुर्मास्य); ईंटों का नाम (176-180), अग्निवेदि के पाँचवें तह (परत) में (ऋतुओं के नाम से युक्त), बौ.श्रौ.सू. 10.45:40 'ऋतुनामानि उपदधाति'।

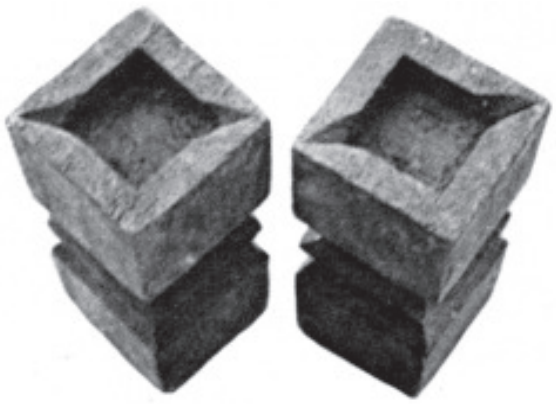

ऋतुपात्र

ऋतुपात्र न. (द्वि.) (ऋतोः पात्रम्) ऋतुओं को द्रवाहुति देने के लिए प्रयुक्त सोम-पात्र, श्रौ.को. (सं.) II.548।

ऋतुपात्रभक्षण न. (ऋतोः पात्रस्य = पात्रशेषस्य भक्षणम्) ऋतुओं को प्रदत्त सोम के प्याले के शेष का भक्षण, श्रौ.प.नि. 289.355।

ऋतुप्रैषः (ऋतोः प्रैषः) ऋतुपात्रों के लिए प्रैष का नाम (जिससे सोमयाग में ऋत्विगादि को निर्देश दिया जाता है), आप.श्रौ.सू. 11.9.5 (तुल.ऐ.ब्रा. 5.9.3.4; ऋतुप्रैषादि, मा.श्रौ.सू. 2.3.6.17; खिल-5.7.5; 'होता यक्षत्', इत्यादि शां.श्रौ.सू. 10.7.8; ऋतुयाज के लिए उद्यत करना (तुभ्यं हिन्वान इति सूक्तयोरेकैकम् ऊर्ध्वमृतुप्रैषेभ्यः); मा.श्रौ.सू. 2.3.6.17।

ऋतुमती स्त्री. (ऋतु + मतुप् + ङीप्) ऋतु के सन्दर्भ वाली 'आगन् देवा ऋतुभिः' यह ऋचा ऋ.वे. 4.5.37।

ऋतुमुख न. (ऋतोः मुखम्) ऋतु का आरम्भ, मा.श्रौ.सू. 5.2.14.19; बौ.श्रौ.सू. 16.17:22; आप.श्रौ.सू. 14.14.13; का.श्रौ.सू. 1.2.13 (चातुर्मास्येषु चर्तुमुखश्रुतेः); पु. मृत व्यक्ति के लिए सम्भार एवं पत्नी-मन्त्रों के साथ अन्त्येष्टि के अनन्तर प्रार्थना के रूप में उच्चारित मन्त्र का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.1046 (पितृमेध)।

ऋतुमुखी स्त्री. चिता पर दक्षिण-अग्नि को रखते समय उच्चारणीय मन्त्र 'वाचस्पते वसो वीर्येण----' का नाम, वैखा.गृ.सू. 5.1.6; श्रौ.को. (अं.) 1.1061।

ऋतुमुखीय पु. मृत की अन्त्येष्टि के पश्चात् प्रार्थना के लिए प्रयुक्त 'वाग् होता----' मन्त्र का नाम (पितृमेध), श्रौ.को. (अं.) 1.1065; आप.श्रौ.सू. 14.14.13।

ऋतुयजुस् न. (ऋतोः यजुः) ऋतु-पात्रों के लिए नियत आहुति-मन्त्र (यजुस्), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.27 (इनका प्रयोग पृष्ठ्य षडह के छठें सुत्या दिन पर होता है); देखें - 2.4.2.11।

ऋतुयाज पु. (ऋतोः याजः) (ऋतुओं को अर्पित) सोमाहुति का नाम, शां.श्रौ.सू. 7.8.1; आश्व.श्रौ.सू. 5.8.1 [(प्राश्य प्रतिप्रसृप्य) ऋतुयाजैश्चरन्ति]; श्रौ.को. (सं.) II.571।

ऋतुयाजिन् वि. (ऋतौ यष्टुं शीलमस्य, ऋतु + यज् + णिनि) (वह व्यक्ति) जो विभिन्न ऋतुओं के दौरान, अर्थात् 'वसन्तादि' में क्रमशः वैश्वदेवपर्व, वरुणप्रघास, साकमेध एवं शुनासीरीय का अनुष्ठान करता है, आप.श्रौ.सू. 8.4.12-13 (और चार माह की अवधि के व्यतीत नहीं होने पर, उस अर्थ में बाद वाला चातुर्मास्ययाजी कहा जाता है); वह यजमान जो ऋतुशः यज्ञ का अनुष्ठान करता है, श्रौ.को. (अं) I.ii.666; आप.श्रौ.सू. 8.1-4।

ऋतुयाज्या स्त्री. (ऋतोः याज्या) ऋतु के लिए याज्या - अर्पण (ऋचाएं), आप.श्रौ.सू. 21.2.2।

ऋतुष्ठायज्ञायज्ञीय न. चित अग्निवेदि की पूंछ की प्रशस्ति में गाये जाने वाले साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.12.10; ला.श्रौ.सू. 1.5.15; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.18, जै.श्रौ.सू. 4:6

ऋतुसाम न. 'ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्' पर आधृत साम का नाम, श्रौ.को. (सं) II.98 (प्रवर्ग्य)।

ऋतुस्तोम पु. एक यज्ञ का नाम, शां.श्रौ.सू. 14.75.1 (स्वर्ग प्राति की कामना से अनुष्ठित)।

ऋत्विग्वरण न. (ऋत्विजां वरणम्) कार्य-सम्पादन करने वाले ऋत्विजों का चयन करना, वैखा.श्रौ.सू. 18.1.8; 21.10.3; श्रौ.प.नि. 49.370।

ऋत्विज् पु. (ऋतु + यज् + क्विन्) पुरोहित जो प्रायोजक यजमान की तरफ से यज्ञ का अनुष्ठान करता है; ऐसे 16 ऋत्विजों की गणना की गयी है (आश्व.श्रौ.सू. 4.1.6) ये हैं : होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत्, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थातृ, नेष्टा, उन्नेता, ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, अग्नीध एवं उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, सुब्रह्मण्य; इनमें होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा एवं उद्गाता महाऋत्विक् या आद्यतः कारिन्, अथवा आद्यर्त्विज् कहे जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 10.1.9; 12.24.6; अन्य तीन उनके सहायक होते हैं (चत्वारस्त्रिपुरुषाः, आश्व.श्रौ.सू. 4.1.4); अग्निहोत्र के लिए केवल अध्वर्यु की आवश्यकता होती है; अग्न्याधेय, दर्शपूर्णमास एवं

सभी अन्य इष्टियों के लिए 4 ऋत्विजों की आवश्यकता होती है : अध्वर्यु, आग्नीध्र, होता एवं ब्रह्मा। चातुर्मास्य में दर्श के चार ऋत्विजों के अतिरिक्त पाँचवा प्रतिप्रस्थाता होता है। पशुयाग में मैत्रावरुण छठवां ऋत्विक् होता है किन्तु सोम में सभी 16 ऋत्विजों की आवश्यकता होती है, बौ.श्रौ.सू. 2-3; कौषीतकियों के मतानुसार 17वां सदस्य होता है; आप.श्रौ.सू. 10.1.10 एवं बौ.श्रौ.सू. 2.3 सदस्य को तीन और अतिरिक्त सहायकों की सुविधा देता है। शामित्र, चमसाध्वर्यु जैसे काम चलाऊ लोगों की ऋत्विक् के रूप में स्वीकृति नहीं है। ऋत्विक् के पद का निर्वहण केवल ब्राह्मण करते हैं, आप.श्रौ.सू. 24.1.21; इनका चयन यजमान द्वारा एक परमपावन समारोह में किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.4. उसे एक आचरणसंहिता का पालन करना होता है; वह दूसरे द्वारा छोड़े गये पद को नहीं ले सकता, पौरोहित्य को खरीद नहीं सकता, व्रणयुक्त यजमान का पुरोहित नहीं बनेगा, आदि। किन्तु आजीविका के अभाव में उसे पौरोहित्य करने की अनुमति है यदि उसे आर्थिकलाभपुर्ण पुरस्कार मिलता है। बौ.श्रौ.सू. 24.13 ऋ.वे. 6.18.13 पर आधृत अपवादात्मक स्थिति का वर्णन करता है। ऋत्विक् लोग अपने अंशानुसार दक्षिणा पाते हैं, जैसा कि नीचे दिखाया जा रहा है : सम्पूर्ण दक्षिणा का विभाजन 4 अंशों में किया जाता है, जिनका वितरण चार वर्गों में किया जाता है ताकि प्रधान ऋत्विक् में प्रत्येक सम्पूर्ण राशि का 12% प्राप्त कर सके। प्रथम सहायक मुख्य ऋत्विज् के अंश का आधा अर्थात् प्रत्येक 6%। द्वितीय सहायकों में प्रत्येक 4% तृतीय सहायक में प्रत्येक 3%, आप.श्रौ.सू. 13.5.11-12. प्रधान ऋत्विज् का कार्य ऋ.वे. 10.71.11 में उल्लिखित है; ऋ.वे. 2.43.2 होतृ, पोतृ, नेष्टृ, अग्नीध्र, प्रशास्तृ, अध्वर्यु, ब्रह्मन्, (ऋ.वे. 1.164.35 भी) एवं उद्गातृ का उल्लेख करता है; तुल.चि.भा.से।

ऋबीसपक्व वि. (ऋबीसे पक्वम्) अग्नि द्वारा न उत्पन्न किये गये ताप में पकाया हुआ, आप.श्रौ.सू. 5.25.6 (ऋबीसम् अपगतभासम्--नि.6.35) गड्ढे की आग पर पकाया हुआ, का.श्रौ.सू. 4.10.15 (अनृताऽतिथ्यपनोद-पूतिदार्वाधान-बीसपक्वान्युदकानि वर्जयेत्); दरार में पकाया हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.14 (नाश्नीयात्, आधान में नियम)।

ऋषभ पु. एक सवनदिन वाले सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.5.17-18; एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.10। **०गोसव** (ऋषभश्च गोसवश्च) पु. (द्वि.) ऋषभ एवं गोसव यज्ञ, का.श्रौ.सू. 22.11.3 (ऋषभगोसवौ)।

ऋषभचर्मन् न. (ऋषभस्य चर्म) पशु की खाल, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.7; ('सिंहचर्मणि अभिषिच्यते, ऋषभचर्मन् उपरिष्टात् ध्रियते' यह ऊपर पकड़ा जाता है); अश्वमेध।

ऋषभरैवत न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.10.10 सा.वे. 1.160 पर निबद्ध।

ऋषभशाक्वर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.5.17 सा.वे. 1.160 पर।

ऋषभेष्टका स्त्री. अग्निवेदि के प्रथम तह में प्रयुक्त ईंट (160) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.31-36।

ऋषस्य सामन् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.4.13 सा.वे. (आर्च) 4.9 पर निबद्ध।

ऋषिष्टोम पु. एक सवन दिन वाले एक सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.5.37।

ऋषीष्टका स्त्री. चित अग्निवेदि की नींव में रखी जाने वाली ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.31.1।

ए

एक पु. (बहु.) कुछ कर्मकाण्डीय चिन्तक (आचार्य) जै.ब्रा. I.49।

एककपाल वि. (एकस्मिन् कपाले संस्कृतः) एक कपाल (की आकृति) वाला (पुरोडाश), का.श्रौ.सू. 1.9.12; एक कपाल पर संस्कृत (सेंका गया)।

एककल्प वि. (एकः कल्पः यस्य सः) एक और उसी शाखा अथवा सम्प्रदाय (कल्पसूत्र) वाला (ब्राह्मण), का.श्रौ.सू. 1.6.13 (एककल्पानामवैगुण्यात्)।

एकक्रतुः पु. (एकः क्रतुः) अकेला यज्ञ, एक और वही यज्ञ, ला.श्रौ.सू. 2.8.27; द्रा.श्रौ.सू. 5.4.27।

एकचितिक वि. (एका चितिः यस्य) एक वेदि वाला, वारा.श्रौ.सू. 2.1.4.17 **०चितीक** वि. एक वेदि वाला, बौ.श्रौ.सू. 22.4.10, वैखा.श्रौ.सू. 18.12.3।

एकतःपाशा वि. (एकतः पाशः यस्या सा) (स्त्री.) (ऐसी मेखला) जिसके एक छोर पर फंदा हो, बौ.श्रौ.सू. 6.1:3।

एकतन्त्र न. (एकं तन्त्रम्) एक और वही कर्मकाण्डीय प्रक्रिया (राजसूय में प्रयुज्—हवींषि), का.श्रौ.सू. 15.9.10 (षड् षड् वैकतन्त्रे); 15.2.18; आश्व.श्रौ.सू. 3.1.10।

एकतृच पु. ऋचा का तीन चरण, ला.श्रौ.सू. 6.3.14।

एकत्रिक पु. अन्तिम साद्यस्क्र याग का नाम, शां.श्रौ.सू. 13.20.4; ला.श्रौ.सू. 8.5.18; का.श्रौ.सू. 22.3.25 (एकतृके दक्षिणा षष्ठिशतं षट् च)। **०स्तोत्र** (एकत्रिकयुक्तं स्तोत्रम्) न. तीन ऋचाओं की इकाई वाला स्तोत्र, आप.श्रौ.सू. 21.25.5. **०स्तोम** (एकत्रिकयुक्तः स्तोमः) तीन ऋचाओं वाली स्तोमावृत्ति, ला.श्रौ.सू. 4.8.11; द्रा.श्रौ.सू. 8.4.11।

एकदीक्षिन् वि. (एकः दीक्षी यस्मिन्) केवल एक दीक्षित व्यक्ति से युक्त (जिसमें केवल एक दीक्षित व्यक्ति हो)। सत्र में सभी कार्यसम्पादक ऋत्विज् एवं यजमान से दीक्षित होने की अपेक्षा की जाती है। अग्निष्टोम-संज्ञक सोमयाग में अकेला यजमान ही दीक्षित होता है, का.श्रौ.सू. 7.5.11।

एकदुग्ध न. एक दोह से (प्राप्त) दुग्ध (एकदुग्धे आमिक्षां करोति), मा.श्रौ.सू. 2.3.2.4।

एकदेश पु. (एकः देशः) भाग या अंश, क्षेत्र, स्थल, का.श्रौ.सू. 14.2.14 (तद्गुणाभावे सर्वेषाम् एकदेशोऽपि)।

एकधन न. 1. (यदि काम्य यज्ञ के लिए कोई विशेष नियम न बनाया गया हो तो दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला सम्पत्ति का एक भाग, मा.श्रौ.सू. 5.1.5.1; 2. जलसंग्रह-पात्र (कलश) का.श्रौ.सू. 9.3.19 (तावच्चैकधनानाम्, एकधनानाम् = एकधनकलशानाम्,स.वृ.); मिट्टी की हण्डी जिसमें 'एकधना' जल संगृहीत किया जाता है, इनकी संख्या 3 से 11 तक होती है, आप.श्रौ.सू. 12.2.13 (सोम)। प्रत्येक सवन-दिन पर प्रातःकाल बहते हुए जल से एकधना ऊपर निकाला जाता है, पूतभृत् में सोम रस में मिला दिया जाता है 12.16 II.(चि.भा.से.); का.श्रौ.सू. 9.3.19।

एकधनिन् वि. (एकधना अस्यास्ति) (वह ऋत्विक्) जो एकधना कलश का वहन करता है, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.9; का.श्रौ.सू. 9.3.3. किन्तु चि.भा.से. (वह सेवक) जिस पर एकधना की जिम्मेदारी हो, बौ.श्रौ.सू. 7.3।

एकनाराशंस वि. (एकं नराशंसं यस्मिन्) सोमयाग का तृतीय अथवा सायंसवन केवल एक नराशंस पात्र वाला, अर्थात् जिसमें केवल एक नराशंस पात्र हो, श्रौ.को.सं. II.572।

एकपदा स्त्री. (एकं पदं यस्या सा) एक चरण (चौथाई) वाली ऋचा, आश्व.श्रौ.सू. 6.5.12; निदा.सू. 2.12:32; ला.श्रौ.सू. 7.4.9 = सुब्रह्मण्या, जै.ब्रा. II.369।

एकपर्वन् न. (ऋतुओं के मध्य) अकेला पर्वदिन, शां.श्रौ.सू. 14.10.19।

एकपातिनी स्त्री. वैश्वदेव एवं 'आग्निमारुतशस्त्र में पढ़े जाने तीन 'पृथग्भूत' ऋचांशों का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 5.8.11; CH 354, 372; शां.श्रौ.सू. 14.53.6 विशेष सन्दर्भ - ऋ.वे. 7.19.12-14; 'अग्निनेता', ऋ.वे. 3.20.4, 'त्वं सोम क्रतुभिः' ऋ.वे. 1.91.2 एवं 'पिन्वन्ति अप', ऋ.वे. 1.64.6; आश्व.श्रौ.सू. 6.5.6; 'अग्निर्होता गृहपतिः' ऋ.वे. 6.15.13।

एकपात्र न. ऊर्ध्वपात्र का पर्याय या समानार्थी, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.29 भाष्य।

एकपात्री स्त्री. एक और वही (इडा) पात्र (जिसमें सभी

प्रकार के हविर्द्रव्य : पुरोडाश, दधि, पयस्या सोम याग में एक साथ रखे जाते हैं), का.श्रौ.सू. 9.9.4 (एक-पात्र्यामासाद्य प्रदक्षिणम्)।

एकपुरोडाश वि. (एकः पुरोडाशः यस्मिन्) वह कृत्य जिसमें (केवल) एक पुरोडाश हो, का.श्रौ.सू. 12.2.12 (एकपुरोडाशेषु व्रात्यासम्भवाद्-----)।

एकप्रतिहार (एकः प्रतिहारः यस्मिन्) जिसमें एक ही प्रतिहार हो (ऐसा साम), ला.श्रौ.सू. 6.12.4; 7.4.4.17 (साम में प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव एवं निधन होते हैं)।

एकप्रत्यवाय वि. एक कम, एक से ऊन, 'एक प्रत्यावाये स्विष्टकृतः' का.श्रौ.सू. 1.9.9 (एकेनावदानेन प्रत्यवैति न्यूनीभवति इति एकप्रत्यवाय, स.वृ., पाठभेद)।

एकप्रदान वि. (एकस्मिन्नेव समये प्रदानं यस्य) जिसे एक साथ एक ही समय में प्रदान करते हैं (चमस से द्रवाहुति 'चमसैः' के साथ अर्पित किया जाने वाला आश्विन पुरोडाश, 'एकप्रदानश्चमसैः' का.श्रौ.सू. 12.6.12।

एकमन्त्र वि. (एक मन्त्रः यस्मिन्) एक मन्त्र से सम्बद्ध, (वह कर्म) जिसमें एक ही मन्त्र हो, भा.श्रौ.सू. 1.1.20 (एकमन्त्राणि कर्माणि), आप.श्रौ.सू. 23.1.38।

एकयूप वि. (एकः यूपः यस्मिन्) जिसमें एक (ही) यज्ञीय यूप हो (एकयूपेषु एकादशिन्येषा), शां.श्रौ.सू. 6.9.4; का.श्रौ.सू. 8.8.26 (एकयूपे पश्वेकादशिन्यामाग्नेयं नियुज्य तस्मिंस्तस्मिन्नितरानुदीचः); भा.श्रौ.सू. 5.2.12.46।

एकरूप वि. (एकं रूपं यस्य) उसी रूप से युक्त, जिसका एक ही रूप हो, जै.ब्रा. I.330 (-अप्रजनन); अभुभाभिभभेभभ इति मिथुनम्।

एकर्च वि. (एका ऋक् यस्मिन्) एक ऋचा की इकाई पर आधृत (साम), ला.श्रौ.सू. 6.4.7; 8.5.9; द्रा.श्रौ.सू. 8.2.5। **० स्थान** (एकर्चस्य स्थानम्) न. एक ऋचा की इकाई (पर आधृत साम) का स्थान, ला.श्रौ.सू. 6.4.5।

एकलेख वि. (एकः लेखः यस्मिन्) (केवल एक बार) एक तरफ खुरचा हुआ, मा.श्रौ.सू. 8.14.1 (द्रष्टव्य—क्रमशः मैत्रावरुण एवं ब्राह्मणच्छसी के चमस के लिए द्विलेख = दो खरोंच वाला एवं त्रिलेख = तीन खरोंच वाला); तुल. यज्ञायुधानि, पृ. 59; 61।

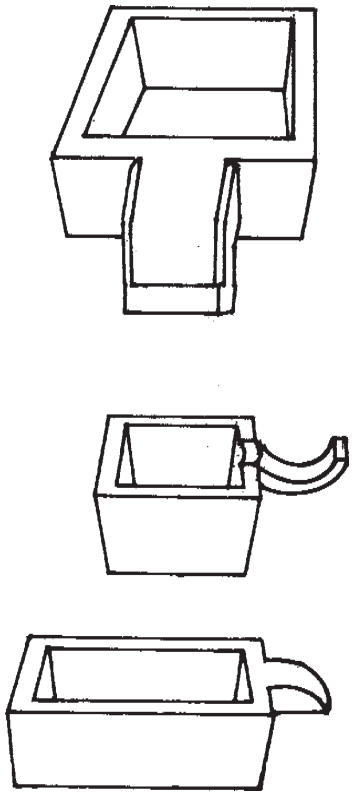

ब्राह्मणाच्छंसिन - चमस

एकवत् क्रि.वि. अकेले रूप में (एकवचन में) (अध्वर्यु द्वारा प्रैष एकवचन में दिया जाता है, जैसे कि कृत्यों का अनुष्ठान एक वेदि पर हो रहा है। यद्यपि इसे दोनों वेदियों पर सम्पन्न करना है), आप.श्रौ.सू. 8.5.8 (वरुणप्रघास); शां.श्रौ.सू. 9.23.14 (पशु)।

एकविंशतिछदि वि. (एकविंशतिः छदयः यस्य) 21 छज्जों वाला, आप.श्रौ.सू. 21.4.17; (द्वादशाह)।

एकविंशतस्तोम पु. आवृत्ति द्वारा प्राप्त 21 ऋचाओं वाला ('अग्निष्टोम' - संज्ञक स्तोत्र), श्रौ.को. (सं.) II.543।

एकविध वि. (एका विधा यस्य) केवल एक प्रक्रिया से अनुष्ठित अथवा अतिरात्र याग, 'एकोत्तरा अहीनाः; यद् एकविधं तद् एकरात्रेणाप्नोति', शां.श्रौ.सू. 16.19.1-2 (उद्दिष्ट क्या है, यह निर्धारित नहीं किया गया है, भाष्य-अग्नि एवं मन)।

एकविमुक्ते वि. (सप्तमी) जब (सोम-शकट का) एक बैल खोल दिया जाता है (मुक्त कर दिया जाता है), का.श्रौ.सू. 8.1.2 (आतिथ्येष्टि)।

एकवृत् क्रि.वि. (केवल) एक आवृत्ति में, अर्थात् एक बार, का.श्रौ.सू. 8.2.27 (उपसदिष्टिः एकवृत्स्तरणम्), मा.श्रौ.सू. 2.2.4.31।

एकवेदस् क्रि.वि. (केवल) एक भाग को आवृत करने वाला, 'न हि एताम् एकवेदा दक्षिणा उद्यन्तुम् अर्हति इति' बौ.श्रौ.सू. 18.33 :12; तुल. – सर्ववेदस्।

एकशफ पु. (एक.शफः यस्य सः) एक खुरवाला पशु, शां.श्रौ.सू. 7.18.4।

एकशूला वि. (स्त्री.) (एकं शूलं यस्याः सा) अकेले सामने द्विधाभवन से रहित (वृक्ष की शाखा), आपः श्रौ.सू. 7.17.6 (इससे पशुरशना उठाई जाती है और चात्वाल में फेंक दी जाती है); भा.श्रौ.सू. 7.13.7।

एकशृङ्गा वि. (स्त्री.) (एकं शृंगं यस्या सा) एक नोक वाली (भर्जन करने वाली पौनी), मा.श्रौ.सू. 1.8.3.38।

एकश्रुति स्त्री. एकतान अर्थात् उदासीन स्वर (तान), जिसमें यजमान द्वारा किये जाने वाले पाठ के साथ सुब्रह्मण्या, जप, न्यूङ्ख एवं साम को छोड़कर मन्त्रों का उच्चारण यज्ञ में किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.8; का.श्रौ.सू. 1.8.19 (एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ यज्ञकर्मणि, सुब्रह्मण्या-साम-जप याजमानवर्जम्); किन्तु इसमें तीन विकल्प हैं : 1. यह उदात्त एवं अनुदात्त के बीच का स्वर है 2. यह पूर्ववर्ती अक्षर का स्वर ग्रहण करता है 3. यह सात 'यमों' में सातवाँ है (तुल. सामजपन्यूङ्खवर्जम् वा.प्रा. 1.131 एवं यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु, पा. 1.2.34) द्रष्टव्य – ऐकश्रुत्य (एकश्रुत्याः इदम्) वि. एकश्रुति से सम्बद्ध 'उदात्तानुदात्त-स्वरितानां परः सन्निकर्षः ऐकश्रुत्यम्', आश्व.श्रौ.सू. 1.2.9; श्रौ.प.नि. 24.192. (विशेष द्रष्टव्य – वैदिकस्वर-मीमांसा, पं युधिष्ठिर मीमांसक पृ. 26.28)।

एकसंभार्य वि. एक (एवं उसी) निबद्ध मास से युक्त (गवामयन), मा.श्रौ.सू. 7.2.5.18 (वर्ष की प्राप्ति के लिए दुहराया गया)।

एकसरा वि. एक तन्तु अथवा लकड़ी वाली रस्सी, श्रौ.को. (सं) II.523।

एकसूक्त वि. (एक सूक्तं यस्मिन्) एक सूक्त वाला (शस्त्र), शां.श्रौ.सू. 11.10.10 (अभिजित् में मरुत्वतीय एवं निष्केवल्य शस्त्र)।

एकसृक पु. लोमड़ी, आप.श्रौ.सू. 15.19.2 (यदि घर्मेण चरत्सु एकसृक उत्तिष्ठेत्)।

एकस्तनव्रत न. (एकस्तनस्य व्रतम् = व्रतभोजनम्) एक थन के दूध से बना हुआ व्रत का भोजन, बौ.श्रौ.सू. 6.24.1।

एकस्तोत्र वि. (एकं स्तोत्रं यस्मिन्) केवल एक स्तोत्र वाला, आप.श्रौ.सू. 14.18.13; ला.श्रौ.सू. 10.3.5।

एकस्तोम वि. (एक स्तोमः यस्य यस्मिन् वा) केवल एक स्तोम की प्रयुक्ति वाला (ऋचाओं की पुनरावृत्ति की योजना), बौ.श्रौ.सू. 18.36:11 (स एष त्रिवृद् अग्निष्टोम एकष्टोम एकहर्विधानस्तं श्येन इत्याचक्षते), ला.श्रौ.सू. 9.7.8; निदा.सू. 10.7:8।

एकस्फ्या स्त्री. एक विस्तार में साधनभूत 'स्फ्य' – संज्ञक लकड़ी की तलवार से खींची गई अकेली रेखा, आप.श्रौ.सू. 8.5.20; का.श्रौ.सू. 5.4.7 (एकः स्फ्यः साधनमस्याः, स.वृ.); आप.श्रौ.सू. 1.9.7 (पिण्डपितृयज्ञ); वि. काष्ठनिर्मित तलवार के कर्षण द्वारा निर्मित (वेदि), भा.श्रौ.सू. 1.7.8।

एकहविर्धान वि. (एकमेव हविर्धानं यस्य) केवल एक हविर्धान अथवा सोम-शकट वाला, बौ.श्रौ.सू. 18.36:11।

एकहायनी स्त्री. (एकं हायनं यस्याः सा) एक साल की (गाय), आप.श्रौ.सू. 10.22.2।

एकहाविन् वि. (एकस्मिन् होतुं शीलमस्य) जो केवल एक अग्नि में समिधाओं को छोड़ता है शां.श्रौ.सू. 2.12.8 (ऐसी स्थिति में वह अग्नि 'आहवनीय' होनी चाहिए)।

एकाक्षरनिधन वि. (एकाक्षरे निधनं यस्य) एक अक्षर पर आधृत अथवा गाये जाने वाले साम के निधन (अन्त) वाला अर्थात् जिसका 'निधन' एक अक्षर पर होता है, ला.श्रौ.सू. 10.1.14।

एकाग्नि पु. एक अग्नि (पाकयज्ञ); ला.श्रौ.सू. 4.9.2, द्रा.श्रौ.सू. 12.1.3।

एकादशकपाल वि. (एकादशसु कपालेषु संस्कृतः) ग्यारह कपालों पर सेंका गया, श्रौ.को. (सं.) II.551 (इन्द्र के लिए पुरोडाश)।

एकादशिनी स्त्री. (एकादश + इन् + ङीप्) 11 वध्यों वाला एक पशु याग। यह यज्ञ सोमयाग के सवनीय पशु-याग पर आधृत है और स्वयं में बहुविध पशुयागों का मानदण्ड है, श्रौ.को. (अं.) I.ii.960. यूपों की संख्या तेरह होती है

जिनमें 12वां 'उदशय' एवं 13वां पात्नीवत कहलाता है; केवल एक यूप से भी काम चल सकता है, का.श्रौ.सू. 8.8.27 (एकयूपे पश्वेकादशिन्यामाग्नेयं नियुज्य तस्मिंस्तस्मिंन्नितरानुदीचः); सबसे दक्षिणी यूप सबसे लम्बा होता है, का.श्रौ.सू. 8.8.19 (वर्षिष्ठो दक्षिणोऽनुपूर्वा इतरे); द्रष्टव्य—'यथोच्छ्रितम्' का.श्रौ.सू. 8.8.25-26. यदि ग्यारह पशुओं को एक यज्ञीय यूप में बाँधना हो, तो अग्नि के लिए समर्पित पशु को सर्वप्रथम इसमें बाँधते हैं, तब दूसरे (अर्थात् दूसरे पशु) एक शृंखला में एक के बाद एक बाँधे जाते हैं (अर्थात् उत्तर की तरफ तीसरा दूसरे के बाद, और इसे प्रकार आगे)। दक्षिण की तरफ पहले वाले का सर्वप्रथम वध किया जाता है, एवं अन्य का इसके उत्तर एवं और उत्तर, का.श्रौ.सू. 8.8.28 (दक्षिणं च निघ्नन्त्येनमुत्तर-मुत्तरमितरान्) 11 वध्य पशु हैं : आग्नेय, सारस्वत, सौम्य, पौष्ण, बार्हस्पत्य, वैश्वदेव, ऐन्द्र, मारुत, ऐन्द्राग्न, सावित्र एवं वारुण, श्रौ.को (सं.) II.599।

एकाधिशय वि. (एकेन अधिशयः, अधिशय + अधि + शी + अच्) अतिरेक में एक से युक्त (एक से अतिरिक्त होना), ला.श्रौ.सू. 6.5.18.27 (सन्द. स्तोम में संख्याओं की आवृत्ति)।

एकापचय पु. (एकेन अपचयः, अप + चि + अच्) एक से न्यूनीकरण (घटौती), का.श्रौ.सू. 8.3.2 एकापचयेनोत्तरयोः (व्रत दोहन); उपसदों के क्रम के अनुसार थनों की संख्या, जिनमें से दूध दुहा जाता है, हर समय एक कम कर दिया जाता है (अर्थात् पहले में तीन, दूसरे में दो तीसरे में एक)।

एकाष्टका स्त्री. माघी पूर्णिमा के बाद आठवां दिन, आप.श्रौ.सू. 16.1.1; तुल.श.ब्रा. 6.2.2.23; (माघ महीने के कृष्णपक्ष का) आठवां दिन, का.श्रौ.सू. 13.1.2 (गवामयन दीक्षा); (वर्ष की अन्तिम) पूर्णमासी के बाद प्रथम आठवां दिन, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.38, ला.श्रौ.सू. 10.1.7; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (अं.) I.ii.886।

एकाह पु. एक सवन दिन वाला सोमयाग, एकाह याग के विविध नामों के लिए द्रष्टव्य - मा.श्रौ.सू. 9.3.5 से 9.5.6 तक; का.श्रौ.सू. 8.2.37 (एकदिनसाध्यसुत्याकः सोमयाग एकाहः। तस्योपसत्त्रयं भवति, स.वृ.); श.ब्रा. 3.4.4.17। **० तन्त्र** न. एक सवन दिन वाले सोम की साधारण एवं प्रतिदर्श प्रक्रिया (अर्थात् अग्निष्टोम) निदा.सू. 8.9:8; 13; 9.4.19। **० न्याय** पु. एक दिवसीय प्रकृति सोमयाग अर्थात् अग्निष्टोम के मामले में पालन किये जाने वाला नियम, निदा.सू. 7.8:28। **० हीभवत्** (एकाह + च्वि + भू + शतृ) वि. जो एक दिवसीय प्रकृति सोम याग बन जाता है (एकाह होता हुआ), शां.श्रौ.सू. 13.24.17।

एकैकशः क्रि.वि. (एकं एकं कृत्वा) एक-एक करके (पात्रासादनं पितृयज्ञे), का.श्रौ.सू. 4.1.3 (दर्श के समान जोड़े में नहीं)।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध न. किसी के लिए अर्थात मृत के लिए उसकी अन्त्येष्टि कर्म के पश्चात् ग्यारहवें दिन अनुष्ठित होने वाला श्राद्धकर्म, श्रौ.को. (अं.) I.ii.1047; (तै.ब्रा. 2.8.9.1); 1068; 1091।

एकोद्धि वि. एक उभार वाला, मा.श्रौ.सू. 1.7.4 (करम्भ पात्र)।

एकोपचयम् (एक) अंगुल की वृद्धि करने के द्वारा, का.श्रौ.सू. 7.7.14 (एकोपचयं च) (सोम की टहनी की माप)।

एकोल्मुक (एकम् उल्मुकम्) एक प्रदीप्त काष्ठखण्ड, मा.श्रौ.सू. 1.7.6.14 (पिण्डपितृयज्ञ के लिए) दक्षिणाग्नि से निकाला जाता है।

एदावसुनिधन न. = आर्षभ साम, जै.ब्रा. II.112।

एध पु. ईंधन, लकड़ी का कुन्दा, ऋ.वे. 1.158.4 = उपनयन की अग्नि के शान्त हो जाने पर एक अलग अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए वन से लाई गई समिधा, आप.गृ.सू. 11.22; भा.श्रौ.सू. 6.8.1।

एरका स्त्री. सरकण्डे का एक प्रकार, श्रौ.को. I.i.480; I.ii.104n; (पिण्डपितृयज्ञ एवं पितृमेध में प्रयुक्त); बौ.श्रौ.सू. 3.10-11; 20.21; 24.32; दर्भसंज्ञक घास से निर्मित विस्तर, बौ.श्रौ.सू. 17.39:1; दर्भ की बनी फन्नी, काशिकर, परिशिष्ट। **०कोपबर्हण** (एरकायाः उपबर्हणम्) न. सरकण्डे से निर्मित उपधान (तकिया) अथवा गद्दा, बौ.श्रौ.सू. 2.8.4; 3.10.3।

एवयामरुत न. विष्णु के सन्दर्भ वाला एक सूक्त अर्थात, ऋ.वे.का. एक सूक्त (5.87) जिसमें विष्णु की चर्चा है, शांश्रौ.सू. 12.6.14; 11.15.10।

ऐ

ऐकध्य न. एक एवं वही स्थान, आप.श्रौ.सू. 2.17.2 (प्रयाज-आहुति)।

ऐकश्रुत्य न. ऋचाओं अथवा स्वरयुक्त पाठ्य का उसी तारता में उच्चारण (उदात्तानुदात्तस्वरितानां पर: सन्निकर्ष:), आश्व.श्रौ.सू. 1.2.9; तु.का.श्रौ.सू. 1.8.19।

ऐकाहिक वि. (स्त्री. ई) जिसमें एक सवन दिन वाले सोम याग (अर्थात् अग्निष्टोम) की विशेषता है, शां.श्रौ.सू. 11.10.6; ला.श्रौ.सू. 6.9.16, 8.2.20; शस्त्र, शां.श्रौ.सू. 14.84.4; शां.श्रौ.सू. 10.7.14 एकदिवसीय सोमयाग में प्रयुक्त होने वाली ऋचायें (तुल.शां.श्रौ.सू. 7.3 एवं 8.2)।

ऐक्षवी वि. (इक्षु + अण् + ङीप्) इक्षुदण्ड से युक्त, आप.श्रौ.सू. 10.30.3 (आतिथ्यविधृति)।

ऐडिकी स्त्री. (एडक + अण् + ङीप्) चित अग्नि वेदि के एक प्रकार का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.11.3

ऐतत न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.15 सा.वे. 1.113 पर निबद्ध।

ऐध्मवाह न.सा.वे. 1.113 पर निबद्ध एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 16.5.2.

ऐन्द्रवायवग्रह पु. (इन्द्रवाय्वो: अयम् ऐन्द्रवायव: ग्रह:) इन्द्र एवं वायु को समर्पित सोम-आहरणों में एक का नाम, यह युग्म देवताओं के लिए अर्पण का अंग होता है (द्विदेवत्यग्रह), आप.श्रौ.सू. 12.20.18-21; - **पात्र** - पात्र का नाम जिससे इन्द्र एवं वायु को द्रवार्पण किया जाता है (ऊर्ध्वपात्रों में एक), बौ.श्रौ.सू. 7.12।

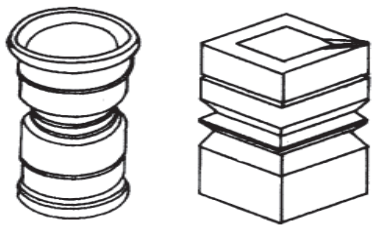

ऐन्द्रवायवग्रह

ऐन्द्रवायवाग्र वि. (ऐन्द्रवायव: ग्रह: अग्रे यस्मिन्) प्रथम स्थान पर इन्द्र-वायु के लिए अर्पित किये जाने वाले प्याले से युक्त, अर्थात् जिसमें इन्द्र एवं वायु को समर्प्य पानपात्र प्रथम होता है। आप.श्रौ.सू. 2.3.5.2 (ऐन्द्रवायवाग्रान् ग्रहान् गृह्णीयात्)।

ऐन्द्रहवि:प्रचार पु. (इन्द्रस्येदं हवि: तस्य प्रचार:) इन्द्र के लिए आहुतिदान, श्रौ.प.नि. 179.230 (पशु)।

ऐन्द्राग्नग्रह पु. (इन्द्राग्न्योरयं = ऐन्द्राग्न: स चासौ ग्रह:) इन्द्र एवं अग्नि को अर्पित किये जाने वाले सोम के ग्रहण का नाम, बौ.श्रौ.सू. 7.16; आप.श्रौ.सू.12.27.8; ऐन्द्रा बार्हस्पत्य,-वारुण,-वैष्णव।

ऐन्द्रामारुतीष्टि स्त्री. (इन्द्रमरुतोरियं, सा चेयम् इष्टि:) इन्द्र के लिए देय (सात कपालों पर संस्कृत पुरोडाश) एवं मरुतों के लिए प्रदेय (सात कपालों पर सेंका गया पुरोडाश) वाली इष्टि। मरुतों के लिए 'पुरोनुवाक्या' का पाठ करने के बाद उसे इन्द्र के लिए 'याज्या' का पाठ करना चाहिए। अन्तर्विष्ट पाठ्य (निगद) में उसे सर्वप्रथम इन्द्र या मरुत् का उल्लेख करना चाहिए अथवा प्रधान आहुति के पहले उसे नियतरूप से इन्द्र का उल्लेख करना चाहिए, मरुतों का बाद में अथवा मरुत का पहले इन्द्र का बाद में एवं। या सर्वप्रथम प्रधान आहुतियों के बाद उसी का उल्लेख होना चाहिए एवं मरुतों का प्रथम (उल्लेख) प्रधान आहुति के बाद, आश्व.श्रौ.सू. 2.11.13-17; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (अं.) I.ii.573।

ऐन्द्रार्भवी स्त्री. (इन्द्र - ऋभ्वो: इयम्) इन्द्र एवं ऋभु को सम्बोधित ऋचा, अर्थात् 'इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भि:', ऋ.वे. 3.60.5; श्रौ.को. (सं.) II. 443 (तृतीय सवन)।

ऐन्द्रिय पु. एक इष्टि का नाम अथवा 'दातृ' या पुनर्दातृ इन्द्र को दी जाने वाली आहुति, आश्व.श्रौ.सू. 2.10.15; 2.11.5; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (अं) I.ii.588. आश्व.श्रौ.सू. में ऐन्द्रिय शब्द नहीं आया है, किन्तु श्रौ.को. ऐन्द्रिय यज्ञ के रूप में इसका ग्रहण करता है।

ऐन्द्री स्त्री. (इन्द्रस्य इयम्, इन्द्र + अण् + ङीप्) अग्नि-वेदि की प्रथम तह की ईंटों का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.31-36।

ऐळ वि. (अन्त में) इडा (क) की अभिव्यञ्जना से युक्त (साम), जै.ब्रा. 1.30।

ऐषिर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.11.20 सा.वे. 1.406 पर निबद्ध।

ऐष्टक वि. (इष्टकाया: विकार) ईंटों से निर्मित, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.26 (अग्निवेदि)।

ओ

ओकार पु. 'ओ' ध्वनि, शां.श्रौ.सू. 1.1.9; आश्व.श्रौ.सू. 1.4.13; 7. II.II.

ओंस्वधा पु. पित्र्य इष्टि में अग्नीध्र के प्रति अध्वर्यु का आश्रावण, का.श्रौ.सू. 5.9.9 (ओंस्वधेत्यस्तु स्वधेति वाऽऽश्रुतप्रत्याश्रुते, स्वधा नम इति वषट्कार:), (ओश्रावय के स्थान पर)।

ओकोनिधन न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.1.1—कैतइन्य, जै.ब्रा. I.214 (अतिरात्र)।

ओदन (पु.) न. चावल यजमान के सम्बन्धियों के लिए पकाया गया एवं परोसा गया, और ऋत्विजों द्वारा भी उपभुक्त, भा.श्रौ.सू. 8.13.1, 13-14 (साकमेध); आग्रयण में भी, 6.18.13।

ओदनीयन्ति (ओदन + क्यच् + ल. प्र.पु.ब.व) (एक पुरोडाश की न्यून मात्रा के आलोक में) उबाला चावल (भात) तैयार करना 'एकपुरोडाशेषु व्रत्यासम्भवादैन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेत्पुरोडाशं वा यद्योदनयन्ति यद्यपूपीयन्ति इति श्रुते:', का.श्रौ.सू. 12.2.12 (इन्द्र के लिए प्रदेय); पके चावल के (ओदन) के रूप में व्यवहृत।

ओम् पु. (प्रणव) एक ध्वनि का नाम, जिसका उच्चारण बिना संशोधन के किया जाता है, शस्त्र (प्रशस्ति) एवं पाठ (अनुवाचन) के सूक्तों के मध्य में इसका अनुनासिकीकरण नहीं किया जाता। यति (विराम) के लिए शस्त्र एवं अनुवाक्य के अन्त में इसका अनुनासिकीकरण किया जाना चाहिए, गोंड जे., प्रातरनुवाक, पृ. 33; जै.ब्रा. I.336।

ओंकार 'ओम्' की अभिव्यञ्जना, का.श्रौ.सू. 19.7.5 (ओंकार ऋगन्ते), ला.श्रौ.सू. 9.7.5; द्रा.श्रौ.सू. 15.3.6।

ओवा स्त्री. 'ओवा' की अभिव्यञ्जना, ला.श्रौ.सू. 7.2.12, 7.2.9, साम में स्तोभ के रूप में।

ओवीली स्त्री = ओविली, एक क्षैतिज अथवा ऊर्ध्वाधर लगुड जिसमें चात्र (एक तकुआ = मन्थन दण्ड) बैठा दिया जाता है। यह प्रमन्थ (उत्तरारणि से काटी गई खूँटी) से चात्र के सञ्चरण को नियन्त्रित एवं नियमित करता है। ओविली की लम्बाई बारह अंगुल होती है, यज्ञायुधानि, पृ. 3,4 (ऊर्ध्वाधर ओविली); द्रष्टव्य - अग्निमन्थन।

ओ श्रावय पु. = आ श्रावय, इष्टि में अग्नीध्र के प्रति अध्वर्यु की पुकार, द्रष्टव्य - आश्रवण।

ओषधिपाणि वि. (ओषधि: पाणौ यस्य) जिसके हाथ में ओषधि है (मार्जये), मा.श्रौ.सू. 4.1.31; प्रवर्ग्य : सम्राट् - आसन्दी पर महावीर पात्र को रखने के बाद। वह ओषधियों को हाथ में लेकर अपना मार्जन करता है।

ओषधिसूक्त न. (ओषधिसम्बद्धं सूक्तम्) वनस्पति जगत् की चर्चा से युक्त सूक्त, आश्व.श्रौ.सू. 6.9.1; आप.श्रौ.सू. 14.21.1; तै.सं. 4.2.6; 'या जाता ओषधय:', आदि। -**धीसूक्त** न. वनस्पतियों को सम्बोधित सूक्त, वैखा.श्रौ.सू. 21.7:1; द्रष्टव्य—धीसूक्त।

ओषम् क्रि.वि. तेजी से, जै.ब्रा. I.104।

ओष्टृ पु. एक शक्तिशाली बैल, का.श्रौ.सू. 5. II.13।

ओष्ठ पु. (द्वि.व.) दोनों होठ, आ.शु. 12.9.9; 1.7.1; श्रौ.प.नि. 33. 272-73।

ओवीली

ओवीली

औ

औक्ष्णोरन्ध्र न. (द्वि.व.) वपाहोम के अन्त में गाये जाने वाले दो सामों का नाम, यदि 'अनूबन्ध्या याग' में किसी बैल की बलि दी जाती है, द्रा.श्रौ.सू. 2.2.45।

औक्ष्णोर्दन न. अनूबन्ध्या याग में गाये जाने वाले एक साम का नाम, यदि वध्य पशु बैल हो तो, जै.श्रौ.सू. 1.25।

औत्तरवेदिक वि. (उत्तरवेद्याः इदम्) उत्तरवेदि से सम्बद्ध, द्रष्टव्य—उत्तरवेदि।

औत्पत्तिकस्वर पु. (उत्पत्तौ भवः औत्पत्तिकः स चासौ स्वरश्च) प्राथमिक अथवा मूल ऋचा का स्वर, जिस पर (जिस ऋचा पर) साम निबद्ध है, ला.श्रौ.सू. 7.11.18।

औदक वि. (उदकं वहति, उदक + अण्) (जल का वहन करने वाला) जो वर-वधू पर जल छिड़कता है, गौ.गृ.सू. 2.2.15।

औदल न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.32 सा.वे. 1.160 पर निबद्ध।

औदुम्बर वि. (उदुम्बर + अण्, तस्येदम्, पा. 4.3.120) उदुम्बर वृक्ष (गूलर) की (जटा), आप.श्रौ.सू. 10.5.14 (दीक्षा के समय दाँत साफ करने के लिए प्रयुक्त); ताँबे से युक्त (रु. उदुम्बरं ताम्रम् औदुम्बरेण इति लोहविशेषाणां लोहितायसेन निर्वर्तयते इति श्रुतिः), आप.श्रौ.सू. 8.4.1, द्रष्टव्य - द्रोण, - पात्र।

औदुम्बरी

औदुम्बरी स्त्री. (उदुम्बर + अण् + ङीप्) उदुम्बरकाष्ठ से निर्मित एक कलछी, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.11; यजमान की ऊँचाई वाला एक यज्ञ-स्तम्भ। यह ऊपर (शीर्ष पर) दो शाखाओं में बँटा होता है। इसे उद्गाता सदोमण्डप में एक चिह्न पर खड़ा करता है, पृष्ट्या के साथ-साथ शालामुखीय से 6 कदम पूर्व एवं उसके बाद एक कदम दक्षिण में, बौ.श्रौ.सू. 6.25-26. इसके काँटे में एक सोने का टुकड़ा रख दिया जाता है एवं 'घृतेन द्यावा पृथिवी आ पृणेथां स्वाहा' इस मन्त्र से चम्मच के साधन से एक आहुति दी जाती है [उदुम्बर के काष्ठ से निर्मित एक थून (स्थूणा), जिसमें पूर्व के ओर उन्मुख एक ग्रन्थि (प्राचीन) कर्ण होता है, इसे अध्वर्यु समारोहपूर्वक 'उद्गाता' की सहायता से सदस् के एक मध्य बिन्दु पर 'अन्तःपात्य' से छः प्रक्रम (कदम) पूर्व एवं पृष्ट्या के दक्षिणी तरफ उठाता है। यह सदस् के स्थूणों में सबसे अधिक घना होता है, और इसके ऊपर छदिस् रखा जाता है। इसे उठाना एवं गड्ढे में गाड़ना, आज्य की एक आहुति को वृद्धि प्रदान करता है, का.श्रौ.सू. 8.5.31 (पर्यूहणाद्योपसेचनात्कृत्वा------वाचयत्योदुम्बरीमालभ्य प्रजया भूयादिति पशुभिरिति वा); भाष्य.आप.श्रौ.सू. 11.9.10.5; बौ.श्रौ.सू. 6.26-27; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 242.173]।

औद्ग्रहण न. (उद्ग्रहण + अण्) छः उत्थानात्मक आज्याहुतियों का नाम, जिन्हें दीक्षाहुति भी कहते हैं और जिनका अनुष्ठान-दीक्षा के समय किया जाता है। इसमें 12 कलछी से ग्रहण की क्रिया (द्वादश गृहीत) होती है। चार आहुतियाँ ध्रुवा (में) से स्रुवा में लिए गये आज्य से, पाँचवीं एवं छठी स्रुक् से दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 10.8.5.7 = **औद्ग्रभण**, का.श्रौ.सू. 7.3.16 [औद्ग्रभणानि जुहोति-----प्रतिमन्त्रम् (सोम)]।

औद्धव न. वेदि के चारों ओर फैलाने के बाद हाथ में बचे हुए दर्भ, आप.श्रौ.सू. 8.14.5 (पितृयज्ञ); वि. चारों ओर फैलाने के बाद हाथ में बचे हुए दर्भ से युक्त, आप.श्रौ.सू. 8.14.6।

औपकार्य न. किसी समारोह में प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठित होने वाला उपक्रमात्मक कृत्य, आप.गृ.सू. 21.II. (एष्टका के पूर्व दिन का सायंकाल)।

औपभृत वि. (उपभृति भवम्) 'उपभृत्' - संज्ञक कलछी में रखे जाने वाले (आलभ्य पशु के अङ्ग) [दक्षिणपूर्व-नाडका गुदतृतीयस्थश्रोणि], का.श्रौ.सू. 6.7.7; द्रष्टव्य - उपभृत्।

औपवसथ वि. (उपवसथस्य इदम्) उपवसथ से सम्बद्ध।

औपशय (पात्र) न. सोम के आकर्षण के लए प्रयुक्त 'प्रतिनिग्राभ्य - संज्ञक' एक आनुषंषिक पात्र, बौ.श्रौ.सू. 7.12; आदित्यस्थाली एवं उख्यस्थाली से सम्बद्ध ऊर्ध्वपात्र में अन्तर्निविष्ट, आप.श्रौ.सू. 12.1.4, देखें—उपशय।

औपसदा वि. (स्त्री.) (उपसदः इयम्) उपसद् से सम्बद्ध (वेदि) अर्थात् 'प्राग्वंश' में स्थित वेदि, बौ.श्रौ.सू. 6.33; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II.547।

औपाकरण वि. (उपाकरणस्य इदम्) आलभ्य के अर्पण से सम्बद्ध (दर्भ), मा.श्रौ.सू. 1.8.3.29 (अनु. वध्य पशु को समीप लाने के लिए प्रयुक्त दर्भ)।

औपासन (पु.) गृह्य अग्नि, आप.श्रौ.सू. 5.4.12 (औपासनं वा सर्वम्) इसका उपयोग आधान में 'ब्रह्मौदनिक' अग्नि के रूप में होता है। 1. स्मार्त अग्निहोत्र के लिए प्रयुक्त एक प्रकार की अग्नि का नाम; इसका प्रयोग 'ब्रह्मौदन' संज्ञक भात पकाने के लिए किया जाता है, अतः इसे ब्रह्मौदनिक अग्नि भी कहते हैं, 2. सोम-याग के कार्य सम्पादक-पुरोहितों (चमसाध्वर्युओं) द्वारा क्रमशः पितरों के लिए तृतीय सवन में नाराशंस पात्र के समीप रखे जाने वाले अथवा प्रदेय पुरोडाश के खण्डों का पारिभाषिक नाम, शां.श्रौ.सू. 7.7.9; आप.श्रौ.सू. 5.7.8।

और्णायव न. अनूबन्ध्य पशुयाग में भेंड़ (मेष या अवि) के आलभ्य पशु होने की स्थिति में गाये जाने वाले साम का नाम, जै.श्रौ.सू. 1.25; पञ्च.ब्रा. 12.11.9 सा.वे. 1.476 पर निबद्ध।

और्ध्वसद्मन न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.1.12 सा.वे. 1.545 पर निबद्ध।

औशन न. गायत्री छन्दस्का ऋचा पर आधृत एक साम का नाम, जिसका गायन प्रस्तोता द्वारा आतिथ्येष्टि में किया जाता है, ला.श्रौ.सू. 1.6.22, पञ्च.ब्रा. 7.5.16 सा.वे. 1.523 पर निबद्ध।

औषधकल्प पु. वनस्पति-जगत से सम्बद्ध कर्मकाण्ड, हि.श्रौ.सू. 22.4.2।

औपासन

क

क पु. प्रजापति का वाचक 'क' वर्ण (मन्त्र 'कोऽसि, वा.सं. 7.29) इसका वाचन तब किया जाता है, जब (सोमयाग में) यजमान द्रोणकलश पर दृष्टि डालता है, पञ्च.ब्रा. 4.5.6.4; का.श्रौ.सू. 9.7.11 (''कोऽसी''ति द्रोणकलशम्); आश्व.श्रौ.सू. 4.4.4; बौ.श्रौ.सू. 14.8; 27।

कंवत् वि. (कम् + मतुप्) रमणीय, 'शंवति कंवति वा' का.श्रौ.सू. 21.3.22 (कंवति – रमणीये, स.वृ.) पुरुषमेध।

कंस (पु.) न. काँसे का बना पात्र, काँस से निर्मित पात्र, इसका प्रयोग 'तनूनप्त्र' कर्म में आज्य पकड़ने के लिए किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.19; श्वेत ताँबे से निर्मित प्याला, श्रौ.को. (अं.) 1.255; (सं.) II.516; बौ.श्रौ.सू. 14.20; भा.श्रौ.सू. 1.16.3।

कंसवसन न. (कंसस्य वसनम्) श्वेत ताँबे का वस्त्र, कौशि.सू. 54.21।

कंसस्थाल न. (कंसस्य स्थालम्) काँसे अथवा घण्टे की धातु से निर्मित एक पात्र, ला.श्रौ.सू. 8.11.25।

ककुद् स्त्री. बैल के कन्धे पर स्थित कूबड़ (उभार), मा.श्रौ.सू. 6.2.2.21; 7.1.3.33 (वाज)।

ककुद्देश पु. (ककुदः देशः) ककुद् (डील) का क्षेत्र, शिखर, मा.श्रौ.सू. 1.8.3.12 (पशु-याग)।

ककुप्कारम् क्रि.वि. पाठ के एक प्रविधि (तरीके) का अनुप्रयोग करते हुए, जिसमें 'बृहती' में 'प्रगाथ' की ऋचाएं 'ककुप्' छन्दस् में परिवर्तित कर दी जाती है (एक विशिष्ट साम के अन्तर्गत उनकी आवृत्ति करते समय); शां.श्रौ.सू. 9.20.6।

ककुप्प्रभृति क्रि.वि. ककुप् छन्दस् से प्रारम्भ करते समय, ला.श्रौ.सू. 6.3.36।

ककुभ् स्त्री. तीन पादों वाले एक छन्द का नाम, 8,12,8 शां.श्रौ.सू. 7.25.3 (इस छन्द में निबद्ध ऋचा); ला.श्रौ.सू. 6.4.7; (ककुप् ककुदिनी (ककुभिनी भवति निरुक्त 7.12)। वि. कूबड़ (ककुद्) से सम्बद्ध 'ककुभं रूपं वृषभस्यारोचते', बौ.श्रौ.सू. 14.12:13 (अदाभ्य)।

कक्ष पु. सूखा झुरमुट, झाड़ी, आप.श्रौ.सू. 9.11.22 (कक्षं दहेयुः); मा.श्रौ.सू. 8.21.3; आश्व.गृ.सू. 2.4.9; शां.गृ.सू. 3.14.5; ऋ.वे. 6.45.31 (अष्टका के लिए एक वैकल्पिक कृत्य के रूप में दग्ध); बौ.श्रौ.सू. 14.13:28; गर्त, का.श्रौ.सू. 21.3.15 (कक्षेऽवतापिनि) कक्षे = गह्वरे; (द्वि.) काँख, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.3 (दर्श में काँख के बाल को नहीं छीलते हैं); इसके निर्वचन के लिए द्रष्टव्य – निरुक्त 'कक्षो गाहतेः आदि निरू. 2.2'।

कङ्कचित् स्त्री. (कङ्क इव चीयते) कङ्क नाम पक्षी के अनुहरण पर चित वेदि, का.श्रौ.सू. 16.5.9 (उड्डीयमनानकङ्क-पक्ष्याकारा चितिः कङ्कचित्); बौ.श्रौ.सू. 17.28.8; हि.श्रौ.सू. 12.8.4।

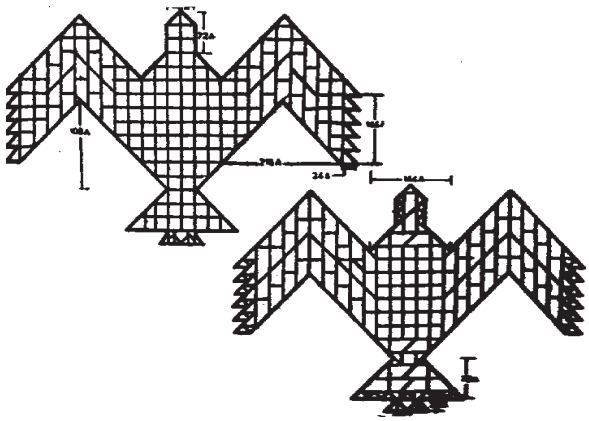

कङ्कचिति

कङ्कचिति=कङ्कचित्, बौ.श्रौ.सू. 4.86-89

कङ्कत पु. बाल झाड़ने की कंघी, बौ.श्रौ.सू. 18.19.6 (द्वादशाह व्रत)।

कच्छप पु. (कच्छेन पाति, कच्छ + पा + क) कछुआ, मा.श्रौ.सू. 3.6.16 (वेदिचयन में इसकी अनुपलब्धता की स्थिति में केकड़ा इसका स्थानापन्न होता है), वारा.श्रौ.सू. 2.1.6.36।

कञ्चुक पु. छिलका, भूसी, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.18 (पितृयज्ञ)।

कट पु. बेंत की चटाई, बौ.श्रौ.सू. 15.14:9 (एकं वेतसं कटं कुर्वीताश्वस्य उपस्तरणाय), आप.श्रौ.सू. 20.21.7; का.श्रौ.सू. 13.3.16 (कट में लगा हुआ चर्म, गवामयन)।

कटपरिवार पु. (कटस्य परिवारः, परि + वृञ् आवरणे – घञ्) चटाई का घेरा या बाड़ा, जिसका प्रयोग कर्मकाण्डीय

प्रसाधन के रूप में होता है। यह प्राचीनवंश के उत्तर बनाया जाता है, यजमान के लिए पूर्व की तरफ एक, और दूसरा इसके पश्चिमी तरफ उसकी पत्नी के लिए, बौ.श्रौ.सू. 6.1:14; 16.20.6 (महाव्रत); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.512।

कठिन न. एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन, जिसमें चावल को उबालने के बाद इसमें माड़ (चावल का पानी) उड़ेला जाता है (इसे पाकज भी कहते हैं), बौ.श्रौ.सू. 17.31-38; श्रौ.को. (अं.) 1.903; VL कठिन।

कटशलाका स्त्री. (कटस्य शलाका) चटाई की सींक, आप.श्रौ.सू. 21.8.9 (कैलण्ड - उत्कर की छड़ी), (महाव्रत)।

कटसंघात पु. (कटस्य संघातः) तिनके की चटाई, आप.श्रौ.सू. 21.18.5 (महाव्रत)।

कण पु. (बहु.) चावल के टूटे हुए दाने, का.श्रौ.सू. 2.4.23; 3.8.7 (पुरोडाशकपालेन कणानपास्यत्यधः कृष्णाजिनम्------)।

कणपिण्याक पु. (कणस्य पिण्याकः) टूटे हुए चावल की खली, बौ.ध.सू. 4.5.22।

कणिक पु. (बहु.) छोटे अनाज के दाने, मा.श्रौ.सू. 5.1.9.26 (रुद्र के लिए)।

कण्टक पु. काँटा (अभिचार के लिए अनुष्ठित श्येन-याग में, ऋत्विजों द्वारा दक्षिणा में प्राप्त गायों को दक्षिणादानकाल में बिल्वादि के काँटे से विद्ध किया जाना चाहिए), का.श्रौ.सू. 22.3.22 (दक्षिणादानकाले कण्टकैरेमा विरुजेयुः)।

कण्टक न. एक वनस्पति का नाम, जिसे चिति के लिए चयनित भूमि पर उगने के स्थिति में उखाड़ते नहीं हैं, भा.पि.मे. 2.2-5।

कण्ठ पु. गला, 'कण्ठं वा अवकृत्य स्थाल्यां मेधस्रावणम्', का.श्रौ.सू. 25.10.6; अहिताग्नि की अन्त्येष्टि की क्रियाओं में; अग्निहोत्र के लिए अभिप्रेत कलछी को मृत अहिताग्नि के गले पर रख देते हैं, शां.श्रौ.सू. 4.14.21।

कण्डूति स्त्री. (कण्डू + क्तिन्) खुजली, खरोचना, वैखा.श्रौ.सू. 12.9:7।

कण्डूयन न. (कण्डू + ल्युट्) खरोचने (खुजलाने) अथवा रगड़ने का कृत्य, (मृग की सींग से) शरीर को खुजलाना, का.श्रौ.सू. 7.3.26 (दीक्षा)।

कण्डूयनमन्त्र पु. (कण्डूयनस्य मन्त्रः) खुजलाने के लिए अथवा खुजलाते समय प्रयुक्त होने वाला मन्त्र, हि.श्रौ.सू. 1.1.41 (सुपिप्पलाभ्य इति, तै.स. 1.2.25)।

कण्डूयनी स्त्री. (कण्डू + ल्युट् + ङीप्) खुजलाने के लिए कूर्च, दीक्षित यजमान द्वारा आवश्यक होने पर अपने को खुजलाने के लिए कृष्णमृग के विषाण के रूप में प्रयुक्त खुजलाने का साधन, का.श्रौ.सू. 15.6.8 (कण्डूयन्याऽभिषेकेण प्रलिम्पते-------)।

कण्व पु. कर्मकाण्ड के एक प्रमाणपुरुष का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.322।

कण्वबृहत् न. एक साम का नाम, क्षुद्र सू. 2.10:12; द्रष्टव्य- पञ्च.ब्रा. 9.2.5 (आवृत्ति का गान)।

कण्वरथन्तर न. उपहव्य याग के अन्तर्गत 'पृष्ठ' का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.21 (अनु.—कण्व रथन्तर प्रथम स्तोत्र है); शां.श्रौ.सू. 13.16.5 के अनुसार यह एक साम का नाम है, जो (साम) 24 दिवस के सत्र के अन्तर्गत त्रयस्त्रिंश-स्तोम के मध्य-दिवस-परिचरण (मध्यन्दिन) के समय गाया जाता है।

कण्वरथन्तरमध्यन्दिन वि. (कण्वरथन्तरं मध्यन्दिने यस्य) कण्वरथन्तर साम की कार्यान्विति से युक्त मध्य-दिन-परिचरण (मध्यन्दिन) वाला, क्षुद्रसू. 2.15.21।

कण्वरथन्तरसामन् न. (कण्वरथन्तरं चेदं साम) कण्व रथन्तर के नाम से सम्बोधित किया जाने वाला साम, आप.श्रौ.सू. 22.10.4।

कद्वती स्त्री. (कद् + मतुप् + ङीप्) प्रजापति के सन्दर्भ वाली ऋचा, का.श्रौ.सू. 16.1.43 (कद्वत्यो याज्यानुवाक्याः प्राजापत्यस्य); श.ब्रा. 6.2.2.5; 12।

कद्रु वि. पिङ्गल-बभ्रु, रक्ताभ भूरा, (वात्यस्तोमव्रात्यधनानि----वासः कृष्णशं कद्रु), का.श्रौ.सू. 22.4.14।

कद्रू स्त्री. एक भूरे रंग का सोमपात्र, ऋ.वे. 8.45.26।

कनिष्ठकुलीन वि. (कनिष्ठकुले जातः, कुल + ख, कुलात्खः पा. 4.1.139) निम्न परिवार से सम्बन्धित, शां.श्रौ.सू. 14.13.1; उत्कृष्टता (की प्राप्ति) के लिए 'कनिष्ठकुलीन' के लिए निर्धारित 'ज्येष्ठस्तोम', - संज्ञक सोमयाग।

कनिष्ठिका स्त्री. छोटी उंगली (कनिष्ठा), 'सोमं मिमीते द्विः कनिष्ठिकया', का.श्रौ.सू. 7.7.13।

कन्याप्रद पु. (सम्बन्धी) मृत की कन्या के माध्यम से (अन्य विभिन्न लोगों के साथ परिगणित, पिता, मातुल, श्वसुर एवं जामाता = दामाद), वैखा.गृ.सू. 5.1-6।

कपल न. अर्ध-भाग अथवा अंश, 'तानि चत्वारिंशत्तृचानि। तत्पूर्वं कपलम्। अथोत्तरम्। शां.श्रौ.सू. 18.7.8।

कपाल न. एक प्रकार का दग्ध घट-शकल, मृत्पात्र का भग्न टुकड़ा, का.श्रौ.सू. 2.3.8 भाष्य; यज्ञीय पात्र में रूप में अभिज्ञात। वे इस प्रकार से व्यवस्थित किये जाते हैं कि आकार-प्रकार घोड़े की नाल के बराबर हो। इन कपालों पर पुरोडाश सेंके जाते हैं। एक पुरोडाश पकाने के लिए 7 से 12 कपालों की आवश्यकता होती है 8 अग्नि के लिए, 11 इन्द्र के लिए, 12 सवितृ के लिए, 7 मरुतों के लिए, इत्यादि; दानों को भूनने के लिए 3 कपालों की आवश्यकता पड़ती है। इन कपालों की लम्बाई एवं चौड़ाई दो-दो अंगुल होती है, वैता.श्रौ.सू. 11.9. पुरोडाशों को सेंकने के लिए कपालों की सज्जा के बारे में देखें—आप.श्रौ.सू. 1.22.1. 23.6 (दर्श); तुल. इग्लिंग, श.ब्रा.इ. XII.34; (तुषयुक्त अनाज को) भूनने के लिए कड़ाही, भा.श्रौ.सू. 8.17.1, 5; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं) II.516, श्रौ.प.नि. 6.35-37।

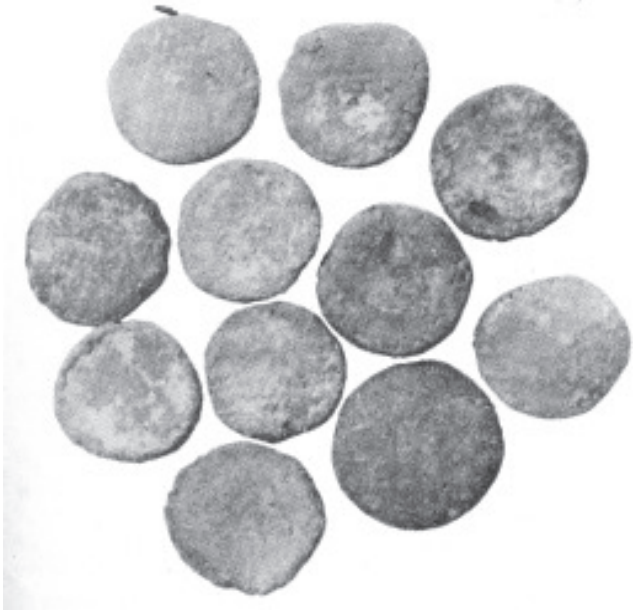

कपाल

कपालमन्त्र पु. (कपालसम्बद्धः मन्त्रः) कपालों (के स्थान) से सम्बद्ध मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 8.10.2 (ध्रुवमसि इति मध्यमं धर्त्रमसि, धरुणमसि, चिदसि विश्वासु दिक्षु परिचिद् असि मध्यमादुत्तरं मरुतां शर्धोऽसि षष्ठं धर्मासि इति सप्तमं चितस्थोऽसि इति अष्टमम्), आप.श्रौ.सू. 1.2.3.1; तै.सं. 1.1.7); भा.श्रौ.सू. 5.1.47; भा.श्रौ.सू. 5.14.9।

कपालयोग पु. (कपालस्य योग) कपालो का संयोजन, भा.श्रौ.सू. 1.25.9-10; भा.श्रौ.सू. 1.24.6; कपालों को आग पर 'युगबद्ध करना' अथवा रखना, आप.श्रौ.सू. 1.23.1 (दर्श); कपालों को कार्य में लगाना, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.6।

कपालविमोचन न. (कपालस्य विमोचनम्) 'कपालों को मुक्त करना या खोलना', अर्थात् कपालों को आग पर से हटाना, आप.श्रौ.सू. 4.14.5; 12.25.13 (सोम); आग पर से कपालों को हटाने के समय पढ़े जाने वाले 'यानि घर्मे कपालानि' आदि तै.सं. 1.1.7.2 मन्त्र, अर्थात् कपालों को मुक्त करने से सम्बन्धित मन्त्र (यजमान एवं अध्वर्यु दोनों इसका जप करते है)।

कपालोपधान पु. (कपालस्य उपधानम्, उपधान = उप + धा + ल्युट्) संयोजन प्राप्त करने के लिए एक व्यवस्थित क्रम में कपालों को रखना, 'दक्षिणार्धे कपालोपधानम्', का.श्रौ.सू. 5.8.15; बौ.श्रौ.सू. 3.24:7; भा.श्रौ.सू. 5.14.8; मा.श्रौ.सू. 2.3.7.11. द्रष्टव्य - कपालयोग एवं कपालमन्त्र।

कपालोपधान

कपिञ्जल पु. एक पक्षी (तित्तिर); अन्नप्राशन के समय इसका मांस शिशु को दिया जाता है, पा.गृ. 1.19.8; आप.श्रौ.सू. 24.14.5; वारा.श्रौ.सू. 3.4.3.22, का.श्रौ.सू. 20.14.6।

कपिललाट न. अग्रपाद के ऊपर का मांस, मा.श्रौ.सू. 1.8.5.18-19।

कपिशीर्ष्णी स्त्री. एक प्रकार की वीणा का नाम (संगीत-यन्त्र) ला.श्रौ.सू. 4.2.2; द्रा.श्रौ.सू. 11.2.3।

कपुच्छल न. शिर के पिछले भाग में स्थित बाल का जूड़ा (गुच्छा), गो.गृ.सू. 2.9.18 (चूडाकरण)।

कपुजा स्त्री. बाल का जूड़ा, कौ.गृ.सू. 11.2 (चूडाकरण) = शिखा।

कपुष्णिका स्त्री. शिर के दोनों ओर के बाल का गुच्छा, गौ.गृ.सू. 2.9.12 (चूडाकरण)।

कबन्ध पु. (न) शिरोविहीन धड़ 'अपः कबन्धानि अभ्यवहरन्ति', आप.श्रौ.सू. 16.8.1 (अग्निवेदि का चयन)।

कमण्डलु (पु.) न. यजमान की पत्नी के द्वारा अनुष्ठित एक कृत्य के लिए प्रयुक्त जल के वहन के निमित्त एक कमण्डल, आप.श्रौ.सू. 3.8.1 (दर्श); 20.22.1; बौ.श्रौ.सू. 15.15.7; 20.27.20; वाधू.श्रौ.सू. 3.76:24; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) 11.540।

कमण्डलुपद न. जलपात्र की मुद्रा अथवा चिह्न, भा.श्रौ.सू. 5.8.16 (आधान; आप.श्रौ.सू. 5.15.1; वैखा.श्रौ.सू. 1.13.3)।

कम्प पु. एक कम्ययुक्त अथवा कम्पायमान उच्चारण (स्वरित स्वर का रूपान्तरण, जिस स्वरित के बाद उदात्त स्वर आयें तो स्वरित को कम्प कर दिया जाता है) शिशिरीय शिक्षा 200, जात्य; अभिनिहित, क्षैप्र एवं प्रश्लिष्ट स्वरित के बाद यदि उदात्त एवं स्वरित आये, तो स्वरित का उच्चारण कम्प से होता है—

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैप्रः प्रश्लिष्ट एव च।
एते स्वराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः॥ ऋ.प्रा. 3.34.

कम्प्र वि. (कम्प + रक्) कम्पयुक्त एवं असमान गति वाला 'अश्वाश्वतराभ्यां कम्प्राभ्यां युक्तः स्यात्', का.श्रौ.सू. 22.4.17 (व्रात्यस्तोम)।

कम्प्रमिश्र वि. (कम्प्रेण मिश्रः) कम्पयुक्त गति से मिला हुआ, ला.श्रौ.सू. 8.6.10; द्रा.श्रौ.सू. (कम्प) 23.1.19 (व्रात्यस्तोम)।

कम्बल पु. ऊनी कम्बल, वस्त्र अथवा उपरिवस्त्र, जै.श्रौ.सू. कारिका 195; बौ.श्रौ.सू. 26.32.28 (व्रात्यस्तोम)।

कम्बुशूर्प न. (कम्बुः इव शूर्पम्) शंख की तरह दीखने वाली सूप (पछोरने की डलिया), भा.श्रौ.सू. 9.16.18 (प्रायश्चित्त)।

कयाशुभीय न. एक सूक्त का नाम (ऋ.वे. 1.165), द्रा.श्रौ.सू. 12.2.8; प्रथम ऋचा में 'कया' एवं शुभीय शब्दों से युक्त 'कया शुभाः' आदि; श्रौ.को.(सं) II.658।

करक पु. शंख, मा.श्रौ.सू. 11.2.1 (तु. शुक्ति, सीपी, सीप)।

करण पु. वेदि के निर्माण के समय जपे जाने वाले मन्त्र का नाम 'इमां नरः कृणुत वेदिम्----बौ.श्रौ.सू. 1.11:25; श्रौ.को. (अं) 1.679; (सं) II.537; यह मन्त्र उस समय पढ़ा जाता है (वरुण प्रघास), जब दोनों वेदियों में भूमि का खनन हो चुका होता है, 5.5-9; द्रष्टव्य - मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 12.4.9-19; ईंटों का एक भेद अथवा प्रकार, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.3 (करणं यास्कदेहिकम्), (विष्णु के लिए वेदि को मापना); ईंट का एक साँचा, मा.श्रौ.सू. 10.2.5.1।

करणी स्त्री. (किसी त्रिकोणीय आकृति का) किनारा अथवा पार्श्व, बौ.शु. 1.55; (अलज-चिति के धड़ की) लम्बाई, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.12।

करण्ड न. टोकरी, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.4 (अश्व)।

करद् पु. ? न. ? पति द्वारा मैथुनक्रिया प्रारम्भ करने के पूर्व अपनी पत्नी की योनि को छूते समय पढ़ा जाने वाला मन्त्र, काठ.गृ.सू. 30.5।

करम्भ पु. खुरदरे ढंग से पीसी हुई जई, जौ के निष्तुष दाने, पिष्ट-जई; जौ के भूसीमुक्त दाने (ऋ.वे. 3.52.7), इन्हें दक्षिणाग्नि पर बहुत हल्के ढंग से भूनते हैं, फिर इनका पेषण होता है और दही में यह पिष्ट मिश्रित कर दिया जाता है (का.श्रौ.सू. 5.3.2 'पूर्वेद्युर्दक्षिणाग्नौ निष्तुषाऽऽमभृष्टयवानां करम्भपात्रकरणम्); का.श्रौ.सू. 9.1.15 (पूषन् के लिए प्रदेय); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.301; मा.श्रौ.सू. 2.3.2.2 (पूषा के साथ इन्द्र को देय लपसी); आप.श्रौ.सू. 12.4.13 के अनुसार 'आज्यादिमिश्रित।'

करम्भपात्र न. (करम्भस्य पात्रम्) भुने हुए भूसीरहित जौ के दानों के आटे से निर्मित पात्र, का.श्रौ.सू. 5.5.10 (यव-पिष्टमयानि); आप.श्रौ.सू. 8.4.14; भा.श्रौ.सू. 8.7.10. यजमान की पत्नी वरुणप्रघास-पर्व में इनका पात्र बनाती है (आप.श्रौ.सू. 8.6.3); ऐसे पात्रों की संख्या गृहस्थ (गृहपति) के बच्चों की संख्या से एक अधिक होनी चाहिए (का.श्रौ.सू. 5.3.3-5, आप.श्रौ.सू. 8.5.41); हि.आ.ध. II.2.1096।

करम्भपात्रकरण न. (करम्भपात्रस्य करणम्) करम्भ पात्रों को बनाने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 5.3.2; पत्नी द्वारा, आप.श्रौ.सू.

8.6.3; पिष्ट यव के शेष भाग से अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता के द्वारा, मेष (भेड़) एवं मेषी की आकृतियाँ बनाई जाती हैं, द्रष्टव्य श्रौ.को. (अं) 1.678।

करस्न न. यज्ञिय सामग्री (तत्र उदयनीयातिरात्रे); सर्वान् करस्नान् संबाध्य प्रेष्यति मैत्रावरुणः, शां.श्रौ.सू. 18.24.3 (द्वादशाह); निघण्टु 1.4 में द्विवचनान्त 'करस्नौ' शब्द बाहुनामों में पठित है।

करस्यु न. सगीत-यन्त्र वीणा का हाथ के सदृश भाग, ला.श्रौ.सू. 4.1.5; द्रा.श्रौ.सू. 11.1.5।

करीर न. करीर का फल, बाँस का अंकुरण, मा.श्रौ.सू. 5.2.6.23; का.श्रौ.सू. 5.5.1 (उभयोः करीराणि आवपति शमीपलाश-मिश्राणि); सुश्रुत-1.224.9; फल का एक प्रकार, बौ.श्रौ.सू. 13.37-40. कारीरेष्टि में उसके आटे का प्रयोग होता है। इसका प्रयोग चातुर्मास्य याग के वरुणप्रघास पर्व में भी होता है।

करीरसक्तु पु. (करीरस्य सक्तवः) करीर का सत्तू, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.7; आप.श्रौ.सू. 19.26.1।

करीष पु. शुष्क गोमय, गाय का सूखा गोबर, श.ब्रा. 2.1.4.7।

कर्क पु. केकड़ा, मा.श्रौ.सू. 3.6.16 (अग्नि-वेदि का चयन, कच्छप का स्थानापन्न)।

कर्कन्धुसक्तु पु. (कर्कन्धूनां सक्तवः) कर्कन्धु फल का चूर्ण (सौत्रामणी में सरस्वती के लिए मदिरा में इसे मिलाया जाता है), मा.श्रौ.सू. 5.2.4.21; आप.श्रौ.सू. 19.2.10; बौ.श्रौ.सू. 17.34:15।

कर्करिक पु. एक वीणा का नाम, शां.श्रौ.सू. 12.18.1।

कर्करिका स्त्री. वीणा का एक प्रकार, बौ.श्रौ.सू. 16.20:6।

कर्ण पु. (द्वि.) कान, 'यज्ञायज्ञिय' साम के दौरान कान बन्द रखे जाते है, श्रौ.को. (सं.) II.454।

कर्णगृहीत वि. (कर्णे गृहीतः) जिसका कान पकड़ा गया हो, आप.श्रौ.सू. 10.29.4; 'अजेन अग्निष्टोमीयेन कर्णगृहीतेन यजमानो राजानम् ऊह्यमानं प्रतीक्षते', कान द्वारा पकड़ा हुआ, मा.श्रौ.सू. 2.1.4.33 (अग्निष्टोम); भा.श्रौ.सू. 10.20.4।

कर्णच्छिद्र न. (कर्णस्य छिद्रम्) कान का छेद, वारा.श्रौ.सू. 2.1.7.5।

कर्णदघ्न वि. (कर्णः प्रमाणं यस्य, कर्ण + दघ्नञ्) कान के बराबर ऊँचाई वाला, आप.श्रौ.सू. 5.14.8; मा.श्रौ.सू. 1.5.4.13 (अग्नि को आगे लाने के लिए प्रयुक्त छड़ियां)।

कर्णप्रावृत्त वि. (कर्णौ प्रावृत्तौ यस्य) जिसने आच्छादन-पट अथवा वस्त्र के एक टुकड़े से अपने कानों को ढक लिया है, वैखा.श्रौ.सू. 16.18:10 (यज्ञायज्ञिय)।

कर्णश्रवस् न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.3.3 (सा.ब्रा. 1.569)। आर्भव पवमान के अनन्तर सायंकाल में इस साम का गायन किया जाता है, पञ्च.ब्रा. 13.11.13।

कर्णासहिता वि. (कर्णे सहिता = संलग्ना) विकर्णीय रेखा के ओर-छोर स्थित (प्राणभृत् इष्टकाएं), का.श्रौ.सू. 17.6.3।

कर्णातर्द (कर्णस्य आतर्दः, कर्ण + आ + तृद् + अप्) शकट के अक्ष के अन्त के साथ (दक्षिणी अथवा उत्तरी) धुरा के सन्धि-स्थल पर चुभोई गई शलाका, भा.श्रौ.सू. 12.7.12; 12.8.1; हविराधान शकट के दोनों तरफ स्थित छिद्र, जिनमें धुरों को लगाया जाता है, आप.श्रौ.सू. II.7.3 (सोम)।

कर्तृ वि. (कृ + तृच्) वह व्यक्ति जो उखापात्र का निर्माण करता है। यजमान इसे अध्वर्यु अथवा महिषी को प्रदान करता है, आप.श्रौ.सू. 16.4.3; कार्यसम्पादक ऋत्विक्, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.2।

कर्तृप्रत्ययम् क्रि.वि. (अ.) कार्यवाहक ऋत्विक् के निर्देशानुसार, मा.श्रौ.सू. 5.2.8.3।

कर्मकर पु. (कर्म करोति, कर्मन् + कृ + अप्) श्रमिक (दास के साथ-साथ उल्लिखित), वे अपने स्वामी के गृह से पलायन के लिए जिस मार्ग का उपयोग करते हैं, उस पर, एक कृत्य का अनुष्ठान किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 23.7।

कर्मन् न. (कृ + मन्) वह यज्ञिय कृत्य जो फलोत्पादन में समर्थ हो, 'फलयुक्तानि कर्माणि', का.श्रौ.सू. 1.2 (मनगढ़न्त धर्म का विलोम); विधि द्वारा निर्दिष्ट, हि.श्रौ.सू. 1.1.6।

कर्मादि (कर्मणः आदिः) किसी कार्य का प्रारम्भ, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.4।

कर्षण न. (कृष् + ल्युट्) एक या अधिक तानों के समावेश के द्वारा गायन में किसी अक्षर को (देर तक खींचना), सब में पाँच प्रकार, जिनमें द्वितीय तान मुख्य होता है, पुष्प.सू. 518, एग् बा 2 हिंष्, तुल. C.H.466।

कर्षू स्त्री. (दक्षिण-अग्नि के दक्षिण-पूर्ण में कृष्ट) हलरेखा या खाँचा, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.10; परिखा (खाई) अथवा गड्ढा, इनकी संख्या 2 अथवा 6 होती है, जिनमें पितरों के लिए चावल के गोले (पिण्ड) रखे जाते हैं, आश्व.गृ.सू. 11.5.6.7 (अन्वष्टका); ये (गड्ढे) लम्बाई में पूर्व-पश्चिम एक प्रादेश, चौड़ाई में 4 अंगुल होते है एवं एक दूसरे से चार अंगुल की दूरी पर स्थित होते हैं, काठ.गृ.सू. 15.3 खाई अथवा खाँचे (गड्ढे), तीन की संख्या में प्रस्तरों एवं बालू से घिरे हुए श्मशान भूमि के पश्च भाग के उत्तर की तरफ खोदे जाते हैं। खाइयों अथवा गड्ढों में लबालब पानी भर देते हैं, और मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों को इसमें स्नान करना पड़ता है, भा.पि.मे. 7.15.8।

कलश पु. = काष्ठ से निर्मित 'द्रोणकलश'-संज्ञक पात्र, आप.श्रौ.सू. 14.25.10 (भीमसेनो भीमः वा देवदत्तः दत्तः की तरह एकदेश-ग्रहणम्, तु. वार्ति. लोपः पूर्वपदस्य च पा.5.3.83 पर द्रष्टव्य), इसके प्रायश्चित्त के लिए ब्रह्मसाम का अन्तिम भाग, वैष्णवी अथवा शिपिविष्टवती ऋचाओं का गान करना होता है, ऋ.वे. 7.100.5-7; द्र. श्रौ.को. (सं.) II.652; 'वसतीवरी' जल से पूर्ण घट, का.श्रौ.सू. 8.9.18 (पत्न्या अग्रे आसादितं वसतीवरीकलशं पत्नी स्पृशेत्, स.वृ.); शां.श्रौ.सू. 7.15.8।

कलशवती स्त्री. (कलश + मतुप् + ङीप्) कलश की चर्चा अथवा सन्दर्भ से युक्त (ऋचा), ऋ.वे. 9.65.14; 'कलशेषु धावत', 9.17.4 एवं 9.67.15; परि प्र सोम ते रस।

कला (स्त्री.) सोलहवां भाग, का.श्रौ.सू. 7.8.6 ('कलया ते क्रीणानि इति', कला तु गोः षोडशो भागः, स.वृ.); स. 'कला जङ्घाया अधोभाग' आप.श्रौ.सू. 10.25.4; मा.श्रौ.सू. 2.1.4.9।

कलापिन् वि. (कलापः अस्यास्ति, कलाप + इनि) (वह व्यक्ति) जो तरकश (तूणीर) से सज्जित हो, का.श्रौ.सू. 22.3.17 (शरपूर्णा चर्ममयी भस्त्रा कलापः) श्येनयाग।

कलि पु. पाशे के पृष्ठ पर निर्मित चिह्नों की विशिष्ट संख्या, का.श्रौ.सू. 15.7.19 (राजसूय); द्रष्टव्य - कालेय।

कलिस्तोम पु. पुनरावृत्त ऋचाओं के विशिष्ट चक्र का नाम, निदा.सू. 1.9:7।

कल्प पु. (क्लृप् + घञ्) कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, भा.श्रौ.सू. 6.9.3 (दोहन-कल्प); कर्मकाण्डीय कृत्य, मा.श्रौ.सू. 4.4.23; कार्य करने की प्रविधि (तरीका) या नियम (ऋ.वे. 9.9.7); अर्थात् कर्मकाण्ड-सम्बन्धी ज्ञान। यह कहा जाता है कि केवल कर्मकाण्डपरक ज्ञान किसी विद्यार्थी को स्नातकत्व के योग्य नहीं बनाता है। उसे षडङ्गसहित वेद का अध्ययन एवं अधिगम करना चाहिए, पा.गृ.सू. 2.6.7 (समावर्तन); पशुयाग के नियम, आश्व.गृ.सू. 1.11.1; कृत्य भी (पशु) विष्णुमित्र ने वेदाङ्गविशेष के वाचक कल्प शब्द को इस प्रकार से परिभाषित किया है-कल्पो हि वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम् (ऋ.प्रा.वृत्ति, पृ. 24)।

कल्पयति (क्लृप् + णिच् + ल.प्र.पु.ए.व.) यज्ञिय यूप को स्थिर बनाता है (छिद्र या गड्ढे में), भा.श्रौ.सू. 7.8.10।

कल्माष वि. (स्त्री.) चित्तीदार, चिह्नयुक्त, कर्बुरवर्णा, चितकबरी, मा.श्रौ.सू. 1.5.1.33; का.श्रौ.सू. 16.2.25 (उत्तरस्य आहवनीयस्यारत्निमात्र उभयतस्तीक्ष्णा वैणवी सुषिरा कल्माष्यभावेऽकल्माषी प्रादेशमात्र्यरत्निमात्री वा); आप.श्रौ.सू. 20.22.13; बौ.श्रौ.सू. 2.15:20; ला.श्रौ.सू. 8.2.6।

कल्याण वि. सुन्दररूप वाला, शां.श्रौ.सू. 10.19.2 (4); (प्रजापति के सन्दर्भ से युक्त 'कल्याण-तनु' मन्त्र)।

कल्याणगौः स्त्री. (कल्याणी चेयं गौः) उत्कृष्ट गाय, भा.श्रौ.सू. 10.17.12।

कल्याणाभिव्याहार पु. (कल्याणयुक्तः अभिव्याहारः यस्य) अति शुभ नाम वाला, जिसका नाम अत्यन्त शुभ हो, शां.श्रौ.सू. 17.1.18।

कवच न. सुरक्षा-आवरण (गवामयन), का.श्रौ.सू. 13.13.13 (------ कवचं प्रयच्छति), आप.श्रौ.सू. 18.10.30।

कवचिन् वि. (कवचम् अस्यास्ति, कवच + इनि) (वह व्यक्ति) जिसने (अपने शरीर पर) सुरक्षाऽऽवरण पहन रखा है, शां.श्रौ.सू. 16.1.16; आप.श्रौ.सू. 20.5.10।

कवती स्त्री. (क = प्रजापति + मतुम् + ङीप्) प्रजापति को सम्बोधित एक ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.400।

कवष् वि. उत्सर्जन-ध्वनि, (द्वार की) चरचराहट, (अध्रिगु प्रैष में कवषोरू), शां.श्रौ.सू. 5.17.5; आश्व.श्रौ.सू. 3.3.1; मा.श्रौ.सू. 5.2.9.4 (विवृत्त जघन)।

कवातिर्यञ्च् वि. किञ्चित् (थोड़ा) मुड़कर खड़ा हुआ (अर्थात् अपने चेहरे को थोड़ा मोड़कर), आप.श्रौ.सू. 6.16.3; बौ.श्रौ.सू. 3.7.16; भा.श्रौ.सू. 6.1.7।

कव्य पु. वह अग्नि जिस पर पशु के अंग पकाये जाते हैं, शां.श्रौ.सू. 6.12.9; आप.श्रौ.सू. 11.15.1; ला.श्रौ.सू. 2.2.25।

कव्यवाहन वि. (कव्यं वहति, कव्य + वह् + ल्युट्) कव्यपुरीषपुरीष्येषु ल्युट्, पा. 3.2.65 वि. पितरों के लिए हविस् को ले जाने वाली (अग्नि), शां.श्रौ.सू. 3.16.10।

कव्यवाहनी स्त्री. (कव्यवाहन + ङीप्) 'कव्यवाहन' पद की अभिव्यञ्जना वाली ऋचा, अर्थात् 'यदग्ने कव्यवाहन', श्रौ.को. (अं.) I.911।

कशिपु पु. (न.) चटाई, आप.श्रौ.सू. 8.14.16; पिण्डपितृयज्ञ (रु. उपशयनीयं उपबर्हणम् उपधानम्); तोशक अथवा गद्दा, इसमें सोने की कढ़ाई की जाती है और इस पर पाठ (आख्यान) के समय होता बैठता है, 'होतृब्रह्मोद्गातारः कशिपुषु', का.श्रौ.सू. 20.2.21 (अश्व); दर्श में वेदि पर रखा गया एक प्रकार का उपधान (तकिया), आप.श्रौ.सू. 1.8.2; मसूरक अथवा फलक के रूप में इसकी व्याख्या की गयी है, 'होताध्वर्यू हिरण्मय्योः कशिपुनोरुपविष्टौ', का.श्रौ.सू. 15.6.4; भाष्य—शयनस्योपरि विस्तारिका; बौ.श्रौ.सू. 5.11.3।

कस्तम्ब पु. शकट के धुरे की थून (टेक), मा.श्रौ.सू. 1.3.4.28।

कस्तम्बदेश पु. जुए का क्षेत्र जहाँ शकट की थून लगायी जाती है, मा.श्रौ.सू. 1.3.4.28; वारा.श्रौ.सू. 1.3.6.22।

कस्तम्भी स्त्री. शकट के धुरे की थून, भा.श्रौ.सू. 3.7.4; (द्वि.) आप.श्रौ.सू. 3.8.4; भा.श्रौ.सू. 7.22.7; हि.श्रौ.सू. 2.5.3।

कांस्य न. काँसे का पात्र, जिसमें मधुपर्क उड़ेला जाता है, आप.गृ.सू. 13.10।

कांस्यस्थ (? स्था) ल न. काँसे से निर्मित पात्र (बटलोई)।, मा.श्रौ.सू. 4.6.3

काकिणी स्त्री. एक माप का नाम (वजन), श्रौ.को. (अं.) I.ii.564; आप.श्रौ.सू. 19.21.2; हि.श्रौ.सू. 22.4.2 = 20 कसुर्दिका 1/4 पण।

काकुभ न. (शाब्दि.—ककुभछन्दस्का ऋचाओं से युक्त) एक साम का नाम, जिनका गायन वत्स को गाय के पास (प्रवर्ग्य के लिए दोह के पूर्व) जाने के लिए मुक्त कर दिये जाने के पश्चात् प्रस्तोता द्वारा किया जाता है, जै.श्रौ.सू. 1.23।

काक्षीवत न. (कक्षीवता दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.16, सा.वे. 1.139 पर आधृत।

काच पु. शीशा, शीशक-मुक्ता, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.15 (चयन)।

काजव न. यज्ञिय यूप में अपगुण के कारण होले वाली हानि के शमन के समय 'त्रातारमिन्द्र' इस मन्त्र के साथ अर्पित की जाने वाली (घृत की) आहुति का नाम, मा.श्रौ.सू. 8.13.4 (यजमान के सन्दर्भ में)।

काञ्चन न. ग्रहों की पूजा में बुध-ग्रह के लिए अर्पित किया जाने वाला (स्वर्ण); अग्निवे.गृ.सू. 2.5.1:45।

काण वि. काना, कनखी दृष्टि वाला (घोड़ा), बौ.श्रौ.सू. 15.8 : 14; ला.श्रौ.सू. 8.5.16; का.श्रौ.सू. 22.3.19 (काणखोर-कूट-वण्डा-हुतमिश्रा नवनव दक्षिणा ददाति लिड्गानाम्)।

काण्टकी वि. (कण्टक + अण् + ङीप्) काँटेदार (समिधा), भा.श्रौ.सू. 11.1.1 (प्रवर्ग्य); आप.श्रौ.सू. 15.1.2।

काण्ड पु. (न.) वनस्पति की ग्रन्थि अथवा सन्धि के मध्य का भाग, का.श्रौ.सू. 17.4.18; ला.श्रौ.सू. 8.9.9।

काण्डवीणा स्त्री. (काण्डयुक्ता वीणा) बहुत से कृत्रिम प्रभागों से युक्त वीणा, का.श्रौ.सू. 13.3.17 (गोधावीणाकाः काण्डवीणाश्च पत्न्यो वादयन्ति), शरकण्डों की सन्धियों से निबद्ध एक प्रकार की वीणा, शां.श्रौ.सू. 17.3.12, 14; (शरकण्डे की वीणा), ला.श्रौ.सू. 4.2.5. द्रा.श्रौ.सू. 11.2.6; मो.वि।

काण्डानुसमय पु. यज्ञीय अनुष्ठान की एक विधि जिसमें आवाहन से नमस्कार तक एक देवता अथवा प्रधान देवता के लिए उपचार प्रवृत्त करते हैं और तब वही उपचार अन्य देवता या देवताओं के लिए एक के बाद एक करके प्रवृत्त करते हैं, नारायण आश्व.गृ.सू. 1.24.7 पर एवं का.श्रौ.सू. 1.5.9-11 पर भाष्य; हि.आ.ध.II.ii.740।

काण्डवती स्त्री. (काण्ड + मतुप् + ङीप्) टहनियों एवं सन्धियों से युक्त (वनस्पति); मा.श्रौ.सू. 8.2.5 (दर्भालाभे स्तरणार्थम्)।

काण्व न. (कण्वेन पृष्टं साम, कण्व + अण्) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.2.5 सा.वे. 1.157 पर आधृत, सा.वे. 1.261 भी देखें।

काण्वी (कण्व + अण् + ङीप्) एक ऋचा का नाम ऋ.वे. 1.36.7. दोपहर के बाद की प्रवर्ग्य आहुति दे दिये जाने के पश्चात् ब्रह्मा द्वारा इस ऋचा का जप किया जाता है, अर्थात् इसके (मध्याह्नोत्तर प्रवर्ग्य में) वषट्कार के बाद, आश्व.

श्रौ.सू. 4.7.1-4, श्रौ.को. (अं) 2.221 (ऋषि कण्व की, कण्वेन दृष्टा)।

कानिष्ठनेय पु. (कनिष्ठा + ढक्, इनङादेश, कल्याण्यादीनामिनङ्, पा. 4.1.126) सबसे छोटी (युवतम्) पत्नी से उत्पन्न पुत्र, जिसके लिए गाय के पिछले दो थन व्रतार्थ दुहे जाते हैं, भा.श्रौ.सू. 6.9.1।

कामन न. यज्ञ के अनुष्ठान करने की इच्छा का नियमन, और किसी भी यजमान की अनिवार्यताओं में एक, आप.श्रौ.सू. 4.1.12।

कामसंयोग (कामेन संयोगः) पु. किसी विशिष्ट कामना से जुड़ाव, का.श्रौ.सू. 4.15.26 (अग्निहोत्र)।

काम्य वि. (कम् + ण्यत्) 'वाच्छनीय'; इष्ट, वह कृत्य जिसका अनुष्ठान किसी कामना विशेष अथवा फलविशेष को उद्दिष्ट कर किया जाता है; यह श्रौत 'काम्येष्टि' का विकल्प है, आश्व.गृ.सू. 3.6.1; स्त्री इसका अनुष्ठान कर सकती है, आप.गृ.सू. 8.4; काम्यानि स्वर्गादीष्टसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि, वेदान्तसार 4।

काम्या स्त्री. (इष्टि) कामना विशेष की पूर्ति एवं फलप्राप्ति के लिए कृत्य (नित्य अथवा अनिवार्य से भिन्न रूप में प्रतिपादित)। कामना विशेष का परिणाम। इसका अनुष्ठान इष्ट वस्तु की प्राप्ति को लक्ष्य कर किया जाता है, उदाहरणार्थ—'आयुष्कामेष्टि' (दीर्घायुष्य की सम्प्राप्ति के लिए), 'पुत्रकामेष्टि' (पुत्ररत्न की प्राप्ति के लिए) कारीरीष्टि (वृष्टि के लिए), इत्यादि आश्व.श्रौ.सू. 2.10, आदि; आप.श्रौ.सू. 19.18-27. इनका अनुष्ठान अमावस्या अथवा पूर्णिमा के दिन किया जाता है, 18.1; और इष्टि दर्शपूर्णमास की विविधतायें हैं, जिसका ये अनुगमन करती हैं।

काम्येष्टि स्त्री. (काम्या चेयम् इष्टिः) किसी विशेष फल की आकांक्षा से यज्ञ, गोंड, प्रातर्—, 39; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 110-512-559।

कायप्रासन न. (कायस्य प्रासनम्, प्रासन = प्र + असु + क्षेपे + ल्युट्) शिरोविहीन धड़ को (जल में) फेंकने का कृत्य, 'चतुर्णामप्सु कायप्रासनम्' का.श्रौ.सू. 16.1.7 (चयन)।

कारोतर पु. बाँस की चलनी, जो बैल के चर्म के ऊपर रखी जाती है और जिस पर (सुरा) उड़ेली जाती है और शोधी जाती है, आप.श्रौ.सू. 19.6.1; 'श्वभ्रं खात्वा चर्मावधाय परिस्तृतमासिच्य कारोत्तरमवदधाति कारोत्तराद्वा चर्मणि मन्त्रलिङ्गात्' का.श्रौ.सू. 19.2.7 (सौत्रामणी); ऋ.वे. 1.116.7; सुरा के शोधन के लिए छानने का पात्र या वस्त्र, श्रौ.को. (अं.) I.ii.903।

कार्णश्रवस न. छठवें दिन के आर्भव पवमान में गाया जाने वाला सा.वे. 1.569 पर आधृत साम; पञ्च.ब्रा. 13.11.13।

कार्तयश न. द्वादशाह के सातवें दिन आर्भव पवमान में गाये जाने वाले साम का नाम; पञ्च.ब्रा. 14.5.21; सा.वे. 1.545 पर आधृत।

कार्त्तिकी स्त्री. (कृत्तिका + अण् + ङीप्) कार्तिक मास की पूर्णिमा, 'कार्त्तिक्यां साकमेधा द्वयहम्', का.श्रौ.सू. 5.6.1 (साकमेध)।

कार्ष्णाजिन वि. (कृष्णाजिनस्य विकारः, कृष्णाजिन + अण्) कृष्णमृग के चर्म से निर्मित, भा.श्रौ.सू. 11.5.16 (धावित्राणि = पंखे)।

कार्ष्णी (कृष्ण + अण् + ङीप्) कृष्णमृग के चर्म से निर्मित, आप.श्रौ.सू. 17.13.2।

काष्मर्य पु. एक प्रकार की लकड़ी, मा.श्रौ.सू. 1.8.3.26. (पशुयाग में शीर्षावरण अथवा झिल्ली को भूनने के लिए प्रयुक्त दो शलाके = सीखचे कार्ष्मर्य काष्ठ से ही निर्मित होते हैं); सोमयाग में आतिथ्या इष्टि की परिधियाँ भी कार्ष्मरी-शाखा से निर्मित होती हैं, का.श्रौ.सू. 8.1.10 (कार्ष्मर्यमयाः परिधयः-----)। इस सूत्र की सरलावृत्ति में इसके पर्याय के रूप में श्रीपर्णी का उल्लेख है।

कार्ष्मर्यमयी वि. (कार्ष्मर्य + मयट् + ङीप्) कार्ष्मर्य काष्ठ से निर्मित (दो उपसर्जनियां), का.श्रौ.सू. 6.5.7 (कार्ष्मर्यमयीभ्यां श्रीपर्णीवृक्षनिर्मिताभ्याम्, स.वृ.). स्त्री. कार्ष्मरी काष्ठ-निर्मित पात्र, आप.श्रौ.सू. 16.22.5 (चयन); द्रष्टव्य-औदुम्बरी (केलण्ड : उदम्बरकाष्ठ से निर्मित पात्र)।

काल न. = स्थानम्, अवस्थिति, बौ.श्रौ.पू. 6.22; स उत्करस्य कालः अथोपरवाणां कालात्स्तम्बयजुर्हरति।

कालप्रवृत्ति स्त्री. (कालस्य प्रवृत्तिः, प्रवृत्ति = प्र + वृत् + क्तिन्) नियतसमय का पहुँचना, मा.श्रौ.सू. 3.1.34।

कालसमापादनीय वि. (काले समापादनीयम्, सम् + आ + पद् + णिच् + अनीयर्) प्रासङ्गिक रूप से दिये जाने के लिए अपेक्षित (आहुति), भा.श्रौ.सू. 9.9.11 (प्रायश्चित्त)।

कालातिक्रम पु. (कालस्य अतिक्रमः) (कृत्य के) नियत समय का बीतना अथवा समाप्त होना, का.श्रौ.सू. 7.1.22 (कालातिक्रमे नियतक्रिया, प्राप्तकालत्वात्)।

कालायस न. लोहा, बौ.श्रौ.सू. 15.15:7; आप.श्रौ.सू. 19.5.7।

कालाल वि. काला (वध्य, आलभ्य), मा.श्रौ.सू. 1.8.2:30।

कालेय न. चतुर्थ पृष्ठ स्तोत्र में अनुप्रयुक्त साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.3.1 सा.वे. 1.408 पर आधृत; द्रष्टव्य श्रौ.को. (सं.) II.411।

काव न. सम्राट्-आसन्दी पर घर्म के रखे जाते समय प्रस्तोता द्वारा तीन बार गाये जाने वाले साम का नाम, जै.श्रौ.सू. 1.23 (प्रवर्ग्य); पञ्च.ब्रा. 8.5.14 (आर्भवपवमान के अन्तर्गत गाया जाने वाला, यह सा.वे. 1.554 पर आधृत है); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.424; ला.श्रौ.सू. 7.3.11।

काव्यवाहनी वि. (कव्यवाहन + अण् + ङीप्) 'कव्यवाहन' शब्द से युक्त, आप.श्रौ.सू. 19.3.11।

काशमय वि. (काश + मयट्) काश (नामक घासविशेष) से निर्मित, ला.श्रौ.सू. 5.6.9; द्रा.श्रौ.सू. 14.2.6।

काशीत न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.2.1; 7.10.6।

काष्ठ न. (वाजपेय में किसी बाण के सत्रह प्रक्षेप पर ले जाया गया) उदम्बर की लकड़ी का एक टुकड़ा या खूँटी, मा.श्रौ.सू. 7.1.2.38; काष्ठ का एक टुकड़ा, का.श्रौ.सू. 15.4.31।

काष्ठकलाप (काष्ठस्य कलापः) विद्यार्थी द्वारा अपने विद्यार्थित्व के समय प्रतिदिन अग्नि हेतु इकट्ठा किया गया लकड़ी का ढेर, हि.गृ.सू. i.8.2।

काष्ठा स्त्री. (उदुम्बर की) लकड़ी की खूंटी (धावन के लिए सीमा को चिह्नित करने के लिए आनीत), आप.श्रौ.सू. 18.3.35 (वाजपेय)।

कासाम्बव पु. कासाम्बव - संज्ञक द्रव्य (से युक्त घी) (महिषी घोड़े को इसका लेप लगाती है), मा.श्रौ.सू. 9.2.3.23।

कासाम्यव = कासाम्बव, आप.श्रौ.सू. 20.12.15 (अश्वमेध)।

किंशारु न. मक्का की जटा या = रोयें, आप.श्रौ.सू. 1.5.4; ऐ.ब्रा. 2.9; बौ.श्रौ.सू. 1.5:4; 6.33:7; 'किंशारूणि निरस्यतः', बा.श्रौ.सू. 6.23 (महावेदिकरण); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.537।

किंशिल वि. (कुत्सिताः शिलाः यस्मिन्) (वह भूभाग) जिसमें छोटे-छोटे पत्थर अथवा बजरी के कण हों, बौ.श्रौ. 10.44 : 11।

किंशुकहोम पु. (किंशुकस्य होमः) किंशुक का होम, हि.गृ.सू. 2.16.11।

किकिदीवि पु. नील-कण्ठ, ऋ.वे. 10.97.13; आप.श्रौ.सू. 20.22.13 (अश्वमेध); बौ.श्रौ.सू. 15.37:8 (मो.वि. तित्तिर); तै.सं. 5.6.22.1।

किक्किटाकारम् क्रि.वि. किक्किट की आवाज करते हुए, 'किक्किटाते मनः प्रजापतये स्वाहा किक्किटाते प्राणं वायवे स्वाहा-----चक्षुः सूर्याय स्वाहा-----श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा-----वाचं सरस्वत्यै स्वाहा', बौ.श्रौ.सू. 14.15:6; मो.विः किक्किट = एक विशिष्ट उद्गार।

कितव पु. जुआरी, आ.गृ.सू. 2.7.11; तुल. ऋ.वे. 10.34.3 (नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्)।

कीकस पु. पसलियों की इससे जुड़ी हुई उरोऽस्थि एवं उपास्थि, आश्व.श्रौ.सू. 12.9.11; 12

कीनाश पु. भूमि को जोतने वाला, (कीनाशा बलीवर्दान् अजन्ति) आप.श्रौ.सू. 16.19.3 (चयन); भा.श्रौ.सू. 6.18.7; मा.श्रौ.सू. 1.6.4.24.

कीलाल न. मीठा पेय, शां.श्रौ.सू. 4.5.3; (कीलालम्=अन्नरसम्, उव.वा.सं. 2.34)।

कुक्कुट पु. मुर्गा, का.श्रौ.सू. 2.4.15 (इसके आवाज की तुलना पेषण-प्रस्तर के आघात से की गई है) द्रष्टव्य- 'कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व' वा.सं. 1.16.

कुटरु पु. पत्थर के रूप में मुर्गा, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.17(इष्टि); एक पत्थर का नाम श्रौ.को. (अं)1.281.

कुटि स्त्री. झोपड़ी, आप.गृ.सू. 19.14 (शूलगव); जहाँ देवताओं का आह्वान किया जाता है, 20.1.3.

कुटिस्कन्ध (कुटिः स्कन्धः यस्य) वक्र धड़े या तने से युक्त (वृक्ष); मा.श्रौ.सू. 8.12.2 (यज्ञीय यूप के निर्माण के लिए अनुपयुक्त)।

कुडव पु. (न.) अनाज, लकड़ी अथवा लोहे की माप का नाम, प्रस्थ का चतुर्थ भाग=32पल, वैखा.श्रौ.सू. 1.7-10.

कुणपतन्त्र (कुणपस्य तन्त्रम्) [कौणपतान्त्रि] एक तकनीक का नाम, बौ.श्रौ.सू. 20.13:26, उपांशु याग के बारे में, आज्य तन्त्र एवं औषधतन्त्र से इसकी तुलना की गई है।

कुण्ड न. कटोरे की आकृति वाला पात्र, बौ.श्रौ.सू. 17.21:2; 3 (कुण्डपायिनाम् अयनम्)।

कुण्डपायिनामयन न. एक यज्ञीय सत्र का नाम (सत्र याग), आश्व.श्रौ.सू. 12.4.1; का.श्रौ.सू. 24.4.21 (कुण्डयायिनामयनम् पौर्णमासीदीक्षम्)।

कुण्डुपायिनां सत्र न. एक यज्ञीय सत्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 23.104.

कुण्डप्रतिरूप वि. (कुण्डस्य इव प्रतिरूपं यस्य) (वह पानपात्र=चमस) जो कुण्ड के समान रूप वाला हो का.श्रौ.सू. 24.4.40 (अत्सरुका: कुण्डप्रतिरूपाश्चमसा:); ला.श्रौ.सू. 10.12.13.

कुण्डल न. (द्वि.व) उपनयन के समय विद्यार्थी को दिये गये कर्णाभरण अथवा बालियां, वह कर्णाभरणों को आग के ऊपर पकड़े रहता है, अग्नि में उन पर आज्याहुतियाँ उड़ेलता है, धोता है एवं उनको पहन लेता है, हि.गृ.सू. 10.6-7; 11.1; वैखा.श्रौ.सू. 11.5.7; (द्वि.व.) ला.श्रौ.सू. 4.12.8; द्रा.श्रौ.सू. 12.4.13.

कुदिष्टि स्त्री. चिति की एक माप (पितृमेध), श्रौ.को.(अं) 1.1107.

कुन्ताप न. एक सूक्त का नाम, शां.श्रौ.सू. 12.6.13; 12.14 के सन्दर्भ में 'इदं जना उप श्रुत' आदि; अ.वे. 20.127-128.

कुप पु. धरन, का.श्रौ.सू. 5.10.18 (त्रैयम्बकेष्टि)

कुपिन न. लकड़ी की छीलन अथवा छोटे-छोटे टुकड़े, मा.श्रौ.सू. 6.1.2.17 (उखा को सेंकना)।

कुमु स्त्री. घरेलू तन्दूर (इस पर किसी फाख्ते का पदचिह्न अपशकुन माना जाता है), आप.गृ.सू. 23.9 (भाष्य-चुल्ली, भ्राष्ट्र)।

कुम्ब पु. (न.) युग-शलाका=जुए की शलाका की शम्या (फन्नी, फच्चर) का सघन छोर=अग्रभाग, भा.श्रौ.सू. 7.3.1; शम्या के रूप में प्रयुक्त लट्ठे का (पात्र के आकार का चौड़ा छोर, हि.गृ.सू. 1.2.2-3; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II. 511

कुम्बकुरीर न. कुम्ब = केश-आभूषण एवं कुरीर (केश के लिए जाल), भा.श्रौ.सू. 10.6.5 (जालं कुरीरम् इत्याचक्षते कृष्णानां जीवोर्णानां भवति इति विज्ञायते) किसी जीवित पशु का ऊन; पु. (न.) एक प्रकार के शिर के आभूषण का नाम (ऋ.वे. 10.85.8; अ.वे. 6.138.3)। इसको यजमान एवं उसकी पत्नी दीक्षा के समय धारण करते हैं; आप.श्रौ.सू.10.9.5; बौ.श्रौ.सू. 6.5 (सोम) स्पष्टतया, बाँस के बारीक टुकड़ों एवं काले ऊन के जाल को एक साथ पिरोने से निर्मित कण्ठाभरण; इसकी व्याख्या जाल (जालम्) के रूप में की गयी है। किन्तु यह दो स्वतन्त्र शब्दों के रूप में आता है: कुम्बं च कुरीरं च, बौ.श्रौ.सू. 6.1:6.

कुम्बा स्त्री. जुएं (झग) की शलाका का घना छोर=अग्रभाग, भा.श्रौ.सू. 7.3.1; (फच्चरका) गोलाकार उपरी भाग, आप.श्रौ.सू. 1.21.3 (धू. कुम्बं तुण्डं यत्र) तुण्डम्=अग्रभाग सं. चिन्नस्वामी।

कुम्भ पु. एक मिट्टी का घड़ा, जिसमें वसतीवरी-संज्ञक जल का संग्रह किया जाता है। यह उत्तरवेदि के दक्षिणी एवं उत्तरी नितम्बों पर रख दिया जाता है, भा.श्रौ.सू. 12.20.6; 21.3.3-4; शव की भस्मीकृत हड्डियाँ इसमें रखी जाती हैं, भा.पि.मे.1.9.6.

कुम्भी स्त्री. आमिक्षा को रखने के लिए एक बड़ा मृत्कलश (मिट्टी का घड़ा), आप.श्रौ.सू. 1.33.6; पशु का मांस पकाने के लिए (पशु), 7.8.3. सान्नाय्य के लिए दो कुम्भियाँ होती हैं : एक उबाले हुए दूध को रखने के लिए एवं दूसरा, जमाये हुए दूध को रखने के लिए, 1.6.13. चयन में कुंभ एवं कुम्भी में अन्तर बतलाया गया है, 16.32.5; पहला सम्भवत: पुरुष कलश (कुम्भ) है (बिना किसी चिह्न के?) और दूसरी स्त्री के स्तन के समान उभार से युक्त स्त्री है।

कुम्भीपाक्य वि. (कुम्भ्यां पाक्यं, पच्+ण्यत्) हाण्डी में पकाये जाने वाले (वरुणप्रघास में मेष एवं मेषी), भा.श्रौ.सू. 8.7.8; आप.श्रौ.सू. 8.6.6.

कुम्भेष्टका स्त्री. (कुम्भ इव इष्टका) अग्नि वेदि की नींव में रखी जाने वाली ईंट, जिसका रूप कुम्भ के समान होता है, आप.श्रौ.सू. 16.33.1; भा.श्रौ.सू. 6.1.6.18; द्रष्टव्य श्रौ.को (सं.) II. 680.

कुरीर न. ऊन के धागों से निर्मित जाल, (यजमान पत्नी इसे शिर के आभूषण के रूप में पहनती है), का.श्रौ.सू. 6.1:6; भा.श्रौ.सू. 10.6.6

कुरुपञ्चाल पु. (बहु.) (कुरवश्च पञ्चालाश्च) कुरु एवं पाञ्चाल के लोग, जै.ब्रा. I.118.

कुरुवाजपेय पु. (कुरुणां वाजपेयः) कुरु राजाओं के शासन के अन्तर्गत समसामयिक एवं प्रचलित रूप में वाजपेय याग, आप.श्रौ.सू. 18.3.7 (प्रत्येक भेद 17 शुल्क से युक्त); शां.श्रौ.सू. 15.3.17; ला.श्रौ.सू. 8.11.18; प्राथमिक (मूल) अथवा छोटे प्रकार के वाजपेय याग।

कुरुविन्द न. वन में उगे हुए अनाजों का एक प्रकार (कुल मिलाकर ये सात प्रकार के हैं : अन्य छः हैं 'श्यामाक' नीवार, जरतिल, गावेधुक, गार्मुत एवं वेणुयव), बौ.श्रौ.सू. 2.4.5.

कुलाय पु. एक प्रकार के स्तोम का नाम 'कुलाय=घोसला-स्तोम', भा.श्रौ.सू. 9.3.5.24; घर, निवासस्थान, शां.श्रौ.सू. 12.17.2; 12.18.13.

कुलायिनी स्त्री. 1 (कुलाय+इनि+ङीप्) जाल (कुलाय) के रूप में बहिष्पवमान के नौ-ऋचाओं वाले त्रिवृत्-स्तोत्र के गायन के तरीकों (विष्टुतियों) में तृतीय। त्रिक् की ऋचाएं इस प्रकार से व्यवस्थित की जाती हैं:-

अ ब स (प्रथम आवृत्ति), ब स अ (द्वि.आ.); स अ ब (अन्तिम आवृत्ति); तुल. इग्लिंग;, श.ब्रा.अं. XXVI.310; 'उद्यती', 'परिवर्तिनी' भी देखें; श्रौत-ध.चि, पृ. 121 (स ब अ, ब स अ, अ स ब); 2. यदि सोम-याग को अग्निवेदि के चयन के द्वारा विशिष्ट बनाना है तो महावीर पात्र के निर्माण के समय तैयार की जाने वाली घोसले सदृश ईंट का नाम, आप.श्रौ.सू. 15.1.1-3.16; भा.श्रौ.सू. 11.3.8.

कुल्पिः पु. गाय का बाल, आप.श्रौ.सू. 1.3.17.

कु(गु)ल्फदघ्नम् क्रि.वि. (गुल्फ+दघ्नञ्) टखने की ऊँचाई तक, मा.श्रौ.सू. 1.5.4.12 (अग्नि के आहरण के लिए छड़ियों को पकड़ना)

कुल्ममात्र न. (कुल्मः प्रमाणम् अस्य, कुल्म+मात्रच्) सघनता में गाय की पूंछ के बराबर, भा.श्रौ.सू.1.3.15 (प्रस्तर); गाय के बाल के आकार वाला, आप.श्रौ.सू.1.3.7 (प्रस्तरः)।

कुल्मुद न. (अग्न्याधन में) अग्नि-मन्थन के समय जैसे ही धूम निकलना प्रारम्भ होता है, उसी समय उद्गाता द्वारा गाये जाने वाले एक साम का नाम; शब्द हैं 'त्वेषस्ते धूम ऋण्वति.....', श्रौ.को. 1.51; जै.श्रौ.सू. 22.6 (कौल्मुद)।

कुवल न. एक प्रकार का अनाज (जिसका आटा सौत्रामणी याग के लिए तैयार की जाने वाली सुरा में डाला जाता है, का.श्रौ.सू. 15.9.22-10.24. (कुवल-कर्कन्ध-बदर-पूर्णानि चावपति)।

कुश पु. पवित्र घास, साधारणतया दर्भ के रूप में ज्ञात, अग्नि के समीप तीन अथवा पाँच तहों में बिछाने के लिए प्रयुक्त, शां.गृ.सू. 1.8.1-2; दो पत्रों से अग्नि के चारों ओर तीन बार जल छिड़कने के लिए प्रयुक्त, वही. 17. पवित्र के रूप में प्रयुक्त एवं पात्र के उपर धृत, जिसमें (पात्र में) प्रोक्षणी जल को तैयार करने के लिए जल निथारा जाता है, आप.गृ.सू.20; द्रष्टष्य-श्रौ.को. (सं.) II .75.

कुशतरुण न. ताजा कुश-पत्र, 'हूयमानेषु कुशतरुणेन जुहोत्यहं त्वदसीत्यहं त्वदस्मि', का.श्रौ.सू. 10.9.31 (अग्नि में डालता है); (वैश्य या राजन्य के सोम के अन्त में कुश के साथ वट के फल के उत्पादों की आहुति यजमान देता है); अग्निमन्थन में पहले ही रखे हुए लकड़ी के टुकड़े पर दो कुशपत्र रख दिये जाते हैं। का.श्रौ.सू. 5.1.23 के अनुसार कुशतरुणों के उपर अधरारणि (उत्तराग्र) रख दी जाती है, द्रष्टव्य-श्रौ.को.(सं) II.514.

कुशदेश पु. (कुशस्य देशः) वेदि का वह क्षेत्र, जिस पर कुश फैलाया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 2.4.14 (अग्निहोत्र)

कुशपवित्र (कुशा एव पवित्रम्, कुशस्य पवित्रम्) कुश से निर्मित पवित्र (पवित्र अथवा शोधन करने वाला), का.श्रौ.सू. 7.3.3; (अध्वर्यु, कुश पवित्रों से यजमान को, उसके दीक्षा संस्कार के समय जल-प्रोक्षण के द्वारा पवित्र करता है। इन कुश पवित्रों की संख्या एक, तीन अथवा सात होती है (राजसूय में 101)।

कुशपिञ्जूल पु. (कुशानां पिञ्जूलः) कुशों का गुच्छा (भाष्य दर्भतरुणानि); वह जल जिसमें कुशपिञ्जूल निक्षिप्त किये जाते हैं, ऋत्विजों के उपताप के विरुद्ध (सत्र में) उपचार है।

कुशपृष्ठ वि. (कुश इव पृष्ठं यस्य) जिसका पिछला भाग कुश के सदृश हो (स्तोत्र-ऋचाओं एवं विष्टुतियों की गणना के लिए प्रयुक्त कुश-शलाका का वर्णन), द्रा.श्रौ.सू. 5.2.3; ला.श्रौ.सू. 2.6.1; निदा.सू. 1.11.6.

कुशप्रसू वि. कुश के पुष्पों से युक्त, 'कुशप्रस्वः प्रस्तरःउपसन्नद्ध', का.श्रौ.सू. 5.1.20 (वैश्वदेवपर्व-प्रस्तर)।

कुशभित्त न. केश प्राप्त करने के लिए कुश की परत, शां.गृ.सू. 1.28.7 (चूडाकरण)।

कुशमुष्टि स्त्री. (कुशस्य मुष्टिः) मुट्ठी भर कुश (घासविशेष), का.श्रौ.सू. 1.3.2.3 (इससे वेद का निर्माण होता है)

कुशमूल न. (कुशस्य मूलम्) कुश का जड़ की ओर भाग, अग्निहोत्र में इससे (कुशमूल से) स्रुक् (नामक कलछी) को माँजते हैं (सम्मार्जन करते हैं), आश्व.श्रौ.सू. 2.3.20.

कुशस्तम्ब पु. कई शाखाओं से युक्त कुश का तना, 'कुशस्तम्बमुपदधाति', का.श्रौ.सू. 17.3.1 (एकमूलोऽनेक-शाखः स्तम्ब इत्युच्यते, चयन) (मो. वि. कुश का गुच्छा)।

कुशहस्त पु. कुश का गुच्छा (द्वार्बाहौ कुशहस्तमुपनिगृह्य दर्भणं प्रवयति दर्भणे स्पन्द्याम्), बौ.श्रौ.सू. 6.25; तुल. बर्हिर्हस्त, 6.26; 6.27; मुट्ठीभर कुश।

कुशा स्त्री. (न.) छोटी छड़ियां जिनकी संख्या 21 है, प्रत्येक की लम्बाई एक बित्ता होती है और ये उदुम्बर वृक्ष से काटी जाती हैं, इनका प्रयोग प्रस्तोता द्वारा अनेक पर्यायों को बनाने में किया जाता है। गायनकर्ताओं के मध्य में फैलाये गये वस्त्र के एक टुकड़े के ऊपर स्थापना के द्वारा ऋचाओं की संख्या एवं एक स्तोम का क्रम। 'पञ्चदशस्तोम' (माध्यन्दिनपवमानस्तोत्र) की प्रथम विष्टुति में कुशायें रखी जाती हैं, इस प्रकार : प्रथम विष्टुति, द्वितीय, तृतीय

कुशा

कुशाविष्टुति स्त्री. (कुशया विष्टुतिः) कुश शलाकाओं के स्थापन के द्वारा ऋचाओं की पुनरावृत्ति की प्रविधि, चित्र 92; और अधिक प्रकारों के लिए द्रष्टव्य 93-95; तुल. पञ्च. ब्रा. II.4, CH 1.9.5; इग्लिंग, श.ब्रा.इ. XXVI 309.

कुशिक न. (अग्न्याधान में) अग्नि-मन्थन के समय ज्यों हि अग्नि उत्पन्न की जाती है, (उस समय) उद्गाता द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (अं.)1.51.

कुशोर्णा स्त्री. (कुशकल्पिता उर्णा) कुश के रूप में ऊन, 'कुशोर्णा वाऽभावे, का.श्रौ.सू. 5.3.8 (वरुण-प्रघास); आप.श्रौ.सू. 8.6.12.

कुष्ठा स्त्री. गण के अंश का नाम जिससे सोमलता का क्रयण होता है, श्रौ.को. (सं) II.53 (सोम)

कुष्ठसंमित वि. (कुष्ठेन सम्मितम्) कोण अथवा किनारों के बराबर माप वाला, भा.श्रौ.सू. 8.13.9 (यज्ञीय यूप के लिए, इसे उठाते समय बनाया जाने वाला गर्त)।

कुष्ठा स्त्री. कोण, भा.श्रौ.सू.1.2.3.7 (कपालोपधान); आप.श्रौ.सू. 10.25.6 (दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, उत्तरपश्चिम, उत्तरपूर्व इसी प्रकार आगे)।

कुष्ठिका स्त्री. छद्म पंजा अथवा चंगुल, आप.श्रौ.सू. 19.9.5 (सौत्रामणी); तुल. कैलण्ड का अनु; श्रौ.प.नि. 163.192.

कुसय न. तेल उपजाने वाला एक प्रकार का बीज, आप.श्रौ.सू. 17.11.3 (चयन में शतरुद्रिय होम में इसकी आहुति दी जाती है)।

कुसयसर्पिस् (पु.) (कुसयस्य सर्पिः) कुसय के बीज का तेल, आप.श्रौ.सू. 17.11.3 (चयन में शतरुद्रिय होम में इसकी आहुति दी जाती है)।

कुसीद पु. उस ऋचा का नाम 'यद् कुसीदमप्रतीतम्----' (तै.सं. 3.3.8.1) जिससे (पशु यज्ञ में अवभृथ, एवं समिधाओं के आहवनीय में हवन के पश्चात्) दर्भपत्रों को जलाने से उत्पन्न अग्नि में भूने हुये जौ के सत्तू की एक आहुति दी जाती है, श्रौ.को. (अं.) 1.908; आप.श्रौ.सू. 13.24.15; बौ.श्रौ.सू. 4.11.8 (पशु); मा.श्रौ.सू. 2.5.5.18 (यज्ञ के अवसान पर वेदि को जलाता है)।

कुसीदिन् पु. (कुसीदः अस्यास्ति, कुसीदेन जीवति) सूदखोर, ऋण प्रदान करने वाला, शां.श्रौ.सू. 16.2.20 (अश्वमेध का परिप्लवाख्यान : धन्विन् का पुत्र असितः- उसके लोग असुर हैं : वह ऋणप्रदाता को इङ्गित करता है) आ.श्रौ.सू. 10.7.7; तुल. श.ब्रा. 13.4.3.11.

कुसुरुबिन्दुत्रिरात्र पु. (कुसुरुबिन्दुना अनुष्ठितः अतिरात्रः) कुसुरुबिन्दु द्वारा अनुष्ठित एक तीन दिन का सोम याग, शां.श्रौ.सू. 16.22.14 (इसमें ज्योतिः, गो एवं आयुष् समाहित हैं)।

कुहू स्त्री. अमावस्या से सम्बद्ध एक अप्रधान स्त्री देवता का नाम जिसे (अनूबन्ध्या के) पशु पुरोडाश के साथ-साथ 'देविका' नाम की हविष् अर्पित की जाती है। अन्य देवता हैं- अनुमति, राका, सिनीवाली एवं धातृ; द्रष्टव्य बरो टी स्वरूप अभिनन्दन ग्रन्थ 1954, पृ.1-13.

कूट न. एक प्रकार का हथियार(आखेटक=शिकारी द्वारा प्रयुक्त), आप.श्रौ.सू. 9.14.14 (उपहार)

कूती स्त्री. एव पौधे का नाम, जिसकी पत्ती पर आग्रयणेष्टि के समय 'द्यावापृथिवी' के लिए पुरोडाश रखा जाता है , मा.श्रौ.सू. 1.6.4.14; श्रौ.को.(अं.) 1.511.

कूप्य वि. (कूपे भवम्) कूप का (जल), 'सरस्या: कूप्या: प्रुष्वा: मधु गोरुल्ब्या पयोघृतम्, 15.4.35; (राजसूय में राज्याभिषेक के लिए प्रयुक्त); मा.श्रौ.सू. 6.15.22.

कूबर पु. वाहन का स्तम्भ अथवा वह काष्ठीय ढांचा, जिसमें जूए को जोड़ते हैं (बिठाते हैं), बौ.श्रौ.सू.12.12.9

कूबरी स्त्री. (हविराधान=हविर्धान शकट) का स्तम्भ, विष्कम्भिका, का.श्रौ.सू. (---हविर्धानस्यापरकूबरी-मालभ्य---) 12.4.10; गो.गृ.सू. 3.4.3;

कूर्च पु. (न.) घास का गट्ठर, शां.श्रौ.सू. 4.21.25, (मधुपर्क में आसन के रूप में प्रयुक्त), द्रष्टव्य-यज्ञायुधानि, पृ.6; ला.श्रौ.सू. 3.12.14; द्रा.श्रौ.सू. 10.4.7; का.श्रौ.सू. 20.2.19 (अध्वर्युयजमानौ कूर्चयो:); विद्यार्थी द्वारा आसन के रूप में प्रयुक्त, आप.गृ.सू. 13.2 (समावर्तन); इसका अर्थ (स्वर्णजटित) पैर से युक्त आसन जिस पर अध्वर्यु एवं यजमान बैठते हैं, भी है, का.श्रौ.सू. (भाष्य), (अश्वमेध); दक्षिणा के रूप में प्रदत्त, भा.श्रौ.सू. 13.8.16 (सोम)।

कूर्च

कूर्म पु. कछुआ (चयन में 'आषाढा' इष्टका के दक्षिण में रखने के पूर्व दधि, मधु एवं घृत से सना हुआ, 'कूर्म दधिमधुघृतैरनक्ति.....') का.श्रौ.सू. 17.4.27; आप.श्रौ.सू. 16.25.1.

कूर्मचिति स्त्री. (कूर्म इव चिति:) कछुए की आकृति में चित अग्नि-वेदि, बौ.शु.सू. 9.1-33; 10.1-12 (वक्र अथवा गोलाकार)

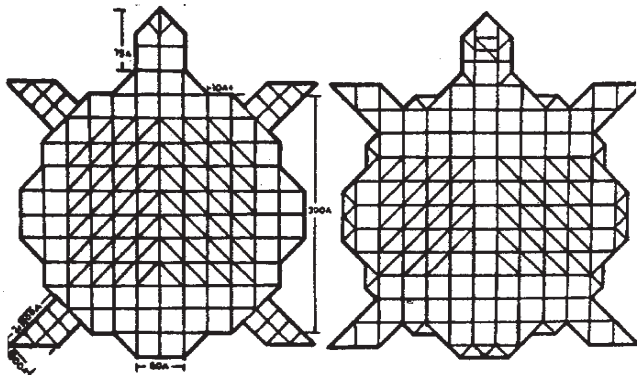

कूर्मचिति

कूर्मपित्त (कूर्मस्य पित्तम्) कछुए का पित्त, यदि यजमान चाहता है कि उसका पुत्र वीर हो, तो यह पत्नी के गोद में रखा जाता है, 'कूर्मपित्तमङ्के निधाय जपति', पा.गृ.सू. 1.14.5 (पुंसवन); जल से भरा हुआ कसोरा (शराव), हरिहरभाष्य।

कूष्माण्ड पु. पवित्र अग्नि की स्थापना के पूर्व 'अमात्य-आहुतियों' के बाद शुद्धीकरण के लिए दी जाने वाली आहुति का नाम, श्रौ.प.नि. 42.355; श्रौ.को. (अं.) 1.23; इसकी आहुति औपासन अग्नि में दी जाती है, वही 1.24; वैखा.श्रौ.सू. 1.1-6=कूष्माण्ड; ऋचा का नाम, वा.सं. 20.14.

कृकवाकु पु. मुर्गा, शां.श्रौ.सू. 12.24.5 (उलूखल, मुसल, महनाग्री)

कृत न. पाशे के पृष्ठ पर अंकित विशिष्ट संख्या अथवा चिह्न (अर्थात् 4), 'कृतादि वा निदध्याद्राजप्रभृतिभ्य:', का.श्रौ.सू. 15.7.18 (राजसूय)।

कृतानुकर वि. (कृतं अनुकरोति कृत+अनु+कृ+अप्) (वह) जो नकल करता है, 'कृतानुकरोऽन्यत्र दक्षिणस्याम् 5.4.32 (वरुणप्रघास, प्रतिप्रस्थाता अध्वर्यु द्वारा पहले किये गये का अनुकरण मात्र करता है अर्थात् ठीक उसी ढंग से करता है; द्रष्टव्य- 'कृतानुकरा' भी, श.ब्रा. 1.4.5.8।

कृतान्त पु. (कृतस्य अन्त:) प्रक्रिया की समाप्ति, भा.श्रौ.सू. 11.2.21 (अथवा चित्रित रूप का पार्श्व); आप.श्रौ.सू. 14.25.2; भा.श्रौ.सू. 11.2.21.

कृत्तिका स्त्री. (बहु.) एक नक्षत्रमण्डल का नाम (पवित्र अग्नि के आधान के लिए वैकल्पिक रूप से निर्धारित), आश्व.श्रौ.सू. 2.1.10 (कृत्तिकासु रोहिण्याम्)

कृत्यधीवास न. बैठने एवं शयन करने के लिए चर्म (रु. शय्यासनार्थं चर्म), आप.श्रौ.सू. 12.7.11 (अंशुसंज्ञक प्याले के लिए उपहार स्वरूप प्रदत्त, भा.श्रौ.सू. 13.8.16; सोम याग में); आसन्दी पर बिछाया गया आवरण, आप.श्रौ.सू. 18.18.6 (राजसूय); उस स्थान पर बिछाया गया जहाँ अश्व की बलि दी जाती है, का.श्रौ.सू. 20.17.8; अदाभ्य प्याले की दक्षिणा, भा.श्रौ.सू. 13.8.16.

कृपाण पु. तलवार, खंजर, आप.श्रौ.सू. 18.10.21.

कृष्टाकृष्ट वि. (कृष्टं च तद् अकृष्टं च) जोती गई एवं न जोती गई (भूमि), 'त्रीन् कृष्टाकृष्टयोः', का.श्रौ.सू. 17.3.4 (चयन)।

कृष्ण न. आँख का काला वाला भाग, आप.श्रौ.सू. 10.14.9 (यदा अस्य कृष्णः चक्षुषोर्नश्यति अथ मेध्यो भवति) एक काला परिधान, मा.श्रौ.सू. 5.2.6.2 (कारीरी इष्टि)।

कृष्णतूल न. एक प्रकार की घास (प्रस्तर, बर्हिष, विधृति, पवित्रे एवं यज्ञिय यूप की मेखला बनाने के लिए निषिद्ध), श्रौ.को. (अं.) 1.231

कृष्णतूष न. (कृष्णं च तत् तुषम्) काली भूसी, आप.श्रौ.सू. 18.8.18; करीर-इष्टि एवं व्रात्यस्तोम, काशिकर 272 इण्डेक्स.

कृष्णपक्ष पु. महीने का अंधेरा पाख, का.श्रौ.सू. 15.1.16 (राजसूय)।

कृष्णमण्डल (कृष्णं मण्डलं यस्य) वि. काली पुतलियों वाला ला.श्रौ.सू. 9.9.4.

कृष्णल न. शतकृष्णले में प्रयुक्त एक प्रकार का अनाज, मा.श्रौ.सू. 5.1.9.6-11; कृष्णल के दाने के भार के बराबर एक सोने का टुकड़ा, शां.श्रौ.सू. 3.8, श्रौ.को. (अं.) 1.964; भार की तौल के रूप में प्रयुक्त बीज (=यव के दानें); मा.श्रौ.सू. 10.1.4.6.

कृष्णवलक्ष्यौ वि. (द्वि.व.) (कृष्णा च वलक्षी च) काला एवं श्वेत; 'अथातः क्रयस्यैवोपवसथः पर्याप्लवते स उपकल्प्यते। चन्द्रं च छागा च कृष्णबलक्ष्यौ उर्णास्तुके,' बौ.श्रौ.सू. 6.10, इण्डेक्स कृष्णा च बलक्षी च; तु. कृष्णबलक्ष, 'अजिने पार्श्वसहिते कृष्णबलक्षे आविक, का.श्रौ.सू. 22.4.19 (कृष्णं च बलक्षं च); ला.श्रौ.सू. 8.6.15.

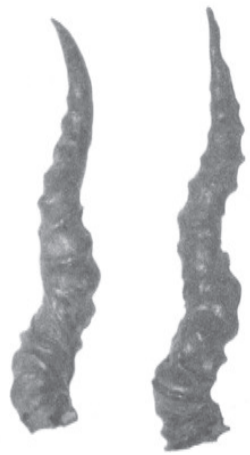

कृष्णविषाणा

कृष्णविषाणा स्त्री. कृष्ण मृग की सींग, आप.श्रौ.सू. 10.9.17 (सींग की तीन अथवा पाँच बलियां (मोड़) होती है और यह दाहिनी तरफ के झुकाव से युक्त होती हैं), 'कृष्ण-विषाणां त्रिबलिं पञ्चबलिं वोत्तानां दशायां बध्नीते', का.श्रौ.सू. 7.3.25 (सोम); श्रौ.प.नि. 199.42; भा.श्रौ.सू. 10.8.2; मा.श्रौ.सू. 2.4.5.18.

कृष्णशबली वि. (कृष्णानि शबलानि यस्याः यहाँ 'वर्णो वर्णेन' पा. 2.1.69 की प्रवृत्ति नहीं) काले धब्बे वाली (गाय), मा.श्रौ.सू. 5.2.10.34 (भोज्यकाम व्यक्ति के लिए इसका होम पृथिवी के लिए किया जाता है; इसके चर्म को बगल कर देते हैं)।

कृष्णसारङ्ग वि. (कृष्णश्चासौ सारङ्गश्च) काला एवं श्वेत (रु. कृष्णश्वेतः); आप.श्रौ.सू. 10.29.5; इसी सूत्र में द्रष्टव्य-लोहितसारङ्ग।

कृष्णाजिन न. (कृष्णमृगस्य अजिनम्) काले मृग का चर्म, जिसे अध्वर्यु दीक्षा के समय यजमान के आसन अथवा वेदि पर फैलाता है। यजमान इस परा दीक्षा-काल के लिए बैठता है। दूसरे के ऊपर एक, इस प्रकार दो चर्म के दो टुकड़ों का उल्लेख किया गया है। संवारा हुआ अथवा परिस्कृत भाग बाहर की तरफ रहता है, आप.श्रौ.सू. 10.8.11; एक पवित्र आवरण भी भूमि पर बिछा दिया जाता है, 17; इष्टि में अनाज का पेषण करते समय इसका प्रयोग बाल को ऊपर की करते हुए किया जाता है, तै.ब्रा. 3.2.6; बौ.श्रौ.सू. 1.6; आप.श्रौ.सू. 1.19.3, 6; द्रष्टव्य - तै.सं 1.6.8; 6.1.3; द्रष्टव्य- यज्ञायुधानि, हविराधान-शकट

पर एक पताके के रूप में कृष्णमृग के चमड़े का एक खण्ड रख दिया जाता है, का.श्रौ.सू. 7.9.8 (एकं कृष्णाजिनं ध्वजस्थानीयं शकटस्य पूर्वभागे युगसमीपे उच्छ्रितदण्डेऽव-लगयेत् स.वृ.); द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 40

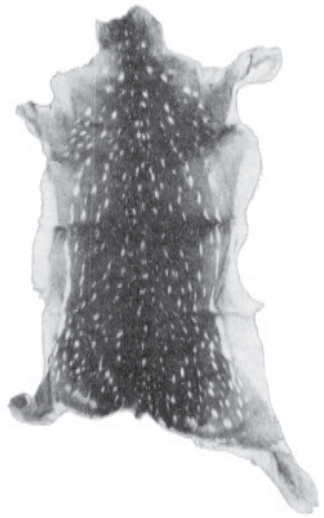

कृष्णाजिन

कृष्णाजिनदीक्षा स्त्री. (कृष्णाजिने दीक्षा) काले मृग के चर्म पर दीक्षा, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.25.

कृष्णाजिनपुट न. (कृष्णाजिनस्य पुटम्) काले मृग के चर्म का दोना अथवा वलन (वातं जुहोति), मा.श्रौ.सू. 6.2.5.34 (यजमान के अभिषेक के बाद खोखले हाथों अथवा काले मृग के चर्म के वलन से वायु की आहुति दी जाती है) मा.श्रौ.सू. 4.2.2 भी द्रष्टव्य।

कृसर पु. तिल के बीजों से मिश्रित, घी से आवृत उबले हुए चावल की खिचड़ी, जो बटलोइ में पकायी जाती है (स्थालीपाक) और जिस पर यजमान-पत्नी दृष्टिपात करती है, और खा लेती है (अर्थात् पत्नी द्वारा द्रष्टव्य एवं भक्षणीय), गो.गृ.सू. 2.7.9.11 (सीमन्तोन्नयन)। यह भोजन नापित को दिया जाता है 9.7 (चूडाकरण)। 'अन्वष्टका' में यह एक हविर्द्रव्य है, आश्व.गृ.सू. 2.5.2; मूलजातविधे भोजयेत्, मा.श्रौ.सू. 11.2.11

क्लृप्ति स्त्री. (क्लृप्+क्तिन्) व्यवस्था, शां.श्रौ.सू. 4.9.2 'दिशां क्लृप्ति', विशेष ऋचा का नाम, शां. श्रौ.सू. 12.20.1; इष्टकाओं की, मा.श्रौ.सू. 62.2.6.

केरु न. वरुणप्रघास पर्व एवं पशुयाग के लिए बनाई गयी उत्तरवेदि के नाभि पर रखी जाने वाली एक प्रकार की सुगन्धित घास का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.697; 1.800; (वारा.श्रौ.सू. 16.1.31-3.25); मा.श्रौ.सू. 1.7.3.35.

केवलसूक्त न. वह सूक्त जिसका प्रयोग महाव्रत में नहीं होता है, श्रौ.को. II.306, 369.

केशव पु. (केश+व, केशाद्वोऽन्यतरस्याम् पा 5.2.109) लम्बे बालों वाला मनुष्य, 'सोमात्क्रीयमाणात् सहितं दक्षिणत: सीसेन परिसुत: क्रयणं केशवात्' का.श्रौ.सू. 14.1.14 (सम्भवत: वह नपुंसक व्यक्ति, जिससे वाजपेय में सुरा खरीदी जाती है); इसके मुख में लाल ताँबे का खण्ड डाल दिया जाता है, का.श्रौ.सू. 15.5.22.

केशवपन

केशवपन न. (केशस्य वपनम्) दीक्षा के समय पहले आचार्य तदनन्तर नापित द्वारा (बालों को मूंड़ना); बालों को इकट्ठाकर उदुम्बर वृक्ष अथवा दर्भ की जड़ के पास फेंक देते हैं, आप.श्रौ.सू. 10.8 (उपनयन)

केशवपनविनयन न. काटे जाने वाले बालों को पृथक् करना एवं शिर पर जूड़ा बनाना (विनीय) आप.श्रौ.सू. 16.6 (चूडाकरण)।

केशवपनीय पु. (केशं वपन्ति अस्मिन्, द्र. कृत्यल्युटो बहुलम्, पा. 3.3.113) बाल-कर्तन-समारोह; राजसूय के अन्तर्गत अभिषेचनीय एवं दशपेय के अन्त में अनुष्ठित कृत्य का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.42.

केशवर्जम् क्रि .वि. केश (–मुण्डन)को छोड़कर, बौ.श्रौ.सू. 2.12.26 (केशश्मश्रू वपते नखानि निकृन्तते एवं पत्नी केशवर्जम्); (अग्न्याधेय)।

केशवास्य न. (केशवस्य आस्यम्) लम्बे केश वाले व्यक्ति का मुख, का.श्रौ.सू. 15.5.20

केशश्मश्रुवपन न. (केशस्य श्मश्रुण: वपनम्) यजमान के स्नान करने से पूर्व उसके शिर एवं चेहरे के बालों (अर्थात् दाढ़ी और बाल) के मुण्डन का कृत्य, 'केशश्मश्रु वपते वाऽशिखम्' का.श्रौ.सू. 2.1.9 (दर्श); आप.श्रौ.सू. 4.1.4; 'पौर्णमासवद्वपनम्', का.श्रौ.सू. 4.7.11 (आधेय); (=अप्सुदीक्षा), 8.2.7 (सोम); बौ.श्रौ.सू. 2.12:16 (अग्न्याधेय)।

केशान्त पु. (केशस्य अन्त:)=गोदान, 16वें वर्ष में बाल एवं दाढ़ी के मुण्डन का कृत्य, पा.गृ.सू. 2.1.7 (केशश्मश्रिति केशान्ते।)

केशिनी (दीक्षा) स्त्री. यजमान द्वारा अपनी दीक्षा के समय 'व्रतप्रदानचमस–अभिमन्त्रण' का पाठ करने के अनन्तर जपे जाने वाले विशिष्ट मन्त्रों का नाम, आप.श्रौ.सू. 10.10.6; द्रष्टव्य– 'मनो मे मनसा दीक्षताम् स्वाहा' आदि के साथ पाँच आहुतियों से युक्त) 'केशिनी दीक्षा' श्रौ.को. (सं.) II.37 (औद्ग्राभण आहुतियों के समय यजमान द्वारा हुत)

केशियज्ञ पु. चार आहुतियों वाले एक यज्ञ का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.326.

केसरपाशाभिधानी स्त्री. (केसरपाशेन युक्ता अभिधानी) रोयेंदार फंदे वाली रस्सी, आप.श्रौ.सू. 18.20.21, दक्षिणा के रूप में प्रदान की जाने वाली।

केसरपुच्छ पु. (न.) पूंछ का (बालयुक्त) भाग, 'अभ्रंश्यमाना–न्मणीन्त्सौवर्णानेकशतमेकशतं केसरपुच्छेष्ववयन्ति.....', का.श्रौ.सू. 20.5.16 (अश्वमेध)।

कोटिप्रमाण न. (कोटे: प्रमाणम्) एक कोण की माप, मा.श्रौ.सू. 10.1.1.8.

कोटी पु. कर्ण का आधा (बौ.शु.सू. 3.2); मा.श्रौ.सू. 10.1.1.8.

कोद्रव न. एक प्रकार का अनाज (कोदो), श्रौ.को. 1.264; (जिस प्रियड़गु के अनाज का हविर्द्रव्य के रुप में ग्रहण होता है, उसमें कोद्रव एवं उदारवरक का मिश्रण नहीं करना चाहिए)।

कोशापिधान न. कपड़े के टुकड़े के ढक्कन से युक्त बाँस की बनी हुई धानी (पात्र) इत्यादि, आप.श्रौ.सू. 8.17.7; भा.श्रौ.सू. 8.21.4.

कौण्डपायिन्य पु. एक सत्र (याग) का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.ii 653; (इस यज्ञ के लिए दोहन–क्रिया मन्त्रों के उच्चारण के साथ की जाती है)।

कौटुम्ब वि. (कुटम्बस्य इदम् कुटुम्बे भवं वा) (कोई वस्तु) जो गृहस्थ (कुटुम्ब) से सम्बन्ध रखती हो, इसे रथ पर सवार होने के पहले लाना चाहिए, आश्व.गृ.सू. II.6.30.

कौल्मलबर्हिस् न. एक साम का नाम, जै.ब्रा III.254.

कौत्स न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा.9.2.21 सा.वे.1.32.81 पर, पञ्च.ब्रा. 14.11.25 सा.वे. 1.62 पर.

कौशी (स्त्री) वि. (कुशस्य विकार:) कुश–निर्मित, का.श्रौ.सू. 6.3.13; (कौशी रशना: पशुयाग में यज्ञीय यूप के चारों ओर लपेटी जाने वाली रस्सी)।

कौशीधान्य न. (बाहरी आवरण से युक्त) अनाजों का प्रकार, (अन्यत्र तिलेभ्य:), बौ.श्रौ.सू. 2.20.4.

क्रतु पु. एक सोम–याग (यजेत नाग्निष्टोमेनानिष्ट्वैतरै: क्रतुभि:), भा.श्रौ.सू. 10.2.12 (सोम); 'अतिरात्रम् एके प्रथमं यज्ञं समामनन्ति', 13; पूजा, आश्व.श्रौ.सू. 4.13.8; द्रष्टव्य– मैंकर टी.जी., गौरीनाथशास्त्री अभि.ग्र. 1980, पृ.1.5.

क्रतुकरण पु. एक कृत्य का नाम, जिसके द्वारा एक सोम याग का दूसरे सोम याग से वैभिन्न्य ज्ञात होता है (रु. क्रतुव्यावृत्ति: क्रियते अनेन इति), आप.श्रौ.सू. 12.6.5; यदि यह अग्निष्टोम हो, तो 'प्रचरणी' के अवशेष अग्नि में हुत कर दिये जाते हैं; यदि उक्थ्य हो तो उनका परिधि पर अञ्जन (लेप) होता है, यदि षोडशी हो, तो वह आहुति देता है, अवशेष का परिधि में अञ्जन करता है और 'द्रोणकलश' तथा 'रराटी' का स्पर्श करता है, वाजपेय एवं अतिरात्र में इसकी न आहुति दी जाती है और न ही (परिधि में) अञ्जन होता है। वह साधारण ढंग से 'एतन् नमुर्–' आदि मन्त्र पढ़ता है एवं हविराधानमण्डप में आ जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.6.8; बौ.श्रौ.सू. 7.4.2; भा.श्रौ.सू. 13.5.7, आपि; न. 'यमग्ने पृत्सु मर्त्यम्' (तै.सं. 1.3.13.2) इस ऋचा के साथ 'अग्निष्टोम' संज्ञक सोमयाग में दी जाने वाली एक आहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.ii.946=होम, श्रौ. प.नि. 256–262

क्रतुकरणि स्त्री. 'प्रचरणी' संज्ञक सहायक कलछी से अग्निष्टोम में अर्पित की जाने वाली द्रवाहुति का नाम, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.26 (एतेन मन्त्रेण उक्थ्ये परिधिम् अञ्ज्यात् षोडशिनि ररातीं द्रोणकलशं वा उपस्पृशेत्, 27)। द्रवाहुति सोम याग के प्रकार को निर्दिष्ट करती है।

क्रतुदक्षिणा स्त्री. (क्रतोः दक्षिणा) सोम-याग का ऋत्विक्-शुल्क (दक्षिणा), शां.श्रौ.सू. 13.6.5.

क्रतुनिर्देश पु. (क्रतोःनिर्देशः) यज्ञ के लिए निर्देश (पूर्वया द्वारा प्रविश्य क्रतुनिर्देशं कृत्वा), मा.श्रौ.सू.2.1.1.11.

क्रतुपशु पु. (क्रतौ वध्यः पशुः) सोम याग में वध्य पशु, मा.श्रौ.सू. 5.2.12.45; आश्व.श्रौ.सू. 5.3.3-4 (आग्नेयो अग्निष्टोमः ऐन्द्राग्न उक्थ्ये द्वितीयः ऐन्द्रो वृष्णिः षोडाषिनि तृतीयः सारस्वती मेष्यतिरात्रे चतुर्थी); शां.श्रौ.सू. 15.1.21 (मरुद्भ्यः उज्जेषेभ्यो वशा पृश्निः पञ्चमी क्रतुपशूनाम्); बौ.श्रौ.सू. 23.19.27 (क्रतुपशव ऐकादशिनाश्च विकल्पन्ते इति शालीकिः); सवनीय पशु का एक दूसरा नाम, सोम याग की चार प्राथमिक विशेताओं में एक, आप.श्रौ.14.1.5 अग्निषोमीय एवं अनुबन्ध्या से पृथक् सोम याग से सम्बद्ध तीन पशुयागों में एक एवं क्रम में दूसरा है। अग्निष्टोम में अग्नि को अज, उक्थ्य में इन्द्राग्नी को वृषभ, एवं षोडशी में इन्द्र को बैल एवं अतिरात्र में सरस्वती को मेष प्रदान करने की परिपाटी स्तोमायन कहलाती है, का.श्रौ.सू. 9.8.4 (एतत्स्तोमायनम्)।

क्रत्विष्टका स्त्री सावित्र चयन में लगाई जाने वाली ईंट का नाम, बौ.श्रौ.सू. 19.3:16.

क्रमवात्सप्र न. (क्रमेण सह वात्सप्रम्) तीन विष्णु क्रमण करना एवं 'वात्सप्र' स्तुति को जपना, मा.श्रौ.सू. 6.1.4.40; वारा.श्रौ.सू. 2.1.44; श.ब्रा. 6.7.4.7-14; वा.सं. 3.16-18; तु. वात्सप्र साम के रूप में मानित, आर्षे.ब्रा. 3.9.5 (317)।

क्रमुक न. सुपारी का वृक्ष, मा.श्रौ.सू. 8.23.20.

क्रय पु. (क्री+अच्) सोम लता को खरीदना, का.श्रौ.सू. 7.1.25 (पुण्याहे दीक्षा क्रयः प्रसव उत्थानम्)।

क्रयण न. (क्री+ल्युट्) =क्रय, ला.श्रौ.सू. 8.4.5.

क्रिमीणा वि. (स्त्री.) क्रिमियाँ (कीटों) से विद्ध, भा.श्रौ. सू. 11.20.1 (प्रवर्ग्य-प्रायश्चित्त)।

क्रुमुक न. लाल रंग वाली लकड़ी, आप.श्रौ.सू. 16.9.6 (धू.); बौ.श्रौ.सू. 10.12 (अपरपक्ष-सम्भार); धनुष् एवं बाण के साधन से प्राप्त लकड़ी की फर्रियां, आप.श्रौ.सू. 14.24.6.

क्रुष्ट वि. (कुश्+क्त) संगीत के स्वरों की श्रंखला में सबसे ऊँचे स्वर का नाम, पुष्प.सू. 523; आप.श्रौ.सू. 24.1.4; नार. शि. 1.76.

क्रोश न. एक साम का नाम, पञ्च. ब्रा. 13.5.14 सा. वे. 1.381 पर आधृत।

क्रौञ्च न. एक साम का नाम, पञ्च. ब्रा. 13.9.10 सा.वे.1.546, 549 एवं 1.165 पर आधृत।

क्लीतका स्त्री. महावीर पात्र को परिष्कृत करने एवं चिकना बनाने के लिए प्रयुक्त सामग्री का नाम, आप.श्रौ.सू. 15.1.1-3, भा.श्रौ.सू. 11.3.9; (बहु.) 'करञ्ज' के बीज, भा.श्रौ.सू. 11.3.9; स्वरूपचिकित्सा परि.1.

क्लोमन् न. कण्ठ-नलिका, 'क्लोमप्लीहाध्युध्नीपुरीततं चेच्छन्', का.श्रौ.सू. 6.7.11 (वध्य पशु का); दाहिने गले में गांठ; दाहिना फेफड़ा हि.ध. II.ii.1126; पाचक-ग्रन्थियां (अग्न्याशय), भा.श्रौ.सू. 7.19.11 (पशु); अनु.।

क्वल पु. बेर के वृक्ष का फल, आप.श्रौ.सू. 1.14.1, द्रव को जमाने (ठोस के रूप में परिवर्तित करने) के लिए प्रयुक्त।

क्षत्रधृति स्त्री. (क्षत्रस्य धृतिः) राजकीय शक्ति का संवर्धन (अथवा धारण), मा.श्रौ.सू. 9.1.5.47.

क्षपण न. (क्षप्+ल्युट्) वैदिक अध्ययन में (अस्थायी) व्यवधान (उपाकर्मन् एवं उत्सर्जन के अवसर पर तीन दिन एवं तीन रात तथा 'अष्टका' के अवसर पर 1 दिन एवं एक रात), शां.गृ.सू. 4.5.17; सावित्री का चार बार पाठ करते हुए सम्पन्न किया गया, पा.गृ.सू. 2.12.3-4

क्षाम (क्षै+क्त (म) 'क्षायो मः' पा 8.2.53) वि. दग्ध, जला हुआ, मा.श्रौ.सू. 3.1.22 (पुरोडाश)

क्षामवतीतिष्टि स्त्री. (क्षामवती चेयम इष्टिः) एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, यदि अग्नि यजमान के घर को जला देता है, तो उस स्थिति में इसका अनुष्ठान किया जाता है। क्षामवत् अग्नि के लिए क्रमशः पुरोनुवाक्या एवं याज्या के रूप में 'अक्रन्ददग्निः.....', एवं 'त्वे वसूनि', के साथ आठ कपालों पर पकाये गये एक पुरोडाश का विधान है, बौ.श्रौ.सू. 13.4. आश्व.श्रौ.सू. (3.13.4) के अनुसार पुरोनुवाक्या एवं

याज्या हैं 'अग्ने त्वमस्मद्.....' (ऋ.वे. 1.89.3) एवं 'अक्रन्ददग्नि.....' (ऋ.वे. 10.45.4); श्रौ.प.नि. 112-521.

क्षायति (क्षै+लट् प्र.पु.ए.व.) जल जाती है, आप.श्रौ.सू. 9.15.6.7 (यस्य हविः क्षायति, भाष्य-स. विदह्यते)

क्षार न. तीखा भोजन, पाकयज्ञों के लिए यजमान के भोजन के रूप में न स्वीकार करने योग्य, आप.गृ.सू. 8.3.

क्षिप्राग्नि वि. (क्षिप्रः चासौ अग्निः) अत्यन्त ज्वलनशील, मा.श्रौ.सू. 6.1.3.23; 1.5.3.1.

क्षिप्रंसुवन न. (क्षिप्रं च तत् सुवनम्, क्षिप्रं प्रसूयते येन) वह कृत्य जिससे प्रसव शीघ्र ही जो जाता है, आप.गृ.सू. 14.13=हि.गृ.सू. 2.2.8; द्रष्टव्य-सोष्यन्तीकर्म।

क्षीरव्रत पु. (क्षीरं व्रतं यस्य) (वह व्यक्ति) जिसका (दीक्षा के समय) एक मात्र दूध ही व्रत का भोजन हो, का.श्रौ.सू. 7.4.20 (तत्क्षीरव्रतौ भवतः)।

क्षीरहोतृ पु. (वह व्यक्ति) जिसके अग्निहोत्र के लिए ऐसी गाय दक्षिणा के रूप में दी गई हो, जो पहली बार दुही गयी हो, आप.श्रौ.सू. 6.15.16; कुछ लोगों के मतानुसार वह व्यक्ति जो अग्निहोत्र के अवशिष्ट दुग्ध से अपना जीवन यापन करता है, किसी के द्वारा धन-प्रदान के द्वारा अग्निहोत्र में लगाया जा सकता है; वह ऋत्विज् जो दक्षिणा के रूप में दुग्ध को स्वीकार कर अग्निहोत्र का अनुष्ठान करता है, काशिकर परि.1; जो अग्निहोत्र में गाय का दुग्ध अर्पित करता हो (आहुति देता है), 'वाग्यतो दोहप्रभृत्याहोमात् क्षीरहोता चेत्, का.श्रौ.सू. 4.14.31; द्रष्टव्य-क्षीरहोमन्, का.श्रौ.सू. 4.10.16 (ब्रह्मचार्यग्निनित्यधारी क्षीरहोम्यग्निमुपशायी द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः) यजमान द्वारा अग्निहोत्र होम करने के लिए धन- प्रदान द्वारा नियुक्त किया गया ऋत्विक्, श्रौ.को. (अं) 1.115. यह बह्वृच-ब्राह्मण के अनुसार है।

क्षीरौदेन न. (क्षीरेण उपसिक्तः ओदनः, द्र. अन्नेन व्यञ्जनम्, पा. 2.1.34) (मीठे) दुध से तैयार किया गया खीर, शां.श्रौ.सू. 14.16.4; ला.श्रौ.सू. 5.1.11 [ऋतर्पय याग में दीक्षा के विषम (दिनों) में भागग्रहणपूर्वक भुक्त] द्र. अन्नेन व्यञ्जनम् पा 2.1.34

क्षुद्रचिति (क्षुद्राणां चितिः) बालुका अथवा कंकड़ से चित वेदि, काशिकर 273 इण्डेक्स.

क्षुद्रपद न. (क्षुद्रं च तत् पदम्) (माप के रूप में) लघुतर कदम, बौ.श्रौ.सू. 6.22; 14 (उत्तरवेदि के लिए प्रयुक्त) बौ.शु.सू. 1:3; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.536.

क्षुद्रसूक्त न. (क्षुद्रं च तत् सूक्तम्) ऋ.वे.के छोटे सूक्त (10.129-191) जिसके एक अनुवाक का पाठ दीक्षित (दीक्षाप्राप्त व्यक्ति) द्वारा वेदाध्ययन के समय किया जाता है, शां.गृ.सू. 2.7.21; आर्षेयकल्प का अंग, काशिकर, इण्डेक्स.

क्षुल्लकाभिषवण

क्षुल्लकाभिषवण न. (क्षुल्लकं च तदभिषवणम्) सोम लता का अल्प सवन; द्रष्टव्य - उपांशुग्रह।

क्षैत्रपती स्त्री. (क्षेत्रपतेः इयम्, क्षेत्रपति+अण्+ङीप्) क्षेत्रपति को सम्बोधित ऋचा, 'क्षेत्रस्य पतिना वयम्....', ऋ.वे. 4.57.1 यह ऋचा अध्वर्यु द्वारा सदस् के आगे जाने के लिए उच्चारित की जाती है, आप.श्रौ.सू. 11.10.18.

क्षोदिष्ठ वि. (क्षुद्र+इष्ठन्) सबसे छोटा, मा.श्रौ.सू. 9.1.2.7 (मैत्राबार्हस्पत्य चरु के लिए तण्डुलाः) अतिशायने तमबिष्ठनौ' पा. 5.3.35।

क्षौम न. (क्षुमा+अण्) अतसी अथवा सन का परिधान, दो अथवा तीन मोड़ वाला, चर्म पर बिछा हुआ ओर सोम के क्रयण के समय अध्वर्यु द्वारा इसके ऊपर सोम का मापन किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 10.16.6; 5.2.23.

ख

खण्ड पु. टुकड़ा, बौ.शु.सू. 1.54

खननपुरीषा वि. (खननस्य पुरीषं यस्याः) खोद कर निकाली गई मिट्टी से निर्मित, भा.श्रौ.सू. 2.3.1 (वेदिकरण).

खनातक न. बेलचा (खनातकेन वा यजमानो भक्षम् इच्छेत्), आप.श्रौ.सू. 17.26.17.

खनि स्त्री. वह स्थान जहाँ मिट्टी खोदी जाती है आप.श्रौ.सू. 2.2.3 (भाष्य. यतः पांसव उपात्ताः स प्रदेशः); बौ.श्रौ.सू. 22.1.

खनित्रजीवन वि. (खनित्रं खनित्रेण वा जीवनं यस्य) वह व्यक्ति जिसकी जीविका (जीवन) का साधन बेलचा अथवा फावड़ा हो, मा.श्रौ.सू. 9.3.1.23 (विश्वजित्)।

खर पु. (सोम के) प्यालों को रखने के लिए प्रयुक्त मिट्टी से निर्मित, बालुका से ढका हुआ (भद्वा) छोटा वर्गाकार टीला आप.श्रौ.सू. 11.13.8, का.श्रौ.सू. 8.5.29 (खरं पुरस्तात्करोत्युद्धतावोक्षिते सिकतोपकीर्णं चतुरस्रम्) इसे हविराधान में हविराधान-शकट के सामने दक्षिण में 'उपरव'-संज्ञक गड्ढों से निकाली गई मिट्टी से उठाते हैं (बनाते हैं), आप.श्रौ.सू.। बालुका-निर्मित हो और खर प्राचीन वंश के अन्दर ही प्रवर्ग्य के लिए बनाये जाते हैं, आकृति में चक्राकार, 1 बीते (बित्ते) के आकार वाले; एक उस गार्हपत्य के उत्तर जो प्रवृज्जनीय कहलाता है और जिस पर महावीर पात्र रखा जाता है, और दूसरा 'उद्वासनीय' कहे जाने वाले आहवनीय के उत्तर, बौ.श्रौ.सू. 9.5; आप.श्रौ.सू. 15.6.20,21. गृह्य कृत्यों में इनकी संख्या छः होती है। इनका निर्माण 'कर्षू' (खरोंची गई रेखा) के दक्षिण की तरफ किया जाता है और जिस पर पितरों को पिण्ड प्रदान करने के लिए अग्नि की स्थापना की जाती हे, काल.गृ.सू. 4-6 (अन्वष्टका)

खरकाल पु. (खरनिर्माणस्य कालः) वह समय जब सोम के प्यालों को रखने के लिए हविराधानमण्डप में टीले का निर्माण (उत्थापन) किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 18.1.11

खर्विका स्त्री. तीन पूर्णमासियों में एक का नाम, श्रौ.को (अं.) 1.222 (आप.श्रौ.सू. 24.2.19-25); लघ्वी, छोटी सी (अन्य दो हैं-अनुमति एवं राका)।

खलकुलस न. एक वस्तु जिसे ब्रह्मन् मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों से स्पर्श कराता है, श्रौ.को. (अं) 1.1086=खल्वस्।

खादिर वि. (खदिरस्य विकारः, खदिर+अण्) खदिर (खैर) की लकड़ी का बना हुआ, श्रौ.को. (सं.) II.188.

खारी स्त्री. एक लटकती हुई टोकरी, बौ.श्रौ.सू. 9.4:5 (खारी शिक्यं कृष्णाजिनम्); भाष्यः वेत्रविशेषकृतां विगोलिकां वा; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) 515.

खारीण्ड्व न. आवरणों? (खोलों) से युक्त टोकरी, बौ.पि.,श्रौ.को.(सं.) I.805; तुल-इण्ड्व (गृह्य)।

खिल न. परती, बेकार भूमि,बौ.श्रौ.सू. 9.19-20; श्रौ.को. (सं.) II.18.

ग

गङ्गा स्त्री. गंगा नाम के नदी, का.श्रौ.सू. 13.3.26 : (महाव्रतदासी) नृत्य करती हुई सेविकाओं का गीत।

गण पु. = चमसगण, (चमस के द्वारा सोमाहुति प्रदान करने वाले ऋत्विजों का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.28.15 (भाष्य सम्प्रैषश्च उक्थशज सोमानाम् इति बहुवचनान्तः); (मन्त्रों का) समूह (उदाहरणार्थ मरुतों के लिए पुरोडाश की आहुतियों का साथ देने वाले सात मन्त्र), आप. श्रौ.सू. 17.16.16 (चयन); अन्य गण हैं 'अरण्येऽनुवाक्य' एवं 'ग्रामेऽनुवाक्य'; -**होम** पु. प्रायश्चित्त के लिए संयुक्त हवियां, श्रौ.प.नि. 43.356.

गणकाम वि. (गणं कामयते) (वह अध्यापक) जो 'भीड़ प्राप्त करने की कामना से युक्त है; वह मन्त्र का पाठ करे, ऋ.वे. 2.23.1; शां.गृ.सू. 2.2.13 (उपनयन); 'गण की व्याख्या' 'अनुयायियों अथवा अनुयोगियों का जमघट' के रूप में की गयी है, ओल्डेन वर्ग. श.ब्रा.अं. XXIX .63 जो कुल मिलाकर स्पष्ट नहीं है, 'गण' का सम्भवतः अर्थ है कुल अथवा गोत्र और यहअदिम गोत्रीकरण की ओर इङ्गित करता है

गतश्री वि. (गता श्रीः येन) वह (यजमान) जिसने ऐश्वर्य अथवा धन प्राप्त कर लिया है, का.श्रौ.सू. 4.13.5 (गतश्रियः=प्राप्तसमृद्धेर्यजमानस्य, स.वृ.); श.ब्रा. 1.3.5.12; निम्नलिखित तीन को गतश्री कहते हैं। विजयी क्षत्रिय राजा, विद्वान् ब्राह्मण एवं वह वैश्य जो अपने गाँव का अग्रगण्य व्यक्ति हो। उन्हें सतत रूप से पवित्र अग्नि को संभाले रहना पड़ता है, आप.श्रौ.सू. 6.2.12; तु.हि.ध. II (2) 999) द्रष्टव्य-काशिकर, CHABORI 67; 1986, पृ. 243-45.

गति स्त्री. (गम्+क्तिन्) 1. 'इ' अथवा 'उ' को अन्तर्निविष्ट कर स्तोभ के अक्षरों को लम्बा खींचना, उदाहरणस्वरूप 'हो' के लिए होयि अथवा होइ; आ यि एवं औ के 'इ' अथवा 'उ' को लम्बा खींचना, पुष्प सू. 520; 2. टहलना, सञ्चरण, शां श्रौ.सू. 4.6.12 'ब्रह्मन्' के प्रसङ्ग में, लक्ष्य (=आदित्य) जै.ब्रा. I.25.

गतिकल्प पु. (गत्याः कल्पः) (ब्रह्मन् के) सञ्चरण के लिए नियत की गई प्रक्रिया, ला.श्रौ.सू. 5.9.8; द्रा.श्रौ.सू. 15.1.9.

गधा स्त्री. गाड़ी (अनस्) की छत (छदिस्), आप.श्रौ.सू. 19.26.2; गाड़ी में तीन छतें होतीहैं, 'कृष्णम् अनस्, त्रिगधम्', बौ.श्रौ.सू. 13.37:12 (कारीरीष्टि); आप.श्रौ.सू. 19.26.4.

गधाकर्ण पु. (गाड़ी के) प्रमुख छत्र का नीचे का ढांचा, मा.श्रौ.सू. 5.2.6.8 (करीर के फलों के साथ कृष्णमृग का चर्म आदि इससे सन्नद्ध रहता है)।

गन्धपुष्प न. (गन्धयुक्तं पुष्पम्)सुगान्धयुक्त फूल (गन्ध, पुष्प धूप, दीप), अग्निवे. गृ.सू. 1.2.2.36

गन्धर्वयजुस् न. एक मन्त्र का नाम 'रत्निर्नामासि दिव्यो-गन्धर्वः.....' जिसका पाठ यजमान द्वारा उस समय किया जाता है, जब महावीर के चारों ओर घड़े से अविच्छिन्न धारा में जल का छिड़काव होता है,बौ.श्रौ.सू. 9.16 (प्रवर्ग्य का विसर्जन); द्रष्टव्य -श्रौ.को. (सं.) I.539.

गमन पु. (हविर्द्रव्य को ग्रहण करने के लिए जाने के लिए मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 1.5.1 ['प्रेयामगात्', उर्वन्तरिक्षमन्विहि] (तै.सं. 1.1.2.1), 'इति यौ गमनौ तौ प्रत्यायनौ]

गयस्फान वि. गृह की वृद्धि करने वाला, गृह को बढ़ाने वाला, 'गयस्फानः प्रतरणो न एधि', ऋ.वे. 1.91.12; शां.श्रौ.सू. 3.7.3 (मित्रविन्दा)।

गर्गत्रिरात्र पु. तीन दिन तक चलने वाले एक सोम-याग का नाम, शां. श्रौ.सू. 16.2.2; बौ.श्रौ.सू. 16.27:26; द्रा.श्रौ.सू. 23.3.9.

गर्त पु. भूमि में (किया गया) गड्ढा, श्रौ.को.(सं.) II.514

गर्दभ पु. गधा, आप.श्रौ.सू. 9.14.14, भा.श्रौ.सू. 9.16.18; ला.श्रौ.सू. 9.8.16; =रथ; जै.ब्रा. III.328.

गर्दभेज्या स्त्री. गर्दभ-याग, जिसमें निर्ऋति (देवता के लिए चौराहे पर गर्दभ की बलि दी जाती है। इसका अनुष्ठान किसी 'अवकीर्णिन्' द्वारा प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है, का.श्रौ.सू. 1.1.13 (वाऽवकीर्णिनो गर्दभेज्या)। यह एक गृह्य कृत्य भी है, पा.गृ.सू. 3.12. आहुतियां सर्वसाधारण गृह्य अग्नि (लौकिकाग्नि) पर दी जाती है; पशुपुरोडाश भूमि पर पकाया जाता है कपालों पर नहीं। अवदान भाग की आहुति जल में दी जाती है। 'आवकीर्णिन्' गधे का

चर्म पहनता है और अपने कर्म (कुकर्म) की घोषणा करता हुआ अन्न (माँगने के लिए) घूमता है, पा.गृ.सू. 3.12.2-9, का.श्रौ.सू. 1.1.13-17; तै.आ. 2.18; हि.ध. IV.112

गर्भकारम् क्रि.वि. इस तरीके से कि भ्रूण का स्वरूप निर्माण हो जाय, अर्थात् 'रथन्तरसाम' पहले गाया जाता है उसके बाद वैराज साम एवं उसके बाद पुन: रथन्तर साम, आश्व.श्रौ.सू. 9.11.4-9.

गर्भरक्षण न. (गर्भस्य रक्षणम्) भ्रूण की रक्षा का कृत्य, इसका अनुष्ठान गर्भधारण के चतुर्थ मास में किया जाता है, जिसमें पक्व भोजन के मिश्रण से छ: आहुतियाँ दी जाती हैं, शां.गृ.सू. 1.21.1-2; कौशि.गृ.सू. 1.31.1.

गर्भाधान न. (गर्भस्य आधानम्) गर्भस्थापित करने का कृत्य, इसका अनुष्ठान रतिक्रिया, जो विवाह के चतुर्थ दिन सम्पन्न होती है, से पहले नहीं किया जाता है। सामान्यत: 'चतुर्थीकर्म' के रूप में जाना जाता है, किन्तु पृथक् कृत्य के रूप में व्यवहृत, बृहदा.उप. 6.4.13. 19-22, तु.हि.आ.ध. (1). 201-201। चूंकि लड़की की विवाह-योग्य आयु कम कर दी गई इस लिए मैथुनक्रिया किनारे लगा दी गई एवं इसका स्थान गर्भाधान ने लिया, जिसका (गर्भाधान) का अनुष्ठान पृथक् कृत्य के रूप में विवाह के बहुत बाद किया जाने लगा, का.गृ.सू. 30.8; कर्म प्र. 1.5.5.

गर्भाष्टम वि. (गर्भाद् अष्टमम्) गर्भ-की तिथि से परिगणित बालक का आठवां वर्ष, अर्थात् जन्म का सातवाँ वर्ष जिसमें उपनयन सम्पन्न होता है, आप.गृ.सू. 10.2; तुल. अन्य सदृश गणनायें 'गर्भैकादश' ग्यारहवां वर्ष, 'गर्भद्वादश' आश्व.गृ.सू. 1.19.1-7 (उपनयन के लिए निर्धारित आयु), आश्व गृ.सू. 1.19; भा.गृ.सू. 1.1.5.

गर्भिणी स्त्री. (गर्भ: अस्या: अस्ति, गर्भ+इनि+ङीप्) सगर्भा गाय, 'अष्टापदीवत्पशुबन्धौ गर्भिण्यां स्वगुणदक्षिणौ' का. श्रौ.सू. 15.9.13 ('अनुबन्ध्या', याग गर्भिणी गायों के जोड़े से, राजसूय), श.ब्रा. 5.5.2.8-10.

गर्हण न. (गर्ह्+ल्युट्) एक कृत्य जिसमें प्रधान महिषी (पटरानी) (उस) घोड़े की निन्दा करती है, जिसके साथ वह लेटती है और नाटकीय ढंग से मैथुन-क्रिया का प्रयास करती है। अन्य रानियां एवं उनके परिकर एवं ऋत्विजों के मध्य एक अश्लील वार्ता का आदान-प्रदान होता है, आप.श्रौ.सू. 20.18.4; आश्व.श्रौ.सू. 10.8.10-13 (अश्व); तुल श.ब्रा. 13.5.2.2-9.

गलाप्रवेष्टन न. (गलाया: प्रवेष्टनम्, प्रवेष्टन=प्र+वेष्ट्+णिच्+ल्युट्) गले के चारों तरफ फंदा लपेटना (या कसना), मा.श्रौ.सू. 9.2.4.10.

गतुल वि. पीठ पर कूबड़ वाला, मा.श्रौ.सू. 8.12.2 (यूप के लिए वृक्ष)।

गल्दा स्त्री. प्रवाह, धारा, मा.श्रौ.सू. 1.7.2.18; अनु. इस ऋचा के साथ 'बूंदें मुझमें प्रविष्ट हों, वेणु से (निकली) धारा मेरे रस में स्फूर्ति का सञ्चार कर दे, अश्व मेरे यश को खींचे; ऋत्विग्-गण एवं यजमान खाते हैं। होता सबसे पहले इसका आनन्द लेता है।

गवामयन न. (गवां अयनम्) गायों (अथवा सूर्य की किरणों) का गमन (-पथ); एक सांवत्सरिक सत्र (वार्षिक सत्र) जो 361 दिन तक चलता है (30 दिन के बारह महीने); इसमें तीन अनुभाग समाहित हैं, इनमें प्रथम व तृतीय प्रत्येक 180 दिन लेते हैं एवं केन्द्रस्थ=बीचवाला (विषुवत्) 1 दिन। सत्र के लिए दीक्षा एकाष्टका पर सम्पन्न होती है। एक दिन वाले 'महाव्रत' का अनुष्ठान उपान्त्य दिन पर सम्पन्न होता है एवं वर्ष के प्रथमार्ध में स्वीकृत यज्ञ का क्रम सामान्यत: द्वितीय अर्ध में उलट दिया जाता है, का.श्रौ.सू.13, ला.श्रौ.सू.10.13.12.

गवामयनन्याय पु. (गवामयनस्य न्याय:) गवामयन याग में स्वीकृत तन्त्र (तरीका), ला.श्रौ.सू. 10.13.13

गवामयनपक्ष पु. (गवामयनस्य पक्ष:) गवामयन (मास) का आधा भाग, का. श्रौ.सू. 24.5.9 (विषुवन्तमभितो गवामयन पक्षयो: प्रथमोत्तमौ प्रथमोत्तमौ)।

गवीधुक पु. (स्त्री.) वर्षा ऋतु में उगने वाला जंगली अनाज, मोटे जौ का अनुहरण करने वाला, पशु इसे अत्यधिक पसन्द करते हैं (जिससे इसका नाम पड़ा); इसके आटे का प्रयोग घर्म के लिए चमकाने वाले कोमल द्रव्य के रूप में किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 15.3.16; 16.19.13; मा.श्रौ.सू. 6.2.4.6 ('गवीधुक' का मिश्रण चित वेदि के छूते हुए नितम्ब की अन्तिम इष्टका पर छितरा दिया जाता है)।

गवीधुकयवागू स्त्री. (गवीधुकस्य यवागू:) गवीधुक के अनाज की लपसी, आप.श्रौ.सू. 17.11.3.

गवीधुकसक्तु (गवीधुकस्य सक्तवः) गवेधुक के पिसे हुए दाने (सत्तू), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.3.

गवीधुकासक्तु पु. (गवेधुकायाः सक्तवः) गवेधूका के पिसे हुए दाने (अर्थात् सत्तू), का.श्रौ.सू. 18.1.1

गातु पु. निकास, निर्गम, समाधान, जै.ब्रा. I.184=विद्

गाथा स्त्री. शुनःशेप के आख्यायन में ऋ.वे. ऋक्पादों के साथ अन्तःप्रकीर्ण पौराणिक आख्यान (कीथ.ऋ.वे.ब्रा 299-309); आप.श्रौ.सू. 18.19.10 (राज.); इसका पाठ होता करता है, एवं अध्वर्यु का उत्तर (प्रतिगर) एक 'गाथा' के अनन्तर 'तथा ऋचाओं के शंसन के पश्चात् 'ओम्' होता है, वही 13; तुल. हीस्टरमैन 158, हि.आ.ध. (2), 1218; (नाराशंसी गाथा) विशेषतः शौर्य-गाथाओं के गीत, इग्लिंग. श.ब्रा.अं. XLIV, 98; का.श्रौ.सू.20.2.7 (....गाथा गायत्युत्तरमन्द्रायाम्); 15.6.3 (ओमित्यृचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम्); आश्व.श्रौ.सू. 9.3.11; दो पादों की इकाई।

गान न. 1. साम का गायन, का.श्रौ.सू. 4.9.4 जै.श्रौ.सू. 119:159; 2. सामवेदीय स्वरों का प्रतिपादक गान-ग्रन्थ (गान संहिता) गोंड 'द रिचुअल सूत्राज्, पृ. 662.

गायत्र न. (गायत्री+अण्) एक साम का नाम (उद्गाता द्वारा 'शतरुद्रिय होम' के अनन्तर अग्निवेदि की मूर्धा पर गायत्री-छन्दस्का 'पावमानी ऋचा' पर जिसका गायन किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.9; पञ्च.ब्रा. 9.7.1 व्याख्या के लिए; एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 10.2.3.7; मापन, मा.श्रौ.सू. 10.3.4.14;=वर्णा, जै.ब्रा. III.175.

गायत्रपार्श्व न. सा.वे. 1.584 पर आधृत एक साम का नाम; पञ्च.ब्रा. 14.9.25.

गायत्री स्त्री. (गायत्री छन्द में निबद्ध) दो संयाज्या ऋचाओं का पारिभाषिक नाम, अर्थात् स्विष्टकृत् के लिए 'स हव्यवाड्-अर्मत्यः.....' के रूप में 'पुरोनुवाक्या' एवं 'अग्निं स्तोमेन बोधय' याज्या के रूप में (मा.श्रौ.सू. 4.10.3); मा.श्रौ.सू. 6.5.1.3.9.

गार न. एक साम का नाम, सा.वे. 1.214 पर आधृत; पञ्च. ब्रा. 9.2.16.

गार्मुत पु. वन्य सेम (का पाक), मा.श्रौ.सू. 5.1.9.25.

गार्मुतसप्तम वि. (गार्मुतः सप्तमः यस्मिन्) जिसमें गार्मु का सातवां हो (जोते गये=कृष्ट चयन-स्थल पर उगाया जाने वाला), आप.श्रौ.सू. 16.19.14.

गार्हपत्य पु. (गृहयपति + ञ्य) गृहपति अर्थात् गृहस्वामी से सम्बन्धित (अग्नि का नाम); तीन पवित्र अग्नियों में एक 'गृह=घरेलू' जिसका प्रयोग यज्ञ में किया जाता है; यह यजमान द्वारा गृहस्थ-अग्नि पर पहले से तपायी हुई अरणियों को रगण कर सबसे पहले प्रज्वलित की जाती है। यज्ञभूमि के पश्चिम में स्थित शाला में स्थित होती है। इसका आकार गोल (गोलाकार) एवं क्षेत्र एक वर्ग अरत्नि होता है। हविस् एवं पात्रों को तपाने के लिए प्रयुक्त, पर्यग्निकरण एवं (वैकल्पिक रूप से) हविस् को पकाना, 'गार्हपत्यसंस्काराः', का.श्रौ.सू. 1.8.34, 'अपणं वाऽऽहवनीये', का.श्रौ.सू. 1.8.35 एवं भाष्य; अन्य कुण्डों में अग्नि की स्थापना के लिए इसमें समिधायें जलायी जाती हैं, इसका स्थायी रूप से संरक्षण किया जाना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 6.2.13. पशुयाग में उत्तरवेदि का कुण्ड आहवनीय से निकाली गयी अग्नि से प्रज्वलित किया जाता है और उत्तरावेदि का कुण्ड अब आहवनीय कहलाता है; पुराना आहवनीय गार्हपत्य (अथवा प्रजापति) के रूप में कार्य करता है, आप.श्रौ.सू. 7.7.3. उसी तरह, सोम में उत्तरवेदि के आहवनीय में अग्नि के स्थानान्तरण के बाद पुराना आहवनीय 'गार्हपत्य' अथवा 'शालामुखीय' कहलाता है, शालद्वारीय, चूंकि पुराना आहवनीय 'गार्हपत्य' का प्रतिनिधित्व करता है, 11.5.10; तुल. इग्लिंग, श.ब्रा.अं. XLIII, 308 (चयन); मापों के लिए द्रष्टव्य आप.शु.सू. II.4.6.8. ऐसा प्रतीत होता है कि गार्हपत्य की स्थापना आहवनीय एवं दक्षिण में भिन्न शाला में सभी तीन अग्नियों के सर्वनिष्ठ (एक ही) मण्डप में संरक्षण के पूर्व हुआ करती है (अर्थात् जब तीनों अग्नियां एक ही मण्डप में स्थापित की जाने लगीं, उसके पूर्व गार्हपत्य की स्थापना आहवनीय एवं दक्षिण से भिन्न मण्डप में की जाती थी), का.श्रौ.सू. 4.7.8 (गार्हपत्य शाला के द्वार दक्षिण एवं पूर्व में होते हैं); का.श्रौ.सू. 4.8.1 भी द्रष्टव्य; चित गार्हपत्य आयत की आकृति में 32x13.5/7 के आकार का (बौ.शु.सू 2.64) एवं वर्ग की आकृति में गार्हपत्य 16x16 अथवा 24x24 अथवा 32x32 (बौ.शु.सू. 2.67) अंगुल होता है। यह गोलाकार भी हो सकता है, बौ.शु.सू. 2.63.

गार्हपत्यायतन न. (गार्हपत्यस्य आयतनम्) गार्हपत्य अग्नि का स्थान, भा.श्रौ.सू. 5.3.1, 27 अगुंल के व्यास वाला शाला के पश्चिम स्थित एक चक्राकार अग्नि-स्थान, श्रौ.प.नि., पृ.3

गावेधुक वि. (गवेधुकेन निवृत्तम्) गवेधुका के दानों से अनुष्ठित (कृत्य), का.श्रौ.सू. 1.1.12; द्रष्टव्य-गवेधुक।

गिरिभिद् वि. (गिरिं भिनत्ति इति, गिरि+भिद्+क्विप्) पर्वत को तोड़कर निकलने वाली (नदी), आप.श्रौ.सू. 11.20.5 (वसतीवरी के लिए संग्रहणीय जल)।

गुण पु. एक सहायक या गौण कृत्य, का.श्रौ.सू. 1.6.10 मुख्य या प्रधान कृत्य की दृष्टि में, रज्जु का तन्तु, मा.श्रौ.सू. 10.3.4.15.

गुग्गुलु पु. गूगुल, एक सगुन्धियुक्त गोंद, जिसका प्रयोग सुगन्धि-द्रव्य एवं मरहम के रूप में किया जाता है, का.श्रौ.सू. 5.4.15 (वरुण प्रघास में उत्तरवेदि की नाभि पर स्थापित); द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.15.

गुद न. गुदा, मा.श्रौ.सू. 1.8.4.42 (यदि वध्य पशु दुर्बल हो, तो अध्वर्यु उसके उदर की बची हुई वसा (मेद) को वपा-होम के अनन्तर (उसकी) अंतड़ियों में भर दे); का.श्रौ.सू. 6.7.12 (उदरमेदोऽवशिष्टं गुदे प्रास्यति कृशश्चेत्)।

गुदतृतीय न. (गुदस्य तृतीयम्) (वध्य पशु की) गुदा का तृतीय भाग, का. श्रौ.सू. 8.8.3 (आग्नीषोमीय उपयड्होम); श्रौ.को. (सं.) II.593

गुप्ताशन न. (गुप्तं च तद् अशनम्) गुप्त खाद्य, मा.श्रौ.सू. 8.20.6.

गुरु पु. अध्यापक, मा.श्रौ.सू. 4.7.5 (प्रवर्ग्य के लिए अवान्तर दीक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थी उन्हें परिधान, गाय एवं काँसे का पात्र प्रदान करता है)

गूर्द न. सा.वे. 1.448 पर आधृत एक साम का नाम; पञ्च.ब्रा. 13.12.14 (इस का गायन 'दशाह' के छठें दिन किया जाता है); ला.श्रौ.सू. 6.1.1.

गृष्टि स्त्री. गलकम्बल पर झब्बा से युक्त ओसर, मा.श्रौ.सू. 6.5.2.10,13

गृह पु. (बहु.व.) (ग्रह्+क) गृह, निवास (अध्वर्यु का चार गृह-कृत्य के सम्पादन के लिए कृत्यों का नाम है- आहवनीय को आगे ले जाना, आहरण समिधा डालना, जटाओं को तानना, एवं बछड़ों को दूर ले जाना); (ऐसा धूर्तस्वामी की मान्यता है), भा.श्रौ.सू. 1.3.4.

गृहपति पु. (गृहस्य पतिः) गृहस्थ, घर का स्वामी, यह शब्द अध्वर्यु के प्रैष में यजमान के लिए प्रयुक्त हैं, आप.श्रौ.12.27.6; सत्र में यजमान को गृहपति कहते हैं, 21.2.1; मुख्य (शां.श्रौ.सू. 13.14.4) अथवा प्रधान प्रतिभागी, आश्व.श्रौ.सू. 2.4.8; अग्नि गृहपति,शां.श्रौ.सू. 1.15.2; सत्र का मुख्य यजमान, आश्व.श्रौ.सू. 6.10.26; 12.6.34; का.श्रौ.सू. 24.6.18 (आयुर्गृहपतिमरणे)।

गृहमेध वि. घरेलू कर्मकाण्ड से सम्बन्धित, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.23.

गृहमेधिस्विष्टकृत् न. गृहमेधीय के लिए स्विष्टकृत् आहुति, का.श्रौ.सू. 5.6.17 (साकमेध)।

गृहमेधीय वि. (गृहमेध + छ, ... गृहमेधाच्छ च.,पा. 4.2.32) मरुतों का विशेषण, शां.श्रौ.सू. 14.10.16 गृह्य कर्मकाण्ड से सम्बन्धित, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.5; 1.7.5.10 (साकमेध); द्रष्टव्य-ऋवे. 7.56.14 (गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्)

गृह्य वि. (बहु.व.) वधू के सम्बन्धी, 'घर में निवास करने वाला'। इस शब्द का प्रयोग वर के उन सम्बन्धियों के व्यावर्तन के लिए है जिन्हें 'आहूयमान' कहते हैं, शां. गृ.सू. 1.6.4; 'न हिंस्याद् गृहान्कामं श्वः', का.श्रौ.सू. 4.12.13 (अग्निहोत्र।)

गोआसुस् न. (द्वि.व.) (गौःच आयुश्च) गो और आयुस् नाम वाले दो सोमयाग, जै.ब्रा. II.58.

गोचर पु. (गावश्चरन्त्यस्मिन्) चारागाह (गावो यत्र चरन्ति), आप.श्रौ.सू. 1.2.4.

गोचर्म न. पाप के प्रायश्चित्त के लिए उपहार के रूप में प्रदान की गयी विशिष्ट आकारवाली भूमि का एक टुकड़ा। बृहस्पति के अनुसार यह 30 लट्ठे का होता है (दस हाथ के लट्ठे से वर्गाकार),1.210 पर मिताक्षरा के अनुसार यह उस भूमि का विस्तार है, जिसमें एक हजार गायें अपने बछड़ों के साथ एवं एक बैल कुछ न करते हुए खड़े होने की बाध्यता के बिना आ सकें, विष्णु.ध.सू. कि व्याख्या के अनुसार यह इतनी भूमि होती है, जिसमें एक वर्ष तक एक व्यक्ति ना निर्वाह हो जाय (5.181 तु.)।

गोचिति स्त्री. (गौरिव चितिः) पशु की कामना वाले व्यक्ति के निर्धारित चित वेदि के एक प्रकार का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.4.11

गोत्रनामन् न. (गोत्रस्य नाम) विवाह में कन्या की माँग के पहले वर के सम्बन्धियों द्वारा घोषणीय (घोषणा किया जाने वाला) वर के गोत्र का नाम, शां.गृ.सू. 1.6.4.

गोदान न. बालक के सोलहवें वर्ष में अनुष्ठेय उसके बाल एवं दाढ़ी को मूंड़ने का कृत्य। इस कृत्य में बिना चोटी (शिखा) को छोड़े सम्पूर्ण बाल मुण्डित कर दिया जाता है, 'चौलकर्म'

अथवा 'चूडाकरण' के विपरीत, आप.श्रौ.सू. 1.28.19; आश्व गृ.सू. 1.18.6; 'गोदान' का चूडाकरण से तादूप्य है, शां.गृ.सू. 1.28.19 एवं के शान्त से पा.गृ.सू. II.1.7. किन्तु का. गृ.सू. 44 के मतानुसार यह बाल-कर्तन के जातकर्म संस्कार का अनुकरण करता है; द्रष्टव्य-गोंड, द रिचुअल सूत्राज्, पृ. 662; 2. (यजमान के कान के आस-पास) के बालों को मूड़ना, का.श्रौ.सू. 5.2.14; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.23,529

गोदानव्रत न. (गोदानसम्बद्धं व्रतम्) 'गोदान' से सम्बद्ध व्रत, आप. गृ. सू. 16.14; सामवेदियों के लिए, गौ.गृ.सू. 3.1.

गोधावीणाका स्त्री. (गोधाया: वीणाका) गोह (गोधा) के चमड़े से निर्मित वीणा, का.श्रौ.सू. 13.3.17 (गोधाचर्मणा नद्धा वीणा गोधावीणाका, स.वृ.) (गवामयन)।

गोधूमचषाल न. (गोधूमस्य चषाल:) गेहूँ के आटे की लोई से निर्मित (यज्ञीय यूप के शिखर के समीप) चषाल-संज्ञक वलय, उत्कीर्णसमाग्रो गोधूमचषाल:', का.श्रौ.सू. 14.1.22 (स.वृ. के व्याख्यानुसार वि., गोधूमानां विकार: गौधूमं तच्चषालं यस्य स:, इस व्याख्या के अनुसार शब्द हैं-गौधूमचषाल)।

गोनामिक पु. गाय के नामों के उपयोग से युक्त यज्ञ, मा.श्रौ.सू. 9.5.5.1।

गोपितृयज्ञ पु. 'यद्देवा देवहेडनम्' आदि (22 मन्त्रों) के साथ आहुति-पर्यन्त धार्मिक मुण्डन के साथ चलने वाले कृत्य का नाम, श्रौ.प.नि. 56.385 एवं 382

गोमती स्त्री. (गो+मतुप्+ङीप्) यजमान द्वारा स्वयंकृत विष्णु-क्रमणों के अनन्तर पढ़ी जाने वाली गो. (गाय) की अभिव्यञ्जना से युक्त ऋचा आप.श्रौ.सू. 4.16.20; 'गोमान् अग्ने', आदि ऋचा, भा.श्रौ.सू. 4.22.13; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (अं.) I.429; तै.सं. 1.6.6.4;

-**जप** (गोमत्या:जप:) 'गोमती' ऋचा का जप, श्रौ.प.नि. 42.352.

गोमृग पु. गोयल, अर्थात् एक वन्य वृषभ (वायु देवता के लिए अर्पणीय), भा.श्रौ.सू. 5.2.10.24.

गोमृगकण्ठ पु. (गोमृगस्य कण्ठ:) गोमृग का गला, (इसके साथ अश्व के रक्त की आहुति दी जाती है), मा.श्रौ.सू. 9.2.5.14.

गोयज्ञ पु. (गवां समृद्धये यज्ञ:) गायों के लिए सौभग्यशाली अथवा वृद्धि के अनुकूल स्थिति को प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला कृत्य, गौ.गृ.सू. 3.6.10; इसकाा अनुष्ठान (शूलगव) ये प्रतिदर्श पर किया जाता है, पा.गृ.सू. 3.8.15 (एतेनैव गोयज्ञो व्याख्यात:)

गोयुग न. (गो: युगम्) बैलों की जोड़ी, वृषभ-युग्म, मा.श्रौ.सू. 6.1.6.7 (गोयुगेन चात्वालं विदधाति)

गोरङ्गिरस:सामन् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा.4.9.3 सा.वे. 1.458 पर आधृत।

गोरालम्भ पु. तीन अवसरों पर किया जाने वाला गाय को मारने का कृत्य: अतिथियों का सत्कार, पितृ-यज्ञ एवं विवाह, आप.गृ.सू. 3.10 (स्पष्टत:, आप.गृ.सू. 'शूलगव' को छोड़ देता है); मृतक के सम्मान में, पा.गृ.सू. 3.10.49 (प्रेतायोद्दिश्य गामप्यैके घ्नन्ति)। अष्टका में इसकी वपा पकायी जाती है और उस (वपा) की आहुति दी जाती है; इसके मांस से 'मांसौदन' तैयार किया जाता है और उस (मांसौदन) की आहुति दी जाती है। मांस का एक अंश अन्वष्टका (दूसरे दिन) में ब्राह्मणों के रात्रिकालीन भोजन में परोसने के लिए बचा लिया जाता है, आप. गृ.सू. 22.3-5 (सुदर्शन की टिप्पणी एवंविध है, 'वपाहोमान्तगोर्विशसनं कारयित्वा अन्वष्टका-ब्राह्मण-भोजनयज्ञार्थं मांसमवशिष्य')। विवाह-संस्कार के समय अतिथियों के सत्कार के लिए वधू के पिता द्वारा एक गाय का वध किया जाता है, 3.6; एवं वर के (सत्कारार्थ); एवं पतिगृह वापस आने के बाद नवविवाहित दम्पती के (सत्कारार्थ), शां.गृ.सू. 1.12.10; किसी स्नातक के समावर्तन के समय (उसके सम्मानार्थ), आप.गृ.सू. 13.15-17 (इसे अपचित कहते हैं, आश्व.श्रौ.सू. 1.24.8). गोमांस-भक्षण का धार्मिक-नियम सुदर्शन (1550 ई.) की भावनाओं के लिए नितान्त अरुचिपूर्ण है (इसीलिए) वे धर्म-भक्त को यह कहते हुए चेतावनी देते हैं कि 'गोवध' कलियुग के अनाचारों में अन्यतम के रूप में परिगणित है इसलिए कलिर्वज्य होने के कारण गोमांस-भक्षण की आदत अब छोड़ देनी चाहिए (आप.गृ.सू. 13.16. पर)।

गोषूक्त न. एक सूक्त का नाम तै.ब्रा. 2.8.9-11,12; 'आ गावो अग्मन्' से प्रारम्भ होने वाली आठ ऋचायें, आप.श्रौ.सू. 5.19.9 (इस सूक्त में गायों की स्तुति है और इस सूक्त का प्रयोग वात्सप्र के विकल्प के रूप में होता है। रु. के

अनुसार- यह एक साम का नाम है, जिसका गायन सायं अग्निहोत्र के पश्चात् प्रार्थना के रूप में किया जाता है); तुल. श्रौ.को. (अं.) 1.11.17.

गोष्ठ (गाव:तिष्ठन्ति यस्मिन्) गोशाला जहाँ जल-मिश्रित पृषदाज्य का अवशिष्ट भाग उड़ेला जाता है, आप.गृ.सू. 15.4 (जातकर्म)।

गोसव पु. उक्थ्य-सदृश एक एकाह का नाम, जिसमें अनुष्ठान करने वाले लोगों को 'गाय (पशु) की तरह व्यवहार करने' की आवश्यकता होती है, (पशुव्रत) एक वर्ष के लिए, आप.श्रौ.सू. 12.12.19 (तै.ब्रा. 2.7.6, पञ्च.ब्रा. 19.13); यह अति विशिष्ट रोचक बात है क्योंकि इस कृत्य में अपने गोत्र में ही 'अगम्यागमन' करना पड़ता है (अर्थात् अपनी गोत्रीय से ही मैथुन क्रिया की जाती है); सम्भवत: यह आदिम स्वच्छन्द-सम्भोग का स्मारक है; तुल.जै.ब्रा. 2.113; आप.श्रौ.सू. 22.13.1-3; कीथ रि. एण्ड. फिला. आफ वेद 338; आस्ट्रेलियाई कबीलों के बीच प्रचलित कर्मकाण्डीय उन्मुक्त सम्भोग, एस.एफ. NTCA 92.111 (चि.भा.से.) जै.ब्रा. II.113.

गौंगव न. सा.वे. 1.247 पर आधृत साम का नाम, पञ्च. ब्रा. 14.3.18.

गौतम न. सा. वे. 1.344 एवं 42 पर आधृत साम का नाम, पञ्च. ब्रा. 11.5.21; 12.3.15

गौधूम वि. (गोधूमस्य विकार:) गेहूँ के आटे से निर्मित, का.श्रौ.सू. 14.5.7 (चषाल-वलय)

गौरिवीत न. 'वण् महाँ असि सूर्य' पर एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.7.1; ऋ.वे. 8.101.11; श्रौ.को. (सं.) II 647; साम वे. 1.168 पर आधृत।

ग्रन्थिकरण न. (ग्रन्थे: करणम्) गाँठ बाँधना, बौ.श्रौ.सू. 12.10.15.

ग्रह पु. 1. घी का (प्रवाह), मा.श्रौ.सू. 2.2.1.15; ऋ.वे. 10.114.5; 2. होतृमन्त्र का पश्चाद्वर्ती अंश, जिसका नाम 'चातुर्होत्र' आदि है, मा.श्रौ.सू. 5.2.14.2, 3; 3. उस मन्त्र का नाम जिसके साथ दक्षिणी अग्नि चिता पर रखी जाती है, अर्थात् 'वाचस्पते विधे नमन्', श्रौ.को. (अं.) 1.1061; 4. द्रव विशेषत: सोम का आहुति के लिए आहरण, सम्बन्धित कृत्य एवं प्यालों (चमस) के बारे में भी कथित, एक द्रवाहुति को भी अभिहित करता है, आप.श्रौ.सू. 12.7.10. यह सोम रस को उड़लने एवं निथारने का एक विस्तृत कर्मकाण्ड है। अग्निष्टोम में, जो सभी सोम यागों का मानक स्वरूप (प्रकृति) है, प्रात: काल (प्रात: सवन) में निम्नलिखित ग्रह होते हैं, उपांशु (जो विशेष प्रकार का होता है), अन्तर्याम, द्विदेवत्य (और इसके सदृश अन्य), ऐन्द्रवारुण, मैत्रावरुण, आश्विन शुक्र मन्थिन्, आग्रयण उक्थ्य, ध्रुव, छ: ऋतु, ऐन्द्राग्न, वैश्वदेव; दोपहर (माध्यन्दिन) के समय शुक्र, मन्थिन् आग्रयण, मरुत्वतीय उक्थ्य; एवं तीसरे (तृतीय) में : आदित्य, महावैश्वदेव पात्नीवत, ध्रुव, एवं अन्तत: अवसान में हरियोजन। आठ मुख्यों से पृथक्, निम्नलिखित तरीके से आहरण किया जाता है : उन्नेता सोम रस का 'उदञ्चन' संज्ञक करछुल अथवा चमस से 'आधावनीय' पात्र में से आहरण करता है और इसे (सोम रस को) धारा रूप में होता के उस चमस में निथारता है, जिसमें पहले से ही 'निग्राभ्य' संज्ञक जल रहता है, तब यजमान होता के चमस से द्रव को द्रोणकलश में निथारता है, जिस (द्रोणकलश) के ऊपर उद्गाता एवं उसेक सहायक ऋत्विज् एक शोधक (पवित्र) पकड़े रहते हैं। अन्तत:, अध्वर्यु सोमरस का आहरण द्रोणकलश में से एक 'पवित्र से आवृत अपने प्याले (में) करता है, आप. श्रौ.सू. 12.13.1-3; CH 160-8, इसे धाराग्रह कहते हैं। उस 'अधारा' के विपरीत, जिसका वर्णन नीचे किया जा रहा है, एवं सीधे द्रोणकलश में से परिप्लवा से; चिन्नस्वामी, पृ. 67.68 टिप्पणी करते हैं कि- अधारा ग्रह ये हैं, अर्थात् दधि, अंशु, अदाभ्य एवं उपांशु जो या तो सोम की छड़ियों को द्रव में हिलाकर (विलोडन कर) अथवा चर्म पर पीस कर (आघात कर) लिये जाते हैं, और धाराग्रह जो द्रोणकलश पर छलनी अथवा छन्नी के माध्यम से 'निग्राभ्य' जल के साथ उड़ेले जाते हुए सोम के खाँचे? से प्राप्त किये जाते हैं। ये हैं- अन्तर्याम, द्विदेवत्य (दो देवताओं वाले) प्याले जैसे ऐन्द्रवायव आदि, आग्रयण, उख्य एवं ध्रुव। दोपहर के समय ये होते हैं- शुक्र, मन्थिन्, आग्रयण, उख्य एवं मरुत्वतीय। तृतीय में हैं- आदित्य एवं वैश्वदेव सोमाहुतियाँ, उदाहरणार्थ- ऐन्द्राग्न, वैश्वदेव आदि के पूर्व एक शस्त्र का पाठ (शस्त्रग्रह) होता है, का.श्रौ.सू. 9.13.33 (ऐन्द्राग्नमादायाश्राव्याहोथ्कशा यज सोमस्येति) एवं 9.13.34. द्रोण कलश में बचा हुआ सोमारस 'शुक्र' कहलाता है एवं

'पवित्र' में अवशिष्ट रस इसमें निचोड़ लिया जाता है, 9.6.15-25. वाजपेय याग में सत्रह सोम एवं सुराग्रह होते हैं, 1.3.36 पर भाष्य। दधि के आहरण को दधि कहते हैं, आप.श्रौ.सू. 12.7.5; द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 249.190-99 ऐन्द्रवायव प्याले का बाहरी शरीर एक गोलाकार वलय से चिह्नित कर दिया जाता है। मैत्रावरुण चमस (प्याले) के दो किनारे होते हैं। शुक्र प्याला बिल्व-काठ का बना होता है जबकि मन्थिन् चमकाया हुआ और विकङ्कत से निर्मित होता है। अदाभ्य चमकाया हुआ एवं उदुम्बर (गूलर) की लकड़ी से निर्मित होता है। अतिग्राह्य प्यालों का निर्माण न्यग्रोध (वट) के काष्ठ से होता है। दो मुख वाले दो प्याले 'ऋतु-पात्र' के नाम से जाने जाते हैं। अन्य प्याले न्यग्रोध अथवा उदुम्बर की लकड़ी से निर्मित होते हैं 4. आकाशीय ग्रह, अ.वे.(परि.), पृ. 26.5.9.

ग्रहकाल पु. (सोमग्रहस्य कालः) वह समय जब प्याले सोम के रस से आपूरित किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 18.2.1.

ग्रहग्रहण न. (ग्रहस्य ग्रहणम्) (सोम के) प्याले को आपूरित करना, का.श्रौ.सू. 13.2.14.

ग्रहण वि. प्याले को ग्रहण करने के लिए (मन्त्र), मा.श्रौ.सू. 2.4.2.2.

ग्रहणी स्त्री. सोम के प्याले के आपूरण के सन्दर्भ वाली ऋचा, आप.श्रौ.सू. 18.2.6 (कैलण्ड. तै.सं. 1.8.2.1 का प्रयोग इस प्रकार से सोम-ग्रहों के ग्रहण के लिए एवं तै.सं. 1.7.1-2 का सुराग्रहों के ग्रहण के लिए होता है)

ग्रहभक्षमन्त्र पु. (ग्रहभक्षस्य मन्त्रः) प्याले में स्थित सोम के भक्षण के समय प्रयुक्त होने वाला मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 13.32.2 एवं 13.27.18.

ग्रहाग्र न. (विभिन्न सोम यागों में) सोम के प्याले (लों) की प्राथमिकता, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.1 (प्रायणीय, उदयनीय एवं द्वादशाह के दशम दिन ऐन्द्रवायव), पृष्ठ्य के प्रथम तीन दिनों में प्रथम ग्रह हैं : क्रमशः ऐन्द्रवायु, शुक्र एवं आग्रयण। दूसरे तीन दिनों में एवं छन्दोम दिनों में छन्दःक्रम के सामान्य होने की स्थिति में उसी को ही बनाये रखते हैं। यदि छन्दों का स्थान बदला गया (तो) प्रथम दो दिन आग्रयण एवं ऐन्द्रवायव प्रथम होते हैं, दूसरे दो दिन में शुक्र प्रथम होता है और उसके बाद के दो दिन में क्रमशः ऐन्द्रवायव प्रथम के रूप में होते हैं, मा.श्रौ.सू. 2.3.5.1 (ऊर्ध्वम् अन्तर्यामात् ग्रहाग्राणि); भा.श्रौ.सू. 13.14.3.

ग्रहावकाश पु. एक मन्त्र के वर्ग का नाम (आप.श्रौ.सू. 12.18.17-18-19) जिनका उच्चारण ब्रह्मा-नामक ऋत्विज् द्वारा उस समय किया जाता है, जब अन्य ऋत्विज् 'वपामार्जनम्' के पश्चात् प्रातःकालीन सवन के लिए आगे बढ़ते हैं, आप.श्रौ.सू. 14.10.6; द्रष्टव्य-श्रौ.को.(सं.) II. 294; भा.श्रौ.सू. 14.2.14; 13.19.11; तु.तै.सं. 3.2.2.1; 3.1.2.

ग्रहावकाशोपस्थान न. (ग्रहावकाशेन उपस्थानम्) ग्रहावकाश मन्त्रों से प्रार्थना करना, भा.श्रौ.सू. 14.2.14; तुल. आप.श्रौ.सू. 13.19.11; 12.18.17-19.

ग्रहावेक्षण न. (ग्रहस्य अवेक्षणम्) सोम के प्याले पर दृष्टिपात करना। अध्वर्यु 'उपांशु' प्लाले को प्रतिप्रस्थाता से लेता है और इसको 'मधुमतीर्न इषस्कृधि' के साथ देखता है, श्रौ.प.नि. 270.280

ग्रामकाम (तन्त्र) न. (ग्रामकामस्य तन्त्रम्) गाँव की कामना के लिए 'रयिमन्त्' आज्य भागों एवं 'संवन्त्' संयाजों, अर्थात् सं समद्युवसे.....' एवं 'सखायः सं वह.....' (भा.श्रौ.सू. 4.11.1) से युक्त एक कर्मकाण्डीय युक्ति; श्रौ.को. (अं.) I.540

ग्रामवचन न. (गामस्य वचनम्) ग्राम (के समुदाय का लौकिक) निर्देश, जिस का पालन विवाह-संस्कार के समय कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में निर्दिष्ट क्रियाओं के अतिरिक्त करना पड़ता है (अर्थात् लोकाचार), पा.गृ.सू. 1.8.11 (जातिजनपदान् धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित्। समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥ मनु स्मृ. 8.41); विवाह-संस्कार एवं अन्त्येष्टि के समय इन ग्राम वचनों को भी समाविष्ट किया जाता है, ग्रामं प्रविशतात् : आधिकारिक वचन से उद्धृत ग्राम (वचन) का हमें आश्रय लेना चाहिए, अतः इन दो अवसरों पर ग्राम वचनों का ही प्रामाण्य स्वीकृत है, 12-13 (ग्रामप्रमाणम्)। ओल्डेनबर्ग, श.ब्रा.अं XXIX, 285 के पाठानुसार 'प्रविशितात्' एवं उनके अनुसार इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'गाँव में प्रवेश करना। किन्तु इस अर्थ की कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि उस समय लोग गाँव में ही रहते थे; द्रष्टव्य-ग्रामधर्म, जनपदधर्म, आश्व.गृ.सू. I.1. मनु भी ग्राम एवं जनपद धर्मों की बात करते हैं। (ग्रामवचनं च कुर्युः)

ग्रामाग्नि पु. (ग्रामस्य अग्निः) सामान्य अग्नि, का.श्रौ.सू. 4.8.10 (गार्हपत्येऽनुगते ग्रामाग्निमाहृत्य चातुप्राश्यं पक्त्वा विहरेत्)।

ग्रामेगेय न. (ग्रामे गेयम्, सुबलुक्) गाँव में गाया जाने वाला सामवेद का भेद या प्रकार, जै.ब्रा. 1.134

ग्रामेऽनुवाक्य न. गाँव में गाये जाने वाले विशिष्ट मन्त्रों का वर्ग (गण), आप.श्रौ.सू. 17.17.1 (तुल. अरण्येऽनुवाक्य)।

ग्रावन् पु. सोमलता के सवनार्थ प्रयुक्त प्रस्तर, मूल रूप से दो, ऋ.वे. 2.39.1 (ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे), बाद में इनकी संख्या 4 हो गई, शांखा. ब्रा. 29.1; अथवा पाँच पत्थरों का उल्लेख किया गया है, श.ब्रा. 3.5.4.24 भाष्य; वास्तव में 4 'ग्रावन्' एवं एक उपांशु-सवन', का.श्रौ.सू. 8.5.28; वै.श्रौ.सू. 11.9; कुछ लोगों के मतानुसार 'उपांशुसवन के अतिरिक्त 'ग्रावन्' की संख्या पाँच होती है, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.21. लघु-सवन (क्षुल्लकाभिषव) के समय अध्वर्यु सोम के डण्ढलों को केवल उपांशु सवन से ही कूटता है, आप.श्रौ.सू. 12.10.2; बौ.श्रौ.सू. 7.5; CH 153. महासवन (महाभिषव) के समय 'अभिषवणचर्म' के चारों ओर बैठे हुए चारों ऋत्विज् अपने-अपने पत्थरों से सोम के डण्ढल पर प्रहार करते हैं, और उन पर जल छिड़कते हैं; का.श्रौ.सू. 9.5.1 (उपविष्टयोरभिषुण्वन्ति चत्वारः पर्युपेशनसार्मथ्यात्); CH 158; वे प्रत्येक एक अरत्नि के बराबर एवं तीक्ष्ण धार वाले होते हैं, का.श्रौ.सू. 1.3.36; भाष्य.

ग्रावमुख (ग्राव्णः मुखम्) 'ग्रावन्'-संज्ञक सवन-प्रस्तर का सामने वाला भाग, बौ.श्रौ.सू. 7.6

ग्रावस्तुत्

ग्रावस्तुत् पु. (गावाणं स्तौति, ग्रावन्+स्तु+क्विप्) पत्थरों (ग्रावन्) की स्तुति करने वाला; होता का सहायक ऋत्विज् (होतृ-वर्ग का ऋत्विज्)। वह 'ग्रावस्तोत्र' का (आश्व.श्रौ.सू. 5.12, 9-25) अथवा 'ग्रावस्तोत्रिय' का पाठ करता है, आप.श्रौ.सू. 13.1.6; CH 269 माध्यन्दिनसवन के समय। इसी समय वह दृष्टिपथ पर आता है, वह हविर्धान मण्डप में प्रवेश करता है, अध्वर्यु से एक पगड़ी (उष्णीष) प्राप्त करता है, अपने शिर पर रखता है एवं विना किसी संकेत या चेतावनी के पाठ प्रारम्भ कर देता है (आप.श्रौ.सू. 13.1.6)। यह पाठ की सामान्य प्रक्रिया से अपसरण है; तुल. CH 268. वह सोम-पान में अपना भाग ग्रहण करता है, मी.सू. 3.5.27 (चि.भा.से.); द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.549.

ग्रावस्तोत्रीया स्त्री. निश्चित ऋचाओं का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 5.12.7; 9; ऋ.वे.1.24.3, आदि.

ग्रावोवायव्य न. सवन प्रस्तरों एवं वायव्य प्यालों (को ले जाना), बौ.श्रौ.सू. 6.6.30 (सोम में प्रणयन)।

ग्रीष्म पु. ग्रीष्म, ग्रीष्मऋतु (निष्काम क्षत्रिय एवं धन की कामना वाले व्यक्ति के पवित्र अग्नि के आधान का सर्वोत्तम समय, 'ग्रीष्मः क्षत्रियश्रीकामयोः, का.श्रौ.सू. 4.7.6 (निष्कामस्य क्षत्रियस्य, श्रीकामस्य त्रैवर्णिकस्य च ग्रीष्म ऋतुराधानकालः, स. वृ.);

ग्रुमुष्टि पु. यज्ञिय घास (दर्भ) से पूर्ण मुट्ठी (अथवा बड़ी मुट्ठी भर दर्भ), घास का पूर्ण गुच्छ 'समा दर्भमुष्टिः, मूलाग्रयुक्ता दर्भमुष्टिः, स्थूला दर्भमुष्टिः, साग्रमूलहीना दर्भमुष्टिः, बौ.श्रौ.सू. 9.13 पर भाष्य। मुट्ठी भर दर्भ की पत्तियां, श्रौ.को. (सं.) II.539

घ

घट्टयति (घट्ट+णिच्+लट् प्र.पु.ए व.) हिलाता है (निक्षेप के उपधान=रखने के पूर्व कूर्म को), 'घट्टयति मध्यमया', का.श्रौ.सू. 17.5.2 ('घट्ट' धातु से - घट्टते, घट्टयति= चलना या हरकत देना); हिलाना.

घन पु. घन, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.9 (गणितीय शब्द)

घर्म पु. (घृ+मक्) गाय अथवा बकरी का (उबलते हुए आज्य से मिश्रित) गरम दूध, महावीर पात्र में रखा हुआ, जिसका प्रयोग अश्विनों एवं वायु आदि के लिए आहुति में किया जाता है और उसी (महावीर पात्र में) स्थित शेष भाग का भक्षण यजमान एवं कुछ ऋत्विजों : होता, ब्रह्मा, प्रतिप्रस्थाता एवं अगीध्र द्वारा 'उपयमनी' में लेकर किया जाता है, आप. श्रौ.सू. 15.11.10-13 यह क्रिया प्रवर्ग्य (सोम) के समय की है। (जिसमें घर्म स्थित होता है। वह) वह आधायक (महावीर पात्र) भी इस शब्द से अभिहित होता है, शां.श्रौ.सू. 5.10.31; द्रष्टव्य-दीर्घघर्म। अवटाये हुए दूध की गर्म आहुति (मो.वि.)

घर्मकपाल न. ताप (इष्टका) एवं (रौहिण) घट-शकल (के लिए मिट्टी), भा.श्रौ.सू. 4.1.14 (द्रष्टव्य-4, 1.20)।

घर्मतनू स्त्री. मन्त्रों का वर्ग 'प्रयश्च यस्य सप्रयश्च नामेति', श्रौ.को. (सं.) II.85 (प्रर्वग्य); 'प्र सोम देवा' पर एक साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.89

घर्मदुघ् वि. (घर्म + दुह् + कप्., द्रष्टव्य पा. 3.2.70, 'दुहः कब् घश्च') (वह गाय) जिसका दूध 'घर्म' के रूप में प्रयुक्त होता है, आप. श्रौ.सू. 15.9.3 (=दुघा, बौ.श्रौ.सू. 9.5)। भा.श्रौ.सू. 11.9.4.

घर्मपात्र न. (घर्मस्य पात्रम्) ('प्रर्वग्य'-याग के) गरम पेय (दुग्ध) का पात्र, भा.श्रौ.सू. 2.2.2.2.

घर्मप्रायश्चित्त न. (घर्मस्य घर्मे वा प्रायश्चित्तम्) प्रर्वग्य-याग में भूल-चूक (त्रुटियों) के लिए प्रायश्चित्तिक आहुति, भा.श्रौ.सू. 11.17.4 (दो अनुवाकों 'प्राणाय स्वाहा' आदि एवं 'पूष्णे स्वाहा' आदि के साथ अर्पित की जाने वाली); आप.श्रौ.सू. 15.17.4; का.श्रौ.सू. 26.7.46.

घर्मभक्षण न. (घर्मस्य भक्षणम्) 'घर्म' का उपयोग (भक्षण) श्रौ.प.नि. 226-123.

घर्मयाग (घर्मेण यागः) गरम दूध का यज्ञीय अर्पण (आहुति) काशिकर, पृ. 12

घर्मर्त्विज् पु. (घर्मे ऋत्विक्) प्रर्वग्य-याग में पौरोहित्य कार्य का सम्पादन करने वाला ऋत्विज्, का. श्रौ.सू. 10.1.22 (हुतशेषं घर्मर्त्विजः सयजमानाः समुपहावं भक्षयन्ति यथोक्तम्)।

घर्मवती स्त्री. (घर्म+मतुप्+ङीप्) 'घर्म' के सन्दर्भ वाली ऋचा, श्रौ.को. (सं.) I.203.

घर्मशिरस् न. 'घर्म शीर', आदि मूल पाठ, भा.श्रौ.सू. 5.7.4 (आधान) यजमान द्वारा उच्चारणीय, बौ.श्रौ.सू. 24.19.1; आप.श्रौ.सू. 5.12.1,3; 5.16.2; तै.ब्रा. 1.1.7.1.

घर्मस्य तनु स्त्री. जिस समय महावीर पात्र गरम किया जाता है, उस समय गाये जाने वाले एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.25; द्रा.श्रौ.सू. 2.2.27.

घर्मेन्धन न. (घर्मपाकाय इन्धनम्) घर्म (तप्त घृत) को तैयार करने के लिए ईंधन, भा.श्रौ.सू. 11.5.15.

घर्मेष्टका स्त्री. (घर्मस्य इष्टका) (अन्य मृत्पात्रों के साथ-साथ निर्मित, प्रर्वग्ययाग के लिए प्रयुक्त होने वाली) तपायी हुई ईंट, मा.श्रौ.सू. 4.1.20; 4.4.41; 6.1.7.20; 10.2.3.1, भा.श्रौ.सू. 11.3.8.

घूर्ण वि. (घूर् हिंसायाम् + क्त) कीटों द्वारा अनुविद्ध (खाया हुआ वृक्ष), भा.श्रौ.सू. 7.1.10

घृत न. (घृ+क्त) घी, शुद्धीकृत नवनीत, का.श्रौ.सू. 1.8.36 (घृतमाज्ये लिङ्गात्); यदि और कोई हविस् निर्धारित न की गई हो, तो यह घी ही है जिससे आहुति के रुप में अर्पित किया जाता है, 'तस्य होमोऽनादेशे' का.श्रौ.सू. 1.8.37; (=आज्य); मो.वि. : वह नवनीत जो आहिस्ते से उबाला गया हो और पुनः ठण्डा कर दिया गया है।

घृतयाज्या स्त्री. (घृतशब्दयुक्ता आज्या) सौम्य चरु के समय उच्चरित ऋचा 'घृतं मिमिक्षे', ऋ.वे. 2.3.11, श्रौ.को. (सं.) II.450, आज्या के रूप में (उच्चारित)।

घृतलिप्सा स्त्री. (घृतेन लिप्सा) घी से सनी हुई अथवा लिपटी हुई (मैत्रावरुण के प्याले में लिया गया घृतलिप्त जल), भा.श्रौ.सू. 13.4.10; वैखा.श्रौ.सू. 15.6.7.

घृतवती स्त्री. (विशे.) (घृत+मतुप्+ङीप्) घृत से पूर्ण (कलछी), शा.श्रौ.सू. 1.6.16.

घृतव्रत वि. (घृतपानं व्रतं यस्य) व्रत-भोजन के रूप में जो घृत का पान करता है, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.5 ('उपहव'-संज्ञक सोमयाग)।

घृतश्च्युन्निधन न. सा.वे. 1.165 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.1.16.

घृतस्तोमीय न. (घृतस्तोमस्य इदम्) घृत की स्तुति वाला सूक्त (ऋ.वे. 4.5.8, इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा में 'घृत' शब्द का प्रयोग हुआ है), शा.श्रौ.सू. 15.1.33 (आज्या शस्त्र के रूप में पढ़ा जाने वाला)।

घृतेष्टका स्त्री. अग्नि वेदि के पाँचवें परत (तह) में लगी हुई ईंटों (144-48) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.45.

घृतोन्न वि. (घृते उन्नम्, उन्न=उन्द्+क्त) घी से भीगा हुआ या घी में डूबा हुआ (वस्त्र), 'घृतोन्नमेके, का.श्रौ.सू. 15.5.10 (राजसूय)।

घृतोषित वि. (घृते उषितम्, उषित=वस्+क्त) घी में रखी हुई (उदुम्बर=गूलर की लकड़ी), मा.श्रौ.सू. 6.2.5.3 (चयन में अग्नि पर रखी गई तीन लकड़ियां)।

घोटप्रकार वि. (घोटस्य प्रकार : इव प्रकार : यस्य) घोड़े की आकृति वाला (रौहिण कपाल), आप. श्रौ.सू. 15.3.12 (प्रवर्ग्य), भा.श्रौ.सू. 11.3.7.

घोरातनु स्त्री. 'यास्ते अग्ने घोरास्तनवः' आदि मन्त्रों के एक वर्ग का नाम, भा.श्रौ.सू. 5.10.13; श्रौ.को. (अं.) I.41; तै. आ. 4.22.1.

घ्नद्वती स्त्री. (घ्नद्+मतुप्+ङीप्) 'वृत्र' नाम के असुर को 'मारने' के सन्दर्भ से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.245.

च

चक्र न. पहिया (हविराधान = हविर्धान शकट का), शां.श्रौ.सू. 7.15.2 (सोमयाग:माध्यन्दिन सवन); द्रष्टव्य-रथचक्र। आधान में 'ब्रह्मा' नाम के ऋत्विज् द्वारा गार्हपत्य-अग्नि-स्थान से 'दक्षिण' एवं आहवनीय-अग्नि-स्थान के साथ-साथ की भूमि पर रथ-चक्र घुमाया जाता है (तै.ब्रा.1.1.6; आप. श्रौ.सू. 5.14.6; द्रष्टव्य- मा.श्रौ.सू. 1.6.6.6)। वाजपेय याग में रथ का पहिया 'चात्वाल' में दृढतापूर्वक गाड़े गाये एक खूंटे पर स्थिर कर दिया जाता है। ब्रह्मा चक्र पर चढ़ता है। ब्रह्मा के गायन करते समय यह (चक्र) तीन बार इसी के चारों और घुमाया जाता है, तै. ब्रा. 1.3.6; मै.सं. 1.11.7; श.ब्रा.5.1.5.1-4,8; आप.श्रौ.सू. 18.4.3-11. चक्र उदुम्बर के काष्ठ से निर्मित होता है, द्रष्टव्य- Horsch P, Sino-Ind Studies 5, 62-69.

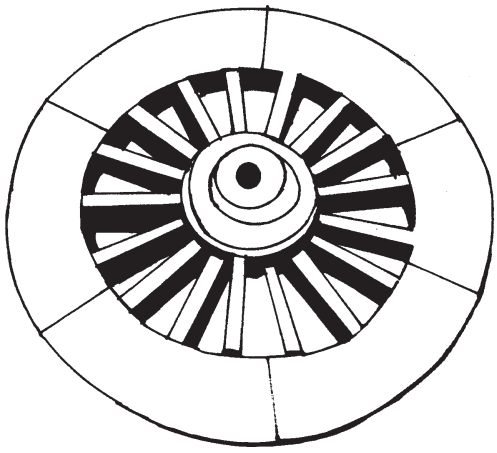

रथचक्र

चक्रवर्त्मन् न. (चक्रकृतं वर्त्म) दक्षिणा के रूप में दिये जाने वाले) रथ के चक्र के सञ्चरण से निर्मित रास्ता, द्रा.श्रौ.सू. 5.4.11.

चक्रीवत् न. (चक्री+मतुप्) पहियों से युक्त वाहन, मा.श्रौ.सू. 8.19.6 (मृत 'आहिताग्नि' का शव इस पर श्मशान भूमि में ले जाया जाता है; 2.4.5.12, ला.श्रौ.सू. 10.15.9.

चक्षुर्निर्मित वि. (चक्षुर्भ्यां निर्मितम् परिमितम् इत्यर्थ:) केवल दृष्टि से नापी गई (दूरी), भा.श्रौ.सू. 5.2.18 (गार्हपत्यादीनां निर्माणम्), बौ.श्रौ.सू. 20.25:31; 2.12:24.

चण्डातक न. 'घर्म' पात्र को चमकाने के लिए प्रयुक्त होने वाला सूती वस्त्र का एक टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 15.3.16; एक परिधान, भा.श्रौ.सू. 11.1.9 (श्लक्ष्णीकरण); का.श्रौ.सू. 14.5.3 (नेष्टा पत्नीमानेष्यन् कौशं वास: परिधापयति चाण्डातकं दहरं वा)।

चण्डाल पु. निम्नतम जाति का व्यक्ति, जाति-बाह्य, शां.गृ.सू. 2.12.10.

चतु:कुष्ठ पु. चार कोनों से युक्त एक चतुष्कोण, मा. श्रौ. सू. 10.3.2.21.

चतु:प्रस्रवणसंयुक्त वि. (चतुर्भि: प्रस्रवणै: संयुक्तम्) चार धाराओं (टोंटियों) से युक्त (जल का घड़ा), मा.श्रौ.सू. 11.2.4 (मन्त्रों का प्रायश्चित्त)।

चतुरक्षर न. (चतुर्णाम् अक्षराणां समूह) चार अक्षरों का समूह, शां. श्रौ. सू. 9.18.2; आश्व. श्रौ.सू. 6.4.6 (चत्वारि अक्षराणि यस्य) वि. चार अक्षरों वाला, ला.श्रौ.सू. 6.10.2.

चतुरक्षरशस् क्रि.वि. (चतुरक्षर + शस्) एक वर्ग में 4 अक्षरों के साथ, ला.श्रौ.सू. 7.7.9.

चतुरन्त वि. (चत्वार: अन्ता: विभागा: यस्य) चार भागों में विभक्त (दक्षिणी पुरोडाश), मा. श्रौ. सू. 1.3.3.20.

चतुरवत्त न. (चतु: अवत्तम्) 'चार भागों में विभाजन'। (विशेषत:) पुरोडाश के आहुति-दान में संसक्त चार भाग (तुल.-अवदान) अथवा संक्रियायें। ये संक्रियायें हैं : सर्वप्रथम पात्र में आज्य का उपस्तरण (परत, तह) बनाना, पुरोडाश के दो कतरों को काटना। अन्त में कटे हुए भाग (अवत्त भाग) पर आज्य का अभिघारण (उड़ेलना); चतुरवित्तिन् (में यह शब्द द्रष्टव्य है; वि. उपयुक्त क्रिया का अनुसर्ता (अनुसरण करने वाला या करने वाला), आप. श्रौ. सू. 11.18.9; तुल. श.ब्रा. 1.6.1.21. जुहू में स्रुव द्वारा चार बार 'आज्य' लेने के बारे में भी कथित, आप. श्रौ. सू. वही (दर्श)। पाँच संक्रियाओं वाले 'पञ्चावत्त' में प्रक्रिया भिन्न होती है। पञ्चावत्त की पाँच संक्रियायें हैं, 'उपस्तरण' एवं अभिघारण के अतिरिक्त पुरोडाश के तीन कतरों को काटना। जमदग्नि का कुल (परिवार) इस प्रक्रिया का पालन करता है, इसलिए वे 'पञ्चावत्तिन्' कहलाते हैं,

आप. श्रौ. सू. 11.18.2 (पञ्चावत्तं जमदग्नीनाम्), का.श्रौ.सू. 1.9.3 (तेन जमदग्नीनां पञ्चावत्तमेवेति नियमः, इतरेषां चतुरवत्तं पञ्चावत्तं वा विकल्पः, स.वृ. 1.9.5); पशुयाग में 'चतुरवत्तिन्' होने की स्थिति में भी वध्य के वपा से पाँच उसी प्रकार की संक्रियायें होती हैं, आप.श्रौ.सू. 7.20.10; मै.सं. 10.7.72; दुग्ध एवं अन्य द्रव का पाँच आहरण, आप.श्रौ.सू. 6.8.2. षडवत्त में छः संक्रियायें होती हैं : अग्नीध्र के हाथ में अथवा कटोरे में 'उपस्तरण', दो कतरों को काटना, पुनः एक कतरे के लिए 'उपस्तरण' और अन्ततः दूसरे कतरे पर दो 'अभिघारण' (उड़ेलना), आप.श्रौ.सू. 3.3.6 अथवा वैकल्पिक रूप से दो 'उपस्तरण', दो कतरों को काटना एवं दो अभिघारण, वही. 7. इसका अनुष्ठान आग्नीध्र द्वारा किया जाता है, वही 5. किन्तु 'पितृयज्ञ' में 'पञ्चावत्ती' 'षडवत्त' प्रक्रिया का पालन करता है और 'चतुरवत्तिन्' 'पञ्चावत्त' प्रक्रिया का, आप.श्रौ.सू. 8.15.5; भा.श्रौ.सू. 8.19.3 (चातुर्मास्य)। षट्पात्र वारणकाष्ठ से निर्मित दो धसकन (खोखलेपन) से युक्त कटोरा है, का.श्रौ.सू. I.3.36 भाष्य; द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 31.252-53. (अवत्त - अव + दो + क्त, तु. 'अच उपसर्गात्तः', पा. 7.4.47)।

चतुरवत्तता स्त्री. (चतुरवत्त+तल्) आहुति प्रदान करने के लिए (कुल मिलाकर) यज्ञीय पुरोडाश एवं आज्य में से चार अवदान (कर्तन) से युक्त होने की स्थिति, का.श्रौ.सू. 3.3.11 (चतुरवत्तता सवषट्कारासु)।

चतुरवत्तिन् वि. (चतुरवत्तम् अस्ति अस्य, चतुरवत्त+इनि,) (वह यजमान जो यज्ञिय पुरोडाश अथवा आज्य से 4 'अवदान' भाग ग्रहण करता है : पुरोडाश के मध्य एवं पूर्व भाग से प्रत्येक से एक, गो.गृ.1.8.6

चतुरश्र वि. (चत्वारि अश्राणि यस्य) चार कोनों (किनारों) वाले; वर्गाकार 'खर'-संज्ञक ढूह के बारे में उक्ति, का.श्रौ.सू. 8.5.29 (खरं पुरस्तात्करोति उद्धतावोक्षिते सितोपकीर्णं चतुरस्रम्, चतुरस्रं=चतुष्कोणम्, स.वृ.); चतुष्कोण (स्थण्डिल), शां.गृ.सू. 1.7.2.

चतुरस्र पु. चार पक्षों अथवा किनारों वाली एक सरलरेखीय आकृति; किन्तु सामान्यतया वर्ग, बौ.शु.सू. 1.22 (आहवनीय टीला होता है), मा.श्रौ.सू. 10.1.1.7; (ध्वनि-छिद्रों-विवरों के लिए) एक वर्ग, भा.श्रौ.सू. 2.2.2.38 (उपरव)

चतुरस्रकरणी स्त्री. (चतुरस्रस्य करणी) किसी वर्ग का पार्श्व या किनारा, बौ.शु.सू. 1.60

चतुरस्र-श्येनचिति स्त्री. (चतुरस्रा चेयं श्येनचितिः) चार किनारों (कोनों) से युक्त श्येन (पक्षी) के आकृति वाली अग्नि-वेदि। प्रकार। -बौ.शु.सू. 3.24-32 एवं 33-38, प्रकार 2 -बौ.शु.सू. 3.47-54 एवं 55-60 प्रथम एवं द्वितीय परत या तह में क्रमशः निम्नलिखित प्रकार की इष्टकाओं के प्रयोग के साथ 'वर्गाकार'

पञ्चमी 24 × 24 अङ्गुल

पाद्या 12 × 112

'आयताकार'

अर्ध्या 12 × 24

अध्यर्धा 36 × 24

चतुरहतन्त्र न.(चतुर्णामहनां समाहारः चतुरहः तद्विष्टसोमयागस्य तन्त्रम्) चार दिवसीय सोम याग की प्रक्रिया, निदा.सू. 8.9.6.

चतुराहाव वि. (चत्वारः आहावाः यस्मिन् तत्) (वह सत्र) जिसमें चार 'आहाव' अभिव्यञ्जनायें हों, शां.श्रौ.सू. 7.14.7; आश्व.श्रौ.सू. 5.10.10.

चतुरुक्थ्य वि. (चत्वारि उक्थ्यानि यस्मिन्) चार उक्थ्य दिनों वाला छः दिवसीय सोमयाग (अभिप्लव) 'षडह', का.श्रौ.सू. 24.7.23 (पञ्चोक्थ्यांस्त्रीनभिप्लवानुपेत्य चतुर्थं चतुरुक्थ्यमुपयन्ति)।

चतुरूत्तरप्रयोग पु. अन्त में चार दिनों के अनुष्ठान से युक्त यज्ञ, ला.श्रौ.सू. 10.7.4; -0 **उत्तराणि** चार की वृद्धि से युक्त, जै.ब्रा. II.58.

चतुर्गृहीत वि. (चतुः गृहीतम्) करछी में (जुहू में) चमच (स्रुव) से चार बार ग्रहण किया गया (घृत), आश्व.श्रौ.सू. 2.5.14; मा.श्रौ.सू. 1.7.4.38; का.श्रौ.सू. 15.4.37; (तुल. अष्टगृहीत)।

चतुर्थविसर्ग पु. (चतुर्थस्य विसर्गः) चौथी पीढ़ी का परित्याग; यह नियम कि केवल ऊपर की तीन पीढ़ियां ही 'पिण्ड' प्राप्त करने की अधिकारी हैं अथवा 'एकोदिद्ष्ट' के पश्चात् पितरों के परिमण्डल को प्राप्त करने के लिए अधिकृत हैं चौथी पीढ़ी अर्थात् 'प्रप्रपितामह' भी यद्यपि पितरों में एक है किन्तु नियमित 'पार्वणश्राद्ध' में उसे छोड़ दिया जाता है, शां.गृ.सू. 4.2.8; तुल. ओल्डेनवर्ग, श.ब्रा.इ. XXIX, 109.

चतुर्थीकर्मन् न. विवाह के उपभोग का कृत्य; पति द्वारा तीन रात्रि तक (त्रिरात्र, तु. अध:शय्या) की अवधि तक रति-संयम रखने के बाद इसका अनुष्ठान किया जाता है; इसे भी विवाह-संस्कार का एक अंग मानते हैं। 'दण्ड' को हटाकर पति एक होम करता है आप. गृ.सू. 8.9-10, विभिन्न देवताओं के लिए आठ आहुतियों से, शां.गृ.सू. 1.18.3; वह प्रजापति को एक स्थालीपाक समर्पित करता है (आहुति देता है) शेष भाग को जलपात्र में उड़ेलता है, जिसमें से वह पत्नी के शिर पर जल छिड़कता है। वह पक्वभोजन की खिचड़ी खाती है। पति उसके (पत्नी के) शरीर अथवा हृदय-प्रदेश पर आज्य का लेप लगाता है, आप.गृ.सू. 8.10; गौ.गृ.सू. 2.5.6. इस कृत्य को करने के बाद प्रत्येक मासिक के बाद रतिक्रिया सम्पन्न की जा साकती है, शां. गृ.सू. 1.18-19, आप.गृ.सू. 8.9-13; पा.गृ.सू. 1.11; हि.गृ.सू. 1.23.11; 24.1-8. यह कृत्य इङ्गित करता है कि विवाह के समय तक वधू युवावस्था प्राप्त कर लेती थी; तुल. हि.आ.ध. II (I) 202-04

चतुर्दीक्ष वि. (चतस्र: दीक्षा: यस्मिन्) चार दीक्षा-दिनों से युक्त 'पवित्र' संज्ञक सोमयाग (भाष्य-तीन उपसद् एवं एक सुत्यादिन) 'पवित्रश्चतुर्दीक्ष: सहस्रदक्षिण:', का.श्रौ.सू. 15.1.4 (चतुर्दीक्षस्त्र्युपसत्क एकसुत्य:, स.वृ.)।

चतुर्धाकरणम् न. अध्वर्यु द्वारा आहुति-दान के अनन्तर पुरोडाश को चार भागों में विभाजित करने का कृत्य, श्रौ.प.नि. 33.275

चतुर्भागीया स्त्री. पुरुष के एक चौथाई भाग (बौ.शु.सू. 4.35)=30 अङ्गुल के बराबर किनारों वाली वर्गाकार (ईंट)

चतुर्युज् (चत्वारो अश्वा: युज्यन्ते अस्मिन्) चार घोड़ो वाला रथ (इसमें अर्थात् रथ में जुते हुए चार घोड़े, रथ सहित 'इस यज्ञ' की दक्षिणा के रूप में दे दिये जाते हैं), का.श्रौ.सू. 22.5.10 (दक्षिणाऽश्वरथश्चतुर्युक् श्यावोऽन्यतम:)।

चतुर्विंश पु. 24 ऋचाओं वाला (उक्थ्य) सोम-याग, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.15.

चतुर्विंशस्तोम वि. (चतुर्विंशस्तोम: यस्मिन्) चौबीस ऋचाओं वाले स्तोम से युक्त (एक सवन-दिन), शां.श्रौ.सू. 10.9.1

चतुर्विंश उक्थ्य पु. 'गवामयन' सत्र के दूसरे दिन अनुष्ठित होने वाले 'उक्थ्य'-संज्ञक एक सोमयाग का नाम, श्रौ.को. (अं.) 962; बौ.श्रौ.सू. 24.10

चतुर्होतृ पु. तै.आ में उल्लिखित एक एक कृत्य में पठित विशिष्ट मन्त्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 4.8.7 (दर्श); मन्त्र में चार ऋत्विजों: आग्नीध्र, अध्वर्यु, होतृ एव उपवक्तृ के उल्लेख के कारण यह (चतुहोतृ) संज्ञक है; तुल. इग्लिंग, श.ब्रा.इ. 26,452. इस प्रकार के अन्य मन्त्र हैं 'पञ्चषड्'- सप्त-एवं 'दशहोतृ'; दश होताओं (दशहोतृ) का मन्त्र एक रहस्यात्मक मन्त्र है, जो आधेय में प्रयुक्त होम की दश सामग्रियों का अभिज्ञान कराता है, आप.श्रौ.सू. 5.10.8; अग्निहोत्र में, 6.8.5; इसका उच्चारण 'सामिधेनी' के पूर्व होता द्वारा किया जाता है, 4.9.1. ये सभी मन्त्र तै.आ. 3.1-10 में आते हैं, श्रौ.को. (सं.) I 125 उद्धृत; 'पृथिवी होता, द्यौरध्वर्यू रुद्रो अग्नीत् बृहस्पतिरुपवक्ता', तै. आ. 3.11 (जिसका पाठ 'पूर्णमास-हविराधान' के समय करना होता है), आप. श्रौ.सू. 2.11.5.

चतुर्होम पु. (चत्वारो होमा:) अग्निहोत्र की चार आहुतियां (एक गार्हपत्य एवं दक्षिण-अग्नि पर, सभ्य एवं आवसथ्य प्रत्येक पर, एक उस स्थिति में जब यजमान के इतस्तत: भ्रमण के कारण क्रिया-लोप हो जाय), मा.श्रौ.सू. 8.1.11.

चतुश्चक्र पु. उस यजमान के लिए उदिद्ष्ट यज्ञ, जिसके शत्रु हों। प्रक्रिया वही है, जो नव परिधान के सन्दर्भ में दाक्षायण के लिए एवं व्रतपति अग्नि के लिए आहुति के लिए निर्धारित है। उपसद् के दिन उसे सान्नाय्य के लिए दूध दुह लेना चाहिए एवं व्रत (उपवास) रखना चाहिए। दूसरे दिन प्रात: काल उसे (आठ कपालों पर) अग्नि के लिए एक पुरोडाश, 'सरस्वन्त के लिए 'उपांशु' आहुति, अग्निषोम के लिए (ग्यारह कपालों पर= एकादशकपाल) पुरोडाश एवं इन्द्र के लिए सान्नाय्य की आहुति देनी चाहिए। दर्श (नवचन्द्र के दिन) मैत्रावरुण के लिए आमिक्षा का विधान है और तदनन्तर 'वाजिन-याग' का क्रम आता है, श्रौ.को.(अं.) I (I) 524-25.

चतु:शया वि. चार अरत्नियों का (वर्ग), मा.श्रौ.सू. 10.1.3.1 (पत्नीशाला)।

चतुष्क न. (चत्वारो अवयवा यस्य तत्) चार प्रकार के (जल), मा.श्रौ.सू. 9.2.1.12 (अश्वमेध में उबालना)

चतुष्पथ पु. (चतुर्णां पथां समाहार:) वह स्थान जहाँ चार सड़कें मिलती हैं (चौराहा); चौराहा, जहाँ रुद्र को एक आहुति दी जाती है, भा.श्रौ.सू. 8.22.7 (महापितृयज्ञ, चातुर्मास्य); 'स्विष्टकृत्' भी देखें।

चतु:षोडशिन् वि. (चत्वार: षोडषिन: सन्ति अस्य) चार षोडशी सत्रों वाला, मा.श्रौ.सू. 9.3.3.1 (व्रात्यस्तोम)।

चतु:ष्टोम वि. (चत्वार: स्तोमा: यस्मिन् स:) चार स्तोमों वाला सोमयाग, शां.श्रौ.सू. 15.12.4

चतुस्स्तन वि. (चत्वार: स्तना: यस्य) चार चूचुकों से युक्त (मिट्टी का प्याला), मा.श्रौ.सू. 7.2.6.3 (गवामयन के अन्तर्गत महाव्रत में 'वृष्टिग्रह' के लिए)।

चतु:स्थूण वि. (चतस्र: स्थूणा: यस्य) सहारा (आलम्बन) प्रदान करने वाली 4 धूनों से युक्त (अग्निमण्डप) आप.श्रौ.सू. 11.9.4.

चतु:स्रक्ति वि. (स्त्री.) (चतस्र: स्रक्तय: यस्याम्) चार किनारों (कोनों) से युक्त एक सरलरेखीय आकृति (बौ.शु.सू. 1.79); आयत, य.वि. 38.20; 7.51.15.23; श.ब्रा. 13.8.1.5; 6.1.2.29; 6.3.3.26; 6.5.4.3; 14.3.1.17; 9.3.4.4.

चनसित न. 'सन्तुष्ट अथवा सन्तृप्त' (आह्वानात्मक अथवा निवेदनात्मक); इस शब्द का प्रयोग दीक्षित यजमान के द्वारा ब्राह्मण के सम्बोधन के लिए किया जाता है। उसके नाम का उल्लेख करने के बाद यथा- 'भो देवदत्त चनसित', आप.श्रौ.सू. 10.12.8 (सोमयाग)। उसी प्रकार राज्यन्य एवं वैश्य को 'विचक्षण'शब्द से सम्बोधित करना होता है, भा.श्रौ.सू. 10.7.15; मा.श्रौ.सू. 2.1.2.29; सोमयाग के अनुष्ठान के समय जब अतिथियों से बातचीत करना हो, तो यजमान द्वारा प्रारम्भ में इस 'अभिव्यञ्जना' का प्रयोग किया जाना चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 6.6-7 (अन्त में उसे 'विचक्षण इस शब्द को कहना चाहिए')

चनसितवती वि. (स्त्री.) (चनसित+मतुप्+ङीप्) 'चनसित' शब्द से युक्त (अभिव्यञ्जना) अर्थात वह अभिव्यञ्जना जिसमें 'चनसित' शब्द हो, बै.श्रौ.सू. 6.6.7; वैखा.श्रौ.सू. 12.11.2.

चन्द्र (चदि आह्लादने+रक्) 1. अध्वर्यु द्वारा महावीर पात्र पर इसे गरम करते समय स्वर्ण के एक खण्ड को रखते समय प्रस्तोता द्वारा गाये जाने वाले एक साम का नाम (अर्थात जब अध्वर्यु महावीर पात्र को गर्म करते समय उस पर स्वर्ण का एक टुकड़ा रखता है, उस समय स्तोता द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम), ला.श्रौ.सू. 1.6.23-26; 2. स्वर्ण, का.श्रौ.सू. 7.8.14; 'चन्द्रमा' बलि दिए गये अश्व की वसा के लिए दिया गया नाम, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.18-19 (अश्वमेध)

चन्द्रादर्शन न. (चन्द्रस्य अदर्शनम्) चन्द्रमा का न दिखाई पड़ना, चन्द्रमा की अदृश्यता, 'अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम्', का.श्रौ.सू. 4.1.1 (दर्श)।

चमस पु. एक प्याला (ऋ.वे.4.35.2 आदि), पानपात्र (ऋ.वे. 1.20.6 उत त्यं चमसं नवम्, सोमधारणक्षमं काष्ठपात्रविशेषम्, साय.) इसका प्रयोग चमसाध्वर्युओं द्वारा सोमयाग में किया जाता है (द्रोणकलशाद् उपस्तीर्य पूतभृत उन्नीय द्रोणकलशादाभिघारयति); द्रोण कलश से गृहीत रस से 'चमस' में सोम रस की एक परत बनायी जाती है। पूरण की क्रिया 'पूतभृत्' से की जाती है एवं 'अभिघारण' अर्थात् इस पर उड़ेलना 'द्रोणकलश' के सोम-रस से, आप.श्रौ.सू. 12.21.19; यह सोमग्रहों से भिन्न है; हत्थे से युक्त अथवा हत्थे से रहित (त्सरुमत् अथवा अत्सरुक), न्यग्रोध (गूलर) के काष्ठ से निर्मित, आप.श्रौ.सू. 12.2.28; वर्गाकार, हत्थे की आकृति, जो एक का दूसरे से भेद करती है। वह वर्गाकार, गोलाकार अथवा त्रिकोणीय हो, यह बात 'चमस' के स्वामी पर निर्भर करती है, तुल. का.श्रौ.सू. 1.3.36 भाष्य। इनका प्रयोग दीक्षा में आहुति के लिए सोम को रखने के लिए यजमान द्वारा प्रतिज्ञा (व्रत) के आहार की स्थाली के रूप में एवं ऋत्विजों द्वारा सोम का पान करने के लिए प्याले के रूप में किया जा है, 'प्रणीता' जल रखने के लिए भी। चमसों की संख्या 10 होती है जो दश 'चमसिन्' से सम्बधित होते हैं। ये दश 'चमसिन्' हैं : होता, ब्रह्मा, उद्गाता, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसिन्, पोतृ, नेष्टा, अच्छावाक, आग्नीध्र एवं यजामान। केवल यही लोग अपना स्वयं का 'चमस' रखने के लिए अधिकृत हैं, बौ.श्रौ.सू. 2.3; 'सदस्य' -संज्ञक ऋत्विक् के लिए वैकल्पिक रूप से एक ग्यारहवाँ 'चमस' रखने का विधान है। इन चमसों के वहन एवं हाथ में पकड़ने का दायित्व दश (11 बौ.श्रौ.सू. 25.13) सहायकों, जो 'चमसाध्वर्यु' के नाम जाने जाते है, के ऊपर होता है। इन 'चमसाध्वर्युवों' का यचन एवं नियोजन ऋत्विजों द्वारा किया जाता है, मी.सू. 3.7.26-27; आप.श्रौ.सू. 12.2.9 (अथवा स्वयं यजमान द्वारा, भा.श्रौ.सू. 10.2.1), किन्तु वे ऋत्विज् नहीं होते। वे 'प्रस्थितहोम' का अनुष्ठान करते हैं, CH 208. यह भी ध्यातव्य है कि 'ग्रावस्तुत्' 'चमसिन्' के रूप में अभिज्ञात नहीं है, क्योंकि वह 'होता'

के चमस में से सोम का पान करता है, द्रष्टव्य- का.श्रौ.सू. 9.11.27 (चमसांश्चोद्यच्छन्ति); का.श्रौ.सू. 9.12.3 (होतृचमसे सोमं भक्षयत:); मा.श्रौ.सू. 2.3.1.20, भा.श्रौ.सू. 13.2.7-9; ला.श्रौ.सू. 9.2.4; शां.श्रौ.सू. 13.12.11; श्रौ.प.नि. 249.200.207. 'ब्रह्मन्' के चमस का हत्था छोटा होता है। होता के पानपात्र (चमस) की आकृति गोल होती है। यजमान के चमस के हत्थे के अग्रभाग में एक लम्बी धार होती है, उद्गाता के चमस का हत्था त्रिकोणीय होता है। 'मैत्रावरुण-चमस' का हत्था नीचे की ओर झुका हुआ होता है एवं 'ब्राह्मणाच्छसिन्' के चमस का हत्था ऊपर की ओर मुड़ा होता है; अच्छावाक के चमस के हत्थे पर एक वलय (मुद्रिका) का चिह्न एवं आगीध्र के प्याले में तीक्ष्ण धार होनी चाहिए।

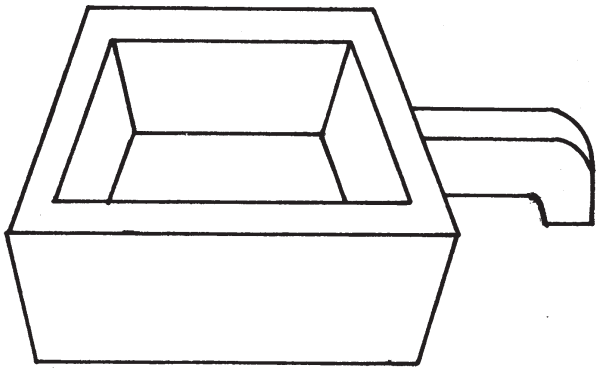

त्सरुक-चमस

चमसकम्पन न. (चमसस्य कम्पनम्) चमसों को हिलाने का कृत्य, अब ये (चमस) 'नाराशंस' कहे जाते हैं, शस्त्र के पाठ एवं सोम की आहुति दे दिये जाने के पश्चात्, चमसाध्वर्युओं द्वारा कृत, का.श्रौ.सू. 9.13.35 = अनुकम्पन (छद्मप्रवेश, यह अभिप्रमाणित नहीं। वास्तविक अभिव्यञ्जना है 'नाराशंसानां च कम्पनं हूयमाने')।

चमसीय वि. (चमस्य इदम्, चमस+छ) ऋज्विजों के प्याले से सम्बद्ध, बौ.श्रौ.सू. 7.5

चमसाध्वर्यु पु. (चमसस्य धारक: अध्वर्यु:) सोमयाग में चमस को हाथ में पकड़ने वाला अतिरिक्त सहायक पुरोहित। कुल मिलाकर इनकी संख्या दश या ग्यारह होती है। (ऐसा कहा जाता है कि)। उनका एन मौके पर (ठीक उसी समय) उन्हें अतिरिक्त शुल्क देकर क्रय किया जाता है, श्रौ.को. (सं.) .5. (बौ.श्रौ.सू. 2.12); का.श्रौ. सू. 9.11.2; 22.2.6; आप.श्रौ.सू. 10.3.1.

चमसाध्वर्यु

चमसिन् पु. (चमस: अस्यास्ति, चमस+इनि) वह पुरोहित जो 'चमस' (पानपात्र) को हाथ से पकड़ता है, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.27.

चमसोन्नयन न. (चमसस्य उन्नयनम्) सोम रस भरने का कृत्य। पूरण (करने) की क्रिया का अनुष्ठान 'उन्नेता' द्वारा किया जाता है। इनमें तीन कृत्य होते हैं : प्रथम उपस्तरण, द्रोणकलश से प्रत्येक चमस में कुछ सोम को उड़ेलना (आहित सोम, 'शुक्र' शुद्ध कहलाता है), इसके बाद 'पूतभृत्' से सोम उड़ेला जाता है और अन्तत: पुन: 'द्रोणकलश' से अभिघारण। इस प्रकार से चमसों को आपूरित करते हैं-होता से प्रारम्भ कर उसके बाद ब्रह्मा, उद्गाता, यजमान, मैत्रावरुण, ब्राह्मणच्छसिन्, पोता, नेष्टा एवं आग्नीध्र, बौ.श्रौ.सू. 8.13, आप.श्रौ.सू. 12.21.13-16.

चमू स्त्री. सोम-पात्र, ऋ.वे. 8.45.26 (आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्धिषे सह: ॥)

चयन न. (चि+ल्युट्) द्रष्टव्य-अग्नि-चयन।

चयनपुरीषनिवपन द्वि. (चयनं पुरीषनिवपनं च) ईंटों का राशीकरण (लगाना) एवं उस पर मिट्टी रखना, का.श्रौ.सू. 17.7.14 (पौर्वाह्णिक्यपराह्णिक्यन्तरे त्र्युपसत्के द्वे प्रथमायां तिस्रो मध्यमायाम्); द्रष्टव्य- चितिपुरीष 17.7.11.

चरण न. (चर+ल्युट्) कर्मकाण्डीय उपचार=व्यवहार ('सप्तदश- अग्नीषोमीया: तेषां समानं चरणम्', अनु. इनका व्यहवहार एक साथ होता है), शां.श्रौ.सू. 15.1.20 (वाजपेय)

चरव्य पु. (चरु + यत्, तस्मै हितम् इत्यर्थे) चरु (दलिया की हविष्) के लिए अभिप्रेत चावल (के बीज), भा.श्रौ.सू. 5.14.6

चरु पु. अकुट्टित अथवा अपिष्ट चावल अथवा 'यव' (जौ) से निर्मित दलिया। इसे जल में नवनीत अथवा दूध को मिलाकर पकाते हैं (और चरुस्थली में परोसते हैं; वैखा.श्रौ.सू. 11.9), बौ.श्रौ.सू. 2.19; इसकी 'पुरोडाश' से भिन्नता बतलाई गई है एवं विकृति में पुरोडाश के स्थान पर विकल्पित है, भा.श्रौ.सू. 6.15.7; हविर्द्रव्य के रूप में प्रयुक्त, चारों ऋत्विजों द्वारा उपभुक्त (भक्षित), बौ.श्रौ.सू. (आधेय) सोमयाग में सौम्य (चरु), तृतीय सवन में सोम को अर्पित किया जाता है, प्रतिप्रस्थाता द्वारा पकाया जाना एवं होता द्वारा इसे देखा जाना (अवेक्षण) आवश्यक होता है, बौ.श्रौ.सू. 8.14 [पञ्चविल, एक ऐसी थाली में अर्पित=हुत किया जाता है, जिसमें पाँच विवर=बिल होने के कारण इसे 'पञ्चबिल' कहते हैं, का.श्रौ.सू. 15.9.1 (राजसूय); इग्लिंग श.ब्रा.3, XII,120; आप.श्रौ.सू. 20.25.2 (पुरुषमेध)]; वह पात्र जिसमें चावल पकाया जाता है, का.श्रौ.सू. 7.5.15 (सलेपं चरुम्....., चरुम्=चरुस्थालीम् स.वृ.); तुल.श.ब्रा. 3.2.2.21

चरुकल्प पु. (चरोः कल्पः) उबले चावल को अर्पित (हुत) करने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 19.1.6; द्रष्टव्य- आप.श्रौ.सू. 8.10.2; 13.13.15; हि.श्रौ.सू. 3.8.55; 5.1.17; वैखा.श्रौ.सू. 11.1.8; अग्निवे. गृ.सू. 2.5.3.10; बौ.गृ.सू. 1.6.9. इस प्रक्रिया में कपालों के स्थान पर 'स्थाली' का प्रयोग किया जाता है (आप.श्रौ.सू. 8.9.14); हविर्द्रव्य को निकालते समय वह चार मुट्ठी अथवा उससे अधिक चावल लेता है (8.10.1), कपालों के रखने के प्रथम मन्त्र 'ध्रुवोऽसि' से वह चरु के घालमेल को रखता है; घृत को उछालने के समय उसे चावल को भी उछालना चाहिए (8.10.2); वह केवल ध्रुवा में ही घृत निकालता है (8.10.4); 'यावन्तो अमात्यास्तावन्तो ओदनान् उद्धरति', आप.श्रौ.सू. 8.10.7; वह न तो कोई 'प्रशित्र' होता है और न ही यजमान-भाग, आप.श्रौ.सू. 8.11.6; आहुति-अर्पण 'इडोपाह्वान' से जारी रखा जाता है, 8.11.7.

चरुनिष्काष पु. (चरोः निष्काषः) चावल के घालमेल (दलिया) को खुरचना, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.28 (प्रायणीय इष्टि)।

चरुपुरोडाशीय विशे. (चरुपुरोडाशयोः अयम्, चरुपुरोडाश+छ) (वह चावल) जिससे चरु एवं पुरोडाश निर्मित है, बौ.श्रौ.सू. 1.7.17; आप.श्रौ.सू. 24.3.20.

चरुस्थाली स्त्री. (चरोः स्थाली) चरु के लिए पात्र, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.8; वैखा.श्रौ.सू. 11.9 :12; बौ.श्रौ.सू. 5.1.5; भा.श्रौ.सू. 8.1.17; आश्व.श्रौ.सू. 2.6.5; आप.श्रौ.सू. 1.7.5.

चर्मतूणी स्त्री. (चर्मणः तूणी) चमड़े की बनी तूणी (र), 'उत्तरस्य प्युक्ष्णवेष्टितं धनुश्चर्मतूण्यः सेषुका लोहित उष्णीषः, का.श्रौ.सू. 6.15.3.18-20 (राजसूय मे ग्यारहवीं रत्न-हवि-दक्षिणा)।

चर्मन् न. (बैल का) चमड़ा, 'रोहिते चर्मण्यानुदुहे हविष्यपात्राणि मिमीते तं चातुष्प्राश्यं पचति', का.श्रौ.सू. 4.8.2 (आधान); ला.श्रौ.सू. 3.10.11; द्रा.श्रौ.सू. 10.2.12 (महाव्रत में चमड़ों का जोड़ा); 'चर्माण्युत्तरलोमानि प्राग्ग्रीवाणि', का.श्रौ.सू. 1.10.4 (इष्टि में चर्म को भूमि पर प्राग्ग्रीव=पूर्व की ओर गरदन करके फैला दिया जाता है); द्रष्टव्य-मलमूद, BSL 169(1), 1974, पृ. 73-83.

चर्मकर्त पु. (चर्मणः कर्तः) चमड़े का खण्ड या टुकड़ा, काशिकर-शब्दसूची.

चषाल

चषाल न. मूंठ, ऋ.वे. 3.8.10 (चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम्); मा.श्रौ.सू. 5.2.12.4, यज्ञीय यूप पर एक काष्ठीय वलय लगा देना चाहिए, कुछ के मतानुसार, ऊपर से दो या तीन आंगुल की दूरी पर। उसे यज्ञीय यूप के शिखर को 'चषाल' के ऊपर ही रहने देना चाहिए (ताकि यह) लम्बाई में उपरी अंगुलास्थि के बराबर (होवे)। 'चषाल' का निर्माण

भी उसी वृक्ष से किया जाता है, जिससे यज्ञिय यूप (स्तम्भ) तैयार किया जाता है। यदि अध्यर्वु यह चाहता हो कि यजमान के धन का उपयोग दूसरा कोई करे, तो उसे 'स्वरु' एवं 'चषाल' का निर्माण 'यूप' की लकड़ी से भिन्न काष्ठ से करना चाहिए। उसे 'चषाल' पर 'ऐन्द्रमसि' से सभी तरफ लेप करना चाहिए, ओर इसे यूप पर 'सुपिप्पलाभ्यस्त्वा' इस मन्त्र से स्थिर कर दे (लगा दे), श्रौ.को. (अं) I.796। उसे यूप के लेपन के लिए चषाल को हटा लेना चाहि और इसका शोधन करना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.799. इसे लगाने के पहले वह इसे यूप के उत्तर की ओर रखे, (श्रौ.को (अं.) I.801), (का.श्रौ.सू.) (6.2.2-3.15)। यदि यज्ञ की पूर्णता के पहले कोई पक्षी चषाल पर बैठ जाय, तो 'सर्वप्रायश्चित्त'- संज्ञक कृत्य का अनुष्ठान करना पड़ता है, श्रौ.को. (अं.) I.860. यदि 'उपर' के ऊपर दो शाखाओं वाला 'यूप' अनुमत हो, तो उन्हें दो तनों पर दो चषाल लगाने चाहिए, श्रौ.को. (अं) I.885. चषालवलय एक बीता (दश अंगुल) ऊँचा, बीच में संकीर्ण (उलूखलवत्) एवं आकृत में अष्टकोणीय (आठ कोणों वाला, अष्टाश्रि) होता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii 781 (भा.श्रौ.सू. 7.1.1-4.4)। चि.भा.से. के मतानुसार यह यूप का एक काष्ठीय शिरःखण्ड है। यह आठ कोनों वाला, बीच में संकुचित, किसी के हाथ की कलाई से अंगुलियों के अग्रभाग के बराबर एवं खोखली निर्मित होती है। इसे 'यूप' के शिखर पर पगड़ी के समान इस तरह लगाया जाता है कि यूप का दो अथवा तीन अंगुल (भाग) चषाल के ऊपर उभरा रहे, का.श्रौ.सू. 6.1.28.30 (पशुबन्ध)। यदि यजमान ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति की कामना वाला है, तो 'यूपों' को खड़ा करना चाहिए ताकि 'चषाल' एक समान रहें (तै.सं. 6.6.4.1). कहने का अभिप्राय है कि 'यूपों' के भागों की परिधि, जिसपर चषालों को लगाना है, समान रहें, बौ.श्रौ.सू. 17.11-13. 'पाल्नीवत यूप' पर कोई भी चषाल नहीं लगाया जाता है, श्रौ.को. (अं) II.850.

चषालेक्षण न. (चषालस्य अवेक्षणम्) यजमान का चषाल (काष्ठीय वलय) को 'तद् विष्णो' आदि मन्त्रों के साथ देखना, श्रौ.प.नि. 123.40.

चषालेक्षण न. (चषालस्य ईक्षणम्) 'चषाल' वलय को देखना, का.श्रौ.सू. 8.8.13 (अञ्जनाद्याचषालेक्षणात्कृत्वैकैकस्य)।

चातन न. ऋचाओं के एक वर्ग का नाम (अ.वे. 1.7.8; 2.14; 18.3-5; 25.4.21; 36; 37; 5.29; 8.3 :4), पितृमेध के दौरान जल को शान्त करने के लिए पठित, श्रौ.को. (अं.) I.1083.

चातुर्मास्य न. (चतुर्षु मासेषु भवम्, चतुर्मास + ण्य) हर चार महीने में अनुष्ठित होने वाला यज्ञ। यह 'इष्टि' के प्रकार का यज्ञ है और इसमें तीन (आपेक्षाकृत चार) पर्व (भाग या सन्धि) होते हैं, एवं प्रत्येक पर्व चार मास के पश्चात् आते हैं (इसीलिए इस यज्ञ का नाम 'चातुर्मास्य' पड़ा), का.श्रौ.सू. 5.11, एवं भाष्य। इन पर्वों के नाम है : वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध एवं शुनासीरीय, इनका उनुष्ठान किया जाता है, और इनमें प्रत्येक नव (नये) ऋतु के आगमन को इङ्गित करता है। अनुष्ठान का काल क्रमशः फाल्गुन-पूर्णिमा अथवा चैत्र-पूर्णिमा (वसन्त), आषाढी पूर्णिमा (वर्षा ऋतु), कार्तिक अथवा मार्गशीर्ष पूर्णिमा (हेमन्त) एवं 'शुनासारीय' का अनुष्ठान साकमेध के अनुष्ठान के दिन से पाँचवीं पूर्णिमा के दिन होता है, तुल. 'शुनासीरीयमतः', का.श्रौ.सू. 5.11.1-2 (साकमेधानन्तरं तत्कालमेव शुनासीरीयं पर्वं कार्यम् स.वृ.); 'यदेच्छेत', का.श्रौ.सू. (आवगवान यदा द्वयहे वा त्र्यहे वा चतुरहे वा मासे वा चतुर्षुमासेषु वा इच्छेत्तदा कुर्यात्)। सभी पर्वों में पाँच आहुतियां सर्वनिष्ठ हैं. अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश, सोम के लिए एक चरु, सवितृदेवताक बारह अथवा आठ कपालों पर पुरोडाश, सरस्वती के लिए एक चरु। एवं 'पूषन्' के लिए अच्छी तरह चूर्णीकृत चावल का चरु। वैश्वदेव पर्व के लिए विहित अतिरिक्त आहुतियां हैं : 1. 'मरुत् स्वत्वत्' अथवा मरुतों के लिए सप्तकपाल पुरोडाश, 2. विश्वेदेवों के लिए पयस्या (ठोस रूप में परिणत दुग्ध); एवं 3. द्यावापृथिवी (स्वर्ग और पृथिवी) के लिए एक कपाल पुरोडाश। वरुणप्रघास में ये आहुतियाँ होती हैं: 1. इन्द्राणी के लिए एक पुरोडाश; 2. पयस्या या आभिक्षा (छेना) वरुण एवं मरुतों के लिए; 3. अकेले कपाल पर 'क' को एक पुरोडाश। साममेध के लिए पूर्व दिन 'अग्नि अनीकवत्' के लिए एक पुरोडाश। मध्याह्न के समय 'मरुत्-सान्तपन' के लिए चरु। 'मरुत्-क्रीडिन्' के लिए सात कपालों पर (सप्तकपाल) पुरोडाश एवं अदिति के लिए चरु। अतिरिक्त पुरोडाश हैं - इन्द्राग्नी के लिए पुरोडाश (12 कपालों पर, द्वादशकपाल); महेन्द्र के लिए चरु एवं 'विश्वकर्मा' के लिए 'एककपाल' पुरोडाश।

शुनासीरीय में : दो शुनासीरों के लिए एक द्वादशकपाल पुरोडाश अथवा वही (द्वाद्वशकपाल पुरोडाश) इन्द्र शुनासीर के लिए (इन्द्रशुनासीर से भिन्न दो शुनासीर हैं, वायु=शुना एवं आदित्य सीर, स.वृ. का.श्रौ.सू. 5.11.4 पर) वायु के लिए पयस् (दुग्ध) अथवा यवागू एवं सूर्य के लिए तीन एक कपाल पुरोडाश; द्रष्टव्य श्रौ.को (अं.) I.646-765।

चातुर्मास्ययाजिन् वि. (चातुर्मास्येन इष्टवान्, चतुर्मास + यज् + णिनि) (वह व्यक्ति) जो प्रत्येक चार मास के उपरान्त (हर चार महीने पर) यज्ञ का अनुष्ठान करता है, श्रौ.को. (अं.) I.666 (आप.श्रौ.सू. 8.1-4)

चातुर्मास्यान्तराल न. (चातुर्मास्यानाम् अन्तरालम्) चातुर्मास्यों का अन्तराल (मध्यावकाश), भा.श्रौ.सू. 8.4.17।

चातुर्होत्र पु. एक प्रकार के अग्निचयन का नाम, आप. श्रौ.सू. 19.14.18।

चातुष्प्राश्य वि. (चतुर्भिः (बाह्मणैः) प्राशितुं योग्यम्) चार ब्राह्मणों के खाने के लिए पर्याप्त भोजन, का.श्रौ.सू. 4.6.11 (..... दक्षिणाग्निपक्वं चातुष्प्राश्यं ब्राह्मणान् भोजयेत् किञ्चिद्दद्यात्)।

चातुष्प्राश्यपचन न. (चातुष्प्राश्यस्य पचनम्) चार कार्य-सम्पादक ऋत्विजों के लिए भोजन बनाना, यह कार्य 'आधेय' पर किया जाता है, इस से जुड़ी धार्मिक-क्रियाओं का अनुसरण आवसथ (गृह्य) अग्नि के आधान (स्थापना) के समय अवश्य करना चाहिए, पा.गृ.सू. 1.2.4 (चातुष्प्राश्यपचनवत्सर्वम्)।

चात्र न. तकली, तर्कु, धागे से पूर्ण, बाल को ऊपर की ओर विभक्त करने के लिए प्रयुक्त, पा.गृ.सू. I.15.4 (सीमन्तोन्नयन), आवर्तनशील तर्कु, द्रष्टव्य- अग्निमन्थन

चात्र

चात्वाल पु. (न.) एक गर्त (गड्ढा), एक शम्या के वर्ग के बराबर, वेदि के बाहर इसके उत्तरपूर्वी 'बाहु' (अंस) के समीप खोदा गया, वह स्थान जहाँ से 'घिष्णाओं' के निर्माण के लिए ढीली मिट्टी (पुरीष) लायी जाती है, का.श्रौ.सू. 1.8.39 (चात्वालात्पुरीषम्); सोमयाग एवं पशुयाग में उत्तरावेदि (के निमाणार्थ) आश्व.श्रौ.सू. 1.1.6 भाष्य; आप.श्रौ.सू. 7.4.1-2; चयन में यज्ञीय भूमि का भाग, 16.15.1. साम-गान के लिए निर्धारित 'आस्ताव'-संज्ञक स्थान इसके निकट स्थित होता है। इस गर्त (चात्वाल) का उपयोग पशु एवं सोम में निश्चित कर्मकाण्डीय उपकरणों जैसे कि 'वपा-श्रपणी' आदि के निस्तारण (प्रक्षेप) के लिए भी किया जाता है; तुल. प्रातरनुवाक, गोंड, पृ. 19-करण

चात्वालकरण

चान्द्रायण न. (चन्द्रस्यायनमिव अयनं यस्य,) चन्द्रमा पर आधृत तिथियों के अङ्कों के अनुसार भोजन के नेवालों की संख्या बढ़ाना या घटाना; इसका अनुष्ठान समान गोत्र में विवाह करने के प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.1027. वेदान्तसार के अनुसार चान्द्रायणादि पापक्षय के साधन है 'पापक्षयसाधनानि चान्द्रायणादीनि'। इसके अनेक भेद भी परिगणित हैं।

चारक पु. (चरकाणाम् अयम्, चरक + अण्) सौत्रामणी; चरकों द्वारा अभ्यस्त=कार्यान्वित, मा.श्रौ.सू. 10.1.3.9।

चारक्यरथसम्मिता वि. (स्त्री.) (चरकाणामयं चारक्यः स चासौ रथः तेन सम्मिता) चरकों के रथ के परिमाण वाली, मा.श्रौ.सू. 10.1.2.3 (ऐन्द्राग्न-पशु-महावेदि); पूर्व-पश्चिम 188 अंगुल, पश्चिम 104 अंगुल, पूर्व 86 अंगुल या 144, 120 एवं 96 अंगुल क्रमशः।

चिति स्त्री. (चि+क्तिन्) 1. ईंटों का चयन (राशीकरण), विशेषतः चयन में वेदि के लिए, आप.श्रौ.सू. 16.35.8; पाँच परतों में निर्मित (पञ्चचितिका, 15.3); परतों (तहों) में निश्चित संख्या में ईंटें होती हैं (इग्गिलंग, श. ब्रा. अं. XLIII, 22) ये विशिष्ट नाम वाली हैं : स्वयमातृण्णा, लोकम्पृणा, यजुष्मती, आषाढा इत्यादि; प्रत्येक तह मिट्टी से अलग की गई होती है, अलग स्थापित एवं 'चात्वाल' से ली जाती हैं। वेदि का आकार विभिन्न प्रकार का होता है : द्रोण (बाल्टी), चक्र, श्येन (बाज) इत्यादि, का.श्रौ.सू. 16.5.91; गार्हपत्य-अग्नि-स्थान का भी चयन होता है, बौ.शु.सू. 2.66.71; अग्नि-वेदि के चयन के लिए प्रयुक्त ईंट, का.श्रौ.सू 17.3.21, 25; द्रष्टव्य-अग्निचयन.

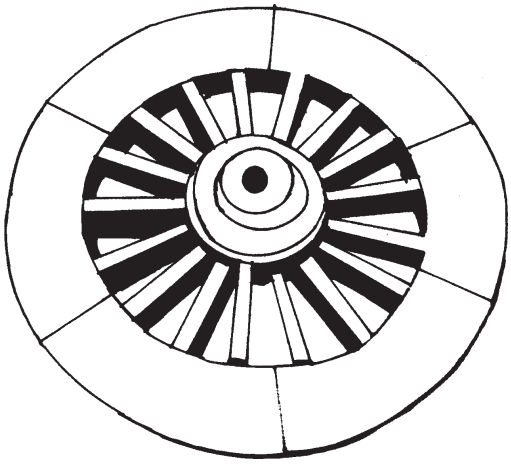

रथचक्र

चितिस्तोम पु. एक यज्ञ का नाम, आप.श्रौ.सू. 22.6.1।

चित्य पु. (स्त्री.) (चि+क्यप्, 'चित्याग्निचित्ये' पा. 3.1.132) चित अग्नि-वेदि (चयन), यदि यह छू जाय, तो वेदाध्ययन का सातत्य भंग कर देना चाहिए (अर्थात् रोक देना चाहिए), गौ.गृ.सू. 3.3.34; तुल. अनध्याय।

चित्यारोहण न. (चित्ये चित्यायां वा आरोहणम्) चित अग्नि-वेदि पर चढ़ना, का.श्रौ.सू. 18.3.4-10।

चित्योपस्थान न. (चित्यस्य उपस्थानम्) अग्नि-वेदि से प्रार्थना करना, का.श्रौ.सू. 17.6.1 'त्वं यविष्ठ' ऋ.वे. 8.84.3; एवं वा. सं. 13.52 आदि मन्त्रों से।

चित्र पु. 'चित्र' शब्द द्वारा संकेतित मन्त्र, अर्थात् वा.सं. 27.39; 'कया नश्चित्र आभुवत्' आदि, का.श्रौ.सू. 17.4.4 (पुरुषे चित्रे साम गायति), (चयन); तुल. श. ब्रा. 7.2.1.22-24; -**वसी**, जै. ब्रा. III.101।

चित्रावसु पु. एक विशिष्ट मन्त्र का नाम, भा.श्रौ.सू. 6.2.2 (सायंकालिक अग्न्युपस्थान)।

चित्रियाश्वत्थ पु. (चित्रियः चासौ अश्वत्थः) एक ग्राम के संकेतक अश्वत्थ (पीपल) की एक प्रजाति, जिसकी समिधाओं का आधान आर्द्र (गीली) अवस्था में किया जाता हैं (अश्वत्थग्रामो अश्वत्थचित्रकः इत्युच्यते। योऽश्वत्थो ग्रामादेश्चिह्नीभूतवत्तदीयाः समिध आदध्यात), भा.श्रौ.सू. 5.3.12; बौ.श्रौ.सू. 24.12.13; हि.आ.ध. II. 2.991।

चित्रेष्टि स्त्री. पशु-सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए अनुष्ठेय एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (सं.) 1.365।

चिश्चिषाकारम् क्रि.वि. शोर मचाते समय, भा.श्रौ.सू. 14.18.15 ('भक्षयन्ति' ('हारियोजन' धाना को चबाते हैं)।

चुबुक न. सोम के लिए (हविराधान) शकट का अग्रभाग (मुख), जब यह (शकट) खड़ा रहता है और स्थिर होता है; आप.श्रौ.सू. 10.24.4; बौ.श्रौ.सू. 8.11; भाष्य (तुण्ड); 6.25।

चुबुकदघ्न वि. (चुबुकं प्रमाणमस्य, चुबुक+दघ्नञ्) इतना ऊँचा कि यजमान की ढुड्डी तक पहुँच जाय (अर्थात् यजमान की ढुड्डी बराबर ऊँचा), आप.श्रौ.सू. 10.10.5 (दीक्षा-दण्ड); 7.8.2 (मैत्रावरुणदण्ड)

चुश्चूषाकारम् क्रि.वि. चूसने के तरीके से, चूसते हुए, मा.श्रौ.सू. 2.5.4.7; द्रष्टव्य-निश्चूष्य, 5.1.9.8; द्रष्टव्य-चिश्चिषाकारम्, बौ.श्रौ.सू. 14.18.15।

चूडा स्त्री. 1. एक इष्टका का नाम, भा.श्रौ.सू. 8.4.3; 8.20.3; का.श्रौ.सू. 17.12.2-3 (ये ईंटे पांचवें परत में लगाई जाती हैं); 2. मुण्डन-संस्कार; द रिचुअल सूत्राज्, जे.गोंड, शब्दकोश (Glossary), पृ. 662=चौल।

चूडाकरण न. (चूडा क्रियते अस्मिन्) बच्चे के शिर पर चोटी रखने का कृत्य, शां.गृ.सू. 1.28.1; इसे 'चौल' भी कहते हैं, आप.श्रौ.सू. 16.3. यह मुण्डन-संस्कार तीसरे वर्ष में अनुष्ठित होता है (अथवा वर्ण के अनुसार काल में वैभिन्न्य हो सकता है), लड़की के लिए अमन्त्रक (विना मन्त्र के), आश्व.श्रौ.सू. 1.17.19. पात्रों को विभिन्न अनाजों से आपूरित कर दिया जाता है, बच्चा (शिशु) अपनी माँ की गोद में बैठता है; पिता बच्चे के शिर को गरम एवं ढण्डे जल तथा दही से आर्द्र (गीला) करता है एवं ताँबे के उस्तरे से उसके (शिर के) बाल को मूंडता है। माता बाल को बैल के गोबर में रखती हैं, बाल के चोटियों (शिखाओं) की संख्या 1,2 अथवा 5, बौ.गृ.सू. 2.4 या कुल की परम्परा (प्रथा) के अनुसार रखी जाती है। पा.गृ.स. 2.1.22, अथवा प्रवर की संख्या के अनुसार आप.गृ.सू. 16.6; काठ.गृ.सू. उल्लेख करता है कि वसिष्ठ लोग दायें भाग में चोटी (कपुच्छा) रखते हैं जबकि अत्रि लोग दोनों ओर, भृगु लोग अपने शिर को पूर्णतया गंजा रखते हैं। अङ्गिरस् लोग पाँच जूड़े अथवा बाल की एक पंक्ति रखते हैं, 11.2.6; 'कुपुच्छला' भी देखें, शां.गृ.सू. 1.28.117; आश्व.श्रौ.सू. 1.17.1-19; पा.गृ.सू. 2.1-1.25; गो.गृ.सू. 2.9.1-29; चूडाकरण, हि.गृ.सू. 2.6.1-20।

चैत्य वि. (चित्य अण्, चित्यस्य इदम्), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.24।

चैत्ययज्ञ पु. उस गाँव के निकट, जहाँ बलि दी जाती है। एक क्षेत्र के लिए समर्पित कृत्य; यदि चैत्य सुदूर स्थान पर हो, तो बलि पलाश के एक पत्ते में रख दी जाती है, जो दूत के रूप में काम करती है (पलाशदूत), आश्व.गृ.सू. 1.12.1-2; चैत्य की व्याख्या 'चित्ते भवः' इस रूप में की गई है, अर्थात् इस कृत्य का अनुष्ठान उस स्थिति में किया जाता है, यदि किसी ने देवता से वादा किया है कि वह उसे (देवता को) अपनी स्वयं की किसी विशेष कामना की पूर्ति होने पर एक आहुति अर्पित करेगा, इस पर नारायण-भाष्य; तुल. ओल्डेनबर्ग, श.ब्रा.इ. XXIX.178।

चैत्री स्त्री. (चित्रा+अण्+ङीप्) चैत्रमास की पूर्णमासी के दिन अनुष्ठित होने वाले एक कृत्य का नाम, शां.गृ.सू. 4.19=ईशानबलि; आप.गृ.सू. 19.13; द्रष्टव्य-शूलगव।

चोडा स्त्री. अग्निवेदि की पाँचवीं तह में लगी हुई ईंटों (90-94) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46।

चोदन न. (चुद् प्रेरणे+ल्युट्) ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रदत्त विधि, का.श्रौ.सू. 1.5.7 (मन्त्रचोदनयोर्मन्त्रबलं प्रयोगित्वात्), चोदना- लक्षणोऽर्थो धर्मः, मी.सू. 1.1.2; चोदना चोपदेशश्च विधिश्चैकार्थवाचिनः, श्लोकवार्तिक।

चौल न. (चूडा+अण्) मुण्डन-संस्कार=चूडाकरण।

च्यावन न. (च्यवनेन दृष्टं साम) सा.वे. 1.473 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 1.3.11; जै.ब्रा. III.120।

छ

छगल पु. जवान बकरा (अज), श्रौ.को. (सं.) II.530।

छत्र पु. (न.) (छादयति अनेन) छत्र (छतरी) विद्यार्थी द्वारा धृत वस्तुओं में एक, आप.गृ.सू. 12.11 (समावर्तन); 'यावन्तोधुविष्यन्तः स्युस्तावतः कुम्भानादाय छत्राणि चापरिमितानि', का.श्रौ.सू. 21.3.6 (पितृमेध)।

छदिःकल्प पु. (छदिष् कल्पः, छदिः कल्प्यते येन सः) यज्ञिय मण्डपों पर छत (छप्पर) की व्यवस्था और उनकी (छतों) की संख्या (विभिन्न वैकल्पिक यज्ञों में) भा.श्रौ.सूं 20.10.14।

छदिर्दर्श पु. (छदिः पश्यति अनेन अस्मिन् वा, दर्श=दृश+घञ्) (अग्नि-क्षेत्र) की छत (छदिः) की दृष्टि, आप.श्रौ.सू. 6.25.6

छदिस् न. (छाद्यतेऽनेन) यज्ञीय मण्डप का छप्पर, का.श्रौ.सू. 8.2.20; 8.4.17; मा.श्रौ.सू. 2.2.3.24 (अग्निष्टोम में नौ, 'उक्थ्य' में पन्द्रह, 'अतिरात्र' में सत्रह, 'सत्र' और 'अहीनों' में 21, 'षोडशिन्' एवं 'वाजपेय' में 'सदस्' शाला पर ग्यारह); चि.भा.से. के मतानुसार हविर्धान-शकट को ढकने के लिए एक आवरण=खोल (ऋ.वे. 10.85.10), आप.श्रौ.सू. 10.24.2; तीन विभागों : मध्य, उत्तर एवं दक्षिण में हविर्धान मण्डप पर तीन छाजनयुक्त छत, बौ.श्रौ.सू. 6.25; CH सदस् के. 88, उपरिवत् नौ विभागों में, आप.श्रौ.सू. 11.10.8-12; किन्तु 'अग्निष्टोम' में 9, 'षोडशिन्' में 16, वाजपेय में 17, सत्र एवं=अहीन में 21 वही अग्निष्टोम में 13 या 9, उक्थ्य में 15, अतिरात्र में 17 एवं षोडशिन् में 9 अथवा 15, भा.श्रौ.सू. 12.10.3; आप.श्रौ.सू. 11.8.1 (हविर्धान की बीच वाली छत तीन अरत्नि लम्बी एवं नौ आयाम चौड़ी होती है।

छन्दःप्रवाह पु. (छन्दसां प्रवाहः) छन्दों का अविच्छिन्न सातत्य (गोंड, प्रातरनुवाक, पृ. 33); छन्दों का वहन, गोंड द्वारा उद्धृत कीथ का कथन।

छन्दश्चिति स्त्री. (छन्दसां चितिः) छन्दस् की परत (सन्धि अथवा पर्व पर स्थापनीय, प्रत्येक बार तीन इष्टकायें, प्रत्येक वार अधिक अन्तर्मुख=अन्दर की ओर), मा.श्रौ.सू. 6.2.2.21।

छन्दस्सन्दोह पु. (छन्दसां सन्दोहः) 'छन्दों को दुहना; 'इष्टो यज्ञो भृगुभिर्.....' से प्रारम्भ होने वाले एक उच्चारण (पाठ) का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.13 (चयन में मेढक को घसीटने के पश्चात् पढ़ा जाने वाला)।

छन्दस्या स्त्री. एक ईट का नाम (इनमें बारह लगायी जाती हैं, अग्निवेदि के तीसरे परत में 'अप्यय' क्षेत्र में प्रत्येक बारह-बारह लगाई जाती है, 'छन्दस्या द्वादश द्वादशाप्ययेषु.....', का.श्रौ.सू. 17.9.9।

छन्दोगप्रत्यय पु. (छन्दोगानां=सामवेदिनां प्रत्ययः) सामवेद की कर्मकाण्डीय परम्परा, आश्व.श्रौ.सू. 8.13.33।

छन्दोगब्राह्मण न. (छन्दोगानां ब्राह्मणम्) सामवेदियों का ब्राह्मण अर्थात् व्याख्यानात्मक ग्रन्थ, श्रौ.को. (सं.) II.511।

छन्दोगवशेन क्रि.वि. (छन्दोगानां वशेन) सामगायकों (के कृत्य) के अनुकूल, शां.श्रौ.सू. 10.8.21।

छन्दोम पु. दशरात्र के सातवें, आठवें और नवम दिन का नाम तथा 'द्वादशाह' भाग के आठवें, नवम एवं दशम दिन का नाम, विशिष्ट प्रकार के स्तोमों से विशेषीकृत अथवा विभेदीकृत, आप.श्रौ.सू. 22.18.8; बौ.श्रौ.सू. 16.16.1-3, शां.श्रौ.सू. 12.4.5; आश्व. श्रौ.सू. 11.2.2।

छन्दोमत्रिककुद् पु. एक सोमयाग का नाम, शां.श्रौ.सू. 16.29.14; पञ्च.ब्रा. 22.16।

छन्दोमदशरात्र पु. छठे, सातवें एवं आठवें (दिन) के रूप में (तीन) छन्दोम दिनों से युक्त, दश दिन चलने वाला एक सोमयाग, आप.श्रौ.सू. 23.9.8=छन्दोम-दशाह, का.श्रौ.सू. 23.5.31 (छन्दोमदशाहः पशुकामस्य); तुल. पञ्च.ब्रा. 25.1.1-2।

छन्दोविचिति स्त्री. (छन्दसां विचितिः) =छन्दःशास्त्र, मुण्डकोपनिषद्, I.1.5, आप.ध.सू. 2.8.11।

छन्ना स्त्री. (छद् + क्त + टाप्) गृह की छत; जब लगायी जाती है, इसे मन्त्र पढ़ते हुए छूते हैं, हि.गृ.सू. 1.27.8; आवरण के साथ बाड़, का.श्रौ.सू. 5.4.1 (छन्नावसति, वरुण प्रघास); द्रष्टव्य-भा.श्रौ.सू. 12.5.10।

छम्बट् न. 'छम्बट्' (शब्द की) उद्घोषणा, बौ.श्रौ.सू. 17.15 : 13।

छम्बट्कारम् क्रि.वि. छम्बट्कार करते हुए 'छम्बट्' शब्द को उद्घोषित करते हुए।

छवि स्त्री. 'गर्दभेज्या' में 'अवकीर्णिन्' (भग्नब्रह्मचर्य) द्वारा पहने जाने वाला (गधे का) चर्म (का.श्रौ.सू. 1.1.13), पा.गृ.सू. 3.12.6 (तां छविं पीरदधीत); अजिन (गृह्य), निदा.सू. 6.6.11।

छाग पु. अज, बकरा (वध्य पशु के रूप में व्यवहृत), का.श्रौ.सू. 16.3.10।

छायासंभेद पु. (छायाया: सम्भेद:) छाया का दिखाई पड़ना, भा.श्रौ.सू. 6.7.5।

छिन्दत्प्राणि न. चबाने के सामर्थ्य से युक्त पशु, आप.श्रौ.सू. 9.13.1 (अनुत्पूत-आज्य (अर्थात् आज्य) के नीचे गिरने के 'प्रायश्चित्त' के लिए दक्षिणास्वरूप दिया जाने वाला)।

छिद्र (युग) न. (छिद् + रक्, छिद्रयुक्तं युगम्) छेद, विवर, शकट (गाड़ी) के जुए के ऊपर छेद; दोनों छेदों के बीच अन्तराल=86 अंगुल (भाष्य)। पशु की वेदि के पूर्वी भाग पर उत्तर-दक्षिण रेखा की लम्बई, आप.श्रौ.सू. 7.3.8।

छृणत्ति (छृद् + लट् प्र.पु.ए.व.) छिड़कता है, छिड़काव करता है (अजापयसा छृणत्ति), आप.श्रौ.सू. 15.4.10 (प्रवर्ग्य)।

छेदन न. (छिद् + ल्युट्) मुट्ठीभर पवित्र घास का काटा हुआ अंश या भाग, श्रौ.प.नि.12.85।

छेदम् क्रि.वि. (छिद + घञ्) काटते हुए, ला.श्रौ.सू. 8.5.4।

ज

जगती स्त्री. एक छन्दस् का नाम, इसके चार पाद होते हैं एवं प्रत्येक पाठ में 12 अक्षर मो.वि; -जागत, जै.ब्रा. II.242.

जघन न. किसी दी हुई वस्तु का पिछला भाग (बौ.शु.सू. 3.52) जघनेन - पीछे (जघनेन गार्हपत्यं वावातया सह संविशति), शां.श्रौ.सू. 16.1.7 (अश्वमेधयज्ञ)।

जघनतस् क्रि.वि. (जघन्+तसिल्) अ: पीछे सं, कौशि.सू. 75.13।

जघन्य वि. (जघने भव:, जघन + यत्) अन्तिम (बाण-प्रक्षेण) आप.श्रौ.सू. 18.3.15. (वाजपेय), शां.श्रौ.सू. 3.8.26; ऋत्विजों में अन्तिम (साथ-साथ पहला भी), आश्व.श्रौ.सू. 1.13.7, 'संस्थिते जघन्य ऋत्विजां सर्वप्रायश्चित्तानि जुहुयात्, तम् इतरे अन्वालभेरन्'।

जघन्यव्रज्या स्त्री. (जघन्यं व्रज्या, व्रज्या=व्रज् + क्यप् + टाप्) पीछे जाना, किसी व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना, ला.श्रौ.सू. 8.12.2।

जघन्यस्तवन न. (जघन्ये स्तवनम्) अन्तिम स्थल पर स्तुति करना=गायन करना (अन्य गानकर्ताओं, अर्थात् 'प्रस्तोता', प्रतिहर्ता एवं सुब्रह्मण्य के बाद), ला.श्रौ.सू. 10.9.4।

जघ्निवती स्त्री. (जघ्नि + मतुप् + ङीप्) भार डालने के सन्दर्भ वाली ऋचा, 'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्' इत्यादि, ऋ.वे. 6.16.34।

जङ्घामात्री स्त्री. (जङ्घाप्रमाणं यस्या:, जङ्घा+मात्रच्+ङीप्) जङ्घा के बराबर ऊँचाई वाली, 'उत्तरमक्षस्यापरस्यां स्रक्त्यां परिश्रितो मिनोति जङ्घामात्री नाभिमात्रीं मुखमात्रीमिति', का.श्रौ.सू. 16.8.23 (अग्निवेदि में 'परिश्रित')।

जङ्घभ्यमान वि. (जभ् + यङ् + शानच्) जँभाई लेता हुआ, आप.श्रौ.सू. 4.3.12 (भाष्य-जृम्भमाण:)।

जठर न. पेट, उदर (इन्द्रस्य त्वां जठरे दधामि), आश्व.श्रौ.सू. 1.13.1 (प्राशित्र)।

जन पु. अधिसंख्य (लोग), लोग जहाँ बसे हो, वह स्थान, का.श्रौ.सू. 22.1.27, 29; तुल.ला.श्रौ.सू. 8.2.10-12।

जनकसप्तरात्र पु. सात दिन चलने वाले एक सोमयाग का नाम, शां.श्रौ.सू. 16.26.7; का.श्रौ.सू. 23.5.11 (जनकसप्तरात्र:, षष्ठ: सप्ताहो जनकसप्तरात्र:, स.वृ.); आश्व.श्रौ.सू. 10.3.14; आप.श्रौ.सू. 22.23.5; निदा.सू. 9.1:4=ऋषिसप्तरात्र।

जनद्वती स्त्री. (जनद् + मतुप् + ङीप्) जन्म के सन्दर्भ वाली ऋचा, जै. ब्रा. III. 77-78।

जनपद पु. (जनै: पद्यते) क्षेत्र, देश, ला.श्रौ.सू. 8.2.12।

जनपदधर्म पु. (जनपदस्य धर्म:) देशाचार, जो ग्रामाचार (ग्रामधर्म) के साथ अनेक रूपों वाले होते हैं, और जिनका पालन विवाह-संस्कार के समय किया जाता है, आश्व.गृ.सू. 1.7.1; द्रष्टव्य-आचारिक, आवृत, ग्रामवचन।

जनित्र न. एक साम का नाम, शां.श्रौ.सू. 12.9.17 ('विषुवत्' के पश्चात् वर्ष के दूसरे अर्थ में सत्र में अनुप्रयुक्त); (अग्नि का) उत्पत्ति-स्थान = अग्निमन्थन करते समय प्रयुक्त यूपतक्षण, का.श्रौ.सू. 5.1.22 ('अग्निर्जरित्र' मिति शकलम् आदाय तुष्णी वेद्यां करोति); उत्पति।

जनित्रस्थान न. (जनित्रस्य स्थानम्) उत्पत्ति (के साधन) की अवस्थिति, ला.श्रौ.सू. 9.12.8।

जन्मतिथि (जन्मन: तिथि:) पु. जन्म-दिन (चन्द्रीय), शां.गृ.सू. 1.25.5; प्रत्येक मास ऐसे दिन अनुष्ठित होने वाला कृत्य, वही 10।

जन्य वि. (जन + यत्) जन (लोगों से सम्बद्ध, ऋ.वे. 4.55.5; 9.49.2 (जन्यास उप नो गृहम्) वर का मित्र अथवा साथी, ऋ.वे. 4.38.6 जो 'दृढ जल' (वह जल जो सूखता नहीं); आपूरित करना है और अन्य अंकुश अथवा शाटी (अजन) को पकड़े हुए अथवा लिये हुए अग्नि के पास खड़ा रहता है, गौ.गृ.सू. 2.1.13-14 (विवाह); (दीक्षित व्यक्ति के कुल) से बाहर का (मित्र), मा.श्रौ.सू. 9.1.3.21।

जन्यभयापनोदन न. (जनेभ्य आगतं जन्यं तेभ्यो भयस्य अपनोदनम्) 'मनुष्यों से उत्पन्न होने वाले भय को दूर करने के लिए बाहर टांग (पैर) से मिट्टी के कन्दुक अथवा कीचड़ को ठोकर मारते हैं (सोमयाग के प्रारम्भ के समय), आप.श्रौ.सू. 11.7.2; 85 CH 85।

जप पु. (जप् + अच्, द्र. नन्दिग्रहि----पा 3.1.134) मन्त्र, जो (उपांशु) जपा जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.20; 1.1.24, इसमें हिं-पूर्वक भूर्भुव: ओम्', हो सकता है, 1.2.3 (= व्याहृतियां; कुछ अवसरों पर यह यजमान का कर्तव्य होता है कि वह जप करे, आप.श्रौ.सू. 14.15.4; **तुष्णीं** - पु. आज्यशस्त्र में 'होता' के द्वारा किया जाने वाला मौन अथवा

अश्रवणीय जप; **पुरस्तात्**-पु. 'बहिष्पवमान स्तोत्र' के परिचर्यात्मक (उपाकरण) कृत्य के रूप में प्रस्तोता को अध्वर्यु द्वारा दो दर्भ (पत्रों) को देते समय गायनकर्ता ऋत्विक् द्वारा प्रारम्भ में किया गया जपात्मक पाठ, का.श्रौ.सू. 9.6.36; एवं भाष्य, CH 174; 'आज्यस्तोत्र' का गायन करते समय भी, आप.गृ.सू. 12.28.6; (कै.हे.) CH 236।

जपमन्त्र पु. (जपस्य मन्त्रः) जपा गया अथवा जप के लिए मन्त्र (क्षत्रिय के लिए), मां.श्रौ.सू. 11.2.2; द्रष्टव्य - श्राव्यमन्त्र; वि. (वह कृत्य) जो मौन रूप से अनुष्ठित या जपे गये मन्त्र के साथ सम्पन्न हुआ हो, शां.श्रौ.सू. 3.16.20।

जय पु. (जि + अच्, एरच्, पा. 3.3.56) विजय, जीत, एक मन्त्र का नाम, तै.सं. 3.4.4, जो जब गौण आहुति में प्रयुक्त होता है, तो ऐसा माना जाता है की विजयप्रद होता है, पा.गृ.सू. 1.5.7; आप.गृ.सू. 2.7; मै.सं. 1.4.14, (चित्ताय स्वाहा चित्तं च, चित्तिश्च, आकूतानि च, आहुतिश्च, विज्ञातं च, विज्ञानं च, मनश्च, शक्करीश्च, दर्शश्च, पूर्णमासश्च, बृहच्च, रथन्तरं च (तै.सं. 3.4.4) एवं प्रजापतिर्जयान् के साथ अन्वारम्भणीय की मुख्य आहुति के बाद दी जाने वाली 13 आहुतियों (वैकल्पिक रूप से 14) का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.1141; 'अग्ने बलदा' आदि के साथ चौदहवीं, आप.श्रौ.सू. 5.24.4; अग्न्याधान की प्रारम्भिक अवस्था में सब अनाजों की आहुति के अनन्तर दी जाने वाली एक आहुति का नाम; यह (आहुति) 'गोपितृ' यज्ञ के अन्त में भी अर्पित की जाती है, बौ.श्रौ.सू. 2.8-11; देखें जयाभ्यातान, आप.श्रौ.सू. 19.17.18; मा.श्रौ.सू. 5.15.5.

जरत्कोशबिल न. पुराना भण्डार, भण्डार (2) (त्र्यम्बकेष्टि), बौ.श्रौ.सू. 5.16।

जराबोधीय न. एक साम का नाम, सा.वे. 1.15 पर आधृत; पञ्च.ब्रा. 14.5.27।

जरायु न. भ्रूण का बाहरी चमड़ा (जैसा कि 'उल्ब' से विभेदीकृत) जिसे मन्त्रोचारण के साथ-साथ माता के ऊपर जल छिड़कते हुए गर्भ से बाहर किया जाता है, आप.श्रौ.सू.14.15 (पुंसवन); तुल.आप.श्रौ.सू. 14.29.3; बौ.श्रौ.सू. 26.2.4।

जर्तिल पु. वन्य तिल (तिलकठ), आप.श्रौ.सू. 16.19.13.

जर्तिलमिश्र वि. (जर्तिलेन मिश्रः) वन्य तिल से मिश्रित, का.श्रौ.सू. 18.1.1 (जर्तिला आरण्यतिलाः, स.वृ.)

जलोदुम्बरसमिध् स्त्री. (जलेन युक्ता उदुम्बरस्य समिध्) 'पर्जन्य-होम' में प्रयुक्त होने वाली उदम्बरवृक्ष की गीली समिधा, गौतमगृह्य परिशिष्ट।

जागरण न. (जागृ निद्राक्षये + ल्युट्) पूरी रात जागना, 'रात्रिं जागरणधारणे', का.श्रौ.सू. 4.8.11 (अग्न्याधान)।

जाघनी स्त्री. (जघन + अण् + ङीप्) पूँछ, मा.श्रौ.सू. 1.8.6.15; इससे पशुयाग में 'पत्नीसंयाज' का अनुष्ठान किया जाता है; 'पत्नीसंयाज' में 'आज्य' के बजाय बध्यपशु के पूँछ के मांस की आहुति दी जाती है, 'जाघनीगुदं निधाय----', का.श्रौ.सू. 6.9.14 (पशुबन्ध)।

जातकर्मन् न. (जातस्य कर्म) नवजात शिशु के लिए कृत्य, कन्या या बालक दोनों का (कन्या का जातकर्म अमन्त्रक होता है), आश्व.गृ.सू. 1.15.10); शां.गृ.सू. 1.14.1, पुत्र के लिए बारह कपालों पर (द्वादशकपाल) पुरोडाश की आहुति वैश्वानर को अर्पित की जाती है (तै.सं. 2.2.5)। इसमें कई तत्त्वों का समावेश होता है।'सूत्रों' का इन तत्त्वों के क्रम एवं विवरण के विषय में पर्याप्त मतभेद है : अंशाभिमर्शन, आयुष्य, देशाभिमन्त्रण, स्तनप्रदान, स्नपन, (फलीकरण) होम (चि.भा.से.)।

जाततुष [सप्त.] जब भूसी उत्पन्न अथवा ढीली की जाती है, मा.श्रौ.सू. 1.2.2.18।

जातपुत्रकल्प पु. किसी व्यक्ति द्वारा पुत्र की प्राप्ति के लिए स्वीकरणीय प्रक्रिया, भा.श्रौ.सू. 6-3.6; द्रष्टव्य (अजात-पुत्रकल्प) अग्न्युपस्थान, तुल. भा.श्रौ.सू. 4.21.7-8।

जातवती स्त्री. (जात + मतुप् + ङीप्) वह ऋचा जो 'जन्म' का उल्लेख करती है; 'उत ब्रुवन्ति जन्तवः', ऋ.वे. 1.74.3।

जातिसंहार पु. (जातेः संहारः) उपयुक्त वर्ग (जाति) से उधार लेना, अर्थात् सम अथवा विषम, ला.श्रौ.सू. 6.6.14।

जानु पु. एक माप का नाम = 32 अंगुल, बौ.शु.सू. 1.13।

जानुका वि. (स्त्री.) (जन् + उकम्, पा. 3.2.154 में गणना नहीं) (वह स्त्री) जो किसी (पुरुष) सन्तति को जन्म देती है, भा.श्रौ.सू. 1.10.9; 3.9.10।

जानुदघ्नम् क्रि.वि. (जानु प्रमाणम् अस्य, जानु + दघ्नच्) घूटने तक ऊँचा, मा.श्रौ.सू. 1.5.4.12 (अग्निप्रणयन)।

जानुशिरस् न. (जानुनः शिरः) घूटने का शीर्ष भाग, आश्व.श्रौ.सू. 1.4.8 ('जानुशिरसा बर्हिरुपस्पृश्य' इष्टि में होता के जप से पहले)।

जान्वक्र

जान्वक्र वि. घुटने पर झुकने वाला, आप.श्रौ.सू. 10.9.2 (रु. सम्भुग्नजानुः), भा.श्रौ.सू. 10.5.15, वारा. श्रौ.सू. 1.1.1.29।

जामि वि. भाईयों एवं बहनों की तरह सम्बन्ध-युक्त, वलङ्कर के एन्. IJDL (2), 1979, पृ. 218-225।

जाया स्त्री. (जन् + यक् + टाप्) यजमान की पत्नी, जै.ब्रा. I.213।

जार पु. यजमान की पत्नी का उपपति (प्रतिप्रस्थाता द्वारा यह पूँछने पर कि 'तुम्हारे कितने उपपति हैं, के उत्तर में उसके (अर्थात् यजमान-पत्नी के) द्वारा जिसका (उपपति का) नाम एवं अभिज्ञान (पहचान) घोषित किया जाता है, ताकि एक अनर्थ टाला जा सके और यजमान-पत्नी द्वारा खुलासा किये जाने पर उपपति वरुण के पाश में बद्ध होने के लिए मजबूर हो जाता है; यह वरुण-प्रघास का अत्यन्त रोचक भाग है, आप.श्रौ.सू. 8.6.20-22; ला.श्रौ.सू. 1.3.1; द्रा.श्रौ.सू. 1.3.3; शां.श्रौ.सू. 14.56.1; भा.श्रौ.सू. 8.8.5।

जारघ्नी स्त्री. (जारं हन्ति या, जार + हन् + टक् + ङीप्, 'अमनुष्य- कर्तृके च' पा. 3.2.53) उपपति से छुटकारा पाने के लिए पढ़ी जाने वाली ऋचा, आप. मन्त्र पाठ 1.10.3।

जाल न. यजमान-पत्नी द्वारा धारण किया जाने वाला शिर एवं बालों का आभूषणात्मक जाल, 'जालं वा शिरसि त्रिपर्यायम्', का.श्रौ.सू. 7.4.7 (दीक्षा) ऐसा जाल (जिसके दोनों तरफ फन्दे हों); मा.श्रौ.सू. 2.1.2.6।

जिह्मस्तिष्ठन् वि. बैठते या स्थान लेने के द्वारा (या लेते हुए) वक्र, वक्र होकर बैठता हुआ (जुहुयात् जिह्मस्तिष्ठन्), आप.श्रौ.सू. 16.1.5।

जिह्वा स्त्री. जीभ (वध्य पशु की जीभ का एक भाग जुहू में पशु-याग के समय आहुति देने के लिए लिया जाता है), का.श्रौ.सू. 6.7.6; आप.श्रौ.सू. 7.24.2।

जीमूता स्त्री. गोचिति में एक ईंट का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.5.3।

जीवतण्डुल पु. (जीवयुक्तः तण्डुलः) चावल के जीवित दाने, अर्थात् वे दाने जो पूरा का पूरा हों, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.5; 1.5.1.19।

जीवतण्डुलम् क्रि.वि. इस प्रकार से कि चावल के दाने अपनी कच्ची अवस्था में रहें, भा.श्रौ.सू. 1.7.7 (श्रपयित्वा); पिण्डपि.।

जीवतुमत् वि. (द्वि.) (दो ऋचाएं) आश्व.श्रौ.सू. 2.10.5.6. जिसमें 'जीव' की अभिव्यञ्जना है, मै.स. 4.10.6 (मा.श्रौ.सू. 5.1.4; 16; आश्व.श्रौ.सू. 2.10.2), 'आ नो अग्ने सुचेतना---', ऋ.वे. 1.79.9 एवं 'त्वं सोम महे भागम्' ऋ.वे. 1.91.7. इनका प्रयोग दो घृत-आहुतियों की दो 'पुरोऽनुवाक्याओं' के रूप में होता है, मा.श्रौ.सू. 5.1.4.49; (—**कल्प**) 'पारयद्वन्त संयाजों' से युक्त एक कर्मकाण्डीय युक्ति।

जीवत्पितृक वि. (जीवन् पिता यस्य सः) जिसके पिता जी अभी जीवित हों, 'प्रेतेभ्यो ददाति जीवत्पितृकोऽपि जीवान्तर्हितेऽपि', का.श्रौ.सू. 4.1.23 (मा.श्रौ.सू. 1.1.2.21 जीवत्पितृ)।

जीवतुमन्त् = जीवितवन्त्।

जीवपुत्रा वि. (स्त्री.) (जीवयुक्तः पुत्रः यस्या सा) वह स्त्री जिसके सभी पुत्र जीवित हों, आप.गृ.सू. 6.11।

जीवितावभृथ पु. (जीवितस्य अवभृथः) जीवन का स्नान (अवभृथ) अर्थात् मृत्यु। चूंकि समाप्ति की सूचना देने के लिए यज्ञ के अन्त में अवभृथ विहित है, गौ.गृ.सू. 1.3.13।

जुम्बक पु. एक मानवीय देवता का नाम (अवभृथेष्ट्यन्ते अप्सुमग्नस्य पिङ्गलखलति-विक्लिध्रशुक्लस्य जुहोति जम्बुकाय स्वाहेति), का.श्रौ.सू. 20.8.16 (अश्वमेधयज्ञ)।

जुष पु. (जुष् + अच्) अनुमति इष्टि के लिए दक्षिणाग्नि में 'आज्यभागों' के पश्चात् दी जाने वाली 'प्रसन्न करने वाली' घृताहुति, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.11।

जुष्ट न. यजुस्-अभिव्यञ्जना (यजुरभिव्यञ्जना) 'जुष्टं निर्वपामि', भा.श्रौ.सू. 10.21.8 [सर्वेषु (निर्वापेषु) सावित्रं जुष्टं चानुषजेदित्येकम्। त्रिष्वेवेत्यपरम्।]; अनुकूल, सेवित।

जुष्टवती स्त्री. (जुष्ट + मतुप् + ङीप्) 'आनन्द' अथवा 'प्रसन्नता' के सन्दर्भ वाली ऋचा; 'जुषस्व स प्रथस्तमम्', ऋ.वे. 1.75.1; श्रौ.को. (सं.) II. 203।

जुहू स्त्री. (हूयतेऽनया सा) एक प्रकार की करछुल जिससे आहुति दी जाती है, (ऋ.वे. 1.145.3); स्रुचः आहुति की करछुलों में एक, यह पलाश-काष्ठ से निर्मित होती है, का.श्रौ.सू. 1.3.34 (पालाशी जुहूः); प्याले की आकृति की कटोरी से युक्त; इसे उपभृत् के ऊपर दाहिने हाथ से पकड़ते हैं, आप.श्रौ.सू. 2.13.3; सभी (आज्य) आहुतियां 'जुहू' से ही अर्पित की जाती है, 24.1.25 एवं जब होम के लिए अन्य किसी उपकरण का उल्लेख न किया गया हो, तो जुहू का ही प्रयोग करना चाहिए, का.श्रौ.सू. 1.8.45 (जुह्वाऽवचने); हि.श्रौ.सू. 4.2.27; शां.श्रौ.सू. 4.9.5; द्रष्टव्य - विरेन्द्रशास्त्री, वेदवाणी 12, पृ. 50-54।

जुहोति

जुहोति पु. (हु + तिप्, तु. इकश्तिपौ धातुनिर्देशे पा. 3.3.108) उन कृत्यों का पारिभाषिक नाम, जिनमें आज्य (सर्पिस्) हविर्द्रव्य होता है, जुहू उपकरण के रूप में प्रयुक्त होती है एवं अध्वर्यु इसका अनुष्ठाता होता है, आप.श्रौ.सू. 24.1.23-25, 'जुहोति' 'स्वाहा' का उच्चारण करते हुए बैठने की स्थिति में (अर्थात् बैठकर) अनुष्ठित किये जाने वाले 'होम' का वाचक है, इस प्रकार यजति से इसका भेद दिखलाया गया है, 'उपविष्टहोमा स्वाहाकार प्रदाना जुहोतयः, का.श्रौ.सू. 1.2.7 (उपविष्टेन होमो येषु ते, वषट्कारेण प्रदानं येषु ते, ते जुहोतय इत्युच्यन्ते, स.वृ.); तुलः 'यजति' का अनुष्ठान खड़े होकर, 'वषट्कार' के उच्चारण के साथ अग्नि-स्थल के दक्षिण जाकर किया जाता है।

जौहव वि. (जुह्वां भवं = जुह्वा हूयते, जुहू + अण्) (वध्यपशु के अङ्ग) जो जुहू में काटे जाते हैं, और जिनकी 'जुहु' से आहुति दी जाती है, (अङ्गों की संख्या) नौ अथवा (10) होती है, जिनका परिगणन एवंविध है : हृदय; जीभ, स्तन (क्रोड), बायीं (वाम) जांघ (सव्यसक्थि) बायें पूर्वपाद का ऊपरी पर्व सन्धि (पूर्वनडक) दोनों पार्श्व (पार्श्वे), यकृत्, एक वृक्य अथवा वृक, मलाशय के साथ गुदा, दाहिना नितम्ब (श्रोणि), 'हृदयं जिह्वां क्रोडं सव्यसक्थिपूर्वनडकं, पार्श्वे यकृद् वृक्कौ, गुदमध्यं दक्षिणाश्रोणिरिति जौहवानि', का.श्रौ.सू. 6.7.6; आप.श्रौ.सू. 7.22.6; बौ.श्रौ.सू. 4.8. अङ्गों का अभिज्ञान (पहचान) निश्चित नहीं है; तुल. हि.आ.ध. II. (2) 1126-27. इसके अतिरिक्त 'क्लोमन्' (गले में स्थित एक ग्रन्थि, दाहिना अङ्ग) प्लीहा, पुरीतत् (हृदयावरण), अध्यूध्नी, वनिष्ठु (बड़ी आँत), मेदस् (वसा), जाघनी (पूँछ) को वैकल्पिक रूप में काटा जा सकता है, का.श्रौ.सू. 6.11-11 (क्लोमप्लीहाऽध्यूध्नीपुरीततं चेच्छन्); इन्द्र एवं अग्नि को अर्पित किये जाते हैं।

जौहव आघार पु. पश्चिम से पूर्व तक एक (विकर्णी) आहुति, यज्ञीय करछुल (जुहू) से घी की, श्रौ.प.नि. 26.209।

ज्ञातिकर्मन् न. (ज्ञातेः कर्म) विवाह-संस्कार के समय निकट सम्बन्धी (महिला) द्वारा अनुष्ठित कृत्य, मौ.गृ.सू. 2.1.11।

ज्यानि स्त्री. (ज्या वयो हानौ + क्तिन्) क्षय, क्षति, आप.श्रौ.सू. 5.26.3 (पुनराधेयम्); भा.श्रौ.सू. 5.17.5।

ज्यायस् वि. (प्रशस्य + असुन् ज्यादेशः, 'ज्य च' पा 5.3.61) बृहत्तर, विशालतर, बौ.शु.सू. 2.18।

ज्याह्रोड (पु.) बाण-सहित धनुष्, मा.श्रौ.सू. 9.3.3.3 (व्रात्यस्तोम); धनुर्दण्ड (जो डोरी से रहित एवं निरर्थक हो), का.श्रौ.सू. 22.4.12 (ज्या प्रत्यञ्चा गता यस्य स ज्याह्रोडः। ज्यारहितः केवलो धनुर्दण्डःस. वृ.); (व्रात्यधन)।

ज्येष्ठदोह न. एक साम का नाम, म.स्मृ. पर मेधातिथि 3.185।

ज्येष्ठबन्धु पु. (ज्येष्ठः चासौ बन्धुः) परिवार का मुखिया (प्रथम प्याले को भरता है), मा.श्रौ.सू. 2.3.5.3।

ज्येष्ठसामिक पु. (ज्येष्ठः सामिकः) वरिष्ठ सामग (सामगायक), हि. ऑफ धर्म. II.II. 767 Fn; = ज्येष्ठसामग।

ज्यैष्ठिनेय पु. (ज्येष्ठायाः अपत्यं पुमान् ज्येष्ठिनी + ढक्) यजमान की सबसे बड़ी पत्नी का पुत्र; अग्निहोत्री गाय के चार थनों

में दो थनों का दूध प्राप्त करने के लिए अधिकृत, भा.श्रौ.सू. 6.9.1।

ज्योतिषो धृतिः स्त्री. एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.18।

ज्योतिष्टोम पु. (ज्योतिषः स्तोमः) 'प्रकाश की स्तुति'; एक एकाह (सोमयाग) का नाम, अग्निष्टोम इसकी प्रकृति है (ज्योतिष्टोम प्रायः अग्निष्टोम का पर्यायवाची है), आप.श्रौ.सू. 10.2.1–2; 'ज्योतिष्टोम' के स्तोम हैं : त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश एवं एकविंश, जो चार ज्योतिः—प्रकाश–शब्द वाच्य हैं (अतः इसी आधार पर 'ज्योतिष्टोम' नाम पड़ा)।

ज्योतिष्मती स्त्री. 'ज्योतिः' शब्द के उल्लेख वाली ऋचा का नाम, 'उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्', ऋ.वे. 1.50.10; श्रौ.को. (अं.) I.1047; श्रौ.को. (सं.) II.540; तै.आ. 3.19।

ज्यौत्स्न (ज्योत्स्नायां भवम्, ज्योत्स्ना + अण्) (सप्त.) मास के शुक्ल पक्ष में, मा.श्रौ.सू. 1.6.2.4।

त

तक्षण न. (तक्ष् + ल्युट्) (काष्ठ) का तनूकरण (लकड़ी को छीलना), का.श्रौ.सू. 22.6.10 (सर्वस्वारमारणकामस्य आसन्दीकरण)।

तक्षणशस्त्र न. (तक्षणस्य शस्त्रम्) छीलने का उपकरण, भा.श्रौ.सू. 7.1.3।

तक्षन् पु. बढ़ई, आप.श्रौ.सू. 7.1.13; वह अपना काटने वाला उपकरण (तक्षणशस्त्र) लेता है और अध्वर्यु, ब्रह्मा तथा यजमान के साथ 'यूप' का निर्माण करने के लिए जाता है, भा.श्रौ.सू. 7.1.3-4।

तण्डुल पु. चावल, आश्व.श्रौ.सू. 1.8.5; 'धान्यमसीति तण्डुलानोप्य पिनष्टि-------', का.श्रौ.सू. 2.5.6 (इष्टि) चावल के दानों को भूसी-रहित किया जाता है, पछोरा जाता है और सिल (दृषद्) एवं लोढ़ा (उपल) से पीसा जाता है, इसके आटे का उपयोग पुरोडाश-आहुति में होता है, भा.श्रौ.सू. 1.23.4-9 (दर्श)।

तथास्वर (तथा स्वरः यस्य सः) जिसका 'स्वर' उसी प्रकार का हो, ला.श्रौ.सू. 7-10.20; 7.5.3।

तनुग्रह पु. (तन्वां ग्रहः) (कृ के साथ) शरीर पर धारण करना, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.16।

तनुमध्य वि. (तनुः मध्ये) बीच में पतला, हि.श्रौ.सू. 5.4.4।

तनुमिश्र न. चटाई, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.8।

तनुहविस् न. (बहु.) पवित्र अग्नि को स्थापित कर लेने (आधान) के पश्चात् आठ कपालों पर (संस्कृत) आहुतियों का नाम, जो (आहुतियां) अग्नि पवमान, अग्निपावक एवं अग्नि शुचि को दी जाती हैं, भा.श्रौ.सू. 2.16-18।

तनू स्त्री. पाँचों पवित्र अग्नियों के प्रत्येक में (अर्थात् प्रत्येक अग्नियों में) समिधा डालने के पश्चात् प्रार्थना के रूप में गार्हपत्य के लिए पढ़े गये विशिष्ट मन्त्रों का नाम। मन्त्र का आरम्भ 'ये ते अग्ने शिवे तनुवौ------' से होता है; उसे इन मन्त्रों से दक्षिण एवं आहवनीय अग्नि की प्रार्थना करनी चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 2.16-18।

तनूदेवता स्त्री. तनू आहुति का देवता (जिनके नाम हैं : पवमान अग्नि, पावक अग्नि एवं शुचि अग्नि); शा.श्रौ.सू. 2.3.10.14 (पुरोडाश-आहुति के पूर्व एवं पश्चात् उन्हें आज्य आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं)।

तनूहविस् न. [विहित अवधि के बाद वैकल्पिक रूप से (एक मास, दो मास, तीन या चार मास, एक वर्ष या शीघ्र ही) पवित्र अग्नियों के आधान के समय अनुष्ठित होने वाली], एक इष्टि का नाम 4.10.7-16. (पवमान अग्नि, पावक अग्नि, शुचि अग्नि के लिए, अदिति के लिए चरु; छः, बारह अथवा चौबीस दक्षिणाओं वाली, बौ.श्रौ.सू. 2.7.23।

तनुमतीष्टि स्त्री. 'प्रजा' अर्थात् सन्तान प्राप्त करने के लिए एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.585; (सं.) II. 682।

तन्त्र न. (तन् + ष्ट्रन्) यज्ञ का प्रक्रियात्मक अनुष्ठान ('आग्नेयस्य तन्त्रं प्रक्रमयति' अग्नि के लिए यज्ञ के अनुष्ठान के साथ प्रक्रिया प्रारम्भ करता है), भा.श्रौ.सू. 5.12.1, साधारण प्रक्रिया (किसी इष्टि का, जैसे—बर्हिराहरण, इत्यादि), आप.श्रौ.सू. 10.21.1; 'इष्टि' का ढाँचा, मा.श्रौ.सू. 1.5.5.4; बहुतायत चीजों के लिए केवल एक बार उनके अनुष्ठान के द्वारा तत्सदृश कृत्यों का समावेशन, 'कर्मणां युगपद्भावः तन्त्रम्', का.श्रौ.सू. 1.71 (प्रधानकर्मणां यत्र युगपद्भावः = सहानुष्ठानं तत्र अङ्गानामपि सकृदेवानुष्ठानं भवति), आवश्यक वैशिष्ट्य (अङ्ग) उदाहरणार्थ—यज्ञ के प्रयाज आदि, स.वृ. जिनका अनुष्ठान केवल एक बार होता है किन्तु सम्पूर्ण यज्ञ का उपकार करता है और यह ढाँचा बन जाता है, आप.श्रौ.सू. 14.5.3; इसी के आधार पर 'दर्श' को अन्य इष्टियों के ऊपर प्राथमिकता दी जाती है, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.3; इसका तात्पर्य सम्पूर्ण याग से भी है, आप.श्रौ.सू. 24.1.29; 'भिन्नतन्त्र' भी देखें, 20.2.6; बौ.श्रौ.सू. 24.3; 'आवाप' जो सामन्यरूप से तन्त्र में निविष्ट किये जाते हैं, के विरुद्ध के रूप में साधारण वैशिष्ट्य (तन्त्र) की बात करता है।

तन्त्रीभाव पु. संपुष्ट अथवा साधारण प्रक्रिया की स्थिति (आ तन्त्रीभावाद् एकैकं बीजम् अवव्रजयेत्), भा.श्रौ.सू. 6.17.4; द्रष्टव्य-तन्त्र-ढाँचा, मा.श्रौ.सू. 1.5.5.4.

तपनमन्त्र पु. (तपनस्य मन्त्रः) 'कपालों' को तपाते समय पढ़े जाने वाले मन्त्र, 'भृगूणां त्वा तपसा तप्यस्व तप्येथां तप्यध्वमिति', बौ.श्रौ.सू. 20.8.22.

तपश्चितामयन न. एक यज्ञीय सत्र (सत्र) का नाम, आप.श्रौ.सू. 23.11.1; बौ.श्रौ.सू. 17.23.1.

तपस्वती स्त्री. (तपस् + मतुप् + ङीप्) 'तपस्' से युक्त एक ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.6.7.

तप्तकृच्छ्र न. (तप्तसहितं कृच्छ्रम्) ताप के साथ अनुष्ठित एक 'कृच्छ्र' कृत्य, का.गृ.सू. 6.1; बौ.ध.सू. 2.1.63.

तप्तव्रत वि. (तप्तपानं व्रतं यस्य) (वह व्यक्ति) जो व्रत-भोजन के रूप में गरम दूध पीता है, भा.श्रौ.सू. 12.2.5.

तप्तातङ्क्य वि. (तप्तं आतच्यते येन) (दही) जो गरम दूध को जमाता है, भा.श्रौ.सू. 2.5.1.2.

तप्तायनी स्त्री.प्रतीक, एक मन्त्र का प्रतीक (वा.सं.5.9) का श्रौ.सू. 5.3.22 में।

तमन न. (तम् + ल्युट्) साँस रोकना, शां.श्रौ.सू. 2.7.7; का.श्रौ.सू. 4.1.13.

तमयन्ति (तम + लट् णिच् प्र.पु.ए.व.) (आलभ्य पशु की) साँस को रोकना अथवा नियन्त्रित करना, का.श्रौ.सू. 6.5.17 (संग्रह्य मुखं तमयन्त्यवाश्यमानम्)।

तमुष्टुहीय न. (तमुष्टुहि + छ) 'तुम उसकी प्रशंसा करो' (तमुष्टुहि) की अभिव्यञ्जना से युक्त सूक्त, शा.श्रौ.सू. 10.11.13.

तमोऽभ्यय न. (सप्त.) (तमसः अभ्यये = पतने) अन्धकार के आने पर, अर्थात् जब अन्धकार हो, का.श्रौ.सू. 4.15.12 (अग्निहोत्रायुष्कामस्य)।

तयादेवतसूददोहस् न. ईंटो को लगाते समय के कृत्य में उपयोग में लाया जाने वाला मन्त्र 'तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद', बौ.श्रौ.सू. 22.6.20; तै.सं. 4.2.4.4, बौ.श्रौ.सू. 3.6.3.

तयादेवता स्त्री. 'तया देवतया अङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद' (तै.सं. 4.2.4.4) से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र का नाम, जिसका वाचन दग्धशव (जिसका शव जला दिया गया हो) व्यक्ति की हड्डियों को इकट्ठा करते समय और निक्षेप करते समय मृग के चर्म पर किया जाता है, श्रौ.को.(अं) 1.1118.

तरी स्त्री. वे यव में बीज स्फुटित होकर विकसित नहीं होते (फलते हैं) और भूने जाने पर चिवड़ा बन जाते हैं, श्रौ.को. (अं.) 2.ii.903; बौ.श्रौ.सू. 17.31:14 (अथ या उ न फलन्ति तास्तर्यो)।

तर्द्म न. (यूप पर लगाये गये) 'चषाल' - वलय का विवर (छिद्र, गुहिका), का.श्रौ.सू. 6.1.28 (द्व्यङ्गुलं त्र्यंगुलं वा तर्दमातिक्रान्तं यूपस्य); छिद्र, का.श्रौ.सू. 7.3.17 (--तर्द्मसु पश्चादासञ्जनवती निदधाति);

तर्पयति (तृप् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) जल से तर्पण करता है, बौ.श्रौ.सू. 9.19 (अवान्तर दीक्षा, प्रवर्ग्य)।

तलवकार पु. एक सामवेदीय शाखा = जैमिनीय का नाम, जै.गृ.सू. 1.14:8.

-तल्प (गुरु से भिन्न किसी व्यक्ति की) पत्नी (के साथ सम्भोग), हि.श्रौ.सू. 266.40 = आप.ध.सू. 1(7)21.10.

-तल्पम् क्रि.वि.गुरु के विस्तर (के उल्लङ्घन को छोड़कर) (अन्य के) साथ- गौ.ध.सू. 3.3.8।

-तल्प्य वि. (तल्पमर्हति, तल्प + यत्) जो विस्तर या पर्यङ्क के योग्य हो; उन राजकुमारों के बारे में कथित, जो यज्ञीय अश्व के भ्रमण करते समय उसकी रक्षा करते हैं और जो राजा के सम्मुख आसन के लिए अर्ह होते हैं, आप.श्रौ.सू. 20.5.13 (अश्वमेधयज्ञ)।

तवश्वावीय न. एक साम का नाम, जिसका गायन उस व्यक्ति के लिए किया जाता है, जो मृत्युशय्या पर हो (अर्थात् मरणासन्न हो) किन्तु जिसने अपनी स्मृति नहीं खोई है और पहले 'आयदोह' साम का श्रवण कर लिया है, श्रौ.को. (अं.) 1.1078; गो.पि.मे.1.1.7.

तसर न. एक---उपकरण का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.5.7 (कौकिलि सौत्रामणी); ढरकी, वैदि.इण्डेक्स, की.मै., हि.अ. रामकुमार राय।

ताजक् क्रि.वि. शीघ्रतापूर्वक, शीघ्रता से, भा.श्रौ.सू. 11.16.6.

ताण्ड वि. ताण्ड से सम्बद्ध, ला.श्रौ.सू. 7.10.17.

तान पु. केवल एक ओर वही तान, का.श्रौ.सू. 1.8.18.19 = एकश्रुति जो अपने स्थिर (नित्य) वैशिष्ट्य के कारण (यज्ञ में) मन्त्रों के उच्चारण में आश्रयणीय होती है।

तानूनपाती स्त्री. (तनूनपातः इयम्, तनूनपात् + अण् + ङीप्) 'तनूनपात्' के सन्दर्भ वाली ऋचा, मधुमन्तं तनूनपात् (ऋ.वे. 1.13.2), ला.श्रौ.सू. 6.4.13; निदा. सू. 4.8.2.

तानूनप्त्र न. (तनूनप्तुः इदम्, तनूनप्तृ + अण्) एकता एवं सामञ्जस्य (गठबन्धन) के लिए यजमान एवं 16 ऋत्विजों द्वारा पात्र में रखे गये 'आज्य' को छूने का कृत्य, आश्व.श्रौ.सू. 4.5.3; का.श्रौ.सू. 8.1.19; बौ.श्रौ.सू. 14.2:5; सोमयाग के उपसदों में तनूनपात् के सन्दर्भ में एक धार्मिक-क्रिया, आप.श्रौ.सू. 11.1.11.

तानूनप्त्र

तानूनप्त्रिन् वि. (तानूनप्त्रमस्ति अस्य) 'तानूनप्त्र' घृत से सम्बद्ध कृत्य में भाग लेने वाला (व्यक्ति), आप.श्रौ.सू. 11.1.11.

तान्त्री वि. (स्त्री.) (तन्त्र + अण् + ङीप्) श्रौतयज्ञ के सामान्य ढाँचे के लिए निर्धारित (दक्षिणा) आप.श्रौ.सू. 14.12.4.

तापश्चित न. एक सत्र का नाम, आश्व. श्रौ.सू. 12.5.11; का.श्रौ.सू. 17.11.12 (पुरीषमास्वावपति मन्त्रेण वा तापश्चितस्य तुष्णीं श्रुतेः); ला.श्रौ.सू. 10.13.1; 10.10.6.

तापश्चितविकल्प पु. (तापश्चित एव विकल्पः) वैकल्पिक तापश्चित सत्र, का.श्रौ.सू. 24.7.27.

तार्प्य न. एक प्रकार का परिधान (सम्भवतः तृपा नाम के वृक्ष विशेष की छाल से निर्मित), मा.श्रौ.सू. 5.2.5.10 (तीन दिन तक चलने वाले सोम-याग में दक्षिणा के रूप में प्रदत्त); यह वनस्पतियों के तत्त्वों से भी बनता है और यजमान द्वारा अन्त वस्त्र के रूप में पहना जाता है, आप.श्रौ.सू. 18.5.7 (वाजपेय); 14.1 (राजसूय); इस शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है। घृत में तर किया गया परिधान, बौ.श्रौ.सू. 25.34; का.श्रौ.सू. 15.5.7-10; वस्त्र का एक टुकड़ा भी जिस पर यज्ञीय पशुओं को लेटाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 20.17.8 एतद्विषयक पाश्चात्त्य मत के लिए द्रष्टव्य-वैदिक इण्डेक्स, हि.अ.।

तामिस्र न. (सत्र) (तामिस्रा + अण्) महीने के कृष्ण पक्ष में, मा.श्रौ.सू. 1.6.2.4.

तार पु. (तृ + णिच् + अच्) फ = उत्तम; तृतीय अथवा उच्चतम तान जो 'दर्श' में 'शंयुवाक' के समाप्त होने तक इडा के आह्वान के लिए प्रयुक्त होता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.25-28.

तिरःपवित्रम् वि. तिरछे रखी हुई शोधिकाओं (पवित्रों) के माध्यम से, बौ.श्रौ.सू. 1.21; आ.प.श्रौ.सू. 1.13.6.

तिरश्ची क्रि.वि. आड़े-तिरछे, तिरछा, श.ब्रा. 3.4.10; 5.2.2.25, 6.7.1.14; 12.8.3.5; 4.9.3.3; तुल. 'तैरश्च्यर्च्' = 'तिरश्ची के सन्दर्भ से युक्त ऋचा, ला.श्रौ.सू. 6.8.12; तैरश्च्योत्तमा' उन ऋचाओं में अन्तिम, जिनमें 'तिरश्ची' का सन्दर्भ हो, ला.श्रौ.सू. 6.8.12; क्षैतिज, जै.ब्रा. I.128.

तिरस्कृत्य (तिरस् + कृ + ल्यप्) (कुश-पत्रों को) आड़े-तिरछे रखकर, '----कुशतरुणं तिरस्कृत्य---' का.श्रौ.सू. 6.1.12 (तिरस्कृत्य = अन्तर्धाय, स.वृ.); तुल. 'तिरोऽन्तर्धौ' पा. 1.4.71

तिरीचीनम् क्रि.वि. इस प्रकार की अंगुलि का अग्र भाग दक्षिण की ओर इङ्गित करे, आप.श्रौ.सू. 2.18.7 (इस विधि से अग्नि के लिए पुरोडाश का प्रथम अंश काटा जाता है)।

तिरोह्न्य न. (अह्न्यः तिरः-तिरोभावः) 'दिन का तिरोभाव या लुप्त होना' इस अभिव्यञ्जना का प्रयोग धाना के भक्षण के समय 'हरियोजनस्य ते स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य---'; इस पाठ के अतिरिक्त किया जाता है, यदि याग 'अतिरात्र' संज्ञक 'सोमयाग हो तो, द्रा.श्रौ.सू. 6.3.18; ला.श्रौ.सू. 2.11-12.

तिर्यक् क्रि.वि. (तिरस् + अञ्च् + क्विन्) आड़े-तिरछे, श.ब्रा. 1.7.4.12; 3.7.1.12; 8.7.2.10; 11.4.2.5; चौड़ाई में, बौ.शु.सू. 1.46.

तिर्यक्प्रमाण न. (तिरीचः प्रमाणम्) सघनता की माप आप.श्रौ.सू. 1.3.17; भाष्य, 'तिर्यक् प्रमाणानि स्थौल्यप्रमाणानिः कुल्मि, अरत्नि, प्रादेश, ऊर्वस्थि, जान्वस्थि एवं चम्मच का हत्था (स्रुग्दण्ड)।'

तिर्यङ्मानी स्त्री. चौड़ाई या विस्तार देने वाला पक्ष (एक ऋजुरेखीय आकृति का), बौ.शु.सू. 1.48.

तिल्वक पु. एक प्रकार का वृक्ष, काशिकर, इण्डेक्स 1, इसके निकट कब्र बनाना अशुभ माना जाता था, षड्वि. ब्रा. में 'यूप' का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त, वैदिक इण्डेक्स हि.अ.पृ. 348.

तिसृधन्व वि.तीन बाणों सहित (एक धनुष्), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.7 (आयुधं ब्राह्मणस्य दद्यात शतरुद्रिये)।

तिस्त्रस्कारम् क्रि.वि. (दो ऋचाओं) को तीन ऋचाओं के रूप में परिवर्तित करके, मौ.श्रौ.सू. 6.2.3.1.

तीक्ष्णार्थत्व पु. पीसने वाले पत्थर को धारदार (तेज) बनाने के लिए होने की स्थिति, का.श्रौ.सू. 8.2.17 (हविष्कृत्तमाहूयानाहनमपेषणे, तीक्ष्णार्थत्वात्)।

तीर्थ न. पवित्र जल-स्थान (या तो नदी) अथवा तालाब, आदि, बौ.श्रौ.सू. 6.1.13; अग्नि-वेदि के मुख्य शरीर का जोड़ (पर्व, सन्धि) एवं इसका उत्तरी पक्ष (उच्चतरवेदि में प्रवेश करनेके लिए अभिप्रेत एक स्थान), 'तीर्थेनाश्वमारोह-यत्युरपक्षमपरेण,' 17.3.22 (चयन); मृत व्यक्ति की अन्त्येष्टि-क्रिया के बाद सातवें दिन निर्मित एक मानव-प्राणी की प्रतिमा के लिए तर्पण करने के उपरान्त प्राप्त जल, वैखा. गृ.सू. 5.6.7. इस जल का निपटारा (परित्याग) दसवें दिन होना चाहिए; वह विशिष्ट स्थान जिससे होकर कार्यसम्पादक ऋत्विक् उत्तरवेदि से युक्त कृत्यों में 'उत्कर' एवं 'प्रणीता' के बीच यज्ञीय भूमि में प्रवेश करते हैं और बाहर निकलते हैं। दक्षिणा के रूप में दी जाने वाली गायों को ले जाने या हाँकने के लिए तीर्थशाला एवं सदस् के बीच में एवं वहाँ से आग्नीध्र के दक्षिण तरफ होता है 'अन्तरा शालासदसी दक्षिणेनाग्नीध्रं तीर्थेन, का.श्रौ.सू. 10.2.13 (सोमयाग); दो वेदियों के बीच (चातुर्मास्य), आप. श्रौ.सू. 8.5.11; अध्वर्यु को सदैव इसके पूर्वी द्वार से ही सदस् में प्रवेश करना चाहिए एवं धिष्ण्याओं के पास गमन करना चाहिए, आप.श्रौ.सू.11.10.16 (आह्वनीयोत्करा-वन्तरा तीर्थम्, चात्वालोत्करावन्तरा द्वितीयम्, चात्वालाह-वनीयावन्तरा तृतीयम् आहवनीयं स्रुचश्चान्तरा चतुर्थदक्षिण-परिधिसन्निधौ पञ्चमम्,मा.श्रौ.सू. 8.26.2); द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 11.73-75; दाहिने हाथ की हथेली के विशिष्ट भाग जिनसे पितरों, देवताओं, ऋषियों एवं मनुष्यों आदि का तर्पण किया जाता है।

ब्रह्मतीर्थ

पितृतीर्थ

तीर्थसञ्चार पु. (तीर्थेन सञ्चार:) निर्धारित लीक से होकर जाना, मा.श्रौ.सू. 8.26.1.

तीर्थ्य वि. (तीर्थ+यत्) पवित्र जल-स्थल से सम्बन्धित (तीर्थ्यान् सम्भारान् याचति), बौ.श्रौ.सू. 6.1.26.

तीव्रसुत् पु. एक सवन-दिन वाले सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू.9.3.2.1 ('षोडशिन्', तीव्रसुत् एवं चार माह वाले यज्ञों, जिसमें बिना अग्नि-वेदि के दीक्षा एवं उपसद् दिन होते हैं, को छोड़कर सभी यज्ञों में अग्निवेदि होती है); जिसने सोम का शुद्धीकरण कर लिया है एवं युद्धशाली (युद्धरत) राजा इसका अनुष्ठान कर सकता है, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.22.

तीव्रीकृत्य (अतीव्रं तीव्रं कृत्वा, तीव्र+च्वि+कृ+ल्यप्) शक्तिशाली बनाकर, 'दूर्वारसेन अपां श्लक्ष्णीकरणं तीव्रीकरणम्', आप.श्रौ.सू. 13.17.9 भाष्य; हि.श्रौ.सू. 9.4.55.

तुण्ड न. छः अवगुण्ठित कमल-नालों का शिखर (उपरी भाग) मा.श्रौ.सू. 10.1.4.2; तीन साल की ओसर (गाय) का बाल.

तुरायण न. इष्ट्ययन, अर्थात् 'इष्टि'-(संज्ञक यज्ञों) की श्रृङ्खला से युक्त एक सत्र-याग, आश्व.श्रौ.सू. 2.14.4-6; आप.श्रौ.सू. 23.14.1; 'दर्श' के प्रतिदर्श पर आधृत एक काम्येष्टि भी अर्थात् 'दर्श' की विकृति, शां.श्रौ.सू. 3.11.15.

तुरीय वि. (चतुर्+छ, चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च, वा., पा. 5.,2.51 पर) मा.श्रौ.सू. 10.1.1.9; सर्वोत्तम।

तुल्यचोदन वि. (तुल्यं चोदनं यस्य) ग्रन्थों में समान निर्देश वाला (जिसकी विधि समान हो), ला.श्रौ.सू. 8.1.10.

तुष पु. भूसी, छिलका (यव के बीज का, धान का भी), का.श्रौ.सू. 2.4.19 (इष्टि) 'वरुणप्रघास' के 'अवभृथ' में प्रयुक्त, भा.श्रौ.सू. 8.11.7, 9; उत्कर पर पछोरा जाता है और फलीकरण पात्र से राक्षसों को अर्पित कर दिया जाता है, 1.22.5.

तुषनिष्कास न. (यव की) भूसी एवं (वरुण के लिए अभिप्रेत दधि को) खुरच कर निकालना, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.34; 40.

तूणव पु. मुख से फूंककर बजाया जाने वाला बाँस से निर्मित यन्त्र, वंशी, आप.श्रौ.सू. 5.8.2; बाँस से निर्मित वाद्य-यन्त्र, भा.श्रौ.सू. 5.4.2 (आधान)।

तूणा स्त्री. पितृमेध के कृत्य में प्रयुक्त एक प्रकार का वाद्य यन्त्र, श्रौ.को. (अं.) 1.1102.

तूपर वि. श्रृंग-विहीन (अज),शां.श्रौ.सू. 15.1.22 (वाजपेय); भा.श्रौ.सू. 7.9.7 (छोटी सींगों वाला)।

तूर्णम् क्रि.वि. शीघ्रता से, का.श्रौ.सू.8.1.2 (आतिथ्येष्टि में हविर्निर्वाप)।

तूल न. घासों का जूड़ा, मा.श्रौ.सू. 1.1.31 (आँख में अञ्जन लगाने के लिए) प्रयुक्त

तुष्णींजप पु. 'सुमत्पद्वद्गे पिता मातरिश्वा----' का मौन जप आश्व.श्रौ.सू. 5.9.1; श्रौ.को (सं.) II 325.

तुष्णींशंस पु. (आज्यशस्त्र से सम्बद्ध) मौन जप, शां.श्रौ.सू. 9.25.1; 7.9.1 (अग्निर्ज्योतिः ज्योतिरग्निः इन्द्रो ज्योतिः ज्योतिरिन्द्रः सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्य इति पत्शः अवस्यन्); आश्व. श्रौ.सू. 5.9.11. होता द्वारा मन्द स्वर में 'आज्यशस्त्र' के द्वितीय भाग के रूप में पठित। अध्वर्यु के प्रतिगर के पश्चात् CH 232; द्रष्टव्य- श्रौ.को. (सं.) II 323-325, 454.

तुष्णीकम् क्रि. वि. बिना ऋचाओं का उच्चारण किये (कार्य करना) (गृहमेधीये तुष्णीकम् आज्यभागाभ्याम्), मा.श्रौ.सू. 1.7.5.5; मन्त्रवत् (मन्त्र के साथ) का उल्टा (विपरीत), आप.श्रौ.सू. 3.18.7.

तृच् पु. (न.) (तिसृणाम् ऋचां समूहः) तृच्, तीन ऋचाओं का एक समूह, शां.श्रौ.सू. 1.4.8, जो स्तोत्र का आधार है। किसी सूक्त के तीन चरणों की आवृत्ति कर निश्चित संख्या वाला स्तोम (अर्थात् त्रिवृत् 9, पञ्चदश 15 इत्यादि) प्राप्त किया जाता है; द्रष्टव्य देशपाण्डे एम. II 17 (3-4) 1975,पृ. 249-50; महेन्दले एम.ए., 22 (2) 1980, 140

तृचकरण न. (तृचस्य करणम्) तृच का निर्माण, ला.श्रौ.सू. 6.3.14.

तृचक्लृप्त वि. (तृचे क्लृप्तम्) तृचों में व्यवस्थित, शां.श्रौ.सू. 17.8.11 (प्रउग)।

तृचभागा पु. तृच से युक्त 'विष्टुति' के पर्याय(बारी)की प्रथम ऋचा, ला.श्रौ.सू. 6.5.7.

तृचभागास्थान न. तृच के प्रथम ऋचा की नाम-पद्धति, ला.श्रौ.सू. 6.5.7; निदा.सू. 1.11.33.

तृचसूक्त न. (तृचयुक्तं सूक्तम्) तीन ऋचाओं वाला सूक्त, ला.श्रौ.सू. 6.3.1; क्षुद्र सू. 2.9.3.

तृणकाष्ठापासन न. (तृणकाष्ठखण्डयोः अपासनम्) (अनावश्यक) घासों एवं लकड़ी के टुकड़ों को (सोम के डण्ढल से) हटाना, का. श्रौ.सू. 7.7.8.

तृणनिरसन न. (तृणस्य निरसनम्) घास के तिनके को दूर फेंकना, शां.श्रौ.सू. 4.6.5 (ब्रह्मा के बैठने के पहले)।

तृणप्रहरण न. (तृणस्य प्रहरणम्) इष्टि में सूक्तवाक के अनन्तर पवित्र घास के पत्रों को अग्नि में फेंकना, श्रौ.प.नि. 37.309.

तृणाद्य घास खाना (पुरा तृणाद्यात् सोमं पाययन्ति) आप.श्रौ.सू. 20.2.11

तृणैध वि. (तृणैः इद्धः अथवा तृणम् एधः यस्मिन्) तृण (घास) से समिद्ध (अग्नि), भा.श्रौ.सू. 9.13.9 (तुल. शाकैध)।

तृतीय वि. (त्रि+तीय, त्रयाणां पूरकः, 'त्रेः सम्प्रसारणं च' पा. 5.2.55) तीसरा, ऋ.वे. 4.34.4 (सोमयाग का तृतीय सत्र)।

तृतीयकरणी स्त्री. वर्ग का पक्ष या पार्श्व, वह क्षेत्र, जो दिये गये वर्ण का एक-तिहाई हो, बौ.शु.सू. 1.47.

तृतीयम् क्रि.वि. तीसरी बार, भा.श्रौ.सू. 3.5.15

तृतीयवेला स्त्री. (तृतीया वेला) तृतीय (अर्थात् निम्नतम) उभार, भा.श्रौ.सू. 11.3.1 (महावीर); 'तृतीयवेलां प्रतिनयति'; वह खोखले भाग के नीचे तृतीय उभार तक तपाकर गढ़े।

तृतीयश्रुति स्त्री. श्रुति-कथन (शां.श्रौ.सू. 43.3.9) (द्वितीय प्यालों को) तृतीय के रूप में मानते हुए, 'तृतीयश्रुतेश्च', का.श्रौ.सू. 10.3.6.

तृतीयसवन न. (तृतीयं सवनम्) सुत्या दिन का तृतीय अथवा सायंकालिक (सवन का) सत्र (वेला) आश्व.श्रौ.सू. 5.17.1; का.श्रौ.सू. 21.2.8 (तृतीयसवनेषु हुतेषु हविःषु)।

तृतीयिन् पु. (तृतीय+इनि) एक पुरोहित, चार के समूह में द्वितीय सहायक, जिसको दक्षिणा का तीसरा भाग मिलता है, आप.श्रौ.सू. 21.2.18 ('आदिन्' की तुलना में जो प्रथम सहायक, द्वितीय भाग प्राप्त करता है 'द्वितीयिन्' भी कहलाता है, आप.श्रौ.सू. 21.2.17; पदिन् तीसरा सहायक है जिसे चौथा भाग मिलता है), मा.श्रौ.सू. 2.4.5.7.

तृतीयोदुप्त वि. (तृतीये उदुप्तः, उदुप्त=उद्+वप्+क्त) तृतीय भाग में खोखला बनाया हुआ (वायव्य पात्र), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.13.

तेजनी स्त्री. (तिज्+ल्युट्+ङीप्) घास का गट्ठर, मा.श्रौ.सू. 2.2.2.29 (तेजन्यां वरसं करोति छद्याधाने); दाँत को साफ करने का साधन (दतुवन), ला.श्रौ.सू. 9.2.27.

तैरश्च न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.6.11 सा. वे. 1.346 पर; 'पृष्ठय'-नामक छः दिन तक चलने वाले सोम याग के तीसरे दिन गाया जाता है।

तैल्वक वि. (तिल्वकस्य विकारः) तिल्वक वृक्ष की (समिधा), मा.श्रौ.सू. 6.1.3.28; का.श्रौ.सू. 21.3.20

तैषी वि. (तिष्य+अण्+ङीप्) (वह पौर्णमासी) जो कि 'तिष्य नक्षत्र के अन्तर्गत है, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.3

तोक्म न. धान का अङ्कुर, श्रौ.सू. (अं) 1.903 (सौत्रामणी के लिए 'सुरासोम' में प्रयुक्त।

तोद पु. (अग्निवेदि के निर्माण के समय भूमि पर बनाया गया), मा.श्रौ.सू. 10.2.1.5

तौरश्रवस न. (द्वि.व.) संसव-याग के माध्यन्दिन सवन में गाये जाने वाले दो 'साम' का नाम, का.श्रौ.सू. 25.14.13 (तौरश्रवसे माध्यन्दिने पवमाने तदावपनश्रुतेः); ला.श्रौ.सू. 7.33; आप.श्रौ.सू. 14.20.1; क्षुद्रसू. 1.8.9.

त्याग पु. (त्यज्+घञ्) किसी वस्तु को अर्पित करना, यज्ञ के तीन प्राथमिक तत्त्वों में एक (अर्थात् तृतीय) जो यज्ञ के लिए अत्यावश्यक है, का.श्रौ.सू. 1.2.2 (द्रव्यं देवता त्यागः); अपने स्वामित्व वाली वस्तुओं (अर्थात् जो अपने पास हैं) को यह कहते हुए अभिमानी देवता को अर्पित करना चाहिए- कि यह मेरे लिए नहीं है, बल्कि देवता के लिए है, श्रौ.प.नि. 30.249.

तयस्त्रिंशस्तोम वि. (त्रयस्त्रिंशस्तोमः यस्मिन्) तैंतीस ऋचाओं वाले स्तोम से युक्त (एक सुत्या दिन), शां.श्रौ.सू. 10.7.1.

त्रयी स्त्री. (त्रयाणां=वेदानां समाहारः) तीन वेदः ऋग्वेद, यजुर्वेदे, सामवेद, जै.ब्रा. I.363.

त्रयोदशकपाल वि. (त्रयोदशसु कपालेषु संस्कृतः) 13 कपालों परा तैयार किया गया (संस्कृत) (पुरोडाश), का.श्रौ.सू. 25.4.35 (भार्या गोषु यमजनने मरुतं त्रयोदशकपालं निर्वपेत्)।

त्रिकद्रुक पु. (त्रयः कद्रुकाः) तीन सोमयागों का नाम, अर्थात् ज्योतिष्टोम, गोष्टोम एवं आयुष्टोम। गोष्टोम एवं आयुष्टोम उक्थ्य-प्रकृति के हैं, मा.श्रौ.सू. 9.3.1.10; 'त्रिकद्रुकेष्व-पिबत्सुतस्य' ऋ.वे. 1.32.3 द्रष्टव्य- 'त्रिकद्रुकत्र्यह', 9.4.3.18; निदा.सू. 5.11.20; द्रष्टव्य-त्रैकुकुद (साम), जै.ब्रा. I. 189.

त्रिकद्रुकद्वादशाह पु. (त्रिकद्रुकयुक्तः द्वादशाहः) 'त्रिकद्रुक' से युक्त बारह दिन तक चलने वाला सोम याग, क्षुद्रसू. 2.16:1.

त्रिकद्रुकपञ्चाह पु. (त्रिकद्रुकयुक्तः पञ्चाहः) 'त्रिकद्रुक' से युक्त पाँच दिन तक चलने वाला यज्ञ, निदा.सू. 5.11.17.

त्रिकरणी स्त्री. पार्श्व में एक वर्ग, जिसका क्षेत्र एक त्रिकोण के दूसरे पार्श्वों (बौ.शु.सू. 1.46) पर दिये गये वर्ग का तीन गुना होता है,

त्रिकुण्ठ पु. त्रिकोण, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.12 (त्रिकुण्ठवत् त्र्यवलम्बकः = समद्विबाहु आयताकार (समकोणीय) त्रिभुज)

त्रिगध वि. तीन मूलों (जड़ों) वाला, आप.श्रौ.सू. 19.26.2. बौ.श्रौ.सू. 13.37.37:3.

त्रिगुणा रज्जु स्त्री. (त्रयः गुणाः यस्याः सा रज्जुः) तीन लड़ी वाली रस्सी, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.6.

त्रिचित् वि. तीन परतों या तहों वाली, का.श्रौ.सू. 17.1.23 (उखा)

त्रिणिधन वि. (त्रीणि निधनानि यस्मिन्) (वह साम) जिसमें तीन निधन (साम का अन्तिम भाग) हों, ला.श्रौ.सू. 6.4.5; 7.4.1.

त्रिधातु क्रि.वि. तीन समूहों (अथवा मुष्टियों) में, आप.श्रौ.सू. 2.9.2; तीन तहों में (उपस्तृणाति), मा.श्रौ.सू. 4.3.5, 1.2.6.29 (पश्चात् होत्रे त्रिधातूपस्तृणाति)

त्रिपाण वि. तीन बार पानी में डुबाये गये वस्त्र से निर्मित परिधान, का.श्रौ.सू. 15.5.8 (त्रिपाणं वा); भाष्य-छाल का परिधान।

त्रिप्रवर वि. (त्रयः प्रवराः यस्य) (वह व्यक्ति) जिसके तीन पूर्वज (ऋषि) हों, आश्व.श्रौ.सू. 12.10.12; 13

त्रिभृष्टि वि. (तिस्रः भृष्टयः यस्य) तीन कोनों वाला (उक्थ्य पात्र), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15.

त्रिरात्रावरम् क्रि.वि. (अग्नि के पुनराधान=पुनः स्थापना के पूर्व) कम से कम तीन रात तक, का.श्रौ.सू. 4.11.3 (त्रिरात्रावरमग्नीनुत्सृज्य)।

त्रिवती स्त्री. (त्रि+मतुप्+ङीप्) 'त्रि' (तीन) शब्द से युक्त ऋचा (ऋ.वे. 3.20.2) का नाम, वह ऋचा है- 'अग्ने त्री ते वाजिन् त्री सधस्था--'; होता 'त्रैधातवी इष्टि' की 'सामधेनियों' का समापन इसी ऋचा से करता है, बौ.श्रौ.सू. 13.41-42; श्रौ.को. (सं.) 1.402 (याज्यानुवाक्या)

त्रिवत्स पु. (त्रिवर्षीयः वत्सः) तीन साल का बैल, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.18.

त्रिविष्टब्धक न. (त्रयाणां दण्डानां विष्टब्धकम्) तीन दण्डों का गुच्छ (सन्यासी का चिह्न), हि.आ.ध. 2.2.936 n.

त्रिवृत् वि. नौ ऋचाओं वाला, शा.श्रौ.सू. 9.21.1 (द्वार से बाहर का साम और 'सन्धिसाम' त्रिवृद् बहिष्पवमानः सन्धिसाम च); तृचों का प्रथम चरण बिना पुनरावृत्ति के गाया जाता है, उसके बाद द्वितीय एवं तदनन्तर तृतीय। इसे 'उद्यती' कहते हैं, द्रष्टव्य-'परिवर्तिनी' अ ब स, अ ब स, अ ब स एवं कुलायिनी, अ ब स, ब स अ एवं स अ ब।

त्रिवृच्छिरस् वि. (वेद) जिसके तीन शिर हैं (त्रिवृद् एकशिराः त्रिविच्छिराः त्रीणि शिरांसि इति केचित्) आप.श्रौ.सू. 1.6.5.

त्रिवृद्रज्जव्य वि. तीन लड़ियों वाली रस्सी से युक्त (हल), का.श्रौ.सू. 1.6.5.

त्रिषंयुक्त पु. तीन इष्टियों का समूहः 1. अग्नाविष्णु, इन्द्राविष्णु एवं विष्णु; 2. अग्नीपूषन्, इन्द्रापूषन् एवं पूषन्; तथा 3. अग्नीषोम, इद्रासोम एवं सोम के लिए। त्रिषंयुक्तों में प्रथम वालों के लिए पुरोडाश एवं शेष के लिए चरु अर्पित किया जाता है, का.श्रौ.सू. 15.2.8-14 ('एकादशकपालः प्रथमः प्रथमश्चरव इतरे', का.श्रौ.सू. 15.2.16); (राजसूय)।

त्रिष्टुभ् स्त्री. एक वैदिक छन्द का नाम जिसके चार चरण में प्रत्येक में 11 अक्षर होते हैं, जै.ब्रा. I.35.

त्रिसुपर्ण न. या तो तीन ऋचाओं का नाम, ऋ.वे.10.114. 4-6; 'एकः सुपर्णः' आदि अथवा तै.आ. 10.48-50 के तीन अनुवाक; 'ब्रह्म मेतुमाम्---'; पु. वह व्यक्ति जिसने 'त्रिसुपर्ण' नामक ग्रन्थ को पढ़ लिया है।

त्रिस्तनव्रत न. तीन थनों से प्राप्त व्रत का दूध, बौ.श्रौ.सू. 6.2.1; 23.

त्रिहायणी वि. (स्त्री.) (त्रीणि हायनानि यस्याः सा) तीन साल की, त्रिवर्षीया, हि.श्रौ.सू. 7.2.16; मा.श्रौ.सू. 5.2.10.2.

त्रेणी वि. तीन-पट्टियों या रेशे वाला ('शलाली' साही का काँटा), भा.श्रौ.सू. 10.3.12 (सोम-केशश्मश्रुवपन)।

त्रैककुदाञ्जन न. (त्रैककुदं च तद् अञ्जनम्) =सौवीराञ्जन, एक प्रकार का अञ्जन (काजल), का.श्रौ.सू. 7.2.31 (श.ब्रा.अत्रैककुदम्)।

त्रैककुभ न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. I.185.

त्रैत न. (बैलों की ?) तिकड़ी या त्रिक, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.6; वह बछड़ा जो तीन गायों के दूध को चूसता है। पशुओं की प्राप्ति (बौ.श्रौ.सू. 24.39) के लिए वध्य (बलि) के रूप में सोम-पूषन् के लिए प्रदान करने के लिए इसका विधान किया गया है; सा.वे. 1.334 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च. ब्रा. 10.2.1; देवताओं की तिकड़ी (त्रैत), जै.ब्रा. 1.184; एक साम का भी नाम।

त्रैधं सम्भुज्य (सम्भुज्य=सम्+भुज्+ल्यप्) रस्सी को तीन भाग में मोड़कर (वह वेदि को नापता है), मा.श्रौ.सू. 5.2.12.5; एक छिद्र=15 अंगुल। 11 यज्ञस्तम्भों (यूपों) के लिए=

165=तिहरा, तीन-मोड़; एक 'प्रक्रम'=55 अंगुल; 10.1.3.7 के मतानुसार यह 47 से 50 अंगुल तक आता है।

त्रैधातवी स्त्री. एक इष्टि का नाम जिसमें प्रथम आहुति चावल की होती हे, उसके बाद यव और उसके बाद पुन: चावल की, यह आहुति राजसूय में होती है, का.श्रौ.सू. 15.7.29 (त्रैधातव्युदवसानीया); इन्द्र एवं विष्णु के लिए आप.श्रौ.सू. 19.27.15; का.श्रौ.सू. (ऐद्रावैष्णवो द्वादशकपालो व्रीहियवानाम्)।

त्र्यंग न. (त्रीणि अङ्गाणि) वध्य (बलि के रूप में देय) पशु के तीन अङ्ग, जिनकी आहुति 'स्विष्टकृत्' (अग्नि) को दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 20.18.13 (अश्व); इसे 'औपभृत' भी कहते हैं।

त्र्यनीक पु. (त्रयाणाम् अनीक:) तीन का समूह, प्यालों की प्राथमिकता का तिहरा क्रम (समूढ उत्तरस्मिन् पृष्ठ्यत्र्यहे छन्दोमेषु च त्र्यनीकम् अभ्यस्येत्), मा.श्रौ.सू. 7.2.4.4.

त्र्यनीका स्त्री. तीन दिनों का समूह, आप.श्रौ.सू. 21.14.1 (प्रारम्भ में विशिष्ट 'ग्रह' से युक्त होने के सामान्य वैशिष्ट्य वाला)।

त्र्यम्बकेष्टि
(उच्चतर स्तर पर अर्थात् ऊपर टिकाये गये चावल के पिण्डों वाली)

त्र्यम्बक पु. शिव या रुद्र (से समीकृत) एक देवता (ऋ.वे. 7.59.12) जिसे साकमेध के अन्तिम कृत्य के रूप में 'त्र्यम्बकं यजामहे' (वा.सं. 3.6) इस मन्त्र से चौराहे पर एक पलाश के पत्ते में बनाये गये पुरोडाश की एक आहुति दी जाती है, का.श्रौ.सू. 5.10; आप.श्रौ.सू. 8.17-19; बौ.श्रौ.सू. 16.17; द्रष्टव्य डाँगे एस.ए. JOIB.70, 223-227.-इष्टि.

त्र्यम्बकपुनरुक्तवर्जम् क्रि.वि. त्र्यम्बक आहुति की पुनरावृत्ति के बिना, मा.श्रौ.सू. 8.17.15.

त्र्यवि पु. अट्ठारह माह का बछड़ा, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.18.

त्र्यह न. षडह के तीन सोम-दिनों की इकाई, जै.ब्रा. II. 425.

त्र्यावृत् क्रि.वि. तीन बार दुहराया गया, जै.ब्रा. I. 111.

त्र्युद्धि कि. (तिस्र: उद्धय:=उत्थानानि यस्य) (वह कटोरा) जिसमें तीन उभार हों, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.5; अग्न्याधान के समय चावल पकाने के लिए प्रयुक्त; महावीर पात्रों में भी तीन उभार होते हैं, भा.श्रौ.सू. 4.1.17; उखा भी उसी तरह की होती है, भा.श्रौ.सू. 6.1.2.6; स्त्री. (अग्न्याधेय कृत्य के अङ्ग के रूप में विष्णु शिपिविष्ट के लिए चरु पकाने के लिए प्रयुक्त होने वाला) तीन स्तरों वाला पात्र, आप.श्रौ.सू. 5.22.6.

त्र्युपसत्क वि. (तिस्र: उपसद: सन्ति यस्मिन्) तीन उपसदों से युक्त (सोमयाग), भा.श्रौ.सू. 11.12.5; तुल. 'षडुपसत्क', 'द्वादशोपसत्क', वही।

त्वग्बिल वि. (त्वचि बिलं यस्य) जिसके त्वचा वाले भाग की ओर कटोरे की तरह बिल (विवर) हो, भा.श्रौ.सू. 1.16.6.

त्वच् स्त्री. वेदि के लिए अभिप्रेत भूमि का शिखरस्थ पृष्ठ, आप.श्रौ.सू. 2.2.4; भाष्य 'वेदिभूमे: उपरितनम् मृदम्'।

त्वचम् उद्धन्यामाना वि. (उद्+हन्+यक्+शानच्) (वेदि) पृथ्वी का सतह, जिसको खोद कर निकाला जा रहा है, भा.श्रौ.सू. 4.7.1 (वेदिकरण)।

त्वष्ट्रमती स्त्री. (त्वष्ट्र+मतुप्+ङीप्) 'त्वष्ट्रा' देवता के उल्लेख से युक्त ऋचा का नाम, 'अग्ने-पत्नीरिहा ----- त्वष्टारं सोमपीतये', ऋ.वे. 1.22.9.

त्वाष्ट्रीसामन् न. सा.वे. 1.547 पर एक साम का नाम; पञ्च.ब्रा. 16.1.16.

त्सरु पु. (किसी हौज अथवा करहुल) का हत्था मा.श्रौ.सू. 2.3.1.18-20; पितृमेध के अन्तर्गत द्रोणचिति के हत्थे (के सदृश आकृति) होती है, जो इसका दसवां भाग होता है, मा.श्रौ.सू. 10.3.6.6.

त्सरुमत् वि. (त्सरु+मतुप्) हत्थे से युक्त (चमस), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.20.

द

दक्षनिधन न. एक साम का नाम=मौक्ष, पञ्च.ब्रा. 14.5.12.

दक्षिण वि. दक्षिणी, दाहिना, श्रौ.को (सं) .519; 'दक्षिणं जान्वाच्य अभिसर्पति', बौ.श्रौ.सू. 6.3-5; आश्व.श्रौ.सू. 1.1.12.

दक्षिणतउपचार वि. (दक्षिणत: उपचार: यस्य) दक्षिण की तरफ प्रवेश (और गतिविधि) वाला (अर्थात् जिसमें प्रवेश एवं गतिविधि दक्षिण की तरफ से हो), आप.श्रौ.सू. 11.9.4 (आग्नीध्र-मण्डप का)

दक्षिणधुर्य (पु.) (वह अश्व) जिसे जुए के दाहिने भाग में जोड़ा जाता है, का.श्रौ.सू. 15.6.18.

दक्षिणपूर्व वि. (द्वि. गार्हपत्य-मण्डप एवं आह्वनीय-मण्डप का क्रमश:) दक्षिणी एवं पूर्वी (द्वार), 'दक्षिणे पूर्वे द्वारे', का.श्रौ.सू. 4.7.10 (उत्पत्तिक्रमेण गार्हपत्यागारस्य दक्षिणे द्वारं कुर्यात्, आहवनीय-गृहस्य च पूर्वदिशि द्वारं कुर्यात्, स.वृ.); दोनों मण्डपों में साथ ही साथ पूर्व एवं पश्चिम में द्वार होते ही हैं।

दक्षिणश्रेणि स्त्री. (दक्षिणा श्रोणि:) दक्षिणी नितम्ब, आहवनीय के मध्यबिन्दु में लगायी गयी (स्थिर की गयी) 96 अंगुल लम्बी रस्सी के माध्यम से पहुँचा जाने वाला (अर्थात् जहाँ पहुँचा जाता है) वेदि के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक बिन्दु, श्रौ.प.नि. 6.27 (तु. इस बिन्दु के विपरीत (सामने का) बिन्दु दर्शपूर्णमास-वेदि का उत्तर नितम्ब होता है।)

दक्षिणा स्त्री. उपहार, ऋत्विक्-शुल्क; सामान्यत: दक्षिणा के रूप में गायें दी जाती हैं; योऽध्वर्युभ्यो देयश्चतुर्थोऽशस्तं पञ्चविंशतिधा कृत्वा द्वादशानध्वर्यवे ददाति, षट् प्रतिप्रस्थात्रे चतस्रो नेष्ट्रे, तिस्र उन्नेत्रे, आप.श्रौ.सू. 13.5.12 (भाष्य); आप.श्रौ.सू. 13.6.115; यदि किसी विशेष शुल्क की आशा की जाती है, तो यह जग्ध के रूप में जानी जाती है; यदि यह भय के कारण प्रदान की जाती है, तो 'गीर्ण' के नाम से जानी जाती है और यदि त्रुटिपूर्वक (गलत ढंग से) नियुक्त ऋत्विक् को दी जाती है, तो 'वान्त' कहलाती है, काशिकर 240-241; क्रि.वि. (यजमान के) दक्षिण अथवा दाहिने तरफ, का.श्रौ.सू. 11.1.3 (दक्षिणा अनुगच्छति आ क्रयात्); दक्षिणी दिशा में, (किसी दी गई वस्तु) के दाहिने तरफ, बौ.शु.सू. 1.28.

दक्षिणांस पु. (दक्षिण: अंस:) वेदि का दाहिना कन्धा, आहवनीय के मध्य से 24 अंगुल की रस्सी के सहारे पहुँचा जाने वाला आह्वनीय के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक बिन्दु, श्रौ.प.नि. 6.29 (तुलनीय-उत्तरी कन्धा जो उत्तरी तरफ इसके समरूप का रूप-निर्माण करता है)।

दक्षिणाकाल पु. (दक्षिणाया: काल:) यज्ञीय उपहारों के वितरण का समय, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.1.।

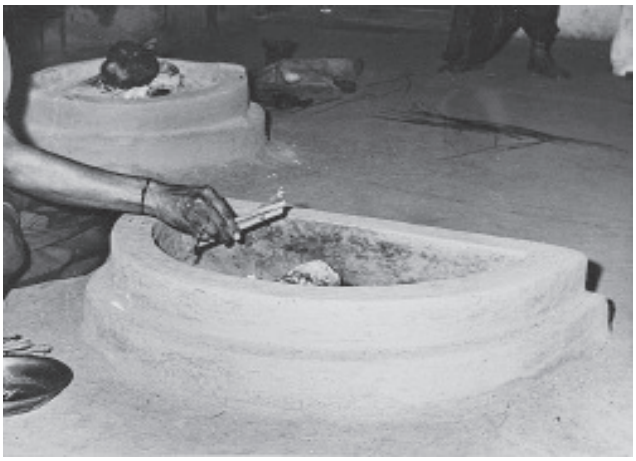

दक्षिणाग्नि

दक्षिणाग्नि पु. (दक्षिण: अग्नि:) दक्षिणी अग्नि, इसे 'अन्वाहार्यपचन' भी कहते हैं; अग्निशाला (प्राचीनवंश) में आहवनीय एवं गार्हपत्य के दक्षिण की ओर यह स्थित होता है, श्रौ.को. (सं.) II.654 द्रष्टव्य- बौ.शु.सू. 1.6.7 दक्षिणाग्नि के लिए स्थल प्राप्त करने के लिए; द्रष्टव्य- श्रौ.प.नि. 5.22-24.

दक्षिणाचार वि. (दक्षिणे दक्षिणस्य वा आचार:) (वेदि के) दक्षिण की ओर कार्य करना, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.6.

दक्षिणातिनयन पु. 'दक्षिणा' रूपी गायों को ले जाने से सम्बद्ध- 'एतत्ते अग्ने राधा----' यह मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 13.6.9.

दक्षिणापथ पु. (दक्षिणाया: पन्था:) वह मार्ग जिससे गायें गुजरेंगी अर्थात् सदस् के पश्चिम; आग्नीध्र-मण्डप के दक्षिण, 'दक्षिणापथेन यात्वाऽपरेण चात्वालं स्थापयति', का.श्रौ.सू. 15.6.16; यज्ञीय उपहार का मार्ग, मा.श्रौ.सू. 2.4.5.15; 7.2.1.48.

दक्षिणाप्राञ्चम् क्रि.वि. दक्षिण-पूर्व की ओर दिष्ट भा.श्रौ.सू. 2.12.4 (प्रथमाघार)

दक्षिणार्ध्य वि. (दक्षिणे अर्धे भवः, दक्षिणार्ध+यत्) (आहवनीय के) दक्षिणार्ध में रखी हुई (परिधि), भा.श्रौ.सू. 1.5.8.

दक्षिणावृत् वि. (दक्षिणे आवृत्) दाहिने अथवा दक्षिण की ओर मुड़ा हुआ अथवा मुड़ने वाला, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.4; श्रौ.को. (सं.) II.192

दक्षिणावृतालेखा स्त्री. घटिकावत् (अर्थात् घड़ी के समान) मुड़ने वाली रेखा, बौ.शु.सू. 2.30

दक्षिणोत्तरिन् वि. जिसका दाहिना भाग उपर की ओर है, बौ.शु.सू. 6.19:17; (बायें जङ्घे पर) दाहिने पैर वाला, आश्व.श्रौ.सू. 1.3.31

दक्षिणोपक्रम वि.(दक्षिणे दक्षिणेन वा उपक्रमः यस्य) (जिसका कर्तन =काटना) दाहिने तरफ से प्रारम्भ किया जाता है (वापयते दक्षिणोपक्रमान् केशान्), मा.श्रौ.सू. 1.4.1.2.

दण्ड पु. करछुल का हत्था, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.15 (मूलैर्दण्डान् करोति); मैत्रावरुण एवं यजमान का दण्ड, आप.श्रौ.सू. 7.8.3; का.श्रौ.सू. 7.4.1 (मुखसम्मितमौदुम्बरं दण्डं प्रयच्छति); - 0 **ण्डोपानह्,** जै.ब्रा. I.22.

दण्डप्रदान न. (दण्डस्य प्रदानम्) एक कृत्य जिसमें होता मैत्रावरुण को दण्ड प्रदान करता है, जो (मैत्रावरुण) पशुयाग में इसे पकड़ता है। इसे मैत्रावरुण दण्ड कहते हैं; यह उदुम्बर के काष्ठ से निर्मित होता है और अंगूठे से जबड़े (चिबुक) अथवा मुख (आस्य) तक की इसकी ऊँचाई होती है, आप.श्रौ.सू. 7.8.3; ठीक इसी तरह इसी प्रकार के वैशिष्ट्य से युक्त एक दण्ड यजमान को अध्वर्यु द्वारा दीक्षा (सोमयाग) के समय दिया जाता है; इसे दीक्षा-दण्ड कहते हैं, 10.10.4-5; का.श्रौ.सू. 7.4.1. बाद में यह मैत्रावरुण को दे दिया जाता है, जो सोम में अग्निषोमीय एवं सवनीय पशु-यागों में 'प्रयाज' का पाठ करता है।

दण्डोच्छ्रयण न. (दण्डस्य उच्छ्रयणम्) ऊर्ध्वाकार स्थिति में दण्ड को उठाने एवं पकड़ने का कृत्य (दीक्षा के अङ्ग के रूप में), का.श्रौ.सू. 16.4.31.

दत्तक (दा+क्त+कन्) वि. गोद लिया हुआ; मा.श्रौ.सू. 11.8.10.5 (प्रवर)।

दधि न. प्रत्यग्र (ताजे गरम दुग्ध) को जमाने के लिए प्रयुक्त दही, भा.श्रौ.सू. 1.14.4; आहुति के रूप में प्रदेय, भा.श्रौ.सू. 11.18.11, दर्श में यजमान द्वारा इसका भक्षण किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 4.22.4; आग्रयण में 'हविस्' के रूप में प्रयुक्त, 6.14.14; पशुयाग में यह पृषदाज्य का घटक है और चातुर्मास्य में भी, 8.8.2; दीक्षा में यजमान अन्य भोज्यों के साथ इसे भी खाता है, 10.4.6 (सोमयाग)।

दधिक्र न. यदि अनुबन्ध्या-आहुतिदान संघनित (घनीभूत) दुग्ध का हो, तो प्रस्तोता द्वारा गेय साम (का नाम), जै.श्रौ.सू. I.25.

दधिक्रावती स्त्री. (दधिक्रा+मतुप्+ङीप्) 'दधिक्रावन्' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त ऋचा, अर्थात् 'दधिक्राव्णो अकारिषन्', श्रौ.को. (सं.) 1.67; ऋ.वे. 4.39.6.

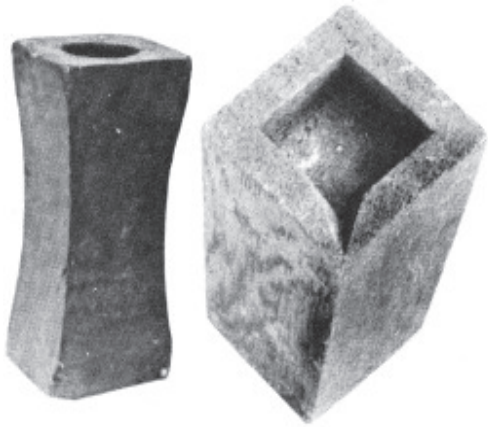

दधिग्रह

दधिग्रह पु. (दध्नः ग्रहः) खट्टी दही का प्रवाह, भा.श्रौ.सू. 2.2.5.29, प्रातःकालीन सवन के ठीक पूर्व प्रजापति के लिए अर्पणीय दधि का आहरण या ग्रहण, (आप.श्रौ.सू. 12.7.5-7) सोम-याग की प्रक्रिया या क्रम में। इसे दही से भरकर 'खर'-संज्ञक टीले के दाहिने स्कन्ध पर रख देते हैं। यदि वह (दधिग्रह प्याले के सिवाय) सोम के प्याले को लेता है, तो वह प्याला अपने आप (स्वतः ही) अंशु एवं अदाभ्य के उद्देश्य की पूर्ति कर देता है, आप.श्रौ.सू. 21.1-4; श्रौ.को (अं) II.365; ऋ.वे. 10.179.3=प्रचार, श्रौ.प.नि. 265-266

दधिघर्म पु. घनीभूत दूध से निर्मित गरम पेय [दध्ना साध्यो घर्मो घर्मनामक-कर्मविशेषो दधिघर्मः]; भाष्य-7.8.760 पर; गरम खट्टा दूध, मा.श्रौ.सू. 4.4.2 (माध्यन्दिन सवन के समय आग्नीध्र-अग्नि पर दधिघर्म की आहुति दी जाती है); गरम

दूध एवं जमे हुए दूध का पेय, जिसे अध्वर्यु गरम पात्र (घर्म अथवा महावीर) में उड़ेलता है और इस का प्रयोग माध्यन्दिन सवन के समय की द्रवाहुति में किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.4.9; आप.श्रौ.सू. 3.3.2; (सोमयाग)=शृत, भा.श्रौ.सू. 11.10.13; युधि. 119.

दधिभक्ष पु. (दध्नः भक्षः) 'हरियोजन' ग्रह के आहुतिदान के अनन्तर दही का भक्षण। आग्नीध्र-परिधि में जाकर एवं बिना एक-दूसरे से अनुमति लिये ऋत्विजों को दधि का भक्षण 'दधिक्राव्णो.....' इस ऋचा के साथ करना चाहिए, श्रौ.को.(अं) ii. 800; का.श्रौ.सू. 2.4.14; द्रा.श्रौ.सू. 4.4.23

दधिमन्थ पु. मधु से उपसिक्त दही (मधुपर्क ग्रहण), श्रौ.को. (अं.) ii.310; दधिमिश्रित अनाजों (सत्तू) का एक पेय, आप.श्रौ.सू. 6.31.5.

दधिषोम (दध्ना उपसिक्तः सोमः) दही एवं सोम-रस का मिश्रण, जिसका भक्षण आग्नीध्र-परिधि में अपने आप (स्वतः ही) सभी ऋत्विजों द्वारा तृतीय सवन में चात्वाल के समीप 'औपासन' को उड़लने के बाद किया जाता है, जै.श्रौ.सू. 1.21.

दधीयात् (दधि+क्यच् वि.लि. प्र.पु.ए.व.) यदि यजमान को दही खाने की इच्छा हो, भा.श्रौ.सू. 10.10.7 (सोमव्रत)

दन्तजन्मन् न. (दन्तस्य जन्म) दाँतों का निकलना, मा.श्रौ.सू. 11.5.1.5.

दन्ताप्त्यतिशान्ति स्त्री. (दन्तस्य आप्त्याः अतिशान्तिः) बच्चे के दाँत की प्राप्ति के समय शान्त्यात्मक कृत्य, मा.श्रौ.सू. 11.5.

दर्भ पु. यज्ञिय घास, श्रौ.को. (सं.) II.18;

दर्भण न. (दृभ्यतेऽनेन, दृभ्+ल्युट्) सूई, बौ.श्रौ.सू. 6.25; 6.27; भाष्य-सूचि।

दर्भतरुण (दर्भस्य तरुणम्) दर्भ का अंकुर, भा.श्रौ.सू. 6.14.16 (दर्भतरुणाभ्यां प्रव्यस्येत्', अनु. उसे दूध या पानी रखने के स्थान पर दो अंकुर (दर्भाङ्कुर) रखने चाहिए) =दर्भतरुणक, श्रौ.का. (सं.) II.541.

दर्भनाडी स्त्री. (दर्भस्य नाडी) दर्भ का अन्तःपत्र (शाखापवित्रा का निर्माण इसे 'वत्सापाकरण' के लिए प्रयुक्त वृक्ष-शाखा में बाँधने के द्वारा किया जाता है), बौ.श्रौ.सू. 1.3.3.

दर्भपुञ्जील पु. (दर्भस्य पुञ्जीलः) दर्भ का पुञ्ज (गट्ठर), आ.श्रौ.सू. 1.2.3; मा.श्रौ.सू. 1.1.18।

दर्भपुञ्जील

दर्भस्तम्ब पु. (दर्भस्य स्तम्बः) दर्भपत्र का गट्ठर, भा.श्रौ.सू. 1.1.1.30; आप.श्रौ.सू. 9.5.4; बौ.श्रौ.सू. 22.5:16; श्रौ.को. (सं.) I.262.

दर्भाग्रमुष्टि स्त्री. दर्भ के अग्रभाग की मुष्टि (गट्ठर), आप.श्रौ.सू. 16.21.3 (आगे ले जाये जाते हुए 'चित्य' अग्नि पर 'आज्य' के छिड़काव के लिए प्रयुक्त)।

दर्भेषीका स्त्री. (दर्भस्य ईषिका) दर्भ की सींक, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.38 (आँखों में अञ्जन लगाने के लिए)।

दर्वी स्त्री. एक (काष्ठीय) करहुल, ऋ.वे. 5.6.9; आप.श्रौ.सू. 7.19.19.

दर्वी

दर्वीहोम पु. (दर्व्या होमः) 'दर्वी-' संज्ञक करहुल से आहुतियां प्रदान करना, का.श्रौ.सू. 6.10.17; जुहोति; मौन आहुति, एकाग्नि, अप्रयाज, अननुयाज, असामिधेनीक, अनिगद, प्रतिनिगद्य होम, स्वाहाकारप्रदान, का.श्रौ.सू. 6.10.18-6.10.25

दर्वीहोमसंस्कार पु. (दर्वीहोमस्य संस्कारः) गृह्य प्रक्रिया में 'दर्वीहोम' की विधि से शुद्धीकरण का कर्मकाण्ड, आप

श्रौ.सू. 15.6.7 (दर्वीहोमसंस्कारेण आज्यं संस्करोति); रु. पवित्रानुप्रहरणान्तेन।

दर्व्युदायुवन न. 'दर्वी'-संज्ञक करछुल के सपाट भाग में अथवा बिल से युक्त पात्र और एक सपाट पूर्वभाग वाले पात्र में चिपका हुआ उबला चावल, आप.श्रौ.सू. 8.11.16 (रु.दर्व्या उदायुवनम्; धू. दर्वी च उदायुवनम् च), भा.श्रौ.सू. 8.13.2.

दर्शन (दृश्+ल्युट्)वैदिक ग्रन्थों में अभिप्रमाणन, वेदप्रामाण्य, का.श्रौ.सू. 1.2.9 (दर्शनाच्च).

दर्शपूर्णमास पु. (दर्शश्च पूर्णमासश्च) दर्श एवं पूर्णमास याग, का.श्रौ.सू. 4.6.11 (दर्शपूर्णमासानीजानो....., इस सूत्र में 'दर्शपूर्णमान्' इस बहुवचन पद का प्रयोग पृथक्-पृथक् दोनों यागों के तीन-तीन अंगों के समाहार को लक्षित कर किया गया है)।

दर्शपूर्णमासीक वि. जैसा कि दर्शपूर्णमास दृष्टि में कार्यान्वित है (उसी) के रूप का (अर्थात्सौमिक के विपरीत इसमें आगे नहीं ले जाया जाता, सौमिक की स्थिति में इसके पशु-याग में धार्मिक विधि-विधानसे जिसे लाया जाता है), मा.श्रौ.सू. 8.1.7.

दशक वि. (दशनां समाहारः, दशन्+कन्) दश (अरत्नियों के वर्ग) का, मा.श्रौ.सू. 10.1.3.1 (प्राचीन वंश)

दशगण पु. (दशानां गणः) 10 चित ईकाइयों का सूमूह; उदा. आठ धिष्ण्यायें, आहवनीय एवं गार्हपत्य,का.श्रौ.सू. 17.7.30 (दशगणाधिके भित्वोत्करे कुर्यात्)।

दशत न. दशक, मा.श्रौ.सू. 5.2.2.12.

दशदारु वि. (दश दारूणि यस्य यस्मिन् वा) अग्नि-काष्ठ के दश टुकड़ों से युक्त (दशदारु इध्यं सन्नह्यति), मा.श्रौ.सू. 2.2.1.16; आप.श्रौ.सू. 12.2.16.

दशपद वि. (दश पदानि प्रमाणम् अस्य) दस पद की नाप वाला (पुरुष)= 10 पद, पद=12 अंगुल, का.श्रौ.सू. 16.8.22 (पञ्चारत्निः पुरुषो दशपदो, द्वादशाङ्गुलं पदं, प्रक्रमः त्रिपदः समविभक्तस्य)

दशपेय पु. दस पानक्रिया, जिसमें 10 'चमसिन्'-संज्ञक पुरोहित एवं 90 अन्य अर्ह ब्राह्मण पान-उत्सव में सम्मिलित होते हैं। ये नब्बे सोमपायी (सोमपा) ब्राह्मण 'अनुप्रसर्पक' कहे जाते हैं। यह कृत्य अग्निष्टोम-प्रकार का है एवं सोम-पान 'प्राशित्र' भक्षण का रूपान्तरण है, आप.श्रौ.सू. 18.20.11-21.7 (राजसूय); तु. हीस्टरमैन 179-95.

दशरात्र पु. बारह दिन तक चलने वाले सत्र के 10 प्रधान दिवस, आप.श्रौ.सू. 21.15.19; सर्वमेध एक दशरात्र है, 20.25.3;=दशाह, शां.श्रौ.सू. 12.21.13.

दशहोतृ पु.जिस समय 'बहिष्पवमान' की पाचवीं ऋचा का गायन हो रहा हो,उस समय अध्वर्यु द्वारा पठनीय दस मन्त्रों का नाम,बौ.श्रौ.सू. 7.8; ये (मन्त्र) तै.आ. 3.1-10 में विद्यमान वाक्य हैं, उदा. 'ओम् चित्तिः स्रुक्, चित्तमाज्यं, वाग्वेदिः, आधीतं बर्हिः, केतो अग्निः, विज्ञातमग्निः वाक्पतिर्होता, मन उपवक्ता, प्राणो हविः साम अध्वर्युः, श्रौ.को. (सं.) 1.125; [द्रष्टव्य- ऐ.ब्रा. 24.6 विभिन्न क्रम में दस के लिए। होता के सामधेनी ऋचाओं के पाठ के पूर्व यजमान इन मन्त्रों को दुहराता है]।

दशापवित्र न. (एव., द्वि. व.) झालरदार उनी पवित्र (शुक्लानाम् ऊर्णानाम् अमात्योते अरत्निमात्रं पवित्रं प्रादेशमात्री दशा), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.18, जीवित मेढ़ के ऊन से बना हुआ एक पवित्र; एक अरत्नि लम्बा, का.श्रौ.सू. 9.2.16 पर भाष्य; द्रष्टव्य ऋ.को. (सं.) II.271; 544.

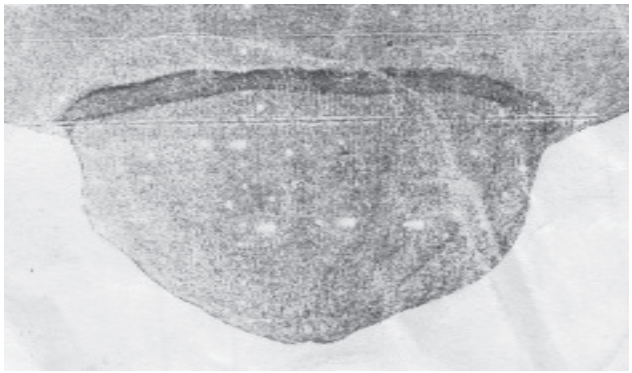

दशापवित्र

दहनदेश पु. (दहनस्य देशः) अन्त्येष्टि-भूमि, जिसका चयन मरणासन्न व्यक्ति (आहिताग्नि) के लिए अध्वर्यु द्वारा किया जाता है, दक्षिण-पश्चिम की ओर उन्मुख, बिना (भूमि को) साफ किये, भा.पि.मे. 1.1.2-3.

दहर न. कपड़े की पट्टी, का.श्रौ.सू. 14.5.3 (वाजपेय)।

दाक्षायण पु. दर्शपूर्णमास का एक संशोधित रूप (विकृति), जिसका आचरण 'दाक्षायणी' द्वारा किया गया था, आप.श्रौ.सू. 3.17.4; काम्येष्टि में अन्तर्निविष्ट, आश्व.श्रौ.सू. 2.14.7; पूर्णमास के दिन अग्निष्टोमके लिए एक पुरोडाश का एवं दर्श (अर्थात् अमावस्या) में भी एक पुरोडाश का इन्द्राग्नी के विधान लिए है। 'पूर्णमास' के 'प्रतिपत्' के दिन सान्नाय्य की तरह व्यवहार होता है, अर्थात् अग्नि के लिए पुरोडाश एवं इन्द्र के लिए दही। 'अमावस्या' के लिए 'पयस्या' विहित है, का.श्रौ.सू. 4.4.1-6; श.ब्रा.2.4.4.6-10.

दातृ पु. (दा+तृच्)(वह व्यक्ति) जो अपने पितरों को पिण्ड (चावल का गोला) दान करता है, का.श्रौ.सू. 5.9.18 (प्राचीनावीती प्रविश्या ''ऽमीमदन्तेति'' दाता जपति)।

दानप्रभृति वि. प्रदान अथवा अर्पण के कृत्य से प्रारम्भ होने वाला, भा.श्रौ.सू. 14.12.2.

दामतूष वि. किनारेदार झालरों से युक्त (परिधान); मा.श्रौ.सू. 9.3.3.4 (व्रात्यस्तोम); का.श्रौ.सू. 22.4.22 (तूषो वस्त्रदशा। दामानीव दामाकारा रज्जुरूपा दशा येषां तानि दातमूषाणि।.....); ला.श्रौ. II.8.6.20.21.

दारु न. इध्म-काष्ठ (त्रयोविंशतिदारुमयं इध्मं करोति), भा.श्रौ.सू.7.6.4.

दारुणसंयुत वि. (दारुणं संयुतं येषां) ठीक से मिश्रित, बौ.श्रौ.सू. 9.6 (भाष्य-दारु-संयुतानि पिष्टानि संयुत्य। खरसंयुतानि पिष्टानि संयुत्य, 'ससंयुतानि' के समकक्षता की अधिक सम्भावना है)।

दारुचिति स्त्री. (दारुणः चितिः) काष्ठ का ढेर, अन्त्येष्टि-स्थल पर व्यवस्थित अन्तिम-संस्कार के लिए चिता, भा.पि.मे. 1.1.8; अग्नि-क्षेत्र (अन्यागार) की तरह ही पाँचों अग्नियां रखी जाती हैं, 1.3.8.

दारुपात्र न. (दारुणः पात्रम्) लकड़ी का बर्तन, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.37.

दारुपात्री स्त्री. = इडापात्री काष्ठ का पात्र, बौ.श्रौ.सू. 1.4:10.

दार्ढच्युत न. दो 'प्रतिहारों' से युक्त एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.4.1; 7.8.5.

दार्षद्वत न. एक 'सत्र' का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.5.4.36, जिसमें कुछ कृत्य दृषद्वती नदी के किनारे सम्पन्न किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 23.13.11; का.श्रौ.सू. 24.6.32.

दाशस्पत्य न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 7.4.1 दो प्रतिहारों से युक्त।

दिक्कुष्ठा वि. (दिक्षु कुष्ठा यस्याः) (चारों) दिशाओं की ओर मुड़े हुए कोणों वाली, मा.श्रौ.सू. 10.1.2.6 (पैतृकी वेदि)।

दिग्बन्धन न. (दिशां बन्धनम्) (दिशाओं को बाँधना), ब्रह्माण्ड की दिशाओं (से प्राप्त सम्भावित अनिष्टों के परिहार के लिए) उनका बन्धन (प्रातरनुवाक, पृ.14)।

दिग्व्याघारण न. (दिक्षु व्याघारणम्) बाँझ गाय (वशा) की (वसा, चर्बी) की विभिन्न दिशाओं में आहुति देना, का.श्रौ.सू. 8.8.29 (दिग्व्याघारणं समासिच्य) (सोम)

दिग्होम पु. (दिग्भ्यः होमः) दिशाओं की दी जाने वाली आहुति, श्रौ.प.नि. 137.105.

दित्यौही स्त्री. दो साल की (गाय), आप.श्रौ.सू. 5.20.15.

दिन वि.(दि+क्त) काटी हुई (तृणमुपमूलं दिनानि), आप.श्रौ.सू. 1.7.3.

दिवश्श्येनी स्त्री. एक वैकल्पिक इष्टि का नाम, तै. ब्रा. 3.12.1-4; आप.श्रौ.सू. 19.15.17, 18; इनकी संख्या सात है और प्रत्येक के लिए तीन आहुतियां विहित हैं।

दिवाकीर्त्यपृष्ठ वि. (पृष्ठाय दिवा कीर्त्यं साम यस्य) 'पृष्ठस्तोत्र' के लिए अनुप्रयुक्त 'दिवाकीर्त्य साम' से युक्त, ला.श्रौ.सू. 10.13.15.

दिवाकीर्त्यसामन् न. एक साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 21.15.16; पञ्च. ब्रा. 4.6.13; जै.ब्रा. II.36.

दिश् स्त्री. (दिश् सर्जने+क्विप्) दिशा, (प्रादेशेन) दिशो व्यास्थापयति (वह महावीर पात्र के उपर विभिन्न दिशाओं में वितस्ति-आकृति को दिखाता है), बौ.श्रौ.सू. 9.7; अपने हाथ के बीते बितस्ति से इसकी दिशा को चिह्नित करना, श्रौ.को. (सं.) II. पृ. 531

दिशामवेष्टि स्त्री. ब्राह्मण, राजन्य एवं वैश्य द्वारा अनुष्ठेय एक वैकल्पिक इष्टि का नाम। ब्राह्मण पाँच आहुतियां प्रदान करे : अग्नि को, इन्द्र को, बृहस्पति को (चरु), विश्वेदेवा को (चरु) एवं मित्रावरुण को (आमिक्षा)। प्रत्येक मुख्य आहुति के बाद उसे बृहस्पति के लिए अभिप्रेत हविस् पर घी उड़ेलना चाहिए। राजन्यकर्तृक आहुति-दान का क्रम है: अग्नि, विश्वेदेवा, इन्द्र, मित्रावरुण एवं बृहस्पति। प्रत्येक आहुति के बाद इन्द्रदेवताक घृत का विधान है। वैश्य के

लिए देवता है: अग्नि, विश्वेदेवा, मित्रावरुण एवं बृहस्पति और प्रत्येक आहुति के बाद विश्वेदेवा के लिए घृत (हर वर्ण के लिए अन्त में विशिष्ट देवता के लिए घृत का विधान का कारण यह है कि तीनों वर्णों के साथ जिन देवताओं की उत्पत्ति हुई उनके लिए अन्त में घृत का विधान है। साथ देवताओं की उत्पत्ति के लिए द्रष्टव्य-ता.ब्रा.6.1.11) इस इष्टि की दक्षिणायें हैं : अग्नि के लिए सुवर्ण, इन्द्र के लिए वृषभ (बैल), विश्वेदेवा के लिए जोगिया वर्ण की चारवर्षीया गाय, मैत्रावरुण की आहुति के लिए एक वन्ध्या गाय, एवं सफेद-चकत्तों वाला बैल बृहस्पति की आहुति के लिए; श्रौ.को. (सं.) I. ii.550; शां.श्रौ.सू. 13.7.18-20; बौ.श्रौ.सू. 13.1.

दिशांस्तोम पु. एक दिन वाले एक सोम याग का नाम, जै.ब्रा. II.216.

दिश्या स्त्री. (बहु.) एक इष्टका का नाम, मा.श्रौ.सू.. 6.2.1.18.

दिष्टि स्त्री. 'कुण्डिष्टि', 'वितस्ति', 'निमुष्टि', 'अरत्नि', 'पद' एवं 'प्रकम' के साथ परिगणित एक माप का नाम; पितृमेध में 'चिति' के प्रसङ्ग मे निर्धारित, श्रौ.को. I.ii. 1107.

दीक्षणीया स्त्री. (इष्टि) सोमयाग में यजमान की दीक्षा से पूर्व सम्पन्न होने वाली एकादशकपाल पुरोडाश की आहुति, आप.श्रौ.सू. 10.4.1; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 197.34.

दीक्षा स्त्री. (दीक्ष+अङ्+टाप्) सोमयाग के प्रारम्भ में यजमान की दीक्षा। यह प्रारम्भिक 'इष्टि' एवं 'आहुति' के बाद सम्पन्न होती है। यजमान को एक परिधान, करधनी के रूप में बाँधने के लिए मूँज से निर्मित एक मेखला, शिरोवस्त्र के रूप में एक वस्त्र-खण्ड, एक दण्ड तथा बैठने के लिए एक मृगचर्म। उसकी (यजमान की) पत्नी भी एक योक्त्र एवं बालों का जाल आदि प्राप्त करती है। वह एक के बाद एक कर अपने दोनों हाथों की अंगुलियों को सिकोड़ता है, अन्ततः मुट्ठी बाँध लेता है, सिर का स्पर्श करता है, मृग की सींग से अपने शरीर को खुजलाता है। वह हकलाता है। अध्वर्यु द्वारा दीक्षा की घोषणा की जाती है और वह ब्राह्मण कहा जाता है उसकी चाहे जो भी जाति हो, बौ.श्रौ.सू. 10.7.9; बौ.श्रौ.सू. 6.5; आप.श्रौ.सू. 8.11-15; दो दीक्षा-दिन, आप.श्रौ.सू. 10.19.1.

दीक्षाहुति स्त्री. (दीक्षायाः कृते आहुतिः) 'आकूत्यै प्रयुजे' इत्यादि मन्त्रपूर्वक चम्मच के साधन से दीक्षा के कृत्य के सम्मान में ध्रुवा (ओं) से (निकालकर) घी की (चार आहुतियां); करहुल से एक आहुति 'विश्वे देवस्य नेतुः.....' आप.श्रौ.सू. 10.8.6; दीक्षणीयेष्टि के बाद में एवं इसके पूर्व दीक्षा की छः आहुतियों का अनुष्ठान किया जाता है, आप. श्रौ.सू. 10.8.4-6; द्रष्टव्य - भा.श्रो.सू. 10.5.9.

दीक्षितदण्ड पु. (दीक्षितस्य यजमानस्य दण्डः) दीक्षित यजमान के लिए (अभिप्रेत) दण्ड; द्रष्टव्य-दण्डप्रदान।

दीक्षितवाद पु. (दीक्षितस्य वादः) दीक्षित यजमान की भाषा (वाद् - वद् +घञ्), बौ.श्रौ.सू. 6.6.

दीक्षितविमित न. (दीक्षिताय विमितम्) दीक्षित व्यक्ति के लिए अभिप्रेत मण्डप, बौ.श्रौ.सू. 10.8.7-8; यज्ञशाला के लिए अग्न्यागार (अग्नि का पवित्र क्षेत्र), ऐ.ब्रा. 1.3; हि.आ. ध. 2.988 पा.टि. प्राचीन वंश।

दीक्षितसञ्चर पु. (दीक्षितस्य सञ्चरः) दीक्षित व्यक्ति के लिए नियत सञ्चरण-मार्ग (वह आहवनीय के उत्तर से दक्षिण की ओर वेदि के पश्चिम को पार करता है, इसके बाद आहवनीय के दक्षिण तरफ बैठ जाता है), मा.श्रौ.सू. 2.1.2.30; 2.1.3.4; 2.1.5.7; 4.1.31.

दीर्घकरणी स्त्री. (दीर्घा चेयं करणी) एक आयत का देशान्तर (रेखांश) भाग, बौ.शु.सू. 1.87.

दीर्घचतुरस्र पु. आयत, बौ.शु.1.36. -**जिह्वी** (दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि, पा. 4.1.59) लम्बी जीभ वाली, आसुरी शुनी (कुतिया), जै.ब्रा. I. 161-62.

दीर्घपाद पु. अध्यर्धा इष्टका का एक-चौथाई आकार।

दीर्घप्रयुक्त वि. (दीर्घं प्रयुक्तः) बहुत देर तक जुता हुआ, 'दीर्घप्रयुक्तेषु वा पुरुषाः कृषन्ति', का.श्रौ.सू. 17.2.19 (बैल, चयन)।

दीर्घभक्ष पु. 'भक्षे हि मा विश्वा.....' तै.सं. 3.2.5 इस मन्त्र का नाम, जिसका उच्चारण सवनमुख में चमसों में स्थित सोम का उपभोग (पान) करते समय किया जाता है, 'इडा' जिसका यथोचित रूप से आह्वान किया गया है, का भक्षण 'वसुमद्गणस्य सोम देव ते--- इस मन्त्र से किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 7.15, 21.20 (आश्विन प्याला); श्रौ.को. (अं.) II.593.

दीर्घसोम पु. (दीर्घः सोमयागः) सोम-याग का लम्बा सत्र (सत्र आदि, एकाह के विपरीत), बौ.श्रौ. सू. 6.28.

दुन्दुभि स्त्री. (पु.) वाजपेय में प्रयुक्त होने वाला एक प्रकार का बृहत् नगाड़ा, आप.श्रौ.सू. 18.4.4; महाव्रत में, 21.18.1, यहाँ एक भूमि-दुन्दभि का निर्माण भूमि में बनाये गये बिल में, आधा वेदि के अन्दर एवं आधा वेदि के बाहर (इस प्रकार) चमड़े के एक टुकड़े को लगाकर किया जाता है। दुन्दुभि बजाने की छड़ी के रूप में बैल की पूंछ का प्रयोग किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 21.18.2-3.

दुन्दुभिविमोचनीय वि. (दुन्दुभेः विमोचनस्येदम्) दुन्दुभि को अवमुक्त करने से सम्बद्ध, आप.श्रौ.सू. 18.5.2.

दुन्दुभिशब्द पु. (दुन्दुभेः शब्दः) दुन्दुभियों की ध्वनि (यदि यह गरजता नहीं है, तो 'पृष्ठ्य षडह' में द्वितीय सुत्या के लिए स्तोत्र का विधान इसी से किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.11; आप.श्रौ.सू. 24.1.36, का.श्रौ.सू. 12.3.8.

दुरःप्रभृति वि. 'दुरो अग्र आज्यस्य व्यन्तु [जो 'अनुमन्त्रण' के रूप में व्यवहृत होती हैं]' आप.श्रौ.सू. 8.2.15 (वैश्वदेव के लिए पञ्चम से नवम के बीच के प्रयाज)।

दुर्गा स्त्री. यदि यजमान मरणासन्न स्थिति में हो और उसकी पत्नी का मासिक स्राव हो रहा हो, तो प्रायश्चित्त के रूप में दी जाने वाली आहुतियां; ये (आहुतियां) 'मनस्वती' महाव्याहृति एवं पूर्णाहुति आहुतियों के साथ-साथ दी जाती हैं, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 1037. वैखा.श्रौ.सू. 20.27 घृत के शुद्धीकरण के पूर्व, इसके छिटकने की स्थिति में आहुति का विधान करता है। यह (आहुति) 'जातवेदसे.....', इस मन्त्र के साथ दी जाती है, श्रौ.को. (अं) I.460

दुर्ब्राह्मण पु. (दुष्टः ब्राह्मणः) वह ब्राह्मण जिसने गायत्री-जप एवं सन्ध्या का अनुष्ठान छोड़ दिया है, भा.श्रौ.सू. 11.12.17; तुल. भा.श्रौ.सू. परिशेष-सूत्र, 134; श्रौत.प.नि. 186.3.

दुश्शृत वि. (दुष्टं शृतम्) खराब ढंग से पकाया हुआ, मा.श्रौ.सू. 3.1.22.

दूणाश पु. एक सवन-दिन वाले एक सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.10; का.श्रौ.सू. 22.8.25; ला.श्रौ.सू. 8.10.1

दूतवती स्त्री. (दूत+मतुप्+ङीप्) 'दूत' शब्द से युक्त ऋचा (ऋ.वे. 2.9.2)।

दूरोहण न. ऋग्वेदीय ऋचाओं का 'आरोहण' एवं 'अवरोहण' दोनों प्रक्रियाओं का एकीकरण करके विशिष्ट प्रकार का पाठ, काशिकर 102; आरोही एवं अवरोही रूप में पाठ करने की एक प्रविधि, जिसमें पंक्ति का पाठ सर्वप्रथम पाद से, उसके बाद अर्धर्च से और उसके बाद यति (विराम) से अनुसृत एक विस्तार में तीन पादों से होता है। यह तो हुआ आरोही। अवरोह विपरीत क्रम है : तीन पादों, अर्धर्च, पाद एवं यति से रहित चार पादों से, आश्व.श्रौ.सू. 8.2.12-13 भाष्य।

दृति स्त्री. (दृ+क्तिन्) चमड़े का मशक 'दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम्', ऋ.वे. 7.103.02, (दृतेः चतुर्थं पादं स्तनं कृत्वा पिन्वयेत्), बौ.श्रौ.सू. 11.18 : 5 (प्रर्वग्य प्रायश्चित्त)।

दृतिनवनीत (दृतेः नवनीतम्, दृतौ सिद्धं नवनीतम्) न. सञ्चरण (हिलने-डुलने) के कारण चर्म के झोले (मशक) में तैयार हुआ मक्खन, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.4 (साद्यस्क्र)।

दृशीक पु. देखभाल करने वाला एक ऋत्विक्, आप.श्रौ.सू. 11.13.10.

दृषद् स्त्री. एक बृहद् (नीचे का) पाट (शिल), जिसके उपर 'उपल' रखा जाता है, अनाज को पीसने के लिए प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 1.20.3-4 (दर्श)।

देव पु. (दिव्+अच्) ईश्वर, देवता, बहु. प्रायः इनकी संख्या सीमित है (33, श.ब्रा. 5.1.2.13; 5.3.4.23); इनका विभाजन स्थान के आधार पर तीन प्रकार का है (द्युस्थानीय, वायुस्थानीय एवं पृथ्वीस्थानीय, श.ब्रा.6.5.3.3); ये मनुष्यों से विशिष्ट एवं पृथक् हैं (श.ब्रा. 7.3.1.10); द्रष्टव्य-देवता।

देवगवी स्त्री. निम्न ध्वनि में 'इडोपाह्वान' के पढ़े जाते समय, यजमान द्वारा पठित 'भूयस्येहि' आदि सात मन्त्रों का नाम आप.श्रौ.सू. 4.10.4.

देवता (देव+तल्+टाप्) देव (यो देवः सा देवता, निरु. 7.4), अग्नि, सोम, विष्णु (श.ब्रा. 1.5.1.22) इन्द्र और यम जैसे देवता ही नहीं अपितु पृथ्वी, जल, वायु दिन एवं रात्रि भी (श.ब्रा. 1.5.1.22); 'नड', 'नैषध', अनश्नन्त्, संगमन एवं असत् पांसव (श.ब्रा. 2.3.2.1) परमेष्ठी प्राजापत्य (श.ब्रा. 11.1.6.14), ब्रह्मन् (श.ब्रा. 6.6.4.12) और साथ ही साथ चारो दिशायें, सत्त्व एवं विचार आदि भी देवता के रूप में उल्लिखित हैं, जो तत्तत् तत्त्वों (परिवेष, आशा, समृद्धि, श्री) का प्रतिनिधितव करते हैं।

देवताह्वान न. (देवतानाम् आह्वानम्) देवताओं के आह्वान (बुलाने) का कृत्य श्रौ.प.नि. 25.203.

देवतादेशन न. (देवतायाः देशनम्=उल्लेखः) देवता का उल्लेख, आप.श्रौ.सू. 10.30.9; देवतीर्थ, द्रष्टव्य=तीर्थ।

देवतीर्थ

देवतोपदेशन न. (देवतानाम् उपदेशनम्) देवताओं का उल्लेख, आप.श्रौ.सू. 7.12.8 (पशु); [पञ्चकृत्व उपाकरणे, नियोजने, प्रोक्षणे, वपाया उद्धरणे, हृदयस्याभिधारणे]।

देवपत्नी स्त्री. उन मन्त्रों का नाम (तै.आ. 3.9) जिनके साथ सन्तति (प्रजा) एवं पशु की कामना वाले व्यक्ति द्वारा आहुतियां दी जाती हैं, श्रौ.को. (अं) I.i.206, 'उपसद्' इष्टि के दौरान पढ़े जाने वाले विशिष्ट मन्त्रों का नाम, श्रौ.को. (अं.) II.215; उपसद् इष्टि के लिए यज्ञीय घास पर रखी हुई दो करछुलों का स्पर्श करने के बाद गार्हपत्य अग्नि के पश्चिम में अपना आसन ग्रहण करते समय अग्नीध्र द्वारा पढ़े जाने वाले विशिष्ट मन्त्रों के समूह का नाम, बौ.श्रौ.सू. 6.20; 21; भा.श्रौ.सू. 2.5.61 मै.सं. 1.4.3. भारद्वाज के मतानुसार इन मन्त्रों का पाठ अध्वर्यु के अनुरोध पर उपसद् इष्टि की आहुतियाँ देने के पश्चात् किया जाता है (12.2.8.3.25), 'सेने इन्द्रस्य धेना.....' आदि।

देवयजन न. (देवा इज्यन्ते अत्र) यज्ञीय भूमि, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.1–16; 2.2.5.12, 4.1.21; 9.2.1.1, यह भूमि लवणता एवं छिद्रो से रहित होनी चाहिए, उत्तर–पूर्व या पूर्व या उत्तर की ओर उन्मुख होनी चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 2.2; आप.श्रौ.सू. 10.20.1; यहाँ 'प्राचीनवंश' एवं वेदि का निर्माण किया जाता है।

देवयजनयाचन न. (देवयजनस्य याचनम्) वह कृत्य जिसके द्वारा यजमान राजा से 'देवयजन' स्थल की याचना करता है, आप.श्रौ.सू. 10.2.9.

देवसंयुक्त वि. (देवशब्देन संयुक्तः) 'देव' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त, आप.श्रौ.सू. 8.13.6 (पितृयज्ञ–मन्त्र, उदाहरणार्थ– 'पृथिवी देवयजनि', इत्यादि; इसका परिवर्तन कुछ कर्मकाण्डियों के अनुसार 'पृथिवी देवपितृयजनि' इस रूप में कर दिया जाना चाहिए।

देवसु (हविस्)=देवसुवां हविस् न. आठ देवताओं (दिव्य प्रयोजकों) के लिए चावल या विभिन्न प्रकार के अनाजों की आहुति, आप.श्रौ.सू. 18.12.4 (राजसूय); 17.22.9 (चयन)। प्रधान आहुतियों के तत्काल बाद, यजमान शाही यजमान का हाथ पकड़ता है एवं देवताओं से उसके प्रभुत्व को शीघ्र प्राप्त कराने के लिए अनुनय करता है। रत्नियों के प्रति यजमान की घोषणा की जाती है, 'भो भरत! यह तुम्हारा राजा है (अथवा जैसी स्थिति हो) या साधारणतया 'भो जनक', आप. श्रौ.सू. 18.12.7. इसके बाद ब्रह्मा सबके प्रति बहुत शीघ्रता से कहता है 'हम ब्राह्मणों का राजा सोम है' (सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा)।

देवहूति स्त्री.(देवानां हूतिः) देवताओं का आह्वान, जै.ब्रा. I.216.

देविका-हविस् न. (बहु.) (देविकाभ्यः हविः, देविका=देव+कन् 'अल्पे' पा. 5.3.85टाप्) सोम के अन्त में अवरकोटीय (गौण, अप्रधान) स्त्री देवताओं के लिए देय आहुतियां (ये आहुतियां संख्या में छः होती हैं), आप.श्रौ.सू. 13.24.1; श्रौ.को. (सं.) II.509–10,

दैर्घश्रवस् न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. II.170.

दैवोदास न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. I.182.

दोग्ध्र न. दूध की बाल्टी, इसकी संख्या दो होती है और उसी मिट्टी से बनती है जिससे महावीर। यह हाथी की जिह्वा का अनुकरण करती है, इसमें चोंच होती है और यह हत्था से रहित करछुल की तरह दिखती है, भा.श्रौ.सू. 11.3.5; आप.श्रौ.सू. 15.3.10 (प्रवर्ग्य); श.ब्रा. 14.2.1.11, का.श्रौ.सू. 17.1.21; बौ.श्रौ.सू. 9.9.

दोग्ध्री स्त्री. (द्वि.व.) (दुह्+तृच्+ङीप्) (प्रवर्ग्य में) दो दूध की बाल्टियां, मा.श्रौ.सू. 4.2.6.

दोषनिर्घातार्थ वि. (दोषस्य निर्घातः अर्थः प्रयोजनं यस्य) दोष को हटाना जिसका प्रयोजन है, भा.श्रौ.सू. 9.1.4, आप.श्रौ.सू. 9.1.4 (जपोहोमेज्यारूपाणि प्रायश्चित्तानि)।

दोह पु. (दुह्+घञ्) 1. दूध (द्वि.) : सान्नाय्य के लिए मीठा, उबला दूध एवं जमाया हुआ दूध, आप.श्रौ.सू. 2.11.8, 2. दुहना; अर्थात् इष्ट अथवा वाञ्छित फल प्राप्त करने के लिए 'स्तोत्र' अथवा शस्त्र का अनुष्ठान, बौ.श्रौ.सू. 14.9; 3. सवेरे दो बार एवं सायंकाल में दो बार गाय को दुहना, आप.श्रौ.सू. 3.16.12-13; जिस समय अध्वर्यु मन्त्र पढ़ता है एवं पश्चाद्वर्तिनी पवित्रा के माध्यम से कुम्भी में दुग्ध का शुद्धीकरण करता है।

दोहन न. (दुह्+ल्युट्) दूध-की बाल्टी, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.10; लकड़ी अथवा धातु के ढक्कन से युक्त, आप.श्रौ.सू. 6.3.15; दूध दुहने का कृत्य, अर्थात् सोमरस को पात्रों में ग्रहण करना, आश्व.श्रौ.सू. 5.12.8; गाय को दुहना; चूंकि इसे पवित्रा के माध्यम से नहीं गुज़ारा जाता है, इसलिए शुद्रकर्तृक दोहन-क्रिया का निषेध है, भा.श्रौ.सू. 6.8.18. (तुल. अहविरेव तद्यच्छूद्रो दोग्धीति)।

दोहनसंक्षालन न. (दोहनस्य संक्षालनम्, दोहनं संक्षाल्यतेऽनेन) (वह जल) जिसे दूध की बाल्टी साफ की जाती है, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.32.

दोहनी स्त्री. एक 'प्रस्थ' की क्षमता वाली दूध की बाल्टी, वैता.श्रौ.सू. 11.8.

दोहयति (दुह्+णिच्+लट्+प्र.पु.ए.व.) संलयन करना, भर देना [अर्थात् 'उन्नेता' होता के प्याले में निचोड़े गये सोम को इसके भर जाने पर प्रातःकालिक सवन के (प्रातःसवनिका) हौज में उड़ेलता है], मा.श्रौ.सू. 2.3.4.11-12

दोहादोहीय न. प्रर्वग्य के लिए दूध दुहे जाते समय प्रस्तोता के द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, जै.श्रौ.सू.1.23.

द्यावापृथिव्योरयन न. एक (वार्षिक) सत्र का नाम, जिसमें पौर्णमास इष्टि का अनुष्ठान किया जाता है, और इसे दर्श तक बाद में आने वाले दिनों में भी जारी रखा जाता है (अर्थात् पूर्णिमा से दर्श तक जितने दिन होते हैं)। उसके बाद 'दर्श' का अनुष्ठान किया जाता है और बाद के दिन पूर्णिमा तक जारी रखा जाता है। इस प्रकार, इस प्रक्रिया की शृंखला को फाल्गुन अथवा चैत्र की पूर्णिमा को प्रारम्भ कर पूरे वर्ष भर बरकरार रखना होता है। इस यज्ञ को एक से अधिक वर्ष तक जारी रखा जा सकता है, आश्व.श्रौ.सू. 2.14.

द्युग्रहण न. स्वर्ग का प्रवाह (घूंट), भा.श्रौ.सू. 9.2.7.20 (गवामयन में महाव्रत)।

द्युतानस्य मारुतस्य ब्रह्म सामन् न. 'ग्रावन्'-संज्ञक सवन-प्रस्तर के टूटने का प्रायश्चित्त करने के लिए गाये जाने वाले एक विशिष्ट साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 14.25.7.

द्यूतभूमि स्त्री. (द्यूतस्य भूमिः) जुआ खेलने का स्थान, 'द्यूतभूमौ हिरण्यं निधायाऽभिजुहोति.....', का.श्रौ.सू. 15.7.15 (राजसूय)।

द्रढिल वि. (दृढ+इलच्) दृढ (परिधान), मा.श्रौ.सू. 5.2.14.14.

द्रप्स पु. (सोम की) बूंद, द्रा.श्रौ.सू. 7.2.11; ला.श्रौ.सू. 3.2.11 (परिभक्ष-प्रायश्चित्त);-**वती**, स्त्री. एक ऋचा का नाम, श्रौ.को.(सं.) II.489.

द्रविणोदा स्त्री. अग्नि-वेदि की पाँचवीं परत में लगी हुई ईंटों (164-68) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46.

द्रव्य न. (द्रु+यत्) यज्ञीय सामग्री, पुरोडाश, आज्य इत्यादि; एक आहुति, का.श्रौ.सू. 1.2.2. इसकी उपलब्धि या प्रबन्ध यजमान का कर्तव्य है, आप.श्रौ.सू. 4.1.2.

द्रव्यावृत्ति स्त्री. (द्रव्यस्य आवृत्तिः) द्रव्य का दोहराया गया प्रयोग, मा.श्रौ.सू. 3.1.1.

द्रव्योपकल्पन न. (द्रव्याणाम् उपकल्पनम्) विशिष्ट मात्रा में विभिन्न वस्तुओं की प्राप्ति, का.श्रौ.सू. 1.9.3.

द्रोण पु. लकड़ी की नाद, ऋ.वे. 6.2.8 (क्रत्वा हि द्रोणे)

द्रोणकलश न. 'विकङ्कत' वृक्ष की लकड़ी से निर्मित बाल्टी आप.श्रौ.सू. 12.2.10. इसे चार सवन-प्रस्तरों (ऋजीषमुख) पर स्थापित किया जाता है और एक छन्नी (दशापवित्र) के नीचे रखा जाता है, का.श्रौ.सू. 9.5.14-15; द्रष्टव्य-यज्ञायुधानि, पृ. 44-45

द्रोणकलश

द्रोणचित् पु. नाद जैसी आकृति में वेदि का चयन (वर्गाकार के रूप में; एक हत्थे से युक्त, पितृमेध के लिए), मा.श्रौ.सू. 10.3.6.6; बौ.शु.सू. 6.1-22; चित (चिनी गई) अग्नि वेदि का एक प्रकार का.श्रौ.सू. (द्रोणचित् चक्रचित् कङ्कचित् प्रउगचित् उभयतः प्रउगः समूह्य-पुरीषचित्)। यह गोलाकार भी होती है, बौ.शु.सू. 7.11-16.

द्रोणचिति स्त्री. (द्रोण इव चितिः) चित अग्निवेदि का एक प्रकार, द्रोण (नाद) की आकृति में, बौ.शु.सू. 6.5-22; वर्गाकार एवं चक्राकार आकृति में जिसमें पाद्या, अर्ध्या एवं वर्गाकार ईंटें (चक्राकार) होती हैं, 7.1-11.

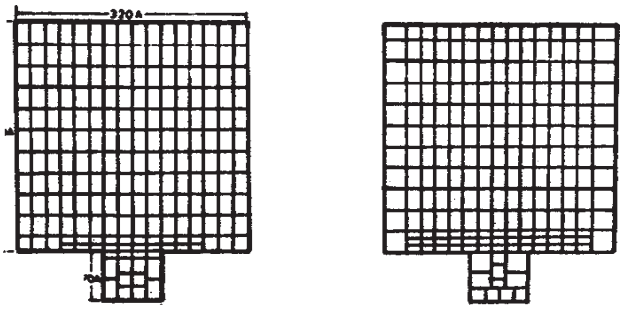

द्रोणचिति

द्वादशशतदक्षिण वि. (द्वादश शतं च दक्षिणाः यस्मिन् सः) दक्षिणा के रूप में (दी जाने वाली) एक सौ बारह गायों की दक्षिणा वाला (यज्ञ) अर्थात् वह यज्ञ जिसमें दक्षिणा के रूप में 112 गायें दी जाती हैं, आप.श्रौ.सू. 10.26.1; द्रष्टव्य-सहस्रदक्षिण 10.26.6।

द्वादशाह पु. (द्वादशानां अह्नां समाहारः तेन विशिष्टः सोमयागः) बारह दिन तक चलने वाला एक सोमयाग, [जिसमें एक 'दशाह' षोडशी के रूप में, प्रथम एवं चतुर्थ दिन वाला 'षडह' एवं शेष उक्थ्य] तीन छन्दोम (उक्थ्य) दिन, एक 'अग्निष्टोम' दिन जिसके पूर्व एवं पश्चात् अतिरात्र (दो दिन) होता है; यह अहीन और सत्र दोनों प्रकार का होता है, आप.श्रौ.सू. 21.

द्वारेउत्सृजति (द्वारे=द्वार+द्वि.द्वि.व., उत्सृजति=उद्+सृज्+लट् प्र.पु.एक.व.) दो द्वारों को छोड़ देता है(अर्थात् तदर्थ व्यवस्था करता है), भा.श्रौ.सू. 12.8.16

द्वार्बाहु पु.=भाष्यः 'द्वारे स्थूणा', द्वार की एक थून, बौ.श्रौ.सू.6.25:24; आप.श्रौ.सू. 11.8.5.

द्वार्या (द्वि.व.) (द्वार+यत्) (सदस्-मण्डप के) दो प्रवेश स्तम्भ, मा.श्रौ.सू. 2.3.7.2.

द्वितीयम् क्रि.वि. (द्वि+तीय) दूसरी बार, भा.श्रौ.सू. 3.5.15.

द्विदेवत्य (ग्रह) पु. (द्वयोः देवतयोः अयम् ग्रहः) प्यालों में से युगल देवताओं इन्द्र एवं वायु, मित्र और वरुण एवं दो अश्विनों से सम्बन्धित सोम की आहुति, आप.श्रौ.सू. 12.20.18-21; का.श्रौ.सू. 9.13, 13-21; जै.ब्रा. I.181

द्विदेवत्यभक्षण न. 'ऐन्द्रवायव' आदि युगल-देवताओं से सम्बन्ध रखने वाले हुत-द्रवशेष का उपभोग (भक्षण), श्रौत.प.नि. 286.342.

द्विपदवर्ज वि. मनुष्यों को छोड़कर, मनुष्यों के अतिरिक्त, मनुष्येतर, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.3.

द्विपदा स्त्री. (द्वे पदे अस्याः) दो चरणों वाली ऋचा (ऋग्वेद की), जै.ब्रा. III.230.

द्विपितृ वि. (द्वौ पितरौ अस्य) जिसके दो पिता हों, अर्थात् गोद लिया हुआ (दत्तक), भा.श्रौ.सू. 1.8.8 (पिण्ड)।

द्विपुरुषासोमपीथिन् वि. (द्वौ (पूर्व) पुरुषौ न सोमपीथिनौ सोमपायिनौ यस्य सः) वह व्यक्ति जिसके दो पुरखों (पिता एवं पितामह) ने सोम न पिया हो (अर्थात् सोमयाग न किया हो), का.श्रौ.सू. 7.1.6 (ऐन्द्राग्नं पुनरुत्सृष्टमालभ्य द्विपुरुषासोमपीथिनः)।

द्विप्रवाचन वि. (पु.) (द्वे प्रवाचने यस्य) दो गोत्रों वाला परिवार, अर्थात् 'द्विगोत्र' (उदाहरणार्थ, शौंग शैशिरि), हि.आ.ध. I.ii.492.

द्विप्रादेश वि. (द्वौ प्रादेशौ प्रमाणम् एषाम्) दो प्रादेश (बित्ता) लम्बे (इध्मकाष्ठानि), मा.श्रौ.सू. 8.2.6; 'द्विबर्हिस्', डांगे एस.ए., VIJ 17 (1-2) 1979; 5-8.

द्वियजुस् स्त्री. अग्नि-वेदि की प्रथम परत (तह) में लगी हुई ईंटों का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.31-36; का.श्रौ.सू. 17.4.20

द्वियुज् पु. दो घोड़ों द्वारा खींचा जाने वाला रथ, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.3=द्वियोग्य रथ।

द्विरात्र पु. दो सवन-दिनों वाला सोम-याग। 'अहीन' यागों में यह प्राथमिक कर्मकाण्डीय कृत्य है, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 947 (बौ.श्रौ.सू. 24.5).

द्विवत् क्रि.वि. (द्वि+वति) द्विवचनात्मक रूप से, द्विवचनात्मक अभिव्यक्ति के प्रयोग द्वारा (ब्राह्मणों की सम्मतियां), आप.श्रौ.सू. 8.5.9 (वरुण प्रघास), तु. 'अपि द्विवत् अपि बहुवत् तद् यद् द्विवत्' निरु. 2.7 (दो-दो करके)

द्विशः क्रि.वि. (द्वि+शस्) एक बार में दो-दो करके (दो-दो करके), का.श्रौ.सू. 2.3.6-7 (.....द्विशः पात्राणि संसादयति)।

द्विसंभार्य पु. दो संयुक्त मासों वाला (गवामयन में), मा.श्रौ.सू. 7.2.5.18

द्विस्तनव्रत न. (द्वाभ्यां स्तनाभ्याम् आगतं व्रतं दुग्धम्) दो स्तनों से (प्राप्त) व्रत का दूध, बौ.श्रौ.सू. 6.22 [द्रष्टव्य-द्वितीय 'प्रर्वग्योपसद्' दिन की रात्रि के समय 'एकस्तनव्रत बौ.श्रौ.सू. 6.24]; 'अर्धस्तनव्रत' भी, तृतीय।

द्विस्तावा वि. मूलरूप से निर्धारित नापों से दो गुने माप वाला, आप.श्रौ.सू. 20.9.1 (अश्वमेध); 'त्रिस्तावा' भी देखें, 20.9.1.

द्विहिंकार वि. (द्वौ हिंकारौ अस्मिन्) दो 'हिं' ध्वनि वाला (जिसमें दो हिंकार हों, जै.ब्रा. II.237 (वामदेव्य)।

द्वीष वि. (द्वे ईषे यस्मिन्) (वह गाड़ी) जिसमें दो ईषा-दण्ड लगे हों, आप.श्रौ.सू. 16.12.4

ध

धनुःकोटि स्त्री. (धनुषःकोटिः) परिसीमित वृत्त का खण्ड, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.15.

धनुःप्रकार वि. (धनुः इव प्रकारः यस्य) धनुष् की आकृति वाला, मा.श्रौ.सू. 8.12.2 (यूप के लिए वृक्ष)।

धनुर्मात्र न. (धनुस्+मात्रच्) एक धनुस् की दूरी (अग्रेण शालां धनुर्मात्रे वेद्यैर्गर्तं खानयति), बौ.श्रौ.सू. 9.1:8.

धनुस् न. धनुस्, शां.श्रौ.सू. 3.2.7; वर्ग के आगे का क्षेत्र, यदि वर्ग के चारों ओर एक परिधि खींची जाती है तो, 10.3.2.15; द्रष्टव्य-हॉफमैन कैटी, 'दी स्प्राखे' 20 (1)।

धन्वन्तरियज्ञ पु. एक प्रकार का यज्ञ, आश्व.गृ.सू. 1.12.7:1.3.6.

धयद्वती स्त्री. (धयद्+मतुप्+ङीप्) 'धयत्' शब्द के उल्लेख से युक्त एक ऋचा 'गौर्धयति मरुताम्' ऋ.वे. 8.94.1, श्रौ.को. (सं) II.643

धरुण न. वह स्थल जहाँ 'आज्य' का आहरण किया जाता है, वाधू.श्रौ.सू. (AO II.162)

धर्म पु. कर्मकाण्डीय नियम, भा.श्रौ.सू. 7.6.7 (ये उपभृतो धर्मा.....पृषदाज्यधान्यामपि क्रियेरन्); देखें-7.6.9 में 'स्रुवधर्म', 'पयोधर्म'।

धर्मन् न. प्राथमिक सिद्धान्त, ऋ.वे.1.164.50; 'यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'; सा.वे. 1.429 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा.14.11.34.

धर्ममात्र न. (धर्मः एव) केवल कर्मकाण्डीय औपचारिकता (धर्ममात्रं पर्युपवेषणम्) का.श्रौ.सू. 9.5.10.

धर्मानुग्रह पु. (धर्मस्य अनुग्रहः) वैशिष्ट्यों की सहमति, का.श्रौ.सू. 4.3.16 (पयसः कालानन्तर्यधर्मानुग्रहेभ्यः)

धवन न. (धू+ल्युट्) (अस्थि के पात्र) को हिलाने का कृत्य; एक दिन बाद पितृमेध के अन्तर्गत खाचों को खोदकर, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 1088.

धवित्र न. (धू+इत्र, अर्तिलूधूखनसहचर इत्रः, पा 3.2.184) पंखा, व्यजन (प्रर्वग्य में महावीर के नीचे अग्नि को उद्दीप्त करने के लिए प्रयुक्त एवं चमड़े का बना हुआ), बौ.श्रौ.सू. 9.15.:29; का.श्रौ.सू. 26.2.20; 7.23; आप.श्रौ.सू. 15.5.12 (संख्या में तीन); श्रौ.को. (सं.) II.531.

धवित्र

धवित्रदण्ड पु. (धवित्रस्य दण्डः) (प्रर्वग्य में प्रयुक्त) चर्मनिर्मित पंखेका बाँसका बना हुआ हत्था (दण्ड), मा.श्रौ.सू. 4.2.2; बौ.श्रौ.सू. 9.15.20.

धातु पु. ('उखा-' नाम के पात्र के लिए अभिप्रेत)मिट्टी का ढेला, 'अन्तानुन्नीय सर्वतः प्रथमं धातुमादधाति.....', का.श्रौ.सू. 16.3.27 (ढेलों-पिण्डोंकी संख्या दो होती है, एक तो आधार के शीर्ष पर (एक तरफ) लगाया जाता है, जिसकी झलरियों को थोड़ा उठा हुआ बनाया जाता है); वेदि पर बिछायी गयी घास की तह या पंक्ति, भा.श्रौ.सू. 2.8.13 (दर्श)।

धातुर्ऋच् (स्त्री.) (द्वि.) 'धातृ' नामक देवता को सम्बोधित दो ऋचायें, उदा. 'धाता ददातु नो रयिम्.....', आप. श्रौ.सू. 15.18.7.

धातृ पु. (धा+तृच्) उत्पन्न करने वाला देव, शां.श्रौ.सू. 9.28.2.

धाना स्त्री. यव के दाने, इन्हें सवनीय पुरोडाश के लिए भूना एवं पीसा जाता है, आप. श्रौ. सू. 12.4.10 (सोम), इस (धाना को)सोम के साथ मिलाया जाता है और अर्ध्वयु द्वारा अपने शिर पर 'धाना' से भरे हुए पात्र को लेकर 'हरियोजन' आहुति का कृत्य; दाने ऋत्विजों द्वारा बिना इन्हें खण्डित किये, एक ध्वनि-विशेष के साथ

(चिष्चिष्कारम्) निगल लिये जाते हैं, 13.17.3-8; मा.श्रौ.सू. 1.7.6.6; श्रौ.को. (सं.) II.314; ऋ.वे. 3.52.7; 6.29.4.

धानाकपाल पु. (धानाभर्जनस्य कपालः) 'ध्रुवासि' इत्यादि के साथ 'धाना' को भूनने के लिए रखा हुआ घट-शकल (कपाल) श्रौ.प.नि. 260.239 (सोम)।

धानासोम पु. (धानामिश्रितः सोमः) धाना के साथ सोम, मा.श्रौ.सू. 5.2.16.19; द्रष्टव्य-धाना

धाय्या स्त्री. (धा+ण्यत्, पाप्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या; पा. 3.1.129) एक अतिरिक्त ऋचा (मा.श्रौ.सू. 5.1.5.73 के अनुसार काम्येष्टि में प्रयुक्त। इनकी संख्या छः है, नौ 'धाय्यायें' मा.श्रौ.सू. 5.1.7.47); शस्त्रमेंअन्तःप्रक्षिप्त छन्द, उदा. मरुत्वतीय; विशेषरूप से 'सामिधेनी' में इसकी संख्या 15 से17 करने के लिए दो छन्द (ऋचायें), आप.श्रौ.सू.6.31.18 (दर्श); भाष्य-'सप्रत्नवन् नवीयसा' (ऋ.वे. 6.16.21-22)श.ब्रा. के अनुसार (श.ब्रा.ई xii.112); 'पृथुपाजा अर्मत्यः' (ऋ.वे. 3.27.5) एवं तदनन्तर 'तं सबाधो यतस्रुचो' (ऋ.वे. 3.27.6); द्रष्टव्य पी.डी. नवाठे, इण्डिका 16 (1),1979; पृ. 149-156. जै.ब्रा. I.119

धाय्यास्थान न. (धाय्यायाः स्थानम्)दो 'समिद्वत्' (ऋचाओं के बीच में) दो अतिरिक्त 'सामधेनी' ऋचाओं का स्थान,मा.श्रौ.सू. 5.1.1.6 (ग्यारह ऋचाओं में आठवीं के बाद)।

धारण न. (धृ+णिच्+ल्युट्) पवित्र अग्नि का संरक्षण, अग्नि को जलते हुए रखना, का.श्रौ.सू. 4.8.11 (रात्रिं जागरणधारणे)।

धारणा स्त्री. (धृ+णिच्+ल्यु+टाप्) पवित्र अग्नि को सुरक्षित रखना, का.श्रौ.सू. 4.9.20.

धारा स्त्री. छुरी की धार, भा.श्रौ.सू. 7.11.13; आप.श्रौ.सू. 7.14.10; 'अङ्कति स्वधितेरन्यतरां धाराम्'; एक छन्ने के माध्यम से सतत धारा में सोमरस का प्रवाह, आप.श्रौ.सू. 12.13.1. उपांशु-ग्रह के विपरीत धाराग्रह में इस संक्रिया का निर्वहण किया जाता है। गार्हपत्य से आहवनीय तक जल-प्रोक्षण के बारे में उक्त, आश्व.श्रौ.सू. 2.2.14 (उदकधारा)

धाराग्रह पु. प्यालों को भरने का कृत्य : पवित्रा के माध्यम से होता के चमस से धारा रूप में प्रवाहित होने वाले सोमरस से अन्तर्याम से लेकर 'ध्रुवा' तक, का.श्रौ.सू.9.6.26; भा.श्रौ.सू. 13.197

धाराघोष पु. (धारायाः घोषः) दूध दुहते समय दुग्ध की धार की ध्वनि,का.श्रौ.सू. 1.13.3.

धार्मुक वि. (धृ+उकञ्) धार्मिक, सत्यपथ पर चलने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.54.

धिषणा स्त्री. सोम-पात्र, ऋ.वे. 9.78.1.

धिष्णिय पु. बनाई गयी अंगीठी, आप.श्रौ.सू. 17.21.1-6, 'होता' के 'धिष्ण्य' में 12, 16, 21अथवा 24 ईंटें,ब्रह्मणच्छंसी में 11, मार्जालीय में 6, वर्गाकार अथवा वृत्ताकार, सोम-ऋत्विजों के लिए उत्थापितः होत्रिय (होता के लिए); आग्नीध्रीय (अग्नीध), प्रस्तरीय (मैत्रावरुण) एवं ब्राह्मणच्छंसी, पोता, नेष्टा, अच्छावाक (7 ऋत्विज्, तै.ब्रा. 2.3.6); और अन्त में मार्जालीय; इनमें छः तो सदस् के अन्दर होते हैं, सदस् के पूर्वी द्वार के सामने 'पृष्ठ्या' के उत्तर चार एवं दक्षिण में 'प्रशास्त्रीय', आप.श्रौ.सू. 11, 14.4-6 'मार्जालीय' 'हविर्धान' के दक्षिण की ओर; सदस् के साथ बीच की दूरी 18अंगुल की होती है। ये वर्गाकार होते हैं, और चात्वाल से (ली गई) मिट्टी से निर्मित होते हैं, और उन पर 'धिष्ण्य' अग्नि स्थापित कर दी जाती है, का.श्रौ.सू. 8.6.16-22 चयन में इनका निर्माण ईंटों से किया जाता है।

धिष्ण्य पु.=धिष्णिय; धिष्णीया, द्रा.श्रौ.सू. 5.2.6;=धिष्ण्या; का.श्रौ.सू.9.7.5 (यथान्युप्तं धिष्ण्येष्वाग्नीध्रादङ्गारान्निवपति); ला.श्रौ.सू.10.15.22.

धिष्ण्य

धिष्ण्यनिधान न. (धिष्ण्यस्य निधानम्) 'धिष्ण्य'-संज्ञक अंगीठी को जोड़ना या उसका निर्माण करना, का.श्रौ.सू. 10.1.24 (पशुपुरोडाशेन प्रचर्य पुरोडाशादि करोत्याधिष्ण्यनिधानात्)

धिष्ण्यनिवपन न. अंगीठियों पर (मिट्टी) फैलाना या बिखेरना, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.1.

धीत वि. (धेट्+क्त,ध्यै=धी+क्त) चूसा गया, ध्यात, जै.ब्रा. I.156=सोमयाग का तृतीय सवनदिन।

धुर् स्त्री. (धुर्वी हिंसायाम्+क्विप्) हविस् अथवा सोम का वहन करने वाली गाड़ी का जुआ, जिसकी व्याख्या जुए के दोनों छोर के मध्य के अवकाश (जगह) के रूप में की गई है, आप.श्रौ.सू. 1.17.6 भाष्य (दर्श); 10.28.1-2 (सोम) द्रष्टव्य-अक्षधुर, (बहु.) बहिष्पवमान की ऋचाएं जै.ब्रा. .99,107. ('धूर्वी' धातु से निष्पन्नता का प्रमाण 'धूरसि धूर्व धूर्वन्तम् वा.सं. 1.8)।

धुर्य न. पवमान स्तोत्र को छोड़कर सभी स्तोत्र, धूर्य कहे जाते हैं, का.श्रौ.सू. 9.14.6; प्रधान स्तोत्रों (पवमान)के अतिरिक्त जो स्तोत्र सोमयाग में गाये जाते हैं, उनका नाम, उदा. प्रातः सवन के 'आज्यस्तोत्र' एवं अग्निष्टोम के माध्यन्दिन सवन के 'पृष्ठस्तोत्र', इग्लिग, XXVI. 307; भारवाहक बैल (धुर+यत्, धुरं वहति,धुरो यड्ढकौ, पा 4.4.77) मा.श्रौ.सू. 2.1.4.27.

धुवन न. (धु+क्युन्) मृत व्यक्ति की भस्मीकृत अस्थियों को पंखा झलना। सम्बन्धिगण, स्त्रियां एवं चार ब्रह्मचारी घट एवं खूटें, जिनके नीचे अस्थियां रखी गयी होती हैं, की परिक्रमा करते हैं। इस तरह करते समय वे तीन बार घड़े को एक चमड़ें के टुकड़े से ठोंकते हैं और इसको अपने परिधानों के अग्रभाग से पंखा झलते हैं (हवा करते हैं)। नृत्य एवं वाद्ययन्त्रों का वादन इसके बाद होता है, भा.पि.मे 2.3.15. किन्तु इसके पूर्व, मृत व्यक्ति की प्रथम पत्नी एवं किसी (एक) शूद्र अथवा 'ब्रह्मबन्धु' के बीच में एक मनोरञ्जक वार्तालाप होता है, शूद्र या ब्रह्मबन्धु उसके साथ सम्भोग करने की इच्छा प्रकट करता है। वह दो दिन तक तो अस्वीकार करती है किन्तु तीसरे दिन वह एक रात के लिए इसके लिए सहमति दे देती है, भा.पि.मे. 4-8.

धूपन न. (धूप+ल्युट्) धुआं करना, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.13. का.श्रौ सू. 16.4.13, भा.श्रौ.सू. 11.3.10, अश्व की लीद में आग लगाकर धुआं करना, आप.श्रौ.सू. 15.2.17 (प्रवर्ग्य)।

धूमवती स्त्री. (धूम+मतुप्+ङीप्) 'धूम' की अभिव्यञ्जना से युक्त एक ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.203.

धूर्गान न. बहिष्पवमान में गायत्री छन्द में निबद्ध ऋचाओं के गायन की विशिष्ट प्रविधि, द्रा.श्रौ.सू. 3.4.23 (भाष्य); 'अहिंकृता प्रथमा रेतस्या'; द्रष्टव्य काशिकर 119.

धृति स्त्री. (धृ+क्तिन्) अश्वके पद-चिह्नों पर दी जाने वाली चार घृत-आहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 20.5.19 (अश्वमेध); मा.श्रौ.सू. 6.1.7.18; अश्व को नियन्त्रित करने के लिए आहवनीय में चार आहुतियां, का.श्रौ.सू. 20.3.4 (चार आहुतियाँ-रन्ति स्वाहा, इह रमतां स्वाहा, इह धृतिः स्वाहा, इह स्वधृतिः स्वाहा इति चतसृणां धृतिरिति संज्ञा, स.वृ.)।

धृष्टि पु. प्रहार करने की छड़ी, इनकी संख्या दो होती है, गार्हपत्य (उपवेष) से जलते हुए राल को लेने के लिए अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थातृ द्वारा (छड़ी) पकड़ी जाती है, भा.श्रौ.सू. 11.8.1; 'घर्म' को तैयार करने में प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 15.5.11, कोई भी छड़ी जो दो ताल = अंगूठे से मध्यमा अंगुली तक लम्बी हो, वैखा.श्रौ.सू. 11.9; द्रष्टव्य-श्रौत.प.नि. 10.60.

धेनु स्त्री. दुधारु-गाय, भा.श्रौ.सू. 5.2.10.18; एक साम का नाम, जिसका गायन उस समय किया जाता है जब गाय को वत्स के समीप ले जाया जाता है, द्रा.श्रौ.सू. 2.2.29

धेनुकरण पु. एक प्रकार की चित (राशीकृत) वेदि, (पुरीषचिति) 'त्रिभिः कर्मभिरभिप्रैति पुरीषस्योपधाने साहस्रवता प्रोक्षणेन धेनुकरणेनेति', बौ.श्रौ.सू. 25.30.

धेनुषेतरी स्त्री. वह गाय जो दूध देना बन्द कर देती है, भा.श्रौ.सू. 5.2.10.22.

ध्रुव पु. (ध्रुव्+क) सोम के एक प्याले का नाम, मा.श्रौ.सू. 2.3.4.21.

ध्रुवगोप पु. (ध्रुवं गोपायति) 'सदस्य' -संज्ञक पुरोहित के तीन सहायकों में एक का नाम, दो अन्यों के नाम है-'अभिगर' एवं संश्राव, श्रौ.को. (अं.) I.i.9 (बौ.श्रौ.सू. 2.3) सोम में, वह 'ध्रुवग्रह' का रक्षक होता है, एक सोम का आहरण, जिसे ध्रुव शब्द से अभिहित किया गया है, का.श्रौ.सू. 9.8.1 (ध्रुवगोपं कृत्वा परिव्ययणादि करोति रशनामुदुह्य पूर्वाम्); गोप (रक्षक) तृतीय सवन तक 'ग्रह' की रक्षा में लगा रहता है; वह राजपुत्र होता है, बौ.श्रौ.सू. 7; भा.श्रौ.सू. 13.16.3, 6. 'ध्रुवस्थाली' नाम वाले पात्र से आहुति दी

जाती है, बौ.श्रौ.सू. 8.15; का.श्रौ.सू. 9.6.22; ध्रुव को किसी सुरक्षित स्थान पर रखने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 9.8.1 (कर्क:-ध्रुवगुप्तिश्च कटपटादिना अन्यतमेन धड्कनम्)।

ध्रुवग्रह पु. स्थिर ग्रहण, 'प्रतिप्रस्थाता' द्वारा सोम का आहरण, का.श्रौ.सू. 10.7.7.

ध्रुवा स्त्री. (ध्रुव+टाप्) एक विशेष प्रकार की (आहुति देने वाली) करहुल, 'इष्टि' में इससे 'समिष्टयजुस्'आहुतियां प्रदान की जाती हैं, भा.श्रौ.सू. 3.11.1; आप.श्रौ.सू. 3.13.2; विकङ्कत-काष्ठ से निर्मित (वैकङ्कती ध्रुवा प्रोक्ता) इसका सम्बन्ध स्रुक्-श्रेणी से है, आप.श्रौ.सू. 1.15.10; सामान्यत: यह (ध्रुवा) वेदि में स्थिर रहती है (इसी लिए इसका नाम ध्रुवा है)। इसमें आहृत घृत 'ध्रौव' कहलाता है, शां.श्रौ.सू. 5.8.2 भाष्य। इसका प्रयोग विशेष रूप से 'आज्यभाग' आहुति प्रदान करने में होता है, तुल.आप.श्रौ.सू. 8.10.4; श्रौ.प.नि.8.49

ध्रौव वि. (ध्रुवाया: इदम्, ध्रुवा+अण्) ध्रुव-संज्ञक करछुल से सम्बद्ध, भा.श्रौ.सू. 1.3.3.6.

ध्वाङ्क्षारोहण (ध्वांक्षस्य=काकस्य आरोहणम्) (यज्ञीय यूप पर) कौवे का बैठना या चढ़ना, का.श्रौ.सू. 25.6.6 (आ पवस्व हिरण्यवदित्युद्गातृहोमे ध्वाङक्षारोहणे यूपस्य प्रायश्चित्तम्)।

ध्वान न. उच्चारण की प्रविधि जिसमें स्वर एवं व्यञ्जन (दोनों) अलग-अलग सुने जा सकते हैं, किन्तु कुल मिलाकर वर्ण अलग-अलग पहचाने नहीं जा सकते (रु. स्वरव्यञ्जनयो: पृथगुपलब्धि: स ध्वर्निध्वान:), आप.श्रौ.सू. 3.8.8; अर्थात् बुदबुदाना, उपांशु से थोड़ा तेज (या उच्च), बौ.श्रौ.सू. 20.15; आप.श्रौ.सू. 3.8.8 भाष्य (चर्श); निम्न ध्वनि, भा.श्रौ.सू. 3.7.7 (देखें स्वयं के प्रति=उपांशु पाठ); बुदबुदाना, मा.श्रौ.सू. 5.1.3.21 (ध्वानेन चरति अवभृथे अष्टौ); 2.1.1.19; 1.3.4.32 ('पत्नीसंयाज-होतासीनो ध्वानेन पत्नी: संयाजयति)।

न

नकुल पु. नेवला (इसका धिष्ण्या में उपधान किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 10.2.2.24; 26-27।

नक्षत्र न. एक प्रकार के यज्ञ का नाम, इसे भरणी नक्षत्र (चैत्र मास की) पूर्णमाषी के दिन प्रारम्भ करना चाहिए। अथवा इसे जन्मकालिक नक्षत्र में प्रारम्भ करना चाहिए एवं हर वर्ष अथवा तीन वर्ष इसे जारी रखना चाहिए। इसमें 'जीवातुमन्त्र आज्यभाग' विहित हैं और प्रथमतया अग्नि अथवा नक्षत्रों को जो भी हो, आहुतियां दी जाती हैं। इसके बाद अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश एवं 'अनुमति' के लिए पके हुये चावल का विधान है। सामिधेनियों की संख्या इसमें सत्रह होती है। स्विष्टकृत् के पूर्व 'अग्नि', कृत्तिकाओं एवं अम्बा आदि के लिए चम्मच को भर कर घृत की आहुतियां दी जाती हैं। विष्णुक्रम के साथ इस कृत्य का समापन होता है। 'विशाखा', मघा, 'अनुराधा' एवं 'अभिजित्' आदि के लिए देय आहुतियों में कुछ विभिन्नतायें हैं। इस यज्ञ की भी दक्षिणा वही है जो 'अपाघ' यज्ञ के लिए निर्धारित है, (तै.ब्रा. 3.12.4.7), अर्थात् चार साल की ओसर (गाय) एवं श्वेत-ताम्र-पात्र एवं स्त्रियों के आभूषण, श्रौ.को. (अं.) I.591-593; बौ.श्रौ.सू. 28.3-4.

नक्षत्रेष्टका स्त्री. अग्निवेदि में चिनी गई नक्षत्र के नाम से युक्त एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.8।

नखनिर्भिन्न वि. (नखैः निर्भिन्नः, निर्भिन्न=निर्+भिद्+क्त) वि. नखविदलित, नख से निष्तुषीकृत, 'नैर्ऋतः परिवृत्त्यै कृष्णव्रीहीणां नखनिर्भिन्नानां दर्विहोम.....', का.श्रौ.सू. 15.3.14 (पति एवं पुत्र से रहित स्त्री के घर में 'निर्ऋति' के लिए काले चावल के चरु की आहुति दी जाती है, राजसूय).

नग्न वि. नग्न, नंगा, 'नग्नं कृत्वोरुमुपवर्तयति' (पत्नेजनीः), बौ.श्रौ.सू. 8.14 (सोमयाग, तृतीय सवन)।

नग्नहु पु. दालों (का कच्चा आटा), श्रौ.को. (अं.) 1.903, चरकसौत्रामणी में 'सुरा' तैयार करने के लिए प्रयुक्त। सुरा के निर्माण के लिए प्रयुक्त भूने हुए यव के खुरदरे, आप.श्रौ.सू. 19.5.10, अथवा इसकी व्याख्या- अदरक, जायफल, हरीतकी, इत्यादि रूपों में की गयी है, का.श्रौ.सू. 19.1.20 (दक्षिणेन हृत्वा नग्नहुचूर्णानि कृत्वा....) इस पर सोम रस का छिड़काव किया जाता है; तु. मासर।

नभ्यस्थ न. (द्वि.) (नभ्ये तिष्ठति, नभ्य+स्था+क) शकट के पहियों (चक्र) के युग्म के दो नाभि-फलक, आप.श्रौ.सू. 11.7.33 (नभ्यं नाम चक्रस्य मध्यमं फलकं यत्र नाभिः क्रियते); मा.श्रौ.सू. 2.2.2.21. द्रष्टव्य श्रौ.को. (सं.) II.161 वे फलक (तख्त) जिनमें से नाभि तराशे जाते हैं। (सोम-शकट)= फलक।

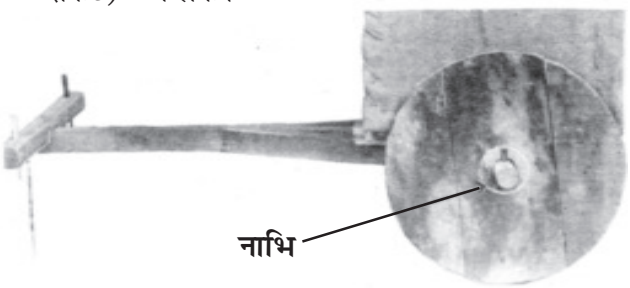

फलक

नम् अन्य प्रसंग के अनुकूल बनाने के लिए मन्त्र के प्रसंग अथवा शब्द को संशोधित करना अथवा परिवर्तित करना। आप.श्रौ.सू. 18.7.6; भा.श्रौ.सू. 8.2.5.

नमउक्तिमती स्त्री. (नमउक्ति+मतुप्+ङीप्) एक ऋचा का नाम 'कु विद् अङग यवमन्तो यवं चित्', ऋ.वे. 10.31.2=नमोवृक्तिमती, श्रौ.को. (सं.) II.617

नमन न. (नम्+ल्युट्) झुकना, आप.शु.सू. 18.23

नमस्कार स्त्री. (नमस्+कृ+घञ्) छः मन्त्रों के समूह का नाम 'नमो वः पितरो रसाय.....शूष्माय(शोषाय) ..... जीवाय..... स्वधायै.....मन्यवे..... घोराय, श्रौ.को. (अं.) 1.483.

नमस्कारवती स्त्री. (नमस्कार+मतुप्+ङीप्) 'इदं पितृभ्यो नमोऽस्तु ते' इस ऋचा का नाम, श्रौ. को. (सं.) II.461; ऋ.वे. 10.15.2

नम्र पु. (नम्+रक्) 'आ याहि यज्ञमूतये.....' एवं 'प्रेते सुमानि वयुना कराम.....।' इन दो ऋचाओं का पारिभाषिक नाम, ये ऋचायें एक पशुयाग के प्रसङ्ग में 'अङ्ग याग' की 'पुरोऽनुवाक्या' एवं 'याज्या' के रूप में निर्धारित हैं, कातीयहोत्र परि. 5.1; 3. ये ऋचायें किसी भी अन्य वैदिक

ग्रन्थ में नहीं पायी जाती हैं। आश्व.श्रौ.सू. (2.14.14-32) निम्नलिखित ऋचाओं का नम्र ऋचाओं के रूप में उल्लेख करता है 'इममा श्रृणुधी हवम्....' एवं 'स्तीर्ण बर्हिरानुषग्.....' उपर्युक्तानुसार इनका 'पुरोऽनुवाक्या' एवं 'याज्या' के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए (तुल.शां.श्रौ.सू.1.17)

नयवती स्त्री. (नय+मतुप्+ङीप्) 'नय' की अभिव्यञ्जना से युक्त ऋचा 'अग्ने नय सुपथा राये', आदि, तै.सं. 1.1.14.3; भा.श्रौ.सू. 12.17.4; तै.सं. 1.3.4.1 भी।

नराशंस पु. शुनक अथवा वशिष्ठगोत्र वाले यजमान के प्रसंग में द्वितीय प्रयाज का देवता 'तनूनपात्' है, आप.श्रौ.सू. 24.11, 13.14; अनुयाजों में यह द्वितीय देवता के रूप में व्यवहृत होता है, श्रौ.को. (अं.) 1.852 पा.टि.; द्रष्टव्य- Schlerath B, अमृतधारा 1984,पृ. 371-375.

नराशंसपीत पु. (नराशंसेन पीतम्) नराशंस के द्वारा पिया गया, नराशंस पात्र में सोमपान करते समय पढ़े जाने वाले 'नराशंसपीतस्य सोम देव ते.....' इस मन्त्र का नाम, बौ.श्रौ.सू. 8.7; द्रष्टव्य-नाराशंसपीत।

नलद पु. (न.) पौधा, खस, जटामासी, हि.आ.ध. IV 202 नलद के फूल की एक माला शव पर रखी जाती है, भा.पि.मे. 1-1.21, श्रौ.को. (अं) 1.1040 (पितृमेध); 'स्यादस्या नलदं विना..... नैष. 4.116.

नवका वि. (स्त्री.) नौ अरत्नियों की नाप वाला अर्थात् नव अरत्नियों के बराबर ('सदस्' का उत्तरी भाग अर्थात् 'प्राची' होती है), मा.श्रौ.सू. 10.1.3.2.

नवच्छदि वि. (नव छदयः यस्य) नौ प्रभागों वाला (छत), आप.श्रौ.सू. 11.10.12; बौ.श्रौ.सू. 6. 27:17; हि.श्रौ.सू. 7.7.20; श्रौ.को. (सं.) II.168.

नवतर्द्म वि. (नव तर्द्माः यस्य) (वह मुकुट) जिसमें नौ छिद्र अथवा विवर हों, 'शिरसि नवतर्द्म शततद्मं वौजोऽसीति', का.श्रौ.सू. 15.5.25 (अभिषेचनीय)।

नवनीत न. हैयङ्गवीन, ताजा मक्खन, का.श्रौ.सू. 7.2.30 (शालां पूर्वेण तिष्ठन्नभ्यङक्ते कुशेषु नवनीतेन)।

नवनीतमिश्र वि. (नवनीतेन मिश्रम्) मक्खन से मिश्रित (दही), आप.श्रौ.सू. 14.24.14 (प्रातःकाल में ताजे दूध के साथ सोम को मिलाया जाता है, दोपहर में उबले हुए दूध को सोम में मिलाते हैं और सायंकाल दूध अथवा घृत का मिश्रण होता है)।

नवभागा स्त्री. (नव भागाः यस्याः सा) नौ भागों से युक्त एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 10.3.5.21.

नवमानूयाजप्रैष पु. (नवमाय अनूयाजाय प्रैषः) अग्निषोमीयपशु में नवम उत्तर-आहुति (अनूयाज) के लिए प्रैष (अनुज्ञा, आह्वान), नाम्ना 'देवो वनस्पर्तिर्वषग्रावा.....वसुवने वसुधेयस्य यज' श्रौ.को. (सं.) II.213

नवर्च वि. (नव ऋचः यस्मिन् तत्) नव ऋचाओं वाला सूक्त (ऋ.वे.9.11), ला.श्रौ.सू. 3.7.2; द्रा.श्रौ.सू. 9.3.15

नवस्तोभ न. सा.वे. 1.437 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.4.12.

नवहोतृ पु. नौ मन्त्रों से युक्त एक पाठ्य का नाम, बौ.श्रौ.सू. 17.21:9; द्रष्टव्य-चतुर्होतृ।

नवानुयाज वि. (नवसंख्याकाः अनुयाजाः यस्मिन्) नव अनुयाजों वाला (वैश्वदेव पर्व) अर्थात् जिसमें नव अनुयाज होते हैं, का.श्रौ.सू. 5.2.7; द्रष्टव्य-अनुयाज।

नवारत्नि वि. (नव अरत्नयः प्रमाणम् अस्य) नव अरत्नि की माप वाला (अर्थात् नव अरत्नि के बराबर), श्रौ.को. (सं.) II.184; यूप।

नाकसद् स्त्री. एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.4-5 (अग्निवेदि में पाँच नाकसद् ईंटें होती हैं)।

नाडा स्त्री. प्रसादात्मक जल को तैयार करने के लिए 'आङ्गिरस-सामग्री' के अन्तर्गत परिगणित कुछ द्रव्यों का नाम। यजमान को उस अश्व को उस जल से धोते एवं प्रोक्षण करते हुए शान्त करना चाहिए, जिसका (जिस अश्व का) पदचिह्न आधान के लिए आहवनीय अग्नि के स्थान पर अंकित करना है, श्रौ.को. (अं.) 1.37.

नाडी स्त्री. घास-पत्र, आप.श्रौ.सू. 1.3.9; 'दर्भ' नाम की घास विशेष का तना, भा.श्रौ.सू. 1.3.10.

नानद न. सा.वे.1.352 पर आधृत एक साम का नाम; पञ्च. ब्रा. 12.11.18.

नाना क्रि.वि. विभिन्न प्रकार से (एतावान्नाना, इतने का अनुष्ठान विभिन्न प्रकार से किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 13.4.8. -**देवत्य**-विभिन्न देवताओं वाला, जै. ब्रा. I.213.

नानागोत्र वि. (बहु.) (नाना गोत्राणि येषां ते) विभिन्न गोत्रों वाले (ब्राह्मण), मा.श्रौ.सू. 3.8.3

नानातन्त्र वि. (नाना तन्त्राणि यस्य) ऋचाओं की विभिन्न तकनीकों के कार्यान्वयन से युक्त, मा.श्रौ.सू. 5.1.135.

नान्दीश्राद्ध पु. यजमान के पितरों के पूजन का कृत्य, श्रौ.प.नि.43.359=वृद्धिश्राद्ध।

नाभाकतृच पु. (नाभाकश्चासौ तृचश्च) 'नाभाक' नाम वाला तृच, ऋ.वे. 8.41; 'सक्षप:----' (ऋ.वे. 8.41.3-5) इत्ययं नाभाकतृच:। चातुर्विंशकेऽहनि माध्यन्दिनसवने मैत्रावरुणशस्त्रे आरम्भणीया ऊर्ध्वमुच्यते।

नाभानेदिष्ठीय वि. (नाभानेदिष्ट+छ, 'वृद्धाच्छ:' पा 4.2.114) (मनु वैवस्वत के पुत्र) नाभानेदिष्ठ से सम्बद्ध अथवा उनके द्वारा रचित या दृष्ट (सूक्त), ऋ.वे. 10.61 एवं 10.62.

नाभि

नाभि स्त्री. नाभि,'पवित्र'नाम वाले शोधक में स्थित एक छिद्र, आप.श्रौ.सू.12.13.1; 'दशापवित्र' का मध्य भाग जहाँ श्वेत रंग के ऊन का जूड़ा लगाया जाता है, द्रा.श्रौ.सू. (इण्डेक्स); (दीक्षित के शरीर की) नाभि, श्रौ.को. (सं.) .33; गाड़ी की नाभि,बौ.शु.सू. 5.19; एक माप का नाम=64 अंगुल, आप.श्रौ.सू.10.19.

नाभिदघ्न वि. (नाभि: प्रमाणमस्य) नाभि तक पहुँचने वाला, यजमान की नाभि के बराबर ऊँचाईवाला, 'नाभिदघ्नं सद:',का.श्रौ.सू. 8.6.1; द्रष्टव्य-नाभिदघ्नी, आप.श्रौ.सू. 11.10.6 (स्थूणा)।

नाभिदघ्नपर्यन्ता वि. (नाभिप्रमाणं पर्यन्तं यस्या: सा) नाभि के बराबर ऊँचाई वाली, नाभि तक पहुँचने वाली, भा.श्रौ.सू. 12.10.7; तुल. मै.सं. 3.8.9; का.श्रौ.सू. 25.10.

नाभिदघ्नम् क्रि.वि. नाभि तक ऊँचा, भा.श्रौ.सू. 1.5.4.12.

नामग्राहम् क्रि.वि. (नाम गृहीत्वा) 'प्रशास्तृ' इत्यादि ऋत्विजों (जो याज्या का पाठ करेंगे), का एक-एक करके नाम का उच्चारण करते हुए, का.श्रौ.सू. 9.11.9 (ब्रह्मन् यज इति ब्राह्मणाच्छसिना इत्यादि)।

नामग्राहा वि. (स्त्री.) (नाम्न: ग्राह: गहणं यस्यां सा) जिसमें यजमान के नाम का उल्लेख किया गया हो, द्रा.श्रौ.सू.1.3.28; 1.4.14 (सुब्रह्मण्या); द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) 179.

नामव्यतिषञ्जनीय पु. (नाम्न: व्यतिषञ्जनेन सम्बद्ध: नाम व्यक्तिषज्यतेऽस्मिन् वा.) पु. अभिषेक जल के निस्तारण के दौरान अञ्जन-क्रिया के पश्चात् राजन्य यजमान एवं उसके पुत्र (प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी) के मध्य नाम की अदला-बदली (विनिमय) का होम अथवा कृत्य। 'औपासन' अग्नि में जल के शेष भाग को छलकाया जाता है, जिसमें प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी का त्रुटिपूर्ण ढंग से अपने पिता के पिता के रूप में उल्लेख किया जाता है (अर्थात् राम दशरथ के पिता हैं) और उसके बाद सही क्रम में अर्थात् जो वास्तविकता होती है (जैसे राम दशरथ के पुत्र हैं), आप.श्रौ.सू. 18.16.14-16; का.श्रौ.सू. 15.6.10-12

नाम्ब पु.चावल की एक प्रजाति का नाम,का.श्रौ.सू. 15.4.12 (अकृष्टपच्या व्रीहयो नाम्बा:) (देवसूहवींषि, चरु)।

नाराशंस पु. चमसों को दिया गया नाम, जब उनमें स्थित सोम का पान कर लिया जाता है और उनको फुला दिया जाता है (आप्यापन) उसके बाद (चमसों को प्रदत्त नाम), आप.श्रौ.सू.12.25.24; 'प्रतिसवनं बहवश्चमसगणा: नाराशंसदेवत्या: तेषां श्येनो नृचक्षा इति एनेन मन्त्रेण अन्वेक्ष्य भक्षणम्', द्रा.श्रौ.सू.(इण्डेक्स),श्रौ.को.(सं.) II.569 येन नरा: प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मन्त्र:, निरु. 9.1।

नाराशंसपीत न. नाराशंस पात्र में स्थित अवशेषों के पान के लिए (विहित) मन्त्रों का नाम; 'नाराशंसपीतस्य सोम देव ते मत्विदो माध्यन्दिनस्य सवनस्य त्रिष्टुप्छन्दस: पितृपीतस्य मधुमत: उपहुतस्य उपहूतो भक्षयामि, श्रौ.को. (अं.) II.ii. 686.

नाराशंसी स्त्री. 'उपक्षरन्ती' आदि ऋचायें, ऋ.वे. 1.125.4; श्रौ.को. (अं.) II.406.

नारिष्ठ पु. चम्मच भर घृत की एक आहुति का नाम (नारिष्ठ आहुतियों की संख्या आठ है और ये आहुतियां पार्वण

आहुतियों एवं समिष्टयजुस् के अनन्तर प्रदान की जाती हैं)। वे अभिव्यञ्जनायें, जिनके साथ ये आहुतियां दी जाती हैं-वे 'इष्टेभ्यः स्वाहा' आदि हैं, सत्या. श्रौ.सू. 2.5-6, 8; 6.3.4; श्रौ.कौ. (अं.) I.i.417. ये आहुतियां स्विष्टकृत् से पूर्व इन मन्त्रों के साथ अर्पित की जाती हैं 'दश ते तनुवो.....', 'वां देवा....', 'हं देवानाम्.....' एवं 'आरश्रृद् भवत.....' भा.श्रौ.सू. 2.17-19; 4.14. कुछ आचार्यों के मतानुसार पत्नी संयाज में पत्नी होम के बाद भी दो नारिष्ठ आहुतियाँ होती हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.408; पशुयाग में इसे वसा होम के बाद प्रदान करते हैं, श्रौ.को. (अं.)1.839; 'स्विष्टकृत्' के पूर्व एवं 'प्रधानयाग' के पश्चात् घृत की आहुति(यां) प्रदान की जाती हैं (आप.श्रौ.सू. 2.20.6; 2.21.1) 'स्रुव' संज्ञक चम्मच से। ये आहुतियां 'समिष्टयजुस्' के पूर्व भी प्रदान की जा सकती हैं, आप.श्रौ.सू. 2.21.2 एवं ये उपहोम (द्वितीयक होम) के रूप में ज्ञात हैं।

नार्मेध न. सा.वे. 1.36 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.8.21

निर्ऋति स्त्री. एक देवी का नाम (उस यजमान को इस देवी के लिए वन्य गर्दभ समर्पित करना चाहिये, जिसने ब्रह्मचर्यव्रत के पालन की प्रतिज्ञा लेकर भी किसी स्त्री से सम्भोग किया हो), भा.श्रौ.सू. 9.17.1-5; का.श्रौ.सू. 1.1.13-17 गर्दभ को (घृत की आहुतियों के स्थान पर, जैसा की पा.गृ.सू. 3.12 में विहित है) वैकल्पिक मानता है; वह उस व्यक्ति के यज्ञ को ले लेती है, जिसका यज्ञीय पुरोडाश जल जाता है, आप.श्रौ.सू. 9.15.6-9. निर्ऋति से सम्बन्धित अनुष्ठान के पश्चात् उसी प्रकार जल का स्पर्श करना चाहिए जैसा कि रुद्र, राक्षसों आदि के कृत्य के पश्चात्; यदि यजमान की पत्नी मर गई हो, तो उसे (निर्ऋति) को पके हुए चावल की आहुति देनी चाहिए (मा.श्रौ.सू. 8.23); एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.1.4.39.

निकक्ष पु. चयनित वेदि के मुख्य शरीर का पश्चिमी बिन्दु एवं दक्षिणी पक्ष, का.श्रौ.सू. 18.2.1; (अग्नि वेदि की) काँख, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.9; अग्निवेदि की दाहिनी काँख पर 'प्रजापतेर्हृदय साम' का गायन किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.9.

निकायिन् पु. सदृश यज्ञों का एक समूह: चार साहस्र, चार साद्यस्क्र, चार द्विरात्र, आप.श्रौ.सू. 22.1.2; 'निकायिनो नाम प्रकृतेर्विलक्षणाः परस्परं तुल्यधर्मानुयायिनः किञ्चिद्वावृत्ताश्च', द्रा.श्रौ.सू. (इण्डेक्स); द्रा.श्रौ.सू. 22.3.4; 22.4.18.

निकृत्तनख वि. (निकृत्ताः नखाः यस्य सः) जिसके नाखून कटे हुए हों,बौ.श्रौ.सू. 6.2 (अप्सुदीक्षा)।

निखनेत् (नि+खन्+वि.लि.प्र.पु.ए.व.) गाड़ देना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 10.20.5.

निगद पु. (मन्त्र के रूप में मानित) गद्य का पाठ, यह (निगद) यज्ञीय अनुष्ठान में आज्ञा (प्रैष के रूप में उच्च स्वर से बोला जाता है), 'ऋचो यजूंषि सामानि प्रैषाः मन्त्राः' का.श्रौ.सू. 1.3.1 ('अग्नीदग्नीन्विहर' (श.ब्रा. 4.2.5.11) 'इत्यादयः प्रैषा निगदशब्देनोच्यन्ते,) होता द्वारा देवताओं के आह्वान के पश्चात् पढ़ा जाने वाला गद्य-भाग (आश्व.श्रौ.सू. 1.1-4), श्रौ.को. (अं.) 1.350. 'साकमेध' की गृहमेधीय इष्टि में कोई भी निगद नहीं रहना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.752. उस यज्ञ में जिसमें आह्वान-मन्त्र नहीं पढ़ना होता है, स्विष्टकृत् से सम्बद्ध 'याज्या का पाठ निगद-मन्त्र के बिना किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 2.18.6; 'अग्ने महाँ असि भारत' निगद है, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.22 (भाष्य), 1.2.27; पाठ में वैविध्य, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.8; (यह आवाहन अन्तिम प्रयाज, स्विष्टकृत् एवं सूक्तवाक में पाया जाता है), श्रौ.प.नि. 25.202; (एक देवता का) उल्लेख, भा.श्रौ.सू. 10.21.10; ('स्विष्टकृत्' अथवा 'सूक्तवाक' आदि में) देवता की प्रशस्ति, का.श्रौ.सू. 5.12.7; मन्त्र का एक प्रकार, जिसमें आहुतियों के सामञ्जस्यानुसर परित्यक्त नाम के लिए देवताओं के नाम परिवर्तित कर दिये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 1.2.7 भाष्य. देखें- 'देवतानिगम' मन्त्र में (उपयुक्त प्रसङ्ग में) देवता का संम्बोधन (नाम लेना), आप.श्रौ.सू. 24.4.18; वेद अथा वैदिक ग्रन्थ; पाठों अथवा पठनीय-मन्त्र में गद्य का अन्तर्निवेश, अन्तिम 'प्रयाज-याज्या' स्विष्टकृत् एवं सूक्तवाक का 'निगद' ये निगद के चार बिन्दु है, श्रौ.को. (अं.) 1.976.

निगृह्य (नि+ग्रह्+ल्यप्) निम्न स्तर पर (नीचे की ओर) पकड़कर, का.श्रौ.सू. 4.14.13 (गोदुग्ध से युक्त अग्निहोत्र की करछुल=स्रुच को)।

निग्राभ पु. होता के पात्र में हिलते हुए सोम के डण्ढल (निग्राभम् उपैति), मा.श्रौ.सू. 2.3.4.3, होतृ-चमस में 'निग्राभ्या'-संज्ञक जल, मा.श्रौ.सू. 2.3.4.3; नीचे की ओर दबाने का

कृत्य भा.श्रौ.सू. 1.3.4.7; चि.भा.से. एक मन्त्र का नाम (तै.सं 1.4.1); स्त्री. होतृ-चमस में निहित 'वसतीवरी'-संज्ञक जल को 'निग्राभ्या' संज्ञक जल में परिवर्तित करने के लिए उसके (वसतीवरी के) ऊपर पठित, आप.श्रौ.सू. 12.9.1; बौ.श्रौ.सू. 7.5.

निग्राभ्या स्त्री. 'वसतीवरी' जल एवं होता (मैत्रावरुण) के पात्र में स्थित जल के मिश्रण का पारिभाषिक नाम, 'होतृचमसे वसतीवरीः कृत्वा यजमानाय प्रयच्छति निग्राभ्याः' का.श्रौ.सू. 9.3.11; उन्हें ऐसा इस लिए कहा जाता है क्योंकि छाती के पास उन्हें पकड़ने के समय 'निग्राभ्या स्थ' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 13.6.10. वि. (जल) इस प्रकार आहूत एवं होतृचमस में रखी हुई, जिसमें सोम की टहनयी भी डाली गई हैं, 'उपांशुग्रह' के लिए तीन बार विलोडित, आप.श्रौ.सू. 12.9.8. यह कृत्य 'निग्राभ्योपायन' कहलाता है, बौ.श्रौ.सू. 7.6; सवन के समय सोम की टहनियों पर छिड़कने के लिए प्रयुक्त, का.श्रौ.सू 9.4.16-17.

निग्राभ्या

निघ्न न. सूंघना, घ्राण (निघ्नेण भक्षयित्वा), साकमेध में अनुष्ठित महापितृयज्ञ, बौ.श्रौ.सू. 5.15:1.

निचृत् वि. (छन्दस् की नियमित संख्या वाले वर्णों में) एक या दो अक्षरों की न्यूनता, शां.श्रौ.सू. 7.27.27; एक सदोष (हीन) छन्दस् (मो.वि.)।

नितरा वि. (स्त्री.) (नि+तर+टाप्) (राजसन्दी से) कम ऊँचाई वाली भा.श्रौ.सू. 11.5.7।

नितंसयति (नि+तंस्+णिच् ल.प्र.पु.ए.व.) (वपा को) पकाता है, भा.श्रौ.सू. 7.15.4.

नितुन्नछन्दस् न. दमित छन्दस्, जै.ब्रा. III.194.

नितोद पु. (नि+तुद्+घञ्) एक छिद्र, एक छिद्र से चिह्नित करना, '.....नितोदं करोति', का.श्रौ.सू. 16.8.7 (नितोदं=गर्तादिरूपं चिह्नं भूमौ कुर्यात्); (चयन)।

नित्य न. (द्वि.व.) (नि+त्यप्) (इष्टकाओं के चयन के समय अनुष्ठित 'सादन' एवं 'सूददोहस्') के दो अवश्यकरणीय (नित्य) कृत्य, का.श्रौ.सू. 17.1.9 (चयन); आप.श्रौ.सू. 6.4.3.9; गार्हपत्य के बारे में इस अर्थ में कथित कि ('काम्य' और) नैमित्तिक कर्मों के विपरीत) इसका अनुरक्षण जीवन भर के लिए होता है, आप.श्रौ.सू. 6.2.12.

नित्यधृत वि. (नित्यं धृतः) सतत अनुरक्षित (अग्नि), मा.श्रौ.सू. 1.6.1.6; शां.श्रौ.सू. 2.17.6.

नित्यवत्सा स्त्री. (नित्यः वत्सः यस्याः सा) जीवित बछड़े वाली गाय, श्रौ.प.नि. 100.500.

नित्यसम्पन्न वि. (नित्यं सम्पन्नः) सतत रूप से नियमबद्ध (चतुर्थाः पथः) बौ.श्रौ.सू. 5.16.8 (त्र्यम्बकेष्टि)।

नित्याभावः पु. (नित्यस्य अभावः) ईष्टकाओं के चयन में 'सादन' एवं 'सूददोहस्' के अवश्यकरणीय कृत्यों का अभाव, का.श्रौ.सू. 17.2.2.

निदान न. (द्वि.व.) (नि+दा+ल्युट्) बन्धन-रज्जु, मा.श्रौ. 1.1.3.10; आप.श्रौ.सू. 1.11.5 (दर्श में गाय के पिछले पैरों को उसके खुर के पास बाँधने के लिए प्रयुक्त), 15.5.20 (प्रर्वग्य); द्रष्टव्य-'अभिधानी'।

निदाय (नि+दा+ल्यप्) वत्स (बछड़े) को पाशबद्ध करके, भा.श्रौ.सू. 11.9.9 (प्रर्वग्य)।

निदीयमाने वि. (सप्त.) (नि+दा+यक्+शानच्) (वत्स के) बाँधे जाते समय, मा.श्रौ.सू. 4.3.9.

निधन न. 1. घास के गट्ठरों का ढेर, आप.श्रौ.सू. 1.4.3; चि.भा.से. मुष्टियों की राशियों (मुष्टीनां राशयः) की निश्चित संख्या से युक्त घास का गट्ठर; 2. तीन गायनकर्ताओं द्वारा सौत्रामणी में किये गये गायन का एक प्रकार (तीन गायकः प्रस्तोता,

उद्गाता,एवं प्रतिहर्ता) वे चार हैं : संश्रवसे, विश्रवसे, सत्यश्रवसे एवं 'श्रवसे' यदि यजमान ब्राह्मण हो, श्रौ.को. (अं.) 1.936. इनका गायन 'वसाहोम' के समय किया जाता है; 3. अन्तिम (चरम), साम का पाँचवाँ एवं अन्तिम भाग, आप.श्रौ.सू. 13.20.4. भाष्य. इसमें उद्गारबोधक समाहित हैं, उदा. सात्, साम्, सुवा: इडा,वाक् एवं 'आ' 9 बहिष्पवमान ऋचाओं केलिए; 4. अन्तिम, भा.श्रौ.सू. 1.4.10.

निधनकाम न. सा.वे. 1.52 पर आधृत सामका नाम; पञ्च.ब्रा. 12.9.11; जो गृह की कामना वाला हो।

निधान न. (नि+धा+ल्युट्) भस्मीकृत हड्डियाँ जिस 'घट' में रखी हो, उसे एक टीले (श्मशान) पर रखना, 'निधानं च तुष्णीम्', का.श्रौ.सू. 25.8.8.

निनयन न. (नि+नी+ल्युट्) जल को उड़ेलना, श्रौ.प.नि. 32.267-68.

निनर्द पु. (नि+नर्द्+अप्) ऋचा के तृतीय पाद के द्वितीय अक्षर का 'उदात्त' में उच्चारण करने की एक प्रविधि, पहला अक्षर 'अनुदात्त' होता है। 'ओ' की चार बार इस प्रकार आवृत्ति की जाती है कि यह प्रारम्भ में वृद्धीकत एवं उदात्त रहे, उसके बाद अनुदात्त, और 'अनुदात्ततर' में और अन्तत: उदात्त एवं वृद्धीकृत रहे; आश्व. श्रौ.सू. 7.11.11; इस प्रकार 'यज्ञ 0300000 ओ 300000 ओ 3000 यस्तीर्ण-बर्हिषे वि वो' एवं 'मद् 03 03 03 शीरं पावक शोचिषं विवक्ष 03म्'; द्रष्टव्य काशिकर- पृ. 101.

निनर्दत् वि. (निनर्द्+शतृ)गायन में निनर्द प्रविधि का अनुसरण करते हुए, श्रौ.को. (सं.) II.284; द्रष्टव्य-द्रा.श्रौ.सू. 21.4.2.

निनाह्य पु.पानी का हौज अथवा घट, का.श्रौ.सू. 8.9.7 (अस्तमितश्चेन्निनाह्यात्पुरेजानश्चेत्); (जिसने अतीत में कभी सोम-याग का अनुष्ठान किया हो, उसके लिए इसमें से 'वसतीवरी' को लिया जाता है); चि.भा.से. जल को शीतल रखने के लिए भूमि में गाड़ा गया मिट्टी का जल-कुम्भ (पानी का घड़ा)।

निपरण न. (नि+पॄ+ल्युट्) मृत सम्बन्धियों को चावल अर्पित करना, आश्व.गृ.सू. 4.8.13 पर भाष्य; पूर्व-पुरुषों (पुरखों) को चावल का पिण्ड अर्पित करना (मो.वि.)।

निमुष्टि स्त्री. पितृमेध में 'चिति' की एक माप का नाम, श्रौ.को.(अं.) 1.1107.

निमृद् 'शामित्र' अग्नि की स्थापना के लिए अंगारे (उल्मुक) को कुचलना,भा.श्रौ.सू. 7.12.13.

निम्न न. (नि+म्ना+क, आतश्चोपसर्गे, पा. 3.1.136.) (उबाले हुए चावल में) एक छेद, आप.श्रौ.सू. 8.11.2.

नियत न. (नि+यम्+क्त) एक अवश्यकरणीय कृत्य, का.श्रौ.सू. 1.2.14 (नियतसहपाठात्)।

नियम पु. बाध्यता का.श्रौ.सू. 16.1.2.

नियुत्वती स्त्री. 'भुवो यज्ञस्य.....' ऋ.वे. 10.8.6, इस ऋचा का नाम। यह केवल प्रकृति 'इष्टि' की याज्या के रूप में विहित है, श्रौ.को. (अं.) 1.544; अपि द्रष्टव्य ऋ.वे. 7.91.3:7 92.3:5.

नियोजन न. (नि+युज्+ल्युट्) एक मन्त्र के साथ पशु को यज्ञीय यूप में बाँधना, आप.श्रौ.सू.सू. 7.12.9 (पशु.)।

नियोजनी स्त्री. (नियोजन+ङीप्) वह रस्सी जिससे बलि के रूप में प्रदेय (वध्य) पशु को (यूप में) बाँधा जाता है,का.श्रौ.सू. 6.5.25 ('वपाश्रपणीभ्यां नियोजनीं चात्वाले प्रास्यति.....', नियोजनीं-पशुबन्धनरज्जुम्)।

निरञ्छन न. (निर्+अञ्छ्+ल्युट्) (एक आयत बनाने के लिए रस्सीपर चिह्न बनाना), का.शु.सू.1.12 (प्रमाणमभ्यस्या-भ्यासचतुर्थे लक्षणं करोति तन्निरञ्छनम्); 14; 7.33= 'निराञ्छन'।

निरवत्ता वि. (निर्+अव्+दो+क्त+टाप्) खण्डों में न काटी गई इडा, का.श्रौ.सू. 9.9.10 (नितरामवत्ता निरवत्ता, स.वृ.) (सोम याग में अर्पित की गयी इडा)।

निरसन न. (निर्+असु क्षेपे+ल्युट्) (दर्भ-आसन से घास के पत्र को दक्षिण की तरफ) फेंकना, आश्व.श्रौ.सू.1.3.32 (उसके बाद 'उपवेषण' होता है); श्रौ.प.नि. 27.220-221. घास के पत्र को फेंकते समय पढ़े जाने वाले मन्त्र को भी 'निरसन' कहते हैं।

निरस्तम् क्रि.वि. (निर्+अस्+क्त+अम्) घटाया जाता हुआ, बौ.शु.सू.1.51.

निराकाङ्क्ष वि. (निष्क्रान्ता आकाङ्क्षा यस्मात्) आकांक्षारहित, का.श्रौ.सू. 1.3.2 (तेषां वाक्यं निराकाङ्क्षम्)।

निराञ्छन न. (खूंटी एवं रस्सी के मध्य के बीच में आधे भाग पर निर्मित) चिह्न, मा.श्रौ.सू. 10.1.1.11; द्रष्टव्य-निरच्छन।

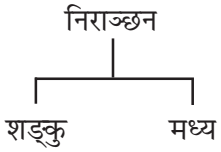

निराञ्छन

निरुक्तम् क्रि.वि. (निर्+वच्+क्त+अमु) प्रजापति को सम्बोन्धित करते समय,श्रौ.को. (सं.) II. 287

निरूढपशुबन्ध पु. एक पशु-यज्ञ, ब्राह्मण ग्रन्थों में विहित स्वतन्त्र कर्म के रूपमें सूत्रकारों द्वारा पुनारचित (पुनर्निर्मित); निरुढपशुबन्ध उन सभी वैकल्पिक पशुयागों की प्रकृति के रूप में मान्य है, जिनका अनुष्ठान प्रत्येक छः मास अथवा वर्ष में एक बार किया जाता है, का.श्रौ.सू.6.1.1 और एक अथवा दो दिन का होता है, आप.श्रौ.सू. 7.6.3, इसमें छः ऋत्विज् कार्य-निर्वाह करते हैं; चार इष्टि के एवं दो अतिरिक्त, अर्थात् प्रतिप्रस्थास्तृ एवं मैत्रावरुण। वरुणप्रघासवत् इसके अनुष्ठान के लिए भी उत्तरवेदि का निर्माण किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.3.7-9; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (अं.) .710-876.

निरूह्य (निर्+वह् (ऊह्?)+ल्यप्) (अग्नि का) आहरण करके या इसे बगल करके, आप.श्रौ.सू.1.12.1.

निर्णाम पु. (निर्+नम्+घञ्) (पक्षी के पक्ष) का झुकाव, बौ.शु. 4.22; (चयन की गयी वेदि के पक्ष का झुकाव), 4.23.

निर्णेनेक्ति (निर्+णिजिर्शौचे+लट् प्र.पु.ए.व.) पात्र से जल बाहर निकालता है, भा.श्रौ.सू. 5.3.8.

निर्जीहीर्षत् वि. (निर्+हृ+सन्+शतृ) घटाने की इच्छा करता हुआ, बौ.शु.सू.1.51.

निर्दहन्ती स्त्री. (निर्+दह्+शतृ+ङीप्) 'आङ्गिरस' द्रव्यों में एक का नाम, जिससे अग्न्याधान के समय 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विक् प्रसादात्मक अथवा प्रायश्चित्तिक जल तैयार करता है, श्रौ.को. (अं.) 1.37. इस जल का उपयोग उस अश्व को धोने एवं उस पर छिड़काव करने के लिया किया जाता है, जिसके खुर का चिह्न आहवनीय-अग्नि-स्थान में अंकित करना होता है (अग्न्याधेय में)।

निर्देश पु. (निर्+दिश्+घञ्) विधान अथवा निर्देश, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.8; संकेत, 2.1.1.12.

निर्धयत् वि. (निर्+धेट् पाने+शतृ) चूसता हुआ, पीता हुआ, मा.श्रौ.सू. 5.2.2.9.

निर्बाध पु. मूठ, उभार ('रुक्म'-संज्ञक आभूषण का) मा.श्रौ.सू. 6.1.4.1 (चयन); हटाना।

निर्मन्थ्य पु. (निर्मन्थ+यत्) मन्थन से उत्पन्न अग्नि, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.38; आप.श्रौ.सू. 10.31.12; श्रौ.को. (सं.) II.547.

निर्मुक्ते (सूर्ये) वि. (सप्त.) (निर्+मुच) सूर्य के अस्त हो जाने पर, भा.श्रौ.सू. 4.3.8.

निर्लेढ्य (नि+लिढ्=नि+लिह्+ल्यप्) (अग्निहोत्र के हविश्शेष को) चाटकर, का.श्रौ.सू. 4.14.27 (उत्सृप्य निर्लेढ्याचम्योत्सिञ्चति.....) मेरे मतानुसार 'निलेढ्य+आचम्य' इस प्रकार सन्धि-विच्छेद की अपेक्षा 'निर्लेढि+आचम्य' इस रूप में करना अधिक उपयुक्त होगा। तब इसका अर्थ होगा 'चाटकर'।

निर्लेहन न. (निर्+लिह्+ल्युट्) करहुल (स्रुच्) में चिपके हुए यज्ञीय अवशेष (लेप) को चाटने का कृत्य, अध्वर्यु द्वारा दो बार किया जाता है, आप.श्रौ.सू.6.11.5; 6.12.2; बौ.श्रौ.सू.3.6 (अग्निहोत्र)।

निर्वचन न. (निर्+वच्+ल्युट्) कामनाओं का वाणी के द्वारा प्रकटीकरण (निर्वचनमाशिषाम्), शां.श्रौ.सू.6.1.23.

निर्वपति (निर्+वप्+लट्+तिप्) (आठ कपालों पर पकाया गया पुरोडाश अग्नि को) अर्पित करता है, शां.श्रौ.सू. 14.2.17

निर्वपन न. (निर्+वप्+ल्युट्) (इष्टियों में) गाड़ी से एक थाली में अनाज को लाने का प्रतीकात्मक कृत्य, उन अनाजों को दूसरे कटोरे में उड़ेलना इत्यादि, 'निर्वपन' क्रिया अध्वर्यु-कर्तृक है, आप.श्रौ.सू. 1.7.7. (दर्श), घृत का भी (निर्वपन), 2.6.1; वपा एवं दुग्ध का, 7.8.7; एक इष्टि का अनुष्ठान, मी.सू. 3.1.7.

निर्वाप पु. (निर्+वप्+घञ्) अनाज के दानों के एक अंश को बड़े पात्र से छोटे पात्र में निकालना या निकालकर रखना (बाद में उसे पछोरते हैं, भूनते हैं, पीसते हैं एवं पुरोडाश तैयार करने के लिए इसको घी से मिश्रित कर पकाते हैं), आप.श्रौ.सू. 1.17.10 (आधेय; देवतार्थत्वेन पृथक्करणम्, भाष्य); हि.आ.ध. II.(2) 1023; सोमसवन के समय पुरोडाश-आहुति (सवनीय पुरोडाश), आप.श्रौ.सू. 12.4.4., श्रौत.प.नि. 15.109; द्रष्टव्य

निर्व्रस्क पु. (निर्गतः व्रस्कः यस्मात्) एक स्थान, जहाँ से किसी वृक्ष (की जड़ें) इसकी खाल को उतार कर उखाड़

दी गई हैं, आप.श्रौ.सू. 10.20.6-7 (इस प्रकार का स्थान 'अभिचार' के अनुष्ठान के लिए बहुत उपयोगी होता है)।

निर्हरेत् (निर्+हृ+वि.प्र.पु.ए.व.) रखना चाहिए, बौ.शु.सू. 1.44.

निर्हार पु. (निर्+हृ+घञ्) सञ्चय, उद्धरण, उधार लेना, मा.श्रौ.सू. 5.2.7.1 (राजसूयात् काम्यानां निर्हारः); घटाना, बौ.शु.सू. 1.54.

निवपन न. (नि+वप्+ल्युट्) सोम-क्रयण के समय उत्तर वेदि के लिए चुनी गई भूमि के ऊपर रखे गये लाल वर्ण के बैल के चर्म पर अथवा उपरव पर सोम टहनियों को पलटना (उड़ेलना), आप.श्रौ.सू. 10.10.13; प्रयाणीय में, भा.श्रौ.सू. 10.14.7; किसी गर्त में मृत व्यक्ति की अस्थियों को गाड़ने का कृत्य भी, भा.पि.मे. 1.10.1-2; -**मन्त्र**- चयन के लिए, -**धिष्ण्य**, भा.श्रौ.सू. 13.17.18; तै.सं. 1.3.3.1.

निवर्तन न. (नि+वृत्+ल्युट्) शिर मुड़ाना, आप.श्रौ.सू. 8.19.9; यजमान द्वारा कर्म की समाप्ति के पश्चात् लौटने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 8.11.18; द्रष्टव्य-भा.श्रौ.सू. 8.4.12-17.

निविद् स्त्री. (निवेद्यतेऽनया, नि+विद्+क्विप्) दर्शपूर्णमास में 'प्रवर' का नाम लेने के बाद पढ़ा जाने वाला गद्यमय मन्त्र, श्रौ.को. (अं.) 1.342. अध्वर्यु द्वारा 'प्र मे ब्रूत भागधेयम.....' इस मन्त्र से देवताओं की स्तुति किये जाने के बाद उसको (अध्वर्यु को) करछुल ग्रहण कराने के सम्बद्ध में उसे 'अग्निर्होता' से प्रारम्भ होने वाली 'निविद्' का पाठ करना चाहिए, शां.श्रौ.सू. 21.1-2. 'निविदध्याय' संज्ञक पाठ्य (ग्रन्थ) में इस प्रकार के पाठों को एक स्थान पर संग्रहीत किया गया है. चि.भा.से. छोटे मन्त्र, जिनमें 12 उपवाक्य हों (ऐ.ब्रा.10.2), उस शस्त्र (जिसके ये अङ्ग हों) के मध्य अथवा अन्त में, इनका पाठ माध्यन्दिन अथवा तृतीय सवन में किया जाता है। ये सम्बद्ध देवताओं के नाम की घोषणा करते हैं और 'तुष्णींशंस' के पश्चात् ज़ोर से दुहराये जाते हैं, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.12; इन्हें 'पुरोरुच्' भी कहते हैं, हि.आ.ध. II (2)-1180; द्रष्टव्य- 'अग्न्युपस्थान' के मन्त्र, गोंड जे., 1978, पृ. 112.

निविद्धानीय वि. (निविद्धीयते अस्मिन्, धा+अनीयर्) (वह सूक्त) जिसमें निविद् अन्तर्निविष्ट होते हैं अथवा परिशिष्ट के रूप में जोड़े जाते हैं, शां.श्रौ.सू. 12.8.6.9; ऋ. 1.165; द्रष्टव्य-श्रौ.को.(सं.) II.383 ऋ.वे. 1.73 के सन्दर्भ में।

निवीत न. (नि+व्ये+क्त) गर्दन पर अथवा उसके चारों ओर जनेऊ पहनना (जनेऊ धारण करना), आप.श्रौ.सू. 8.16.18; द्रष्टव्य-उपवीत, श्रौ.प.नि. 21.174.

निवेष्या वि. (स्त्री.) भँवर युक्त तालाब (नदी आदि) से उद्धृत जल, का.श्रौ.सू. 15.4.32 (राजसूय)।

निव्ययते (नि+व्ये लट्.पु.प्र.ए.व.) गर्दन पर जनेऊ (पवित्र धागा) रखे रहता है, भा.श्रौ.सू. 8.21.14 (पितृयज्ञ)।

निश्रयणी स्त्री. (नि+श्रि+ल्युट्+ङीप्) सीढ़ी, 'सोपान पंक्ति निश्रयणीं यूप उच्छ्रयति दक्षिणां वा', का.श्रौ.सू. 14.5.5 (दारुनिर्मिता सोपानपङ्क्तिर्निश्रयणी, स.वृ.); (वाजपेय); यज्ञीय स्तम्भ पर चढ़ने के लिए, आप.श्रौ.सू. 18.5.13.

निषाद पु. एक जाति का नाम, यदि यजमान 'निषाद' जाति का हो, तो अध्वर्यु को उसके 'प्रवरों' का नाम उन ऋषियों के नाम की तरह बोलना चाहिए, जिनके नाम वह (यजमान) इंगित करता है, श्रौ.को. (अं.) 1.336 (दर्श); एक निषाद-मुख्य (निषादस्थपति) पकाये गये गवेधुका के अन्न की आहुति (का.श्रौ.सू. 1.12) 'लौकिकाग्नि' में देने के लिए अधिकृत है।

निषेध न. सा.वे. 1.514 पर आधृत एक साम का नाम; पञ्च.ब्रा. 15.9.11.

निष्क न. भार की एक माप (=चार कृष्णल), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.6; गले में पहना जाने वाला सोने का आभूषण, ऋ.वे. 7.33.10, जिसे अध्वर्यु यजमान के गले में पहनाता है, 'निष्कं प्रतिमुञ्चन् वाचयति.....' (अश्वमेध); चाँदी का आभूषण, 22.4.16 (व्रात्यस्तोम); द्रष्टव्य-अल्तेकर ए.एस; INSI 15 (1), बनारस 1-26

निष्कास पु. (निस्+कास्+घञ्) (दही) निकालना, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.7; कड़ाही से आज्य (निकालना); 'तुष' से मिश्रित कर वरुण को दी आहुति जाती है, आप.श्रौ.सू. 8.7.14 (चातुर्मास्य); 13.20.7 (सोम) आमिक्षा (छेना) को निकालना, भा.श्रौ.सू. 8.11.10 (वरुण प्रघास में वरुण के लिए 'एककपाल' का स्थान ग्रहण करता है); द्रष्टव्य-अनिष्कासिन्; वि. एक चम्मच जिसमें पूर्ववर्ती आहरण-दण्ड का कोई अवशेष नहीं चिपका है, आप.श्रौ.सू. 2.7.2 (=शेष, भाष्य)।

निष्कृत न. (निस्+कृ+क्त) एक सोम पात्र, ऋ.वे. 9.86.7.

निष्कृति स्त्री. (निस्+कृ+क्तिन्) प्रायश्चित्त, जै.ब्रा. I.43.

निष्केवल्य न. ऋ.वे. की ऋचाओं से युक्त (शस्त्र), इस शस्त्र का पाठ 'होता' करता है (माध्यन्दिन सवन में द्वितीय 'पृष्ठ-शस्त्र', आश्व.श्रौ.सू. 5.15.1; तृतीय का पाठ मैत्रावरुण, चतुर्थ का ब्राह्मणच्छंसी और पञ्चम का पाठ अच्छावाक करता है), 5.16.1-2; शां.श्रौ.सू. 7.22.1-5; श्रौ.को.(सं.) II.393-97.

निष्क्रयण न. (निस्+क्री+ल्युट्) छुटकारे के कृत्य, जिसमें यजमान ऋत्विजों को अपने मस्तिष्क, आखों आदि का दान करता है और उन्हें पुनः स्वेच्छा से दक्षिणा के रूप में कीमत देकर वापस खरीद लेता है, अर्थात् उन अंगों के मूल्य की कीमत के रूप में दक्षिणा देकर उन पर पुनः अपना स्वत्व स्थापित करता है, आप.श्रौ.सू. 13.6.4-5.

निष्क्रीडयन्ति (निस्+क्रीड्+णिच्+लट् प्र.पु.ब.व.) खेलते हैं, अभिषुण्वन्ति.....सद्धिनयन्ति सम्भरणीये निष्क्रीडयन्ति, बौ.श्रौ.सू. 8.1:14.

निष्टर्क्य वि. (निस्+तर्क्+क्यप्, छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूय. पा. 3.1.123) विलेय, खोलने के लिए सरल (निष्टर्क्यं ग्रन्थिं कृत्वा), भा.श्रौ.सू. 2.5.4

निष्टर्क्यम् क्रि.वि. ('बध्वा' 'बाँधने' के पश्चात्) सरलता से खुलने वाली ग्रन्थि के साथ, भा.श्रौ.सू. 10.14.18; 2.5.4.

निष्णात वि. (नि+स्ना+क्त) पवित्रीकृत, शुद्धीकृत (प्रवर्ग्यपात्राणि), मा.श्रौ.सू. 4.1.21.

निष्पवण न. (निस्+पू+ल्युट्) शुद्धीकरण का कृत्य, अर्थात् यज्ञीय अन्न को सूप (शूर्प) से पछोरना, भा.श्रौ.सू. 13.18.10; इससे सम्बद्ध मन्त्र-'निष्पवण मन्त्र' वही।

निष्पवन न. (निस्+पू+ल्युट्) पछोर कर भूसी को साफ करना, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.9; **-मन्त्र,** भा.श्रौ.सू.13.18.10

निष्पुनाति (निस्+पू+लट् प्र.पु.ए.व.) (सूप से पछोरते हुए) भूसी को अलग करता है, 'परापूतमिति निष्पुनाति', का.श्रौ.सू. 2.4.18.

निष्यन्दनवत् वि. (नि+स्यद्+ल्युट्+मतुप्) बहिःप्रवाह (के लिए रास्ते) से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 9.5 (प्रर्वग्य में उच्छिष्ट खर); बाहर की तरफ उन्मुख, तुल. 14.26.

निःसारण न. (निस्+सृ+णिच्+ल्युट्) जल को निकालना अर्थात् बहने देना (वरुणप्रघास में), मा.श्रौ.सू. 1.8.1.20.

निस्तिष्ठति (निस्+स्था+लट् प्र.पु.ए.व.) निश्चेष्ट खड़ा रहता है (द्वारबाहु), बौ.श्रौ.सू. 6.27.

निहत न. (नि+हन्+क्त) निम्न स्वर, निघात (निहते शेषमुक्त्वा), मा.श्रौ.सू. 5.2.8.6.

निहव न. सा.वे. 1.3.13 पर आधृत एक साम, पञ्च.ब्रा. 5.8.2.

निह्नव पु. (नि+ह्नु+अप्) 'आप्यायन' के पश्चात् सभी ऋत्विज् एवं यजमान एक-एक करके श्रद्धाञ्जलि के रूप अपने वाम हस्त को नीचे रखते हुए, दाहिने हाथ को 'प्रस्तर'-संज्ञक घास के गुच्छ पर रखते हैं। यह कर्म आप.श्रौ.सू. 11.1.12 एवं का.श्रौ.सू. 8.2.9 (दक्षिणो वोत्तानः। सव्यो नीच एव। निह्नवश्च प्रस्तरे पाण्योः करणम्, स.वृ.) के अनुसार निह्नव कहलाता है। यह एक प्रकार का स्वर्ग एवं पृथिवी को प्रणाम है, II(II) 1147); [निह्नवो नाम नमस्कार-आप.श्रौ.सू. पर भाष्य]; =निह्नव; ऋत्विजों द्वारा की जाने वाली क्षमा-याच्ञा, भा.श्रौ.सू. 12.1.10; संशोधन करते हुये, मा.श्रौ.सूं 2.2.1.13; अपना हाथ जोड़कर श्रद्धाञ्जलि देना, आप.श्रौ.सू. 11.1.12 (स. नमस्काराञ्जलिकरणं निह्नवः)।

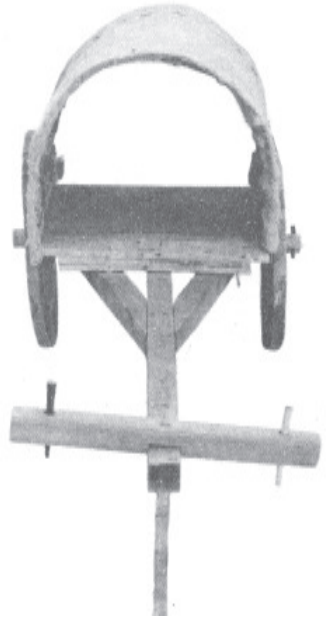

नीड

नीड (पु.) न. गाड़ी का सुदूर अथवा पिछला भाग, जिस पर सोम की टहनियां लादी जाती हैं, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.19 (सोम); बौ.श्रौ.सू. 6.28; भा.श्रौ.सू. 10.19.3.

नीतवती स्त्री. (नीत+मतुप्+ङीप्) 'अग्ने नय सुपथा राये....' ऋ.वे. 1.189.1 यह ऋचा; श्रौ.को. (सं.) II.47

नीथ पु. पवित्र कहानियों का वर्ग, भा.श्रौ.सू. 5.4.2 (आधान)।

नीलवलक्ष न. (नीलं च तद् वलक्षम् च) काला एवं श्वेत (अज-चर्म), मा.श्रौ.सू. 9.3.3.3 (व्रात्यस्तोम)।

नीवीं कृ (अधो-वस्त्र में) एक गाँठ बनाना (ताकि यह शरीर पर कसा रहे), मा.श्रौ.सू. 2.1.1.32 (गेल्डर-सम्भभवत: वह परिधान के छोर को करधनी में डाल देता है); द्रष्टव्य- भा.श्रौ.सू. 10.4.4; Derett भी, VIJ 17 (3-4), 1974, पृ. 89-95.

नृ-नर पु. (नर=नृ+अच्) एक मनुष्य=पुरुष, एक माप, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.4=120 अंगुल।

नेदिष्ठ वि. (अन्तिक+ इष्ठन्, अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ, पा. 5.3.63) निकटतम सम्बन्धी, जै.ब्रा. I.200.

नेमि स्त्री. (रथ की) हाल, बौ.शु.सू. 5.21.

नेष्ट पु. जो नेतृत्व करता है। अध्वर्यु का सहायक ऋत्विज्। वह यजमान पत्नी के आगे-आगे चलता है, और 'सुरा' तैयार करता है, आप.श्रौ.सू. 12.5.2 (सोम)। उसके पास एक धिष्ण्या होती है और वह सवन में भाग लेता है, आप.श्रौ.सू. 12.12.2; -**0चमस**।

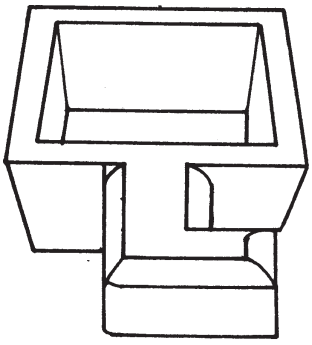

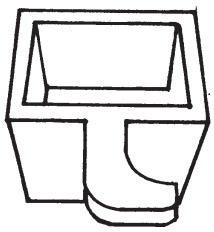

नेष्टृचमस

नैर्ऋती स्त्री. (निर्ऋति+अण्+ङीप्) जोड़ी गई वेदि के दक्षिण पश्चिम के ओर लगाई जाने वाली ईंटें। ये काले वर्ण वाली होती हैं एवं भूसी की आग में पकायी जाती हैं एवं प्राकृतिक गड्ढे (प्रदर) में फेंकी हुई रस्सी (शिक्या) पर रख दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 16.15.8; शिक्या पर इन्हें जाल से ढक दिया जाता है; इनकी संख्या तीन होती है और इनके ऊपर कोई चिह्न नहीं होता है, 17.1.24.

नैवार वि. (निवारस्य विकार:, निवार+अण्) नीवार अर्थात् वन्य चावल से निर्मित (वाजपेय में माध्यन्दिन सवन में बृहस्पति के लिए आहुति के रूप में प्रदान किया जाने वाला चरु; चात्वाल के भीतर आहित 'इडा'), मा.श्रौ.सू. 7.1.2.10; का.श्रौ.सू. 15.4.9 (देवसू-हवींषि)।

नैवारगोप पु. एक पुरोहित का नाम (जो सुरा-ग्रह-शेष का उपभोग करता है), आप.श्रौ.सू. 18.7.9.

नौधस न. एक साम का नाम, जिसका गायन माध्यन्दिन-सवन के समय 'ब्राह्मणाच्छसी' के लिए स्तोत्र के लिए (यदि रथन्तर पृष्ठ हो तो) किया जाता है, शां.श्रौ.सू. 7.23; सा.वे. 1.236 पर आधृत; पञ्च.ब्रा. 7.10.2;द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.403.

न्यङ्ग न. (निकृष्टम् अङ्गम्) बेकार अथवा अनुपयोगी अंग, आप.श्रौ.सू. 1.21.2.

न्यचति (नि+अच्+लट् प्र.पु.ए.व.) वक्रतापूर्ण आहुति देता है; स्वधा पितृभ्य इति न्यचति, बौ.श्रौ.सू. 6.31.

न्यञ्छन न. (नि+अच्छ्+ल्युट्) एक समकोण का निर्माण करने के लिए एक रस्सी पर चिह्न, बौ.शु.सू. 1.33.

न्यन्त पु. 'उपरव' संज्ञक छिद्र के समीप का स्थान, आप.श्रौ.सू. 11.11.8. (उदुप्य उपरवन्यन्ते अवबाधते; स. बिलसमीपदेशं हस्तेन अपपीडयति)।

न्यन्ते क्रि.वि. (उनके स्व-स्व पात्रों के) बगल भूमि पर, भा.श्रौ.सू. 14.12.1

न्याय्य वि. (न्याय+यत्,न्यायादनपेतम्) उचित, भा.श्रौ.सू. 1.1.1.6; द्रा.श्रौ.सू. 18.4.5; मानक के रूप में स्वीकृत, 16.1.13; 18.3.16.

न्याय्यप्रतिहार वि. (न्यायादनपेत: परिहार: यस्मिन् यस्य वा) साम के मानक 'प्रतिहार विभक्ति' से युक्त, ला.श्रौ.सू. 6.11.3.

न्युद्य (नि+उन्दी+ल्यप्) जलसे गीला करके, मा.श्रौ.सू. 9.2.1.15.

न्युब्जा वि. (स्त्री.) उपर का भाग नीचे, 'देवानां त्वेत्युखां न्युब्जाम्' का.श्रौ.सू. 16.4.11.

न्यूङ्ख ऋचाओं के पाठ का एक विशिष्ट प्रकार। साधारणत: वैदिक कर्मकाण्ड में मन्त्रों का उच्चारण एक स्वर में किया जाता है।'न्यूङ्ख' इसका अपवाद है (का.श्रौ.सू. 1.8.19); शां.श्रौ.सू. 10.5.19; 10.5.10 के अनुसार'न्यूङ्ख''अनुष्टुप्' से सम्बद्ध है (इसका प्रयोग) मध्य-ऋक्पाद के द्वितीय एवं सप्तम अक्षर के मध्य में (होना चाहिए) : दो बार पहली (बार) एवं दो बार अन्तिम (बार); द्रष्टव्य - 10.5.1 भी; यह गायनकर्ताओं के 'अनुतोद' के समानान्तर चलता है, पञ्च.ब्रा. 20.10.1; 'पृष्ठ्य षडह' के चौथे दिन (होता द्वारा गेय) 'प्रातरनुवाक' के प्रत्येक अर्धच के द्वितीय (वर्ण) का 'ओ' के द्वारा उस स्वर के स्थानापन्न के रूप में परिवर्तन, उदा. आपो 300000, 0- 300000, 0 3000, आप.श्रौ.सू. 21.7.2; विस्तार के लिए द्रष्टव्य - आश्व.श्रौ.सू. 7.11.1-8; 'निनर्द' भी एतत्सदृश संध्वनि है। ये 'ओ' ध्वनियाँ संख्या में 16 हैं एवं इनका पाठ 'एकश्रुति' (स्वर) में नहीं होता, न्यूङ्खा ओकारा षोडश तेषु केचिदुदात्ता: केचिदनुदात्ता: काशिका, पा. 1.2.34 पर; इसका उत्तर (प्रतिगर) एवं निनर्द है - ओ 300000 ओ 300000 ओ 30000 मदेथमदैवो 30 30 30 3 मोथामो दैवोम, द्रष्टव्य - अग्न्युपस्थान, गोंड जें, 1978; पृ. 112 किसी अर्धर्च के द्वितीय अक्षर, आदि के स्वर का 'ओ' में परिर्वतन।

न्यूङ्ख्य वि. (वह दिन) जिस पर न्यूङ्ख का पाठ होता है, आप.श्रौ.सू. 21.7.13 (द्वादशाह का चतुर्थ एवं षष्ठ दिन)।

प

पक्ष पु. 1. दोनों तरफ के पक्ष (भुजायें), चित वेदि के उत्तर एवं दक्षिण-प्रत्येक आयताकार। एक पुरुष में एक अरत्नि की वृद्धि कर दक्षिणी पक्ष के लिए दक्षिण की ओर एवं उत्तरी पक्ष के लिए उत्तर की ओर, का.श्रौ.सू. 16.8.18.18; 16.17.10,12; द्रष्टव्य इग्गिलग, श.ब्रा. XLi.419 (चयन) 2. सोम-शकट के पक्ष, आश्व.श्रौ.सू. 4.4.4; 3. पक्ष (पार्श्व) का.श्रौ.सू. 24.4.26 (पक्षादौ यद्यद्धविस्तत्सर्वस्मिन्)।

पक्षमध्या स्त्री. एक प्रकार की ईंट।

पक्षस् न. (द्वि.व.) रथ के दो पक्ष (बगल का भाग), आप.श्रौ.सू. 18.4.6; वर्ष का प्रथम (अनुभाग, संविभाग), शां.श्रौ.सू. 13.29.11 (सारस्वतानाम् अयनम्); निदा.सू. 5.9.12।

पक्षाग्र्या स्त्री. एक प्रकार की ईंट, काशिकर, इण्डेक्स I।

पक्षिसामन् न. एक साम का नाम, निदा.सू. 7.9 : 22।

पक्ष्मन् न. (पक्ष् + मन्) कण, तत्त्व, आप.श्रौ.सू. 19.5.7 (कौकिली सौत्रामणी) तालव, कौशेयसूत्रेण पक्ष्मणा उपलिप्तेन; धू. पक्ष्मवता; आँख के प्रसंग में बरौनी।

पक्ष्या स्त्री. (पक्ष + यत् + टाप्) चित अग्निवेदि के पार्श्व में लगी हुई ईंटों का नाम, काशिकर 277 शब्द सूची।

पङ्क्ति स्त्री. एक छन्दस् का नाम, जिसमें पाँच पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं (ऋ. वे. 5.75), श्रौ.को.(सं) II 239.

—**छन्दस्** न. पङ्क्ति छन्दस्, आप.श्रौ.सू. 14.4.11; मा. श्रौ.सू. 2.5.3.26; द्रष्टव्य 'पङ्क्ति'।

—**पावन** वि. (पंक्तौ भौजनादिगोष्ठ्यां पावनाः, जगद्धर;) (जो) योग्य ब्राह्मणों की श्रेणी में समाहित किये जाने के लिए पवित्र माना जाता है, कौ.गृ.सू. 3.12.29; द्रष्टव्य म.स्मृ. 3.183, 84, 86।

पंक्तिशंसम् क्रि.वि. पंक्तिशः पाठकरना (पंक्तिशंसं पराः), कैलण्ड के अनुसार सम्भवतः इसका अर्थ है-वह प्रत्येक पाद के बाद यति (विराम) एवं प्रत्येक दो पाद के बाद 'प्रणव' अथवा 'पंक्तिशंसम्' करता है; संक्षिप्ततया 7.26.3 का सन्दर्भ; पंक्ति ऋचाओं में वह प्रत्येक ऋक्पाद के बाद यति करता है, एवं पाँचवें (पाद) के साथ प्रणव लगाता है (टिप्पणी : 5x8 अक्षरों की ऋचायें, उदा. ऋ.वे. 1.29; तु. शां.श्रौ.सू. 10.6.3; तुल. आश्व.श्रौ.सू. 5.14.11)

पङ्क्त्युदयना स्त्री (बहु.व.) पंक्तिछन्दस्का ऋचा में समाप्त होने वाली, आप.श्रौ.सू. 17.10.5 (चयन)।

पचन (पच् + ल्युट्) न. 1 ईंधन (अवटं खानयति) तं पचनेनावस्तीर्य महावीरानायातयति), बौ.श्रौ.सू. 9.3.30;32; 2. सेंकने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 4.1.21 (महावीर)।

पच्छस् क्रि.वि. पादशः (अध्वर्यु के पवित्रों से आटे को पवित्र करते समय गायत्री ऋचा का पाठ करना होता है), भा.श्रौ.सू. 1.25.1 (दर्श); सावित्री के वाचन की एक प्रविधि (तै.सं. 1.5.6.4), यह वाचन आचार्य द्वारा किया जाता है, जो इसको उपनयन के समय पढ़ता है; पादशः (एक-एक पाद करके), जिसके पूर्व अथवा पश्चात् 'व्याहृतियों' का उच्चारण किया जाता है (इसका 'अर्धर्चशः' से यही वैशिष्ट्य है), आप.गृ.सू. 11-10।

पञ्चकपाल वि. (पञ्चसु कपालेषु संस्स्कृतः) (अग्नि को प्रदेय) पाँच कपालों पर संस्कृत किया गया = पकाया गया (पुरोडाश), 'आग्नेयः पञ्चकपालः-----', का.श्रौ.सू. 4.11.9 (पुनराधेय); आप.श्रौ.सू. 5.28.1; शां.श्रौ.सू. 8.13.5, भा.श्रौ.सू. 14.26.1,2।

पञ्चकस्पर्शन न. (पञ्चकानां स्पर्शनम्) (अध्वर्यु द्वारा) पाँच वस्तुओं का स्पर्शः आग्नीध्रीय मण्डप, हविर्धान-शाला, सोम के प्याले, एवं पानपात्र (चमस) एवं पाँचवे के रूप में सदस्-शाला (पशुयाग में), श्रौ.प.नि. 257-229।

पञ्चकोणा स्त्री. (पञ्च कोणाः यस्याः सा) पाँच कोणों वाली इष्टका (ईंट) का नाम, मा.श्रौ.सू. 10.3.5.21; 10.3.7.8।

पञ्चगव्य न. (पञ्चानां गोविकाराणां समाहारः) गाय के पाँच उत्पादः मूत्र, दुग्ध, गाय का गोबर (गोमय), खट्टा-दूध (दही) एवं घी, अग्निवे.गृ.सू. 2.7.7:5; हि. आ.ध. II.2.7.7.4।

पञ्चगृहीत वि. (पञ्चवारं गृहीतम्) पाँच बार निकाला गया घृत (आज्य.) (वरुणप्रघास में 'अग्नि-प्रणयन' के पश्चात् उत्तरवेदि की नाभि पर आहुति देने के लिए), का.श्रौ.सू. 5.4.2; 12।

पञ्चचितिक वि. (पञ्च चितय: यस्य) पाँच वेदियों अथवा चयनों से युक्त, आप.श्रौ.सू. 16.15.3।

पञ्चचूडा स्त्री. (पञ्च चूडा: यस्या: सा) पाँच कलगियों वाली ईंट (वेदि की पाँच तहों में 'नाकसदन' के बाद रखी या जोड़ी जाने वाली), का.श्रौ.सू. 17.12.2, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.5; द्रष्टव्य - चूडा।

पञ्चत्रिंशतिरात्र पु. एक (पैंतीस दिन तक चलने वाले) सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.5.1.25।

पञ्चत्रिंशद्रात्र पु. (पञ्चत्रिंशत् रात्रय: यस्मिन्) (पैंतीस दिन तक चलने वाले) एक सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.5.2.5।

पञ्चदश पु. एक प्रकार का स्तोम, जिसमें तीन ऋचायें इस प्रकार पढ़ी जाती हैं कि ऋचाओं की संख्या तीन आवृत्ति में पन्द्रह हो जाय, जैसा कि चार 'आज्य' एवं माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र (स्तोम) में होता है, चिन्ना स्वामी, यज्ञतत्त्व-प्रकाश, पृ. 92, वि. पन्द्रह ऋचाओं वाले स्तोम से सम्बद्ध (देवता) (इन्द्रस्त्रैष्टुभ: पञ्चदशो बार्हतो ग्रैष्म:), आश्व.श्रौ.सू. 4.12.1।

पञ्चदशपर्याय पु. पन्द्रह ऋचाओं वाले गान (स्तोम) के लिए (अभिप्रेत) तीन मूल ऋचाओं की आवृत्ति (यां) अथवा पुनरुक्ति, ला.श्रौ.सू. 6.6.15।

पञ्चदशरात्र पु. (पञ्चदशानां रात्रीणां समाहार:) 15 दिन तक चलने वाले एक सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.5.11-13।

पञ्चदशस्तोम न. तीन ऋचाओं की आवृत्ति करके तीन समूहों में प्राप्त पन्द्रह ऋचाओं से युक्त गायन की विशिष्ट योजना, ला.श्रौ.सू. 9.11.6।

पञ्चधातु वि. (पञ्च धातव: यस्मिन्) जिसमें पाँच पर्व हों, पाँच सन्धियों वाला (शुल्ब), आप.श्रौ.सू. 1.4.10; भा. 'धातु:' सन्धि:।

पञ्चनिधन वि. (पञ्च निधनानि यस्मिन्) (वह साम) जिसमें पाँच निधन हों, ला.श्रौ.सू. 1.6.29।

पञ्चपञ्चिनी स्त्री. पन्द्रह ऋचाओं वाले गान में 'पञ्चदश स्तोम' के गायन का एक प्रकार, जिसमें तीन ऋचाये इस प्रकार दुहराई जाती है, कि प्रत्येक आवृत्ति (पर्याय) में पाँच ऋचायें प्राप्त हो जावें : अ अ अ ब स, अ ब ब ब स, अ ब स स स।

पञ्चपदा वि. (पञ्च पदानि यस्यां सा) (पङ्क्ति छन्दस्) जिसमें पाँच चरण (ऋक्पाद होते हैं) शां.श्रौ.सू. 14.4.3

पञ्चपशु पु. (पञ्च पशव: यस्मिन्) एक पशु याग जिसमें वध्य पशुओं की संख्या पाँच होती है, शां.श्रौ.सू. 16.9.25।

पञ्चबिल पु. एक थाली, जिसे इसमें पाँच छिद्र होने के कारण पञ्चबिल कहते हैं, उसमें आहुति के रूप में प्रदान किये जाने वाले चरु का नाम, का.श्रौ.सू. 15.9.1 (राजसूय); शां.श्रौ.सू. 15.14.12; आप.श्रौ.सू. 20.25.1; उचित भोजन प्राप्त करने के लिए अनुष्ठेय एक वैकल्पिक इष्टि (अवेष्टि) का नाम। आहुतियां हैं : अग्नि के लिए पुरोडाश, या तो इन्द्र के लिए एक पुरोडाश अथवा सोम के लिए चरु, वैश्वदेव के लिए चरु (पका हुआ चावल) - मैत्रावरुण के लिए आमिक्षा एवं बृहस्पति के लिए चरु 'आग्नेय ऐन्द्र: सौम्यो वा वैश्वदेवश्चरु: पयस्या मैत्रावरुणी, बार्हस्पत्यश्चरु:' का.श्रौ.सू. 15.9.2. प्रथम चार प्रधान दिशाओं (आहवनीय के भीतर) और अन्तिम मध्य में। इन प्रत्येक आहुतियों के बाद वह बीच में घृत की आहुति देता है (संस्रवासेचन) पहले के लिए स्वर्ण को दक्षिणा के रूप में आग्नीध्र को देता है। इन्द्र एवं विश्वेदेवों (ऐन्द्र एवं वैश्वदेव) के लिए होता को चित्तीदार बैल, मैत्रावरुण से सम्बद्ध आहुति के लिए बाँझ गाय (वशा) अथवा अजातवत्सा (अक्षतयोनि) गाय अध्वर्यु को (अग्नीद् को भी) और अन्तिम के लिए काले धब्बे वाला (शितिपृष्ठ) बैल ब्रह्मा को प्रदान करता है, का.श्रौ.सू. 15.9.1-6.

पञ्चभागोपर वि. (यज्ञीय स्तम्भ) जिसका पाँचवा भाग गाड़ा जाता है, मा.श्रौ.सू. 8.13.13, (अन्य सिद्धान्तों के अनुसार 'यूप' के मामले में लम्बाई को छ: भागों में विभाजित किया जाता है। यदि यूप 12 अरत्नि एवं उपर 3 अरत्नियों के बराबर होता है)।

पञ्चमभागीया वि. (पञ्चम: भाग: यस्या: सा) (एक चौथाई ईंट) जिसके पार्श्वों की लम्बाई पुरुष के पाँचवें भाग के बराबर (24 अंगुल) होती है, बौ.शु.सू. 3.31।

पञ्चवर्ग वि. (पञ्च वर्गा: = प्रहारा: यस्मिन्) (सोम-सवन) जिसमें सोम की टहनियों पर पाँच प्रहार होता है (प्रत्येक में पाँच प्रहार से युक्त तीन आवृतियाँ होती हैं, अर्थात् तीन

आवृत्तियां होती हैं एवं प्रत्येक आवृत्ति में पाँच प्रहार होते हैं, 'सर्वे पञ्चवर्गाः पशुकामस्य', का.श्रौ.सू. 9.4.16 (त्रयोऽभिषवाः पञ्चप्रहाराः स्युः। वर्गः प्रहारः, स.वृ.)।

पञ्चवली वि. (पञ्च वल्यः= वलयः यस्य यस्मिन् वा) (कृष्णमृग का श्रृंग) जिसमें पाँच वलय अथवा मोड़, हों, का.श्रौ.सू. 7.3.25; आप.श्रौ.सू. 10.9.19; भा.श्रौ.सू. 10.6.13।

पञ्चवातीय पु. घृत की पाँच आहुतियों का नाम। ये आहुतियां राजसूय में प्रथम वर्ष की समाप्ति पर आहवनीय से निकालते हुए (अग्नि-स्थाली में ही) चारों प्रधान दिशाओं में (प्रत्येक में) दी जाती हैं। अन्तिम और पाँचवीं आहुति मध्य में होती है, 'पञ्चवातीयमाहवनीयं प्रतिदिशं न्युह्य मध्ये च स्रुवेण जुहोत्य--------प्रतिमन्त्रम्', का.श्रौ.सू. 15.1.18।

पञ्चवाहिन् वि. (पञ्च वाहाः सन्ति अस्य) (वह रथ) जिसे पाँच अश्व खींचते हैं ('पञ्चेध्मीया' आहुतियों के लिए दक्षिणा), मा.श्रौ.सू. 9.1.1.20।

पञ्चशारदीय पु. 1. पाँच सवन दिनों वाला एक सोमयाग (जिसमें पाँच विभिन्न वर्णों के पाँच वध्य पशु होते हैं) मा.श्रौ.सू. 9.4.2.17; जै.ब्रा. 178-180; शां.श्रौ.सू. 14.62.1 के अनुसार यह मरुद्देवताक एकदिवसीय सोम याग है, 2. पशु आहुति का प्रकार, जिसका 'पशुपुरोडाश' (न) प्रत्येक सात कपालों पर पकाया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 18.11; ला.श्रौ.सू. 8.10.6।

पञ्चसांवत्सरिक वि. (बहु.व.) चार मास के यज्ञों के पञ्चवर्षीय चक्र से युक्त, भा.श्रौ.सू. 8.25.8; आप.श्रौ.सू. 8.22.9।

पञ्चहोतृ पु. 1. अग्निर्होता---- (तै.आ. 3.1) से प्रारम्भ होने वाली पाँच ऋचायें, ग्रह भाग है 'वाचस्पते हिन्विधेनामन्----', मा.श्रौ.सू. 5.2.14.3; इसका पाठ 'अमावास्या हविराधान' के समय किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.11.5, एक मन्त्र का नाम जिससे आहवनीय अग्नि के लुप्त हो जाने की स्थिति में द्वितीय बार गार्हपात्य (में) से लाये गये आ हवनीय में एक आहुति दी जाती है (बौ.श्रौ.सू. 27.10-11) पशुओं की कामना वाला व्यक्ति दो भागों में आहुति दे सकता है। (आहुति के) प्रथमार्ध का मन्त्र के प्रथमार्ध से एवं द्वितीयार्ध का मन्त्र के ग्रहभाग के द्वितीयार्ध से आहुति दी जाती है (आप.श्रौ.सू. 14.13-15) इस यज्ञ के लिए विहित दक्षिणा है : एक अश्व, हिरण्य (स्वर्ण); एक गाय और परिधान। 'अग्निर्होता----' इस मन्त्र का पाठ दर्श याग में वेदि के भीतर हविस् को स्थापित करते समय किया जाता है। सत्या.श्रौ.सू. (1.8.6.2) के अनुसार उसे उन्हें, 'वेदि में उनके रख दिये जाने पर केवल इसी मन्त्र से छूना चाहिए। वाराह.श्रौ.सू. का अभिमत है कि वह यदि स्वर्ग की कामना वाला है, तो इस मन्त्र से उनका स्पर्श करे (1.3.3; 1.1.2)। यह मन्त्र अध्वर्यु के हविस् के भागों को आहुति देने के लिए ग्रहण करने के पूर्व यजमान द्वारा पढ़े जाने के लिए भी विहित है, श्रौ.को. (अं.) 1.367. सत्या.श्रौ.सू. के अनुसार वह इसका वाचन भाग-ग्रहण के पहले अथवा बाद में भी कर सकता है (2.2; 6.3) प्रणीता जल के प्रणयन के पूर्व एवं अग्निहोत्र के बाद वैश्वदेव पर्व के दिन इस मन्त्र के मानसिक वाचन के साथ आहवनीय में घृत की एक आहुति दी जाती है (बौ.श्रौ.सू. 5.1-4); तुल. भा.श्रौ.सू. 2.4.11; मा.श्रौ.सू. 1.7.1.2 यजमान इस मन्त्र से वैश्वदेव पर्व के लिए (अभिप्रेत) वेदि में रखे हुए सभी हविर्द्रव्यों का स्पर्श करता है। इस मन्त्र से वेदि के दक्षिण की ओर पशु के अङ्ग रख दिये जाते हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.834. पशु के भ्रूण भी, 1.868; इसका वाचन मृत व्यक्ति की आँख की पुतलियों के लिए किया जाता है, 1.1043; एक रहस्यात्मक मन्त्र, जिसमें पाँच ऋत्विजों का उल्लेख किया गया है। इसका पाठ विशेष रूप से वैश्वदेव में होता है, आप.श्रौ.सू. 8.1.3; 2. एक आहुति का नाम। इसकी आहुति चातुर्मास्य (की शृंखला) के प्रथम के प्रारम्भ में केवल एक बार दी जाती है, भा.श्रौ.सू. 8.25.11।

पञ्चाग्नि पु. (बहु.व.) (पञ्च च ते अग्नयः) पाँच पवित्र अग्नियां (अन्वाहार्यपचन अथवा दक्षिण, गार्हपात्य, आहवनीय, सभ्य, आवसथ्य); शरीर में वर्तमान पाँच आध्यात्मिक अथवा रहस्यात्मक अग्नियां, मो.वि. = पञ्चतपस् (पञ्च अग्नयःयस्य) वि. वह व्यक्ति जो पाँच पवित्र अग्नियों के अनुरक्षण में संलग्न हो, कठ.उप।

पञ्चाग्निक वि. (अग्निहोत्र - होम) जिसको पाँच अग्नियों अर्थात् आहवनीय, सभ्य, आवसथ्य, गार्हपत्य एवं दक्षिण में अर्पित किया जाय, मा.श्रौ.सू. 8.5।

पञ्चाङ्गी स्त्री. वह रस्सी जो दो पुरुषों की लम्बाई के पाँचवें भाग के बराबर लम्बी हो और उसके मध्य एवं अर्धों पर तीन चिह्न हो, मा.श्रौ.सू. 10.2.1.4; 10.3.2.20; (वेदि के भूभाग को नापने के लिए प्रयुक्त), पाँच भागों में, एवं त्रिगुणा मुञ्ज-संज्ञक घास से निर्मित जुएं की रस्सी, का.श्रौ.सू. 16.2.4 (चयन)।

पञ्चाङ्गीबद्ध वि. शरीर के पाँच अंगों में बँधे हुए अर्थात् (1) मुख (2) वक्षस्थल एवं शिर के मध्य (3) आँखों के नीचे मुख के सामने (4) पीठ, एवं (5) पकड़ने के लिए किसी बिन्दु पर, का.श्रौ.सू. 16.2.4 (पञ्चांगानि यस्या: सा पञ्चांगी। तानि च एक मुखे वृत्ताकारा, द्वितीया वक्ष:श्रोत्रान्तर-मार्गेण शिरस उपरि स्थिता, तृतीय चक्षुषोरधस्तान्मुखस्याग्रे पूर्वरज्जावमुभयतो बद्धा, चतुर्थी पर्श्वस्था, पञ्चमी चावलम्बनरज्जुवेलासंज्ञा स.वृ.) (उखा आदि के निर्माणार्थ मिट्टी लाने के लिए पशुओं की शोभायात्रा)।

पञ्चापञ्चीना स्त्री. एक पाँच मोड़ों वाली ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.6 (पाँच, वेदि में प्रत्येक घटिकावत्)।

पञ्चापवर्ग वि. (पञ्चभि: दिवसै: अपवर्ग: यस्य) (क्रमश: अभिषेचनीय एवं दशपेय यज्ञ) जो पाँच दिन के अन्दर पूर्ण होते हैं, का.श्रौ.सू. 15.4.2।

पञ्चावत्त न. (वपा को) पाँच बार काटना (अर्थात् करछुल में दो बार घृत को फैलाना, इसके बाद उसके ऊपर वपा, उसके बाद उस पर (वपा पर) दो बार घी उड़ेलना अथवा एक बार घी फैलाना, तदनन्तर उस पर सोने का एक टुकड़ा रखना, उसके बाद वपा और उस पर एक स्वर्णखण्ड एवं उसके बाद एक बार इस पर घी उड़ेलना, श्रौ.को. (अं.) 1.820; पा.टि. = द्रष्टव्य श्रौ.प.नि. 31.254-56।

पञ्चावत्तीय न. एक आहुति का नाम, जो यजमान के किसी रोग से पीड़ित होने की स्थिति में प्रदान की जाती है। आहवनीय अग्नि का चारों दिशाओं में एवं मध्य में वितरण किया जाता है और उनमें 'अग्निनेत्रेभ्य:------' इस मन्त्र से घृत की पाँच आहुतियाँ प्रदान की जाती है। इसके बाद उसे अग्नि को एक साथ इकट्ठा करना चाहिए एवं 'ये देवा:--------' इस मन्त्र से अन्य पाँच आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.1140।

पञ्चाह पु. (पञ्चानाम् अह्नां समाहार:) 1. एक सत्र के अन्तर्गत पाँच दिन तक चलने वाला एक कृत्य, जिसमें ज्योतिष्टोम, गोष्टोम एवं आयुष्टोम होते हैं, आप.श्रौ.सू. 23.2.14; 2. अभिप्लव षडह (जिसका अनुष्ठान तीस दिन के (सत्र) के अन्तर्गत तीन बार किया जाता है) के प्रथम पाँच दिन, शां.श्रौ.सू. 13.17.1।

पञ्चाहतन्त्र न. (पञ्चाहस्य तन्त्रम्) पाँच दिवसीय सोम-याग में अनुसृत प्रक्रियात्मक तकनीक, निदा.सू. 9.11.10।

पञ्चावि पु. दो वर्ष एवं छ: महीने (ढाई साल का) बैल, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.18।

पञ्चेध्मीय पु. एक आहुति का नाम (जो पाँच इध्मों पर दी जाती है), मा.श्रौ.सू. 9.1.1.25 (राजसूय के एक अंग के रूप में)। वह व्यक्ति जो दैत्यों एवं पिशाचों से डरता है, वह अमावस्या की रात में यह आहुति दे, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.29; चार भागों एवं मध्य में विभक्त आहवनीय में 'ये देवा: पुर:सद:----------' (तै.सं. 1.8.7) इस मन्त्र से आहुति दी जाती है एवं इसके बाद मध्य में एक साथ सञ्चित, श्रौ.को. (अं.) 1.531; चि.भा.से : पाँच इध्मों पर पाँच आज्याहुतियां प्रदान करना। इसका अनुष्ठान राजसूय में रात्रि में किया जाता है। आहवनीय को चारों दिशाओं में ढकेला जाता है। मध्य भाग अवितरित अवस्था में ही रहता है, एवं पाँच इध्म रख दिये जाते हैं, जिसके बाद पाँच आज्याहुतियां होती हैं, आप.श्रौ.सू. 10.9.10-11, यह पञ्चावत्तीय से साम्य रखता है, तै.ब्रा. 1.7.1.5; एवं पञ्चावत्तीय, का.श्रौ.सू. 15.1.20।

पण्डक पु. नपुंसक, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.26 (सोम के लिए निर्धारित बधिया किये गये बैल से सोम-याग)।

पण्डग पु. नपुंसक, मा.श्रौ.सू. 9.1.3.18; 'पदा शीसं पण्डगाय प्रत्यस्यति' (राजसूय)।

पतन्तक पु. एक यज्ञ का नाम। राजसूय की 12 दीक्षाओं एवं 12 उपसदों से युक्त एक विकृति, बौ.श्रौ.सू. 26.3; अश्वमेध का एक प्रकार, तीन दिन का एक अहीन, ला.श्रौ.सू. 9.11.6; निदा.सू. 8.8।

पतित्थ पु. पति के पास खड़ा होने वाला, भा.पि.मे. 1.5.7 = पतिहित बौ.पि.मे. 1.8.1-2, जो मृत व्यक्ति की पत्नी को (चिता पर) उसके पति के बगल में लेटा देता है और पुन: वह उसके वाम हस्त को पकड़कर एक मन्त्र (ऋ.वे. 10.18.8 'उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकम्' से) उठाता है।

पत्तोदश वि. पैरों की ओर उन्मुख झलरियों वाला, आप.श्रौ.सू. 9.11.23 (वस्त्र का टुकड़ा)।

पत्नी स्त्री. (पति + ङीप् + नकारादेश, पत्युर्नो यज्ञसंयोगे, पा 4.1.33) यजमान की पत्नी, जो श्रौत कृत्यों में बहुत सीमित ढंग से भाग लेती है, उदाहरणार्थ—मण्डप को बुहारना, यज्ञीय भूमि को लीपना एवं इसे सजाना-संवारना,

आप.श्रौ.सू. 1.6.12 पुरोडाश के लिए अनाज को पीसना, 1.7.5; अपने पति के साथ दीक्षा में उसका थोड़ी अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, 10.15.13 (सोम); सोम की टहनियों के साथ शोभायात्रा में, 11.16.4; बाद में वह 'पन्नेजनी' संज्ञक कृत्य का अनुष्ठान करती है, 12.5.3. वरुणप्रघास में उसे अपने उपपति (जार) की घोषणा करनी पड़ती है। राजा की पत्नियां ऋत्विजों के साथ अश्लील वार्तालाप (वाद-विवाद) में भाग लेती हैं, का.श्रौ.सू. 20.5.15; 18 (अश्वमेध); प्रधान महिषी मृत अश्व के साथ संभोग करती है, आप.श्रौ.सू. 22.18.3-4; वास्तव में अवाञ्छनीय स्थिति तक पदावनत की गई (दर्ज़ा घटाया गया); मूकदर्शक, का.श्रौ.सू. 4.13 पर पद्धति देखें, मी.सू. 6.1.24 उसके पति के साथ उसके अतुल्यता की बात करता है; अनुवाक में (प्रयुक्त) एक मन्त्र जिसका प्रारम्भ 'सेने इन्द्रस्य' से होता है और इसका पाठ 'इयं नारी' इस ऋचा के साथ होता है, श्रौ.को. (अं.) I.116।

पत्नीमन्त्र पु. (पत्न्या उच्चारित: मन्त्र:) यजमान-पत्नी द्वारा उच्चारित मन्त्र, वैता.श्रौ.सू. 4.23।

पत्नीयजुस् न. यजमान की पत्नी को योक्त्र-सन्नहन (कटि बाँधने की रस्सी) आदि दिये जाने पर पढ़ा जाने वाला यजुर्मन्त्र (तै.सं. 3.5.6); बौ.श्रौ.सू. 14.22:1; श्रौ.को. (सं.) II.518 (दीक्षा); तै.सं. 3.5.6।

पत्नीयूप पु. एकादशिनी में अन्तिम के रूप में परिगणित एवं 'देवपत्नी' के वध्य के लिए अभिप्रेत यज्ञीय स्तम्भ का नाम। इसे 'शालाद्वारीय' अग्नि के समीप खड़ा करते हैं। इसे नाभि तक पहुँचना चाहिए (नाभि तक ऊँचाई वाला) का.श्रौ.सू. 8.8.6-9.6; श्रौ.को. (अं.) I.863; (सं.) II.601।

पत्नीयूपोच्छ्रयण न. (पत्नीयूपस्य उच्छ्रयणम्) देवता की पत्नी से सम्बन्ध रखने वाले यज्ञ-स्तम्भ को उठाना, 'यूपैकादशिन्यां वशावपामार्जनान्तं कृत्वा शालाद्वार्ये पत्नीयूपोच्छ्रयणं नाभिमात्रस्य', का.श्रौ.सू. 8.8.37 (इस स्तम्भ को प्राग्वंश में शालाद्वारीय के सामने खड़ा किया जाता है। यह यजमान की नाभि के बराबर ऊँचा होता है, वही; त्वष्टृदेवताक अज इसमें बाँधा जाता है एवं पर्यग्निकरण के बाद छोड़ दिया जाता है, का.श्रौ.सू. 8.9.2)।

पत्नीलोक पु. (पत्न्या: लोक:) (यजमान की) पत्नी के लिए (गार्हपत्य के दक्षिण) विहित स्थान, मा.श्रौ.सू. 1.2.5.10; भा.श्रौ.सू. 6.9.6।

पत्नीशाल (पत्न्या: शाला, विभाषा सेनासुराच्छायाशाला., पा. 2.4.25 से विकल्प से नपु.) नपु. यजमान की पत्नी के लिए बनाई गई शाला अथवा कक्ष, भा.श्रौ.सू. 6.9.6

पत्नीशाला स्त्री. 1. (पत्न्या: शाला, पा. 2.4.25 से न. शालम्) यजमान-पत्नी के लिए अभिप्रेत शाला अथवा कक्ष, बौ.श्रौ.सू. 6.1; जिसे प्रवर्ग्य के समय छांटकर चुना जाता है, आप.श्रौ.सू. 15.3.32 ताकि वह कृत्य को देख न सके 2. 'प्राग्वंश' यज्ञीय-शाला, जहाँ आहवनीय, दक्षिण एवं गार्हपत्य अग्नियां स्थापित की जाती है, द्रा.श्रौ.सू. 7.3.9; ला.श्रौ.सू. 2.7.12।

पत्नीसंयाज पु. (देवों की) पत्नियों को दी जाने वाली आहुति। सोम की एक शृंखला में आज्य की चार आहुतियां, त्वष्ट्रा, देवपत्नियों एवं अग्नि गृहपति को गार्हपत्य में स्रुक् अथवा स्रुवा से दर्श के अन्त में यजमान-पत्नी द्वारा 'दर्भपत्र' से स्पृष्ट अध्वर्यु द्वारा मन्त्रों का 'ध्वान' स्वर में वाचन करते हुए, दी जाती हैं आप.श्रौ.सू. 3.8.1-8. पशुयाग में आज्य के स्थान पर वध्य पशु के पूंछ की आहुति दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 7.27.9; का.श्रौ.सू. 6.9.14; सोम, का.श्रौ.सू. 10.8.10; राका, कुहू एवं सिनीवाली, भा.श्रौ.सू. 3.7.16 (दर्श); द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) I.232, 292; श्रौ.प.नि. 37.314।

पत्नीसंयाज

पत्नीसंयाजन न. = पत्नी-संयाज नाम वाला कृत्य, अर्थात्, यजमान पत्नी द्वारा दर्भपत्र से अध्वर्यु को छूते समय देवों की पत्नियों एवं अन्य देवताओं को आहुति प्रदान करना, का.श्रौ.सू. 6.9.14 (जाघन्या पत्नी-संयाजनम्)।

पत्नी संयाजयति पत्नी संयाज करता है, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.15।

पत्नीसन्नहन न. (पत्न्याः सन्नहनम्) यजमान की पत्नी के कमर के चारों ओर 'योक्त्र' रस्सी (कमर की करधनी) बाँधने का कृत्य, यह कृत्य अग्नीध्र द्वारा उसके परिधान के ऊपर अथवा भीतर किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.4.1; 2.5.2-5; बौ.श्रौ.सू. 1.12 (दर्श)। इस तरह उसे कृत्य में भाग लेने के योग्य बना दिया जाता है। वह या तो स्वयं करधनी हटाती है, आप.श्रौ.सू. 3.10.6; अथवा अग्नीध्र हटाता है, भा.श्रौ.सू. 3.12.7; भा.श्रौ.सू. 10.142 (पत्नी विमुञ्चति)। दीक्षा में भी प्रतिप्रस्थाता उसका योक्त्र से सन्नहन करता है, आप.श्रौ.सू. 10.9.13 सोम।

पथिकृदिष्टि स्त्री. एक वैकल्पिक कृत्य का नाम, जिसका अनुष्ठान तब किया जाता है, जब सम्बन्धियों में किसी की मृत्यु हुई हो, का.श्रौ.सू. 25.4.24-26।

पद न. 1. सोमक्रयणी गाय के पदचिह्न के नीचे की मिट्टी, का.श्रौ.सू. 7.6.18 ('समुद्धत्य पदं स्थाल्यामावपति---'); भा.श्रौ.सू. 10.15.14; बौ.श्रौ.सू. 9.5:10; 2. भूमि पर पद-चिह्न (पद उदपात्रम् उपनिनयति), भा.श्रौ.सू. 10.15.16, अश्व का पदचिह्न, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.1; 3. एक पाद लम्बा; पुरुष (यजमान की ऊँचाई = लम्बाई) का दशम भाग; प्रत्येक पद का 12 अंगुलों में विभाजन किया गया है, तीन पद = एक प्रक्रम, का.श्रौ.सू. 16.8.21; तुल. बौ.शु.सू. 1.9 (= 15 अंगुल, आप.शु.सू. 6.23; द्रष्टव्य - 'अध्यर्ध')।

पदतृतीय न. (पदस्य तृतीयः भागः) सोम-क्रयणी गाय के पदचिह्न के नीचे की मिट्टी का तीसरा भाग, श्रौ.को. (सं.) II.540।

पदनिधन वि. (पदे निधनं यस्य तत्) (वह) साम जो पद (शब्द या चतुर्थांश) में समाप्त होता है, जै.ब्रा. III.129।

पदपङ्क्ति स्त्री. एक इष्टका का नाम (सामान्यतः 'छन्दस्या' के रूप में जानी जाती है), का.श्रौ.सू. 17.12.14-15 (पाँचवीं परत में दो)।

पदसंलोपन न. (पदस्य संलोपनम्) पदचिह्नों को मिटाने का कृत्य, अन्त्येष्टि के बाद जब सम्बन्धी लोग पूर्व की ओर चहलकदमी करते हुए चलते हैं, पदसंलोपन पंक्ति में चलने वाले अन्तिम व्यक्ति द्वारा बेंत (वेतस) एवं अवका से किया जाता है, भा.पि.मे. 1.11.10।

पदस्तोभ पु. साम में निर्धारित ऋक्पाद (के अक्षरों) में संशोधन, ला.श्रौ.सू. 7.7.1; क्षु.सू. 3.7:13; निदा.सू. 6.10:18; न. प्रत्येक पाद पर स्तोभ से युक्त साम का एक प्रकार, पञ्च.ब्रा. 13.5.21 सा.वे. 1.558 पर आधृत।

पदान्तराल न. (पदयोः अन्तरालम्) दो पदों अथवा शब्दों के बीच अन्तराल, आप.श्रौ.सू. 17.17.4 चयन में ग्रामेऽनुवाक्य एवं अरण्येऽनुवाक्य।

पदाभिहोम पु. सोमक्रयणी गाय के पदचिह्न पर आहुति देना, ला.श्रौ.सू. 5.5.8।

पदार्थानुसमय पु. (पदार्थस्य अनुसमयः) यज्ञीय अनुष्ठान की एक विधि, जिसमें विभिन्न 'उपचार' यथा - आवाहन से नमस्कार तक एक (व्यक्ति) के द्वारा विभिन्न देवताओं का क्रम से (औचित्यानुसार) 'आवाहन' किया जाता है, इसके बाद सबके लिए आसन कल्पित किया जाता है, उसके बाद 'पाद्य' एवं और भी चीजें 'नमस्कार' - पर्यन्त, आश्व.गृ.सू. 1.24.7 पर नारायण; का.श्रौ.सू. 15.9-11 भाष्य; हि.आ.ध. II.ii.740।

पदाशय पु. सोमक्रयणी गाय के पद-चिह्न में धुलि का समूह, बौ.श्रौ.सू. 6.13:15, द्रष्टव्य - 'पदस्थानम्' बौ.श्रौ.सू. 6.13 ('उखासम्भरण' में 'अश्वपदस्थानम्'), बौ.श्रौ.सू. 10.2।

पदाहुति स्त्री. सोमक्रयणी गाय जिसका अध्वर्यु अनुसरण करता है, के (सातवें) पदचिह्न पर आज्य की आहुति (सोम का प्रथम उपसद्), बौ.श्रौ.सू. 6.13; आप.श्रौ.सू. 10.23.2।

पद्धरणी स्त्री. जहाँ सोमक्रयणी गाय ने पादप्रक्षेप किया था, उस स्थान (चिह्न-स्थान) से धूलि सञ्चित करने का पात्र, बौ.श्रौ.सू. 6.10; द्रष्टव्य-'पदाहुति', श्रौ.प.नि. 205.55।

पद्येत (पद् + वि. लि. प्र.पु.ए.व.) यदि नीचे गिर जाय (यदि महावीरः पद्येत), भा.श्रौ.सू. 11.17.9।

पन्नद पु. (पन्नः उत्पन्नः दन्तः यस्य सः) द्वितीय दाँत से युक्त अज, कात्या.परि. छागलक्षण, श्रौ.को. (अं.) 1.1158; जिसके दाँत पहले ही निकल चुके हों (उग आये हों), 'पन्नदम- व्यङ्गम्' का.श्रौ.सू. 6.3.19 (पन्नदं = जातदन्तम्, स.वृ., छाग) (अज) जिसने अपना दाँत परिवर्तित कर लिया है, मा.श्रौ.सू. 1.8.2.30।

पन्नेजनी स्त्री. (पदयोः नेजनी, वस्तुतः पदस्य नेजनी, - पद् + निज् + ल्युट् + ङीप्) 1. चरणों को धोने के लिए जल, आप.श्रौ.सू. 12.5.12, बौ.श्रौ.सू. 7.3. वह कृत्य जिसमें

यजमान – पत्नी अपने वाम जघन को अनावृत करती है (खोलती है) और घुटने की सन्धि से इस पर 'पन्नेजनी' – संज्ञक जल को उड़ेलती है, आप.श्रौ.सू. 13.15.8–11; भा.श्रौ.सू. 13.4.12; तै.सं. 3.5.6. 2. – **जननी** पु. (स्त्री.) वह पात्र जिसमें 'पन्नेजनी' – संज्ञक जल संरक्षित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.5.3; का.श्रौ.सू. 9.3.11; द्रष्टव्य – श्रौ.को. (सं.) II.552; श्रौ.प.नि. 310–424।

पयस् न. (पी (पा) असुन्) (प्रवर्ग्य के लिए) अजा के दुहे जाते समय प्रस्तोता द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, का.श्रौ.सू. 26.5.9 (उपद्रव पयसेत्युच्यमाने गच्छत्युर्वन्त-रिक्षमिति); श्रौ.को. (अं.) 2.208; दुग्ध।

पयसी स्त्री. दधि, मा.श्रौ.सू. 9.1.2.30 (राजसूय माध्यन्दिन सवन) जलीय अंश से युक्त = पयस्या।

पयस्या स्त्री. (पयसः विकारः, पयस् + यत् + टाप् 'गोपयसोर्यत् 4.3.160') संघनित दुग्ध; आमिक्षा (छेना) का समानार्थी, आप.श्रौ.सू. 8.5.33; का.श्रौ.सू. 4.3.10 (भाष्य)।

पयोग्रह पु. (पयः गृह्णाति इति) वह प्याला, जिसमें दुग्ध रखा हो, 'पयोग्रहान्वा पूर्वम्', आप.श्रौ.सू. 19.12.13; का.श्रौ.सू. 19.2.14 (सौत्रामणी) इसका आहरण 'कुविदङ्ग' आदि ऋचा (वा.सं. 19.6) से होता है; द्रष्टव्य – श्रौ.प.नि. 152–158।

परब्राह्मण न. अन्य यज्ञों के विषय में ब्राह्मण-ग्रन्थ में अभिकथन, ला.श्रौ.सू. 10.4.8 (पञ्चाह)।

परस्तराम् क्रि.वि. (परस् + तरप् + टाप् + आमु) (यजमान के घर से) पच्चर के प्रक्षेप के आगे, आप.श्रौ.सू. 9.1.18 (रू.)।

पराक पु. तीन सवन-दिनों वाले एक सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.4.1.39 (इसका अनुष्ठान 'गर्गत्रिरात्र' की तरह होता है)।

पराङावर्तते (पराङ् + आ + वृत् + लट् प्र.पु.ए.व.) अपना पीठ मोड़ देता है, भा.श्रौ.सू. 1.10.2 (चावल के कन्दुकाकार पिण्डों की ओर) पिण्डपितृ।

पराङ्गभूत वि. (परस्य अङ्गभूतः) (वह पशुयाग) जो अन्य योग का अंग है, मा.श्रौ.सू. 2.2.5.1।

पराची वि. (स्त्री.) (पर + अञ्च् + क्विन् + ङीप्) आवर्तनशील अथवा आवृत्त (सामिधेनी) (पराचीः सामधेनीरन्वाह, आप.श्रौ.सू. 16.7.2) (चयनपशु, 21 सामिधेनियां = 11 नियमतः सामधेनियां एवं चयन में विहित 10; यदि चौबीस हों, तो ये 21 + 3 'अप्सुमती' ऋचायें 'उपेमसृक्षि', (आदि)। यह दीक्षा के पूर्व अथवा पश्चात् अर्पित किये जाने वाले पाँच पशुओं अथवा एक पशु के सन्दर्भ में है (द्रष्टव्य – आप.श्रौ.सू. 16.8.13); आवृत्ति-सहित (अर्थात् पहली एवं अन्तिम ऋचा तीन बार दुहराई जाती है एवं 9 पृथक् ऋचायें हैं, इन सबका पाठ 'समिधेनी' के रूप में किया जाता है); आप.श्रौ.सू. 11.3.5; मा.श्रौ.सू. 7.2.3.10 (सार्परराज्ञीषु पराचीषु स्तुत्वा); द्रष्टव्य 3.8.4।

पराचीनम् क्रि.वि. (परा + अञ्च् + क्विन् + ख + अम्) आवर्तनशील क्रम में (पराचीनम् अधीयीत); भा.श्रौ.सू. 11.22.23 (उसी पाठ्य को दुहराते हुए)।

पराचीनरात्र पु. रात्रि का बाद वाला भाग (अर्थात् 'प्रातः'), आप.श्रौ.सू. 8.11.17।

पराञ्च् क्रि.वि. आँख के कोने से; अपने चरम की ओर नाक से (अर्थात् नाक के सबसे ऊपर भाग से), 'द्विर्दक्षिणं त्रिरुत्तरं पराक्', का.श्रौ.सू. 7.2.33।

परापवन न. (परा + पू + ल्युट्) पछोर कर साफ करना, श्रौ.प.नि. 15.115।

परापावम् क्रि.वि. अनाज को साफ करने के लिए भूसी को पछोरने के द्वारा, भा.श्रौ.सू. 1.7.5 (अवहन्ति); पिण्डपितृ, पछोरने की टोकरी (शूर्प, सूप) में आवृत्तिपूर्वक अनाजों को निकालना, आप.श्रौ.सू. 1.7.5, (भूसी) साफ करना, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.4.

परार्ध्य न. अन्तिम सीमा (पुनराधेय के लिए अन्तिम सीमा एक वर्ष है, तु. 'अवरार्ध्यम्'), आप.श्रौ.सू. 5.27.3।

पराहन्ति (परा + हन् + लट् प्र.पु.ए.व.) स्पर्श करता है (न अनवनिज्य पात्राणि प्रतिहन्ति; टीका – अभिमृषति), आप.श्रौ.सू. 2.3.15।

पराहण्यात् (परा + हन् + वि.लि.प्र.पु.ए.व.) स्पर्श करना चाहिए भा.श्रौ.सू. 2.3.18 (वेदिं कृत्वा अनवनिज्य हस्तौ पात्राणि पराहण्यात्)।

परिकर्मिन् पु. एक सेवक ऋत्विज् अथवा अध्वर्यु का सहायक, बौ.श्रौ.सू. 1.9.5–6; आश्व.श्रौ.सू. 2.4.16 (टीका-परिचारक); वह जो पशुओं को ले जाता है (अश्व), बौ.श्रौ.सू. 15.28।

परिकर्षति (परि + कृष् + लट् प्र.पु.ए.व.) चारों तरफ खींचता है; माषैः पुरुषशिरः परिकीर्य त्रिरपसलेः पर्णशाखया परिकर्षति, बौ.श्रौ.सू. 10.9।

परिक्रय पु. (परि + क्री + अच्) विनिमय, शुल्क के माध्यम से गाय (जिससे सोम खरीदा गया था), की मुक्ति अथवा प्रतिदान, आप.श्रौ.सू. 24.2.8।

परिक्रामम् क्रि.वि. (परि + क्रम् + घञ् + अम्) (अग्नि की) परिक्रमा करते हुए, (अग्नि के) चारों ओर घूमते हुए, का.श्रौ.सू. 3.1.13 (अग्नि-सम्मार्जन)।

परिक्री पु. (तीन) साद्यस्क यागों में द्वितीय का नाम (अन्य दो हैं : 'अनुक्री' एवं 'उत्क्री'), शां.श्रौ.सू. 12.42.6।

परिक्षालन न. (परि + क्षाल् + ल्युट्) एक पात्र को धोने के लिए जल, 'परिक्षालनमानयति-----', का.श्रौ.सू. 4.2.32।

परिक्षुद्य (परि + क्षुद् + ल्यप्) पानी लगाकर, गीला करके (यव के दानों को), बौ.श्रौ.सू. 5.11:15।

परिखातिक्रान्त वि. (परिखातिं क्रान्तः, परि + खन् + क्तिन, क्रम् + क्त अथवा परिखाम् अतिक्रान्तः) जिसने (सीमा पर) परिखा को पार कर लिया है, बौ.श्रौ.सू. 2.3.2; 24.13.6।

परिगान न. (परि + गै = गा + ल्युट्) सामवेदीय गानों के एक वर्ग या समूह का नाम। यदि अध्वर्यु प्रैष नहीं देता है, तो इनका गायन दीक्षणीयष्टि में नहीं किया जाता, अथवा इनका गायन अपने यज्ञ में करना चाहिए अथवा उस व्यक्ति के यज्ञ में जिसके लिए वह ऐश्वर्य की कामना करता है, जै.श्रौ.सू. 1.25; श्रौ.को. (अं.) 2.67।

परिगीत वि. (परि + गै = गा + क्त) (वह अग्नि-वेदि) जिस पर सामगान किया गया हो, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.10। (परिगीतं नाक्रामेदा स्वयमातृण्णाया व्याघारणात्); द्रष्टव्य - 1.6.5.7।

परिगीतम् क्रि.वि. जब गान समाप्त हो जाय (गेल्डर - सम्पूर्ण (साम) के प्रत्येक गायन के पश्चात् वह प्रज्वलित करता है)।

परिगृह्णाति (परि + ग्रह + लट् प्र.पु.ए.व.) (ऋतुग्रह से) ढकता है, भा.श्रौ.सू. 13.29.12; प्रतिप्रस्थाता।

परिग्रह पु. (परि + ग्रह + अप्, द्र. ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च, पा. 3.3.58 घञ्) (वेदि का) परिवेष; वेदि का खाका खींचने (तैयार करने) का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.3; 1.7.3.35; शां.श्रौ.सू. 15.5.10; द्रष्टव्य - परिग्रह, 1.2.4.21; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 18.151।

परिग्रहण न. (परि + ग्रह् + ल्युट्) लेने अथवा स्वीकार करने का कृत्य, वाधू.श्रौ.सू. 13.3.5 (महावीर)।

परिग्राह पु. (परि + ग्रह् + घञ्, परौ यज्ञे, पा. 3.3.47, अथवा परिग्रह एव परिग्राहः) अध्वर्यु द्वारा 'स्फ्य' से वेदि के विस्तार को चिह्नित करने के लिए भूमि पर उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिम की तरफ खींची गई रेखा। वह सर्वप्रथम दक्षिण (दक्षिण-परिश्चम श्रोणि) से प्रारम्भ करता है और उत्तरी 'अंश' - पर्यन्त उत्तर-पश्चिम श्रोणि को जाता है। यह प्रथम, साधारण एवं मोटे तौर पर खाका है, जिसे 'पूर्वपरिग्रह' कहते हैं। खाका खींचने की क्रिया उसी प्रक्रिया को दुहराने से पूरी होती है, और वह (क्रिया) 'उत्तरपरिग्रह' कहलाती है, बौ.श्रौ.सू. 1.11 = ग्रह, का.श्रौ.सू. 2.6.25; पु. (द्वि.व.) महावीर को पकड़ने के लिए प्रयुक्त चिमटों का युग्म, मा.श्रौ.सू. 4.3.17, 33-38; = शफ, आप.श्रौ.सू. 15.5.11; = परीशास का.श्रौ.सू. 26.5.12 (परीशासावादत्ते गायत्रं छन्दोऽसीति प्रतिमन्त्रम्)।

परिग्रीविन् वि. (परितः ग्रीवा यस्य) गोलकार गलभाग वाला, अथैतत् (पात्रम्) रास्नावत्परिग्रीवा भवति, बौ.श्रौ.सू. 7.6।

परिघर्म्य न. (बहु.) घर्म, अर्थात् प्रवर्ग्य के लिए प्रयुक्त होने वाले सभी पात्र, मा.श्रौ.सू. 4.1.30; 4.2.6; 4.3.39; 4.5.15; भा.श्रौ.सू. 11.5.6; उदा. - महावीर, आसन्दी, स्रुच् इत्यादि, आप.श्रौ.सू. 15.5.6; बौ.श्रौ.सू. 9.5; श्रौ.प.नि. 228.126।

परिचर पु. (परि + चर् + अच्) सेवक = परिकर्मी, बौ.श्रौ.सू. 26.5।

परिचरण न. (परि + चर् + ल्युट्) 'आज्य' के विसदृश अन्य द्रव्य की आहुति प्रदान करने की प्रक्रिया, श्रौ.को. (अं.) 1.1078 (गौत.पि.मे. 1.1-4)।

परिचरति (परि + चर् + लट् प्र.पु.ए.व.) श्रद्धाञ्जलि प्रदान करता है (वारुण्यार्चा परिचरति), भा.श्रौ.सू. 10.22.3 (आतिथ्या); अथैनं (राजानं) वारुण्यार्चा परिचरति, बौ.श्रौ.सू. 6.17।

परिचरा स्त्री. (परिचर + टाप्) विष्टुति के पर्याय (चक्र) का तृतीय भाग, एक चक्रण 'विष्टाव', ला.श्रौ.सू. 6.5.3. अन्य दो हैं 'तृचभाग' एवं 'आवापस्थान'।

परिचिनोति (परि + चि + लट् प्र.पु.ए.व.) अंगारों से घेरता है (परिवेष्टित करता है); तैः (अङ्गारैः) एनं (महावीरपात्रम्) प्रदक्षिणं परिचिनोति, बौ.श्रौ.सू. 9.7; द्रष्टव्य (वैकङ्कतीभिः)

(त्रयोदश) परिधिभिः परिचिनुतः अध्वर्युश्च प्रतिप्रस्थाता च (महावीरम्), बौ.श्रौ.सू. 9.7।

परिणय पु. (परि + नी + अच्) (भाषा में) उचित एवं प्रचलित प्रयोग, आप.श्रौ.सू. 10.12.9 (रु. परितः सर्वेषु देशेषु एकरूपः परिणीयते परिणयः साधुशब्दः); विवाह।

परिणयति (परि + नी + लट् प्र.पु.ए.व.) (अश्व को अग्नि-क्षेत्र में) ले जाता है, 'अनुयजुःकृष्टं परिणयत्युत्तरतः प्रथमम्', का.श्रौ.सू. 17.3.24 (चयन)।

परिणहन न. (परि + नह् + ल्युट्) (मध्यवर्तिनी दीक्षा में प्रयुक्त होने वाला) परिधान, मा.श्रौ.सू. 4.7.5।

परिणाह पु. (परि + नह् + घञ्) (शकट का) हविर्धान (जिसमें अनाज रखा हुआ होता है) भा.श्रौ.सू. 1.99.9, पा.भे. परीणाह, परिधि अथवा परिमाप, बौ.शु.सू. 1.113।

परितनोति (परि + तन् + लट् प्र.पु.ए.व.) चारों ओर से ढकता है; अथैनं (राजानं सोमं) वाससा परितनोति, बौ.श्रौ.सू. 6.15:23, सोमक्रय।

परितृण्णा वि. (स्त्री.) (परि + तृद् + क्त + टाप्) बेधी गई, श्रौ.को. (सं.) II.519।

परिदृंहण न. (परि + दृंह् + ल्युट्) यूप के आस-पास की मिट्टी को दबाने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 7.10.12।

परिधानीया स्त्री. (सामिधेनी की) अन्त्य ऋचा, आप.श्रौ.सू. 2.12.6; श्रौ.को. (अं.) 1.344; सत्र की, आश्व.श्रौ.सू. 2.16.8; भा.श्रौ.सू. 13.31.13; सदैव तीन बार दुहराई जाती है। ऋ.वे. 5.75.9 के बारे में कथित, जो कि सोम में 'प्रातरनुवाक' (प्रातःकालिक पाठ) की अन्त्य ऋचा है।

परिधि स्त्री. (बहु.व.) (परितः धीयते परि + धा + कि, 'उपसर्गे घोः किः' पा. 3.3.93) घेरे की छड़ी, आश्व.श्रौ.सू. 3.14.10 (पवित्र अग्नि के चारों ओर रखी हुई अग्नि की सफाई (मार्जन) 'इध्मसन्नहन' को इसके ऊपर ले जाते हुए की जाती है। इसका निर्माण किसी भी यज्ञ के योग्य वृक्ष से किया जाता है : पलाश, काश्मर्य, खदिर, उदुम्बर आदि। वे चाहे सूखी हों चाहे गीली। उन पर छाल होनी चाहिए। प्रत्येक परिधि एक हाथ लम्बी होती है, पश्चिम तरफ वाली सबसे छोटी एवं सबसे पतली होती है, आप.श्रौ.सू. 1.5.7-10; का.श्रौ.सू. 2.8.1 (परिधीन्परिदधाति आर्द्रानेकवृक्षीयान् बाहुमात्रान्--------); पितृयज्ञ में परिधियों की संख्या दो होती है, आप.श्रौ.सू. 8.14.9; एवं प्रवर्ग्य में 15.5.11 घर्म को घेरने के लिए 13 परिधियां प्रयुक्त होती हैं, द्रष्टव्य - अग्निपरिधिनिधान, श्रौ.प.नि. 20.161; 13.91।

परिधिदेश पु. (परिधेः देशः) मध्य (अथवा पश्चिमी) परिधि के पश्चिम का क्षेत्र, आप.श्रौ.सू. 1.5.2।

परिधिनिनयन न. (परिधौ निनयनम्) मध्य-परिधि के अन्दर 'जुहू' के माध्यम से जल उड़ेलना, श्रौ.प.नि. 32.267, दक्षिण से उत्तर की ओर।

परिधिविमोक पु. (परिधेः विमोकः, वि + मुच् + घञ्) परिधियों को मुक्त करने अथवा ढीली करने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.19 (चयन), वि ते मुञ्चानि रशनां वि रश्मीन्।

परिधिवृक्ष पु. (परिधीनाम् वृक्षः) वृक्ष, जिससे परिधियां निर्मित होती हैं, का.श्रौ.सू. 1.3.18 (अष्टादशेध्मं परिधि-वृक्षाणाम्); पलाश, विकङ्कत, काश्मर्य, बिल्व, खदिर, उदुम्बर, का.श्रौ.सू. 2.8.1।

परिधिसन्धि पु. (परिधीनां सन्धिः) परिधियों का जोड़ (इनकी स्थिति अथवा स्वरूप तब बनता है, जब दो परिधियां विभिन्न दिशाओं में एक बिन्दु पर मिलती हैं), अर्थात् आहवनीय के उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम के कोण पर, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.9; 1.3.1.5; 15.31; आप.श्रौ.सू. 7.5.7।

परिनीयते (परि + नी + यक् + लट् आप.प.प्र.पु.ए.व.) (कर्मवाच्य) वर्तुलाकार मार्ग पर ले जाया जाता है, ऋ.वे. 4.15.1।

परिपशव्या स्त्री. दो द्रवाहुतियों का नाम; 'स्वाहा देवेभ्यः' एवं पश्चात् आहुति के रूप में देय (पशुयाग); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.197।

परिप्लव पु. (बहु.व.) (परि + प्लु + अच्) (आप.) निरन्तरता के साथ, मा.श्रौ.सू. 8.17.7, 'अथ परिप्लवैर्यजते', (अनु. गेल्डर)।

परिप्लवा स्त्री. छोटी पौनी (कलछी या बेलचा), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.18; 2.3.5.15; बिना हत्था वाला (हत्थे से हीन), स्रुक् की तरह, सोम के आहरण (निकालने) के लिए प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 12.2.7; 'द्रोणकलश से सोम को बिना धारा के (अधारा) निकालना, 12.8.11; बौ.श्रौ.सू. 7.7 'परिप्लू' (पात्र) 'तैरता हुआ चम्मच'।

परिप्लवा

परिप्लुपात्र न. काष्ठ से निर्मित एक समतल पूरण-पात्र, श्रौ.को. (सं.) II.558 = परिप्लवा।

परिभक्ष पु. पूर्णरूप से यज्ञ का अनुष्ठान किये बिना सोम-रस का अवैधानिक उपभोग (पान), ला.श्रौ.सू. 3.2.1 (प्रायश्चित्त विहित)।

परिभोजनीय न. (परि + भुज् + अनीयर्) ऋत्विजों, यजमान एवं उसकी पत्नी द्वारा आसन के रूप में प्रयुक्त घास (बर्हिस्) के गुच्छों में एक, बौ.श्रौ.सू. 1.2; इग्गिलंग श.ब्रा.इ. xii.84।

परिमण्डल वि. ('रुक्म' नाम का आभूषण) जिसकी आकृति वर्तुल होती है, का.श्रौ.सू. 16.5.1 (परिमण्डलम् = वर्तुलम्, स.वृ.); (उखा के) चारों तरफ लपेटी गई रस्सी, 'परिमण्डलाभ्यामिण्ड्वाभ्यामुखां परिगृह्णाति----', का.श्रौ.सू. 16.5.3 (कपाल का आधार) आकृति में गोल, आप.श्रौ.सू. 15.3.12 (रौहिणकपाले); न. वृत्त, श.ब्रा. 6.7.1.2; 7.1.1.37; 7.4.1.10; 9.1.2.40; आदि; जै.ब्रा. I.257।

परिमाण न. (परि + मा + ल्युट्) माप, बौ.शु.सू. 1.2।

परिमाद् (द) स्त्री. महाव्रत में पृष्ठस्तोत्र के लिए 'स्तोम-याग के पश्चात् गाये जाने वाले 13 (मो.वि. 16) गानों का नाम, काशिकर 126; द्रा.श्रौ.सू. 10.1.1; 17.12.4; पञ्च.ब्रा. 5.4.1।

परिमार्ष्टि (परि + मृज् + लट् प्र.पु.ए.व.) (अग्नि का) सब तरफ परिमार्जन करता है, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.9।

परियज्ञ पु. (बहु.व.) मुख्य यज्ञ के पूर्व एवं पश्चात् अनुष्ठित होने वाला यज्ञ, अर्थात् दोनों तरफ, 'नाना दीक्षाः परियज्ञाः काल भेदात्' का.श्रौ.सू. 14.1.9 [एकाह (वाज.) से युक्त गौण अथवा द्वितीयक कृत्य]।

परियष्टृ पु. (परि + यज् + तृच्) जो बड़े भाई के पूर्व सोम-याग का अनुष्ठान करता है, श्रौ.को. (सं.) I.119।

परिलेखन न. (परि + लिख् + ल्युट्) सोम-क्रयणी गाय के (सप्तम) पद-चिह्न के चारों ओर 'स्फ्य' अथवा काले हिरण की सींग से एक वृत्त खींचने का कृत्य, बौ.श्रौ.सू. 6.13; जहाँ सदस् के भीतर 'औदुम्बरी' स्तम्भ (यूप) खड़ा करना या उठाना है, उसके चारों ओर कुदाल से, 6.25।

परिवती स्त्री. (परि + मतुप् + ङीप्) 'परि' के उल्लेख वाली ऋचा, 'द्युभिरक्तुभिः परि पात्वस्मान्', ऋ.वे. 1.112.25; श्रौ.को. (सं.) II.87।

परिवत्सरी स्त्री. (बहु.व.) सभी वर्ष, बौ.श्रौ.सू. 5.9 (वरुणप्रघास), तुल. संवत्सरीणां स्वस्तिमाशास्ते, बौ.श्रौ.सू. 5.4 (वैश्वदेवपर्व)।

परिवर्तिनी स्त्री. त्रिवृत्-स्तोम की तीन विष्टुतियों में द्वितीय, श्रौ.ध.चि. पृ. 121; बहिष्पवमान की एक विष्टुति (प्रकार) के गायन की एक प्रविधि, जिसमें तीन ऋचायें आवर्ती (प्राकृतिक, स्वाभाविक) क्रम में व्यवस्थित होती है, उदा— अबस, अबस, अबस। अन्य प्रकार हैं उद्यती (अअअ, बबब ससस) एवं 'कुलायिनी' (अबस बसअ सअब)।

परिवपति (परि + वप् + लट् प्र.पु.ए.व.) छीटता है, छितराता है (ऋजीषेण ग्रावाणः परिवपति), मा.श्रौ.सू. 2.3.4.18 (ऋजीष = तलछट)।

परिवप्य पु. वह होम, जो वपा की झिल्ली से अनुष्ठित होने वाले कृत्यों का आरम्भ एवं समापन करता है, आप.श्रौ.सू. 14.7.5; 'स्वाहा देवेभ्यः' इस मन्त्र से 'आज्यभाग' आहुतियां प्रदान करने के पश्चात् दी जाने वाली दो घृताहुतियों का नाम, प्रथम आहुति वपाहोम के पूर्व एवं दूसरी 'वपा-होम' के बाद, भा.श्रौ.सू. 7.15.15; 7.16.9 (उभयतो वपाम्)।

परिवसेत् (परि + वस् + वि.लि. प्र.पु.ए.व.) (प्रणयन की) प्रक्रिया का समापन अथवा अन्त करना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 7.4.5 (प्रोक्षन्तं परिवसेत् इति अपरम्); द्रष्टव्य—7.6.1।

परिवाद पु. (परि + वद् + घञ्) द्वादशाह में प्रजापति के लिए एक (निन्दात्मक) मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 21.12.1।

परिवाप पु. (परि + वप् + घञ्) भुने हुए (यव) के दाने (मन्थं करम्भ इत्याचक्षते लाजान् परिवाप इति), भा.श्रौ.सू. 13.18.2; सोम-याग में इन्द्र के साथ सरस्वती एवं भारती को अर्पित किया जाने वाला, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.2; 2.3.7.8; लावा (लाजा) अथवा भुने हुए दाने जिनकी सरस्वती, भारती के लिए आहुति दी जाती है। परिवाप के लिए द्रव्य को उड़ेलने के निमित्त पढ़ा जाने वाला मन्त्र है—'सरस्वत्यै भारत्यै------', श्रौ.को. (अं.) II. 367; II. 474; यव के बीज, काशिकर, पृ. 170; चि.भा.से. 1. : चावल के भुने हुए दाने, निष्तुषीकृत (जिनकी भूसी हटा दी गई हो) किन्तु अपिष्ट (न पीसे हुए)। इन्हें उस कटोरे में रखा जाता है, जिसमें घी हो एवं पुरोडाश बनाने के लिए (सवनीय पुरोडाश) बनाने के लिये उबाल दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.4.13; सामान्यत: इन्हें 'लाजा' के रूप में जाना जाता है, 12.4.14 (सोम); 2. दधि, का.श्रौ.सू. 8.9.27 भाष्य।

परिवापन न. (परि + वप् + णिच् + ल्युट्) मूंड़ना, मा.श्रौ.सू. 1.5.1.11 (शिर एवं शरीर के बालों को मुड़वाना)।

परिवाप्या स्त्री. वह गाय जो सरस्वती के लिए आहुति के रूप में प्रदान किये जाने वाली दही के लिए दुग्ध प्रदान करती है, का.श्रौ.सू. 8.9.25 (परिवाप्यायै दोहनम्)।

परिवार पु. (परि + वृ + घञ्) (रथ की) छत अथवा आवरण, आप.श्रौ.सू. 22.12.7।

परिवासन न. (परि + वस् + णिच् + ल्युट्) छिन्न भाग (वेद-संज्ञक दर्भ के गट्ठर का, जो वेदि पर पड़ा रहता है, आप.श्रौ.सू. 1.6.8 (दर्श); द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 10.66।

परिवासयति (परि + वस् + णिच् + ल्युट् प्र.पु.ए.व.) (उत्तरवेदि को) उदुम्बर की जटाओं से ढकी हुई (छन्ना) रखना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 12.5.9।

परिवासित वि. (परि + वास् + क्त) (प्रवर्ग्य में प्रयुक्त दो 'वेदों' में एक) जिसका अग्रभाग काट दिया गया है, आप.श्रौ.सू. 15.5.19।

परिवास्य (परि + वास् + ल्यप्) काट करके, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.2।

परिवाह पु. (परि + वह् + घञ्) एक पौधे का नाम, जिसका प्रयोग वैदिक कर्मकाण्ड में बिछाने अथवा फैलाने के लिए नहीं किया जाता, मा.श्रौ.सू. 8.2.5।

परिवित्त वि. (परि + विद् + क्त) जिसके अनुज (छोटे भाई) ने (पैतृक सम्पत्ति में) अपना हिस्सा उसके पहले ही प्राप्त कर लिया है, आप.श्रौ.सू. 9.12.11 (द्रष्टव्य-परिविन्न)।

परिविन्न वि. (परि + विद् + क्त) जिसके छोटे भाई ने उसके विवाह करने के पूर्व अपना विवाह कर लिया हो, आप.श्रौ.सू. 9.12.11।

परिवीतवती स्त्री. (परिवीत + मतुप् + ङीप्) वह 'ऋचा जिसमें 'परिवीत' शब्द का उल्लेख हुआ हो, अर्थात्—'युवा सुवासा परिवीत आगात्', ऋ.वे. 3.8.4; यज्ञीय स्तम्भ (यूप) के सन्दर्भ में, श्रौ.को. (सं.) II.202।

परिवृक्ति (परि+वृज्+क्तिन्) स्त्री. परित्यक्ता राज्ञी, राजा की परित्यक्ता पत्नी (अनपचिता), ला.श्रौ.सू. 9.10.2; आप.श्रौ.सू. 20.10.2 (अश्व.)

परिवृत न. (परि + वृ + क्त) 'घेरा', का.श्रौ.सू. 7.1.20 (परिवृते चोत्तरपरे); ढका हुआ घेरा (दो), एक का प्रयोग यजमान एवं एक का उपयोग यजमान पत्नी अपने-अपने आधिकारिक शौचालय के रूप में करते हैं; 'शाला' के उत्तर की ओर स्थित (औपदीक्षा के लिए), का.श्रौ.सू. 7.2.7। इसी प्रकार की एक झोपड़ी मार्जालीय के दक्षिण होती है, जहाँ रति-क्रिया सम्पन्न की जाती है, 13.3.9 (मार्जालीयं दक्षिणेन परिवृते मिथुनं सम्भवति); (महाव्रत; द्रष्टव्य - कटपरिवार)।

परिवेविषन्ति (परि + विष् + सन् + लट् प्र.पु.ब.व.) (सोम को जल एवं दुग्ध का) उपभोग करवाते हैं (सन् निरर्थक), आप.श्रौ.सू. 10.3.7।

परिवेषण पु. (परि + विष् + ल्युट्) पूजा, सम्मान, जै.ब्रा. I. 278।

परिव्ययण न. (परि + व्ये + ल्युट्) जिस यूप में वध्य पशु बाँधा जाता है, उसके चारों ओर रस्सी (रशना) बाँधने का कृत्य; यह कृत्य तीन बार नाभि की ऊँचाई तक किया जाता है (पशु.), भा.श्रौ.सू. 7.9.2; का.श्रौ.सू. 6.3.5; इस कृत्य के साथ पढ़ी जाने वाली ऋचा ऋ.वे. 3.8.4 है (युवा सुवासा परिवीत आगात् आदि) यह ऋचा 'परिव्ययणीया' कहलाती है आश्व.श्रौ.सू. 5.3.5-6; द्रष्टव्य श्रौ.को. (सं.) II.196।

परिशयीत (परि+शीङ्+वि.लि.प्र.पु.ए.व.) चारों ओर रख देना चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 6.2:4 (इध्मबर्हिष्) अग्नीषोमीय पशु।

परिश्रयण न. (परि + श्रि + ल्युट्) घेरा (हविर्धान) अथवा पर्दा बनाने के लिए सामग्री, आप.श्रौ.सू. 8.16.6; बौ.श्रौ.सू.

8.9:2; अनाज के दानों का पेषण करते समय चटाई से वेदि को घेरने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 8.13.5 (पितृयज्ञ); द्रष्टव्य – सोम – परिश्रयण, 13.22.3।

परिश्रयति (परि+श्रि+लट् प्र.पु.ए.व.) घेरता है (यजमान की पत्नी का आसन घिरा हुआ होना चाहिए, भा.श्रौ.सू. 11.5.2.

परिश्रित् स्त्री. (परि + श्रि + क्विप्) घेरे की ईंट, का.श्रौ.सू. 1.8.30 (जङ्घामात्री, नाभिमात्री, मुखमात्री); प्रस्तर के घेरे, इनकी संख्या 261 अथवा 394 होती है एवं इनका प्रयोग अग्निक्षेत्र की आलम्बन – इष्टिकाओं के रूप में होता है, का.श्रौ.सू. 16.8.22; चयन एवं साथ ही साथ पितृचिति में वेदि के चयन में प्रयुक्त होने वाली ईंट का एक प्रकार, श्रौ.को. (अं.) 1.105; का.श्रौ.सू. 21.3–4; 16.8.24।

परिश्रित न. (परि + श्रि + क्त) दीक्षा में 'शाला' के चारों तरफ चटाई का एक घेरा या आहाता, आप.श्रौ.सू. 10.5.1 (सोम); गार्हपत्य के सामने एक प्रकार का आवरण 3.9.3 (दर्श); 'पत्नीशाला' के सामने ताकि पत्नी महावीर 15.5.2 (प्रवर्ग्य) न देख सके; उस स्थल के चारों ओर जहाँ से सोम–विक्रयी सोम–लता को उखाड़ता है, भा.श्रौ.सू. 10.13.10–11 (सोम)।

परिश्रित्य (परि + श्रि + ल्यप्) (यज्ञ–स्थल को) घेरकर, मा.श्रौ.सू. 5.1.6.6; भा.श्रौ.सू. 9.8.7 (प्रायश्चित्त)।

परिषवण न. (परि + सु + ल्युट्) (दर्भ–संज्ञक घास के पुञ्ज के) चारों ओर अनुरेखण का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 1.3.20; गास के गुच्छे को पकड़ना, आप.श्रौ.सू. 14.6।

परिषौति (परि + सु + लट् प्र.पु.ए.व.) एक साथ पकड़ता है, आप.श्रौ.सू. 1.3.6 (पवित्र घास); मा.श्रौ.सू. 1.1.1.29।

परिष्कार पु. (परि + कृ + घञ्, सुडागमः) परिशोधन, सजाना, जै.ब्रा. I.341।

परिष्टोभ पु. बगल या चारों ओर मौखिक संशोधन। जै.ब्रा. III.25

परिसमूहन न. (परि + सम् + ऊह् + ल्युट्) अग्निहोत्र के पूर्व एवं बाद में तीन अग्नियों के चारों ओर बटोरने (झाड़ू लगाने) का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 6.8.11–12 (परिसमूहति); द्रष्टव्य – श्रौ.प.नि. 10.69।

परिसर्पम् क्रि.वि. वर्तुलाकार तरीके से चलते हुए, 'प्रतिदिशं परिसर्पम्', का.श्रौ.सू. 17.4.7 (चयन)।

परिसामन् न. एकल–साम; एक साम का नाम, जो कभी–कभी अन्तर्निविष्ट किया जाता है (मो.वि.); श्रौ.को. (अं.) II.386; ला.श्रौ.सू. 1.5.1; 1.8.5; द्रा.श्रौ.सू. 2.1.1 (सामन्यतः इसका गायन प्रस्तोता के द्वारा किया जाता है), 1.5.1।

परिसृत्वरी स्त्री. (वि.) (परि + सृ + क्वरप् + ङीप्) चारों ओर घूमने वाली गाय, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.23; द्रष्टव्य – परिसृक्, जै.ब्रा. II.156।

परिस्तरण पु. (परि + स्तृ + ल्युट्) (अग्नि–स्थल के) चारों ओर (पवित्र घास) फैलाना, का.श्रौ.सू. 4.13.15 ('परिस्तरणं वा सर्वेषां प्रागुदग्भि-----'); द्रष्टव्य – अग्निपरिस्तरण; श्रौ.प.नि. 14.103।

परिस्त्रज् वि. (परितः स्रग् यस्य) जिसके चारों ओर हार लिपटा हो (ऐन्द्रवायव पात्र), मा.श्रौ.सू. 2.3.2.15।

परिस्वार पु. विधायी स्वर पर 'स्वरित' संज्ञक स्वर से युक्त अक्षर, ला.श्रौ.सू. 7.8.8; 'इसको 'मध्ये' निधन' (कौञ्च साम के मध्य समाप्त होने वाला) के रूप में व्यवहृत करना चाहिए।

परिस्रुच् वि. (परितः स्रुक् यस्य) जिसके चारों तरफ करधनी हो, भा.श्रौ.सू. 13.1.10।

परिस्रुत् स्त्री. (परि + स्रु + क्विप्) सुरा, का.श्रौ.सू. 14.1.14 (शीसेन परिस्रुतः क्रयणम् केशवात्), (वाजपेय); सुरा अथवा कुछ लोगों के समातनुसार कच्चे अनाज से तैयार की गई, न छानी गयी (अशोधित) सुरा, आप.श्रौ.सू. 18.1.10; 19.1.8; द्रष्टव्य – हि.आ.ध. II.(2), पृ. 1225–26; 'ऊर्जं' वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्, वा.सं. 2.34 (परिस्रुतं सुराम्, उवट); गार्हपत्य के सामने निर्मित एक गर्त (गड्ढे) में एक विशेष प्रविधि से रखी गई एवं पके हुए चावल से निर्मित सुरा का पारिभाषिक नाम, आप.श्रौ.सू. 19.1–4; 19.5. इसका उपयोग चरक एवं कौकिल सौत्रामणियों में होता है (सुरा को तैयार करने के लिए धान 'तोक्म', मासर, अर्थात् भुना हुआ यव, अर्थात् नग्रहू का मिश्रण बनाना चाहिए और इस पर आटा प्राप्त करने के लिए, उस पर गोदुग्ध के क्षारण के साथ श्यामाक छितरा देना चाहिए), श्रौ.को. (अं.) 1.922।

परिहरण न. (परि + हृ + ल्युट्) (रात भर रखे गये) वसतीवरी – संज्ञक जल के साथ प्रयाण अथवा शोभायात्रा (आगे ले

जाना), बौ.श्रौ.सू. 15.21; पवित्र अग्नि के चारों ओर किसी वस्तु को ले जाना, आप.श्रौ.सू. 3.1.5; हविर्द्रव्य के चारों ओर जलती लकड़ी (उल्मुक) घुमाना, आश्व.श्रौ.सू. 2.3.7 (पुनर्ज्वलता परिहरेत्)।

परिहरणकाल पु. (परिहरणस्य कालः) (ब्रह्मा के भाग को) दूसरी ओर मोड़ने का समय। मा.श्रौ.सू. 5.2.10.11

परिहार पु. (परि + हृ + घञ्) प्याले के (शिर) को चारों ओर घुमाना, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.31।

परिहारम् क्रि.वि. (प्याले को) सब तरफ घुमाते हुए, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.37 (आश्विन प्याला)।

परिहिते वि. (परि + धा + क्त) वि. (सप्त.) पूर्ण हो जाने पर, भा.श्रौ.सू. 13.23.11।

परिहोम पु. दोनों तरफ आहुति देना, अर्थात् मुख्य आहुति के पहले एवं बाद में, बौ.श्रौ.सू. 20.19।

परिह्वालम् क्रि.वि. (परि + ह्वल् + घञ् + अमु) लड़खड़ाहटपूर्ण ढंग से बोलते हुए, भा.श्रौ.सू. 10.7.14 (दीक्षा के समय यजमान द्वारा आचरित); (परिह्वालम् वदति), का.श्रौ.सू. 7.5.5 (परिह्वालम् = मृदुवचनम्, स. वृ.)।

परीणाह पु. (परि + नह् + घञ्, दीर्घत्वम्) आवरण, आप.श्रौ.सू. 1.17.8; भाष्य.धू.।

परीशास पु. (द्वि.व.) अग्नि से 'घर्म' (महावीर) को उठाने के लिए प्रयुक्त एक जोड़ा संड़सा, का.श्रौ.सू. 26.2.10 (सन्दंशाकारावौदम्बरौ, स.वृ.) = शफ।

परीष्ट वि. जिसके सबसे छोटे भाई ने उसके सोम-याग का अनुष्ठान करने के पूर्व सोम-याग का अनुष्ठान कर लिया हो, आप.श्रौ.सू. 9.12.11।

परुक्ण वि. ग्रन्थियों अथवा जोड़ों (सन्धियों) से युक्त, भा.श्रौ.सू. 5.19.8।

परुत्क वि. जोड़ो (सन्धियों) से युक्त (दर्भ-संज्ञक घास), आप.श्रौ.सू. 5.27.10 (पुनराधेय)।

परेगोष्ठ पु. (सप्तमी) गोशाला में अथवा उसके आगे, मा.श्रौ.सू. 2.1.5.17 (आतिथ्येष्टि में एक एक जलती हुई लकड़ी यहाँ फेंकी जाती है); द्रष्टव्य - परोगोष्ठ।

परोक्षम् क्रि.वि. (अक्ष्णः परम्) परोक्ष रूप से, जै.ब्रा. III.298।

परोगव्यूति स्त्री. (सप्त.) गायों के मार्ग (अथवा चारागाह) से दूर, आप.श्रौ.सू. 3.5.8 (इध्मसन्नहनानि न्यस्यति)।

परोगोष्ठ न. (सप्त.) गोशाला के ऊपर, आप.श्रौ.सू. 3.5.8; मा.श्रौ.सू. 1.7.4.43; 6.1.5.22.

पर्णकषायपक्व वि. (पर्णकषायेन सह पक्वम्) पलाश के क्वाथ (काढ़े) के साथ उबाला गया जल, 'आपो हिष्ठेति पर्णकषायमुदकमासिञ्चति पिण्डे', का.श्रौ.सू. 16.3.16 (उखा)।

पणवल्क न. (पर्णस्य वल्कम्) पलाश वृक्ष की फर्री या खाल, आप.श्रौ.सू. 1.4.1।

पर्णशाखा स्त्री. (पर्णस्य शाखा) पलाश की शाखा, 'पर्णशाखां छिनत्ति शामीलीं वा', का.श्रौ.सू. 4.2.1।

पर्णसेव (पर्णस्य सेवः) पलाश का पाद-वृन्त, भा.श्रौ.सू. 5.11.3 भाष्य - 'पलाशवृन्तः', पलाश का त्रिपत्र (तिनपतिया)।

पर्यग्नि (वध्य के) चारों ओर ले जायी जा रही अथवा घुमायी जा रही अग्नि, 'पर्यग्नयेऽनुवाचयति, का.श्रौ.सू. 6.5.1 (परि सर्वतोऽग्निर्यस्य, स.वृ.)।

पर्यग्निकरण न. आहवनीय से निकाली गई जलती लकड़ी के साथ किसी वस्तु के चारों ओर तीन बार जाना (अर्थात् परिक्रमा करना)। इसका अनुष्ठान आग्नीध्र करता है, जो अपने हाथ में उल्मुक को पकड़े रहता है और वस्तुओं को सदैव दाहिने रखते हुए (उसके चारों तरफ) घूमता है। ये वस्तुएं हैं—'यूप' आहवनीय, चात्वाल, शामित्र एवं विभिन्न अन्य सामग्रियां, आप.श्रौ.सू. 7.15.2; 1.25.2; 1.25.8. भाष्यानुसार पशुयाग में पशु के चारों ओर छः बार, का.श्रौ.सू. 6.5.2-4. इस प्रकार आग से घेरी गई वस्तुओं को 'पर्यग्नि' कहते हैं, आप.श्रौ.सू. 7.15.1 भाष्य। द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 18.145।

पर्यङ्ग्य पु. उन इक्कीस पशुओं का पारिभाषिक नाम, जिनके अङ्ग यज्ञीय अश्व के अङ्गों में पलाश वृख की शाखा से बांध दिये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 20.13.12 (आश्व); देखें - पशुओं की सूची, डुमण्ट, अश्व 327।

पर्यवलोपम् क्रि.वि. (अवलोपपर्यन्तम्) अर्थात न दिखाई पड़ने अथवा न हटाये जाने तक; 'एतस्यैव बर्हिषा स्तीर्णस्य पर्यवलोपं स्तम्बयजुर्हरति', बौ.श्रौ.सू. 6.20:4।

पर्याणयजुस् न. (पर्याणसम्बद्धं यजुः) जल पर यात्रा करने से सम्बद्ध यर्जुमन्त्र, श्रौ.को. (अं.) II.i.72; (सं.) II. 521।

पर्याणहन न. (परि + आ + नह् + ल्युट्) (सोम-शकट को) ढकने वाला वस्त्र, मा.श्रौ.सू. 2.5.4.36।

पर्याप्लवते (परि + आ + प्लु + लट् प्र.पु.ए.व.) जल में डुबाता है, तर करता है, बौ.श्रौ.सू. 6.10।

पर्याय पु. (परि + इ + घञ्) 1. पत्थर से सोम-लताओं पर चोट करने की एक बारी अथवा एक आवृत्ति। इस प्रकार की तीन आवृत्तियां (चक्र) होती है, आप.श्रौ.सू. 12.12.8-9, 2. स्तोम में विद्यमान 'तृच्' के गायन का एक आवर्तन (अथवा बारी); वहाँ सदैव तीन आवृत्तियां होती है, जो मिलकर एक 'विष्टुति' (वैभिन्य) बनाती हैं। प्रत्येक पर्याय में 'विष्टुति' एवं 'स्तोम' पर आश्रित विभिन्न अथवा समान संख्या में चीन चरण (पंक्तियां) होती हैं। प्रत्येक पर्याय की रचना उपविभागों के तीन प्रकार की आवृत्तियों से होती है, एक के बाद दूसरे क्रम से विभिन्न स्थितियों में आने 'तृचभागा', 'आवापा' (स्थान) एवं परिचरा (ऋचाओं से) युक्ताओं के साथ इसे 'विष्टाव' कहते हैं, द्रष्टव्य - 'रात्रिपर्याय', जिसका अनुष्ठान रात्रि में होता है और जिसमें 4 स्तोत्र, 4 शस्त्र एवं 4 आहुतियां होती हैं। उनके 'रात्रि-पर्याय' का गायन 'अतिरात्र' के लिए किया जाता है; 3. (पाठ का) चक्र मा.श्रौ.सू. 6.2.3.13 (परेष्ठी त्वा सादयतु इति पर्यायेण उपदधाति); उच्चारण का एक चक्र, आप.श्रौ.सू. 17.20.1 (ऋताषाड् ऋतधाम इति पर्यायम् अनुद्रुत्य); 4. 'सम्राड् अ------', आदि से प्रारम्भ होने वाले मन्त्रों का नाम, जिनका उच्चारण आहवनीय अग्नि की प्रशंसा में इसके आधन के बाद किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 1.50; पशु-याग के प्रसङ्ग में पर्याय मन्त्र वे हैं, जो 'अग्नेर्भस्मासि-----' से प्रारम्भ होते हैं और जिनका उच्चारण 'उत्तरवेदि' की नाभि में मेष के ऊन, चरु एवं गुग्गुल को रखते समय किया जाता है, वारा.श्रौ.सू. 1.6.2.31-3.25. पितृमेध में यजमान इन मन्त्रों का उच्चारण करता है। यहाँ इनका प्रारम्भ 'ब्रह्मणा एकहोता-----' से अग्नि पर रखे गये उस व्यक्ति से प्रार्थना करने के लिए किया जाता है, जिसकी अन्त्येष्टि हो चुकी है, श्रौ.को. (अं.) 1.1065।

पर्यायविष्टाव पु. (पर्यायश्च विष्टावश्च:) ऋचाओं की आवृत्ति=पर्याय एवं स्तोत्र, ला.श्रौ.सू. 2.6.9।

पर्यायुवत् वि. (परि + आ + यु + शतृ) चलाता हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.5।

पर्यारिणी स्त्री. (परि + आ + ऋ + ल्युट् + ङीप्) वह गाय जो देर से प्रसव करती है, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.23।

पर्यास पु. (परि + आ + अस् + घञ्) 1. (सोम एवं दधिभावापन्न दुग्ध) का मिश्रण, मा.श्रौ.सू. 2.5.1.5; 2. परिधानीय के शीघ्र पूर्व आने वाले सूक्त का अन्तिम भाग, उदा. - द्वितीय 'आज्य शस्त्र' का चतुर्थ भाग; निष्केवल्य का पञ्चम, श्रौ.को. (सं.) II.415. याज्या के पूर्व यह रूप में संकेतात्मक है, आश्व.श्रौ.सू. 6.4.9।

पर्यासम् क्रि.वि. हिलाते हुए अथवा विलोडन करते हुए (दधिनि मधुमिश्रे दर्भमुष्टिं पर्यासम्----इति----अग्निं व्यावोक्षिति), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.19; न. पूर्णता, श्रौ.को. (सं.) II.410।

पर्याहित वि. (वह व्यक्ति) जिसके छोटे भाई ने उसके अग्न्याधान के पूर्व अग्नि का आधान कर लिया हो, आप.श्रौ.सू. 9.12.11।

पर्युक्षति (परि + उक्ष् + लट् प्र.पु.ए.व.) (अग्नि के) चारों ओर (जल) छिड़कता है, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.10; कृत्य का नाम है पर्युक्षण।

पर्युदयम् क्रि.वि. सूर्योदय के तुरन्त बाद, 'प्रथमास्तमिते पर्युदयं च स्वर्गकामस्य', का.श्रौ.सू. 4.15.11 (प्रथमा अग्नि-होत्राहुति)।

पर्यूहण न. (परि + ऊह् + ल्युट्) (गर्त में खड़ी की गई) ('औदुम्बरी') के चारों ओर गर्त में मिट्टी भरना, का.श्रौ.सू. 8.5.31 (पर्यूहणम् = पांसुभिरवटपूरणम्); भा.श्रौ.सू. 12.10.3 (8.8.13 के साथ)।

पर्यूहति (परि + ऊह् + लट् प्र.पु.ए.व.) (दुग्ध पात्र को जलते कोयले से बगल से) ढकता है, भा.श्रौ.सू. 1.12.13।

पर्योषति (परि + ओष् + लट् प्र.पु.ए.व.) (वेदि के) चारों ओर दहन करता है (यजमानो वेदिं पर्योषति), मा.श्रौ.सू. 2.5.5.18।

पर्वन् न. 1. चन्द्रमा के स्थित्यन्तर (बदलने) के अनुसार कर्मकाण्डीय अवसर (वेला), मा.श्रौ.सू. 1.6.4.1; 2. अवधिकाल; चातुर्मास्य याग के चार अङ्ग, 'वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय'—इन प्रत्येक का अनुष्ठान सम्पूर्ण वर्ष में होने वाली ऋतुओं की सन्धि पर होता है, आप.श्रौ.सू. 8.4.4; 3. पर्व-दिवस, 'तत्र सिद्धं द्वे पर्वे पूर्वस्यां पर्व निधाय उत्तरस्याम् इष्ट्या यजेत्, अथ एकपर्वे, संस्थाप्य पर्व सद्यस्कालम् इष्टिं निर्वपति', भा.श्रौ.सू. 6.15.17।

पर्ववती वि. (पर्व + मतुप् + ङीप्) पर्व से युक्त (वनस्पति), मा.श्रौ.सू. 8.2.5 (द्रव्यालाभे स्तरणार्थम्)।

पर्वसंस्था स्त्री. (पर्वण: संस्था = समाप्ति:) चातुर्मास्य-याग के विभिन्न भागों का समापन, का.श्रौ.सू. 5.2.13 (पर्वसंस्थासु वपनं वा प्रागन्त्यात्)।

पर्शु पु. एक प्रकार का काटने का यन्त्र (उपकरण), 'हँसिया' (दात्र), किसी पशु, अश्व अथवा बैल का कटक (उठा हुआ भाग), आप.श्रौ.सू. 11.5.2 (रु. - पश्चादे: पर्वस्थि), दर्भ को काटने के लिए प्रयुक्त, भा.श्रौ.सू. 1.3.5-6, डब्ल्यू.एम. आस्टिन JAOS 57,1937।

पलद पु. बाल-कर्तन के कृत्य में प्रयुक्त होने वाले तिनकों अथवा घास का गुच्छा, वारा.श्रौ.सू. 9.3.1.7; वारा.गृ.सू. 4.21।

पलाशकषाय पु. (पलाशस्य कषाय:) पलाश के लकड़ी का क्वाथ, आप.श्रौ.सू. 16.4.1 (उखासम्भरण)।

पलाशपत्रमध्यम पु. (पलाशस्य पत्राणां मध्ये भव:) पलाश के पत्रों का मध्य (मध्य में होने वाला), 'पात्र्यां कृत्वा दक्षिणाग्न्युल्मुकमादाय चतुष्पथे पलाशपत्रमध्यमेन होम:', का.श्रौ.सू. 5.10.7 (त्रैयम्बकेष्टि)।

पलाशपुट न. (पलाशस्य पुटम्) पलाश के पत्ते से निर्मित दोना, का.श्रौ.सू. 16.6.26।

पल्पूलन न. छारयुक्त (लवणीय) जल, बौ.श्रौ.सू. 2.20:2।

पल्पूलित वि. जल से प्रोक्षित, (अथ एतावाश्वगर्दभावग्रेण शालां पल्पूलितौ तिष्ठत:), बौ.श्रौ.सू. 10.1:17।

पल्यङ्ग्य (परि + अङ्ग् + ल्यप्) हिला करके, कँपा कर चलाकर (तानूनप्त्र घृत को), का.श्रौ.सू. 8.2.1 (पल्यङ्ग्य निदधात्यपिधायान्मृन्मयेन)।

पल्व पु. (न.) यज्ञिय अन्न से युक्त शूर्प (सूप), बौ.श्रौ.सू. 20.6।

पवन न. (पू + ल्युट्) 21 दर्भपत्रों से (के साधन से) दीक्षा के समय यजमान के शरीर के पवित्रीकरण का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 10.7.5 (सोमयाग)।

पवमानग्रह पु. (पवमानस्य ग्रह:) प्रात:कालीन सवन में बहिष्पवमान स्तोत्र के प्रारम्भ होने से थोड़ा पहले निकाले गये शुद्धीकृत सोम के कलशों का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.16.12; मा.श्रौ. सू. 13.16.12 इनका सम्बन्ध पवमान स्तोत्र से है। ये हैं : द्रोणकलश, आधवनीय एवं पूतभृत्, जिनका ग्रहण सामान्यतया अथवा औपचारिक रूप से क्रमश: 'उपयाम-गृहीतोऽसि', 'इन्द्राय त्वा' एवं 'विश्वेभ्यस्त्वा' से होता है, श्रौ.को. (अं.) I.440; 443; 632, आदि।

पवमानस्तोत्र न. (पवमाने स्तोत्रम्) वह स्तोत्र जिसके गायन के दौरान सोम का शोधन होता है; प्रत्येक सवन का प्रथम स्तोत्र, आप.श्रौ.सू. 12.17.8 (सोम)। प्रात:कालिक सवन में इसे बहिष्पवमान, माध्यन्दिन सवन में 'माध्यन्दिन' एवं तृतीय अथवा सायंकालिक सवन में 'आर्भव' = पवमान कहते हैं।

पवमानानुमन्त्रणम् न. (पवमानेन सम्बद्धम् अनुमन्त्रणम्) शोधन (से सम्बद्ध) मन्त्रों का उच्चारण, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.6।

पवमानेष्टि स्त्री. (अग्निपवमानाय इष्टि:) अग्नि-पवमान, आदि की इष्टि, श्रौ.प.नि. 63.409।

पवमनोपाकरण न. (पवमानस्य उपाकरणम्) (प्रस्तोता के लिए) पवमान ऋचाओं के गायन का लक्ष्य निर्धारित करना, 'जपत्सु सोम:पवत इति पवमानोपाकरणं प्रस्तोत्रे तृणे प्रयच्छन्', का.श्रौ.सू. 9.6.34 (दो तृणों को देते हुए); द्रष्टव्य-अतृणो वा, 9.6.36; कुशमुष्टिं वा, 9.7.1।

पवित्र न. (पू + इत्र, 'अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्र:' पा. 3.2.184) 1. ऊन से निर्मित सोम का छन्ना, आप.श्रौ.सू. 10.26.12 = दशापवित्र; 2. दो दर्भपत्रों से निर्मित 'छन्ना, दोनों की चौड़ाई समान होती है, इनकी लम्बाई एक 'प्रादेश' (12 अंगुल, एक बित्ता) होती है और इनके छोर अविच्छिन्न होते हैं; इनका प्रयोग 'प्रोक्षणी' - संज्ञक जलों के विशुद्धीकरण के लिये होता है (जो इसके बदले यज्ञीय सामग्रियों एवं उपकरणों के प्रोक्षण के लिए प्रयुक्त होता है), आप.श्रौ.सू. 1.11.9; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 9.56; 3. तीन - स्तरीय (तीन लड़ियों वाले) दर्भपत्रों से युक्त छन्नी, जिसकी लम्बाई 1 प्रादेश और उस शमी-शाखा में बाँध दी जाती है, जिससे 'उपवेष' का निर्माण होता है = शाखापवित्र, आप.श्रौ.सू. 1.6.9; मा.श्रौ.सू. 1.6.11 का.श्रौ.सू. 4.2.21; कुम्भी में स्थित गर्म दूध को (इससे) चलाते हैं एवं शुद्ध करते हैं, भा.श्रौ.सू. 1.12.4 (दर्श) प्रवर्ग्य में 'मुञ्ज' - संज्ञक घासविशेष का एक छनना प्रयुक्त होता है, आप.श्रौ.सू. 15.5.20; 4. राजसूय के प्रथम दिन अनुष्ठित होने वाले सामान्य प्रकार के सोमयाग (अग्निष्टोम) का नाम, आप.श्रौ.सू. 18.8.3-4; इसे प्रायणीय भी कहते हैं, बौ.श्रौ.सू. 12.1।

पवित्रवती स्त्री. (पवित्र + मतुप् + ङीप्) वह ऋचा जिसमें 'पवित्र' शब्द का उल्लेख हो 'पवित्रं ते विततम्' आदि, ऋ.वे. 9.83.1 (ग्रहग्रहण)।

पवित्रान्तर्हित वि. (सप्त.) (पवित्राभ्याम् अन्तर्हितम्) जब दर्भ-पवित्र बीच में रखे जाते हैं, अर्थात् पात्र के आर-पार ताकि उनके माध्यम से पात्र में उड़ेला गया जल शुद्धीकृत हो जाय, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.15।

पवित्रेष्टि स्त्री. पवित्रता अथवा शुद्धीकरण के लिए अनुष्ठित होने वाली एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.121, 472।

पशु न. पशुयाग, जो हविर्यज्ञ के रूप में व्यवहृत होता है और इसका 'इष्टविध' अथवा सोमविध के रूप में वैभिन्न्य बतलाया गया है; पूर्व वाले में 'प्रणीता' जल तैयार करना एवं इसको ले जाना, विष्णु-क्रम करना, वध्यपशु के निश्चित अंगों की आहुति देना, आदि, और बाद वाले से यह भिन्न है, आप.श्रौ.सू. 7.28.1; का.श्रौ.सू. 6.2.4 (व्रतोपाय प्रणीताऽऽज्यभाग-भागावदान-पूर्णपात्र-विष्णुक्रमान् कुर्याद्धविर्यज्ञविधे) भाष्य-फिलहाल इसके दो प्रकार हैं : स्वतन्त्र पशु-याग, जो सामान्यतया 'निरूढपशुबन्ध' जिसे 'निर्मित' कहा जाता है, के नाम से जाना जाता है (आश्व.श्रौ.सू. 3.8.3 भाष्य) और एक का सम्बन्ध सोमयाग से है, 'सौम्य' (आश्व.श्रौ.सू. 3.8.3) : अग्नीषोमीय, सवनीय एवं अनुबन्ध्य। 'निरुढपशुबन्ध' जो अग्निषोमीय की विकृति है, सभी अन्य पशुयागों की (वह) प्रकृति है।

पशुकाम न. दो 'रयिमन्त' आज्य-भाग एवं दो सहस्वन्त संयाज ऋचाओं की कर्मकाण्डीय प्रविधि का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.131; मा.श्रौ.सू. 5.1.5.4।

पशुतन्त्र (पशुयागस्य तन्त्रम्) 'निरुढपशुबन्ध'-संज्ञक याग की प्रक्रिया, 'सपशुषु पशुतन्त्रं प्राधान्यात्', का.श्रौ.सू. 5.11.19; आश्व.श्रौ.सू. 3.6.28; शां.श्रौ.सू. 5.19.5 (न निगमाः सन्ति पशुतन्त्रे चोद्यमानानाम्, अनु. पशुयाग के सम्बद्ध अनुष्ठान में कोई अन्तर्वेशन नहीं है); तुल. 9.27.3; श्रौ.को. (सं.) I.131, = पशुकाम।

पशुपुरोडाश पु. (पशौ पुरोडाशः) वध्य पशु के बलिदान के पूर्व पशुयाग के प्रधान देवताओं के लिए अर्पित की जाने वाली 11 अथवा 12 कपालों पर संस्कृत पुरोडाश की एक आहुति, आप.श्रौ.सू. 7.22.1, 11; पशु के अंगों के पकाये जाने अथवा वपा के होम के अनन्तर आहुति के रूप में प्रदत्त, भा.श्रौ.सू. 7.17.10; शां.श्रौ.सू. 1.9.1; सवनीय पशु में पशुपुरोडाश की आहुति माध्यन्दिन सवन के समय दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 13.1.12, का.श्रौ.सू. 8.7.25 'पशु पुरोडाशान्निर्वपति सावित्रं वारुणं दशकपालम्', का.श्रौ.सू. 19.4.1 (ऐन्द्र एकादशकपालः, सावित्रो द्वादशकपालः, वारुणो दशकपालः, स.वृ.); शां.श्रौ.सू. 5.19.1; मा.श्रौ.सू. 5.2.8.14 (पशु-पुरोडाश); द्रष्टव्य ऋ.वे. 3.28.1।

पशुपुरोडाशतन्त्र न. (पशुपुरोडाशस्य तन्त्रम्) पशुयाग की प्रसक्ति में पुरोडाश की आहुति देने का प्रतिदर्श अथवा प्रविधि, का.श्रौ.सू. 15.4.16-17।

पशुपुरोडाशश्रपण न. (पशुपुरोडाशस्य श्रपणम्) पशु-याग के प्रसङ्ग में विहित पुरोडाश को पकाना (सेंकना), का.श्रौ.सू. 1.1.15 (भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम्)।

पशुपुरोडाशार्थ पु. (पशुपुरोडाशाय अयम्) पशु-याग की प्रसक्ति में (देवताओं) के लिए अभिप्रेत (पुरोडाश एवं चरु), का.श्रौ.सू. 15.10.20 (अनुयाजान्ते पुरोडाशैश्चरति)।

पशुबन्ध पु. पशु-याग, जै.ब्रा. I.40

पशुबन्ध

पशुरशना स्त्री. (पशुबन्धनी रशना, पशोः वा रशना) वह रस्सी जिससे पशु यूप (स्तम्भ) में बाँधा जाता है, काशिकर इण्डेक्स I।

पशुवत्संप्रैषः पु. (पशौ = पशुयागे इव सम्प्रैषः) पशु-याग में दिए गये प्रैष के समान प्रैष; 'आज्येन दध्ना उदेहि', आप.श्रौ.सू. 8.2.7 (वैश्वदेव पर्व)।

पशुश्रपण पु. (पशोः श्रपणः) 1. कसाई की अग्नि, मा.श्रौ.सू. 3.5.18; 6.2.6.2; 10.2.2.10 (अग्नि-स्थल का भस्म भी);

2. वह स्थान स्थान जहाँ पशु पकाया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.29।

पशुश्रपणी स्त्री. (पशोः श्रपणी) वध्य-पशु के अङ्गों को पकाने के लिए प्रयुक्त पात्र, भा.श्रौ.सू. 7.6.6।

पशुसंज्ञपन (पशोः संज्ञपनम् = मारणम्) वध्यपशु की बलि, मा.श्रौ.सू. 1.8.3.33।

पशूखा स्त्री. (पशुश्रपणस्य उखा) पशु के अंगों को पकाने के लिए अभिप्रेत कड़ाही या पात्र, मा.श्रौ.सू. 3.5.14; आप.श्रौ.सू. 9.18.12; का.श्रौ.सू. 25.9.15।

पशूपाकरण न. (पशोः उपाकरणम्) वध्य पशु को समर्पित करना, आप.श्रौ.सू. 19.1.18; भा.श्रौ.सू. 12.19.5।

पश्चात्तिरश्चि स्त्री. पीछे की तिर्यक् रेखा, बौ.शु.सू 1.76; वेदि के पश्चिम में दो श्रेणियों (उत्तर-दक्षिण) को जोड़ने वाली पार्श्वस्थ तिर्यक् (अनुप्रस्थ) रेखा, आप.श्रौ.सू. 7.3.8 (= तिर्यक्)।

पश्चादपवर्गम् क्रि.वि. घास के गुच्छे को पश्चिम में प्रथन (बिछाने अथवा छितराने) की प्रक्रिया का जैसे कि अन्त हो सके, का.श्रौ.सू. 2.7.22 (पश्चादपवर्गः समाप्तिर्यस्य, स.वृ.)।

पश्चादासेवनवती स्त्री. (पश्चादासेवनं यस्याः सा) वि. पीछे की ओर निर्गम से युक्त (वसोर्धारा के लिए करछुल), आप.श्रौ.सू. 10.17.8।

पश्चादुपस्थम् क्रि.वि. पश्चिम की ओर उन्मुख (इस विधि से यूप का उत्थापन करना चाहिए), मा.श्रौ.सू. 1.8.2.19।

पश्चार्ध्या स्त्री. (पश्चार्धे भवा) पश्चिमी अर्ध (अथवा कोण), भा.श्रौ.सू. 8.20.11 (पितृयज्ञ); तुल. दक्षिणार्ध्या, पूर्वार्ध्या, वही; हविःशेष के गोले (पिण्ड) यहाँ रखे जाते हैं।

पश्वसी स्त्री. (द्वि.व.) (पशुश्च असिश्च, परवल्लिङ्गं----पा 2.4.26) पशु (के अंग) एवं चाकू, का.श्रौ.सू. 6.8.7 (पश्वसी वपावद् धृत्वा दक्षिणतः प्रतिप्रस्थाता वेद्यां प्लक्ष-शाखास्ववद्यति)।

पश्विज्या स्त्री. (पशुना इज्या) पशु-याग का.श्रौ.सू. 6.1.1 (पश्विज्या संवत्सरे संवत्सरे प्रावृषि)।

पष्ठवाह् वि. (पष्ठ + वह् + क्विप्) पशु-प्रजनयिता (चार वर्षीय) बैल, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.18; पष्ठवाट् च में पष्ठौही च मे, वा.सं. 18.27 (पष्ठं वर्षचतुष्कं वहतीति पष्ठवाट् चतुर्वषो वृषः, उवट); द्रष्टव्य - गाँधे वी, BDCRI 35 (3-4) 1976, पृ. 40-47।

पष्ठौही स्त्री. चार साल की गाय (देविका-संज्ञिका आहुतियों की दक्षिणा), मा.श्रौ.सू. 9.1.1.30; एक अजातवत्सा गाय दक्षिणा के रूप में ऋत्विज् को दी जाती है, भा.श्रौ.सू. 13.8.16; ला.श्रौ.सू. 4.12.8।

पयस्या स्त्री. आमिक्षा का समानार्थी, आप.श्रौ.सू. 8.5.33; का.श्रौ.सू. 4.3.10 (भाष्य)।

पांशु पु. धूलि, ला.श्रौ.सू. 5.1.4; 10.5.16 = पांसु।

पाकयज्ञ पु. पके हुए अथवा उबाले हुए (चावल के) दानों की आहुति देते हुए अनुष्ठित होने वाला यज्ञ, का.श्रौ.सू. 6.10.26 (आस्रवहोमः, हुत्वा शेषप्राशनम्); मो.वि. कुछ आचार्यों के मतानुसार, एक पाकयुक्त (एवं कुछ के मतानुसार एक साधारण अथवा गृह्य) यज्ञ, गोंड, 'गृह्य यज्ञ', The Ritual Sutras, इण्डेक्स, पृ. 662; इसका अनुष्ठान गृह्य दर्शपूर्णमास की तरह किया जाता है, कौशि.सू. 6.30।

पाकयज्ञधर्म पु. (पाकयज्ञस्य धर्मः = नियमः) गृह्य (घरेलू) यज्ञ के लिए विहित नियम, मा.श्रौ.सू. 8.23.7।

पाजक पु. एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन, आप.श्रौ.सू. 5.5.1[धू. पटलकः; विदलनिर्मितं महानसोपकरणम् इति रुद्रदत्तः मार्तिकस्सरावः (मडक्कु) इति आण्डपिल्लै]; जिसमें पकाने से पूर्व 'ब्रह्मौदन' रखा जाता है (चि.भा.से); चरक सौत्रामणी में प्रयुक्त एक प्रकार का मृत्पात्र, श्रौ.को. (अं.) 1.903; न. बाँस से निर्मित टोकरी, भा.श्रौ.सू. 5.3.2 (अनु-काशिकर)।

पाणिकोष्ठ पु. प्याले जैसा हाथ (चुल्लू), मा.श्रौ.सू. 1.2.4.8,13 (आग्नीध्र चुलुकायित हाथ के साथ कूड़े के ढेर पर बैठता है), वारा.श्रौ.सू. 1.3.1.37।

पाणिग्रहण न. हाथ में हाथ लेना, हाथ पकड़ना, विवाह, बौ.गृ.सू. 2.6.17.

पाण्डार पु. (न.) एक प्रकार की पगड़ी, जिसे यजमान पहनता है, इसका वर्ण श्वेत होना चाहिए, ऐसा कहा गया है, आप.श्रौ.सू. 18.14.1-2 (राजसूय)।

पाण्ड्व न. एक श्वेत-पीत परिधान 'पाण्ड्वं च निवस्ते', का.श्रौ.सू. 15.5.11; भाष्य-रक्तकम्बलम्; चि.भा.से अञ्जन क्रिया के समय 'तार्प्य' (संज्ञक वस्त्र) के ऊपर शाही यजमान द्वारा पहना जाने वाला एक कम्बल (राज.)।

पात्नीवत पु. 13वें यूप अर्थात् यज्ञीय स्तम्भ का नाम, जिसकी ऊँचाई गर्त में खड़ा करने पर नाभि की ऊँचाई से अधिक नहीं होनी चाहिए, इस यूप में त्वष्टा एवं देव-पत्नियों से

सम्बद्ध पशु बाँधे जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 15.5.9 (एकादशिनी); **ग्रह** पु. एक प्याले का नाम, अग्नि एवं देवपत्नियों के लिए सोम निकालना या लेना, का.श्रौ.सू. 10.6.16 (उपयाम-गृहीतोसि--------प्रतिप्रस्थाता पात्नीवतं गृह्णाति); द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.591 (आग्रयण में से अंशुग्रह से ग्रहीत), भा.श्रौ.सू. 14.13.15, तै.सं. 1.4.27 के साथ।

पात्र न. बर्तन, भाण्ड, ऋ.वे. 1.175.1।

पात्रचय पु. (पात्राणां चयः, चय = चि + अच्) शव के समीप चिता पर यज्ञीय पात्रों का सम्भार (ढेर), भा.पि.मे. 2.1.9।

पात्रप्रयोजन न. (पात्राणां प्रयोजनं = योजनम्) यज्ञीय पात्रों को व्यवस्थित रूप से रखना, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.2; प्यालों को व्यवस्थित करने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 13.3.9 (सोम याग)।

पात्रयोजन न. (पात्राणां योजनम्) (उन्नेता द्वारा) सोम के प्यालों का रखा जाना, का.श्रौ.सू. 9.2.1 (उन्नेतुः पात्रयोजनम्)।

पात्रसंसादन न. (पात्राणां संसादनम्, संसादन = सम् + सद + णिच् + ल्युट्) कृत्य में प्रयुक्त होने वाले पात्रों को नीचे रखने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.15.10। -**संक्षालन** (सम् + क्षाल् + ल्युट्) न. पात्रों को धोने के लिए प्रयुक्त जल, भा.गृ.सू. 3.14.23। -**सादन** न. उपांशु प्याले (ग्रह) को नीचे रखने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 9.4.37।

पात्रासादन न. (पात्राणाम् आसादनम्) वेदि के भीतर फैली हुई 'परिभोजनीय दर्भ' संज्ञक घास को पूर्वाभिमुख करके एवं उत्तर में रखने की प्रक्रिया का समापन करते हुए उन पर (प्रतिभोजनीय दर्भ पर) यज्ञीय पात्रों को रखना, श्रौ.प.नि. 14.104 (दर्श); का.श्रौ.सू. 4.1.3; 26.2.9।

पात्री स्त्री. (चावल आदि) अन्नों को रखने का पात्र; [अथा यदि पात्र्यां निर्वपेत्], भा.श्रौ.सू. 1.19.14; चि.भा.से. : एक मिट्टी का बर्तन, जिसमें पुरोडाश के लिए लोई तैयार की जाती है, आप.श्रौ.सू. 1.24.1;-**निर्णेजन**—पात्र को साफ करने के लिए (अभिप्रेत) जल, आप.श्रौ.सू. 1.25.14।

पात्रीसंक्षालन न. (पात्र्याः संक्षालनम्) वह जल, जिससे बर्तन धोया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 1.10:13।

पाद पु. किसी पद्य का चौथा भाग; आप.श्रौ.सू. 1.1.17 के अनुसार प्रथम चरण के पाठ से सम्पूर्ण ऋचा का सङ्केत होता है, सूक्त का संकेत प्रथम चरण के प्रथम भाग से होता है, 18।

पादमात्री वि. (पादः मात्रा यस्याः सा, पाद + मात्रच् + ङीप्) यजमान के पाद (पैर) के बराबर लम्बाई वाली (एक ईंट), का.श्रौ.सू. 17.1.10 (चयन); आकृति में एक चौथाई, इसमें तीन अथवा चार कोने हो सकते हैं, बौ.शु.सू. 4.6।

पादिन् पु. (पाद + इनि) वह ऋत्विज् जिसे अपने मुख्य ऋत्विज् को प्राप्त होने वाली दक्षिणा की चौथाई दक्षिणा प्राप्त होती है, आप.श्रौ.सू. 21.12.19; द्रष्टव्य - ऋत्विज्।

पान्नेजन पु. (पान्नेजनं यस्मिन् सः) वह कलश जिसमें पन्नेजन (यजमान की पत्नी की जांघ पर उड़ेले जाने वाला) जल भरा जाता है, का.श्रौ.सू. 9.3.8 (पान्नेजनांश्च पत्न्या द्वौ द्वौ); वि.बौ.श्रौ.सू. 7.3।

पान्नेजनपाणिनी वि. (स्त्री.) (पान्नेजनं पाणौ अस्याः, पान्नेजन + पाणि इन्+ ङीप्) हाथ में पैर धोने के लिए जल (की द्रोणी) से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.13।

पाप्मनो विनिधि न. 'सिंहे मे मन्युव्याघ्रे मे---' इस मन्त्र का नाम, बौ.श्रौ.सू. 2.8.14।

पारयद्वत् वि. (द्वि.व.) दो संयाजों का पारिभाषिक नाम, स्विष्टकृत् के लिए 'विश्वानि नो दुर्गहा' पुरोनुवाक्या के रूप में एवं 'अग्ने त्वं पारया' 'याज्या' के रूप में (मै.सं. 4.10.1), मा.श्रौ.सू. 5.1.1.30।

पारितवती स्त्री. (पारित + मतुप् + ङीप्) 'पारय' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त ऋचा (ऋ.वे. 1.189.2; श्रौ.को. (सं.) II.47।

पारिप्लव न. एक चक्र में घूमता हुआ पाठ, जिसमें लोकप्रिय आख्यान समाहित होते हैं, जिनका वाचन अश्वमेध में 'होता' करता है। इसको ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि पूरे साल भर इसका प्रत्येक दस दिन पर नवीनीकरण होता है, का.श्रौ.सू. 20.3.1; यह शुनःशेप के आख्यानों पर निबद्ध है, जिसमें एक हज़ार से अधिक ऋचायें एवं गाथायें सङ्कलित हैं, आप.श्रौ.सू. 18.19.10 (राज.); पुराणकथाओं (आख्यानों) की सूची देखें। आश्व.श्रौ.सू. 10.7

पारिप्लवशस्त्र न. आख्यान पर आधारित एक प्रकार का पाठ, जिसमें ऋग्वेद के अतिरिक्त मन्त्र समाहित हैं, अर्थात् वे मन्त्र जिनका विनियोग ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित अथवा विहित नहीं है और जो उसमें (निहित) संकेतात्मक शब्दों के आधार पर प्रयुक्त नहीं किये जाते, सत्या.श्रौ.सू. 1.1।

पारुच्छेपी स्त्री. पृष्ठ्य षडह के छठें सवन दिन पर लघुस्तुतियों में प्रयुक्त विशिष्ट ऋचाओं का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 8.1.11 (अ.वे. 1.131.2; 133.7)।

पार्थ न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.5.19 सा.वे. 1.316 पर आधृत।

पार्थिव पु. (पृथ्वी + अण्) सात अग्नियों में एक का नाम [अन्य अग्नियां हैं : क्रव्याद्, वार्ष, वायव्य एवं आदित्य, छठां एवं सातवां छूट रहा है], श्रौ.को. (अं.) 1.191।

पार्थुरश्म न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.4.8 सा.वे. 1.409 पर आधृत।

पार्वण (होम) पु. 'स्रुव' नाम वाले चम्मच से स्विष्टकृत् से पूर्व एवं प्रधान याग के बाद की आहुति देना, आप.श्रौ.सू. 2.20.5. इनकी आहुति दर्श एवं पूर्णमास की अवधि के सन्धि (पर्व) - दिनों पर स्रुव से आज्यद्रव्यक 'समिष्ट-यजुर्होम' से पूर्व भी दी जा सकती है। इसके तत्काल बाद दर्श की प्रधान आहुति होती है, हि.आ.ध. II. (2). 1081; स्विष्टकृद्धोम के लिये भागों के अवदान (काटने) के समय चम्मच से दी जाने वाली घृताहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.365. कुछ आचार्य होता द्वारा वेद के प्रथन के बाद आहुति का विधान करते हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.413; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 32.263।

पार्श्व पु. (न.) वसाहोम में चम्मच में स्थित वसा को चलाने के लिए प्रयुक्त उपकरण, आप.श्रौ.सू. 7.25.4 (पशु); वि. (सप्त.) दोनों तरफ का नैकट्य, श.ब्रा. 10.6.4.1; 10.6.5.3; 12.2.4.13।

पार्श्वमणि पु. एक ऋजुरेखीय आकृति का लम्बवत् पक्ष अथवा पार्श्व, बौ.शु.सू. 1.48।

पार्श्वमानिन् वि. (मार्जालीय आग्नीध्रीय के) समकक्ष (है), बौ.श्रौ.सू. 6.27।

पार्श्वमानी स्त्री. चतुर्भुज का पृथुतर (अधिक चौड़ा) पक्ष, बौ.शु.सू. 1.48।

पार्श्वसंहित वि. (पार्श्वे संहितौ) पास-पास या एक तरफ़ मिले हुए (1 2 3 4 5 6), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4 (इस प्रकार छः यव रखे जाते हैं = 1 अंगुल का परिमाण)।

पार्ष्ठिक न. पृष्ठ्य षडह याग में समाहित सोमयाग (अर्थात् उक्थ्य षोडशी, उक्थ्य, आदि), का.श्रौ.सू. 14.1.4-6।

पालक पु. एक प्रकार का बकरा, जो रक्ताभ हो एवं जो सींग वाला हो, जिनमें प्रत्येक (सींग) का परिमाण 4 अंगुल हो। पशु की कामना वाला यजमान यज्ञ में वध्य के रूप में इसे अर्पित करे, श्रौ.को. (अं.) 1.1158 (कात्यायन परि., छागलक्षण)।

पालागली स्त्री. निम्न कुल में उत्पन्न रानी = पालकनी, आप.श्रौ.सू. 20.10.2 (अश्वमेघयज्ञ); द्रष्टव्य-महेन्दले एम्.ए JOIB 15, 1966, पृ. 403-5।

पावकवती द्वि.व. (पावक + मतुप् + ङीप्) दो ऋचायें 'अपाम् इदं न्ययनम्' एवं 'नमस्ते', तै.सं. 4.6.1.3, इनका प्रयोग 'सामिधेनियों' में 'समिध्यमान' एवं 'समिधो' के बीच में 'धाय्याओं' के रूप में होता है, श्रौ.को. (अं.) I.595; ऋ.वे. 10.142.7 एवं 8.75.10।

पावन न. (पू + णिच् + ल्युट्) दीक्षा से सम्बद्ध शुद्धीकरण अथवा पवित्रीकरण (का कृत्य), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.23; चि.भा.से. : 'उपांशु ग्रह' में पवित्र (शोधक) के रूप में प्रयुक्त सोम की टहनियां, आप.श्रौ.सू. 12.12.1।

पवमानऋषभ न. सा.वे. 1.467 पर आधृत एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.16।

पावमानी स्त्री. (बहु.व.) (पूङ् + शानन् + ङीप्, पूङ्यजोः शानन् 3.2.128) 'पवमानः सुवर्जनः', आदि आठ ऋचाओं के समूह का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.907, पवित्रीकरण के लिए।

पाश पु. (पश् बन्धने + घञ्) 1. गाँठ, बौ.शु.सू. 1.24; 2. पशु का गला घोंटने के लिए प्रयुक्त फन्दा (रशना), इसके बाद इसे ढीला कर दिया जाता है, एक-नोक वाले काँटे से इसे विद्ध किया जाता है, उसके बाद उत्कर अथवा चत्वाल पर फेंक अथवा छोड़ दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.17.4-6; मा.श्रौ.सू. 7.13.6-7।

पाशद पु. बन्धनी अथवा पाश का एक बिन्दु (सोम के लिए 54 प्रक्रम वाल रस्सी के अन्त में), मा.श्रौ.सू. 10.1.3.4।

पाशवती वि. (पाश + मतुप् + ङीप्) (वह रस्सी) जिसके (दोनों तरफ) पाश = फन्दे (अथवा बन्धनी हो), मा.श्रौ.सू. 10.1.1.2।

पाशुक न. पशुयाग का कृत्य, का.श्रौ.सू. 5.11.20 (पूर्वेद्युर्वैश्वदेवे पाशुकम्); वि. पशुयाग से सम्बद्ध (वेदि)।

पाष्टौह न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.5.10 सा.वे. 1.471 पर आधृत।

पिच्छोला स्त्री. (गायन के समय बजाई गई) वंशी, आप.श्रौ.सू. 21.17.16 (महाव्रत); बौ.श्रौ.सू. 16.20 : 5 = पिच्छोरा; शां.श्रौ.सू. 17.3.12; द्रा.श्रौ.सू. 11.2.6; ला.श्रौ.सू. 4.2.5; 6; एक तन्त्र, वाद्य उपकरण, काशिकर 278 इण्डेक्स।

पिण्ड पु. रुक्म नाम के स्वर्णाभरण का मनके सदृश उभरा या उकेरा हुआ भाग, का.श्रौ.सू. 16.5.1, धूलि अथवा मिट्टी का ढेला, का.श्रौ.सू. 16.2.11 (अग्निषु ज्वलत्सु पिण्डं गच्छन्त्यग्निं पुरीष्यमिति) (चयन)।

पिण्डनिधान न. (पिण्डानां निधानम्) (पितरों के लिए) चावल के गोलों (पिण्डों) को रखना, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.21।

पिण्डपितृयज्ञ पु. (पिण्डसाध्यः पितृयज्ञः) पितरों के लिए चावल के गोलों का यज्ञीय अर्पण, का.श्रौ.सू. 4.1.28; चि.भा.से. पितरों के लिए पिण्ड-अर्पण का यज्ञ, इसे दर्श का अङ्ग माना गया है इसका अनुष्ठान साकमेध एवं महापितृयज्ञ में भी किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 8.13-16, इसे स्वतन्त्र कृत्य भी माना गया है, मी.सू. 4.4.19-21; द्रष्टव्य - यज्ञतत्त्वमी. चि.स्वा पृ. 52; का.श्रौ.सू. 4.129 (प्रकरणकाललिङ्गानुग्रहवचनानाहिताग्निश्रुतिभ्योऽनङ्गम्) दर्श के अङ्ग के रूप में इसका अनुष्ठान अमावस्या के दिन होता है (का.श्रौ.सू. 4.1.28 की स.वृ.के अनुसार चतुर्दशी के अपराह्न में); दक्षिणाग्नि पर चावल पकाया जाता है। 'स्फ्य' से भूमि पर एक रेखा खींच दी जाती है। चावल के तीन पिण्ड बनाये जाते हैं एवं यजमान प्राचीनावीती होकर अथवा अपसव्य अवस्था में (अर्थात् जनेऊ दाहिने कन्धे पर रहे, इस प्रकार) अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह के लिए एक के बाद एक पिण्डों को अपनी हथेली से रेखा पर गिराता है; प्रपितामह के आगे अथवा जीवित के लिए कोई पिण्ड अर्पित नहीं किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 2.6.20-23। इसके बाद पिण्डों को एक वस्त्र के आँचल (दशा) से ढक दिया जाता है। पिण्ड पर जल गिराकर पितरों को विदा किया जाता है। पत्नी द्वारा मध्य पिण्ड का भक्षण करवाया जाता है, ताकि वह गर्भिणी हो सके। अन्य दो पिण्ड या तो जल में विसर्जित कर दिये जाते हैं अथवा एक पात्र में संगृहित किये जाते हैं। यजमान इन्हें सूंघता है, बौ.श्रौ.सू. 3.10-11, का.श्रौ.सू. 4.1, आप.श्रौ.सू. 1.7.10, आश्व.श्रौ.सू. 2.6-7।

पिण्डी पु. खिचड़ी का गोला, मा.श्रौ.सू. 5.2.2.23 (चार पिण्ड तैयार किये जाते हैं और यजमान के हाथ में रख दिये जाते है, जिसका वह एतदनन्तर भक्षण करता है), एक ऐसा भी कर्म है, जिसमें 'सवनीय पुरोडाश' के अंश पितरों को अर्पित किये जाते हैं, बौ.श्रौ.सू. 8.12; चि.भा.से. : 'काम्येष्टि' में खर्जूर एवं करीर के आटे से निर्मित तीन गोले (पिण्ड) अर्पित किये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 19.26.1; बौ.श्रौ.सू. 13.38।

पितापुत्रीया वि. (पितृपुत्रयोः इयम्) (यजमान के) पिता एवं पुत्र के सन्दर्भ से युक्त प्रथम सुब्रह्मण्या गान, श्रौ.को. (सं.) II.547।

पितामह पु. (पितुः पिता, पितृ + डामहच्) दर्भपत्रों, यज्ञिय लकड़ी के गट्ठरों, बर्हिष्, आदि के सन्दर्भ में यदि कोई विपर्यास (स्थान की अदला-बदली) हो जाय, तो प्रायश्चित्त के लिए 'भृगूणां पतये स्वाहा अङ्गिरसां पतये स्वाहा' इस मन्त्र से पूर्वजों को दी जाने वाली आज्य-आहुति का नाम, बौ.श्रौ.सू. 28.10 (प्रजापति के लिए आहुति प्रदान करने के पश्चात्)।

पितामहदशगण पु. (पितामहानां दश गणः) यजमान के दस पूर्वजों के समूह (में नाम), का.श्रौ.सू. 15.8.15 (पितामहदशगणं सोमपानां संख्याय सर्पणम्)।

पितृतीर्थ न. (पितृणां तीर्थम्) पितरों का मार्ग, हथेली के अंगूठे एवं तर्जनी के बीच का भाग जिससे पितरों को (तर्पणार्थ) जल दिया जाता है, हि.आ.ध. II.(i) 316।

पितृमेध पु. (पितृणां मेधः) पितरों के लिए अन्त्येष्टि क्रिया, जिसमें शव को गाड़ना, हड्डियों को इकट्ठा करना, मिट्टी के ढेलों का सञ्चय करना आदि समाहित है, बौ.पि.मे. 802-23; द्रष्टव्य श्रौ.को. (अं.) I.1033-1132।

पितृयज्ञ पु. (पितृणां यज्ञः) (चावल के गोलों को अर्पित करते हुए) पितरों के लिए (अभिप्रेत) यज्ञ, आप.श्रौ.सू. 3.16.7।

पितृलोक पु. (पितृणां लोकः) पितरों का लोक, जै.ब्रा. III.383।

पित्र्या स्त्री. (पितृ+यत्+टाप्) पितृयज्ञ के लिए (अभिप्रेत) वेदि।

पित्र्या

पिन्वन पु. दूध की बाल्टी, इनकी संख्या दो होती है, का.श्रौ.सू. 26.1.20 (तुष्णीं पिन्वनादीनां करणाभिमर्शनश्लक्ष्म-धूपन-प्रदहनोद्धारणावसेचनानि); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.515 (महावीर पात्र के ऊपर वाले दो भाग बाँस के एक टुकड़े के माध्यम से खोखले बनाये जाते हैं)।

पिपीलिकामध्य वि. (पिपीलिकायाः इव मध्यं यस्य) जिसका मध्य भाग चींटी के मध्यभाग की तरह छोटा या पतला हो, जै.ब्रा. III.296।

पिप्पल न. पिप्पल के (फल), आप.श्रौ.सू. 10.16.11 (रु. पिप्पलानि फलानि व्रीहयो वा)।

पिलकावत् वि. (पिलका + मतुप्) गले पर एक थन से युक्त, मैत्रावरुणपात्रम्। तदेतान् पिलकावत् भवति, बौ.श्रौ.सू. 7.6.7; श्रौ.को. (सं.) II. 557।

पिशील पु. एक लम्बाई की नाप, मुट्ठी को बन्द करने के बाद एक बित्ता अथवा एक हाथ (एक अरत्नि), आप.शु.सू. 7.18।

पिष्टलेप पु. (पिष्टस्य लेपः) पात्र में चिपका हुआ अवशिष्ट आटा (अर्थात् वह आटा जो पुरोडाश बनाने के बाद बच जाता है), मा.श्रौ.सू. 1.2.3.12; भा.श्रौ.सू. 3.9.6; (आहवनीय पर इष्टि में अग्नि पर प्रस्तर रखने के बाद) दक्षिणाग्नि पर इस अंश की एक आहुति दी जाती है, श्रौ.को. (अं.) I. 412; 966। -**होम** दक्षिणाग्नि पर चम्मच से पात्र में से खुरच कर निकाले गये पिष्टलेप में आज्य को मिश्रित कर (भा:श्रौ.सू. 3.9.6) दी गई आहुति, आप.श्रौ.सू. 3.9.12 (दर्श)।

पिष्टसंयवनीया वि. (स्त्री.) (पिष्टेन संयवनीया) (चावल के) आटे में मिश्रित किया जाने वाला अथवा उड़ेला जाने वाला (जल), बौ.श्रौ.सू. 1.8.21।

पिष्टोद्वपनी स्त्री. (पिष्टम् उदुप्यते यस्यां सा) वह पात्र जिसमें पीसा हुआ आटा उड़ेला जाता है, बौ.श्रौ.सू. 1.4.9।

पीतवती स्त्री. (पीत + मतुप् + ङीप्) ऋग्वेद की एक ऋचा, 'आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये', श्रौ.को. (सं.) II.306 (उन्नीयमान सूक्त)।

पीतुदारु पु. एक प्रकार का वृक्ष, का.श्रौ.सू. 5.4.14; = खदिर का वृक्ष = देवदारु (मो.वि.)।

पीवन् वि. (प्यै + वनिप्) स्थूल, मोटा, भारी-भरकम, आप.श्रौ.सू. 10.14.10 (पीव दीक्षते कृषो यजते)।

पुंश्चली स्त्री. (पुंसः परान् अनुरुध्य चलति, पुंस् + चल् + अच् (पचादि) + ङीष्) एक वेश्या, जो ब्रह्मचारी को गाली देती है, आप.श्रौ.सू. 21.19.5 (महाव्रत) = पुंश्चलू, का.श्रौ.सू. 13.3.36।

पुंश्छगला पु. (पुंसंयुक्ता छगला) एक युवा नर (छाग) से युक्त बकरी, भा.श्रौ.सू. 11.1.9।

पुच्छ न. 1. अग्निवेदि की पूंछ, का.श्रौ.सू. 16.8.20 (तथा पुच्छं वितस्त्या), आप.श्रौ.सू. 16.17.10:14 (चयन), 2. सोमायाग के अन्तिम कृत्य (यज्ञपुच्छ)।

पुण्याहवाचन न. (पुण्यं च तदहः तस्य वाचनम्) दिन के पवित्र होने की उद्घोषणा, श्रौ.प.नि. 46.367।

पुत्रकामेष्टि स्त्री. (पुत्रकामस्य इष्टिः) पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से की जाने वाली इष्टि, श्रौ.को. (सं.) I.396।

पुत्रमर्त्या स्त्री. (पुत्रस्य मर्त्या = मृत्युः) पुत्र की मृत्यु, भा.श्रौ.सू. 5.17.5 (पुनराधान)।

पुत्रिकापुत्र पु. (पुत्रिकायाः पुत्रः) नियुक्त पुत्री का पुत्र, बौ.श्रौ.सू. 2.3; कार्यसम्पादक ऋत्विज् इस प्रकार का नहीं होना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.8।

पुनराधेय न. (पुनः आधेयम्) आधान-क्रिया के असफल होने की स्थिति में अग्नियों की पुनः स्थापना, आप.श्रौ.सू. 5.26-29. गार्हपत्य एवं आहवनीय के बुझ जाने अथवा विच्छिन्न हो जाने पर यह पुनराधान प्रायश्चित्त-रूप होता है।

पुनराधेयनक्षत्र न. (पुनराधेयस्य नक्षत्रम्) अग्नियों के पुर्ननवीनीकरण के लिए उपयुक्त नक्षत्र, भा.श्रौ.सू. 5.19.1 (रोहिणी, पुनर्वसू एवं अनुराधा)।

पुनरालम्भ पु. (यज्ञ को) पुनः प्राप्त करने के लिए यजमान द्वारा पढ़ा जाने वाला मन्त्र, 'यज्ञो बभूव स उ वा बभूव वावृधे पुनः', मा.श्रौ.सू. 1.4.3.8; किसी पशुयाग का अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति के द्वारा उच्चारित एक मन्त्र का नाम, बौ.श्रौ.सू. 4.1-2; 20.25-26; 24.34-36; श्रौ.को. (अं.) 1.774।

पुनरुत्सृष्ट वि. (पुनर् + उद् + सृज् + क्त) पुनः मुक्त किया गया (वृषभ अथवा अज), का.श्रौ.सू. 7.1.6 (ऐन्द्राग्नं पुनरुत्सृष्टमालभ्य द्विपुरुषा सोमपीथिनः) जिस व्यक्ति के दो पूर्व पुरुषों (पिता एवं पितामह) ने सोमयाग न किया हो, उसके निमित्त इनकी (वृषभ अथवा अज की) बलि दी जाती है (यस्य पित्रा पितामहेन वा सोमयागो न कृतस्तेन दौर्ब्राह्मण्यनिरासार्थं ऐन्द्राग्नं पशुमालभ्य ततः सोमयागः कर्तव्यः, सु.वृ. 7.1.6)।

पुनरुत्स्यूत वि. (पुनर् + उद् + षिवु + क्त) पुनः सिला गया (परिधान), मा.श्रौ.सू. 1.6.5.11 (पुनराधेय के लिए दक्षिणा), भा.श्रौ.सू. 5.21.1।

पुनर्दहन न. (पुनर् + दह् + ल्युट्) भस्मीकृत अस्थियों के दाह का कृत्य। नवनीत-मिश्रित चूर्णीकृत हड्डियों की जुहू से अग्नि में आहुति दी जाती है। अन्य पात्र फेंक दिये जाते हैं, बौ.पि.मे. 2.3-4; भा.पि.मे. 1.10.4।

पुनर्नितुन्न वि. (पुनर् + नि + तुद् + क्त) पुनः दबाया गया, जै.ब्रा. I.217।

पुनश्चिति स्त्री. (पुनर् + चि + क्तिन्) वेदि की पुनः स्थापना, आप.श्रौ.सू. 17.24.11; लोष्ट अथवा श्मशान, अन्त्येष्टि के समय मिट्टी के पिण्डों को जोड़ना, (चि.भा.से.) (अग्नि-वेदि का) पुनः चयन; पुनश्चितिः तिस्रश्चितयः, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.28; ईंटों को पुनः चिनना, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.14।

पुन्नद पु. (पुमान् चासौ नदः) समुद्र की तरह दीखने वाली बड़ी नदी, आप.श्रौ.सू. 18.13.3 (अपाम्पतिरिति समुद्रियाः सैन्धवीर्वा यो वा अन्यः पुन्नदः स्यात्)।

पुरश्चरण न. (पुरस् + चर् + ल्युट्) यजमान की दीक्षा (से सम्बद्ध विवरण), बौ.श्रौ.सू. 2.6.2 (अग्न्याधेय)।

पुरस्तात् (होम) पु. प्रातःकालिक आहुति के काल के अतिक्रमण अथवा समाप्त होने पर दी जाने वाली प्रायश्चित्तिक आहुति का नाम, अ.वे. प्राय, 1.2; क्रि.वि. 1. पूर्व की ओर, भा.श्रौ.सू. 7.10.8; 2. (ध्रूवा के अञ्जन = लेपन के) पूर्व, भा.श्रौ.सू. 7.11.3; द्रष्टव्य—'आज्यशस्त्र' में पुरस्ताज्जप।

पुरस्तात्तिरश्ची स्त्री. पूर्व में वेदि के दो 'अंशों' को जोड़ने वाली सामने तिरछी रेखा, आप.श्रौ.सू. 7.3.8।

पुरस्तात् स्वाहाकृति स्त्री. (पुरस् + अस्ताति, स्वाहा + कृ + क्तिन्) पशुयाग में वपा के पूर्व 'स्वाहा देवेभ्यः' इस रूप में देवता के पूर्व 'स्वाहा' के साथ एक आज्य-आहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.820।

पुरस्तादुपयाम वि. (पुरस्ताद् उपयामः यस्य) (वह प्याला) जिसे भरने के पूर्व उच्चारित यजुस् की 'उपयाम' अभिव्यञ्जना से साथ भरा जाता है; तुल. (उपरिष्टादुपयाम) वि. भरने के पश्चात् उच्चारित 'उपयाम' अभिव्यञ्जना के साथ भरा गया (यदि इसमें किसी ऋचा का प्रयोग हुआ हो), भा.श्रौ.सू.. 13.16.13।

पुरस्तात्प्रधिकार पु. (वि) (द्वि.व.) चक्र का वर्तुल भाग = नेमि (जिसमें) आगे रहे (अधिषवण-फलके), मा.श्रौ.सू. 2.2.3.35।

पुरस्ताद्धोम पु. प्रातरनुवाक के प्रारम्भ में ब्रह्मा द्वारा आहुति-दान, श्रौ.को. (अं.) I.384; 'अवभृथ' के प्रारम्भ के समय, I.820।

पुरीतत् न. पशु का हृदयावरण अथवा हृदय की झिल्ली, भा.श्रौ.सू. 7.19.11 (जौहव)।

पुरीतत न. हृदय को ढकने वाला वसायुक्त भाग, का.श्रौ.सू. 6.7.11।

पुरीष न. वेदि के लिए भूमि को खोदने के समय प्राप्त मिट्टी (भा.श्रौ.सू. 2.3.4-5)। इसे उत्कर पर निक्षिप्त कर दिया जाता है। इसे धिष्याओं के निर्माण के लिए चात्वाल से भी प्राप्त किया जा सकता है, का.श्रौ.सू. 1.8.39, चिनी गई अग्नि वेदि के अवकाशों को भरने के लिए प्रयुक्त खर, उत्तरवेदि को तैयार करने के लिए, 19.1.15 उखा अथवा वेदि के लिए सङ्ग्रहणीय, मा.श्रौ 6.1.1.26; द्रष्टव्य-लूई रेनू, Notes on Purisa II 4 1961 पृ. 104, ABORI 68, 1987 पृ. 1-14.

पुरुष पु. (नियुक्त) नर कार्यकर्ता अथवा सहायक, का.श्रौ.सू. 17.2.19; एक मनुष्य की लम्बाई, अर्थात् यजमान की ऊँचाई, 'अग्निक्षेत्र' के निर्माण के लिए प्रयुक्त एक मानक पैमाना (माप), का.श्रौ.सू. 16.8.21 (यजमान अपना हाथ उठाता है और उसके हाथ के अंगुलि से पैर तक नापा

जाता है, आप.श्रौ.सू. 16.17.8)। क्षु. (खादिकर) माप = 120 अंगुल, मा.श्रौ.सू. 10.1.4,5; अरत्नियां = 120 अंगुल (क्षु. 5.9) = 10 वितस्ति (क्षु. 5.9) ऊपर की ओर हाथ उठाये हुए यजमान के बराबर लम्बाई की नाप, मा.श्रौ.सू. 6.1.5.30; अपने पैर के अंगूठे पर खड़े होने के अनुसार वह 125 अंगुल होता है (अर्थात् उसकी लम्बाई अंगूठे पर खड़े होने पर 125 अंगुल होती है); द्रष्टव्य - महेन्दले, एम.ए., भ.व. 23,1963।

पुरुषचिति स्त्री. (पुरुषस्य आकृतिरिव चितिः) मनुष्य के आकार का ईंटों का चयन, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.1 (उत्तरस्मिन् अंशे पुरुषचितिमुपदधाति); 10.2.3.2-3 (इसमें पात्र के पश्चिम मनुष्य के शिर की आकृति से युक्त 36 ईंटें होती हैं)।

पुरुषमेध पु. पुरुष यज्ञ, जो तीन दिन में सम्पन्न होता है एवं सोमयाग का एक प्रकार है, आप.श्रौ.सू. 20.24-25; बौ.श्रौ.सू. 24.11; तु. इग्लिंग, श.ब्रा.इ. XLIV-XIXIV।

पुरुषसंज्ञपन न. (पुरुषस्य संज्ञपनम्) पुरुष का मारण अथवा बलिदान 'परिवृते पुरुषसंज्ञपनम्', का.श्रौ.सू. 16.1.14 (चयन), (वैश्यः पुरुषो राजन्यो वा, का.श्रौ.सू. 16.1.17)।

पुरुषसामन् न. एक साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 15.19.11; 'अभिचार' में इसका गायन विहित है, भा.श्रौ.सू. 11.20.7।

पुरुषसूक्त (पुरुषस्तावकं सूक्तम्) 'सहसशीर्षा पुरुषः' से प्रारम्भ होने वाला ऋ.वे. का एक सूक्त (10.90), (अं.) I.1120 (पितृमेध)।

पुरुषी स्त्री. (पुरुष + ङीप्) दक्षिणा के रूप में दी जाने वाली (स्त्री.), मा.श्रौ.सू. 11.1.4।

पुरेजान वि. (पुरा + ईजान, यज् + कानच्) (वह यजमान) जिसने पूर्व में सोम याग का अनुष्ठान किया हो, का.श्रौ.सू. 8.9.7-8।

पुरोडाश

पुरोडाश पु. (पुरः दाश्यते) हविर्यज्ञ, सोम एवं पशु यज्ञ में आहवनीय में अर्पित की जाने वाली बाटी (ऋ.वे. 3.52.4) इसका निर्माण पीसे हुए चावल अथवा जौ के आटे से किया जाता है और इसे गार्हपत्य अग्नि पर विभिन्नसंख्याक (8.11, इत्यादि) कपालों पर सेंका जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.24.6; इसका आकार कूर्म के पीठ के सदृश होता है जो अनूप के सदृश न अधिक ऊँचा और न अधिक नीचा होता है, इसकी मात्रा अश्व के शफ (खुर) के बराबर होती है, 25.4; इससे कृत्त = कर्तित (काटे गये) भाग (कतरे) लिए जाते हैं, 3.1.2; सवनों में सवनीय पुरोडाशों की शृंखला होता है : इन्द्र को एकादश कपालों पर चावल की लोई, इन्द्र हरिवत् के लिए 'धाना' का, पूषन् के लिए 'करम्भ' (दधिमिश्रित आटे) का सरस्वती के लिए 'परिवाप' (भूने हुए दानों) का एवं मित्र तथा वरुण के लिए 'आमिक्षा' का, बौ.श्रौ.सू. 7.12 [रौहिण पुरोडाश, दो पुरोडाश जो पिष्ट चावल किन्तु अफलीकृत से निर्मित होते हैं, आप.श्रौ.सू. 15.5.20; 15.9.1 (प्रवर्ग्य); पुरोडाशीय = पुरोडाश के लिए अभिप्रेत अन्न के दाने, भा.श्रौ.सू. 1.19.4; -**पात्री** पुरोडाश के लिए पात्र, का.श्रौ.सू. 1.3.36 भाष्य]।

पुरोडाशकपाल न. (पुरोडाशस्य कपालम्) पुरोडाश को सेंकने के लिए प्रयुक्त होने वाला कपाल (घट-खण्ड), का.श्रौ.सू. 3.8.7 (पुरोडाशकपालेन कणानपास्यत्यधः कृष्णाजिनम्----)।

पुरोडाशबृगल पु. (पुरोडाशस्य बृगलः) पुरोडाश का एक खण्ड अथवा अंश, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.40।

पुरोधाकाम वि. (पुरोधां कामपते) कुल-पुरोहित के पद की इच्छा वाला, मा.श्रौ.सू. 5.1.5.77; (वह व्यक्ति) जो मुख्य पौराहित्य की कामना रखता हो, भा.श्रौ.सू. 6.9.1।

पुरोनुवाक्या स्त्री. अध्वर्यु के निर्देश पर होता द्वारा पढ़ी जाने वाली आमन्त्रणात्मक ऋचा, जिसे वह अध्वर्यु द्वारा आहुति डालने के पहले पढ़ता है, आप.श्रौ.सू. 2.18.4, बैठते हुए पढ़ा जाने वाला एवं 'आज्यभाग', 'आवाप', 'स्विष्टकृत्' एवं पत्नीसंयाज में प्रयुक्त; इसे अनुवाक्या भी कहा जाता है (द्वि.व.) (पत्नीसंयाज के लिए) दो पुरोनुवाक्या ऋचायें, आप.श्रौ.सू. 8.15.13.16.17. चिन्नस्वामी 'पिण्डपितृयज्ञ' के लिए याज्याओं एवं पुरोनुवाक्याओं के लिए निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक आहुति के लिए दो

पुरोनुवाक्या एवं एक याज्या होती है; 'त्वं सोम प्रचिकेतो मनीषा' एवं 'त्वया हि नः पितरः सोम' सोम-पितृमत् के लिए पुरोनुवाक्या हैं तथा 'त्वं सोम पितर **उत्यर्वाक्**' एवं 'आहं पितॄन् सुविदत्रा------' बर्हिषद् पितरों के लिए पुरोनुवाक्या है और 'उपहूताः पितरः सोम्यासः' उनके लिए प्रयुक्त याज्या है; 'अग्निष्वात्ताः पितर एत गच्छत' (आप.श्रौ.सू. 8.15.17 में पठित) अग्निष्वात्त पितरों के लिए पुरोनुवाक्या है; 'वान्यायै दुग्धे (सूत्र में पठित) उनके लिए प्रयुक्त याज्या है, द्रष्टव्य - L Renou, JAOS68, 79-84, श्रौ.प.नि. 28.228।

पुरोरुच् स्त्री. कुछ निविद् मन्त्रों के नाम (जो जोर से पढ़े जाते हैं ऐ.ब्रा. 10.7) जो प्रातःकालिक सवन में शस्त्र के प्रारभ्य में उच्चारित की जाने वाली ऋचा से पहले आते हैं, शां.श्रौ.सू. 7.9.2, प्रथम आज्या शस्त्र की तरह जिसमें उनका उच्चारण विराम (यति) के साथ किया जाता है : अग्निर् देवेद्धः'; 'प्रउगशस्त्र' में प्रधान सूक्त के प्रक्षिप्त तृचों वाले सात पुरोरुच् हैं, हि.आ.ध. II.ii.1180; द्रष्टव्य - शां.श्रौ.सू. 7.10.2; श्रौ.को. (सं.) II.584।

पुरोहविस् न. (पुरो हविर्यस्य) एक प्रकार के यज्ञीय स्थान का नाम (जिसके आगे हवि होती है और जहाँ से हविराधान में बैठा हुआ होता अपने आप ही आहवनीय अग्नि, नदी एवं सूर्य पर दृष्टि रख सकता है), भा.श्रौ.सू. 10.13.6; तुल. तै.सं. 6.2.6; चि.भा.से. देवयजन के बारे में कथन, वह स्थान जहाँ यज्ञ के सम्मुख पूर्व होता है, भा.श्रौ.सू. 10.13.6; Keith (तै.सं. 6.2.6), 507, इत्यादि।

पुरोहित पु. (पुरस् + धा + क्त) घरेलू अथवा, बाद में राजकीय धर्माधिकारी, श्रौत यज्ञ के लिए ऋत्विज् के वरण (चयन) में राजकीय यजमान द्वारा जिसके 'प्रवर' का विचार किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.16.10; उनके द्वारा कुछ एकाहों का अनुष्ठान भी किया जाता है, 22.10.19; 13.10।

पुरोहितार्षेय न. (बहु.व.) गृह-पुरोहित के (तीन) पूर्वज ऋषि, 'पुरोहितार्षेयेण वा', का.श्रौ.सू. 3.2.10।

पुष्करपलाश पु. (पुष्करस्य पलाशः) कमल का पत्ता, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.18।

पुष्कल न. उत्कृष्ट वस्तु, मा.श्रौ.सू. 7.1.2.18 (इनसे पूर्ण सत्रह वस्तुयें वाजपेय में अध्वर्यु को उपहार के रूप में दी जाती हैं); द्रष्टव्य - पूर्णपात्र।

पुष्टिमत् वि. (पुष्टि + मतुप्) 'पुष्टि' (पोषण) के सन्दर्भ से युक्त (आज्यभाग मन्त्र), आश्व.श्रौ.सू. 2.1.27; 'अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे', ऋ.वे. 1.1.3 एवं 'गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः', ऋ.वे. 1.91.12; श्रौ.को. (सं.) I.418।

पूतभृत् स्त्री. (पूतं=सोमं बिभर्ति, पूत+भृ+क्विप्) सोम-रस का संग्रह करने के लिए (प्रयुक्त) मिट्टी का पात्र।

पूततृण न. (पूतेः तृणानि) 'पूति'-संज्ञक पौधे के पत्र (तिनके), बौ.श्रौ.सू. 10.13; श्वेत कुश = एक घास विशेष (मो.वि.)।

पूतिदार्वाधन न. (पूतीनां दारुणाम् आधानम्) अग्निपर दुर्गन्धयुक्त काष्ठ रखना, का.श्रौ.सू. 4.10.15 (दुर्गन्धिदारूणामग्नौ प्रक्षेपः, स.वृ.)।

पूतीक पु. सोम-लता के विकल्प के रूप में प्रयुक्त होने वाली वनस्पति (पौधा), इसके भी स्थानापन्न के रूप में 'आदार' एवं 'फाल्गुन' का प्रयोग किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 14.24.12; अथवा अर्जुन, पञ्च.ब्रा. 9.3.3. इसका नामान्तर 'पूतिका' भी है 'वेदेऽपि सोमस्य स्थाने पूतिकातृणान्य-भिषुणुया-दित्युच्यते' महा.भा.पा. 1.1.56 पर।

पूतद्रु पु. (पूतः च असौ द्रुः) देवदार की छड़ी, संख्या में तीन, इनका उपयोग घेरने की छड़ियों के रूप में उत्तरवेदि के लिए होता है (पशु), भा.श्रौ.सू. 7.5.1।

पूर्णदर्व पु. (साकमेध पर्व में) कलछी भरकर आहुति का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 5.2.15.31; मा.श्रौ.सू. 1.7.5.29।

पूर्णदर्व्य न. दर्वी-संज्ञक कलछी में पूर्णरूप में भरी हुई (एवं इससे दी जाने वाली) आहुति, भा.श्रौ.सू. 8.14.3।

पूर्णपात्र न. (जलेन पूर्णं पात्रम्) जल से भरा हुआ पात्र (कलश), 'पूर्णपात्रो दक्षिणा---', का.श्रौ.सू. 6.10.34 (धान्यादिपूर्ण- पात्रं पूर्णपात्रम्, स.वृ.) इससे सभी दिशाओं में जल छिड़का जाता है, आप.श्रौ.सू. 3.10.7 (दर्श) = उदकमण्डलु, भा.श्रौ.सू. 3.7.1; 'बहिष्कन्नाहुति प्रदान करने वाले आग्नीध्र को (आधेय) दक्षिणा के रूप में दिये जाने वाले धान की एक माप भी, मा.श्रौ.सू. 3.1.31; चार पुष्कर (32 मुट्ठी) = 128 मुट्ठी होना चाहिए, ऐसा कहा गया है, आप.श्रौ.सू. 5.20.7 एवं भाष्य; पात्र में पूर्ण रूप से भरे हुए जल से सम्बद्ध कृत्य अर्थात् 'प्रणीतामार्जन अथवा इष्टि की समाप्ति पर यजमान की पत्नी के हाथों में जल उड़ेलना, आप.श्रौ.सू. 8.7.11-12।

पूर्णमुख न. (पूर्णं च तत् मुखम्) (तृतीया) पूर्ण मुख से, मा.श्रौ.सू. 1.5.3.7; जै.ब्रा. I.330।

पूर्णाहुति स्त्री. (पूर्णा चेयम् आहुतिः) 'पूर्ण आहुति' चार अथवा दो चम्मच भर से पूरित किये गये जूहू के माध्यम से दी जाने वाली आज्य की एक आहुति। यह सामान्यतया आधेय की समाप्ति को सूचित करता है, भा.श्रौ.सू. 5.11.1, आहुति की सम्पूर्ण प्रक्रिया का यहाँ पालन किया जाता है, का.श्रौ.सू. 4.10.5 भाष्य। दीक्षा के समय भी इसे करते हैं, आप.श्रौ.सू. 10.8.6; द्रष्टव्य— श्रौ.प.नि. 61.403।

पूर्व वि. (बहु.व.) (वे अग्नियां) जो पूर्व में स्थापित की जाती हैं, अर्थात् आहवनीय, सभ्य एवं आवसथ्य, भा.श्रौ.सू. 1.11.2, वि. (स्त्री.) (शान्ति पाठ का) प्रथम (भाग, 'नमो वाचे', आदि); पु. पूर्वी दिशा, बौ.शु.सू. 1.27; (द्वि.व.) (अग्निहोत्री गाय के) सामने के दो थन, 6.9.1 (अग्निहोत्र), (द्रष्टव्य-अपरौ, वही)।

पूर्वपक्ष पु. (पूर्वःपक्षः) चयन का प्रथम भाग, बौ.श्रौ.सू. 10.9 (वर्ष के प्रथम छः महीने); अथैतस्मिन्नेव पूर्वपक्षे वायव्येन पशुना यजते।

पूर्वपक्षप्रतिलोमम् क्रि.वि. (पूर्वपक्षस्य प्रतिलोमम्) प्रथम आधे वर्ष के उलटे क्रम में, का.श्रौ.सू. 13.2.12।

पूर्वप्रथम वि. (पूर्वः प्रथमः यस्मिन्) पूर्व वाले से प्रारम्भ होने वाला (पुरोडाश अथवा आहुति का कर्तन अथवा अवादन), आप.श्रौ.सू. 2.1.3।

पूर्ववाह् वि. (पूर्ववयसि वहति यः) युवा (युवावस्था में गाड़ी वहन करने वाला), आप.श्रौ.सू. 5.14.17 (अश्वः)।

पूर्वाग्नि पु. (पूर्वस्मिन् स्थितः अग्निः) पूर्व की ओर स्थित अग्नि, अर्थात् उत्तर-वेदि पर, बौ.श्रौ.सू. 4.11:26 (द्रष्टव्य-मध्यमाग्नि 4.11:27); चि.भा.से. गृहस्थ की मूल अथवा औत्पत्तिक अग्नि (आवसथ्य), का.श्रौ.सू. 15.6.14 (पूर्वाग्निवहनं च साग्नि), किन्तु यह शब्द सन्दिग्ध है, बौ.श्रौ.सू. 18.16 अन्य अग्नियों के साथ-साथ ही पूर्वाग्नि का उल्लेख करता है।

पूर्वाग्निवहन न. (पूर्वाग्निः उह्यते येन) वह रथ अथवा गाड़ी जिस पर पूर्वी अग्नि (अर्थात् आवसथ्य या गृह्य अग्नि) ले जाया जाता है, का.श्रौ.सू. 15.6.14।

पूर्वाग्निवाह पु. (पूर्वाग्निः उह्यते येन, पूर्वाग्नि + वह् + घञ्) पहले की अग्नि का वहन करने वाला बैल, पूर्वाग्निवाहो दक्षिणा, का.श्रौ.सू. 15.7.21; चि.भा.से : पूर्वाग्नि के साथ गाड़ी खींचने वाला बैल (राजसूय)।

पूर्वानीक पु. (पूर्वः अनीकः) सामने अथवा पूर्व में (स्थित) भाग, बौ.श्रौ.सू. 3.57।

पृथ पु. एक माप का नाम = 13 अंगुल; द्वे वेदी----पृथमात्रेण वा सन्निभे; भा.श्रौ.सू. 8.5.8, हाथ का सपाट (भाग) अथवा हथेली, मो.वि.।

पृथिवी स्त्री. पृथ्वी, ऋ.वे. 4.15.1; उसके लिए चातुर्मास्य (वैश्वदेव) में एककपाल पुरोडाश विहित है; ग्रहस्ताभ्यां गच्छेत्, जै.ब्रा. I.130।

पृथिसव पु. राजा द्वारा अनुष्ठित होने वाले यज्ञों में एक का नाम, बौ.श्रौ.सू. 24.11:2।

पृथु वि. विस्तृत, बौ.शु.सू. 1.5।

पृथुक पु. विस्तृत (अन्त वाले) अनाज, मा.श्रौ.सू. 9.2.2.30, चावल अथवा समतलीकृत अनाज (मो.वि.)।

पृथुपाजवती (द्वि.व.) स्त्री. (पृथुपाज + मतुप् + ङीप्) 'पृथुपाज' शब्द से युक्त एक ऋचा, अर्थात् 'पृथुपाज अमर्त्यः----' (ऋ.वे. 3.27.5) एवं 'तं सबाथो यतस्रुचः.....' (3.27.6)जिनका प्रयोग 'धाय्याओं' के रूप में होता है, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.1-18, 23।

पृथुमुख वि. (पृथु मुखं यस्य) सघन अग्रभाग वाला 'पृथुमुखो यज्ञियवृक्षश्शङ्कुः कण्डूयने, का.श्रौ.सू. 7.4.8 (शरीर खुजलाने के लिए प्रयुक्त काष्ठ का शङ्कु = खूँटी, दीक्षा के समय यजमान की पत्नी के लिए विहित)।

पृश्नि पु. चितकबरा बैल (द्वादशाह के तीसरे दिन 'वाक्' के लिए वध्य के रूप में अर्पित), मा.श्रौ.सू. 7.2.8.5।

पृश्निपर्णी स्त्री. एक प्रकार का पौधा, काशिकर, इण्डेक्स।

पृश्निप्राणग्रह पु. (पृश्निः चासौ प्राणग्रहः) विविध रंगों वाले एवं श्वास प्याले [प्राणग्रह (महाव्रत में अर्पित किये जाने वाले)], मा.श्रौ.सू. 7.2.6.3.5 (अंश्वदाभ्यौ यथाकालम् पृश्निपर्णग्रहैरभिमृशति)।

पृश्निवाला वि. (स्त्री.) (पृश्निवर्णाः वालाः यस्याः) सफेद धब्बे से युक्त बालों वाली, आप.श्रौ.सू. 10.22.4 (सोमक्रयणी); धब्बेदार पूंछ वाली (मो.वि.)।

पृश्निस्तोत्र न. एक सूक्त का नाम, ऋ.वे. 4.31; 'कया नश्चित्र आ भुवत्', जै.ब्रा. I.140; श्रौ.को. (सं.) II.400।

पृषत् (कृ) धब्बेदार (बनाना), मा.श्रौ.सू. 1.7.1.30।

पृषदाज्य न. (पृषत् च तदाज्यम्) धब्बेदार घृत; घृतमिश्रित दही (पृष्दाज्य के लिए अभिप्रेत पात्र में दो बार कलछी से घृत निकालना, दो बार दही निकालना एक बार घी निकालना। यह वैश्वदेव के लिए है, आप.श्रौ.सू. 8.2.8; चि.भा.से. शमितृ द्वारा बलि चढ़ाये गये पशु के हृदय पर छिड़कने के लिए विशेष रूप में प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 7.23.7; जुहू एवं उपभृत् में निकाला जाता है एवं उपस्तरण के रूप में ग्रहणी-संज्ञक मिश्रण-पात्र में दो बार उड़ेल दिया जाता है; तब पात्र में दही उड़ेली जाती है, जिसके ऊपर दो दर्भपत्र रखे जाते हैं, दर्भपत्र हटा दिये जाते है और पुन: दही के ऊपर दो बार आज्य उड़ेला जाता है (अभिघारण), बौ.श्रौ.सू. 4.3; सोमयाग में वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 12.19.5।

पृषदाज्यधानी स्त्री. (पृषदाज्यं धीयतेऽनया, पृषदाज्य + धा + ल्युट् + ङीप्) एक पात्र जिसमें पृषदाज्य (धब्बेदार घृत) रखा जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii. 665; उपभृत् का स्थानापन्न, आप.श्रौ.सू. 7.26.12। (पशु)।

पृष्ठ न. 1. पृष्ठ स्तोत्र में अनुप्रयुक्त एक साम का नाम (जिसका गायन मृत मेढक को कूड़े के ढेर पर फेंकने के बाद किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 17.12.10 (पृष्ठैरुपतिष्ठते); 2. एक स्तोत्र का नाम (जिसका गायन माध्यन्दिनसवन में किया जाता है और जो विशिष्ट साम : बृहत् अथवा रथन्तर पर आधृत होता है), मा.श्रौ.सू. 3.8.4; 7.2.5.11; मा.श्रौ.सू. 7.2.4.11 में यह छ: दिनों के लिए पृष्ठ साम है; पञ्च.ब्रा. 15.3.18 सामवि.ब्रा. 1.239 पर आधृत; चि.भा.से. स्तोत्र के गायन का एक विशिष्ट प्रकार अथवा रूप, ला.श्रौ.सू. 2.9.7, जिसमें दो ऋचायें (ऋ.वे. 7.32.22-23), एक बृहती एवं दूसरी सतोबृहती, प्रथम के अन्तिम पाद एवं द्वितीय ऋचा के दूसरे पाद को आवृत्ति करते हुए इस तरह जोड़-तोड दिये जाते हैं कि (इन दोनों ऋचाओं से) तीन ऋचाओं वाला गान बन जाता है, इन गायनों का प्रयोग पृष्ठ के रूप में होता है। उनके बीच में पड़े हुए प्रतीकात्मक रूप से गर्भाशय का कार्य करने वाले दूसरे साम के साथ दो बार गाये जाते हैं। दोपहर के समय सोमार्पण में चार पृष्ठस्तोत्र होते हैं; प्रथम रथन्तर एवं बृहत् में, द्वितीय वामदेव, तृतीय नौधस एवं चतुर्थ निष्केवल्य, हि.आ.ध. II.2.1191।

पृष्ठकाल पु. (पृष्ठगानस्य काल:) वह समय जब पृष्ठ स्तोत्र गाया जाता है (अर्थात् प्रथम अर्थात् पृष्ट्या शङ्कु के अग्निष्टोम दिन के अपराह्न में), 'पृष्ठकाले रथसंसारणं प्रथमे दक्षिणेन वेदिम्', का.श्रौ.सू. 12.3.7 [रथ के सञ्चलन के द्वारा स्तोत्र का उपाकरण किया जाता है। दूसरे दिन मृदङ्ग की ध्वनि के कोलाहल से, और तीसरे दिन वायु के शोर से, चौथे दिन 'उद्गाता' के जङ्घे पर अग्नि का मन्थन कर, पाँचवें दिन अवका-संज्ञक पौधों से युक्त एक पात्र से और छठें दिन गायों के रंभाने के कोलाहल से]।

पृष्ठशमनीय न. (पृष्ठं शाम्यते येन तत्) पृष्ठ साम अर्थात् बृहत् एवं रथन्तर आदि को शान्त करने के लिए अनुष्ठित कृत्य, आप.श्रौ.सू. 21.13.5 = पृष्ठ्यशमनीय, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.11; द्रा.श्रौ.सू. 31.2.28।

पृष्ठसामन् न. (पृष्ठस्तोत्रे प्रयुक्तं साम) पृष्ठस्तोत्र में अनुप्रयुक्त साम। ये कुल मिलाकर छ: हैं : रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्कर एवं रैवत, इंग्लिग, श.ब्रा.अं. XXVI. 406।

पृष्ठहोम पु. (पृष्ठाय होम:) आग्नीध्रीय अग्नि के दक्षिण के ओर-छोर पर सञ्चरण के उपरान्त (पृष्ठ स्तोत्र के सम्मान में) किये जाने वाले एक होम का नाम, श्रौ.को. (अं.) I. 624, 719; ला.श्रौ.सू. 2.9.1; दो आहुतियां, द्रा.श्रौ.सू. 6.1.1।

पृष्ठ्यशिल्प न. एक लघु स्तुति का नाम; पृष्ठ्य शिल्प-शस्त्र, मा.श्रौ.सू. 7.2.2.6 (इसको नियत करने के लिए दो दर्भपत्रों का प्रयोग किया जाता है); (पृष्ठ्य स्तोत्र के सन्दर्भ में सम्भवत: इसका अर्थ 'विभिन्नता' है)।

पृष्ठ्य षडह पु. छ: सुत्याओं वाले अहीन याग का नाम (जिसमें प्रथम और चतुर्थ क्रमश: अग्निष्टोम एवं षोडशिन् एवं शेष उक्थ्य याग हैं), 'पृष्ठ्य: षडह: प्रथमोऽग्निष्टोमश्चतुर्थ: षोडश्युक्थ्या इतरे', का.श्रौ.सू. 12.3.1; मा.श्रौ.सू. 7.2.2.1; चि.भा.से. छ: सोम-दिनों की एक अवधि; इसको यह इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें अभिप्लव-षडह के विपरीत पृष्ठ-स्तोत्रों का गायन सामान्य अग्निष्टोम की तरह किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 21.8.8।

पृष्ठ्यस्तोम पु. सात दिन तक चलने वाले एक सोम-याग का नाम (जिसमें बृहत् एवं रथन्तर साम से युक्त पृष्ठ्य-संज्ञक छ: दिन का कृत्य एवं रात्रिपर्यन्त चलने वाले कृत्य के रूप में विश्वजित् विहित है)। मा.श्रौ.सू. 9.4.3.21

पृष्ठ्या स्त्री. (पृष्ठे भवा, पृष्ठ + यत् + टाप्) एक रस्सी, दोनों तरफ बन्धन वाली पृष्ठ रेखा, मा.श्रौ.सू. 10.11.12; गार्हपत्य के मध्य से आहवनीय के मध्य तक भूमि पर खींची गई रेखा, इसका प्रयोग 'पृष्ठ्यासूत्र' के लिए आधार के रूप में किया जाता है, श्रौ.प.नि. 4.18; 'विहार' की मध्य रेखा पर फैली हुई पवित्र घास, श्रौ.को. (अं.) I.ii.654; उठा हुआ भाग (रीढ़) गार्हपत्य एवं आहवनीय के बीच वेदि के पृष्ठ के ओर-छोर जाने वाली मेरुदण्डीय रेखा बौ.श्रौ.सू. 1.4; आप.श्रौ.सू. 11.4.16; इसे एक शङ्कु से चिह्नित किया जाता है, जो (शङ्कु) मूल आहवनीय से पूर्व की ओर तीन से छः प्रक्रमः (कदमों) की दूरी पर भूमि में गड़ा हुआ होता है (इसे अन्तःपात्य अथवा पृष्ठ्यशंकु कहते हैं); इसके बाद इस स्थान से 36 प्रक्रमों की दूरी पर पूर्व की ओर 'यूपावतीय' पर दूसरा शंकु; अन्ततः दोनों बिन्दुओं को एक रस्सी जोड़ती है, बौ.श्रौ.सू. 6.22; का.श्रौ.सू. 8.3.11 भाष्य; आप.शु.सू. 1.1.4; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 4.10।

पृष्ठ्यादेश पु. (पृष्ठ्यायाः देशः) पृष्ठ-रेखा का क्षेत्र, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.21; द्रष्टव्य - पृष्ठ्या।

पृष्ठ्याशङ्कु पु. (पृष्ठ्यायाः शङ्कुः) (महावेदि की) पृष्ठ-रेखा से जुड़ी हुई खूंटी (शङ्कु), मा.श्रौ.सू. 2.2.2.9; द्रष्टव्य - पृष्ठ्या।

पृष्ठ्यासूत्र न. गार्हपत्य एवं आहवनीय के मध्य (केन्द्र) के बीच सीधी रेखा में फैली हुई रस्सी, श्रौ.प.नि. 4.17; द्रष्टव्य-पृष्ठ्या।

पृष्ठ्यास्तरणमन्त्र पु. (पृष्ठ्यायाः स्तरणस्य मन्त्रः) पृष्ठ्या को फैलाने से सम्बद्ध मन्त्र, भा.श्रौ.सू. (परिशेष) 145।

पेत्व पु. मेढ़ा, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.28 (इसे बहते हुए जल से घिरे हुए द्वीप में वरुण को अर्पित किया जाता है); भा.श्रौ.सू. 7.5.2 (अनु-अज); [नाभ्यां सम्भारन्--------श्वेताम् उर्णास्तुकां या पेत्वस्य अन्तरा शृङ्गे]; एक वन्ध्य बकरा, आप.श्रौ.सू. 7.6.1।

पेषं पिष्ट्वा (पिष् + क्त्वा=पिष्ट्वा) (उखा अथवा महावीर की खपचियों को) लेई बनने तक पीसकर, मा.श्रौ.सू. 3.8.2।

पेषणी स्त्री. (द्वि.व.) (पिष् + ल्युट् + ङीप्) दो पीसने अथवा कुचलने वाले प्रस्तर, दृषद् एवं उपल, वैखा.श्रौ.सू. 11.9।

पोतृ

पोतृ पु. (पू + तृच्) सोम का शोधन करने वाला व्यक्ति, सोम याग के 16 कार्यसम्पादक ऋत्विजों में एक; ब्रह्मा का एक सहायक किन्तु वास्तव में होता का (ऋ.वे. 1.76.4; अग्नि 'पोतृ' है), आप.श्रौ.सू. 10.1.9; और यह प्रातःकालिक सवन में 'याज्या' का पाठ करता है, 12.24.1—० **चमस**।

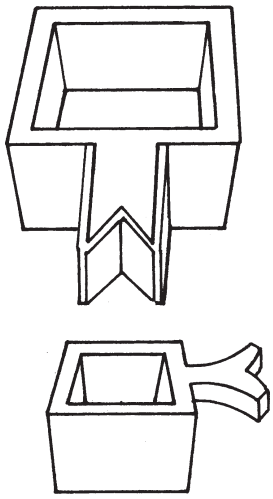

पोतृ-चमस

पौरुमद्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.3.12, सा.वे. 139 पर आधृत।

पौरुन्महन न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. III.215।

पौर्णमास पु. (न) (पूर्णमास + अण्) पूर्णिमा के (दूसरे दिन) अनुष्ठित होने वाला पक्षीय यज्ञ, आप.श्रौ.सू. 3.16.5 (= पौर्णमासी, 1.14.17) अमावस्या के विपरीत जब सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे से अधिकतम दूरी पर स्थित होते हैं।

पौर्वाह्णिकी स्त्री. (द्वि.व.) (पूर्वाह्ण + ठञ् + ङीप्) प्रातः (प्रवर्ग्य एवं) उपसद्, आप.श्रौ.सू. 17.1.1, दूसरे उपसद् दिन की (चयन)।

पौष्कल न. अग्न्याधान संस्कार के अन्तर्गत आवसथ्य अग्नि के सञ्चय के समय 'उद्गातृ' - संज्ञक ऋत्विज् द्वारा गाये जाने वाले एक साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.422।

प्रउग न. 1. अग्निष्टोम याग में होता द्वारा प्रातःकालिक सत्र में पढ़े जाने वाले द्वितीय लघु प्रार्थनात्मक शस्त्र का नाम। सङ्गत स्तोत्र के प्रतिहार के अन्त में प्रैष दिये जाने पर उसे पाठ प्रारम्भ कर देना चाहिए। प्रउग शस्त्र में निश्चित अभिव्यञ्जनायें मुधुच्छन्दस् के तृचों के बीच व्यवधान करती हैं। इनकी संख्या सात है एवं इन्हें 'पुरोऋच्' कहा जाता है। छठें में उसे तीन बार विराम (यति) लेना चाहिए अर्थात् प्रत्येक अर्ध के अन्त में (यति करनी चाहिए)। इन प्रत्येक अभिव्यञ्जनाओं के बाद पढ़े जाने वाले तृच वे हैं, जिनका प्रारम्भ 'वाय आ याहि दर्शत-------' से होता है। अन्त में उसे उक्थ वीर्य मन्त्रों का जप करना चाहिए, अर्थात् वाचं में जिन्व--------', आश्व.श्रौ.सू. 5.10.1-10; शां.श्रौ.सू. 7.10; 8.14.2, 'प्रउग शस्त्र' का पाठ आज्य शस्त्र के पाठ से अधिक ऊँची ध्वनि से (ज़्यादा जोर से) किया जाना चाहिए। यह प्रार्थना (शस्त्र) ऋ.वे. 1, 2 एवं 3 से निबद्ध है जिनमें 21 ऋचायें हैं, जो सात त्रिकों में विभक्त हैं, और पाठ में जिनके प्रत्येक के पूर्व एक 'पुरोरुच्' होता है; 2. शकट-दण्ड का अग्र भाग, का.श्रौ.सू. 7.9.4; पु. सम-द्विबाहु त्रिकोण (बौ.शु.सू. 1.56); त्रिकोण की आकृति में निर्मित एक प्रकार की अग्नि-वेदि का नाम, बौ.शु. 4.107-110।

प्रउगचिति स्त्री. (प्रउग इव चितिः) एक प्रकार की अग्निवेदि का नाम (चयन)। इसका आकार त्रिकोणीय होता है और इसमें 'अर्ध्या' एवं 'दीर्घपाद्या' (-संज्ञक) ईंटे लगी होती हैं, भा.श्रौ.सू. 4.111-117

प्रकृति स्त्री. (प्र + कृ + क्तिन्) स्वाभाविक क्रम या व्यवस्था; सभी अन्य कृत्यों (विकृतियों) का प्रतिदर्श (आद्य प्रारूप)। सभी इष्टियां 'दर्शपूर्णमास' पर अवलम्बित हैं, जो उनके लिए प्रकृति है, आप.श्रौ.सू. 24.3.32; अग्निष्टोम सभी अन्य सोम-यागों की प्रकृति (प्रतिदर्श) है।

प्रक्लृप्ति स्त्री. (प्र + क्लृप् + क्तिन्) प्राप्ति, अभिगम, का.श्रौ.सू. 1.8.22 (----प्रक्लृप्त्युपबन्धाभ्याम्) (मो.वि. : वहाँ होने वाला, विद्यमान)।

प्रक्रम पु. (प्र + क्रम् + घञ्) लम्बाई की एक नाप = 3 पाद, का.श्रौ.सू. 16.8.22 (प्रक्रमस्त्रिपादः) (चयन)। यज्ञ की प्रकृति के अनुसार यह माप भिन्न हो सकती है और यजमान के पैर की लम्बाई पर आधृत पाद पर निर्भर है, वैखा.श्रौ.सू. 4.11-5.2; दो या तीन पदों के बराबर (एक पद = 15 अंगुल, आप.श्रौ.सू. 5.4.3 भाष्य); का.श्रौ.सू. 8.3.14; भाष्य। वेदि आदि के निर्माण के लिए प्रयुक्त। नापने वाली रस्सी 'प्रक्रम-स्थानीय' कहलाती है, आप.श्रौ.सू. 14.15.11; हि.आ.ध. II (2) 989n एवं 1152n, बौ.श्रौ.सू. (चि.भा.से.)।

प्रगाथ पु. दो पद्यों की इकाई जो मरुत्वतीय शस्त्र का स्वरूप निर्माण करती है। 'इन्द्रनिहव' (ऋ.वे. 8.53.5-6); ब्रह्मणस्पत्य (ऋ.वे. 1.40.5-6) एवं मरुत्वतीय (ऋ.वे. 8.89.3-4); प्रत्येक दो पद्यों से निबद्ध होते हैं, जिनमें एक बृहती तथा दूसरा ककुभ् छन्द होता है। दो पद्यों में से पदों की आवृत्ति एवं सम्मिश्रण से एक त्रिक (तृच) बन जाता है, शां.श्रौ.सू. 6.9.7; आश्व.श्रौ.सू. 5.15.1-13; माध्यन्दिन सोम-सवन।

प्रग्रथन न. (प्र + ग्रथ् + ल्युट्) अन्तिम पाद की आवृत्ति करके एवं इसे अगले के प्रथम पाद में जोड़ते हुए ऋचाओं के सम्मिश्रण अथवा संयोजन की प्रक्रिया, शां.श्रौ.सू. 7.25.3।

प्रचरणी स्त्री. (प्र + चर् + ल्युट् + ङीप्) वैसर्जन होम में प्रयुक्त विकङ्कत काष्ठ से निर्मित करछुल, शां.श्रौ.सू. 7.8, इसे उत्तरी हविराधान-शकट की ठुड्डी पर रखना चाहिए, बौ.श्रौ.सू. 8.3; सहायक करछुल, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.8; जूहू आदि के अतिरिक्त सप्तम स्रुक्, आप.श्रौ.सू. 11.16.6.15, इत्यादि; श्रौ.प.नि. 228-129; श्रौ.को. (सं.) II.552; वि. एक आहुति देने के लिए अभिप्रेत, बौ.श्रौ.सू. 7.3 (प्रचरण्यां स्रुचि चतुर्गृहीतम्)।

प्रचरणीय वि. (प्र + चर् + अनीयर्) (प्रवर्ग्य-संज्ञक) कृत्य के अनुष्ठान में प्रयुक्त होने वाला, बौ.श्रौ.सू. 9.6।

प्रच्छादन न. (प्र + छद् + णिच् + ल्युट्) (दक्षिणा होम के समय यजमान एवं उसके सहवासियों का) आवरण, मा.श्रौ.सू. 2.4.5.3।

प्रच्यावयतात् (प्र + च्यु + णिच् + वि.लि. म.पु. ए.व; तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम्, पा. 7.1.35) (पशु के अङ्गों को) पानी में डुबाना चाहिए, का.श्रौ.सू. 6.8.1 (शमितारं शास्ति त्रिः प्रच्यावयतात्------)।

प्रजनन न. (प्रजन्यतेऽने अस्मिन् वा प्र + जन् + ल्युट्) अधर (नीचे की) अरिणी में स्थित छिद्र, जिससे अग्नि को मन्थनपूर्वक उत्पन्न किया जाता है = योनि, बौ.श्रौ.सू. 2.6; ला.श्रौ.सू. 2.5.5; ना स्त्री.-ऊपरी वेधक काष्ठ की प्रजननात्मक शक्ति, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.40 (निधाय----------पश्चात्प्रजननां मूलतः उत्तरारणिम्)।

प्रजाती स्त्री. (वेधन अथवा मन्थन द्वारा) उत्पन्न की जाती हुई आग से सम्बद्ध मन्त्र; 'गायत्रं छन्दो अनु प्रजायस्व----', बौ.श्रौ.सू. 4.5:10 (अथ प्रजातीर्वाचयति)।

प्रजापतेरुपहव्य पु. एक सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.1; तुल.बौ.श्रौ.सू. 18.27।

प्रजापतेर्हृदय न. अग्निहोत्री की मृत्यु के बाद मन में गाये जाने वाले एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.1078; प्रस्तोता को उत्तर की ओर चयनित 'वेदि की काँख के पास स्थित रहकर इस साम का गायन करना चाहिए, द्रा.श्रौ.सू. 2.1.20; वैकल्पिक रूप से उत्तरी 'उपप्लव' की ओर रहकर, द्रा.श्रौ.सू. 2.1.28; ला.श्रौ.सू. 2.1.28 (=उपप्लव, Parpola 'गोलाकार सन्धि) चयन की जाने वाली अग्निवेदि की; पञ्च.ब्रा. 5.4.4 स्तोभों पर आधृत।

प्रज्य वि. तैयार, बौ.श्रौ.सू. 25.4; विव. सज्जं सन्नद्धमिति यावत्।

प्रज्ञात न. (प्र + ज्ञा + क्त) वह स्थान जो ज्ञात हो और जो आराम से पाया जा सकता हो।

प्रज्ञातम् क्रि.वि. ज्ञात अथवा चिह्नित रूप से, भा.श्रौ.सू. 1.4.20।

प्रज्ञाता स्त्री. (प्रज्ञात + टाप्) (छुरी) जिसे पहले ही परिभाषित किया जा चुका है, का.श्रौ.सू. 6.6.8।

प्रणयन न. (प्र + नी + ल्युट्) आगे की ओर ले जाना; सोम याग में उच्चतर वेदि तक अग्नि एवं सोम के उद्देशिक प्रेषण के लिए प्रयुक्त; द्रष्टव्य - अग्नि एवं अग्नीषोम।

प्रणयनीय वि. (प्रणीयतेऽनेन, प्र + नी + अनीयर्) आहवनीय के लिए अग्नि को आगे ले जाने के लिए गार्हपत्य पर रखा हुआ(प्रदीप्त काष्ठ = इध्म), आप.श्रौ.सू. 5.13.3 (आधेय), पशुयाग में भी, 7.6.4।

प्रणव पु. (प्र + नु + अप्, ऋदोरप्, पा. 3.3.57) रहस्यात्मक उद्बोधन 'ओम्', इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता है किन्तु यह ऋ.वे. में उपलब्ध नहीं है : मात्र तै.सं. में एक स्थान पर इसका संकेत है, कीथ, तै.सं. 252n। यह लम्बित (त्रिमात्रा) अथवा अलम्बित 'ओ' से प्रारम्भ होता है एवं 'म' (म्) से समाप्त होता है, शां.श्रौ.सू. 1.1.19 ('ओ' प्लुत होता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.10); इसका उच्चारण होता द्वारा 'सामिधेनी' ऋचा के अन्त में उस क्षण किया जाता है, जब समिध् का आहवनीय में प्रक्षेप होता है, आप.श्रौ.सू. 2.12.4 (दर्श); अनुवाक्य के अन्त में, 8.15.14; शस्त्र के अन्त में 12.27.14; उद्गीथ में, द्रष्टव्य - द्रा.श्रौ.सू. 1.3.6, 1.3.29; 18.2.7 (ओङ्कार)। वस्तुतः वा.सं. में भी उपलब्ध।

प्रणीता स्त्री. (प्र + नी + क्त + टाप्) वह जल जिसे 'पवित्र' से लगभग मुँह भर भरे हुए चमस में ऊपर की ओर उछालकर शुद्ध किया जाता है। इसे अध्वर्यु मन्त्र के साथ गार्हपत्य के उत्तर से आहवनीय के उत्तर तरफ 'प्रणीता-प्रणयन' नाम वाले पात्र में वहन करता है, आप.श्रौ.सू. 1.15.7; 1.16.3-5 (दर्श), इस कृत्य को प्रणीताप्रणयन कहते हैं। इस जल का उपयोग पुरोडाश के लिए पिष्ट अनाज की लोई बनाने के लिए अनाज की लोई बनाने के लिए (भी होता है,—**प्रणयन**)।

प्रणीता-प्रणयन

प्रतपन न. (प्र + तप् + ल्युट्) यज्ञीय पात्रों को शुद्धीकरण के लिए तपाना (विशेषत: शूर्प, आदि को), का.श्रौ.सू. 2.3.11 (प्रतपनं प्रत्युष्टं निष्टप्तमिति वा)।

प्रतपन

प्रतिकामम् क्रि.वि. प्रत्येक ऐच्छिक इष्टि में (अर्थात् किसी विशेष कामना की पूर्ति के लिए अनुष्ठित इष्टि में), का.श्रौ.सू. 4.5.15 (आग्नेयं प्रतिकाममाहरेत्)।

प्रतिकृष्टतर पु. (अतिशयेन प्रतिकृष्ट:, प्रति + कृष् + क्त + तरप्) (उपभृत् की तुलना में) पीछे अधिक खींची गई (ध्रुवा), आप.श्रौ.सू. 2.10.2।

प्रतिक्रमण न. (प्रति + क्रम् + ल्युट्) (अध्वर्यु एवं यजमान का आहवनीय के दक्षिण से उत्तर की ओर) वापस आना, मा.श्रौ.सू. 8.26.8; 'अथात: तीर्थसञ्चारान् व्याख्यास्याम:' (आहवनीयं स्रुचश्चान्तरेण)।

प्रतिगर

प्रतिगर पु. (प्रति + गृ + अप्) शस्त्र पाठ करने वाले ऋत्विज् होता आदि के प्रति) उत्तरप्रदान के शब्द, शुन:शेपशस्त्र की ऋचाओं के शंसन में 'ऊँ' यह प्रतिगर करना चाहिए, स.वृ. (ओम् इति ऋचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम्, का.श्रौ.सू. 15.6.3, अभिषेचनीय)। शस्त्र के पाठ की प्रक्रिया में 'आहाव' के प्रत्युत्तर के रूप में एक मन्त्र जो प्रतिगर कहलाता है, अध्वर्यु द्वारा उच्च स्वर से उच्चारित किया जाता है और 'आहाव' की तरह प्रतिगर एक रहस्यात्मक महत्ता से युक्त है और इसीलिए विभिन्न प्रस्तार (क्रम परिवर्तन) से कई कर्मकाण्डीय सम्मिश्रण उत्पन्न हो जाते हैं, जिसमें 'ओथामोदैव (उच्चरित दैव) सबसे अधिक साधारण है (आश्व.श्रौ.सू. 5.9.5) शों सामो दैव, ओथा मोद अर्ध इव (एक ऋचा के अन्त में), ओथा मोद इव (एक ऋचा के अन्त में) होतर् मोद इवोम् (ऋचा के अन्त में), ओथा मोद इवोम् (शस्त्र का अन्त), आ.श्रौ.सू. 12.27.14-15। वैश्वदेव शस्त्र में इसमें भिन्नता है, आप.श्रौ.सू. 13.13.8-10; षोडशी शस्त्र, 14.3.4; हवै होतर्, का.श्रौ.सू. 20.3.2 (अश्वमेघयज्ञ); होयि होतर् शां.श्रौ.सू. 15.1.23, अथवा सामान्य रूप से 'ओम्', आप.श्रौ.सू. 18.19.13 (राजसूय)।

प्रतिगरितृ पु. (प्रति + गृ + तृच्) कार्यसम्पादक ऋत्विज्, इस स्थिति में, अध्वर्यु जो होता (अथवा होत्रक) के पाठ के लिए उत्तर प्रदान करता है, मा.श्रौ.सू. 9.1.4.15।

प्रतिग्रहकल्प पु. (प्रतिग्रहे कल्प:) उपहारों को ग्रहण करते समय कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, मा.श्रौ.सू. 11.1.1.1।

प्रतिग्रहण पु. (प्रतिगृह्यते एभि: ते मन्त्रा:) दक्षिणा ग्रहण करते समय उच्चारित किये जाने वाले मन्त्रों का नाम, आप.श्रौ.सू. 14.12.5।

प्रतिचित वि. (प्रति + चि + क्त) (वह व्यक्ति) जो स्थान ग्रहण करने लिए अर्ह किसी के निकटतम है, विकल्प, स्थानापन्न, बौ.श्रौ.सू. 26.10।

प्रतिच्छाद्य (प्रति + छद् + ल्यप्) ढक कर, बौ.श्रौ.सू. 6.3 (सोमयाग में यजमान-पत्नी की 'अप्सु' दीक्षा)।

प्रतिदधाति (प्रति + धा + लट् प्र.पु.ए.व.) दर्भ-संज्ञक घास की रस्सी के जोड़ों को निष्पन्न करता है, भा.श्रौ.सू. 1.4.6।

प्रतिदिग्द्वार वि. (प्रत्येकं दिक्षु द्वारं यस्य) सभी प्रमुख दिशाओं में निकास (द्वार) से युक्त, का.श्रौ.सू. 7.1.17 (प्राग्वंश)।

प्रतिदुह् न. प्रत्यग्र (ताजा) दूध, मा.श्रौ.सू. 3.6.5।

प्रतिधयीत (प्रति + धेट् + वि.लि. प्र.पु.ए.व. बाहुल्यात आ.प.) पीना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 15.20.15।

प्रतिधुक् न. वह दूध जो गाय के सद्य: दोहन के कारण गर्म हो, आप.श्रौ.सू. 8.20.20 ताजा दूध, आप.श्रौ.सू. 8.20.5 (इन्द्र शुनासीरीय के लिए आहुति-द्रव्य); द्रष्टव्य - प्रतिदुह्।

प्रतिनमस्कार वि. (प्रतिगत: नमस्कार: यस्मै येन वा) (वह व्यक्ति) जो श्रद्धाञ्जलि के लिए अधिकृत हो (गोंड, प्रातरनुवाक, लाइडेन 1981, पृ. 14); वह व्यक्ति जो प्रतिनमस्कार करता है (मो.वि.); तुल. प्रत्यर्धि, आधे का----- दावा करने वाला, ऋ.वे. 10.26.5।

प्रतिनयत् वि. (प्रति + नी + शतृ) (यजमान की पत्नी को उसके आसन पर) वापस ले जाते हुए (ले जाते समय) अक्रन्मकर्मेत्येनां वाचयति प्रतिनयन्' का.श्रौ.सू. 5.5.12 (चातुर्मास्य)।

प्रतिनिगद्य (प्रति + नि + गद् + ल्यप्) सभी देवताओं के नाम का उच्चारण कर 'प्रतिनिगद्य होमा:', का.श्रौ.सू. 6.10.23 (वपाहोम); (एक आहुति) के अनुकाल मन्त्र को पढ़कर, भा.श्रौ.सू. 5.11.4 (अनु.) (होता के 'वषट्'-संज्ञक आह्वान का) उत्तर देकर, मा.श्रौ.सू. 1.8.4.36 (जातवेदो वपया-- इति प्रतिनिगद्य जुहोति)।

प्रतिनिग्राह्य पु. (प्रति + नि + ग्रह् + ण्यत्) नियमित सोम के प्याले के प्रसङ्ग में संगत द्रव (अथवा सोम का प्याला) जिसे द्रोण कलश से लिया जाता है एवं बिना ढूह पर रखे आहुति के रूप में अर्पित किया जाता है। इसे आहरण-चम्मच से लेना होता है एवम् आघार के तरीके से परिधि के दक्षिणी जोड़ से उत्तर वेदि के उत्तर-पूर्व कोण तक अर्पित किया जाता है, अर्थात् 'उपांशु' संज्ञक प्याले की प्रविधि से, भा.श्रौ.सू. 13.22.1-23.4; आप.श्रौ.सू. 12.21.10; 12.21.22; 12.20.19 मा.श्रौ.सू. 2.3.8.2; हि.श्रौ.सू. 8.6.19; तुल. प्रतिग्राह्य, बौ.श्रौ.सू. 21.9.21; द्रष्टव्य—प्रतिनिग्राह्य, बौ.श्रौ.सू. 25.20; रु - आप.श्रौ.सू. 12.20.19 पर, चि.भा.से. : एक सोमाहरण का नाम, जिसे करछुल से निकाला या ग्रहण किया जाता है एवं प्रात: सवन में युग्म देवताओं को अर्पित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.20.19; बौ.श्रौ.सू. 7.12।

प्रतिनिधि पु. (प्रति + नि + धा + कि) प्रतिनिधि अथवा स्थान्नापन्न द्रव्य, का.श्रौ.सू. 1.4.2-15. व्रीहि के स्थान पर 'नीवार' का प्रयोग किया जा सकता है, आप.श्रौ.सू. 24.3.52-53; इनके स्थानापन्न की स्वीकृति नहीं है : यजमान, अग्निवेदि, देवता, 'सोम' इत्यादि शब्द, मन्त्र, यज्ञ का कृत्य एवं निषेध। किन्तु सत्र में किसी यजमान का स्थान दूसरा यजमान ले सकता है, मी.सू. 6.3.32.

प्रतिनिर्ग्राह्य-पात्र न. वह प्याला जिसमें अनुकूल सोम द्रव लिया जाता है, वैखा.श्रौ.सू. 15.26।

प्रतिनुत्ता वि. स्त्री. (प्रति + नुद् + क्त + टाप्) (दक्षिणा के रूप में प्राप्त गाय), जिससे उस व्यक्ति ने (लेने से) मना कर दिया हो, जिसको वह उपहार (दक्षिणा) के रूप में दी गई थी, आप.श्रौ.सू. 13.7.10।

प्रतिनोद पु. एक 'एकाह' का नाम, बौ.श्रौ.सू. 18.48 (सोमयाग)।

प्रतिपत्तिकर्मन् न. (प्रतिपत्ते: कर्म) यज्ञ में प्रयुक्त उपादानों का निपटारा, श्रौ.प.नि. 18.150।

प्रतिपत्तिमार्जन न. (प्रतिपत्तौ मार्जनम्) पूर्णता अथवा निपटारे के पश्चात माँजना या साफ करना, मा.श्रौ.सू. 4.8.4।

प्रतिपद् स्त्री. (प्रति + पद् + क्विप्) एक परिचयात्मक ऋचा, (सामिधेनी के पहले) आप.श्रौ.सू. 4.9.2; 'यजमान:--- सामिधेनीनाम् प्रतिपदि जपति'); विशेष रूप से प्रथम ऋचा जो क्रमश: माध्यन्दिन एवं तृतीय सवन में 'मरुत्वतीय' एवं 'महावैश्वदेवशस्त्र' का आरम्भ करती है, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.22; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.383; 'आ त्वा रथम्', इत्यादि, ऋ.वे. 868.1-3।

प्रतिपरिव्ययति (प्रति + परि + वि + इ = अय् + लट् प्र.पु.ए.व.) कटिबन्ध को विपरीत दिशा में हवा करता है, आप.श्रौ.सू. 10.9.14।

प्रतिपर्याहृत्य (प्रति + परि + आ + हृ + ल्यप्) (प्याले को) पुन: पीछे चारों ओर घुमाकर, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.37 (आश्विन ग्रह)।

प्रतिप्रस्थातृ पु. एक ऋत्विज् का नाम, जो अध्वर्यु के प्रथम सहायक के रूप में कार्य का निर्वाह करता है; उसका विशेष कार्य है यजमान की पत्नी के आगे-आगे चलना, और बलि के रूप में प्रदेय पशु की अँतड़ियां ग्यारह भाग में काटना और उनके (अँतड़ियों के भागों के) साथ उपयाजों को अर्पित करना (आहुति देना, पशुयाग में), आप.श्रौ.सू. 7.18.1; 21.8; सवनीय पुरोडाश तैयार करना,

12.3.15; वह बिना मन्त्रों का उच्चारण किये अपने कर्तव्यों का निर्वहण करता है; मन्त्र केवल अध्वर्यु द्वारा पढ़े जाते हैं, 8.5.1; सोम-पान करने के लिए (प्रयुक्त) उसके पात्र को 'प्रतिप्रस्थान' कहते हैं, 12.21.12, जो अध्वर्यु के पात्र से छोटा होता है, 15.3.11।

प्रतिप्रस्थान न. 1. वह पात्र अथवा प्याला जिससे प्रतिप्रस्थाता सोम-रस को ग्रहण करता है और पीता है, आप.श्रौ.सू. 12.21.18, 21; मा.श्रौ.सू. 2.4.6.8; 2. प्रतिप्रस्थाता से सम्बद्ध (दूध की बाल्टी, अर्थात् दोग्ध्रम्), आप.श्रौ.सू. 15.3.11 (प्रवर्ग्य)।

प्रतिप्रिय वि. (प्रति + प्री + अच्) (अपने मन को) प्रिय (लगने वाला), आप.श्रौ.सू. 10.6.8।

प्रतिभक्षण न. (प्रतिगतं भक्षणम्) (होत्रक चमस का) विपरीत उपभोग, बौ.श्रौ.सू. 21.20।

प्रतिमार्ष्टि (प्रति + मृज् + लट् प्र.पु.ए.व.) (प्रस्तर को अग्रभाग से प्रारम्भ कर जड़ तक) छूता है, (माँजता है) आप.श्रौ.सू. 2.8.5।

प्रतिमुखम् क्रि.वि. दूसरे तरफ का उलटा, अर्थात् दक्षिण-पूर्व, बौ.श्रौ.सू. 1.16:8,10।

प्रतिमुञ्चति (प्रति + मुञ्च् + लट् प्र.पु.ए.व.) छूता है (नागरं प्रतिमुञ्चति), भा.श्रौ.सू. 2.3.17; प्रतिपूर्वक 'मुच्' धातु का अर्थ 'पहनता' भी है 'आयुष्यमग्रं प्रतिमुञ्च शुभ्रम्'।

प्रतियौति (प्रति + यु + लट् प्र.पु.ए.व.) (प्रस्तर को) पश्चिम की ओर नहीं सरकाता है, आप.श्रौ.सू. 2.8.5।

प्रतिरूप वि. (प्रतिगतं रूपं यस्य) उपयुक्त, सदृश, सुमेल, मा.श्रौ.सू. 7.2.3.2 (अपहताय प्रतिरूपैः शब्दैः परिहरेयुः; (अविवाक्य दिन)।

प्रतिलोमम् क्रि.वि. (प्रतिगतं लोम तद्यथा स्यात्) उलटे क्रम में; ऋचा के अन्तिम शब्द से प्रथम तक, आप.श्रौ.सू. 14.15.1 (दशहोतृ मन्त्र); ('अनुलोमम्' के विपरीत) विपरीत दिशा में; एक करछुल के बारे में कथन, जो इस तरह पकड़ी जाती है कि इसकी चोंच आहुति अर्पित करने वाले व्यक्ति की ओर रहती है, भा.पि.मे. 1.11.3।

प्रतिविभज्य (प्रति + वि + भज् + ल्यप्) (वेद के कतरों के अग्र भाग को भाण्डों के ऊपर वितरित करके, भा.श्रौ.सू. 2.4.3 (द्रष्टव्य-अप्रतिविभज्य वा, 2.4.3)।

प्रतिवेश वि. (प्रति + विश् + घञ्) पास में स्थित, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.27 (अपि प्रतिवेशः अन्यः ओदनः); गार्हपत्य अथवा दक्षिणाग्नि पर पकाया गया एवं यजमान की पत्नी द्वारा भक्षित अप्रधान (चावल), भा.श्रौ.सू. 8.12.16; 13.16 (साकमेध); एक समरूप तैयार करने वाला, आप.श्रौ.सू. 8.10.10; पु. 'महानस' (रसोई) में पकाया गया चावल, आप.श्रौ.सू. 8.11.11।

प्रतिशिरस् क्रि.वि. (शिरः शिरः प्रति) प्रत्येक शिर के लिए (पाँच वध्यों के शिर होते हैं), 'प्रतिशिरः सप्त सप्त हिरण्यशकलान् मुखे करोति-----', का.श्रौ.सू. 17.5.7 (चयन)।

प्रतिश्रृणाति (प्रति + श्रृ + लट् प्र.पु.ए.व.) ज्वलितों को क्षुब्ध करता है, भा.श्रौ.सू. 3.6.2 (इति प्रस्तरप्रहरणम्); आप.श्रौ.सू. 3.6.10 (रु. रालों के विरुद्ध प्रस्तर को रगड़ता है)।

प्रतिषेकम् क्रि.वि. (प्रति + सिच् + घञ् + अम्) (बार-बार) जल उड़ेलते हुए, आप.श्रौ.सू. 6.15.3 (अग्निहोत्र-यवागूपचनम्)।

प्रतिषेचन न. (प्रति + सिच् + ल्युट्) (गर्म किये जाते हुए अग्निहोत्र के दूध में) बार-बार जल उड़ेलने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 6.14.17।

प्रतिषेध पु. (प्रति + सिध् + घञ्) (किसी नियम का) विरोध, निषेध, भा.श्रौ.सू. 6.15.6।

प्रतिष्ठा स्त्री. (प्रति + स्था + अङ् + टाप्) 1. भूमि की कड़ी सतह (आ प्रतिष्ठायै खनति), भा.श्रौ.सू. 2.2.10 (वेदिकरण); सुरक्षित स्थिति; 2. विहित कृत्यों से किसी वस्तु को सर्वजन के लिए समर्पित करने का कृत्य। इसके चार प्रधार स्तर (चरण) हैं : सङ्कल्प, होम, उत्सर्ग (यह घोषणा की अमुक वस्तु समर्पित कर दी गई है) और अन्त में दक्षिणा, हि.आ.ध. II (2). 892, दानक्रिया कौमुदी, पृ. 166 (प्रतिष्ठापनं सविधिकोत्सर्जनम् इत्यर्थः)।

प्रतिष्ठितम् क्रि.वि. (प्रति + स्था + क्त + अम्) इस तरह की पुरोडाश अग्नि पर स्थिर रहे (प्रतिष्ठितं जुहोति), भा.श्रौ.सू. 8.3.4।

प्रतिसत्रिन् पु. साथी-यजमान, जै.ब्रा. I.169।

प्रतिसमस्यति (प्रति + सम + अस् + लट् प्र.पु.ए.व.) (कृष्णाजिन के नितम्ब-भाग को) मोड़ता है, भा.श्रौ.सू. 1.21.3।

प्रतिसमेधनीय वि. (प्रति + सम + एध् + अनीयर्) (वह अग्नि) जो दूसरे अग्नि के माध्यम से जलायी जाती है; आहवनीय के बारे में कथन, बौ.श्रौ.सू. 10.2.1; प्रदीप्त काष्ठ (समिध) के बारे में कथन, 22.3।

प्रतिसर पु. (प्रति + सृ + अप्) कलाई के चारों ओर पहनी गई डोरी (या धागा) मो.वि. : **० बन्ध**—एक विशिष्ट ऋचा अथवा सुरक्षा के लिए मन्त्रों का नाम; द्र. गोंड जे., AO 15, 1937; श्रौ.प.नि. 45.361।

प्रतिसरबन्ध

प्रतिस्तोमम् क्रि.वि. (स्तोमं स्तोमं प्रति) प्रत्येक स्तोम के लिए तृच में ऋचाओं की आवृत्ति का अनुप्रयोग किया जाता है; प्रतिस्तोमं प्रचरण्या समनक्ति (वसतीवरी), बौ.श्रौ.सू. 7.3।

प्रतिहर्तृ पु. सोम-याग के सोलह ऋत्विजों में एक; वह उद्गाता का एक सहायक होता है, और तृतीय गायक है जो 'प्रतिहार' का गायन करता है, आप.श्रौ.सू. 10.1.9, 'प्रतिहार' साम के पाँच भागों में एक है, जिसके पहले प्रस्ताव और उद्गीथ आते हैं, ला.श्रौ.सू. 7.10.22; द्रष्टव्य – जै.ब्रा. I.115।

प्रतिहित पु. (न.) (प्रति + धा + क्त) 1. राजा का एक स्थानापन्न, उसका निकट का सम्बन्धी (अर्थात् जो निकटतम हो), बौ.श्रौ.सू. 12.11 (राजसूय); आप.श्रौ.सू. 18.16.14; 2. प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी, मा.श्रौ.सू. 7.1.3.33 (वाज०)।

प्रतिह्रसमाना (स्त्री.) वि. (प्रति + ह्रस् + शानच् + टाप्) (तृक = तीन के समूह की आवृत्ति के कारण) कम होती हुई (ऋचाओं की मूल संख्या), आप.श्रौ.सू. 2.12.5।

प्रतीचीनस्तोम वि. (प्रतीचीनः स्तोमः यस्मिन्) जिसमें आवृत्ति की अन्तिम स्तोमयोजना प्रयुक्त होती है; 'प्रतीचीनस्तोमाय केशवपनीययातिरात्राय दीक्षते', बौ.श्रौ.सू. 12.20; 26.2; 26.3।

प्रतीदृश्य स्त्री. एक नक्षत्र का नाम जिसे अमावस्या के दिन नक्षत्र सत्र के अन्तर्गत पन्द्रह कपालो पर संस्कृत पुरोडाश की आहुति दी जाती है, श्रौ.को. (सं.) I.ii.592।

प्रतीपम् क्रि.वि. विरुद्ध, विरोध के तरीके से, मा.श्रौ.सू. 2.3.2.18 (वसतीवरी)।

प्रतृद्य (प्र + तृद् + ल्यप्) (हृदय में शूल) भोंककर, 'शूले हृदयं प्रतृद्य शामित्रे श्रपयति', का.श्रौ.सू. 6.7.14 (पशु.)।

प्रत्तदैवत वि. (प्रत्तं दैवताय यस्मात्) हविर्द्रव्य, जिसमें से देवता को पहले ही आहुति दे दी गई है, आप.श्रौ.सू. 9.15.13।

प्रत्नवती स्त्री. (प्रत्न + मतुप् + ङीप्) 'प्रत्न' शब्द से युक्त एक ऋचा, श्रौ.को. (सं.) I. 75; ऋ.वे. 9.54.1; 'अस्य प्रत्नाम्' आदि (उपस्थान); जै.ब्रा. III.286।

प्रत्यक्षश्रुताम्नात न. (प्रत्यक्षं श्रुते = श्रुतौ आम्नातम्) श्रुति में प्रत्यक्ष विहित (कृत्य), भा.श्रौ.सू. 6.16.3।

प्रत्यगग्रा वि. (स्त्री.) (प्रतीचि अग्रं यस्याः सा) जिसका अग्र भाग पश्चिम की ओर उन्मुख हो, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.22 (शाखा)।

प्रत्यगाशिस् वि. अपने स्वयं के आशीर्वाद के सन्दर्भ से युक्त, आप.श्रौ.सू. 4.1.3 (याजमानमन्त्राः)।

प्रत्यङ् क्रि.वि.(प्रति + अञ्च् + क्विन्) (ताकि) पश्चिम में (रखने की प्रक्रिया समाप्त हो जाय, आप.श्रौ.सू. 12.1.10; (द्रष्टव्य – उदञ्चि अतिग्राह्यपात्राणि, आप.श्रौ.सू. 12.1.15) प्राचीन का उल्टा (विलोम)(रु. प्रत्यगपवर्ग)।

प्रत्यभिघारण न. (प्रति + अभि + घृ + णिच् + ल्युट्) पुरोडाश के उस बिन्दु पर घी को विपरीत उड़ेलना, जहाँ से (स्विष्टकृत् के पूर्व) अवदान = कर्तन किया गया हो, 'अवदाय प्रत्यभिघारणम् प्राक स्विष्टकृतः, 1.9.11।

प्रत्यवमृज्य (प्रति + अव + मृज् + ल्यप्) चिकना बनाकर, मा.श्रौ.सू. 2.2.2.9।

प्रत्यवरोह पु. (प्रति + अव + रुह् + घञ्) शतरुद्रिय होम (चयन) के एक भाग के रूप में आहुतियों का नाम,

आप.श्रौ.सू. 17.11.5; अवरोही (उतरते क्रम में) द्रवार्पण (आस्यदघ्ने नाभिदघ्ने -----जानुदघ्ने), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.4।

प्रत्यवरोहणीय पु. (प्रति + अव + रुह् + अनीयर्) पृथ्वी पर अवरोहण (उतरने) का कृत्य, वाजपेय से जुड़ा हुआ एक अन्तिम (समापनात्मक) कृत्य, जिसमें एक अग्निष्टोम समाहित है, ला.श्रौ.सू. 8.11.14. यह 'अभ्यारोहणीय' का समरूप है।

प्रत्यवसृज्य (प्रति + अव + सृज् + ल्यप्) यज्ञीय घास पर दोनों विभाजक पत्रों 'विधृति' को रखकर, मा.श्रौ.सू. 1.3.4.14।

प्रत्यवस्थाय (प्रति + अव + स्था + ल्यप्) घेरने वाली छड़ियों की सन्धि पर) खड़े होकर, मा.श्रौ.सू. 7.1.1.26।

प्रत्यवेतस्वर वि. (प्रत्यवेतः स्वरः यस्य) स्वर के प्रत्यवरोही क्रम से युक्त (उपद्रव), जिसका प्रारम्भ चतुर्थ अथवा मन्द्र से होता है, ला.श्रौ.सू. 7.8.1।

प्रत्यसनकाल पु. (प्रत्यसनस्य कालः, प्रत्यसन = प्रति + अस् + ल्युट्) (दूध में पानी) उड़ेलने का समय, भा.श्रौ.सू. 6.14.16।

प्रत्याम्नान न. (प्रति + आ + म्ना + ल्युट्) परिवर्तित उद्देश्य का उपसैद्धान्तिक नियम, जो प्रकृति में (विहित) नियम के कार्यान्वयन को जब इसे कहा जाता है, रोक देता है, उदाहरण के लिए, 'कुश के बजाय उसे नरकट का बर्हिस् बनाने दिया जाय, आप.श्रौ.सू. 24.4.2।

प्रत्याम्नाय पु. (प्रति + आ + म्ना + घञ्) प्रति-विधान, भा.श्रौ.सू. 6.15.6; शा.श्रौ.सू. 14.51.16, निदा.सू. 2.8.3; चि.भा.से. स्थानापन्न के रूप में प्रयुक्त ऋचा, आप.श्रौ.सू. 6.30.9; गृह्य कृत्यों में 'प्रत्याम्नाय' के लिए; द्रष्टव्य - हि.मा.ध. II (I). 200।

प्रत्यायन पु. (हविर्द्रव्य लेने के बाद) वापस लौटने के लिए प्रयुक्त मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 1.5.1; चि.भा.से. न. संगत मन्त्रों के साथ पितरों को विदा करने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 14.12.2 (तृतीय सोम-सवन)।

प्रत्याश्रावण न. (प्रति + आ + श्रु + णिच् + ल्युट्) आग्नीध्र की उत्तरात्मक पुकार (प्रत्याश्रुत, आप.श्रौ.सू. 2.15.6) जिसमें अध्वर्यु के 'आश्रावण' के उत्तरस्वरूप 'अस्तु श्रौषट्' (हाँ उसे सुनने दो) निहित है 2.16.2. इसका उच्चारण उत्कर के पीछे खड़े होकर जोर से किया जाता है (24.1.10)। प्रत्याश्रावण के समय अग्नीध्र दक्षिणाभिमुख होता है एवं एक स्फ्य एवं लकड़ी के गट्ठर के लिए एक रस्सी लिए रहता है, 2.15.4 (दर्श) (सोम में) आग्नीध्र मण्डप में खड़े होकर (प्रत्याश्रावण किया जाता है); द्रष्टव्य, श्रौ.प.नि. 27.226।

प्रत्याहुति क्रि.वि. (आहुतिं आहुतिं प्रति) प्रत्येक आहुति के लिए, भा.श्रौ.सू. 3.10.1 (प्रत्याहुति गृहीत्वा सर्वप्रायश्चित्तानि जुहोति)।

प्रत्युत्थान न. (प्रति + उद् + स्था + ल्युट्) किसी के सम्मान में उठना या खड़ा होना, 'शूद्रसम्प्रवेश-सम्भाषा-प्रत्युत्थाना-ऽभिवादनोदकवाय-वर्षाणि वर्जयेत् प्रागवभृथात्', का.श्रौ.सू. 7.5.4 (दीक्षा)।

प्रत्युत्कर्ष पु. (प्रति + उत् + कृष् + घञ्) अन्तराल, मा.श्रौ.सू. 8.2.10।

प्रत्यूहति (प्रति + ऊह् + लट् प्र.पु.ए.व.) रालों को (गार्हपत्य में) वापस ढेलता है, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.22 (अग्निहोत्र); [प्रत्यूहन—श्रौ.प.नि. 18.143]।

प्रथ पु. हाथ की हथेली, बौ.श्रौ.सू. 21.9; (यूप पर स्थित 'चषाल'-संज्ञक वलय की माप), आप.श्रौ.सू. 7.3.4; (गार्बे का संस्करण-प्रथमात्रम् = 13 अंगुल, बौधायन के अनुसार); अमरकोशकार ने चषाल की गणना पुल्लिंग शब्दों में की है।

प्रथमसंवित्ता स्त्री. (प्रथमं संवित्ता, संवित्ता = सम् + विद् + क्त + टाप्) (यजमान की) प्रथम विवाहिता (पत्नी), अषाढां करोति महिषी प्रथमसंवित्ता तदाख्या, का.श्रौ.सू. 16.3.21 (प्रथमसंवित्ता = प्रथमलब्धा, स.वृ.)।

प्रथमसमिद्ध न. (सप्त.) जब अग्नि की पहली ज्वाला दिखाई पड़े, 'प्रथमसमिद्धे धूप्यमाने प्रजासु निहत्वेव सहसाऽन्नमत्स्यतः', का.श्रौ.सू. 4.15.15 (प्रथमसिद्धे = प्रथमज्वालाविर्भावे, स.वृ.)।

प्रथमस्थान न. (प्रथमं स्थानम्) प्रथम (उपांशु से थोड़ा उच्च) ध्वनि (स्वर), 'प्रातःसवने चोच्चैः कर्माणि', का.श्रौ.सू. 9.6.17; प्रथम कोटि का स्वर (या ध्वनि), जो स्विष्टकृत् के पूर्व के अनुष्ठान में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के लिए विहित है, 'प्रथमस्थानेन प्राक् स्विष्टकृतः' का.श्रौ.सू. 3.1.3 एवं भाष्य।

प्रथमात्रा वि. (प्रथः मात्रा यस्य) उतना गहरा जितना हाथ की हथेली (खनति. यावत्पार्ष्ण्याः----प्रथमात्राम्-----), आप.श्रौ.सू. 2.3.7 (द्रष्टव्य - सीतामात्रीं रथवर्तमात्रीम्)।

प्रथमाहार पु. (प्रथमः आहारः = अनुष्ठानम्) सोम याग का प्रथम अनुष्ठान, का.श्रौ.सू. 16.1.3 (प्रथममाह्रियते = क्रियते इति प्रथमाहारः प्रथमप्रयोगः, स.वृ.) (जिसमें उत्तर वेदि (एक अप्रयुक्त चबूतरे के) अग्नि के पहले आहरण = आगे ले जाने) की क्रिया उत्तर दिशा में की जाती है), श.ब्रा. 3.5.1.33।

प्रदान न. (प्र + दा + ल्युट्) जब तक पहले आदेश को वापस लेकर दूसरा आदेश नहीं दिया जाता (उस आहुति को) प्रदान करना, जिसकी आहुति सदैव आहवनीय अग्नि में दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 24.1.27।

प्रदाव्य पु. जलती हुई अग्नि (प्रदाव्यं यजमान उपतिष्ठते), मा.श्रौ.सू. 2.5.5.20; पशुयाग में औपयाज अग्नि में बर्हिष् को जलाने के द्वारा उत्पन्न अग्नि, बौ.श्रौ.सू. 4.11.10 (सक्तुं प्रदाव्ये अञ्जलिना जुहोति)।

प्रदोष पु. (प्र + दुष् + घञ्) गोधुलि वेला, मा.श्रौ.सू. 1.6.1.8 (सायंकालीन अग्निहोत्र का समय)।

प्रधान वि. (प्र + धा + ल्युट्) मुख्य, प्रमुख (यज्ञ के कृत्य) जिनकी गणना अग्नि के लिए आठ कपालों पर संस्कृत (सेंके गये) एक पुरोडाश, पौर्णमासी के दिन अग्नीषोम के लिए ग्यारह कपालों पर संस्कृत पुरोडाश की आहुति के रूप में की गयी है। अन्य कृत्य 'अङ्ग', समझे जाते हैं, जैसे प्रयाज और अनुयाज, आप.श्रौ.सू. 24.2.30-31. अङ्ग (अपने) प्रधान के साथ मिलकर सम्पूर्ण यज्ञ को साकार करता हैं (39)। ऐसी मान्यता है कि प्रधान यागों का अनुष्ठान स्वयं यजमान करता है, प्रधानं स्वामी फलयोगात्, का.श्रौ.सू. 1.7.20; इसे आवाप के समकक्ष समझा जाता है; अतः 'आज्यभाग' एवं 'स्विष्टकृत्' के बीच में स्थान ग्रहण करता है, शां.श्रौ.सू. 1.16.3; **—याग**,श्रौ.प.नि. 31.260।

प्रधानद्रव्यात्वपत्ति स्त्री. प्रधान याग के सन्दर्भ में द्रव्य के विषय में आकस्मिकता, का.श्रौ.सू. 1.7.27।

प्रधि पु. (प्र + धा + कि, उपसर्गे घोः किः, पा. 3.3.92) (एक आयत) जिसमें पक्षों में एक के रूप में गोलाकार मोड़ होता है (जब दिये गये वृत्त में सबसे बृहत् वर्ग बैठा दिया जाता है, तो वृत्त के शेष भाग 'प्रधि' कहलाते हैं), बौ.शु.सू. 2.71; गाड़ी के पहिए की बारी (घेरा); सामने सवन-फलकों की आकृति, आप.श्रौ.सू. 11.13.1; 'रथचक्रचिति' नाम वाली चिति का भी आकार, बौ.श्रौ.सू. 30.16 = प्रधी।

प्रधिमुख वि. (प्रधिः इव मुखं यस्य) जिसका सामने वाला भाग पहिए की बारी से मेल खाता है, आप.श्रौ.सू. 11.13.1 (अधिषवण फलक); भा.श्रौ.सू. 12.13.1।

प्रधुर न. उत्तरी सोम-शकट की धुरा का बिन्दु, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.19 (पूतभृतम् उत्तरे प्रधुरे स्थापयति)।

प्रध्वंसयते (प्र + ध्वंस् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व. आ.प.) नीचे गिराना (अथवा नीचा करना); (हस्तौ प्रध्वंसयते) बौ.श्रौ.सू. 4.11.11, 19; फैलाना या बिखेरना (सूर्यकान्त)।

प्रपद पु. इस मन्त्र का नाम 'भूः प्रपद्ये, भुवः प्रपद्ये, वायुम्---ब्रह्म------क्षत्रं---------अश्मानम्---------' बौ.श्रौ.सू. 3.23 : 95.10 जिसका उच्चारण 'ब्रह्मत्व' ('ब्रह्मा' नाम के ऋत्विज् के पद) संभालने वाला व्यक्ति करता है, प्रातरनुवाक, पृ. 16; पितृमेध से सम्बन्ध रखने वाले एक कृत्य का नाम, गौ.पि.मे. 1.5-6; पैर का आगे वाला भाग, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.23 (प्रपदेन बहिराक्रम्य)।

प्रपदोच्छ्रित वि. (प्रपदे उच्छ्रितः, उच्छ्रित = उद् + श्रि + क्त) बाहुओं को ऊपर फैलाये हुए पैर के अगले भाग पर खड़ा हुआ व्यक्ति (यजमान इस स्थिति में चयन में 'माप' के रूप में ग्रहीत होता है), का.श्रौ.सू. 16.7.32 (प्रपदोच्छ्रितः पादाग्रे व्यवस्थितः। तादृशेन यजमानेन रज्ज्वादीनां मानं क्रियते, स.वृ. वही)।

प्रपदोत्थान वि. (प्रपदे उत्थानम् यस्य प्रपदे, उत्थीयते येन सः प्रपदे उत्तिष्ठति वा) पैर के अग्र भाग पर खड़ा होने वाला, मा.श्रौ.सू. 10.1.4.5 (पुरुष-मान) जिसके बाहु ऊपर की फैले हों।

प्रपिष्ट वि. (बहु.व.) (प्रकर्षं पिष्टाः) अच्छी तरह पिसे हुए (चावल के दाने), का.श्रौ.सू. 5.1.4 (---------- पौष्णश्चरुः प्रपिष्टानाम्)।

प्रप्रोथ पु. (प्रकृष्टः प्रोथः) (अश्व का) थूथुन, आप.श्रौ.सू. 18.4.15।

प्रगाथ पु. ऋक्-पद्यों की द्विपदी, जै.ब्रा. III.192।

प्रबाहुक् क्रि.वि. सम रेखा में (निदधाति------प्रबाहुग् दक्षिणं शुक्रपात्रम्), बौ.श्रौ.सू. 7.2.11; (पहले की आज्यभाग-आहुति) के साथ रेखा में, भा.श्रौ.सू. 2.17.3।

प्रबुद्धयजुस् न. (प्रबुद्धाय = प्रबोधनाय यजुः) दीक्षित व्यक्ति को जगाने के लिए उच्चारित किये जाने वाला मन्त्र 'त्वमग्ने व्रतपते असि, श्रौ.को. (सं.) II.521।

प्रबृहम् क्रि.वि. इस प्रकार कि पूर्व में फैलाने की प्रक्रिया समाप्त हो जाय, का.श्रौ.सू. 1.107।

प्रमंहिष्ठीय न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. I.182; इसे उक्थ्ययाग के सायंकालीन सत्र में गाया जाता है।

प्रमत्त वि. (प्र + मद् + क्त) (वह व्यक्ति) जो कर्मकाण्डीय प्रक्रिया में प्रमाद (त्रुटि) करता है, भा.श्रौ.सू. 3.15.7।

प्रमन्थ पु. (प्र. + मन्थ् + घञ्) चात्र में लगाया गया काष्ठ का शङ्कु, यज्ञापुधानि, पृ. 3।

प्रमन्थ

प्रमाण न. (प्र + मा + ल्युट्) माप, बौ.शु.सू. 1.3।

प्रमायुक पु. (प्र + मा + उकञ्, युगागमः आतो युक्. पा.) वह व्यक्ति जो मरने के कगार पर है, मा.श्रौ.सू. 8.6.1।

प्रयाज पु. (प्र + यज् + घञ् 'प्रयाजाऽनुयाजौ यज्ञाङ्गे', पा 7.3.62 इति कुत्वाभावः) पूर्व-आहुतियाँ, आप.श्रौ.सू. 11.20.2 (अग्निषोमीय में यह नियम है 'दिवा प्रयाजैः प्रचर्य अस्तमयान्तम् अनुयाजैरुपास्ते', इस बात पर दृष्टिकोण में विभिन्नता है कि पशु-यज्ञ के किस भाग का दिन में अनुष्ठान करे और किस भाग का रात्रि में; द्रष्टव्य - भाष्य, रु.; दर्श में प्रधान आहुतियों के पूर्व पाँच प्रारम्भिक आज्य की आहुतियाँ समाविष्ट की जाती हैं, आप.श्रौ.सू. 2.17.1 और सभी इष्टियों में, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.2। प्रयाज आहुतियाँ पाँच देवताओं को सम्बोधित होती हैं। ये देवता हैं : समिध्, तनूनपात् (या नाराशंस), इड्, बर्हिस् एवं स्वाहाकार, आप.श्रौ.सू. 2.17.1. पशु. में प्रयाजों की संख्या ग्यारह होती है, 7.14.6, चातुर्मास्य में नौ, 8.2.14; और उस समय पाँच, जब सोम के डण्ठल आसन्दी पर रखे जाते हैं, 10.31.13 (सोम); द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 29. 244 ff।

प्रयाणयजुस् न. (प्रयाणे यजुः) यात्रा पर निकलने से सम्बद्ध यजुर्मन्त्र, श्रौ.को. (सं.) II.521।

प्रयुज् स्त्री. (प्र + युज् + क्विप्) जोड़ने (युगबद्ध करने) की आहुति, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.34-35; अनुष्ठित इन (छः) आहुतियों के दो समूह होते हैं : पूर्णमासी के सायंकालीन अग्निहोत्र के पूर्व एवं और दूसरा 'पूर्णमास' इष्टि के बाद अगले दिन जब दशपेय के प्रसङ्ग में 'वशातिरात्र अनुबन्ध्य' समाप्त हो जाता है।

प्रयोगिक वि. प्रयोग अथवा कार्यान्विति में लगा हुआ, मा.श्रौ.सू. 8.1.6 (ऋषयो ह प्र आसन् प्रयोगिका आसन्)।

प्रयोजन न. (प्र + युज् + ल्युट्) व्यवस्थिति, सजाना (पात्राणाम्), भा.श्रौ.सू. 8.1.16।

प्रयौति (प्र + यु + लट् प्र.पु.ए.व.) (वपा को) हटाता है, भा.श्रौ.सू. 7.14.12।

प्ररूढकक्ष पु. वि. (प्ररुढः कक्षः यस्मिन्) वह क्षेत्र जहाँ झाड़ियां उग आई हों, आप.श्रौ.सू. 8.5.2 (वरुणप्रघास)।

प्रेरेक पु. (प्र + रिच् + घञ्) अतिशय मात्रा, प्रचुरता, भा.श्रौ.सू. 1.19.12 (निरुप्तेषु आवपति भक्षाणां प्रेरेकाय)।

प्रवती स्त्री. (प्र + मतुप् + ङीप्) 'प्र' के उल्लेख से युक्त ऋचा अर्थात्—'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः', इत्यादि - ऋ.वे. 1.40.3; 'प्र देवं देववीतये', श्रौ.को. (सं.) II.70।

प्रवर पु. (प्र + वृ + अप्,) होता के प्राचीन ऋषियों (का उल्लेख)। इस कृत्य की अभिव्यक्ति इस रूप में की जाती है 'आर्षेयं वृणीते', श.ब्रा. 14.2.3; 'आर्षेयं प्रवृणीते', आश्व.श्रौ.सू. 1.3.1; साधारण रूप से 'वृणीते', का.श्रौ.सू. 3.2.7, 'होतारं वृणीते यथार्षेयो यजमानः', आप.श्रौ.सू. 2.16.5; इससे 'ऋषि' शब्द के अर्थ को लेकर विवाद उठा, ऋषि से सम्बन्ध रखने वाला (अग्नि का गुणानुवादक) अथवा ऋषि से सम्बद्ध प्रवर की सूची और 'वृणीते' का अर्थ है 'चयन करता है' अथवा 'पाठ करता है', प्रवर

मुख्यत: दर्श से सम्बद्ध है और आघार एवं सामिधेनी ऋचाओं के वाचन के तुरन्त बाद स्थान ग्रहण करता है। होता 'अग्ने महाँ असि' इस मन्त्र का वाचन करता हुआ ऋषियों के होता के रूप में अग्नि का आह्वान करता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.27, और यजमान के पूर्वज ऋषियों के नाम का उल्लेख करते हुए। यह तो दिव्य होता का वरण हुआ। बाद में द्वितीय आघार के पश्चात् अध्वर्यु यजमान के पूर्वज ऋषियों का उल्लेख करने वाले अग्नि के एक मन्त्र को सम्बोधित करते हुए मानुष होता का वरण करता है। सामान्यतया ऐसे तीन 'मन्त्रद्रष्टा' ऋषियों का वाचन होता है और पाँच से अधिक का नहीं, आप.श्रौ.सू. 2.16.6.8. दिव्य होता का वरण करते समय प्रवर का क्रय वृद्धतम से प्रारम्भ होकर युवतम तक आता है, किन्तु मानुष होता के वरण में युवतम से वृद्धतम (पूर्व वाले का उल्टा), आप.श्रौ.सू. 2.16.9. शाही यजमान की स्थिति में पुरोहित के प्रवर का प्रयोग किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.6.10; अथवा वहाँ विकल्प है, का.श्रौ.सू. 3.2.10. किन्तु क्षत्रिय एवं वैश्य के मामले में अवश्यकरणीय (अपरिहार्य), का.श्रौ.सू. 3.2.11. सोमयाग में दीक्षा के समय अध्वर्यु सीधे-सादे ढंग से कहता है 'सीद होत:' और ऊपर कही गई प्रक्रिया के अनुसार कार्य नहीं करता, आप.श्रौ.सू. 11.3.8; साकमेध में भी, 8.14.21-22. पशुयाग में ऋत्विजों के लिए अध्वर्यु द्वारा 'प्रवर' किया जाता है, और दो 'प्रवृत' होम सम्पादित किये जाते हैं। एक अध्वर्यु के द्वारा और दूसरा यजमान के द्वारा, आप.श्रौ.सू. 21.20.1; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 25.200।

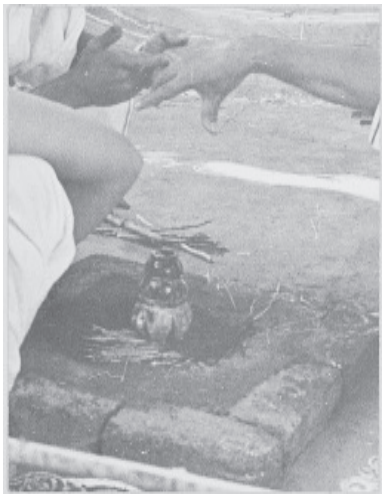

प्रवर्ग्य

प्रवर्ग्य पु. (प्र + वृज् + ण्यत्, ऋहलोर्ण्यत्, पा 3.1.124) वह अग्नि जिससे प्रवर्ग्य का अनुष्ठान सम्पन्न किया जाता है। यह अग्नि गार्हपत्य से ली जाती है और 'प्रवृञ्जनीय' टीले पर निक्षिप्त कर दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 9.6:3; एक स्वतन्त्र कृत्य (अपूर्व) किन्तु वास्तव में सोमयाग में अन्तर्भुक्त है, आप.श्रौ.सू. 13.4.3-5; इसे अग्निष्टोम का आवश्यक अंग नहीं मानते, आप.श्रौ.सू. 15.5.2 में अलग से विचार किया गया है, का.श्रौ.सू. 26. सामान्यत: 'प्रवर्ग्य' उपसद् के पूर्व होता है, किन्तु 'उपसद्' इसके पूर्व भी हो सकता है। इनमें दोनों का अनुष्ठान दिन में दो बार अर्थात् प्रात: एवं सायंकाल में सम्पन्न होता है। यह क्रम तीन दिन (दूसरे, तीसरे और चौथे) तक चलता है। इसमें 'महावीर' नाम वाले तीन पात्र (एक प्रधान और दो पूरक) तथा दोहन के कटोरे होते हैं। मुख्य महावीर गार्हपत्य के उत्तर एक टीले पर रखा जाता है, और तपाया जाता है और इसमें आज्य उड़ेल दिया जाता है। इसी तरह पूरक पात्रों का भी प्रयोग किया जाता है, यदि पहले वाला खराब हो गया हो (अप्रचरणीय, आप.श्रौ.सू. 15.6.11), का श्रौ.सू. 26.2.17। वह महावीर जिसका प्रोक्षणी-संज्ञक जल से प्रोक्षष्ठा (छिड़काव) किया गया है, को एक जोड़े चिमटे या सड़सी (परीशास या शफ) से उपर चढ़ाया जाता है और 'सम्राडासन्दी' नामक आसन पर रख दिया जाता है। गाय और अजा का दूध उबलते हुए आज्य में डाल दिया जाता है, जिसे घर्म कहते हैं और इससे 'अश्विनों', वरुण, इन्द्र, बृहस्पति और यम को आहुति दी जाती है। यजमान 'उपयमनी'-संज्ञक करछुल से शेष का पान करता है। ऋत्विज् केवल इसे सूंघते हैं। इस कृत्य के सम्पादन के समय 'प्राचीनवंश' के सभी द्वार बन्द रखे जाते हैं। पत्नी-मण्डप पर पर्दा डाल दिया जाता है, यदि वह उसमें बैठी हो तो। गार्हपत्य के उत्तर तरफ दो खरों का निर्माण किया जाता है : गरम करने के लिए 'प्रवृञ्जनीय' और (विसर्जन के लिए) उद्वासनीय,—**सम्भार**

प्रवर्ग्य-सम्भार

प्रवर्ग्यसामन् न. एक साम का नाम = 'अग्ने वैश्वानरस्य राक्षोघ्न्यं बार्हस्पत्यं वा', श्रौ.को. (सं.) II.151।

प्रवर्ग्योद्वासन न. (प्रवर्ग्यस्य उद्वासनम्) प्रवर्ग्य के विसर्जन का कृत्य (इसमें सभी यज्ञीय भाण्डों, खरों एवं मयूखों को सहायक लोग 'शाला' से हटा दते हैं (और इस प्रकार उपर्युक्त का) विसर्जन कर दिया जाता है; आप.श्रौ.सू. 15.13-16; बौ.श्रौ.सू. 9.11-16; का.श्रौ.सू. 26.7।

प्रवर्त पु. (प्र + वृत् + घञ्, हलश्च, पा. 3.3.121) सोने की नक्कासी, काशिकर, इण्डेक्स I.

प्रवाद पु. (प्र + वद् + घञ्) उद्घोषणा, मा.श्रौ.सू. 5.1.4.14 (स्विष्टकृत्प्रवादे कव्यवाहनप्रवादः)।

प्रवर्ग्योद्वासन

प्रवती स्त्री. (प्र + मतुप् + ङीप्) 'प्र' से युक्त ऋचा, जै.ब्रा. I.180।

प्रवासोपस्थान न. (प्रवासाय उपस्थानम्) किसी यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिण अग्नियों से प्रार्थना करना, श्रौ.प.नि. 71.437।

प्रविदानकल्प पु. (प्रविदानाय विहितः कल्पः) पितरों को चावल के तीन पिण्डों के दान के लिए विहित प्रक्रिया का नाम, अर्थात् 'स्वधा पितृभ्यः पृथिवीसद्भ्यः', 'स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः' एवं दिविसद्भ्यः' इन मन्त्रों से उन्हें पिण्डार्पण करना। पिण्डार्पण का क्रम यह है : मृत पिता, पितामह एवं प्रपितामह, बौ.श्रौ.सू. 24.32 (पिण्डपितृयज्ञ)।

प्रवृञ्जन न. (प्र + वृञ्ज् + ल्युट्) आग पर रखने और तपाने का कृत्य (प्रवर्ग्य के कृत्य का अनुष्ठान), आप.श्रौ.सू. 15.18.11; भा.श्रौ.सू. 11.19.1।

प्रवृञ्जनीय वि. आज्य गर्म करने के लिए महावीर पात्र को अग्नि पर रखने के कृत्य से सम्बद्ध, श्रौ.प.नि. 228.130।

प्रवृतहोम पु. (द्वि.व.) दो आहुतियों का नाम, जिन्हें मैत्रावरुण अपने वरण किये जाने के बाद प्रदान करता है (जुष्टो वाचो भूयासम्----' एवं 'ऋचा सोमं समर्धय—, तै.सं. 3.1.10.1-2; पञ्च.ब्रा. 1.3.12; का.हौत्र परि. 4.2-4; ला.श्रौ.सू. 1.11.9; द्रा.श्रौ.सू. 3.3.16 'बेकुरा नामसि', आदि के साथ (एक कार्यसम्पादक ऋत्विज् द्वारा) अपने वरण (चयन) के सम्बन्ध में एक आहुति प्रदान करना, आप.श्रौ.सू. 11.20.1 (जुष्टो 'वाचो भूयासम्' आदि मन्त्रों से); द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II. 277।

प्र + वृह् धा. उखाड़ना, खींच कर बाहर निकालना, मा.श्रौ.सू. 1.8.4.28 (वपाश्रपणी प्रवृहति; वह दोनों सीखचों=शूलों को झिल्ली से खींचकर बाहर निकालता है); सोम के गट्ठर से दो सोम की दो टहनियों को, मा.श्रौ.सू. 7.1.1.21।

प्रवृह्य (प्र + वृह् + ल्यप्) (सीखचे से हृदय को) बाहर निकाल कर; (त्रिः प्रच्युते हृदयं प्रवृह्य उत्तमं करोति), का.श्रौ.सू. 6.8.2।

प्रव्याध पु. (प्र + व्यध् + घञ्) (बाण) का प्रक्षेप (सप्तदश प्रव्याधान् इषुमस्यन्ति), आप.श्रौ.सू. 18.3.14।

प्रशस (प्र + शस् + अच्) कुल्हाड़ी, मा.श्रौ.सू. 5.2.9.4।

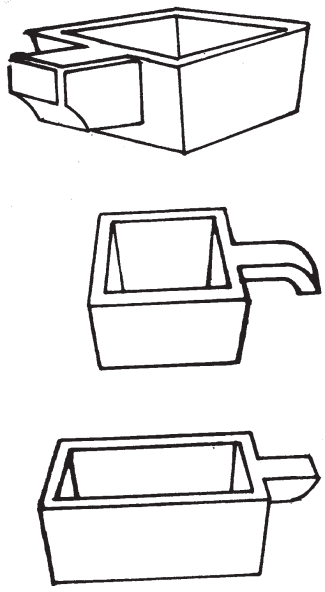

प्रशास्तृ-चमस

प्रशास्तृ पु. (प्र + शास् + तृच्) निर्देशक, मैत्रावरुण-संज्ञक ऋत्विज् का दूसरा नाम, होता का सहायक। वह मित्र और वरुण से सम्बद्ध है जो दिव्य नियन्ता माने जाते हैं (जैसा कि मन्त्र में उल्लेख किया गया है), आप.श्रौ.सू. 7.14.5; प्रशास्त्रीय टीले का सम्बन्ध मैत्रावरुण से है, 11.14.4; ० **चमस**

प्रष्टि पु. 1. बगल का घोड़ा, का.श्रौ.सू. 14.3.8. यजमान के रथ का नेतृत्व करने वाला अश्व, जो अन्य जुते हुए घोड़ों के बगल में अथवा उनके सम्मुख जोड़ दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 18.3.3 (वाजपेय); ठीक उसी चिह्न पर दो आहुतियाँ देना, बौ.श्रौ.सू. 20.13:17।

प्रष्टिवाहिन् वि. (प्रष्टिं वहति इति प्रष्टिवाहः, सः अस्यास्ति, प्रष्टिवाह+ इनि) (वाजपेय के रथ में जुते हुए) बगल के घोड़ों से युक्त, आप.श्रौ.सू. 18.3.3; तीन अश्वों द्वारा खींचा जाने वाला, काशिकर 279 इण्डेक्स।

प्रसर्पक पु. (प्र + सृप् + ण्वुल्) वह पुरोहित जो शोभा यात्रा में 'प्रसर्पण' के कृत्य में भाग लेता है, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.28; चि.भा.से. वह दर्शक जिसे सदस् में प्रवेश करने (सदस्यासीन) एवं कृत्य को देखने की अनुमति होती है, आप.श्रौ.सू. 11.9.8. वह दक्षिणा प्राप्त करने के लिए अधिकृत होता है, 13.6.6; 7.1 = अनुप्रसर्पक।

प्रसर्पण न. (प्र + सृप् + ल्युट्) ऋत्विजों द्वारा 'सदस्' से 'आस्ताव' तक बहिष्पवमान को गाने के लिए (कतारबद्ध होकर) किया गया कर्मकाण्डीय सह सञ्चरण, इसमें पाँच अथवा छः ऋत्विज् एवं यजमान भाग लेते है। अध्वर्यु सबसे आगे चलता है, वे एक दूसरे के परिधान को पकड़े रहते हैं। वे चुपचाप अपने शिर को झुकाकर, होठों को चाटते हुए एवं आखेट के लिए हिरण की खोज करने वाले आखेटक के तरीके से बर्ताव करते हुए (क्योंकि यज्ञ एक हिरण है) प्रस्थान करते हैं, आप.श्रौ.सू. 12.17.3-4; बौ.श्रौ.सू. 7.7 प्रसर्पण-संज्ञक इस सञ्चरण के दौरान गानकर्ता अपने आप में पकड़े हुए दर्भपत्र को दक्षिण की ओर फेंक देते हैं, CH 171. प्रातः सवन के समय ऋत्विज् लोग बाद में सदस् एवं विभिन्न वस्तुओं को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए बढ़ते हैं, बौ.श्रौ.सू. 7.10-11. धिष्ण्याओं को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए माधन्दिन सवन में भी, बौ.श्रौ.सू. 8.1. जब वे लौटते हैं तो उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं, आप.श्रौ.सू. 12.29.16।

प्रसर्पण

प्रसव पु. (प्र + सु + अच्) ('ब्रह्मा' नाम के ऋत्विज् का) अनुदेश, आप.श्रौ.सू. 1.16.4; किसी विशिष्ट कर्म के अनुष्ठान के लिए अध्वर्यु की 'ब्रह्मा' द्वारा दी गई सहमति, आप.श्रौ.सू. 1.16.6 भाष्य-अनुज्ञा। इसमें उन कार्यों से सम्बद्ध शब्द समाहित है, जिनके लिए अध्वर्यु उसकी अनुमति चाहता है : 'ब्रह्मन् अपः प्रणेष्यामि' और प्रसव होगा 'ओम् प्रणय' आदि 3.19.1-2 (दर्श); विभिन्न स्तोत्रों के गायन के लिए 'प्रस्तोता' को ब्रह्मा और मैत्रावरुण की सहमति, 14.9.7।

प्रसाद्यस्क वि. जिसके सभी पक्ष एक और उसी दिन अनुष्ठित होते है, मा.श्रौ.सू. 8.17.8, (पूर्वाह्ण वैश्वदेव मध्याह्ने वरुणप्रघासः और इसी तरह आगे), मा.श्रौ.सू. 8.17.8।

प्रसुत पु. (प्र + सु + क्त) (सोम)-रस का सार, आप.श्रौ.सू. 10.15.1 (निचोड़ने के बारे में तीन विकल्प है : 1. एक दीक्षा, तीन 'उपसद्' एवं चौथा निचोड़ने का दिन 2. तीन दीक्षायें, तीन उपसद् और सातवाँ निचोड़ने का दिन; एवं 3. तीन दीक्षाएं, तीन उपसद् और आठवाँ निचोड़ने का दिन)—सुत्या।

प्रसूत वि. (प्र + सू + क्त) (वह व्यक्ति) जिसे (मैत्रावरुण द्वारा पाण्डाल = सदस् से निकल जाने की) आज्ञा दी गई है, प्रसूतानां सर्पणम्, का.श्रौ.सू. 9.14.23।

प्रसून वि. पुष्प से युक्त, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.9 (वैश्वदेव पर्व के लिए प्रस्तर)।

प्रसूमय वि. (प्र + सू + क्विप् = प्रसू + मयट्) फूलों से युक्त, खिला हुआ, आप.श्रौ.सू. 8.1.10 (वैश्वदेव पर्व के लिए बर्हिस् और प्रस्तर)।

प्रसृत पु. (प्र + सृ + क्त) हाथ का खोखला भाग, एक मुट्ठी भर, ब्रह्मौदन पकाते समय चावल के लिए प्रयुक्त माप, 'ब्रह्मौदनं पचति चतुर्णां पात्राणामञ्जलिप्रसृतानां च, का.श्रौ.सू. 20.1.4 (अश्वमेध यज्ञ)।

प्रसृताकृति वि. (प्रसृत इव आकृतिः यस्य) हाथ के (अगले भाग के आकार वाली (अग्निहोत्रस्थाली), आप.श्रौ.सू. 6.3.7।

प्रसृप्त वि. (प्र + सृप् + क्त) वह व्यक्ति जो सदस् के लिए चल दिया हो, आप.श्रौ.सू. 13.15.6 = सम्प्रसृप्त, बौ.श्रौ.सू. 7.12।

प्रसेक पु. (प्र + सिच् + घञ्) काष्ठनिर्मित निथारने वाला एक कटोरा, बौ.श्रौ.सू. 10.50. इसका सामने वाला भाग करछुल (स्रुच्) के आकार का एवं मध्य भाग प्याले (चमस) के आकार का होता है, 15.35।

प्रस्तर पु. दर्भपत्रों की प्रथम मुष्टि, जिसे अतिशय कसी हुई मुट्ठी (मुष्टि) से पकड़ा जाता है और हँसुआ से काटा जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.3:17. जब बर्हिष् के निर्माण के लिए घास काटी जाती है, इसे एक गट्ठर में बाँध दिया जाता है, वेदि पर बिछा दिया जाता है और इस पर घी से भरी हुई आहुति की करछुलें (स्रुच्, जूहू) रख दी जाती हैं, 2.9.15 (दर्श); द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 12.87; इसी प्रकार एक मुट्ठी घास, बर्हिस्, मुष्टि अध्वर्यु एवं अन्य स्तोत्रगायकों द्वारा सभी 'पवमान स्तोत्रों' के 'उपाकरण' के लिए गृहीत होता है, आप.श्रौ.सू. 12.17.7; पञ्च.ब्रा. 6.7.16।

प्रस्तरपाणि वि. (प्रस्तरः पाणौ यस्य) हाथ में 'प्रस्तर'-संज्ञक पवित्र घास के गुच्छे से युक्त (परिधीन् परिदधाति), बौ.श्रौ.सू. 5.2:12 (वैश्वदेव पर्व)।

प्रस्तरानुप्रहरण न. (प्रस्तराणाम् अनुप्रहरणम्) प्रस्तर-संज्ञक घास के गुच्छे को अग्नि में फेंकने (अथवा जलाने) का कृत्य, का.श्रौ.सू. 4.2.42 (सह शाखया प्रस्तरानुप्रहरणम्); द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 37.308।

प्रस्तार (प्र+स्तृ+घञ्) पु. चित (चिनी गई) अग्नि-वेदि की तह, बौ.शु.सू. 2.65

प्रस्ताव पु. (प्र + स्तु + घञ्) किसी साम का प्रथम भाग अथवा प्रस्तावना, जिसका गायन प्रस्तोता द्वारा किया जाता है, 21.10.4; प्रस्ताव के गायन को 'प्रस्तुत' कहते हैं, 18.5.7; प्रस्ताव पर विस्तार के लिए द्रष्टव्य—ला.श्रौ.सू. 6.10.1।

प्रस्तोतृ पु. (प्र + स्तु + तृच्) 'उद्गाता' का सहायक प्रथम गानकर्ता; दूसरा गायक जो 'प्रस्ताव' के गायन के लिए प्रसर्पण में भाग लेता है, आप.श्रौ.सू. 10.1.9; 12.17.1; यज्ञीय मारण के पश्चात् वह यम के लिए एकल स्तुतिगायन करता है, 20.17.11 (अश्व.)।

प्रस्थापयति (प्र + स्था + णिच् + ल.प्र.पु.ए.व.) 1. गायों को (चारागाह में जाने के लिए) भेजता है (हाँकता है), भा.श्रौ.सू. 1.2.15. 2. मैत्रावरुण को 'प्रैष' के लिए 'प्रस्थित' इस अभिव्यञ्जना का प्रयोग, आप.श्रौ.सू. 17.4.10 (आश्विन ग्रह)।

प्रस्थित वि. (प्र + स्था + क्त 'घुमास्था.....' पा. 6.4.66 इत्यनेन इत्वम्) वेदि के पहले स्थित अथवा सम्मुख रखा हुआ, बलिपशु के अङ्गों के बारे में कथन, 'प्रस्थितमिति च प्रसुते', का.श्रौ.सू. 6.6.25 (पशुबन्ध); सोम रस के बारे में भी कथन 'प्रस्थित होम संज्ञक द्रवाहुति के लिए 'आगे लाया गया'; उन्नेता के द्वारा भरे गये चमसों से एवं प्रातःकालिक सेवा में चमसाध्वर्युओं द्वारा अग्नि में अर्पित सोम की आहुति से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 7.14; आप.श्रौ.सू. 12.23.4-10; चमसाध्वर्युओं और चार प्रधान ऋत्विजों द्वारा द्वितीय वषट्कार के उच्चारण द्वारा एक द्वितीय आहुति; मध्यकाल में होत्रकों के द्वारा भी तद्वत्, बौ.श्रौ.सू. 8.4; आप.श्रौ.सू. 13.4.15-16; और तृतीय में, बौ.श्रौ.सू. 8.12; आप.श्रौ.सू. 13.12.1-8; द्रष्टव्य—प्रस्थितं हविस्, नवाठे पी.डी., ABORI 68, 1987; 645-651।

प्रस्नवन न. (प्र + स्नु + ल्युट्) दुहने के अभिप्राय से थनों को ऊपर की ओर करना, आप.श्रौ.सू. 6.4.2 (भाष्य-धू. शोरप्पू इति द्रविण भाषायाम्); प्रवाहोत्सर्जन, मो.वि.।

प्रस्रवण न. (प्र + स्नु + ल्युट्) (करछुल की) जिह्वा, मा.श्रौ.सू. 1.2.1.7।

प्रहरण न. (प्र + हृ + ल्युट्) (तलवार से) प्रहार करना, का.श्रौ.सू. 2.6.13-14।

प्रहाण वि. (प्र + हा + क्त) 1. (पूर्वी अथवा पश्चिम यूप) की ओर मुड़ा हुआ, मा.श्रौ.सू. 1.8.1.4 (द्रष्टव्य—प्रहाययति 1.8.1.1 में); (पेड़ को) गिराना; 2. आगे की ओर झुकाते हुए (सर्पन्ति), मा.श्रौ.सू. 2.3.6.1 (अध्वर्यु-प्रस्तोतृ उद्गातृ-प्रतिहर्तृ-मैत्रावरुण, यजमान, ब्रह्मा)।

प्रहुत न. (प्र + हु + क्त) एक यज्ञ का नाम जिसकी गणना 'स्थालीपाक' से अनुष्ठित सात पाक यज्ञों के अन्तर्गत की गई है [जिसमें (आहवनीय) अग्नि में एक आहुति दी जाती है], श्रौ.को. (अं.) 1.946।

प्रह्व

प्रह्व वि. आगे की ओर झुका हुआ (प्रह्वा उदञ्चा गच्छन्ति) का.श्रौ.सू. 9.6.31।

प्राकृत वि. (प्रकृत + अण्) साधारण (वाचन), मा.श्रौ.सू. 9.3.1.3।

प्राक्कर्णी स्त्री. (प्राञ्चौ प्राङमुखौ कर्णौ यस्याः सा) जिसके कान (अर्थात् छोटी शाखाओं की प्रशाखायें) पूर्व की ओर उन्मुख हों, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.16 (औदुम्बरी)।

प्राक्संस्थम् क्रि.वि. (प्राचि संस्था समाप्तिः यथा स्यात्) इस तरह कि प्रक्रिया पूर्व में समाप्त हो, 'महाव्याहृतिभिर्वा प्राक्संस्थम्', का.श्रौ.सू. 2.1.6 (अन्वाधान)।

प्राक्सोम पु. सोम के अनुभाग के पूर्व आने वाला श्रौतसूत्र ग्रन्थ का भाग, गोंड जे., The Ritual Sutras, पृ. 662 ff.

प्रागपवर्गम् क्रि.वि. (प्राचि अपवर्गः स यथा स्यात्) पूर्व में समाप्त करते हुए, भा.श्रौ.सू. 4.8.13।

प्रागाथी स्त्री. (ऋ.वे. के आठवें मण्डल) की एक ऋचा का नाम, अर्थात् 'त-----मित्था नमस्विनः----' जिसका जप ब्रह्मा मध्याह्न-पूर्व प्रवर्ग्य में 'वषट्' के बाद करता है, आश्व.श्रौ.सू. 4.7.1-4; श्रौ.को. (अं.) 2.211 (8.69.17)।

प्रागीष वि. (प्रागुन्मुखा ईषा यस्य) जिसकी ईषा (ध्रुव) पूर्व की ओर उन्मुख हो, भा.श्रौ.सू. 19.4।

प्राग्ग्रीवलोमम् क्रि.वि. (प्राक् ग्रीवा लोम च यथा स्यात्) इस प्रकार कि व्याघ्र की गर्दन और बालयुक्त भाग पूर्व की ओर और ऊपर मुड़ा हो, मा.श्रौ.सू. 9.1.3.17।

प्राग्दक्षिणाचार वि.(प्राच्याः दक्षिणस्याश्च दिशोः यद् अन्तरालं तत्र आचारः यस्य) वि. दक्षिण-पूर्व की ओर सम्पादनीय, मा.श्रौ.सू. 1.1.2.1 (पिण्डपितृयज्ञ)

प्राग्द्वार वि. (प्राक् द्वारं यस्य) (कमल का पत्ता) जिसका मुख (विवर) पूर्व की ओर हो, मा.श्रौ.सू. 6.1.1.25।

प्राग्वंश वि. (प्राङ्मुखः वंशः यस्य तत्) पूर्व की ओर निर्देश करने वाले (पूर्व की ओर उन्मुख) बाँस की धरन वाला (हविर्धान), 'प्राग्वशं हविर्धानम्', का.श्रौ.सू. 8.4.21; पु. (वह शाला अथवा यज्ञीय मण्डप) जिसकी बाँस की धरनें पूर्व की ओर उन्मुख हों, बौ.श्रौ.सू. 6.1; आप.श्रौ.सू. 10.3.4; 5.1 = प्राचीनवंश = विमित सोम याग के अन्तर्गत 'दीक्षणीय इष्टि' के पहले या बाद में इसे तैयार कर लिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.4.6।

प्राघ्घुतशेष पु. (प्राग्हुतस्य शेषः) पूर्व (अग्निहोत्र) हवि का बचा हुआ भाग, का.श्रौ.सू. 4.2.23 (उद्वास्यातनक्ति प्राग्हुतशेषेण---)।

प्राङ्न्याय वि. (प्राङमुखतान्यायः यस्य) (कर्मकाण्डीय कृत्य का अनुष्ठान करने के लिए दिशा के रूप में) पूर्व की ओर मुख होना जिसका नियम है, भा.श्रौ.सू. 1.1.12।

प्राडशायिन् वि. (प्राक्-प्राक् शिरः कृत्वा शयितुं शीलमस्य) वह व्यक्ति जो अपना शिर पूर्व की ओर करके सोता है या लेटता है, का.श्रौ.सू. 5.2.21।

प्राची पु. (प्र + अञ्च् + क्विन् + ङीप्, ऋन्नेभ्यो ङीप् पा. 4.1.5 स्त्री (दी गई आकृति की) एक पूर्व-पश्चिम मध्य रेखा, बौ.शु.सू. 1.31; श.ब्रा. 1.2.5.14; चि.भा.से. 'पाशुकी वेदि' के दो यूपों (खम्भों) के बीच खींची गई पूर्वी रेखा; पश्चिम से वेदि के मध्य से होकर आहवनीय तक पहुँचने वाली; ईषा, लम्बाई में तीन अरत्नि, का.श्रौ.सू. 2.6.4 (दर्श); पृष्ट्य के समकक्ष 'वेदिं खनति-----प्राचीम्----।

प्राचीनकर्णा वि. (स्त्री.) (प्राचीनौ कर्णौ यस्याः सा) पूर्व की ओर उन्मुख द्विशाखित शाखाओं वाली, आप.श्रौ.सू. 11.9.13 (औदुम्बरी); पूर्व की ओर उन्मुख औदुम्बरी-स्थूणा-ग्रन्थि (औदुम्बरी खम्भे की गाँठ से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 6.27; श्रौ.को. (अं.) 2.280 (तेषु गर्तेषु प्राचीनकर्णा स्थूणा उच्छ्रयन्ति, कटीले अग्रभाग वाली थून)।

प्राचीनदण्डी वि. (प्राचीनः दण्डः यस्याः सा) पूर्व की ओर (मुड़े हुए) हत्थे वाली (स्रुच्) बौ.श्रौ.सू. 3.6.24।

प्राचीनपुष्कर वि. (प्राचि भवं पुष्करं यस्य) जिसका (वृक्ष की शाखा से का बना हुआ) कटोरे वाला भाग पश्चिम की ओर उन्मुख हो, बौ.श्रौ.सू. 20.16 : 7 (आधान)।

प्राचीनमातृक न. न (क्षौम-परिधान) जिसके किनारे (झालर) सम्मुख संकेत करते हों, मा.श्रौ.सू. 2.1.2.34 (यजमान की पत्नी की 'अप्सु दीक्षा')।

प्राचीनवंश पु. (प्राचि भवः वंशः यस्य) यज्ञ-शाला जिसकी धरन पूर्व की ओर उन्मुख हो, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.7 (आगे ऊँचा, पीछे नीचा) = प्राग्वंश।

प्राचीनावीतिन् वि. (प्राचि भवम् आवीतमस्ति अस्य) जिसका पवित्र धागा (उपनयन, जनेऊ) दाहिने कन्धे के ऊपर वाम बाहु के नीचे हो, श्रौ.को. (अं.) 1.749; आप.श्रौ.सू. 1.8.9; यज्ञोपवीतिन् के विवरीत; द्रष्टव्य—चापेकर एन.जी. तर्पण (मराठी), पूना 1948, श्रौत.प.नि. 21.192-4।

प्राजहित पु. परित्यक्त, त्यागा हुआ, अर्थात् 'शाला' में स्थापित मूल गार्हपत्य, आप.श्रौ.सू. 11.15.1; इसे बदल दिया जाता है और अग्नि के प्रणयन (वहन) के बाद इसके समस्त कार्यों को मूल आहवनीय ग्रहण कर लेता है। इसके शाला में (स्थित) आहवनीय विभिन्न नामों से पुकारा जाता है : गार्हपत्य, शालामुखीय अथवा शालाद्वारीय (शाला के प्रवेश-द्वार पर अपनी स्थिति के कारण। उत्तरवेदि पर सद्यः वहन की गई अग्नि अब आहवनीय कहलाती है (सोम)।

प्राञ्चम् क्रि.वि. पूर्व की ओर मुख करके, ताकि पवित्रीकरण (शुद्धीकरण) का कृत्य पूर्व में पूर्ण हो सके (या आधवनीये राजा तं प्राञ्चं सम्पावयस्व), मा.श्रौ.सू. 2.3.5.19।

प्राण पु. 1. (महावीर के कृत्य के साथ प्रारम्भ होने से पहले) गार्हपत्य अग्नि में 'प्राणाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, चक्षुसे-----मनसे स्वाहा', एवं 'वाचे सरस्वत्यै स्वाहा' के साथ लगातार दी जाने वाली सात आहुतियों के वर्ग का नाम, बौ.श्रौ.सू.9.6-7; 2. श्वास = नाक, भा.श्रौ.सू. 1.18.6; पशु के सजीव अंग, जिन्हें फुलाया जाता है (आप्यायन), भा.श्रौ.सू. 7.14.2 (पशु); बौ.श्रौ.सू. 15.29 (अश्व); 3. न. एक साम का नाम, 5.21.1 सा.वे. 1.318 पर।

प्राणग्रह पु. (बहु.व.) 'प्राण-प्रवाह' द्वादशाह के दो अतिरात्रों के बीच एकाहों में अंशु एवं अदाभ्य ग्रहों (प्यालों) के पूर्व अर्पित किये जाने वाले सोम के प्याले का नाम, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.42।

प्राणदान न. (प्राणस्य दानम्) पात्रों को उन्हें वेदि पर रखने के पूर्व आज्य के लेपन के द्वारा जीवन प्रदान करने का कृत्य; पात्रों में स्थित पुरोडाशों का लेपन करना, का.श्रौ.सू. 2.8.14।

प्राणभक्ष पु. (प्राणेन = श्वासेन भक्षः = भक्षणम्) श्वास लेते हुए खाना, अर्थात् सूँघना, ला.श्रौ.सू. 4.12.15; वैता.श्रौ.सू. 8.15. यजमान के लिए (वाजिन्) के विपरीत ऋत्विजों के लिए विहित, हि.आ.ध. II (2) 1064; श्रौत.प.नि. 73.448।

प्राणशोधन न. (प्राणस्य शोधनम् = प्राणयुक्ताङ्गानां शोधनम्) बलिपशु के दोनों कान, दोनों नासिका, दोनों आँख, मुख एवं नाभि जैसे प्राण के आयतनों को (पत्नेजनी के) जल से शुद्ध करना (पत्नीकतृककर्म), का.श्रौ.सू. 6.6.2,3।

प्राणाग्निहोत्र न. रहस्यमय (गूढ) कर्मकाण्डीय कल्पनायें, The Ritual Sutras, गोंड जे., शब्दकोश, पृ. 662 ff.

प्राणायतन न. (बहु.व.) (प्राणानां = ज्ञानेन्द्रियाणां आयतनानि निवासस्थानानि) ज्ञानेन्द्रियों का आश्रय अथवा निवास स्थान, भा.श्रौ.सू. 3.18.2 (वाङ्म असन् नासोः प्राणः इति एतैः मन्त्रैः)।

प्राणि(णिन्) वि. (प्राणाः सन्ति अस्य) जीवित, मा.श्रौ.सू. 11.1.1.4 (दक्षिणा)।

प्रातरनुवाक

प्रातरनुवाक पु. प्रातःकालीन प्रार्थना या स्तुति (अनुवाक) जिसका वाचन होता द्वारा 'सुत्या' दिन की पूर्ववर्तिनी रात के अन्तिम भाग में किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.3.4; एक आज्याहुति प्रदान करने के बाद होता दो हविराधान-शकटों के युगों (जुओं) के मध्य में बैठता है और क्रतु नाम वाले : 'आग्नेय, उषस्' और 'आश्विन' इन तीनों

अनुभागों से युक्त अनुवाक का वाचन प्रारम्भ करता है। ऐतरेयियों के अनुसार ऋचाओं की संख्या सौ है, कौषीतकियों के मतानुसार सात छन्दों में व्यवस्थित 360 ऋचायें, किन्तु आश्व.श्रौ.सू. 4.13 में संख्या बढ़ा-चढ़ा कर बताई गई है, अर्थात् तीन क्रतुओं में 2000 ऋचायें जो लगभग ऋ.वे. पाँचवाँ हिस्सा होती है। वाणी के स्वर को धीरे-धीरे घटाने-बढ़ाने के द्वारा वाचन गम्भीर स्वर (मन्द्र) के सातों तानों (यम) से होता हुआ ऊपर की ओर गुजरता है।

प्रातरवनेक पु. (प्रातःकालिकः अवनेकः = अव + निज् + घञ्) 'प्रातःकालीन प्रक्षालन'; अग्नि से प्रार्थना करने का एक प्रकार का उपस्थान (कुछ पाठभेदों में सुलभ) जिसका सम्बन्ध प्रातः अग्निहोत्र में हाथ धोने के कृत्य से है, आप.श्रौ.सू. 6.20.1; 6.3.10; प्रातःकालीन अग्निहोत्र के बाद प्रातः कालीन प्रार्थना में (हस्त) 'प्रक्षालन' संज्ञक मन्त्रों के समूह का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.107; ये मन्त्र हैं 'अर्वावसो------' तै.सं 1.5.5.3-4; 'अर्वाग्वसो' आदि मन्त्र का नाम, भा.श्रौ.सू. 6.3.10; तै.सं. 1.5.3.3-4 (अग्न्युपस्थान)।

प्रातर्दोह पु. (गाय का) प्रातःकालीन दोहन, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.38; 1.2.6.27; तुल-सायंदोह।

प्रातस्सव पु. प्रातःकालीन सत्र में सोम की जटाओं को दबाना, ऋ.वे. 3.28.1।

प्रातःसवन न. सोमलता को प्रातःकाल में एवं अन्य कर्मकाण्डीय कृत्यों में दबाना, द्रष्टव्य-श्रौ.प.नि. 294.374।

प्रादेश पु. वित्ता, वितस्ति, एक माप = 10 अंगुल, मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4, आप.शु.सू. 15.13 = 1/2 अरत्नी = 12 अंगुल, बौ.शु.सू. 1.7; - करण, श्रौ.प.नि. 216.90।

प्रादेशपाद्या वि. (स्त्री.) (प्रादेशमात्राः पादाः यस्याः सा) (आसन्दी-आसन) जिसकी पैर की नाप एक बित्ता अर्थात् 10 अंगुल है, 'उद्गाताऽऽसन्द्यां प्रादेशपाद्यायाम्', का.श्रौ.सू. 13.3.2 (गवामयन में उद्गाता के लिए)।

प्रादेशसमा वि. (प्रादेशः समः = पक्षः यस्याः सा) जिसका प्रत्येक पक्ष एक बित्ता (माप वाला) हो (मध्ये नाभिं--- चतुःस्रक्तिम्); का.श्रौ.सू. 5.3.31 = एक बित्ते के बराबर।

प्रायणीयेष्टि स्त्री. प्रारम्भिक स्तर पर अनुष्ठित एक कृत्य का नाम, अर्थात् दीक्षा-दिन के बाद अग्निष्टोम-याग का प्रथम दिन। इस इष्टि में पके हुए चावल (ओदन) की आहुति अदिति को और आज्य की चार आहुतियां पथ्या स्वस्ति, अग्नि, सोम और सविता को दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 6.10; 24.11); श्रौ.को. (अं.) 1.58. (सं.) II.5.16. इस इष्टि के लिए निम्न स्वर का प्रयोग करना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.72; दर्श के प्रयाज से इसकी समानता है, आप.श्रौ.सू. 10.21.1. प्रायणीय का उलटा सोम की उदायनीय इष्टि है जिसकी 'अनूयाज' से समानता है।

प्रायश्चित्त न. एक प्रायश्चित्तिककर्म (धू. प्रायश्चित्तं विनष्टस्य कर्मणः सन्धानम्), आप.श्रौ.सू. 9.1.1; यज्ञीय नियम का उल्लङ्घन करने पर (विध्यपराधे, आ.श्रौ.सू. 3.10.1) आवश्यक शमन इस दृष्टि से कि इस प्रकार (यज्ञीय नियम के भङ्ग) से जो क्षति होती है, वह सत्फल में परिणत हो जाय; धार्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा, सोद्देश्य अथवा निरुद्देश्य, स्वाभाविक न्यूनताओं (त्रुटियों), दुर्घटनाओं अथवा नैतिक नियमों के विरुद्ध वास्तविक अपराधों के बीच कोई अन्तर नहीं किया गया है। सामान्य रूप से प्रायश्चित्त के अनुष्ठान का कार्य ब्रह्मा करता है; श.ब्रा. 6.12. किन्तु इसका अनुष्ठान अध्वर्यु भी कर सकता है। इसका अनुष्ठान त्रुटि होने के तुरन्त बाद किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 9.1.5; और इसमें जप, होम, आदि समाहित है, द्रष्टव्य—श्रौतप.नि. 9.61; **—होम** 39.330।

प्रायश्चित्ति (कल्प) स्त्री. एक प्रकार की प्रायश्चित्तिक कर्मकाण्डीय प्रक्रिया जिसमें दो आज्य-भाग रक्षितवन्त (सा.वे.) एवं संयाज (सा.वे.) पार्यद्वत् हैं, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.27; श्रौ.को. (अं.) I.540; श.ब्रा. 12.4.1.2।

प्रायुज पु. राजसूय के सम्बन्ध में अदिति के लिए (पके हुए चावल की) एक आहुति का नाम, बौ.श्रौ.सू. 24.11.5; = प्रयुजम् हविः, बौ.श्रौ.सू. 12.19:15 (अथ पूर्वैः प्रयुजं हविर्भिर्यजते आग्नेयम् अष्टाकपालम्----------सौम्यं चरुं सावित्रं द्वादशकपालम् वार्हस्पत्यं चरुं त्वाष्ट्रम् अष्टाकपालं वैश्वानरं द्वादशकपालम्)।

प्रावरण न. (प्र + आ + वृ + ल्युट्) (दीक्षा में यजमान द्वारा उष्णीष = पगड़ी से शिर को) ढकने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.25।

प्राशन न. (प्र + अश् + ल्युट्) अग्नीध्र के मण्डप में ऋत्विजों एवं यजमान द्वारा पुरोडाश (हविस्) के शेष (अवशिष्ट भाग) का भक्षण, आश्व.श्रौ.सू. 5.7.10 (सोमयाग में प्रातः

सवन के अन्त में); = भक्षण, आप.श्रौ.सू. 12.25.12; दर्श में पिण्ड (को) खाना, भा.श्रौ.सू. 1.10.10।

प्राशातिक न. वे फल जिन्हें गिराया जाता है, रु. के अनुसार 'कोशी-धान्यम्' जिसको कर्तन की प्रक्रिया से लिया जाता है; आप.श्रौ.सू. 4.3.8, तुल.भा.श्रौ.सू. 4.4.5-6 (छिम्बीदार अनाज)।

प्राशितवत् वि. (प्राशित + वति) (उस व्यक्ति) की तरह जिसने इडाभागग्रहण कर लिया है, आप.श्रौ.सू. 5.22.5; जिसने हवि:शेष (हवि के अवशिष्ट भाग) को खा लिया है, भा.श्रौ.सू. 5.15.5।

प्राशितृ पु. (प्र + अश् + तृच्) वह व्यक्ति जो (उबाले हुए चावल का) भाग ग्रहण करता है, आप.श्रौ.सू. 9.15.19।

प्राशित्र न. (प्राशिता प्राप्तोऽस्य) 'इडा' संज्ञक कृत्य के पहले या बाद में ब्रह्मा द्वारा खाया जाने वाला काटा हुआ भाग; अंगुष्ठ एवं मध्यमा अंगुलि से पुरोडाश से लिया गया भाग; इसका आकार यव के दाने के बराबर अथवा पिप्पल के फल के बराबर होता है, का.श्रौ.सू. 1.3.40; द्रा.श्रौ.सू. 12.3.8; श्रौ.को. (सं.) 1.217।

प्राशित्रहरण न. (प्राशितं ह्रियतेऽनेन, 'करणाधिकरणयोश्च' ल्युट्) वह पात्र (स्थाली) जिसमें 'ब्रह्मा' का इडा-भाग रखा जाता है, 'स्फ्योऽस्याकृतिरादर्शाकृति प्राशित्रहरणं चमसाकृति वा', भा.श्रौ.सू. 1.3.40 (खदिर की लकड़ी से निर्मित चमस अथवा दर्पण के आकार का = वृत्ताकार स.वृ.) आप.श्रौ.सू. 1.15.3; = प्राशित्र-पात्र : द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 8.50; 32.269।

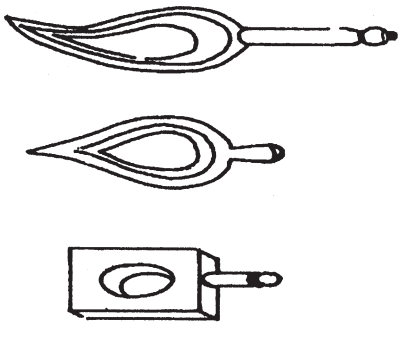

प्राशित्रपात्र

प्राशित्रावदान न. (प्राशित्रस्य अवदानम्) ('इडा' से) प्राशित्र-भाग को काटना (गर्दभेज्या में यह अवदान = कर्तन गधे के शिश्न = जननेन्द्रिय से होता है, का.श्रौ.सू. 1.1.17 (शिश्नात्प्राशित्रावदानम्), का.श्रौ.सू. 1.1.17।

प्रासन न. (प्र + अस् क्षेपणे + ल्युट्) (अग्नि में) फेंकना, का.श्रौ.सू. 2.6.44 (आहवनीये प्रासनमेके)।

प्रासह पु. (वह व्यक्ति) जो कन्धे पर ढोता है, श्रमिक, आप.श्रौ.सू. 9.20.6 (यूपं हरेयु:)।

प्रियवती स्त्री. (प्रिय + मतुप् + ङीप्) 'प्रिय' इस अभिव्यञ्जना से युक्त ऋचा, जिसका प्रयोग याज्या एवं पुरोनुवाक्या के रूप में होता है, श्रौ.को. (सं.) I.361; तै.सं. 2.1.11।

प्रियवद्य पु. (प्रिय: चासौ वद्य: = शब्द:, वद् + यत् = वद्य) प्रिय अथवा मधुर शब्द, आप.श्रौ.सू. 14.12.9 ('गन्धे: प्रियवद्येन च तुल्यं प्रतीयात'; दक्षिणा)।

प्रुष्वा स्त्री दलदल स्थान में स्थित जल, का.श्रौ.सू. 15.4.35।

प्रेङ्ख न. (+ प्र + इख् + घञ् 'इदितो नुम्.', पा. 7.1.58 इति नुमागम:) झूला (होता झूले पर बैठकर महदुक्थ का वाचन करता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.7.3; उदुम्बर-काष्ठ से निर्मित एक प्रकार का झूला, जिसकी डोरी मुञ्ज (मूँज) की होती है, आप.श्रौ.सू. 21.1.17.13 (महाव्रत); द्रष्टव्य— ओझा एम., स्वर्ग-सन्देश, जयपुर 1947।

प्रेङ्खण न. (प्र + इखि = इङ्ख् + ल्युट्) (प्रवर्ग्य में महावीर पात्र का झूलना), मा.श्रौ.सू. 4.3.21।

प्रेत पु. (प्र + इण् गतौ + क्त) बिछुड़ा हुआ अथवा मृत, भा.पि.मे. 1.1.15।

प्रेतपत्नी स्त्री. (प्रेतस्य = मृतस्य पत्नी) मृत व्यक्ति की पत्नी के अन्त्येष्टि-स्थल पर उसके पति की चिता पर लेटने के लिए ले जाया जाता है; उसके बाद वह चिता से उठ जाती है, भा.पि.मे. 1.5.6-7. उसे अध्ययन करने की मनाही नहीं है; वह अपने पति की मृत्यु के बाद व्रतोपवास जारी नहीं रख सकती किन्तु उसे जीवन भर दिन में एक बार भोजन करना चाहिए एवं यौन-क्रिया से परहेज करना चाहिए, 1.8.13।

प्रैष पु. (मैत्रावरुण के माध्यम से) अध्वर्यु का देवताओं के लिए मन्त्रों का पाठ करने के लिए निर्देश, आश्व.श्रौ.सू. 3.2.2.4; अध्वर्यु के 'उपप्रैष'-संज्ञक पूरक (गौण) निर्देश पर भी निर्देश जारी किये जा सकते हैं। उसके बाद होता अध्रिगु = अतिप्रैष का वाचन करता है, बौ.श्रौ.सू. 14.3;

आश्व.श्रौ.सू. 5.4.3. कभी-कभी प्रैष का उच्चारण प्रतिप्रस्थाता करता है, श्रौप.नि. 27.227।

प्रैषप्रतीकयाज्य वि. (पशुयागवत्) सभी के प्रतिनिधि स्वरूप याज्या वाला (प्रयाज), आप.श्रौ.सू. 8.2.15 (वैश्वदेव पर्व)।

प्रैषसूक्त न. (प्रैषयुक्तं सूक्तम्) उस सूक्त (मूलपाठ) का नाम जिसमें विभिन्न प्रकार के निर्देश (प्रैष) हों, आश्व.श्रौ.सू. 3.6.11-16; 21.23; श्रौ.को. (अं.) 1.857।

प्रैषोपचय पु. (प्रैषस्य उपचयः), (प्रैष=विशेष पुकार के शब्दों में) की गई वृद्धि, का.श्रौ.सू. 10.1.17

प्रोक्षण न. (प्र + उक्षी सेचने + ल्युट्) यज्ञीय पशु के ऊपर 'आज्य' छिड़कते हुए (संस्कार करना), आप.श्रौ.सू. 7.12.9; द्रष्टव्य- श्रौ.प.नि. 15.110 (जल छिड़कना या जल से सेचन करना)।

प्रोक्षणी स्त्री. (प्रोक्षण + ङीप्) छिड़कने के लिए जल, जिसे पवित्रों से शुद्ध किया जाता है और जिसका प्रयोग यज्ञिय पात्रों एवं उपकरणों अथवा हविस् के शुद्धीकरण के लिए किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.11.6।

प्रोक्षणी

प्रोक्षणीधानी स्त्री. 1. (प्रोक्षण्याः धानी) 1. प्रोक्षणी-संज्ञक जल के संग्रह के लिए प्रयुक्त पात्र, आप.श्रौ.सू. 15.5.10 (प्रवर्ग्य) 2. दो वक्र = मुड़ी हुई (लघुतर) करछुलों में एक (स्रुच्), भा.श्रौ.सू. 11.15.12।

प्रोथत् वि. (प्रोथ् + शतृ) खुर्राटा भरता हुआ (प्रोथन् अश्वः श्यावा उपतिष्ठते), मा.श्रौ.सू. 2.5.3.8 (षोडशिन्)।

प्रोर्णुते (प्र + उर्ण् आच्छादने + लट् प्र.पु.ए.व. आ.प.) (शिर) ढकता है ('उद्गाता' एवं अध्वर्यु ऐसा करते हैं, जब पहला अर्थात् उद्गाता अग्निष्टोम में यज्ञायज्ञीय स्तोत्र का गायन करता है), का.श्रौ.सू. 10.7.2 (प्रोर्णुते चेच्छन्नुद्गातृवत्)।

प्रोषुष पु. यात्रा पर निकलने वाला व्यक्ति, भा.श्रौ.सू. 6.6.4 (प्रोषुष आहुतिं जुहोति)।

प्रोष्ठपद न. 'पूर्वा भाद्रपदा' एवं 'उत्तरा' नक्षत्र, भा.श्रौ.सू. 5.1.17 (आधान); द्रष्टव्य—प्रोष्ठ, Hoffann K, 511 13/14 (W. Rau Fel. Vol.) 1987, पृ. 129-134।

प्रोष्ठपदा स्त्री. 'पूर्वा भाद्रपद' एवं 'उत्तरा' नक्षत्र, आश्व.श्रौ.सू. 2.1.10.11।

प्रोहण न. (प्र + उह् + ल्युट्) आगे की ओर धकेलना, श्रौ.प.नि. 15.118।

प्रौढि (प्र + वह् + क्तिन्, सम्प्रसारण, प्रादुह०, पा. 6.1.89 पर वार्तिक से वृद्धि एकादेश) धकेलना, जै.ब्रा. I.78।

प्रौहेण (प्रादुह०--- वार्तिक से वृद्धि एकादेश) (तृ.) संकेत के द्वारा वह स्थान जहाँ मन्त्र को डालना (अन्तर्निविष्ट करना) है, बौ.श्रौ.सू. 266।

प्लक्षशाखा स्त्री. (प्लक्षस्य शाखा) प्लक्ष-वृक्ष (अंजीर) की शाखा, श्रौ.को. (सं.), श्रौ.को. (सं.) II.206।

प्लव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.8.4 सा.वे. 1.511 पर आधृत; ला.श्रौ.सू. 8.5.14।

प्लाशुक पु. (बहु.व.) (बहुत शीघ्रता से बढ़ने वाली) धान की एक विशेष प्रजाति, का.श्रौ.सू. 15.4.5 (देवसूहवींषि, प्रथम पुरोडाश)।

प्लीहन् पु. यज्ञीय पशु की प्लीहा, जिसे पकाया जाता है एवं हविर्द्रव्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.22.6 (पशु०)।

प्लुषिमशक पु. (प्लुषी चासौ मशकश्च) दाहक मच्छर, हानिकारक कीड़ा, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.4।

फ

फलक न. (द्वि.व.) दो सवन-फलक (द्रष्टव्य-अभिषवण फलक), सोम-शकट के छड़, आप.श्रौ.सू. 10.24.2 (उद्धृत-पूर्वफलक में); द्रष्टव्य पृ. 43 पायों से रहित आसनों का भी, जिनका (आसनों का) उपयोग अध्वर्यु एवं यजमान करते हैं, का.श्रौ.सू. 20.2.20 एवं भाष्य (अश्वमेध)।

फलग्रहि वि. (वस्तुतः फलेग्रहि, द्र. फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च, पा. 3.2.26) (वह वृक्ष) जिसमें फल लगे हों (फलयुक्त वृक्ष), आप.श्रौ.सू. 10.10.4 (यजमान के लिए एक दण्ड प्राप्त करने के लिए विहित वृक्ष); भा.श्रौ.सू. 10.6.19 (औदुम्बरी)।

फलीकरणपात्र

फलीकरण न. अनाजों का छिलका, मा.श्रौ.सू. 1.3.5.12, भूसी हटाने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.9; भा.श्रौ.सू. 1.22.12. अध्वर्यु के निर्देश पर इसे तीन बार किया जाता है। प्रथम बार यजमान-पत्नी द्वारा, दूसरी बार आग्नीध्र द्वारा और अन्ततः पत्नी द्वारा, आप.श्रौ.सू. 1.20.11; 21.2. एक आहुति का नाम अर्थात् 'इष्टि' में भूसी की आहुति, श्रौ.को. (अं.) 1.848; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 13.98-99, —**पात्र**।

फलीकरणहोम पु. (फलीकरणेन फलीकरणस्य वा होमः) अन्वाहार्य-पचन नामक दक्षिणाग्नि पर लोई की खुरचन (पिष्टलेप) के साथ अनाज की भूसी अथवा छिलके की आहुति प्रदान करना, भा.श्रौ.सू. 3.9.4. (दर्श); द्रष्टव्य श्रौ.प.नि. 38.319-320।

फाण्ट वि. (फण् + क्त) (पत्तों एवं छाले) से छना हुआ (जल) मा.श्रौ.सू. 6.1.2.2 'पर्णवल्कल-फाण्टाभिरद्भिः' शोधन अथवा छानने से प्राप्त; न. मन्थन करने से प्राप्त प्रथम नवनीत-कण, काढा; चूर्णीकृत औषधीय तत्त्व गरम पानी के चार अङ्गों के साथ मिश्रित कर दिये जाते हैं और उसके बाद छान लिये जाते हैं, शार्ङ्गधर संहिता (आयुर्वेदीय महाकोश)।

फाल्गन्युपवसथ पु. (फाल्गुन्याः उपवसथः) फाल्गुन मास की पूर्णिमा का पूर्ववती दिन (फाल्गुनशुक्लचतुर्दशी), (शुनासीरीय पर्व) का.श्रौ.सू. 5.11.18 फाल्गुन्युपवसथे शुनासीरीयं प्रातर्वैश्वदेवम्)।

ब

बन्धु पु. सम्बन्धी, विशेष रूप से पूर्वज (पितर्) जिन्हें पिण्डदान किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.9.1 (दर्श)।

बरासी स्त्री. वस्त्र की एक लम्बी पट्टिका, आप.श्रौ.सू. 14.13.3; ला.श्रौ.सू. 9.2.15; जननेन्द्रिय को ढकने के लिए प्रयुक्त होने वाला (चतुर्होत्रव्रतम्); श्रौ.को. (सं.) I.130।

बर्कर पु. जवान बकरा, आप.श्रौ.सू. 15.6.10 (प्रवर्ग्य)।

बर्हिर्मुष्टि स्त्री. (बर्हिषः मुष्टिः) एक मुट्ठी भर बर्हि-संज्ञक घास, श्रौ.को. (सं.) II.45।

बर्हिरनुप्रहरणवर्ज वि. (बर्हिषः अनुप्रहरणस्य वर्जः यस्मिन्) अग्नि में बर्हिष् फेंकने के कृत्य से रहित (साकमेध), का.श्रौ.सू. 5.6.5 (बर्हिरनुप्रहरणवर्जं वा)।

बर्हिरुपस्पर्शन न. (बर्हिषः उपस्पर्शनम्) वेदि के भीतर (होता का) दाहिने घुटने से 'बर्हिस्' का स्पर्श करना (जब वह पलथी मारकर बैठता है; 'दक्षिणोत्तरीणा उपस्थेन', श्रौ. प.नि.)।

बर्हिर्लाव पु. (बर्हिषः लावः, लावः = लूञ् छेदने + घञ्) बर्हि को काटना (बर्हिर्लावं प्रहिणोति), बौ.श्रौ.सू. 1.19.1।

बर्हिषदं कृ (बर्हिषि सीदति बर्हिषद्, बर्हिष् षद् + क्विप् तं + कृ) पुरोडाश को बर्हिस् पर रखना, का.श्रौ.सू. 3.4.10।

बर्हिस् न. यज्ञीय घास, यज्ञीय भूमि पर बिछाया गया कुश, विशेषरूप से वेदि पर परतों में ताकि यह इस पर स्थित यज्ञिय पात्रों एवं हविषों के लिए पवित्र पृष्ठ के रूप में एवं देवताओं और अनुष्ठान करने वालों के आसन का कार्य करे; घास काटने की विधि, आप.श्रौ.सू. 1.3.1; इन्हें तीन और पाँच लड़ी (त्रिधातु, अथवा पञ्चधातु, 1.4.14) में रस्सी में बाँधने की, आग के चारों ओर फैलाने की, 1.7.5; वेदि पर चार या पाँच कड़ियों (परतों) में पूलों में फैलाने की, 2.9.2. सम्पूर्ण दर्श एवं सोमयाग में विभिन्न अवसरों पर बर्हिष् को फैलाने (बिखेरने) की क्रिया होती है। द्वि.व. में इस शब्द का अर्थ है दो दर्भपत्र (दर्भमयं बर्हिः, आप.श्रौ.सू. 1.3.5) यज्ञीय पशु को धकेलने (हाँकने = उपाकरण) के लिए प्रतीकात्मक रूप से प्रयुक्त, 7.12.5.8. 'बर्हिस्' प्रस्तर से भिन्न बतलाया गया है। साधारण रूप से उसे 'कुश' के रूप में जाना जाता है, का.श्रौ.सू. 1.3.12; वरुणप्रघास में 'उत्तरवेदि' पर (पाँच प्रकार से 'पञ्चविध') फैलाया जाता है और दक्षिण वेदि पर त्रिविध (तीन-प्रकार या तीन बार), बौ.श्रौ.सू. 5.6; 'बर्हिषा पूर्णमासे व्रतम् उपैति', भा.श्रौ.सू. 4.3.9।

बलक्षी स्त्री. श्वेत अजा, आप.श्रौ.सू. 10.26.12 (दशापवित्रम्)।

बलभिद् पु. एक दिवसीय सोम याग का नाम, जै.ब्रा. II.89।

बलि पु. अर्पण या आहुति (विशेष रूप से सभी प्रकार के भूतों—प्राणियों के लिए पृथ्वी पर अर्पित किया जाने वाला भोजन का एक अंश), गोंड जो The Ritual Sutras, पृ. 662।

बलिवर्द पु. बैल = बलीवर्द, भा.श्रौ.सू. 5.8.14।

बलिहरण न. (बलेः हरणम्) सात 'पाकयज्ञों' में एक का नाम, बौ.श्रौ.सू. 24.4. भूमि पर देवताओं को भोजन के एक अंश को अर्पित करने का कृत्य।

बल्कस = मासरा (शोधन या छानने से प्राप्त तत्त्व), आप.श्रौ.सू. 19.4.8 (सौत्रामणी)।

बल्बज न. एक घास का नाम जिससे पितृमेध में चिति के चारों और लपेटने के लिए डोरी (रस्सी = तार) का निर्माण किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii.1101.

बस्तचर्मन् न. (बस्तस्य = अजस्य चर्म) बकरे का चमड़ा 'सरुक्मे बस्तचर्मण्यवरोहति', का.श्रौ.सू.14.5.13 (वाजपेय अभिषेक)।

बस्ताजिन न. (बस्तस्य अजिनम्) (पशु की कामना वाले व्यक्ति के लिए अभिषेक - संस्कार में आसन के रूप में प्रयुक्त होने वाला) अज-चर्म, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.30।

बहिर्निधन वि. (बहिर्निधनं यस्य) जिसका अन्तिम (भाग) बाहर हो, जै.ब्रा. III.265।

बहिःपरिधिनिनयन न. (परिधेः बहिः निनयनम्) स्विष्टकृत् के पश्चात् (मध्य) परिधि के बाहर इसके (परिधि के) पश्चिम की ओर 'जुहू' से जल उड़ेलना, श्रौ.प.नि. 32.268।

बहिष्पन्द्यम् क्रि.वि. (स्पन्द्यायाः बहिः) रस्सी से बाहर, बौ.शु. 1.56।

बहिष्पवमान न. एक स्तोत्र का नाम, जिसका गायन प्रातःकालीन सत्र में सदस् से बाहर चात्वाल के निकट आस्ताव पर किया जाता है, ला.श्रौ.सू. 1.12.7। सोम-याग में गाये जाने वाले स्तोत्रों में यह प्रथम है और इसमें नौ विशिष्ट ऋचायें (तीन तृच) समाहित हैं : ऋ.वे. 9.11.1-3; 64.28-30; 66.10-12 = सा.वे. II. 1.1.1-3; इनका गायन 'त्रिवृत्' (स्तोम) की शैली में किया जाता है; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.278, 559।

बहिष्पिण्ड वि. (बहिरुन्मुखा पिण्डा यस्य) मनके-सदृश बहिरुन्मुख उभारों वाला, का.श्रौ.सू. 16.5.1 (चयन में रुक्म)।

बहुकार पु. (बहु करोति, बहु + कृ + घञ्) वह व्यक्ति जो बहुत प्रकार के कार्य करता है (अर्थात्-झाडू लगाने वाला, आदि), का.श्रौ.सू. 15.7.10 (बहुकारेति च ह्वयत्येवं नामानम्)।

बहुपत्रिका स्त्री. एक लता का नाम (यदि यह श्मशान में हो, तो इसे हटा देना चाहिए), श्रौ.को. (अं.) I.ii.1044।

बहुयाजिन् पु. = सोमयाजिन्, जो सोमयाग का अनुष्ठान करता है, आप.श्रौ.सू. 11.20.12, शाब्दि.-बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला।

बहुलपलाशा वि. (स्त्री.) (बहुलाः पलाशाः यस्यां सा) जिसमें बहुत से पत्ते हों, 'बहुलपलाशामशुष्काग्रां प्रागुदीचीमन्यतमां वा', का.श्रौ.सू. 4.2.4 (शाखापवित्र)।

बहुला स्त्री. कृत्तिकानक्षत्र, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.11।

बह्वृचब्राह्मण न. (बह्वृचानां ब्राह्मणम्) ऋग्वेदियों का ब्राह्मण (अर्थात् ऐतरेय ब्राह्मण), आप.श्रौ.सू. 1.20.10।

बाभ्रव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.12 सा.वे. 1.467 पर।

बार्हती स्त्री. (बृहतः इयम्, बृहत् + अण् + ङीप्) एक ऋचा जिस पर 'बृहत्साम' आधृत है, श्रौ.को. (सं.) I.200।

बार्हदुक्थ न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.37 सा.वे. 1.296 पर, जै.ब्रा. III.219।

बार्हद्गिर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 1.4.15 सा.वे. 1.411 पर।

बालखिल्य वि. ऋ.वे. के बालखिल्य सूक्तों से सम्बन्ध रखने वाला, जै.ब्रा. III.170।

बाहु पु. माप (80 अंगुल, वास्तव में 84.8 अंगुल), मा.श्रौ.सू. 10.3.2.12; 10.3.1.9 के अनुसार 36 या 42 अंगुल; कसाई की अग्नि की लम्बाई; चौड़ाई वही है; एक बाहु।

बाहुकारी वि. (बाहुना कर्तुं शीलमस्य) (वह व्यक्ति) जो अग्रपाद (?) से कार्य करता है, मा.श्रौ.सू. 11.2.1।

बिल न. उखा-संज्ञक पात्र का मुख (विवर) अथवा ऊपरी भाग (बिलं गृह्णाति), का.श्रौ.सू. 16.4.3 (चयन); छिद्र या विवर [अथास्य (पिण्डस्य महावीरार्थस्य) बिलं गृह्णाति], बौ.श्रौ.सू. 9.3।

बिलं विष्यति (विष्यति = वि + सो + लट् प्र.पु.ए.व.) धानी = पात्र (अथवा) आज्य पर से ढक्कन हटाता है, भा.श्रौ.सू. 2.5.11।

बिलावकाश वि. (बिले अवकाशः यस्य) (एक करछुल) जिसके कटोरे में रिक्त स्थान छूट गया है, भा.श्रौ.सू. 10.5.12।

बुधन्वती स्त्री 'अग्निं स्तोमेन बोधय' आदि (ऋ.वे. 5.14.1) ऋचा का नाम, जिसका प्रयोग 'पुनराधान' में प्रथम आज्यभाग की 'पुरोनुवाक्या' के रूप होता है, श्रौ.को. (अं.) I.i.79; भा.श्रौ.सू. 5.17-20।

बुध्नवती स्त्री. (बुध्न + मतुम् + ङीप्) 'बुध्नात् अग्रम् अङ्गिरोभिर्गृणानो', तै.सं. 2.3.14.5; एवं 'बुध्नात् अग्रेण विममाय मानैः' (तै.सं. 2.3.14.5) ऋचा का नाम, जिसका प्रयोग 'आनुजावर (मरणोत्तर सन्तान) के सम्बन्ध में इन्द्र को अर्पित एक ऐच्छिक इष्टि की 'याज्या' एवं अनुवाक्या के रूप में होता है, श्रौ.को. (अं.) II.ii.561; बौ.श्रौ.सू. 13.27।

बृहत् न. 1. एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.1 (अग्निवेदि के वाम पक्ष की पाँचवीं परत=तह में); 2. एक साम का नाम, जिसका गायन अग्न्याधान में उस समय होता है जब-जब अग्नि आहवनीय-अग्निस्थान पर अश्व के पदचिह्न पर रखा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.16-18; 2.7. इसका गायन 'उद्गाता' अथवा ब्रह्मा द्वारा किया जाना चाहिए, वैता.श्रौ.सू. 4.9-10; जै.श्रौ.सू. 22; श्रौ.को. (अं.) II.i.40; 44; 46; 51-52; पञ्च.ब्रा. 4.8.12 सा.वे. 1.233 पर; एक मन्त्र 'बृहत्, बृहत्, बृहत्' का नाम, जिसका जप सोम सवन की द्वितीय आवृति को चालू रखते समय किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 2.620।

बृहती स्त्री. एक प्रकार की ईंट जो 'षष्ठी' ईंटों का संयोजन है (120 ÷ 6 = 20 अंगुल) एक तरफ और एक चौथाई (120 ÷ 4 = 30 अंगुल) दूसरी तरफ, बौ.शु.सू. 6.5-12; 36 अक्षरों वाले छन्द एवं ऋचा का नाम।

बृहदुक्थ न. (बृहत् च तदुक्थम्) एक बड़ी स्तुति, जिसमें त्रिक ऋचाओं की एक शृंखला होती है, इसमें गद्यात्मक मन्त्र भी होते हैं, इसका वाचन होता द्वारा माध्यन्दिन सवन के समय में गवामयन के 'महाव्रत-दिन' पर महाव्रत साम के उत्तरस्वरूप किया जाता है, इग्लिग, श.ब्रा.इ. XLIII.110-11 = महदुक्थ।

बृहस्पतिवती स्त्री. (बृहस्पति + मतुप् + ङीप्) बृहस्पति के सन्दर्भ वाली एक ऋचा; भद्रादभि श्रेय: प्रेहि बृहस्पति:-----' श्रौ.को. (सं.) II.522। (प्रयाणं प्रायणीयेष्टिश्च); प्रयाणयजुष्, श्रौ.को.(सं) II.522

बैजल वि. बीजों की सुविधा से युक्त (जल), मा.श्रौ.सू. 11.3.4 (जुड़वा बच्चों के जन्म के बाद प्रायश्चित्त)।

बैद त्रिरात्र पु. तीन दिन तक चलने वाले एक सोम-याग का नाम।

बैदल पु. बाँस की नली, आप.श्रौ.सू. 19.6.2.3 (श्रौत्रामणी)।

ब्रह्मकर्तृकनित्यप्रायश्चित्तहोम पु. (कर्म में की गई त्रुटियों) का शमन करने के लिए ब्रह्मा द्वारा अनुष्ठित एक नित्य (सर्वकालिक) आहुति-दान, श्रौ.प.नि. 41.340।

ब्रह्मकूर्च पु. (ब्रह्मण: कूर्च:) ब्रह्मा का आसन।

ब्रह्मचर्य न. (ब्रह्मणे चर्यम्, चर्य=चर्+यत्) शास्त्रों का अध्ययन एवं ब्रह्मचर्य का पालन (अथ अस्य ब्रह्मचर्यम् अधि), भा.श्रौ.सू. 11.21.12 (अवान्तरदीक्षा)।

ब्रह्मचारिणी वि. स्त्री. (ब्रह्म+चर्+णिनि+ङीप्) ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करने वाली (यजमान-पत्नी, भा.श्रौ.सू. 10.9.9)।

ब्रह्मत्व न. (ब्रह्मण: भाव: कर्म वा, ब्रह्म + त्व) 'ब्रह्मा' नाम वाले ऋत्विक् की प्रकृति (अथवा कर्म), 'एतद्ब्रह्मत्व-मिष्टिपश्वो:', का.श्रौ.सू. 2.2.22 तुल. ब्रह्मत्व-मञ्जरी।

ब्रह्मन् पु. श्रौत-यज्ञ में कार्य करने वाले प्रधान ऋत्विजों में एक ऋत्विज् का नाम। वह पलथी मारकर उच्च दाहिन जंघे को वाम एड़ी पर रखकर आहवनीय के दक्षिण की ओर बैठता है। उसके बायें हाथ की हथेली ऊपर की ओर मुद्रा में दाहिने अङ्क पर और दाहिने हाथ की हथेली इस पर

(ब्रह्मन् ऋत्विज्)
वाजपेय साम का गायन करता हुए

नीचे की ओर मुद्रा में होती है। उसे अनुष्ठान की शुद्धता पर ध्यान देना होता है और 'प्रणीता-प्रणयनादि' जैसे कृत्यों के लिए वह ऊँची आवाज में सहमति प्रदान करता है। बौधायन के सम्प्रदाय के मतानुसार उसे कर्मकाण्डीय त्रुटियों के लिए गार्हपत्य, दक्षिण एवं आहवनीय अग्नि पर प्रायश्चित्तिक आहुतियां भी देनी पड़ती हैं। फिलहाल आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी आदि इसका विधान नहीं करते। कातीय सम्प्रदाय के मतानुसार उसे 'अनादिष्ट होम करना पड़ता है, श्रौ.प.नि.पृ. 2-3. वह सभी में सबसे अधिक विद्वान् होता है और उसे अपने पेशेवर कर्तव्यों के निर्वहण के लिए तीनों वेदों को जानने की आवश्यकता होती है, श.ब्रा. 11.5.8.7. वह अध्यक्ष के समान कार्य करता है, और; अधिकतर चुप ही रहता है; 'स्तोत्र' अथवा 'शस्त्र' में भाग नहीं लेता, भा.श्रौ.सू. 3.15.4.6. वह अध्वर्यु को विविध निर्देश देता है, 3.16.1-4; वह आथर्वण कृत्य में 'अनुमन्त्रण' का वाचन करता है। ब्रह्मा ही प्रायश्चित्त के प्रश्न का निर्णय करता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.16. यथावसर उसके सहायक भी 'ब्रह्मा' कहे जाते है; (यदि सर्पता प्रस्तोता विच्छिद्येत ब्रह्मणे वरं दत्त्वा, तमेव पुनर्वृणीते), मा.श्रौ.सू. 3.6.9; रथ-चक्र पर बैठते समय वह 'वाजपेय साम' का गायन करता है; द्रष्टव्य—श्रौतप.नि. 1.4; **० ब्रह्मचमस।**

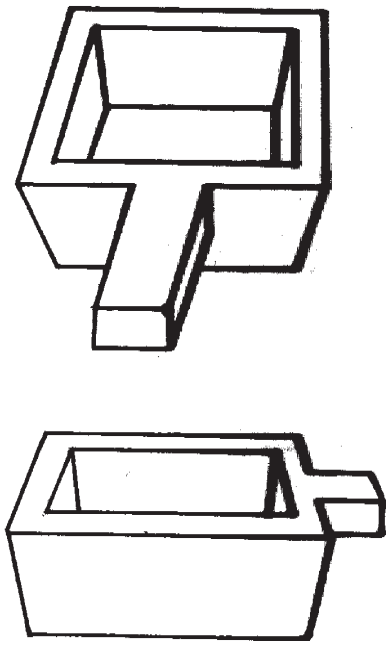

ब्रह्मचमस

ब्रह्मभाग पु. (ब्रह्मण: भाग:) ब्रह्मा के लिए नियत यज्ञीय भोजन का भाग, अध्वर्यु द्वारा उसे (यह) प्रदान किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 3.18.5 (दर्श)।

ब्रह्ममेध पु. (ब्रह्मण: मेध:) किसी ब्रह्मन् (=ब्रह्मविद्) की अन्त्येष्टि का कृत्य; इसे पितृमेध से ऊँचा कहा गया है, भा.पि.मे. 2.1, आप.श्रौ.सू. 31.4।

ब्रह्मवर्चस् न. (ब्रह्मण: वर्च:) 'ब्रह्मन्' का सत्त्व, जै.ब्रा. III.165।

ब्रह्मवर्मन् न. (बहु.व.) चयन-स्थल पर हल चलाते समय अर्पित की जाने वाली विशिष्ट आज्याहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.18.7 'ब्रह्म जज्ञानम्------' आदि (चार ऋचाओं के) साथ।

ब्रह्मसदन न. (ब्रह्मण: सदनम्, ब्रह्मा सीदत्यस्मिन्) 'ब्रह्मा' नाम के ऋत्विज् के बैठने के लिए अभिप्रेत कुशासन, भा.श्रौ.सू. 3.14.2।

ब्रह्मसामन् न. माध्यन्दिन सवन में गाये जाने वाले तृतीय पृष्ठस्तोत्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 14.19.6 (सोम)।

ब्रह्मागार न. (ब्रह्मण: आगारम्) 'ब्रह्मा' नाम के ऋत्विज् का गृह, 'सोमं क्रीत्वा द्वैधं पर्युह्यैकं ब्रह्मागारे निदधाति', का.श्रौ.सू. 15.4.3 (यहाँ अभिषेचनीय के लिए सोम-लता को संरक्षित किया जाता है)।

ब्रह्मामन्त्रण न. (ब्रह्मण: आमन्त्रणम्) 'ब्रह्मा' को एक आवाज देकर उसकी अनुमति प्राप्त करना, का.श्रौ.सू. 5.9.22 (ब्रह्मामन्त्रणादि प्राक्स्तुग्व्यूहनात्प्रयाजवत्)।

ब्रह्मिष्ठ वि. (ब्रह्म + इष्ठन्) ब्राह्मणों अथवा कार्य सम्पादक ऋत्विजों में सर्वाधिक मेधावी, का.श्रौ.सू. 2.1.17 (अग्निहोत्रं हुत्वा ब्रह्माणं वृणीते ब्रह्मिष्ठम्----------)।

ब्रह्मोद्य न. (ब्रह्म+वद्+क्यप्, वद: सुपि क्यप् च, पा. 3.1.106) धर्मशास्त्रीय प्रश्नों अथवा समस्याओं पर खुशनुमा वाद-विवाद, का.श्रौ.सू. 12.4.19 (द्वादशाह)। ब्रह्मा और होता के मध्य, आप.श्रौ.सू. 20.19.6 (अश्वमेघ यज्ञ), द्रष्टव्य—रेनू लू. वेलर अभिनन्दन ग्रन्थ 1954, पृ. 528-34।

ब्रह्मौदन न. (ब्राह्मणेभ्य: ओदनम्) ब्राह्मणों को (भोजन कराने) के लिए भात (तैयार करने का कृत्य) (दक्षिणतो ब्रह्मा, पश्चाद् होता, उत्तरत: उद्गाता, पुरस्ताद् अध्वर्यु: ब्रह्मौदनं, पर्युपविशन्ति), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.21; ऋत्विजों का चावल, मा.श्रौ.सू. 15.1.19. जल की चार मापों में चार तश्तरी चावल पकाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 5.5.4.6 (अग्निहोत्र), ऋत्विजों, राजा, उसकी चार पत्नियों, उनकी 400 कुमारियों के लिए भी, चावल (अथवा कुछ सम्प्रदायों के अनुसार यव) जिसकी मात्रा चार कटोरा, चार अञ्जलि और चार मुठ्ठी (प्रसृत) होती है का.श्रौ.सू. 20.1.4 [ब्रह्मौदनं पचति चतुर्णां पात्राणामञ्जलि-प्रसृतानां च (अश्वमेध यज्ञ)]; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 56.387।

ब्रह्मौदनिक पु. (ब्रह्मौदनं पचति) एक प्रकार की अग्नि, जिस पर ब्राह्मणों के लिए अग्न्याधान के समय भात तैयार किया जाता है। इसे गृह्य अग्नि अथवा उत्थापनीय-प्रकार (अर्थात् कपालों को तपाकर लाल कर देने के पश्चात् उनके ऊपर फैली हुई घास में कपालों को ताप के फलस्वरूप उत्पन्न अग्नि) अथवा अम्बरीष अग्नि (अर्थात किसी तन्दूर की अग्नि) से प्राप्त किया जा सकता है, श्रौ.को. (अं.) I.i.14, इत्यादि; आप.श्रौ.सू. 5.5.1।

ब्राह्मण पु. (ब्रह्मन् + अण्) हिन्दुओं के प्रथम वर्ग का नाम, उस यजमान का नामकरण जो दीक्षित हो चुका है, 'अन्यो दीक्षितोऽयं ब्राह्मण इत्याह त्रिरुच्चै:', का.श्रौ.सू. (यद्यपि मूल रूप से वह ब्राह्मणेतर जाति का हो सकता है, जैसे वैश्य अथवा राजन्य), द्रष्टव्य 7.4.12 (ब्राह्मण इत्वेव वैश्यराजन्य-योरपि श्रुते:); न. उन कृतियों का वर्ग जो

वेदों का भाग होते हुए भी संहिता एवं उपनिषदों से इतर के रूप में निरूपित है। सायण के अनुसार, ब्राह्मण के दो भाग हैं : (i) विधि (यज्ञों के सम्बन्ध में नियम एवं निर्देश); (ii) अर्थवाद (व्याख्यात्मक टिप्पणी : प्रशंसा अथवा निन्दा), भट्ट भास्कर मिश्र के अनुसार 'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मात्राणां व्याख्यानग्रन्थः', तै.सं.भा. 1.5.1; 'शेषे ब्राह्मण शब्दः' मी.सू. 2.1.60; सभी वेदों के अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

ब्राह्मणन्यङ्ग न. (वह व्यक्ति) जो नाम मात्र से ब्राह्मण हो, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.25।

ब्राह्मणव्याख्यात वि. (ब्राह्मणे ब्राह्मणेन वा व्याख्यातः) ब्राह्मण में विहित, भा.श्रौ.सू. 5.1.4 (आधान-सम्भार)।

ब्राह्मणस्पत्यसामन् न. महावीर यात्रा को आगे बढ़ाते समय प्रस्तोता द्वारा गाया जाने वाला साम, जै.श्रौ.सू. 1.23।

ब्राह्मणस्पत्या स्त्री. ऋ.वे. 1.18.1 ऋचा का नाम।

ब्राह्मणाच्छंसिन् पु. होता का एक सहायक ऋत्विज्। वह बहुत सी ऋचाओं का वाचन करता है, उदाहरणार्थ-इन्द्र के लिए तृतीय 'आज्यस्तोत्र', बौ.श्रौ.सू. 7.19; आप.श्रौ.सू. 12.29.2।

ब्राह्मणाच्छंसि-चमस पु. (ब्राह्मणाच्छंसिनः चमसः) ब्राह्मच्छंसी का एक पानपात्र अथवा सोम का प्याला। सोम याग के प्रातःकालिक वेला में इसे 'उन्नेता' प्रथम स्थान पर प्रतिप्रस्थाता के अनुदेश पर मैत्रावरुण चमस के अर्पित कर दिये जाने के बाद आपूरित करता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii.603; बौ.श्रौ.सू. 7.18-19; मा.श्रौ.सू. (2.4.3.5-15) के अनुसार अध्वर्यु को पूतभृत् (में) से चमसों को भरना चाहिए, जिसमें 'ब्राह्मणच्छंसिन्' का चमस प्रथम हो, श्रौ.को. (अं.) II.ii.607।

ब्राह्मणच्छंसीय वि. (ब्राह्मणच्छंसिनः इदम्, ब्राह्मणच्छंसिन् + छ) ब्राह्मणच्छंसिन् से सम्बद्ध या उनके लिए (धिष्ण्या-संज्ञक अंगीठी) नियत, आप.श्रौ.सू. 27.21.3।

ब्राह्मणी वि. (ब्राह्मण + ङीप्) ब्राह्मण वर्ग की (स्त्री.), भा.श्रौ.सू. 5.6.7।

ब्राह्मौदनिक पु. (ब्रह्मोदन + ढक्) वह अग्नि जिस पर ब्राह्मणों के लिए भात (ओदन) पकाया जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.7; भा.श्रौ.सू. 5.3.1।

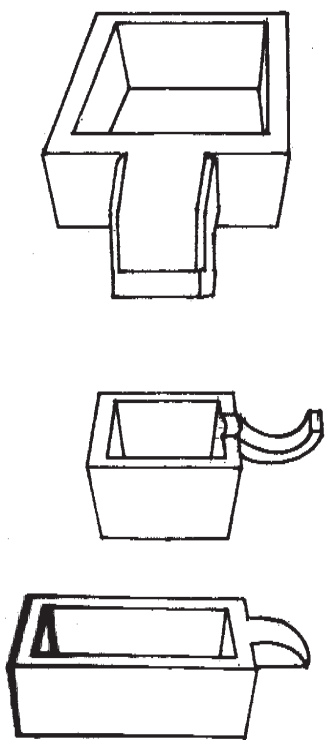

ब्राह्मणाच्छंसि-चमस

भक्ति स्त्री. (भज् + क्तिन्) विभाग, किसी साम के पाँच भागों में एक, ला.श्रौ.सू. 6.1.14; पुष्प सू. 521; = विभक्ति, विधा। साम के पाँचों भाग हैं—प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव एवं निधन।

भक्षप्रतिषेध पु. (भक्षस्य प्रतिषेधः) (किसी आहुति के शेष भाग को) खाने की मनाही (निषेध), 'ब्राह्मणा ऋत्विजो भक्षप्रतिषेधादितरयोः', का.श्रौ.सू. 1.2.8 (इतरयोः क्षत्रियवैश्ययोः)।

सोमभक्ष

भक्षमन्त्र पु. (भक्षस्य मन्त्रः) (इडा, सोम आदि के अवशिष्ट भाग को) खाने के लिए मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.6; 'होता प्रथमो भक्षयते पृथिव्यास्त्वा दात्रा प्राश्नामि, अन्तरिक्षस्य त्वा----प्राश्नामि, दिवस्त्वा-----, प्राश्नामीति प्राश्नाति अग्नीध्रः', मा.श्रौ.सू. 1.3.3.16 (दर्श); ला.श्रौ.सू. 8.9.13. 'भूर्भुवः स्वर्मयि त्यद्-----' आदि (दधिग्रह), मा.श्रौ.सू. 4.9.13-14; 'अश्यां ते देव घर्मेति---- भक्षयन्ति ऋत्विजः', मा.श्रौ.सू. 4.3.35; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 226.123; श्रौ.को. (सं.) II.366; 'इन्वा मे गात्रा----', मा.श्रौ.सू. 2.4.1.30-39 (सोमभक्ष), भा.श्रौ.सू. 13.26.14; 27.19, तै.सं. 3.2.5.1.2।

भगिन् पु. बाँटने वाला, वितरण करने वाला (अग्नि) (यदि काम्यो नानातन्त्रः) मा.श्रौ.सू. 5.1.1.35; वि. आनन्द लेने के लिए समर्थ, भा.श्रौ.सू. 5.1.12 (आधान)।

भद्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.1.19 सा.वे. 1.462 पर।

भयेषक पु. एक प्रकार का अज (बकरा), काशिकर 281 इण्डेक्स।

भरणशेष पु. (भरणे शेषः) ब्रह्मौदन अग्नि को संभालने (बनाये रखने) के प्रसङ्ग में बचने वाला समय, भा.श्रौ.सू. 5.3.19।

भरद्वाजस्य पृश्नि न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.10.23 सा.वे. 1.37 पर; —**लोम**, पञ्च.ब्रा. 13.11.11 सा.वे. 1.582 पर।

भर्ग न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 19.8.4 सा.वे. 1.258 पर।

भर्तृ पु. 'भर्त्रा सन् भ्रियमाणो--- से प्रारम्भ होने वाला एक सूक्त, जिसका प्रयोग अन्न, वाक् एवं श्रद्धा को अर्पित इष्टि में गौण आहुतियों के लिए किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.ii.893; एक दूसरे प्रसङ्ग में इसका प्रयोग मृत शरीर (शव) को ले जाते समय किया जाता है, वही, पृ. 11.16; —**सूक्त** एक सूक्त का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.816; तै.आ. 3.14।

भसत् स्त्री. (चर्म का) पिछला भाग; (न भसदं प्रत्यस्यति = वह पिछले भाग को पश्चिम को ओर नहीं मोड़ता है), मा.श्रौ.सू. 1.2.2.25।

भसत्तः क्रि.वि. (भसत् + तसिल्, पञ्चम्यास्तसिल्, पा. 5.3.37) कमर के क्षेत्र (भाग) से, आप.श्रौ.सू. 10.9.3 (रु. कटिप्रदेशेन)।

भस्मन् न. अध्वर्यु द्वारा संगृहीत एवं मनुष्य की आकृति में ढाली गई (चित) अन्तिम संस्कार किये गये शरीर की राख, भा.पि.मे. 1.9.12।

भस्मोद्वपन न. (भस्मनः उद्वपनम्) (उखा पात्र से) राख हटाने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 16.6.1 (उखाया भस्मोद्वपनमस्तमिते पात्रे, का.श्रौ.सू. 16.6.1)।

भस्त्री स्त्री. (अभिचार के लिए) एक विष्टुति का नाम, ला.श्रौ.सू. 6.2.12; द्रा.श्रौ.सू. 16.2.73।

भागिनी स्त्री. (वि.) (भज् + अण् + इन् + ङीप्) (एक देवता) जिसे आहुति में हिस्सा मिलता है, मा.श्रौ.सू. 3.1.30 (प्रायश्चित्त)।

भारद्वाजबल न. (भारद्वाजकुलस्य बलम्) भरद्वाज के कुल की शक्ति, जै.ब्रा. II.217।

भारुण्ड न. एक साम का नाम, जिसका गायन अन्त्येष्टि किये गये व्यक्ति की हड्डियों को समिधाओं से घास पर रखने के अवसर पर किया जाता है (पितृमेध में), श्रौ.को. (अं.) I.1132।

भार्गव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.3.23 सा.वे. 1.557 पर आधृत।

भाविता वि. (स्त्री.) (भू + णिच् + क्त + टाप्) व्यवहृत, तैयार की गई (मृदं च भावितां-----प्रवर्ग्यसम्भार), बौ.श्रौ.सू. 9.1:3।

भाषिकस्वर पु. संहिता के मन्त्रों के प्रसङ्ग में ब्राह्मण ग्रन्थों में अङ्कित स्वर, 'भाषिकस्वरो वोपपन्नमन्त्रोपदेशात्' का.श्रौ.सू. 1.8.17 (अत्र शबरः—'छन्दोगा बह्वृचा चैव तथा वाजसनेयिनः उच्चनीचस्वरं प्राहुः स वै भाषिक उच्यते॥' शा.भा. 12.3.7. स.वृ. में उद्धृत)।

भास न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 4.6.14 सा.वे. 1.470 पर आधृत।

भास्वत् वि. (भास् + मतुम्) दीप्तियुक्त चमकता हुआ, भा.श्रौ.सू. 5.11.7 (स्थापित की गई नई अग्नि)।

भिन्नान्त वि. (भिन्नः अन्तः यस्य) किनारों (झलरियों से) से युक्त, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.13।

भुवद्वती स्त्री. (भुवद् + मतुप् + ङीप्) 'भुवत्' शब्द से युक्त ऋचा, श्रौ.को. (सं.) II.296।

भूतिकाम न. 'रयिमन्त्' आज्य-भागों एवं 'संवन्त्' संयाज ऋचाओं से युक्त कर्मकाण्डीय 'तन्त्र' का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.540; मा.श्रौ.सू. 5.1.5.4।

भूमि स्त्री. क्षेत्र (बौ.शु.सू. 1.36); —**कपाल** न. पृथ्वी की शक्ल में कपाल, बौ.श्रौ.सू. 24.10।

भूमिदुन्दुभि स्त्री. (भूम्यां निर्मिता दुन्दुभिः) पृथ्वी में गड्ढा बनाकर और बैल के चमड़े को लगाकर बनाया गया ढोल। यह आग्नीध्र-शाला के पश्चिम वेदि के आधा अन्दर और आधा बाहर होता है। चोब के बजाय पूँछ के पट्टे का प्रयोग होता है, आप.श्रौ.सू. 21.18.2-3; 19.8; मा.श्रौ.सू. 7.2.7.9 (महाव्रत यज्ञ); द्रा.श्रौ.सू. 10.3.1।

भूयस्कृत् स्त्री. अग्निवेदि की पाँचवीं तह में (लगी) ईंटों (154-158) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-45।

भूयिष्ठार्चिस् न. (सप्तः) (भूयिष्ठम् अर्चिः, सप्त.) जब ज्वालाओं की अधिकता अग्नि में दीखने लगे, 'भूयिष्ठार्चिषि गृहीत्वैव सहसा', का.श्रौ.सू. 4.15-16 (अग्निहोत्र)।

भृति स्त्री. (भृ + क्तिन्) दक्षिणा सामग्री इकट्ठा करने के लिए याचना (रु.), मा.श्रौ.सू. 2.1.3.12 (दीक्षितो भृतिं वन्वीत); 6.1.4.26; 7.2.1.27।

भृष्टिल वि. (भृष्टि + इलच्) तीक्ष्ण, तेज, मा.श्रौ.सू. 1.2.1.7 (स्फ्यो भृष्टिलः)।

भेद पु. (भिद् + घञ्) सम्भेद, चिनी गई वेदि में एक दूसरे के ऊपर आने वाली दो तहों का जोड़, बौ.शु.सू. 2.22।

भेदन (भिद्+ल्युट्) न. मिट्टी के घड़े का टूटना अथवा इसे तोड़ना, का.श्रौ.सू. 18.2.7 (चयन).

भौवन्यव न. (भुवन्यु + अण्, ओर्गुणः, पा. 5.4.145) भुवन्यु के कार्य अथवा उसकी उपलब्धियां, होता द्वारा किया जाने वाला एक वाचन जिसमें मनु, यम जैसे सम्प्रभुओं का उल्लेख रहता है, आप.श्रौ.सू. 20.6.7; द्रष्टव्य—पारिप्लव।

भ्रष्ट पु. भाड़, भूनने की कढ़ाही, मा.श्रौ.सू. 11.5.4.4।

भ्राज न. एक साम का नाम, पञ्च ब्रा. 4.6.14 सा.वे. 1.470 पर आधृत।

भ्रातृव्य पु. (भ्रातृ + व्यन्, व्यन्त्सपत्ने, पा. 4.1.145) शत्रु भतीजा, जिससे यजमान कुछ लेना चाहता है और उसका नाम लेता है, भा.श्रौ.सू. 4.19.2 (दर्श)। यह भी प्रतिपादित है कि आदित्य-प्याले के कर्षण तक यजमान महावेदि के बाहर ही रहना चाहिए, यदि उसका शत्रु भतीजा सोम याग का अनुष्ठान कर रहा हो, भा.श्रौ.सू. 14.8.3, तृतीय सवन के दौरान; तुल. आप.श्रौ.सू. 13.9.4।

भ्राष्ट्र पु. दाना भूनने वाले पेशेवर व्यक्ति की अग्नि, काशिकर 281 इण्डेक्स।

भ्रेष पु. त्रुटि, अनौचित्य (ऋक्तः------यजुष्टः, सामतः), मा.श्रौ.सू. 3.11.1; यज्ञीय अनुष्ठान में, आप.श्रौ.सू. 9.16.4।

म

मकरी स्त्री. कुण्डली में स्थित 'मकर' नाम की राशि, मा.श्रौ.सू. 11.3.13; मकरी शुभकरा-----।

मणिकुण्डल न. (मणेः कुण्डलम्) रत्नों से निर्मित कुण्डल (बाली) ('दधिग्रह' होम की दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला); श्रौ.को. (सं.) II.553।

मण्डचरवत् क्रि.वि. (मण्डचर + वति) हल के फन्दे की तरह; कृष्णविषाणा ---- शाष्या रज्ज्वा परितृण्णामण्डचरवद्विग्रथिता तां यजमानाय प्रयच्छति (दीक्षा), बौ.श्रौ.सू. 6.5 = लाङ्गलपाशवत्, भाष्य, इण्डेक्स श्रौ.को. (सं.) II.519।

मण्डल न. (गार्हपत्य का) गोलाकार क्षेत्र, का.श्रौ.सू. 17.1.5 (मण्डलं छादयति)।

मण्डलपरिक्षेप पु. एक वर्ग-सहित मण्डल (गोले, वृत्त) की तुलनात्मक अवस्थिति (यदि किसी वृत्त के व्यास को पाँच भागों में विभक्त किया जाय और बाद में प्रत्येक तीन भागों में विभक्त किया जाय तो समानान्तर वर्ग के प्रत्येक पक्ष की माप 15 भाग में 13 होगी), मा.श्रौ.सू. 10.3.2.13।

मण्डलविष्कम्भ पु. (मण्डलस्य विष्कम्भः) वृत्त का व्यास, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.10।

मण्डला स्त्री. एक वृत्ताकार ईंट, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.12 (अग्निवेदि में चिनी जाने वाली); 6.1.7.14।

मडलेष्टका स्त्री. (मण्डलाकृतिः इष्टका) गोलाकार अथवा वृत्त के चिह्न वाली ईंट, आप.श्रौ.सू. 16.23.9 (चयन); बौ.श्रौ.सू. 10.6 (भाष्य—उपरिकृतमण्डला); इसे अग्नि-वेदि की प्रथम तह में चिना जाता है, बौ.श्रौ.सू. 10.31-36।

मण्डूककर्षण

मण्डूककर्षण न. (मण्डूकस्य कर्षणम्) चिनी हुई वेदि पर मेढक को घसीटना, युधि.।

मतस्नू न. शरीर के एक विशिष्ट अवयव (अङ्ग) का नाम; हृदय के दोनों तरफ स्थित दो अस्थियां (मो.वि.), श्रौ.को. (सं.) I.43।

मति स्त्री. (तृतीया) (मन् + क्तिन्) अपनी मति अथवा गणना के अनुसार, का.श्रौ.सू. 16.2.1।

मद पु. 'मदामोद इव' इस मन्त्र का नाम, जिसका प्रयोग वैश्वदेव शस्त्र के लिए अध्वर्यु द्वारा पढ़े गये 'प्रतिगर' में होता है, बौ.श्रौ.सू. 8.13।

मदन्ती स्त्री. पवित्र अग्नि पर उबाले गये एवं सोम की टहनियों को फुलाने (आप्यापन) के लिए प्रयुक्त जल, का.श्रौ.सू. 8.2.11; उबलता हुआ जल, बौ.श्रौ.सू. 6.19; आटे में मिलाने के लिए प्रयुक्त जल, आप.श्रौ.सू. 1.23.6; (= पिष्ट संयवनीया, बौ.श्रौ.सू. 1.8) अथवा प्रवर्ग्य में अन्य प्रयोजनों के लिए, अवान्तर दीक्षा से लेकर दर्भमुष्टि के विसर्जन तक सभी कार्य इसी जल से किये जाने चाहिए, का.श्रौ.सू. 8.1.10-11; द्रष्टव्य श्रौ.प.नि. 9.55

मद्वत् स्त्री. (मद् + वति) 'मद्' प्रातिपदिक (की रीति) से (प्रतिगृणन्ति), मा.श्रौ.सू. 2.5.2.24; —**ती** (मद् + मतुप् + ङीप्) 'आदित्यासो मादयन्ताम्' यह ऋचा, ऋ.वे. 7.51.2 (आदित्य-ग्रह), श्रौ.को. (सं.) II.419; II.306 भी द्रष्टव्य ('मद्' शब्द से युक्त ऋचा)।

मधु न. शहद, मधु (पशुप्राप्ति के लिए काम्येष्टि में प्रयुक्त, श्रौ.को. (सं.) II.474

मधुग्लुन्थ पु. (मधुनः ग्लुन्थः) 1. (मधुमक्खियों का) छत्ता, जिसमें से मधु निकाला न गया हो, आप.श्रौ.सू. 6.31.5 (धू. मधुशर्करा; रु. अनिश्च्योतितमधुरमधुकोशो मधुग्लुन्थः), मधु का घनीभूत (ठोस) पिण्ड; 2. 'आग्रयण' की दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला पिशङ्ग वर्ण तथा भूरी आँखों वाला वृषभ, श्रौ.को. (अं.) 1.509।

मधुपर्क

मधुपर्क पु. जमाये गये दुग्ध अथवा मक्खन से मिश्रित मधु, आप.श्रौ.सू. 6.31.5; ग्रहण करने का कृत्य जिसमें गाय की हत्या सङ्केतित है, आश्व.श्रौ.सू. 1.24.33; द्रष्टव्य.श्रौ.को. (सं.) II.528; श्रौ.प.नि. 51.375. मधुपर्क के अधिकारी हैं : आचार्य ऋत्विग्, वैवाह्य, राजा, प्रिय स्नातक (पा.गृ.सू. 1.3.1)

मधुमन्थ पु. (मधुना उपसिक्ता: मन्था:) मधु से उपसिक्त (सराबोर) यव का आटा (जिसका मधुपर्क में 'रसो असि वानस्पत्यो-----') के साथ भक्षण किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 2.310।

मधुश्रुन्निधन न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.11.16 सा.वे. 1.305 पर आधृत।

मधुद्युत वि. (मधुना द्युत: = युत:) मधु-मिश्रित, मा.श्रौ.सू. 6.1.6.2 (चिनी गई अग्नि पर बिखेरा गया यव)।

मध्य पु. (न.) सात यमों से युक्त मध्य स्वर जिसमें प्रातरनुवाक शस्त्र का पाठ किया जाता है=मध्यम जिसमें स्विष्टकृत् (दर्श) के पहले के मन्त्रों और आज्य भाग के मन्त्रों का पाठ किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.27; आप.श्रौ.सू. 24.1.13, और माध्यन्दिन सवन (सोम.) के सभी पाठ, वही; वि. मध्य (मध्यमेन पर्णेन, भा.श्रौ.सू. 9.3.5; पलाश का पत्ता)।

मध्यत: कारिन् वि. (मध्यत: कृ + णिनि) (कर्मकाण्ड के) मध्य (केन्द्र) में कार्य करने वाला; चार प्रधान ऋत्विज्, पशु की कामना से पशुयाग-अनुष्ठान में कार्यसम्पादन करने वाला एक ऋत्विक्, श्रौ.को. (अं.) 1.889; (मा.श्रौ.सू. 5.2.10.8-11)।

मध्यम पु. (मध्य + म, मध्यान्म:, पा. 4.3.8) मध्यम स्वर (मन्द्र = मृदु एवं उत्तम = सबसे ऊँचा की तुलना में)। दर्श एवं दोनों आज्य भागों के यज्या-पुरोनुवाक्या आदि में प्रधान आहुतियों एवं स्विष्टकृत् का उच्चारण इसी स्वर में होता है, काशिकर, पृ. 86; आश्व.श्रौ.सू. 1.5.25-28; —**स्वर** श्रौतप.नि. 37.312।

मध्यसङ्गृहीत वि. (मध्ये संगृहीतानि) मध्य भाग में सङ्कुचित (सोम-पात्र), का.श्रौ.सू. 9.2.14 (अर्द्धानीतराणि----- मध्यसंगृहीतानि)। **तु—मध्येसङ्ग्राह्य**, श. ब्रा. 'एवमिव ह योषां प्रशंसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तरांसा मध्ये संग्राह्येति', 1.2.5.16।

मध्याग्रोपनत वि. (मध्ये अग्रे च उपनत:) मध्य एवं अग्रभाग में मुड़ा हुआ (यूप के लिए वृक्ष), का.श्रौ.सू. 6.1.8 (मध्ये अग्रे च वक्र:, स.वृ.)।

मध्येनिधन वि. (मध्ये निधनं यस्य, सप्तम्या अलुक्) साम के मध्य में ही (निधन) अन्त वाला (स्वाभाविकवत् अन्त में नहीं), द्रा.श्रौ.सू. 16.4.5 = अन्तर्निधन।

मनस्वती स्त्री. (मनस् + मतुप् + ङीप्) एक ऋचा (तै.सं. 1.8.5.2) भा.श्रौ.सू. 1.9.13; 'मनस्' शब्द से युक्त।

मनुष्यगवी स्त्री. सात मन्त्रों का नाम 'चिदसि मनासि----' आदि, जिनका उच्चारण यजमान उस समय करता है, जब इडोपाह्वान मन्त्रों का उच्चारण उच्च स्वर में किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 4.10.4; किन्तु 'विश्व त्वं भूता—देवीर्देवीरभि-------' इस मन्त्र का नाम (मै.सं. 1.4.1) जिसका यजमान इडा का आह्वान किये जाते समय जप करता है, श्रौ.को. (अं.) 1.379 (शां.श्रौ.सू. 2.3; 2.8; 6.3)।

मनुसव पु. दश आहुतियों वाली एक इष्टि का नाम अग्निगायत्र त्रिवृत् राथन्तर वासन्त (8), इन्द्र (11), वैश्वदेव (12), मैत्रावरुण (पयस्य), बृहस्पति (चरु), सवितृ (12), अग्नि अग्निवैश्वानर (12), अनुमति (चरु), क (1); दिग्वती पुरोनुवाक्या, तै.सं. 7.5.14-15; द्रष्टव्य—मनुस्तोम, जै.ब्रा. II.108।

मनोग्रह पु. दसवें दिन (द्वादशाह के अविवाक्य दिन) आहृत किये जाने वाले प्याले का नाम, आप.श्रौ.सू. 20.10.1।

मनोता स्त्री. 1. एक देवता का नाम, जिसे पशुयाग के अन्तर्गत स्तोकीय होम के बाद एक आहुति दी जाती है। इस आहुति से सम्बद्ध ऋचायें मैत्रावरुण द्वारा उच्चारित की जाती है, श्रौ.को. (अं.) 1.816; जब हृदय का प्रथम अंश काटा जाता है, तो एक आवाज दी जाती है 'मनोतायै हविषो अवदीयमानस्य अनुब्रूहि', पृ. 834, 838; 2. एक सूक्त का नाम जिसका प्रारम्भ 'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता-----' (आप.श्रौ.सू. हौत्र.परि. 2.2.13-15); ऋ.वे. 9.61.1-13 'मनोता के लिए काटे जाते हुए आहुति के भाग से सम्बद्ध पुरोनुवाक्या के रूप में किया जाता है (पृ. 844-46); वरुणप्रघासपर्व में एक पशु-आहुति के साथ केवल एक 'मनोता' होना चाहिए, पृ. 896. जिस समय 'मनोता' सूक्त का पाठ किया जा रहा होता है (उस समय) अध्वर्यु को तीन पशुओं का शोरबा पृथक् पात्रों में उड़ेलना चाहिए (सौत्रामणी), पृ. 925. यदि संगत कर्मों का अनुष्ठान अलग-अलग समय पर हो, तो इस सूक्त की आवृत्ति करनी होती है, पृ. 958।

मनोतृसूक्त न. मैत्रावरुण द्वारा पढ़ा जाने वाला 'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता' यह सूक्त, श्रौ.प.नि. 147.148।

मन्त्र पु. (मन् + ष्ट्रन्, मत्रि गुप्तभाषणे + घञ्) पवित्र पाठ अथवा उच्चारण, ऋ.वे. 1.147.4; वेद का वह भाग जिसमें 'ऋक्', यजुस्, सामन् और निगद समाहित हैं, का.श्रौ.सू. 1.3.1 (ऋचो यजूंषि सामानि निगदा मन्त्राः)। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भागों से इसका वैशिष्ट्य है; यह वेद के एक भाग का संघटक है, आप.श्रौ.सू. 24.1.31; 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' कर्मकाण्ड में प्रयुक्त यज्ञ-सम्बद्ध मन्त्र, हि.श्रौ.सू. 1.1.15. मन्त्र का संकेत प्रारम्भिक (दीक्षात्मक) शब्दों से किया गया है, 1.2.1. यदि मन्त्र छोटा हो और कृत्य लम्बा, तो मन्त्र का जप कृत्य के प्रारम्भ में किया जाता है, 1.2.3.। मन्त्र के अन्त का दूसरे कर्म के आदि से संयोग होता है 'मन्त्रान्तैः कर्मादिः सन्निपात्योऽभिधानात्', का.श्रौ.सू. 1.3.5; भा.श्रौ.सू. 1.2.2; सामान्य रूप से मन्त्रों का कर्मकाण्ड के कार्यों एवं अवसरों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, तु रिली.ए. फिला. आफ वेद—310-12।

मन्त्रकृष्टवत् क्रि. वि. (मन्त्रेण कृष्टं तद्वत्, मन्त्रकृष्ट + वति) पवित्र मन्त्रों के साथ अनुष्ठित हल चलाने की विधि से, का.श्रौ.सू. 18.2.11 (मण्डकावकावेतशाखा) वैणो बध्वाऽवकर्षति मन्त्रकृष्टवत्समुद्रत्य त्वेति प्रत्यृचम्)।

मन्त्रप्रोक्षण न. (मन्त्रेण प्रोक्षणम्) 'दधिक्राव्णो' आदि ऋचाओं का उच्चारण करते समय (शुद्धीकरण के लिए) स्वयं अपने ऊपर छिड़काव करना, श्रौ.प.नि. 47 = 366 = मन्त्रमार्जन।

मन्त्रवचन न. (मन्त्रस्य वचनम्) पवित्र मन्त्र का उच्चारण, का.श्रौ.सू. 1.7-8 (एकद्रव्ये कर्मावृत्तौ सकृत्)।

मन्त्रान्त (मन्त्रस्य अन्तः) पु. विहित पवित्र मन्त्र की समाप्ति, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.4।

मन्त्रावहत वि. (मन्त्रेण अवहतम्) (वह ढोल) जिसे मन्त्र ('एषा वा' आदि, वा.सं. 9.12)- वाचन करते समय बजाया जाता है। का.श्रौ.सू. 14.4.9 (वाजपेय)।

मन्थ् घर्षण द्वारा अथवा अरणियों (काष्ठ के खाँचों) को मथकर अग्नि उत्पन्न करना, आप.श्रौ.सू. 5.10.7; मेक्षण से आशिर का मन्थन करना।

मन्थति (मन्थ् + लट् प्र.पु.ए.व.) अग्नि को मथकर निकालता है; (सत्र के लिए व्यवस्था का क्रम हैं : गृहपति मध्य में एवं अन्य ऋत्विज् दो वर्गों में विभाजित होकर उसके दक्षिण एवं उत्तर), का.श्रौ.सू. 12.1.16 (अग्निं चेष्यमाणाः समारोह्य गृहपतिर्मध्ये मन्थत्यर्द्धश इतरे दक्षिणोत्तराः)। --

---

अध्वर्यु <- उद्गाता <- गृहपति -> ब्रह्मा -> होता -> ---

(वैकल्पिक रूप से वे गृहपति के चारों ओर बैठकर अग्नि को मथकर निकाल सकते हैं, 'गृहपतिं वा पर्युपविश्य मन्थन्ते', का.श्रौ.सू. 12.2.4)।

मन्थ पु. घृतादिमिश्रित यव (का आटा), आप.श्रौ.सू. 6.31.5; दही में मिला हुआ, यह दधिमन्थ कहलाता है; मधुमिश्रित मधुमन्थ; विलोडित या फेंटा हुआ पेय, मा.श्रौ.सू. 1.7.6.9; चि.भा.से. अर्धपिष्ट यव में ऐसी गाय का दूध मिलाकर जिसका अपना कोई बच्चा न हो (अभिवान्या) एवं ईख की एक छड़ी से विलोडन कर तैयार की गई दलिया, आप.श्रौ.सू. 8.14.14-15 (महाप्रियङ्गु)। जल अथवा नवनीत में विलोडित यव की दलिया भी, 12.4.13 (सोम); इसी तरह मधु, दधि एवं विभिन्न द्रव्य, विलोडित दलिया का उल्लेख 'सवस्' के लिए हुआ है, 22.26.1।

मन्थन पु. (मन्थ् + ल्युट्) एक मन्त्र का नाम, अर्थात्, इतः प्रथमं जज्ञे', जिसका उच्चारण आहवनीय में अग्निमन्थन के

लिए किया जाता है, यदि अग्निहोत्र आहुति देने को पहले ही आग बुझ जाय, श्रौ.को. (अं.) 1.174; बौ.श्रौ.सू. 13.7 एवं 27.11।

मन्थिपात्र न. (मन्थिसञ्ज्ञकं पात्रम्) मन्थिसंज्ञक पात्र, भा.श्रौ.सू. 13.1.11।

मन्द्र पु. कोमल आवाज, यमों में निबद्ध, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.25. तीन मूल (प्राथमिक) स्वरों (स्थानों) में एक। अन्य दो हैं मध्यम और उत्तम। इष्टि में शंयु के बाद वाचन 'मन्द्र' स्वर में किया जाता है, 1.5.26. उसी प्रकार आज्यभाग (दर्श) के पूर्व एवं (सोम.के) प्रात: सवन में भी, आप.श्रौ.सू. 24.1.12; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 29.238।

मन्धुक पु. एक वृक्ष का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.203 (यदि कोई युद्ध में रत हो तो तदर्थ अनुष्ठित एक इष्टि के लिए ईंधन इस वृक्ष से प्राप्त किया जाता है)।

मयूख वि. शंकु = खूँटी (की तरह) हत्थे से युक्त, मा.श्रौ.सू. 8.14.1 (पोता का चमस); पु. एक प्रकार की खूँटी, जो उदुम्बर काष्ठ से निर्मित होती है और जो संख्या में तीन होती है, भा.श्रौ.सू. 11.5.13 (प्रवर्ग्य)।

मयोभू पु. 'शन्नो देवी:------' से प्रारम्भ होने वाले सूक्त (अ.वे. 1.6) का नाम, जिसका उच्चारण सभी पुरोहितों द्वारा वपा होम के बाद चात्वाल (संज्ञक गड्ढे) पर अपने ऊपर जल छिड़कते समय किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 1.828 (आपो हिष्ठा-----' से प्रारम्भ होने वाले शम्भु-संज्ञक प्रथम सूक्त के बाद यह दूसरा सूक्त है, जिसका उच्चारण किया जाता है), अ.वे. 1.5।

मरुतां भूति न. एक साम का नाम। जब बछड़ा (वत्स) प्रवर्ग्यदोह के लिए छोड़ दिया जाता है, उस समय अध्वर्यु को इसके स्वयंकृत गायन का उपसंहार करना चाहिए, ला.श्रौ.सू. 1.6.27-37।

मरुतां संस्तोभ न. एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 6.4.8।

मरुत्वतीय पु. एक सोमाहुति का नाम [जिसे ऋतुग्रह में भरा जाता है, का.श्रौ.सू. 12.13 (उक्थ्य प्याले के पूर्व या पश्चात् आहुति दी जाती है);] (द्वि.व.) (माध्यन्दिन = दोपहर के सवन में) इन्द्र-मरुतों के लिए दो प्याले, भा.श्रौ.सू. 14.2.1; चि.भा. से : माध्यन्दिन सवन में इन्द्र मरुत्वत् के लिए समर्पित, सोम के तीन आहरणों के नाम। देवता को प्रथम दो प्याले अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता द्वारा अर्पित किये जाते हैं। उसके बाद तृतीय प्याला उस समय भरा जाता है, जब होता 'मरुत्वतीयशस्त्र' का वाचन कर रहा होता है, आप.श्रौ.सू. 13.2.3-4; 8.1-2; का.श्रौ.सू. 10.3.3।

मरुत्वतीयनिवित् (स्त्री.) माध्यन्दिन सवन के समय होता द्वारा पढ़े जाने वाले 'मरुत्वतीय शस्त्र' के 'निविदाधानीय' में अन्तर्निवेशनीय (बीच में डाले जाने वाली) अभिव्यञ्जनायें। अध्वर्यु को 'जनिष्ठा उग्र------' (ऋ.वे. 10.73) से प्रारम्भ होने वाले 'निविदाधानीय सूक्त' का पाठ करना चाहिए। ऋचाओं की संख्या के आधे से एक अधिक ऋचा का वाचन करने के बाद उसे बीच में 'निवित्' को निविष्ट करना चाहिए। तृच् में उसे निवित् का वाचन प्रथम ऋचा के बाद करना चाहिए। ऋचाओं की सम संख्या की स्थिति में उसे ऋचाओं की आधी संख्या का वाचन करने के पश्चात् 'निवित्' को डालना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) I.ii.685।

मरुत्वतीयप्रगाथ पु. 'प्र वो इन्द्राय बृहते---' से प्रारम्भ होने वाले (ऋ.वे. 8.89.3-4) और मरुत्वीय शस्त्र में उच्चारित की जाने वाली ऋचाओं का युग्म, श्रौ.को. (अं.) II.685।

मरुद्वती स्त्री. (मरुत् + मतुप् + ङीप्) 'मरुत्' शब्द से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.13,91।

मर्कटक न. जुते हुए चयन-स्थल पर बोये जाने वाले विशिष्ट बीजों का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.19.13।

मल्हा स्त्री. गल-कम्बल (ललरी) पर झब्बा से युक्त अक्षतयोनि (अजातवत्सा) गाय, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.13।

मसूस्य न. अनाज का एक प्रकार, मा.श्रौ.सू. 9.2.2.30।

महत् (न.) आकाश, अन्तरिक्ष, आप.श्रौ.सू. 6.10.2 (हुत्वा महद् अभिवीक्षते); वि. बड़ा, महान्।

महदुक्थ न. (महत् च तदुक्थम्) महान स्तोत्र (जिसका वाचन होता गवामयन के अन्तर्गत 'महाव्रत दिन' के महाव्रत सामन् के उत्तरस्वरूप करता है) = बृहदुक्थ, श्रौ.को. (सं.) II.240 (महाव्रत)।

महर्त्विज् पु. (महान् चासौ ऋत्विक्) मुख्य पुरोहित; (होता, अध्वर्यु, उद्गाता एवं ब्रह्मा), आप.श्रौ.सू. 14.24.6; भा.श्रौ.सू. 12.1.2; इन्हें 'आद्यर्त्विज्' भी कहा जाता है।

महाग्रह पु. (महान् चासौ ग्रहः) बड़ा पात्र या धानी; 'सारस्वतश्च मे पौष्णश्च मे' इस मन्त्र द्वारा सङ्केतित राजसूय यज्ञ के प्याले (ग्रह) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 25.13:25।

महादिवाकीर्त्य न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 4.6.14 सा.वे. 5.2 पर आधृत।

महानाम्नी स्त्री. 1. अनामिका = अंगुष्ठ से चतुर्थ अङ्गुलि (अथैनत् प्राशित्रहरणम् अङ्गुष्ठेन च महानाम्न्या च उपसङ्गृह्य अतिहाय दातः पूर्वं जिह्वाग्रे निदधाति), बौ.श्रौ.सू. 3.25; 5;2. विदा मघवन' शब्दों से प्रारम्भ होने वाले तीन सामवेदीय तृचों (9 ऋचाओं) के समूह का नाम; इन्हें शक्करी ऋचायें भी कहा जाता है; इसका गायन विभिन्न अवसरों पर किया जाता है (अहीन), ला.श्रौ.सू. 7.5.9. यह दो तत्त्वों से निबद्ध होता है (बनता है), पहले तत्त्व को 'शाक्कर' कहते हैं एवं दूसरे को अशाक्कर (जो स्तोभ से निबद्ध माना जाता है), जैसे कि ऊधस्, पुरुष, पञ्च.ब्रा. 13.4.1 कैलण्ड, पृ. 317; द्रा.श्रौ.सू. 20.1.2-9।

महापितृयज्ञ = पिण्डपितृयज्ञ पु. यह विभिन्न नामों से जाना जाता है। यथा—महापिण्ड अथवा महायज्ञ, बौ.श्रौ.सू. 17.61; साममेध पर्व (चातुर्मास्य) में समाहित।

महाभिषव पु. (महान् चासौ अभिषवः) आहुति के लिए प्यालों को भरने के लिए रस निकालने के लिए सोम के डण्ठलों का बड़ा निष्पीडन (दबाना)। सवन-क्रिया (दबाने की प्रक्रिया) अध्वर्यु और उसके सहायकों प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता द्वारा तीन बारी के तीन चक्रों में किया जाता है और सवन-प्रस्तर के चोटों (प्रहारों) की संख्या क्षुल्लकाभिषव की तरह सीमित नहीं होती अर्थात् असीमित होती है। निष्पीडन की क्रिया सोम याग में दिन में तीन बार होती है, आप.श्रौ.सू. 12.9.7; गीली एवं जीर्ण डण्ठलों को 'सम्भरणी' नाम वाले पात्र में इकट्ठा किया जाता है और उसके बाद उसे 'आधवनीय' पात्र में स्थानन्तरित कर दिया जाता है, जिसमें पानी भरा रहता है। उसके बाद उद्गाता ऐसे 'द्रोणकलश' को लाता है, जिसके ऊपर एक ऊन का छनना लगा हो और द्रोणकलश को सोम-लताओं से ढके हुए चार सवन-प्रस्तरों के ऊपर रख देता है। होता का जल से युक्त चमस यजमान द्वारा पकड़ा जाता है और उन्नेता द्वारा 'आधवनीय' से आहृत सोम रस से (वह चमस) भर दिया जाता है। यजमान होता के चमस के लिए इसे 'दशापवित्र' के माध्यम से द्रोणकलश में एक सतत धारा में सोम उड़ेलता है। द्रोणकलश में विद्यमान सोम 'शुक्र' के रूप में जाना जाता है, का.श्रौ.सू. 9.5.15. इससे विभिन्न प्यालों को आपूरित किया जाता है : अन्तर्याम, ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण, शुक्रामन्थिन्, आग्रयण, उक्थ्य, आश्विन, एवं ध्रुव।

महामुखी वि. (महत् मुखं यस्याः सा) अधिक चौड़े अथवा बड़े मुख वाला (एक मृत्पात्र); ('उखाकपालम् अवधापयति'), का.श्रौ.सू. 16.7.8।

महारात्र (सप्त.) 1. रात्रि के अन्त में, मा.श्रौ.सू. 2.5.3.16; रात के अवसान में, बौ.श्रौ.सू. 7.1; तड़के उषाकाल में, भा.श्रौ.सू. 13.1.1; उस समय जब की अँधेरा बाकी हो, 9.11.3।

महावालभिद् पु. ऋचाओं के पादों, अधर्चों और ऋचाओं के स्थान-परिवर्तन से युक्त एक विशेष प्रकार का वाचन, काशिकर 102।

महावीर पु. मिट्टी के एक ऊर्ध्वाकार पात्र का नाम, जिसमें प्रवर्ग्य के लिए आज्य को उबाला जाता है, आप.श्रौ.सू. 15.2.14 में इसे घर्म भी कहा गया है। यह ऊँचाई में एक बित्ता होता है और इसमें तीन या पाँच उभार होते हैं। यह काष्ठीय सोम के प्याले (वायव्य) से मिलता-जुलता है, भा.श्रौ.सू. 11.2.22-24. प्रवर्ग्य में एक मुख्य एवं दो द्वितीयक (गौण) जिन्हें 'अप्रणीय' भी कहते हैं, आरक्षित के रूप में रखे जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 15.6.11, इन्हें वधू के नये वस्त्रों एवं गवेधुका के बीजों से चमकाया जाता है, सड़सी की एक जोड़ी से पकड़ा जाता है और गार्हपत्य के ऊपर घोड़े की लीद से धूमिल (धूमयुक्त) किया जाता है। सोम राजा की तुलना में यह 'सम्राट्' के रूप में जाना जाता है, आप.श्रौ.सू. 15.5.7।

महावीर

महावेदि स्त्री. (महती चेयं वेदिः) सोम-याग के लिए महावेदि, जिसे सौमिक भी कहा जाता है। इसका निर्माण अध्वर्यु प्रातःकालीन प्रवर्ग्य एवं उपसद के बाद द्वितीय 'उपसद्' में करता है। महावेदि = विषम चतुर्भुज होती है, जिसकी माप 36 कदम (प्रक्रम) पूर्व से पश्चिम, 30 (या 33) प्रक्रम उत्तर से दक्षिण, पश्चिम में (शाला के सम्मुख) एवं 24 प्रक्रम उत्तर से दक्षिण पूर्व में। इस क्षेत्र को शङ्कुओं से नापा जाता है : आहवनीय के पूर्व 6 (अथवा 3) प्रक्रम-कदम की दूरी पर 'अन्तःपात्य' संज्ञक कील गाड़ दी जाती है, जो मध्य रेखा के 'स्पन्द्या' से पूर्व में 'यूप' के गर्त में गाड़ी गयी कील (यूपावतीया) से जुड़ी होती है। पश्चिम की दोनों कीलें, जो अन्तःपात्या से 15 कदम की दूरी पर होती हैं, वे श्रोणी को चिह्नित करती है और पूर्व में यूपावतीय से 12 कदम की दूरी पर स्थित दोनों कीलें 'अंसों' (कन्धों) को चिह्नित करती है, बौ.श्रौ.सू. 6.22; आप.श्रौ.सू. 11.4.11-16; का.श्रौ.सू. 8.3.7-12। महावेदि के भीतर 'सदस्', 'हर्विधान-मण्डप', एवं उत्तरवेदि, आप.शु.सू. 2.5. सोमिक महावेदि पाशुक महावेदि से भिन्न होती है।

महावैश्वदेवग्रहण न. (महावैश्वदेवस्य ग्रहणम्) 'महावैश्वदेव' सोम-के प्याले को भरना, का.श्रौ.सू. 10.6.2. (अभक्षितेन महावैश्वदेवग्रहणम्-------)।

महावैष्टम्भ न. एक साम का नाम (पञ्च.ब्रा. 12.4.10) सा.वे. 1.261।

महाव्याहृति स्त्री. (महती व्याहृतिः) (तीन) महान् मन्त्र, 'भूर्भुवः स्वः', का.श्रौ.सू. 2.1.6, शां.श्रौ.सू. 2.10.3।

महाव्रत न. 1. एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.1 (वेदि की पाँचवी अर्थात् अन्तिम तह में); 2. एक कृत्य का नाम जो गवामयन सत्र के अन्तिम से पूर्व दिन सम्पन्न होता है। इसमें महाव्रत नाम का एक और प्याला होता जिसके साथ ही महाव्रत नाम वाले साम का गायन होता है, जिसके अनन्तर होता द्वारा 'महदुक्थ शस्त्र का वाचन किया जाता है। प्रजापति के लिए एक पशु की आहुति दी जाती है। सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की रुचिकर विशिष्टतायें है, जिनका अनुष्ठान महाव्रत के दिन होता है। पृष्ठस्तोत्र के समय एक ब्राह्मण वीणा बजाता है। 'उद्गाता' उदुम्बर के आसन पर बैठता है। होता एक झूले पर, अध्वर्यु एक फलक पर, अन्य ऋत्विज्, गायकगण एवं अनुष्ठान करने वालों की पत्नियां घास पर, आप.श्रौ.सू. 21.17.10; 12-15। ब्राह्मण प्रशंसा करता है (अभिगर) एवं शूद्र अनिष्ट भाषण करता है (प्रतिगर) ब्राह्मण एवं शूद्र अदला-बदली-पूर्वक अनुष्ठान करने वालों की प्रशंसा एवं गालीं देते हैं, अग्नीध्र-मण्डप के पश्चिम में आर्य एवं शूद्र का नाटकीय युद्ध होता है; एक वेश्या एवं एक ब्रह्मचारी एक दूसरे की निन्दा करते हैं (का.श्रौ.सू. 13.3.6)। एक क्षत्रिय रथ पर आरोहण करता हुआ चक्कर लगाते हुए (परिगमन करते हुए) आग्नीध्रीय के समीप लटकते हुए चर्म को शर से बींधता है। एक स्त्री एवं एक पुरुष वास्तव में मार्जालीय के दक्षिण एक पर्दायुक्त शाला में संभोगरत होते हैं ('मार्जालीयं दक्षिणेन परिवृते मिथुनं सम्भवति'), का.श्रौ.सू. 13.3.9। दुन्दुभियां बजाई जाती हैं, जिनमें वह (दुन्दुभि) भी समाहित है, जिसे भूमि में एक गड्ढा खोदकर और उस पर चर्म लगाकर बनाया जाता है। पत्नियां गायन में सम्मिलित होती है और कोई और कुछ वाद्ययन्त्रों को बजाती हैं (गोधावीणाकाः काण्डवीणाश्च पत्न्यो वादयन्ति, का.श्रौ.सू. 13.3.21)। दासी युवतियां भी नृत्य करती हैं, आप.श्रौ.सू. 21.19.15-16; तै.आ. 5.1.5.1।

महाहविस् न. (महत् च तद् हविः) 'महान् हवि'; साकमेध पर्व की प्रधान आहुति, जिसमें आठ देवताओं के लिए आठ आहुतियां समाहित हैं : पाँच तो सभी चातुर्मास्यों के लिया सर्वसाधारण है, छठीं इन्द्र और अग्नि के लिए एक द्वादश-कपाल पुरोडाश, सातवां महेन्द्र के लिए चरु और आठवीं आहुति विश्वकर्मा के लिए, आप.श्रौ.सू. 8.21.1; आश्व.श्रौ.सू. 2.18.18।

महिम पु. (ग्रह) द्वितीय सोम-आहरण का नाम, जिसे 'अश्वमेध में 'शक्ति' कहा जाता है, आप.श्रौ.सू. 20.12.6।

महिषी स्त्री. अभिषिक्त (प्रधान) रानी = पट्टमहिषी। का.श्रौ.सू. 20.5.15 (अश्वमेघ यज्ञ)

महीया स्त्री. अपां सोममृता अभूम-----' (ऋ.वे. 8.48.3) इस ऋचा का नाम, जिसका उच्चारण होता एवं यजमान द्वारा अवभृथ में जल से बाहर आने एवं उन्नेता का अनुसरण करते समय किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 14.21.13-23.12।

महेन्द्र पु. माध्यन्दिन सवन में एक प्याला इन्द्र को अर्पित किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 13.8.4.6 (सोम.)।

मांसतस् क्रि.वि. (मांस + तसिल्) चर्म के मांसल भाग पर (लोमतः निरूप्य मांसतः अवहन्ति), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.17।

मांसधौत वि. (मांसभागेन धौतम्) (हाथ के) मांसल भाग से धोया गया या साफ किया गया, आप.श्रौ.सू. 6.12.3 (न मांसधौतस्य देवा भुञ्जते दर्भैरग्निहोत्रहोवणीं प्रक्षालयति)।

मांससंहित वि. (द्वि.व.) (मांसं संहितम् ययोस्ते) जिनके मांस आपस में मिले हुए हों, का.श्रौ.सू. 7.3.17 (कृष्णाजिने)।

माघीपक्ष पु. माघ मास का शुक्ल पक्ष, मा.श्रौ.सू. 7.2.4.13।

माघीपक्षयजनीय पु. माघी पक्ष (पखवाड़े) के पश्चात् प्रथम शुभ दिन, का.श्रौ.सू. 15.1.6 (कर्क; शुभ दिन जब माघ की पूर्णिमा के बाद एक पक्ष = पखवाड़ा बीतता है)।

मातृकापूजन न. (मातृकायाः पूजनम्) मातृ-देवी की पूजा, श्रौ.प.नि. 49.368।

माधुच्छन्दस न. (मधुच्छन्दसा दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.2.17 सा.वे. 1.65 पर आधृत; 1.302 पर पञ्च.ब्रा. 11.9.6 भी।

माध्यन्दिनपवमानस्तोत्र न. (माध्यन्दिने पवमानस्तोत्रम्) आठ ऋचाओं से युक्त पवित्र करने वाला (पवमान) स्तोत्र, जिसे आवृत्ति के द्वारा पन्द्रह तक कर लिया जाता है। उसका गायन माध्यन्दिन सवन के प्रारम्भ में किया जाता है। बौ.श्रौ.सू. 8.2

मान न. (मा + ल्युट्) एक माप, मा.श्रौ.सू. 1.5.6.2 (त्रिंशत् मानं दक्षिणा)।

मानकर्मन् न. (मानस्य कर्म) (यज्ञीय वेदियों को) नापने का कार्य, मा.श्रौ.सू. 10.3.4.1।

मानयोग पु. (मानस्य योगः) माप, बौ.शु.सू. 1.96।

मानव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.14 सा.वे. 1.54 पर।

मानवी स्त्री. 'धाय्याओं' के रूप में प्रयुक्त दो ऋचायें, श्रौ.को. (अं.) I.ii.542।

मानस पु. (मनस् + अण्) द्वादशाह के दसवें दिन की समाप्ति पर मन में आहृत घूंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 7.2.3.8; न. मन में गाये जाने वाले एक स्तोत्र का नाम, ला.श्रौ.सू. 3.8.1; 5.11.13; वैता.श्रौ.सू. 33.25; शां.श्रौ.सू. 10.13.26; आश्व.श्रौ.सू. 8.13.3, निदा.सू. 4.6:20; दाशरात्र नाम वाले (अहीन) सोमयाग के दसवें दिन 'पत्नीसंयाज' के पश्चात् 'सदस्' में इसका गायन सम्पन्न होता है।

मारुत न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.12.8, सा.वे. 1.359 पर आधृत;—**०होम** मरुतों को (देय) आहुतियां, युधि 71।

मारुती स्त्री. (मरुत् + अण् + ङीप्) 'आमिक्षा' मरुतों को दी जाने वाली जमाये गये दुग्ध (आमिक्षा) की आहुति, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.4; उत्तरवेदि के दक्षिण ओर निर्मित एक प्रकार की वेदि, श्रौ.प.नि. 85.476 प्रतिप्रस्थाता के लिए, 93.489 भी द्रष्टव्य।

मार्ग न. (मृग + अण्) हिरण का मांस, भा.श्रौ.सू. 4.4.5-6।

मार्गीयव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.11 सा.वे. 1.115 पर।

मार्जन न. (मृज् + ल्युट्) प्रस्तर-संज्ञक घास पर पानी उड़ेलना एवं उसके बाद 'इडा' खाने वालों (भक्ष्य) के ऊपर इसे छिड़कता है; शिर पर जल उड़ेलना (रु.), आप.श्रौ.सू. 3.3.1; आश्व.श्रौ.सू. 1.8.1-2; पुरोहितों का उनके इडा को खाने के पश्चात् (शुद्धीकरण के लिए) अपने शिरों के ऊपर जल छिड़कना (दर्श), भा.श्रौ.सू. 3.2.6; 4.16.1।

मार्जनी स्त्री. (मृज् +ल्युट् + ङीप्) अपना मार्जन करते समय उच्चारित की जाने वाली ऋचा, भा.श्रौ.सू. 4.16.1, तुल. 3.2.6 'मनो जूतिर्जुषताम्' आदि; तै.सं. 1.5.3.2।

मार्जालीय पु. आठ धिष्ण्याओं में एक, एक मिट्टी का टीला जहाँ यज्ञीय पात्र साफ किये जाते हैं। यह सदस् के पास, अग्नीध्र के सामने, महावेदि के दक्षिण तरफ, वेदि के आधा अन्दर और आधा बाहर स्थित होता है। इसके उत्तरभिमुख एक मण्डप एवं एक द्वार तथा दक्षिणाभिमुख एक आसन होता है, बौ.श्रौ.सू. 6.27; आप.श्रौ.सू. 11.14.6; श्रौ.को. (सं.) II.543।

मासनाम न. (बहु.व.) (साकमेध के स्विष्टकृत् के पूर्व दी जाने वाली) महीनों के नाम से युक्त आहुतियां, मा.श्रौ.सू. 1.7.5-34।

मासर न. पके चावल के झाग एवं चूर्णीकृत यव (तरी) के सम्मिश्रण से प्राप्त पेय, श्रौ.को. (अं.) I.903. इसमें त्रिफला, अदरक एवं जायफल का अर्क भी होता है। इस पेय को एक पात्र में तीन दिन तक किण्वन के लिये रखा जाता है उसके बाद इसमें दूध मिला दिया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त की गयी सुरा की सौत्रामणी में शुद्धीकरण के बाद

आहुति दी जाती है, का.श्रौ.सू. 19.1.20 (ओदनौ चूर्णमासरैः संसृज्य----त्रिरात्रं निदधाति)। आप.श्रौ.सू. 19.4.7 के अनुसार 'ऋजीष' की तरह तैयार किया जाता है और इसकी व्याख्या 'बल्कस' (सुरा की तलछट) के रूप में की गई है; तरी = धान के दाने जो भूने जाने पर फूटकर खुलते नहीं हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.903, बौ.श्रौ.सू. 17.31-38; युधि 125।

माहित्र न. तीन ऋचाओं के एक समूह का नाम 'महि त्रीणाम्-----' (ऋ.वे. 10.185.1) आदि, जिनका उच्चारण प्रातः अग्निहोत्र के पश्चात् प्रार्थना के रूप किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 6.4.4; श्रौ.को. (अं.) 1.107 (अग्न्युपस्थान)।

माहेन्द्र वि. (महन्द्रो देवता अस्य, महेन्द्र + अण्) सोम के महेन्द्र-प्याले से सम्बद्ध (जिसके बाद दोपहर के बाद 'अतिग्राह्य' संज्ञक प्याले का क्रम होता है), श्रौ.को. (सं.) II.558।

मितालम्भन न. (मितस्यालम्भनम्) नापे गये सोम के स्पर्श करने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 9.4.8 (यत्र इति मितालम्भनम्)।

मित्रविन्देष्टि स्त्री. धनादि प्राप्ति के लिए (विहित) इष्टि, श्रौ.को. (सं.) I.417।

मिथुन न. मार्जालीय के दक्षिण एक पर्दायुक्त (परिवृत, घिरी हुई) झोपड़ी में सम्पन्न होने वाला पुरुष और स्त्री का सम्भोग, का.श्रौ.सू. 13.3.9 (गवामयन में महाव्रत-दिन); स्त्री एवं पुरुष का युग्म (जोड़ा), जै.ब्रा. II.51।

मिन्दा स्त्री. 1. एक ऋचा का नाम 'यन्म आत्मनो मिन्दाभूत्-----' जिसका उच्चारण आहवनीय की प्रार्थना के रूप में 'कार्यसम्पादक ऋत्विजों द्वारा (आप.श्रौ.सू. 13.17.8; बौ.श्रौ.सू. 8.17) तृतीय सवन में धाना (ओं) के भक्षण के बाद किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 2.793; 2. हारियोजन ग्रह के पहले अथवा बाद में अर्पित की जाने वाली एक आहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) II.791; बौ.श्रौ.सू. 9.20 (अवान्तर दीक्षा-प्रायश्चित्त); 3. (द्वि.व.) दो आहुतियों का नाम, जो अग्निहोत्र के लिए अग्नि (यों) के वितरण के पूर्व सूर्य के डूब जाने के प्रायश्चित्त के रूप में आहवनीय पर अर्पित की जाती है, वैखा.श्रौ.सू. 20.12, श्रौ.को. (अं.) 1.146; वाराहपरिशिष्ट इन दोनों प्रायश्चित्तिक आहुतियों का विधान आहुतियों को अर्पित करने के पूर्व सूर्यास्त होने की स्थिति में करता है (पृ. 152), उस स्थिति में भी यदि छोटे भाई ने अपने बड़े भाई के सोम याग का अनुष्ठान करने के पहले ही इसका अनुष्ठान कर लिया हो (पृ. 195); यदि कोई आहुति पूर्णरूप से जल गई हो, तो वह इसे जल में फेंक देता है और इन दो आहुतियों को प्रदान करता है (पृ. 461) यदि आहुतियां दूषित हो गई हों (पृ. 466) यदि किसी विशेष प्रायश्चित्त का विधान न किया गया हो, तो इसे मनस्वती एवं होतृ—आहुतियों के साथ अर्पित किया जाता है (पृ. 474)।

मिन्दाहुति स्त्री. (मिन्दया आहुति) 'मिन्दा' नाम के चम्मच से अग्नि के लिए एक प्रायश्चित्तिक आहुति। श्रौ.को.(सं) II. 673, द्रष्टव्य मिन्दा

मिर्मिर वि. आँखों को मुलमुलाना (बृहस्पति सव के लिए होता की अर्हता), आप.श्रौ.सू. 22.7.2; बौ.श्रौ.सू. 18.1:4; हि.श्रौ.सू. 17.3.7 (भाष्य—अक्षिणी पुनःपुनः उन्मीलति); युधि 128।

मिश्र वि. संयुक्त, आपस में मिला हुआ (मिश्रित) (चयन के पूर्व पशु याग, बौ.श्रौ.सू. 10.11 (पशुयाग में, जिसमें सभी पशु-बलि वायु एवं प्रजापति के लिए होती है)।

मीमांसा स्त्री. (मान् + सन् + अ + टाप्, मान्बध पा० 3.1.6, अ प्रत्ययात् पा. 3.3.120) कर्मकाण्डीय वार्तालाप अथवा विचार, जै.ब्रा. III.113. 'उदिते होतव्यनुदिते होतव्यममिति मीमांसन्ते कौषी. ब्रा. 2/9'।

मुक्तशिख वि. (मुक्ता शिक्षा यस्य) वह व्यक्ति जिसकी चोटी ढीली हो गई हो या छूट गई हो, मा.श्रौ.सू. 11.1.1.2 (दक्षिणां प्रतिगृह्णीयात्----------नाशुचिर्-------- न मुक्तशिखः)।

मुखवाद पु. किसी विशिष्ट ईंट का मुख किस दिशा में हो, इसका संकेत करने वाली अभिव्यञ्जना, आप.श्रौ.सू. 16.21.10।

मुखसम्मार्ग पु. (मुखस्य + सम्मार्गः, सम्मार्ग = सम् + मृज् + घञ्) मुँह धोना, श्रौ.प.नि. 27.218।

मुखसम्मिता वि. (स्त्री.) (मुखेन सम्मिता) इडोपाह्वान के लिए बैठे हुए अध्वर्यु के मुख की ऊँचाई पर पकड़ी गई ईडा (—पात्री), बौ.श्रौ.सू. 3.28:25।

मुख्य पु. सत्र में प्रधान, गृहपति, शां.श्रौ.सू. 13.14.4।

मुञ्जयोक्त्र न. (मुञ्जस्य योक्त्रम्) मुञ्ज (मूँज) की घास से निर्मित एक डोरी अथवा जुअे की रस्सी, का.श्रौ.सू. 16.3.6 (उखाकरण)।

मुञ्जावलोपः पु. (मुञ्जस्य अवलोपः = खण्डः) मूँज का एक टुकड़ा, मा.श्रौ.सू. 1.5.3.1।

मुष्कर वि. बधिया न किया हुआ, आप.श्रौ.सू. 16.7.1 (उखासम्भरण में पशु); प्रजनन-शक्ति-सम्पन्न (बैल), आप.श्रौ.सू. 3.15.7 (दक्षिणा के रूप में दिया जाने वाला); मा.श्रौ.सू. 1.5.6.9।

मुष्टि पु. (स्त्री.) वेदि के भीतर चारों ओर बिखेरने के लिए एक मुट्ठी (बन्द मुट्ठी भर) दर्भ-संज्ञक घास। मुष्टियां विषम संख्या में होनी चाहिए, आप.श्रौ.सू. 1.4.2; गट्ठरों अथवा पूलियों (पुलिन्दों) में (निधन) बाँधी जाी हैं, वही 2; किन्तु प्रस्तर विषम संख्या में हो सकता है, नहीं भी हो सकता, वही 4; भा.श्रौ.सू. 1-3.13.22; मुट्ठीभर अनाज भी, आप.श्रौ.सू. 1.18.2 (दर्श)।

मुष्टिकरण न. मुष्टि के आकार में हाथ की अँगुलियों को मोड़ना, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.26 (सोम०); दीक्षा के लिए विहित हस्तकौशल के अंग के रूप में दोनों मुट्ठियों को बन्द करना, यह कृत्य यजमानकतृक है (अर्थात् इसे यजमान करता है), आप.श्रौ.सू. 16.11.10; मुष्टिकृ, बौ.श्रौ.सू. 6.5; का.श्रौ.सू. 7.4.4 (अत्र वा मुष्टिकरणवाग्यमने)।

मुष्टिकर्षण न. (मुष्टेः कर्षणम्) (अवान्तर दीक्षा में) अधिक (खूब) कसकर मुट्ठी बन्द करना, भा.श्रौ.सू. 12.2.4।

मुष्टिमेखल न. (मुष्टिश्च मेखला च) मुट्ठी एवं करधनी (मेखला), का.श्रौ.सू. 8.2.4 (---------गाढतरं मुष्टिमेखले कुरुते)।

मुष्टिविसर्जन न. (मुष्टेः विसर्जनम्) 'दीक्षा' के अन्त में बन्द मुट्ठी को खोलना, भा.श्रौ.सू. 12.18.10 (सोम)।

मुसल पु. (न.) (मुषल) मूसल, सामान्य रूप से यह खदिरकाष्ठ से निर्मित होता है, का.श्रौ.सू. 1.3.36 भाष्य, इसका प्रयोग अनाज को कूटने के लिए किया जाता है (दर्श), आप.श्रौ.सू. 1.19.8; लम्बाई में एक हाथ (अथवा आकार भिन्न भी हो सकता है, वैखा.श्रौ.सू. 111.9।

मूत पु. न. बुनी हुई टोकरी, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.10 (त्र्यम्बकेष्टि); का.श्रौ.सू. 5.10.21; जिसमें धान अथवा पका भोजन रखा जाता है, भा.श्रौ.सू. 8.22.3 (चातुर)।

मूतकार्य वि. (वेद-संज्ञक घास का गट्ठर) बुनी हुई टोकरी के रूप में निर्मित; का.श्रौ.सू. 1.3.23 (कुशमुष्टिं सव्यावृत्तं वत्सजानुं त्रिवृतं मूतकार्यं वा)।

मूतप पु. (?) एक वनस्पति का नाम, जिसका प्रयोग वैदिक कर्मकाण्ड में फैलाने (आस्तरण) के लिए नहीं किया जाता, श्रौ.को. (अं.) 11.866 (मा.श्रौ.सू. 8.2)।

मूत्रकृतवासस् न. मूत्रत्याग किया हुआ वस्त्र (वर्जयेत), का.श्रौ.सू. 4.2.2।

मूर्छति (मूर्च्छ् + लट् प्र.पु.ए.व.) संघनित करता है (स्वयं मूर्छति मैत्राब्राहस्पत्य-चरु), मा.श्रौ.सू. 9.1.2.4।

मूर्धनि कृत्वा (द्रोणकलश, अर्थात् हरियोजन ग्रह को) शिर पर रखकर, का.श्रौ.सू. 10.8.3 (उन्नेताऽनुवाचयति मूर्धनि कृत्वा धानासोमेभ्योऽनुब्रूहीति)।

मूर्धन्वती स्त्री. (मूर्धन् + मतुप् + ङीप्) उस ऋचा का नाम जिसमें 'मूर्धन्' शब्द प्रयुक्त हो, अर्थात् 'अग्निर्मूधा----' (ऋ.वे. 8.44.16) पुरोनुवाक्या के रूप में प्रयुक्त, श्रौ.को. (अं.) I.ii.544 (सं.) I.212; (बौ.श्रौ.सू. 26.4-5); चार ईंटों का नाम, 27.30, जो वेदि की दूसरी तह में लगी होती है, बौ.श्रौ.सू. 18.37-38।

मूलजात वि. (मूले = मूलनक्षत्रे जातः) मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ (शिशु), मा.श्रौ.सू. 11.2.1।

मूलतःपुष्कर वि. (मूलतः पुष्करं यस्य) जिसका कटोरा वाला (भाग) मूल की ओर बनाया गया हो (जहाँ तक उस वृक्ष की बात है, जिसमें करछुल निर्मित होती है), बौ.श्रौ.सू. 20.16:7।

मृगतीर्थ न. सदस्-मण्डप (सदोमण्डप) को छोड़ने के लिए कार्यसम्पादक ऋत्विजों के लिए विहित आग्नीध्र के पश्चिम अनियमित मार्ग। उन्हें सामान्यतः वेदि के उत्तरी नितम्ब की ओर पश्चिमी द्वार से होकर 'सदस्' को छोड़ना चाहिए; होता औदुम्बरी के साथ-साथ एवं अन्य सीधे, आश्व.श्रौ.सू. 5.11.2।

मृगाखर (मृगाणां = वन्यपशूनां आखरः) वन्य पशुओं का बसेरा, मा.श्रौ.सू. 9.2.2.8।

मृगारेष्टि स्त्री. = महापवित्रेष्टि = रहस्येष्टि; पृष्ठ्या के आस्तरण (फैलाने) एवं प्रणीता-संज्ञक जल के प्रणयन के पूर्व आहवनीय में तीन आहुतियों वाली एक इष्टि। अन्य सात आहुतियां हैं : अंहोमुच् इन्द्र के लिए पुरोडाश (11) 'आगोमुक्' मित्रावरुण के लिए पयस्या, एनोमुक् मरुतों को पुरोडाश (7), एनोमुक् विश्वेदेव के लिए पुरोडाश

(12), अनुमति को पका हुआ चावल (ओदन), वैश्वानर अग्नि के लिए पुरोडाश (12) अंहोमुक् द्यावापृथिवी के लिए पुरोडाश (2); 17 सामिधेनियां, गृहपति अग्नि के लिए आहुति के पूर्व 20 आहुतियां, श्रौ.को. (अं.) 1.616-17; चि.भा. से : अश्वमेध के अन्त में पशु-याग के पश्चात् अग्नि के लिए 10 आहुतियों से युक्त होम, आप.श्रौ.सू. 20.23.2; बौ.श्रौ.सू. 15.37. इसका अनुष्ठान उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है, जो पुफ्फुसीय रोग से ग्रस्त हो अथवा जो देवताओं, ऋषियों, पितरों, गायों एवं ब्राह्मणों से दूरीकृत हो, बौ.श्रौ.सू. 2.8.1; श्रौ.को. (सं.) 1.413 भी द्रष्टव्य।

मृत्खन वि. (मृत् खन्यते अस्मात् = स्थानात्) (वह स्थल) जहाँ से मिट्टी खोदी जाती है, आप.श्रौ.सू. 15.1.9 (प्रवर्ग्य-सम्भार); भा.श्रौ.सू. 11.1.12; न. वह स्थल, जहाँ से 'उखाकरण' के लिए मिट्टी खोदी जाती है, आप.श्रौ.सू. 16.3.1।

मृत्खनन न. (मृदः खननम्) मिट्टी खोदना, श्रौ.को. (सं.) II.13।

मृत्यु पु. एक सूक्त का नाम, अर्थात् 'हरिं हरन्तम्------' से प्रारम्भ होने वाला (सूक्त), जिसका वाचन अन्त्येष्टि संस्कार में यम सूक्त के बाद होता है (पितृमेध), श्रौ.को. (अं.) 1.1116।

मृत्युसव पु. राजा द्वारा अनुष्ठेय यज्ञों में परिगणित, मृत्यु के लिए यज्ञ, श्रौ.सू. (अं.) 1.952।

मृत्युसूक्त न. मृत्यु को सम्बोधित सूक्त, श्रौ.को. (सं.) I.816; तै.आ. 3.15।

मृध्नीते (मृध् + ल.प्र.पु.ए.व.आ.प.) (बन्धन-रज्जु) को ढीला करता है, भा.श्रौ.सू. 12.18.9।

मेक्षण न. (मिक्ष् + ल्युट्) अश्वत्थवृक्ष के काष्ठ से निर्मित मिश्रण करने वाला दण्ड, इसकी लम्बाई एक अरत्नि होती है और इसके एक छोर पर पुरोडाश तैयार करने के लिए उबलते पानी में आटे को चलाने (विलोडित करने) एवं मिश्रित करने के लिए एक चार अंगुल का वर्गाकार अथवा गोलाकार फलक होता है, वैखा.श्रौ.सू. 11.8; दर्श में प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 1.7.5; चरु का विभाजन करने के लिए भी, (सोम.) 13.13.17; तुल. यज्ञायुधानि, पृ. 30; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 9.53।

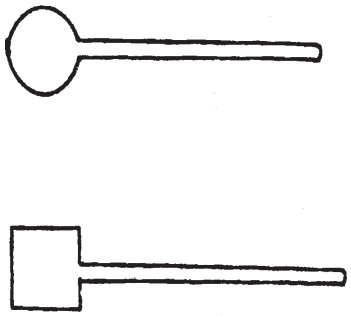

मेक्षण

मेखला स्त्री. 1. 'दीक्षित' व्यक्ति द्वारा पहनी गई करधनी, आप.श्रौ.सू. 10.9.13 (सोम-दीक्षा में यह 'शर' अथवा मुञ्ज से निर्मित होती है; यह = त्रिवृत = त्रिगुणित = तीन लड़ियों वाली, पर्याप्त लम्बी एवं दोनों छोरों पर पाश-युक्त होती है); 2. गार्हपत्य अग्नि-स्थान के लिए अभिप्रेत सत्ताईस अंगुल के व्यास से युक्त गोलाकार चिह्न की करधनी (घेरा) का काम करने वाली छः इन्च ऊँची दीवार; श्रौ.प.नि., पृ. 3.13-15; वैखा.श्रौ.सू. 1.3.7; पञ्चांगुलिविस्तारा मध्यमा चतुरङ्गुला (दक्षिणाग्नि) वैखा.श्रौ.सू. 1.2 भी; अन्य प्रकार के लिए, का.शु.सू. 7.20।

मेखलात्रय न. (मेखलायाः त्रयम्) पवित्र अग्नि के चारों ओर विहित तीन-पग की करधनी, का.श्रौ.सू. 7.20।

मेथी स्त्री. प्रवर्ग्य में प्राचीनवंश शाला के दक्षिणी द्वार के बाहर जड़ी हुई कील, मा.श्रौ.सू. 4.2-6; 4.3.1.4; भा.श्रौ.सू. 11.5.13; तुल. 'मयूख' जिसका प्रयोग (हविराधान शकट के अग्रदण्ड की थून के रूप में होता है, इसे एक छिद्र (कर्णातर्द) में जड़ा जाता है, आप.श्रौ.सू. 11.7.3, अथवा धुरों के सन्निकट, बौ.श्रौ.सू. 6.25।

मेदस् न. मेद, भा.श्रौ.सू. 7.19.2।

मेधस् न. ओजस्; द्रष्टव्य - अश्वमेध।

मेधी स्त्री. स्त्री पशु (बति के रूप में प्रदेय), मा.श्रौ.सू. 5.2.9.3।

मेषप्रतिकृति (मेषस्य प्रतिकृतिः) मेढ़ की प्रतिकृति (नकल), जो करम्भ से निर्मित होती है; अध्वर्यु द्वारा निर्मित, और मेढ़ी (मेषी) की प्रतिप्रस्थाता द्वारा; उनमें उचित लिङ्ग-चिह्न भी बनाये जाते हैं; बाद में इसे आमिक्षा पर रख दिया जाता है, भा.श्रौ.सू. 8.7.3-5; 8.7 (वरुणप्रघास)।

मेषमिथुन न. (मेषस्य मिथुनम्) भेड़ का जोड़ा, अर्थात् एक पुरुष एवं एक स्त्री, का.श्रौ.सू. 5.3.6 (मेषमिथुनं च)।

मेषी स्त्री. (मेष + ङीष्) भेंड़ी (सरस्वती के लिए बलि-पशु), मा.श्रौ.सू. 7.1.2.2।

मेष्कहत (मेष्केण = वन्यपशुना हत:) वन्य-पशु द्वारा मारा गया, आप.श्रौ.सू. 10.19.1; भा.श्रौ.सू. 10.12.9।

मैत्राबार्हस्पत्य पु. एक यज्ञ का नाम, जिसमें स्वयं (हविर्द्रव्य को) उड़ेलना 'तन्त्र' एवं इसे अर्पित करना 'आवाप' होता है, श्रौ.को. (अं.) 1.946 (पा.टि.त्तै.ब्रा. 1.7.3.7; बौ.श्रौ.सू. 12.6)।

मैत्रावरुण पु. 'होता' का प्रथम सहायक; वह प्रात:कालिक सवन (सोम.) के समय 'आज्यशस्त्र' की तरह (अर्थात् जैसे आज्य शस्त्र में) मित्र और वरुण से सम्बन्धित सूक्त का वाचन करता है, बौ.श्रौ.सू. 7.18; आप.श्रौ.सू. 12.28.14-16; उसे 'प्रशास्ता' एवं उपवक्ता (निर्देश देने वाला) कहा जाता है क्योंकि वह अन्य ऋत्विजों को 'प्रैष' - संज्ञक निर्देश देता है। वह पशुबन्ध याग में षष्ठ ऋत्विज् के रूप में सम्मिलित होता है।

मैत्रावरुणग्रह पु. (मित्रवरुणयो: अयं ग्रह:) प्रात:सवन में मित्र एवं वरुण को समर्पित सोम के प्यालों में एक, जिसे युग्म देवता के प्याले (द्विदैवत्यग्रह) के अंग (भाग) के रूप में समझा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 7.6; का.श्रौ.सू. 9.6.8-9।

मैत्रावरुण ग्रह

मैत्रावरुणचमसमुख्य वि. (मैत्रावरुण: चमस: मुख्य: यस्मिन्) जिसमें मैत्रावरुण का प्याला प्रथम के रूप में हो, मा.श्रौ.सू. 2.4.3.4 (मैत्रावरुणचमसमुख्यानुन्नयति)।

मैत्रावरुणदण्ड पु. (मैत्रावरुणस्य दण्ड:) मैत्रावरुण-संज्ञक पुरोहित का दण्ड, आप.श्रौ.सू. 9.17.8 (वध्य-पशु के बैठ जाने की स्थिति में इसका प्रयोग उसको खड़ा करने के लिए किया जाता है); 'प्रैष' का वाचन करते समय वह इस पर झुकता है, मा.श्रौ.सू. 1.8.3.21. (यजमान इससे यज्ञीय यूप के चारों तरफ की मिट्टी को दबाता है, श्रौतप.नि. पृ. 143.123।

मैत्री स्त्री. (मित्र + अण् + ङीप्) (ईंधन, अर्थात् गाय के उपले आदि को) मित्र को सम्बोधित एक ऋचा से (अग्नि में फेंकना) (पच्यमानान् मैत्र्या उपचरति), आप.श्रौ.सू. 15.4.4; ऋ.वे. 3.59.6; श्रौ.को. (सं.) I.67।

मैधातिथ न. (मेधातिथिना दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.10.10 सा.वे. 1.342 पर।

मौक्ष = दक्षनिधान साम, पञ्च.ब्रा. 14.5.12 सा.वे. 1.41 पर।

मौञ्जविवयनी वि. (स्त्री.) मुञ्ज (घास की पट्टियों) से बुनी हुई (आसन्दी = पीठ या कुर्सी), भा.श्रौ.सू. 10.20.8।

मौञ्जविवाना वि. (स्त्री.) मूँज की डोरियों से बुनी हुई (आसन्दी), आप.श्रौ.सू. 16.10.16।

मौस्तकृत न. 'मुस्ता' घास से मिश्रित (घी) (परित्यक्ता पत्नी इससे घोड़े का लेपन करती है), मा.श्रौ.सू. 9.2.3.23 (अश्वमेघ यज्ञ)।

म्लेच्छ पु. असभ्य, असंस्कृत, वह व्यक्ति जो हिन्दू वर्ण-व्यवस्था से सम्बद्ध नहीं है; द्रष्टव्य — B Liepich, BSOS, 8.1938.

य

यकृत् न. (वध्य-पशु का) जिगर, 'कालवर्णो मांसः क्लोमाप्लीहे दक्षिणपार्श्वे स्थितं स्वादुमासम् इति------यकृत्सदृशं निलकाख्यं मांसम्। प्लीहागुल्म इति रुद्रदत्तः' आप.श्रौ.सू. 7.22.5; भा.श्रौ.सू. 7.18.12।

यजति

यजति स्त्री. 'वषट्कार' के साथ खड़े होकर आहवनीय अग्नि में एक आहुति प्रदान करने का कृत्य, जिसके पूर्व में पुरोनुवाक्या एवं 'याज्या' होती है 'तिष्ठद्धोमा वषट्कारप्रदाना याज्यापुरोनुवाक्यावन्तो यजतयः', का.श्रौ.सू. 1.2.6 (जुहोति के विपरीत)।

यजनीयदिन न. (यजनीयं दिनम्, यजनीय = इज्यतेऽस्मिन् यज्+ अनीयर्, कृत्यल्युतो बहुलम्, पा. 3.3.113) वह दिन जिस दिन दर्श अथवा पौर्णमास यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है, श्रौ.प.नि. 119.3।

यजप्रैष (यज एव प्रैषः यस्मिन्) 'यज' के रूप में 'याज्या' आवाज (प्रैष) है जिसमें, याज्या का पाठ करो (प्रेष्य का नहीं), 'अग्निषोमीयस्य पशुपुरोडाशमनु देवसूहवींषि निर्वपति यजप्रैषाणि, का.श्रौ.सू. 15.4.4।

यजमान पु. (यज् + शानन्, पूङ्यजोः शानन्, पा 3.1.128) यज्ञ करने वाला, यज्ञ का प्रायोजक। अपनी ओर से पुरोहितों को कर्मकाण्ड का अनुष्ठान करवाने के लिए लगाता है। उसे 'स्वामी' समझा जाता है, जो किसी देवता को आहुति समर्पित, (द्रव्य त्याग) करता है, 1.7.20. वह यज्ञ का व्यय वहन करता है और ऋत्विजों को दक्षिणा देता है। उसे कुछ निश्चित मन्त्रों का वाचन भी करना होता है और कुछ वस्तुओं, जैसे—हविर्द्रव्य अथवा उपकरणों का विशिष्ट अवसरों पर स्पर्श करना होता है। वह यजमानों के लिए वर (ऋत्विगभिलाषित वस्तु) का भी चयन करता है (वरवरण); यज्ञ से सम्बन्धी व्रत का पालन करता है तथा वेदि एवं शाला आदि के लिए माप 'प्रमाण' का भी कार्य करता है, 'दान-वाचनान्वारम्भण-वर-वरण-व्रत-प्रमाणेषु यजमानं प्रतीयात्', का.श्रौ.सू. 1.10.12. उसे सोम याग में अपनी पत्नी के साथ 'दीक्षा' की प्रक्रिया से भी गुजरना होता है। उसके कर्त्तव्यों को 'याजमान' कहा जाता है 4; —**चमस** पु. यजमान का प्याला; द्रष्टव्य-श्रौप.नि. 5.26; 32.270; **० चमस**।

यजमान-यजमानपत्नी

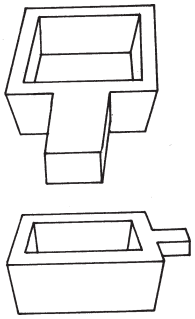

यजमान-चमस

यजमानभाग पु. (यजमानस्य भाग:) यजमान द्वारा भक्षणीय इडा-भाग, 'यजमानभागं पूर्वार्द्धाद्दीर्घं प्रशीर्य ध्रुवाया: करोति', का.श्रौ.सू. 3.4.4 ('दीर्घ' आकार में बड़ा एवं पुरोडाश के पूर्वभाग से तोड़कर लिया गया)।

यजमानषष्ठ वि. (बहु.व.) (यजमाान: षष्ठ: येषु) जिनमें यजमान छठवां हो, 'मदन्तीरूपस्पृश्य यजमानषष्ठा: सोममाप्याय-यन्त्यंशुरंशु', का.श्रौ.सू. 8.2.6 (सोम-याग में सोमलता का आप्यायन)।

यजमानसप्तदश वि. (बहु.व.) (यजमान: सप्तदश: येषु ते) संख्या में सत्रह, जिनमें यजमान सत्रहवां होता है, भा.श्रौ.सू. 12.1.2। तानूनप्त्र।

यजमानार्षेय न. (बहु.व.) यजमान के पूर्वज ऋषिलोग, 'अमुवदमुवदिति यजमानार्षेयाण्याह परस्तादर्वाञ्चि त्रीणि', का.श्रौ.सू. 3.2.8 (दर्श)।

यजुरष्टम वि. (बहु.व.) (सात ऋचायें) जिनके बाद अष्टम के रूप में यजुर्मन्त्र होता है, आप.श्रौ.सू. 16.1.4।

यजुरुत्पूता वि. (स्त्री.) (यजुषा उत्पूता) यजुष् मन्त्रों के साथ शुद्धीकृत, भा.श्रौ.सू. 7.17.8 (जल); तुल. 1.11.12।

यजुर्युक्त वि. (यजुषा युक्त:) वाजपेय में यजुर्वेद के मन्त्र के साथ जोड़ा गया (शकट), आप.श्रौ.सू. 18.3.10।

यजुस् न. 1. ऋक्, साम एवं निगद से विशिष्ट (भिन्न) यज्ञीय मन्त्र, का.श्रौ.सू. 1.3.1; जिसके अक्षरों एवं पादों का उच्चारण बिना यति के किया जाता है, का.श्रौ.सू. वही भाष्य। वे पूर्णवाक्य होते हैं और अपने अर्थ के लिए दूसरे शब्दों पर आश्रित नहीं रहते (निराकाङ्क्ष), वही, 2. इनका उच्चारण उपांशु होता है, वही 10 (अर्थात् फुसफसाहट अथवा धीमे स्वर में) जबकि अन्य का उच्चारण जोर से (ऊँचे स्वर) में होता है। (ऋ.वे. 8.41.8) यह ऋचा भी 'यजुस्' अर्थात् यज्ञीय मन्त्र के रूप में स्वीकार की जाती है (चि.भा.से.)। तु. 'शेषे यजु: शब्द:' मी.सू. 2.1.37।

यज्ञ पु. (यज् + नङ; यजयाचयतप्रच्छरक्षो नङ्; पा. 3.3.90) यज्ञ जिसमें तीन तत्त्व होते हैं : द्रव्य (हविर्दव्य), देवता एवं त्याग (अर्थात् द्रव्य का त्याग करना), 'द्रव्यं' देवता त्याग:, का.श्रौ.सू. 1.2.2 = याग, इष्टि एवं यजन, वही, भाष्य।

यज्ञक्रतु पु. (यज्ञस्य कतु:) यज्ञ का विशेष सङ्केत अथवा चिह्न, भा.श्रौ.सू. 6.1.7; (यज्ञक्रतुं व्यावृत्या इति ब्राह्मणम्) बौ.श्रौ.सू. 7.4 (क्रतुकरण)।

यज्ञतनु स्त्री. सवनीय पशु के लिए कर्मकाण्ड के प्रारम्भ के पूर्व 'प्रजापतिर्मनसा अन्धो अच्छेत-----' इस से प्रारम्भ होने वाली ऋचाओं से अध्वर्यु द्वारा दी जाने वाली 33 आहुतियों के समूह का नाम। अध्वर्यु को शीघ्रता से प्रत्येक पूर्ववर्ती ऋचा पर पहुँचना चाहिए = (उसे दुहराना चाहिए) (ऋचाओं के युग्म में जैसे—प्रथम-द्वितीय, द्वितीय-तृतीय आदि) और प्रत्येक बाद वाली ऋचा से आहुति देनी चाहिए, पहली ऋचा फिलहाल एकल होती है, श्रौ.को. (सं.) II.368; शां.श्रौ.सू. 8.1।

यज्ञतनू (स्त्री.) अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्रीय शाला में तै.सं. 4.4.9.1 से दी जाने वाली (तैंतीस) आज्याहुतियों का नाम (हि.आ.ध. II.1161)।

यज्ञपात्र न. (यज्ञस्य पात्रम्) यज्ञ के पात्र एवं उपकरण; इन्हें यज्ञायुध भी कहते हैं। इष्टि के लिए 10 मुख्य यज्ञायुध हैं : स्फ्य, कपाल, अग्निहोत्रहवणी, शूर्प, कृष्णाजिन, शम्या, उलूखल, मुसल, दृषद्, तै.सं. 1.6.8.2-3; बौ.श्रौ.सू. 1.4; का.श्रौ.सू. 2.3.8. इसके अतिरिक्त जुहू, उपभृत्, स्रुव, ध्रुवा, प्राशित्रहरण, इडापात्र मेक्षण, पिष्टोद्वपनी, प्रणीता-प्रणयन, आज्यस्थाली, वेद, दारुपात्री, योक्त्र, वेदपरिवासन, धृष्टि, इध्मप्रव्रश्चन, अन्वाहार्य-स्थाली, मदन्ती, फलीकरण-पात्र, अन्तर्धान-कट भी होते हैं, बौ.श्रौ.सू. 1.4. सोमयागों में चमस, पानपात्र जैसे विशिष्ट उपकरण होते हैं। आहिताग्नि का उसके पात्रों के साथ अन्तिम संस्कार किया जाता है (जो 'प्रतिपत्तिकर्म' के रूप में जाना जाता है)।

यज्ञपुच्छ न. (यज्ञस्य पुच्छम्) किसी यज्ञ की पूंछ अर्थात् सोम का अन्तिम भाग, बौ.श्रौ.सू. 25.26 श्रौ.को. (सं.) II.593, 97।

यज्ञयोगमन्त्र पु. धान को फटकने के पश्चात् यजमान द्वारा उच्चारित 'किम्' शब्द से युक्त मन्त्र, श्रौ.प.नि. 15.116।

यज्ञरूपस्यूत वि. (यज्ञरूपाणि स्यूतानि यस्मिन्) (परिधान) जिसमें यज्ञ के उपकरणों की आकृति बुनी गई हो, का.श्रौ.सू. 15.5.10 (राजसूय)।

यज्ञवेशस् पु. यज्ञ की रुकावट या व्यवधान, जै.ब्रा. I.124।

यज्ञसम्प्रदाय पु. (यज्ञस्य सम्प्रदाय:) यज्ञ की परम्परा अथवा महत्त्व, भा.श्रौ.सू. 3.15.6; बौ.श्रौ.सू. 25.6।

यज्ञसारथि न. सोम-सवन के दिन गाये जाने वाले एक साम का नाम, ला.श्रौ.सू. i.6.40; श्रौ.को. (अं.) II.375; श्रौ.को. (सं.) 475 पा.टि. (संस्थितेऽहनि प्रस्तोतृसाम त्रिर्गायेत)।

यज्ञस्य पुनरालभ पु. एक अंश-मन्त्र का नाम, भा.श्रौ.सू. 4.22.9; 'यज्ञो बभूव सु आ बभूव' आदि, तै.सं. I.6.6.3-4।

यज्ञाङ्ग न. (यज्ञस्य अङ्गम) यज्ञीय उपकरण, भा.श्रौ.सू. 1.1.15 (यज्ञाङ्गेन आत्मानमभिपरिहरेत्)।

यज्ञान्वारम्भ पु. 'स्वाहा यज्ञं मनसा---' मन्त्र का नाम, जिसका वाचन यजमान द्वारा दीक्षा-संस्कार में दोनों कनिष्ठिकाओं को बन्द करने के समय किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) II.90 (सोम में दीक्षा मुष्टिकरण)।

यज्ञापचार वि. (यज्ञस्यापाचारः) जो यज्ञ के लिए हानिकारक है, भा.श्रौ.सू. 1.17.3 (वारणो यज्ञापचारः)।

यज्ञायज्ञिय न. अग्नि-वेदि की पाँचवी तह के पुच्छ-भाग में लगी ईंट का नाम, भा.श्रौ.सू. 6.2.3.1; 10.2.3.7; सभी प्रकार की पवित्र अग्नियों का आधान (स्थापन) करते समय गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.44; भा.श्रौ.सू. 5.6.11; एक स्तोत्र, अन्तिम एवं मुख्य, जिसका गायन अग्निष्टोम के तृतीय सवन में किया जाता है। इस का यह नाम स्तोत्र के प्रारम्भिक शब्दों 'यज्ञायज्ञ' के आधार पर पड़ा, आप.श्रौ.सू. 13.15.3. उद्गाता गायन का प्रारम्भ करता है; सभी गायक एवं गानमण्डली के सदस्य गायन के दौरान अपने शिर एवं कान ढक लेते हैं; यहाँ तक की इस दृश्य के दर्शक भी गायन में सम्मिलित हो जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 13.15.6; मा.श्रौ.सू. 15.4.15. यजमान की पत्नी को सदस् में लाया जाता है और वह गायन के दौरान अपने जङ्घे के ऊपर पानी (पत्नेजनी) उड़ेलती है, श्रौ.को. (सं.) II.453; द्रष्टव्य-4.2.20,21 सा.वे. 1.35 पर आधृत; श्रौ.को. (सं.) II.6, 592; इसमें ऋ.वे. 3.3; 3.33.1; 1.8.7; 6.48.1-2; 1.143; 10.9.1-3; 6.50.14; 5.46.7-8; 2.39.4-5; 6.44.7-9, 10.15.1-3; 10.14.4, 3,5; 6.47.1-3; 3.20.4; 1.5.4.1; 10.53.6; एवं 4.17.20 समाहित हैं।

यज्ञायुध न. = यज्ञपात्र; एक उपकरण या पात्र, जिसका प्रयोग यज्ञ में होता है। यथा 'स्फ्य'-संज्ञक काष्ठ की तलवार, आदि, श्रौतप.नि. 15.111, जै.ब्रा. II.69।

यज्ञोपवीत न. पवित्र धागा, जनेऊ, द्रष्टव्य = उपवीत, श्रौतप.नि. 21.172।

यण्व न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.6 सा.वे. 1.198 पर आधृत, ला.श्रौ.सू. 10.5.7।

यथर्षि क्रि.वि. (ऋषिम् अनतिक्रम्य) यजमान के गोत्र-ऋषि के अनुसार, भा.श्रौ.सू. 5.7.1।

यथाकाम वि. (यथा कामः अस्य) (यजमान की) इच्छा के अनुसार, 5.2.1.5 (ग्रामकाम, भूतिकाम, आदि), श्रौ.प.नि. 15.111।

यथाकृतम् क्रि.वि. (कृतम् अनतिक्रम्य) उसी क्रम में जिसमें (तीनों उखा-पात्र) बनाये गये थे, का.श्रौ.सू. 16.4.10 (श्रपणमास्तीर्य यथा कृतमवदधाति)।

यथाखातम् क्रि.वि. उसी क्रम में जैसा खोदने के लिए अनुप्रयुक्त था, का.श्रौ.सू. 8.5.8 (यज्ञीय स्तम्भों के लिए)।

यथाग्नि क्रि.वि. अग्निवेदि (के आकार) के अनुसार, का.श्रौ.सू. 16.8.28 (यथाग्नि वेदीष्टका-प्रमाणम्)।

यथाधिकरणम् क्रि.वि. (अधिकरणम् अनतिक्रम्य) प्रसङ्ग के अनुसार, 15.14.13; (यथाधिकारं मन्त्रं सन्नमति); (काशिकर : सुमेलपूर्वक); वही 8.7.16।

यथान्युप्त वि. (यथा न्युप्तः) (मन्त्र) जैसा कि धिष्ण्याओं के रखने के सन्दर्भ में अनुप्रयुक्त, बौ.श्रौ.सू. 7.8; (विहृतान् धिष्ण्यान् व्याघारयति यथान्युप्तैर्मन्त्रैः)।

यथान्युप्तम् क्रि. जैसा (धिष्ण्याओं को) रखने में अङ्गीकृत है, उसी क्रम में, का.श्रौ.सू. 9.7.5 (यथान्युप्तं धिष्ण्येष्वाग्नीध्रादङ्गारान्निवपति)।

यथापरिधितम् क्रि.वि. (उसी) तरीके से (जैसे) परिधियाँ (अग्नि के चारों ओर, अर्थात् मध्य, दक्षिणी एवं उसके बाद उत्तरी तरफ) रखी जाती है, आप.श्रौ.सू. 2.13.1; मा.श्रौ.सू. 1.3.1.8।

यथापूर्वम् क्रि.वि. अपनी पूर्ववर्तिता (प्राथमिकता) के क्रम से (जनन एवं वितरण में, अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण), का.श्रौ.सू. 2.1.7 (तुष्णीं वा यथापूर्वम्)।

यथाप्रवृत्तम् अ. उसी क्रम से जैसा कि (पुरोहितों के) वरण में अङ्गीकृत है, का.श्रौ.सू. 9.8.10 (प्रवृतहोमौ)।

यथायतनम् क्रि.वि. (वेदि में करछुल के) क्रमशः नियत स्थान के अनुसार, बौ.श्रौ.सू. 1.15:27।

यथायूपम् क्रि.वि. दो (यज्ञीय खम्भों) के बीच दूरी के आकार एवं विस्तार के अनुसार, का.श्रौ.सू. 8.8.21 (यथायूपं वेदिवर्द्धनम्)।

यथार्थम् क्रि.वि. (अर्थम् अनतिक्रम्य) विहित तरीके से, नियत मार्ग से, 'स्तीर्णायां यथार्थमेत्य', का.श्रौ.सू. 11.1.11; यथार्थम् एन्थ सम्बद्ध प्रयोजन के अनुसार।

यथाशक्ति क्रि.वि. (शक्तिम् अनतिक्रम्य) (तृतीयाप्रतिरूपक) आपने साधन के अनुसार, मा.श्रौ.सू. 11.2.10।

यथाश्रद्धदक्षिण वि. (श्रद्धाम् अनतिक्रम्य दक्षिणा यस्य) (स्वयं की) श्रद्धा (विश्वास) के अनुसार (यजमान द्वारा देय) दक्षिणा, आप.श्रौ.सू. 3.15.4।

यथाश्रद्धम् क्रि.वि. (श्रद्धाम् अनतिक्रम्य) अपनी श्रद्धा के अनुसार, 'भूयसीश्च यथाश्रद्धम्', का.श्रौ.सू. 4.10.13 (दक्षिणा)।

यथास्वम् क्रि.वि. इस तरह कि प्रत्येक (यूप) में स्वयं अपनी (काष्ठ की फर्री, इसमें बँधी हो), का.श्रौ.सू. 6.3.16।

यथोढा वि. ठीक उसी क्रम वाला, जिससे वह (अर्थात् देवता) बुलाया अथवा बुलाई गई हो, आप.श्रौ.सू. 9.15.22।

यथोच्छ्रितम् क्रि.वि. यज्ञिय यूप को उठाने के लिए अंगीकृत क्रम से, का.श्रौ.सू. 8.8.25 (यूपोच्छ्रयणक्रमेण) (एकादशिनी में सवनीय पशुओं की बलि दी जाती है, इन पशुओं को अग्नि, सरस्वती, सोम, पूषा, बृहस्पति, वैश्वदेव, इन्द्र, मरुद्गण, इन्द्राग्नी, सविता और वरुण को अर्पित किया जाता है, श्रौ.को. (सं.) II.603)

यथोपपातम् क्रि.वि. अवसर एवं रिक्तस्थान के अनुसार (अवशिष्टानि अन्तः प्रातर्दोहपात्राणि), भा.श्रौ.सू. 1.16.4।

यथोद्देशैः पु. (तृतीया) नियमानुसार, मा.श्रौ.सू. 9.1.2.17।

यथोपलम्भम् क्रि.वि. अपनी इच्छा के अनुसार, आप.श्रौ.सू. 6.7.10।

यद्वासिष्ठीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.5.25 सा.वे. 1.86 पर।

यम न. पितृमेध का अनुष्ठान करते समय जल में प्रवेश से पूर्व प्र केतुना------' (ऋ.वे. 10.8.1) से प्रारम्भ होने वाले सूक्त का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.1116; 'षड्ज' आदि स्वर का नाम, श्रौ.प.नि. 29.239।

यमगाथा स्त्री. (यमस्य गाथा) यम को सम्बोधित सूक्त की एक ऋचा (इसका गायन उस स्थिति में होता है जब अग्निहोत्र अथवा दर्शपूर्णमास के लिए अभिप्रेत गायें नष्ट हो जाती हैं), मा.श्रौ.सू. 8.3.5; मो.वि. ऋ.वे. 10.10; 'ओ चित् सखायं सख्या प्रवृत्याम्; (शरीर का अन्तिम संस्कार करने एवं जलाशय में स्नान करने के बाद, और ऐसे स्थान पर बैठते समय जहाँ पौधे प्रभूत संख्या में उठते हैं) अन्त्येष्टि-क्रिया के दौरान गेय एक गाथा का नाम (एक ऋग्युग्म या सूक्त), श्रौ.को.(अं.) 1.1068; 1152।'

यमलशान्ति स्त्री. जुड़वा बच्चों के लिए प्रायश्चित्तिक कृत्य, मा.श्रौ.सू. 11.3.1।

यमातिरात्र पु. एक प्रकार का अतिरात्र सोमयाग, आप.श्रौ.सू. (इण्डेक्स, गार्बे-संस्करण)।

यव पु. यव के एक दाने के बराबर माप (= सर्षप), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.3।

यवकलापि वि. जौ के गट्ठर के आकार का, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.11।

यवद्वादशाह पु. द्वादशाह का एक लघु-प्रारूप, जै.ब्रा. II.257।

यवमती वि. (यव + मतुप् + ङीप्) जौ के दानों से युक्त (जल), आप.श्रौ.सू. 11.12.5।

यववेला स्त्री. (यवकर्तनस्य वेला) जौ की कटाई का समय, ला.श्रौ.सू. 8.3.7।

यवागू स्त्री. जौ का हलुवा या लप्सी, द्रष्टव्य—Wüst W, REMA 141-45; भा.श्रौ.सू. 1.11.9।

यशस् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 19.8.4 सा.वे. 1.270 पर आधृत।

यशोदा स्त्री. वेदि की प्रथम तह में (प्रयुक्त) ईंटों (149-153) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.46-46।

याजमान न. (यजमानस्य कर्म, यजमान + अण्) यजमान के कर्तव्य, भा.श्रौ.सू. 4.1.1; वैदिक कर्मकाण्ड में यजमान की भूमिका प्रतिपादित करने वाला ग्रन्थ-भाग (4.16.2; तै.ब्रा. 3.7.4.3-4), भा.श्रौ.सू. 3.3.1, 11; दीक्षणीयेष्टि में उसके लिए कोई व्रतोपायन एवं विष्णुक्रम नहीं होते, श्रौ.को. (सं.) II.518।

याज्या स्त्री. (यज्+ण्यत्+टाप्) सामान्य रूप से एक ऋचा पर निबद्ध मन्त्र का पारिभाषिक नाम। इसका वाचन स्वाभाविक रूप से होता द्वारा अध्वर्यु के आवाहन पर किया जाता है, इसके साथ ही अध्वर्यु (आज्य की) आहुति भी डालता है, का.श्रौ.सू. 1.9.15. होता उपयुक्त 'याज्या' प्रारम्भ करता है, जिसके पहले 'ये यजामहे' (आगू) एवं अन्त में वषट्कार होता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.15. इसका प्रयोग प्रयाज, अनुयाज, आज्यभाग, आवाप, स्विष्टकृत् एवं पत्नी संयाज में होता है। इसे बहुत ऊँचे स्वर में उच्चारित किया जाता है

और इसका अन्तिम अक्षर 'प्लुत' होता है, तुल. आश्व.श्रौ.सू. 1.5.9-14; द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 28.233।

याज्ञसेनी स्त्री. अग्निवेदि की एक तह का नाम (अर्थात् पाँचवीं तह का अन्तिम भाग), आप.श्रौ.सू. 17.4.9 (चयन)।

यातु पु. जादू, काशिकर 204।

यथाकामिन् वि. (यथा काम: अस्य) (वह व्यक्ति) जिसकी अपनी (-जो) विशेष कामना हो, 'फलयुक्तानामनारम्भे यथाकामी फलार्थित्वात्' का.श्रौ.सू. 1.2.10।

याम पु. रथ, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.17 (उपाकरोति----पर्यङ्ग्यान् अवच्छादयन्तो यामम्); न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.8.4 एवं 11.10.20 क्रमश. सा.वे. 3.4 एवं 1.559 पर।

यायावर पु. (या + यङ् + वरच्) घुमन्तू, घुमक्कड़। ऐसा व्यक्ति जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमता रहता है, काशिकर 281 इण्डेक्स।

याव पु. (यव + अण्) जौ से निर्मित (भुर्ता, सानी) का.श्रौ.सू. 4.11.8।

यावच्छर्करम् क्रि.वि. उस भाग तक जहाँ तक कंकड़ (शर्करा) सज्जित (आलिप्त) किया गया हो (अर्थात् शर्करा वाले भाग तक), भा.श्रौ.सू. 1.6.15 (सान्नाय्यकुम्भ्यौ), आप.श्रौ.सू. 1.7.12 (यावत् शर्करया कुम्भ्या बुध्नं आलिप्तं कुलालेन)।

यावदाप्तम् क्रि.वि. जितना पर्याप्त हो, पर्याप्त रूप से, मा.श्रौ.सू. 4.1.12।

यावन्मूत वि. उतना जितना की घिरी हुई, टोकरी (रु. यावद् वृतेन उपसिक्तम्), आप.श्रौ.सू. 10.23.3; बौ.श्रौ.सू. 6.13 : 8-9 (स्फ्येन उपसङ्ग्राहं यावन्मूतं पद्धरण्यां संवपति)।

युक्तनाम वि. (युक्तं नाम यस्मिन्) ('उपह्वयस्व' के साथ विशिष्ट ऋत्विज् के) नाम का प्रयोग किया गया है जिसमें (वह अभिव्यञ्जन), का.श्रौ.सू. 4.4.17(युक्तनामभिर्वा)।

युग न. जुआ, एक माप का नाम = 86 अंगुल, मा.श्रौ.सू. 10.1.1.3 (रथचारक्य के अनुसार भी यह 86 अंगुल होता है, मा.श्रौ.सू. 10.2.1); का.शु.सू. 2.4; बौ.शु.सू. 1.12; आप.शु. 6.13।

युगमात्री स्त्री. (युग + मात्रच् + ङीप्) एक जुअे के बराबर (नाप वाली), बौ.श्रौ.सू. 12.5.2 (उत्तरवेदि); (सर्वतो दशपदां वा); द्रष्टव्य-युग।

युगवरत्र न., जुए (युग) का फीता (बरारी, रस्सी), मा.श्रौ.सू. 6.1.5.35.

युज् यज्ञ को जोड़ना, अर्थात् 'कस्त्वा युनक्ति' मन्त्र के साथ प्रवर्तित करना, आप.श्रौ.सू. 4.4.8; अग्निवेदि को उपयोग में लाना (चयन), 17.23.1 (अग्नियोजन)।

युवमरणिका वि. जवानी में मरने वाला, मा.श्रौ.सू. 8.12.5।

यून न. रस्सी या डोरी (इध्म और बर्हिस् को बाँधने के लिए प्रयुक्त), का.श्रौ.सू. 1.3.14 (यूनं सन्नहनम्, स.वृ.); इसमें विषम संख्या में लड़ियां होती हैं = इध्म-सन्नहन।

यूप पु. यज्ञीय स्तम्भ, जिसमें वध्य-पशु बाँधा जाता है (ऋ.वे. 5.2.7); यह पलाश, खदिर, बिल्व अथवा रौहितक के काष्ठों में किससे निर्मित हो यह यजमान की फलकामना पर निर्भर करता है, आप.श्रौ.सू. 7.1.16; यूप का आकार यज्ञ के प्रकार के आधार पर एक से तैंतीस अरत्निओं तक (भिन्न-भिन्न) हो सकता है, सामान्यत: पशु-याग के लिए 3 से 4 अरत्नि, भा.श्रौ.सू. 7.2.7; सोमयाग के लिए 5 से 15, का.श्रौ.सू. 6.1.31. आप.श्रौ.सू. 7.2.13-15 के अनुसार इतना ऊँचा कि जितना हाथ को उठाकर अथवा न उठाकर खड़े अथवा रथ पर खड़े यजमान की ऊँचाई हो। यह आठ कोने वाला एवं अग्रभाग में शुण्डाकार (ह्रसित) होता है और बिना रँदा हुआ 1/5 भाग को जिसे 'उपर' कहते है, गड्ढे के भीतर डाल देते हैं, एकादशिनी में यूपों की संख्या 13 एवं अश्वमेध में 21 होती है, हि.आ.ध. II. (2) 1110-12; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II.547; द्रष्टव्य—FBJ Kuiper, AO 15-16-17, 1937-39; = द्रुषद = वनस्पति।

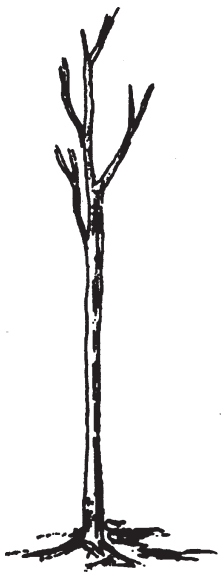

यूपवृक्ष

यूप

यूपभाज् वि. (यूपं भजति इति यूप् + भज् + ण्वि, भजो ण्वि, पा. 3.2.62) (वध्य पशु) जो (अश्व के साथ) यज्ञीय यूप का भागीदार होता है, मा.श्रौ.सू. 9.2.3.17।

यूपशकल न. (यूपस्य शकलम्) यज्ञीय स्तम्भ की फर्री (चैली), भा.श्रौ.सू. 7.7.16; 8.4 (यजमानो यूपशकलेन आ अन्तम् अनक्ति, पेंदी का अग्र (शीर्ष) भाग)।

यूपवेष्टन न. (यूपस्य वेष्टनम्) यूप को कपड़े से लपेटना, का.श्रौ.सू. 14.1.20 (वाजपेय)।

यूपसंहनन न. (यूपस्य संहननम्) यज्ञीय स्तम्भ (यूप) के चारों ओर मिट्टी को दबाना, श्रौ.प.नि. 126.41।

यूपाञ्जन न. यज्ञीय स्तम्भ का घी से लेपन अर्थात् यज्ञीय स्तम्भ में घी का लेप लगाना, का.श्रौ.सू. 2.8.8 (यूपाञ्जने च सर्पिः)।

यूपानुदेश (यूपस्य अनुदेशः) यज्ञीय स्तम्भ का नियतीकरण, मा.श्रौ.सू. 8.16.4।

यूपावट पु. (यूपस्य अवटः) वह गड्ढा जिसमें, यज्ञिय स्तम्भ लगाया जाता है। यह आहवनीय के सामने वेदि से आधा बाहर और आधा अन्दर स्थित होता है, आप.श्रौ.सू. 7.9.6. (पशु); द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II.542।

यूपावटीय वि. (यूपावट+छ) 'यूप'=यज्ञीय स्तम्भ के लिए अभिप्रेत गड्ढे या बिल से सम्बद्ध (उस कील के बारे में कथन जिसे 'अन्तःपात्य'-संज्ञक बीच के कील से पूर्व 36 प्रक्रमों की दूरी पर गाड़ा जाता है, हि.आ.ध. II. (2) 1152, चि.भा.से : पु. : महावेदि के दक्षिणी छोर पर जड़ी गई कील (शङ्कु) का नाम।

यूपावटीय

यूपावट्य पु. यज्ञीय स्तम्भ के लिए गर्त का संकेत करने वाला (बिन्दु), का.श्रौ.सू. 16.7.31 (यूपावटे भवः शङ्कुर्यूपावट्यः, स.वृ.); स्तम्भ के लिए निर्मित गड्ढे से सम्बद्ध, भा.श्रौ.सू. 12.4.13 (शङ्कुः)।

यूपावरोहण न. (यूपस्य = उपरि अवरोहणम्) यूप पर चढ़ने का कृत्य, जो वाजपेय का मुख्य वैशिष्ट्य है। यह कृत्य यजमान-कर्तृक है, आप.श्रौ.सू. 18.5.13।

यूपाहुति स्त्री. (यूपाय आहुतिः) यज्ञीय स्तम्भ के लिए आहुति (सोम के प्रारम्भ में आहवनीय में अध्वर्यु द्वारा दी जाने वाली), बौ.श्रौ.सू. 6.1; तुल. पशु, का.श्रौ.सू. 6.1.4 (उस वृक्ष के समीप जिसे 'यूप' का निर्माण करने के लिए काटा जाता है, 'उरु विष्णो विक्रमस्व' आदि वा.सं. 5.41 से वैकल्पिक रूप से आहुति दी जाती है।

यूपैकादशिनी स्त्री. एक व्यवस्था जिसमें 21 यूपों का प्रयोग होता है, का.श्रौ.सू. 8.8.36; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II.601।

यूपोच्छ्रयण न. (यूपस्य उच्छ्रयणम्) गड्ढे (अवट) में यज्ञीय खम्भे को रखकर इसे उठाने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 6.3.7. यूप कुश से आच्छादित कर दिया जाता है, इसका प्रोक्षण होता है और इसमें आज्य का लेप लगाया जाता है। इसकी खपची गड्ढे में फेंक दी जाती है और एक द्रवाहुति दी जाती है; और यूप को जड़ने के बाद गड्ढे में मिट्टी डाल दी जाती है।

यूप्य वि. (यूप+यत्) यज्ञीय खम्भों के निर्माण के लिए योग्य (वृक्ष) अर्थात् वह वृक्ष जिसकी लकड़ी का यूप बनाया जा सकता है, आप.श्रौ.सू. 7.1.10 (वृक्षः पलाशखदिर-बिल्वरौहितकः)।

यूष पु. (न.) शोरबा (बलि दिये गए पशु के अस्थिविहीन भाग पर उड़ेला गया), मा.श्रौ.सू. 1.8.5.20-21।

यूषन् पु. शोरबा, जिसकी 16 आहुतियां कौकिल सौत्रामणी में स्विष्टकृत् के पूर्व दी जाती हैं, भा.श्रौ.सू. 7.19.2।

येयजामहे पु. 'आगू'-संज्ञक (याज्या) मन्त्र के शब्द, आप.श्रौ.सू. 5.28.9।

योक्त्र न. (युज् + ष्ट्रन्, 'दाम्नीशसयुयुज०' पा. 3.1.82) मूँज की त्रिवृत् = तीन लड़ियों वाली रस्सी, जिससे आग्नीध्र अथवा अध्वर्यु 'पत्नीसन्नहन' के समय यजमान की पत्नी की कमर को (चारों ओर) परिधान के नीचे अथवा परिधान के ऊपर कसता है (अर्थात् जैसे करधनी से कमर कसी जाती है, वैसे ही करता है), आप.श्रौ.सू. 2.5.5-6 (दर्श); दीक्षा में भी यजमान उसके ऊपरी परिधान को (चारों ओर से) कसता है, बौ.श्रौ.सू. 6.5 वह योक्त्रपाश-नाम वाली करधनी पहनती है और बाद में हटा देती है, आप.श्रौ.सू. 3.10.6 (वरुणप्रघास); द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 10.65।

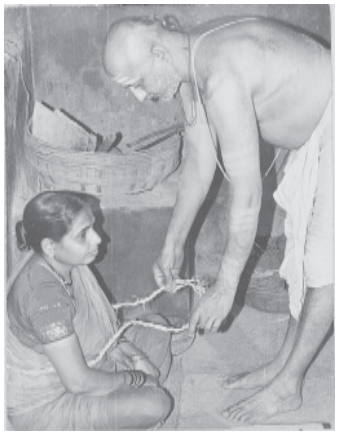

योक्त्र

योक्त्रपाश पु. रस्सी। इसका प्रयोग सोम-शकट का वहन करने वाले बैल की गर्दन के चारों ओर बाँधने के लिए किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 10.19.11।

योग पु. 'युञ्जामि त्वा ब्रह्मणा' इस मन्त्र का नामकरण, जिसका उच्चारण यज्ञ के लिए यज्ञ को जोड़ने अथवा युक्त करने के समय किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 3.16:24; पु. अध्वर्यु के आवाहन 'हविष्कृदेहि' के समय वाग्यमन (वाणी के संयम) का परित्याग करते समय यजमान द्वारा उच्चारित किये जाने वाले मन्त्र 'कस्त्वा युनक्ति' का नाम, बौ.श्रौ.सू. 1.6.8।

योजन न. दूरी की एक माप = 4 कोश अथवा आठ या नौ मील, जै.ब्रा. II.118।

योनि पु. (स्त्री.) 1. अधरारणि के मध्य में एक छिद्र, बौ.श्रौ.सू 2.6; वैखा.श्रौ.सू. 1.1; 2. ऋचा विशेषतः सा.वे. के आर्चिक भाग की, जिसे योनि (गर्भाशय) समझा जाता है, जहाँ से सुर की उत्पत्ति होती है; वह ऋचा जिसमें कोई सुर स्थापित किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 5.15.16; 'ऋचि अध्यूढं साम गीयते', छा.उ. 1.6.1; द्रष्टव्य—ला.श्रौ.सू. 7.9.13।

योनिगोत्रश्रुतवृत्तसम्पन्न वि. (योनिश्च गोत्रं च श्रुतं च वृत्तं च तैः सम्पन्नः) अच्छे माता-पिता, अच्छे कुल अच्छी विद्या एवं अच्छे चरित्र से सम्पन्न (समृद्ध), बौ.श्रौ.सू. 2.3.1।

योनिमती स्त्री. (योनि + मतुप् + ङीप्) 'योनि' शब्द से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. II.69।

योयुपन न. (युप् + यङ् + ल्युट्) 'स्फ्य' से वेदि को समतल बनाना; तुल. योयुप्यते, बौ.श्रौ.सू. 1.11; 20.9 = अनुमार्ष्टि, का.श्रौ.सू. 2.6.32 (समीकरोति)।

योयुप्यते (युप् + यङ् + लट.प्र.पु.ए.व.) पीटता है और सख्त बनाता है (वेदिं स्फ्येन योयुप्यते), आप.श्रौ.सू. 2.3.9 (धू. योयुप्यते ग्रथ्नाति; बौ.श्रौ.सू. 1.11. इसे कर्मवाच्य मानना ठीक नहीं।

यौक्ताश्व न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 11.8.7 सा.वे.1.469 पर।

यौधाजय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 7.5.12 सा.वे. 1.511 पर।

रक्षितवन्त् वि. (द्वि.व.) (दो आज्यभाग के लिए दो पुरोऽनुवाक्यायें) जिनमें रक्ष शब्द आता है, अर्थात् 'अग्ने रक्षा नो अंहसः' (ऋ.वे. 7.15.13) एवं 'त्वं नः सोम--' ऋ.वे. 1.91.8; मै.सं. 4.10.1; मा.श्रौ.सू. 5.1.1.27, 28; आश्व.श्रौ.सू. 2.10.5,6।

रजतरुक्म न. (प्रवर्ग्य में गर्म करने के लिए खर पर रखी जाने वाली) चाँदी की चादर, श्रौ.को. (सं.) II.88,99।

रज्जु स्त्री. रस्सी (शुल्बार्थे प्रदक्षिणं शुल्बं रज्ज्वर्थे प्रदक्षिणा रज्जुः), मा.श्रौ.सू. 1.1.3.42; 10.1.1.2।

रत्निन् पु. राजसूय-याग में अर्पणीय (बौ.श्रौ.सू. 12.5) एक आहुति का नाम ('रत्निनां हविः', पके हुए चावल की, संख्या में बारह), जिसे मुख्य पत्नी अथवा रानी प्रधानमहिषी-समेत राज्य के विभिन्न पदाधिकारियों के घर में दिया जाता है। प्रधानमहिषी के मामले में यह आहुति अदिति को दी जाती है, श्रौ.को. (अं.) 1.952. इसे बारह दिन तक एक के बाद दूसरे के क्रम से दिया जाता है। का.श्रौ.सू. 15.3 के अनुसार 12 पदाधिकारी है, यजमान, सेनापति, पुरोहित, सूत, ग्रामणी, क्षत्तृ, संग्रहीतृ, अक्षावाप (जुए के पाशे को फेंकने वाला द्यूत अधिकारी), गोविकर्त, दूत या पालागल, परिवृक्ता (परित्यक्त रानी) एवं महिषी, आप.श्रौ.सू. 18.10 भी।

रथकार पु. (रथं करोति, रथ + कृ + अण, कर्मण्यण्, पा. 3.2.1) रथ बनाने वाला, एक पृथक् वर्ण के रूप में स्वीकृत, जो अग्नि का आधान कर सकता है, भा.श्रौ.सू. 5.2.4; का.श्रौ.सू. 1.1.9 (रथकारस्याधाने)।

रथघोष पु. (रथानां घोषः) रथों की खड़खड़ाती हुई ध्वनि, जै.ब्रा. III.118।

रथचक्र न. (रथस्य चक्रम्) रथ का पहिया, मा.श्रौ.सू. 1.5.4.9। (दक्षिणतो ब्रह्मा रथं वर्तयति रथचक्रम् वा) [आधान में अग्निप्रणयन); यह 'उदुम्बर' से निर्मित होता है और वाजपेय में ब्रह्मा इस पर आरोहण करता (चढ़ता) है, शां.श्रौ.सू. 16.17.1; द्रा.श्रौ.सू. 15.4.4।

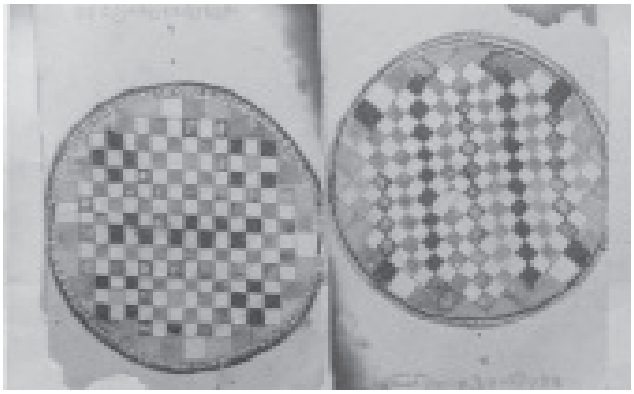

रथचक्रचिति

रथचक्रचित् वि. (रथचक्रमिव चीयते, रथचक्र + चि + क्विप्) रथचक्र के आकार में व्यवस्थित चिनी हुई वेदि, बौ.श्रौ.सू. 17.29 (भ्रातृव्यान्------' भूमिं परिमण्डलाम्----- अन्तश्चक्रम् इष्टकाः परिचिनोति); यह दो प्रकार की होती है : 1. प्रधियुक्त अर्थात् बारी-सदृश आकृति वाली; एवं 2. 'सारा' अर्थात् तीलियों से युक्त रथ का पहिया, बौ.श्रौ.सू. 5.1-8; 5.23.35।

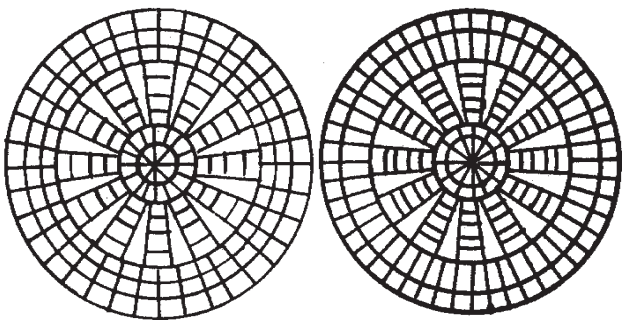

रथचक्रचिति

रथचक्रचिति वि. (रथचक्रमिव चितिः यस्याः) रथ के पहिए के आकार वाली, का.श्रौ.सू. (पद्धति); (मो.वि.); उसकी नाभि पर 980 ईंटें एवं नेमि-भाग में 543 ईंटे होती है, बौ.शु.सू. 59-36।

रथचक्राकृति वि. (रथचक्रमिव आकृतिः यस्य) रथ के पहिये के आकार वाला, भा.श्रौ.सू. 10.1.1.7 (गार्हपत्य)।

रथचारक्य पु. महावेदि के आकार में चरक के रथ की नाप की विशिष्टता (ध्रुव-180 अंगुल, अक्ष 104 अंगुल एवं युग = जुआ 86 अंगुल), मा.श्रौ.सू. 10.1.2.1।

रथन्तर न. एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.1 (वेदि के दक्षिणी पक्ष में पाँचवीं तह में); एक साम का नाम, जै.ब्रा. I.135, 146।

रथन्तरवर्ण वि. (रथन्तरवर्णाः सन्ति अस्मिन्) रथन्तर साम की ध्वनियों का होना, (वस्तुतः रथन्तर साम के वर्णों से युक्त) मा.श्रौ.सू. 9.3.1.4 (तुल बृहद्वर्ण, 9.3.1.21; वामदेव्यवर्ण); मो.वि।

रथन्तरसामन् वि. (रथन्तरं साम विद्यमानं अस्मिन्) रथन्तर साम के प्रयोग से युक्त (अर्थात् जिसमें रथन्तर साम प्रयुक्त हो), मा.श्रौ.सू. 2.3.5.2; भा.श्रौ.सू. 13.14.2।

रथवर्त्मन् न. (रथकृतं वर्त्म) रथ द्वारा निर्मित मार्ग, भा.श्रौ.सू. 2.4.8 (रथवर्त्ममात्रीं वेदिं कुर्यात्)।

रथवाहण न. रथ-वहन करने के लिए प्रयुक्त शकट, का.श्रौ.सू. 15.6.26।

रथवाहन न. 1. व्रीहि-शकट, मा.श्रौ.सू. 5.1.8.6 [निरुद्धं याजयेत्----सप्ताश्वत्थान्मयूखान् अन्तर्वेदि प्रक्ष्णुतान्नि-दधाति----रथवाहनस्येषायामतिहन्यात्]; (बन्दी का मुक्ति के लिए यज्ञ); 2. यातायात-शकट, मा.श्रौ.सू. 9.1.4.11 (सह सारथिना रथवाहने रथम् आदधाति); रथवाह 9.1.5.35।

रथविमोचनीय न. (बहु.व.) रथ के विमोचन के प्रसङ्ग में आहुतियां, 'अग्नये गृहपतये इति चत्वारि रथविमोचनीयानि जुहोति प्रतिमन्त्रम्' का.श्रौ.सू. 15.6.23 (राजसूय); मा.श्रौ.सू. 7.1.3.11।

रथशब्द पु. (रथस्य शब्दः) रथ की ध्वनि (द्वादशाह में पृष्ठ्य षडह के प्रथम सुत्या-दिन कि अवसर पर इसके द्वारा और दो दर्भपत्रों द्वारा महेन्द्र स्तोत्र निर्दिष्ट किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.5।

रथशिरस् न. (रथस्य शिरः) रथ का अग्रभाग, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.33 (रथशिरस्यध्याहवनीये जुहुयात्); चयन में इसके ऊपर करछुल को गुजारते हुए आहवनीय में घृत की एक आहुति डाली जाती है।

रथाक्ष न. 104 अंगुल (यूपैकादशिनी चेद् रथाक्षमात्राण्यन्तराणि), का.श्रौ.सू. 8.8.6; रथ-चक्र की चौड़ाई, मा.श्रौ.सू. 5.2.12.9; 10.1.3.7; अग्निष्ठ यूप से उत्तर की ओर दूसरे यूप के लिए दूरी; रथ की दूरी (अक्ष), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.23 (वाजपेय)।

रथाङ्ग न. (रथस्य अङ्गम्) रथ का भाग, आप.श्रौ.सू. 10.19.7 (समारोप्य रथेन प्रयाति, तद्भावे रथाङ्गमादाय)।

रथावहरण न. (रथस्य अवहरणम्) (बैलगाड़ी से) रथ को नीचे उतारना, का.श्रौ.सू. 14.3.1 (वाजपेय)।

रन्ध् धा. तैयार करना (एक टुकड़ा, अर्थात् 'अवदानं होता रन्धयति' में अवदान), मा.श्रौ.सू. 1.3.5-9।

रयिमन्त्र वि. 'रयि' की अभिव्यञ्जना से युक्त (पुरोनुवाक्या), अर्थात् 'अग्निना रयिमश्नवत्-----' (ऋ.वे. 1.1.3) एवं गायस्फानो अमीवहा..... (ऋ.वे. 1.91.12), मै.सं. 4.10.4; 5.1.3.18; दो आज्यभागों के लिए प्रयुक्त।

ररांटी स्त्री. ललाट की पोटली (हविराधान मण्डप के प्रवेश-द्वार के अग्रभाग में जटित), मा.श्रौ.सू. 2.3.2.27; मरोड़ी हुई (वरी हुई) इषिका संज्ञक घास की माला से निर्मित एक त्रिकोणिका हविराधान के सम्मुख दो खम्भों पर लटका दी जाती है, ररांटी को इसमें सिल दिया जाता है आप.श्रौ.सू. 11.8.1; हविराधान-मण्डप के अग्रभाग से लटकता हुआ वरी हुई घास का एक मालाकार पुलिन्दा, हि.आ.ध. 2.2.1154।

रवत् वि. (रु + शतृ) रंभाता हुआ (रवते जुहोति), भा.श्रौ.सू. 8.14.17; द्रष्टव्य—रुयात्, 8.14.8।

रशना स्त्री. यूप के चारों ओर लपेटने के लिए प्रयुक्त दो लड़ी वाली, दो व्यायामों की नाप वाली दर्भ-संज्ञक घास से बीनी गई (ग्रथित) रस्सी, आप.श्रौ.सू. 7.11.2 (पशु०)।

रशनाकाल पु. (रशनायाः बन्धनस्य कालः) वह समय, जब यज्ञीय खम्भे में रस्सी बाँधी जाती है, आप.श्रौ.सू. 18.1.12।

रशनागुण पु. (रशनायाः गुणः) रस्सी का फेरा = घुमाव अथवा लड़ी (यज्ञीय खम्भे = यूप में रस्सी को तीन फेरा लपेटा जाता है), भा.श्रौ.सू. 7.9.6।

रहस्येष्टि = मृगारेष्टि।

राक्षस वि. (रक्षसाम् इदम्) रक्षस् से सम्बद्ध (कृत्य), का.श्रौ.सू. 1.10.14।

राक्षोघ्न पु. कृणुष्व पाजः प्रसितिम्-----आदि, तै.सं. 1.2.14.1, 2 से प्रारम्भ होने वाले पाँच मन्त्रों का पारिभाषिक नाम, इसका वाचन होता द्वारा अग्निमन्थन के समय किया जाता है, यदि प्रथम प्रयास में अग्नि उत्पन्न नहीं हुई हो (आप.श्रौ.सू.हौत्र); श्रौ.को. (अं.) 1.813।

राक्षोघ्नी स्त्री. (रक्षोघ्न + ङीप्) अग्नी रक्षायै सेधति----तै.ब्रा. 2.4.1.6 इस ऋचा का नाम, जिसका उच्चारण अग्निमन्थन के समय किया जाता है यदि प्रथम प्रयत्न में अग्नि न उत्पन्न हुई हो, कात्या हौत्र परि. 3.1.4; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) II.87।

राज पु. (एक सवन-दिन वाले) एक सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.5.1।

राजक्रयणीयपदार्ध न. (राजक्रयणीयाया: पदस्य अर्धम्) जिस गाय से सोम का क्रय होता है, उसके पद-चिह्न का आधा, मा.श्रौ.सू. 2.2.2.15।

राजगवी स्त्री. = अनुस्तरणी।

राजन न. एक साम का नाम 'इन्द्रं नरो मेमधिता हवन्ते', आदि पर, ला.श्रौ.सू. 3.12.7; श्रौ.को. (सं.) II.97; ऋ.वे. 7.27.1।

राजसूय पु. (राज्ञा सोतव्य:, राजा वेह सूयते, काशि. राजसूयसूर्य-मृषोद्य, पा. 3.1.114) 'राजा का जन्म'; राज्याभिषेक का कृत्य (एक याग) जिसका अनुष्ठान केवल क्षत्रिय ही कर सकता है (ला.श्रौ.सू. 9.1.1)। यह दो वर्ष से अधिक समय तक चलता है जिसका प्रारम्भ फाल्गुन महीने के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (प्रथम दिन) को होता है। प्रारम्भिक भाग का शुभारम्भ पाँच दिन तक चलने वाले पवित्र सोम-याग से होता है, जिसके बाद एक के बाद एक के क्रम से इष्टियों का अनुष्ठान होता है : अनुमति, चातुर्मास्य (एक वर्ष में साध्य), इन्द्रतुरीय, पञ्चवीतीय (अथवा पञ्चमेधीय, अपामार्गहोम, रत्निनां हवींषि (12 दिन तक चलने वाला), मित्र एवं बृहस्पति के लिए इष्टि। अभिषेचनीय कृत्य राजसूय का मुख्यस्थानीय (केन्द्र अथवा सार) है। तब अच्छी तरह से तैयार किये गये अभिषेक जल को शाही यजमान के ऊपर उड़ेला जाता है। जलों के विसर्जन के समय 'नामव्यतिषङ्गनीय' कृत्य का अनुष्ठान किया जाता है। उसके बाद वाजपेय की तरह रथदौड़, अपने सम्बन्धियों के ही 100 या उससे अधिक के झुण्ड पर झपट्टा सम्पन्न होता है। वह गायों को अपने अधिकार में कर लेता है किन्तु पुन. उन्हें वापस दे देता है। वह रत्नियों से घिरे अग्नीध्र के सम्मुख रखे सिंहासन पर बैठता है। अक्षवाप द्वारा चिह्नित स्थान पर द्यूतक्रीडा का कृत्य सम्पन्न होता है। सदैव राजा जीतता है। इसके बाद शुन: शेप की आख्यायिका का वाचन किया जाता है? अभिषेचनीय के बाद अगले दस दिन 'संसृपां हवींषि' नाम की दस इष्टियां एक प्रत्येक दिन (करके) अनुष्ठित होती हैं, यह अनुष्ठान उसे 'दशपेय'-संज्ञक 'सोम-याग' के लिए दीक्षित बनाता है; दशपेय के अवभृथ के पश्चात् राजा को एक वर्ष के लिए कुछ निश्चित व्रतों (देवव्रतों) का पालन करना होता है जिसके अन्त में केशवपनीय (अतिरात्र) सोम-याग का अनुष्ठान किया जाता है। दक्षिणा के रूप में प्रधान पुरोहितों को प्रत्येक को 32000 गायें; द्वितीयिन् लोगों में प्रत्येक को 16000 गायें, तृतीयिन् लोगों में प्रत्येक को 8000 एवं पदिन् लोगों में प्रत्येक को 4000 (चार हजार) गायें अभिषेचनीय में बांटी जाती हैं, आश्व.श्रौ.सू. 9.43-5; बौ.श्रौ.सू. 18.8-22; का.श्रौ.सू. 15.1-9; आश्व.श्रौ.सू. 9.3-4।

राजसूयसोम पु. (बहु.व.) (राजसूये विहिता: सोमा:) राजसूय यज्ञ के भीतर विहित सोमयाग, का.श्रौ.सू. 14.1.7 (सर्वाग्निष्टोमैर्वा राजसूयसोमै:)।

राजा पु. (राजन् + प्र.ए.व.) 1. राजा, आप.श्रौ.सू. 2.16.10, आदि; 2. सोम-लता, आप.श्रौ.सू. 10.3.7, आदि।

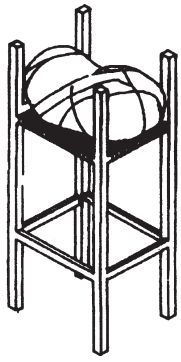

राजासन्दी

राजासन्दी स्त्री. सोम राजा के लिए निर्मित चौपाया (कुर्सी)।

राजीवती स्त्री. धारीदार (गाय), मा.श्रौ.सू. 9.4.2.26।

रात्रिकर्मिन् पु. (रात्रौ कर्म अस्य) सेवक, (संख्या में चार), जो रात्रि के समय यज्ञीय-कार्य में ऋत्विजों की सहायता करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 15.22 (अश्वमेध यज्ञ)।

रात्रिपर्याय पु. (रात्रौ पर्याय:) गायन का रात्रिकालीन चक्र, द्रष्टव्य पर्याय।

राथन्तरी स्त्री. (रथन्तर + अण् + ङीप्) रथन्तर साम की आधारभूत ऋचा, ऋ.वे. 3.12.1; श्रौ.को. (सं.) I.200।

राम पु. शूद्र, भा.श्रौ.सू. 11.12.9 (नास्य रामोच्छिष्टं पिबेत्)।

राशिमराय न. एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.ii. (इण्डेक्स)।

राष्ट्रभृत् न. अग्नि प्रज्ज्वलित करने के बाद मध्य युग-शलाका, जो अन्य दो के साथ परिधि के रूप में प्रयुक्त होती है, पर दी जाने वाली आहुति के एक प्रकार का नाम। आहुतियां रात्रि के समय 'ऋतषद् ऋतधामा तस्मै स्वाहा' एवं 'तस्यौषधयो ताभ्यः स्वाहा' के साथ दी जाती हैं। ये आहुतियाँ रथ के अग्र भाग पर अथवा रथ के पहिये के धुरी के छिद्र में दी जा सकती हैं, श्रौ.को. (अं.) I.i.202-5; बौ.श्रौ.सू. 14.17-18; सत्या. श्रौ.सू. 22.1.31।

रास्ना स्त्री. महावीर पात्र पर चारों ओर उकेरा गया रज्जु से मिलता-जुलता मिट्टी का किनारा, आप.श्रौ.सू. 15.3.3 (प्रवर्ग्य)।

रिक्तलेप पु. (रिक्तस्य लेपः) (चावल का पिण्ड बनाने के बाद बचे हुए ओदन) का हाथ पर लेपन, आप.श्रौ.सू. 8.16.8 (पितृयज्ञ)।

रिक्तातिथि स्त्री. वह विशिष्ट दिन (जिस दिन) सन्यास-विधि के लिए सङ्कल्प पढ़ा जाता है, हि.आ.ध. 2.2.958।

रीतिवाद पु. (रीतेः वादः) ईंटों की शृंखला की विधि अथवा चयन की दिशा का सङ्केत करने वाली अभिव्यञ्जना, आप.श्रौ.सू. 16.21.9।

रुक्म पु. एक स्वर्ण-पट्टिका, मा.श्रौ.सू. 9.1.3.1; दो पट्टिकायें एक स्वर्ण-निर्मित और दूसरी रजत-निर्मित, भा.श्रौ.सू. 11.5.19. महावीर पात्र के नीचे रजत-पट्टिका एवं ऊपर स्वर्ण-पट्टिका रखी जाती है, भा.श्रौ.सू. 7.7;8.6 (प्रवर्ग्य); यजमान द्वारा पहना गया एक सोने का आभूषण (राजसूय), का.श्रौ.सू. 15.8.24 (रुक्मः परिमण्डलः सौवर्ण आभरण-विशेषः, स.वृ.)।

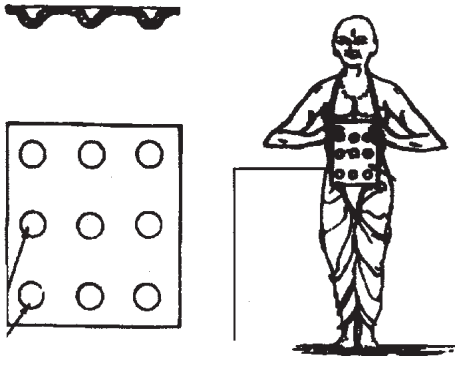

रुक्म

रुक्मप्रतिमुक्त वि. (रुक्मः प्रतिमुक्तः येन) स्वर्णाभूषण युक्त (पहने हुए) घोड़ा, मा.श्रौ.सू. 3.7.3 (आश्विन शस्त्र के समय सूर्य का स्थानापन्न)।

रुग्णवती स्त्री. शत्रुओं से युक्त व्यक्ति के प्याले के ग्रहण के समय प्रयुक्त एक ऋचा का नाम, बौ.श्रौ.सू. 7.6-7।

रुचितवती स्त्री. (रुचित + मतुप् + ङीप्) 'रुचित' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त एक ऋचा का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.85; ऋ.वे. 9.83.3।

रुद्र पु. एक देवता का नाम (= शिव) मा.श्रौ.सू. 11.7.1.1; रुद्राभिषेक।

रुद्राभिषेक

रेतःसिग्वेला स्त्री. (रेतःसिचः वेला) 'रेतःसिच्' नाम वाली ईंटों का बाहरी किनारा = सीमा (अश्विनी-इष्टकाओं को दूसरी तह में लगाया जाता है), का.श्रौ.सू. 17-8.1।

रेतस्या स्त्री. बहिष्पवमान की प्रथम ऋचा, जै.ब्रा. 253, 265।

रैवत न. एक साम का नाम, चिन्नस्वामी, 126-27।

रोगहीन वि. (रोगेण रोगाद् वा हीनः) रोग के कारण छोटा, (यजामन), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.1।

रोदाका स्त्री. कल्याणकारी जल तैयार करने के लिए 'आंगिरस' द्रव्य के रूप में ज्ञात द्रव्यों में एक का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.37 (वैता. सू. 5)।

रोह पु. (रुह् + घञ्) (इच्छा का) आरोहण, भा.श्रौ.सू. 5.1.8 (आधानरोहिणी)।

रौद्र पु. प्रायश्चित्तिक कृत्य में ('अभय' मन्त्र के पश्चात् उच्चारित) मा नो विद्वान्----- अ.वे. 1.19.1-2 मन्त्र का नाम, अ.वे. प्राय. 2.4।

रौद्र्यर्च स्त्री. (रुद्रस्य इयम् ऋक्,) रुद्र को सम्बोधित ऋचा, अर्थात् 'इमा रुद्राय-----' आप.श्रौ.सू. 15.18.5।

रौहिण पु. रौहिण-कपाल संज्ञक कपाल के दो गोलाकार अश्वाकृति खण्डों पर तैयार किये गये दो पुरोडाशों का नाम (आप.श्रौ.सू. 15.3.12)। इन पुरोडाशों की प्रात: अग्नि में दिवस के लिए एवं सायंकाल के समय रात्रि के लिए आहुति दी जाती है, 15.5.20 (प्रवर्ग्य)।

रौहिणक न. प्रवर्ग्य में द्वितीय रौहिणेय-संज्ञक पुरोडाश की आहुति देते समय गाये जाने वाले साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 1.6.27-37।

रौहिणकपाल न. (द्वि.व.) रौहिण कपालों का युग्म (जोड़ा), भा.श्रौ.सू. 11.15.20।

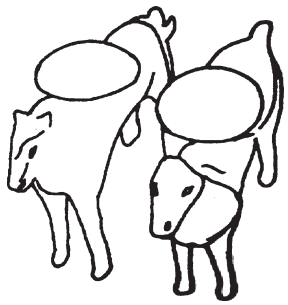

रौहिणकपाल

रौहिणस्तोम पु. रौहिण पुरोडाशों की प्रशस्ति (स्तोम), मा.श्रौ.सू. 4.3.45।

रौहिणवहणी स्त्री. (द्वि.व.) (रौहिणौ उह्येते याभ्याम्) रौहिण पुरोडाशों की आहुति देने के लिए प्रयुक्त दो करछुलें, भा.श्रौ.सू. 11.15.10 (प्रवर्ग्य में); अवनिष्कीर्णे।

रौहिणहोम पु. (उत्तरी) रौहिण पुरोडाश की आहुति प्रदान करना, भा.श्रौ.सू. 11.11.9 (प्रवर्ग्य में शकलहोम)।

ल

लकुट न. काष्ठ का कुन्दा अथवा टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 10.27.7; भा.श्रौ.सू. 10.17.18।

लक्षण न. (लक्ष् + ल्युट्) लक्षण, चिह्न (प्राचीनवंश की बीच की धरन के पूर्व यज्ञीय भूमि पर निर्मित, जहाँ 'ब्रह्मौदन' पकाने के लिए अग्नि को रखने के लिए खनने का कार्य किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.5.1.13; चिह्न, निशान, बौ.शु.सू. 22।

लक्षिका वि. चिह्नों से युक्त (द्वादशत्रिका, अर्थात् 36 प्रक्रमों के बराबर नाप वाली रस्सी), मा.श्रौ.सू. 10.1.3.4।

लग्न वि. (लग् + क्त) मध्य में सिकुड़ा हुआ (महावीर), बौ.श्रौ.सू. 9.3।

लयजग्ध वि. (लयेन जग्धः) विनाश अथवा क्षय द्वार भुक्त (यूप-वृक्ष), मा.श्रौ.सू. 8.12.2।

ललाटिक वि. प्राचीनवंश की अग्रिम (पंक्ति), आप.श्रौ.सू. 11.4.12।

ललाम वि. चेहरे पर श्वेत धब्बे से युक्त (बैल), मा.श्रौ.सू. 5.2.10.44।

लस्पूजनि स्त्री. बड़ी सूचिका (सूई), का.श्रौ.सू. 8.4.18 (लस्पूजनिप्रतिहृतया रज्ज्वा परिषीव्यति); (मराठी में 'दाभण'।

लाङ्गलबन्धम् क्रि.वि. हल के बन्धन की तरह, मा.श्रौ.सू. 2.1.4.5।

लाङ्गूलवादिन् वि. (लाङ्गूलेन वादः अस्यास्ति) पूंछ से बजाया जाने वाला या पीटा जाने वाला (ढोल), मा.श्रौ.सू. 7.2.7.9।

लाजा स्त्री. तला हुआ अथवा भूना हुआ चावल (लाई, लावा) आप.श्रौ.सू. 12.4.10।

लेखा स्त्री. (लिख + घञ् + टाप्) वेदि के भीतर 'स्फ्य' से खींची गई रेखा (यें), आप.श्रौ.सू. 1.25.14 (दर्श); ईंटों पर (खींची गई रेखा) 16.34.1 (चयन); उस स्थण्डिल पर खींची गई रेखा जिस पर अग्नि रखी जाती है। तीन पूर्व में एवं तीन उत्तर में, आप.गृ.सू. 18.10; तुल. आश्व.गृ.सू. 1.3.1; शां.गृ.सू. 1.7.6-7।

लेखाधिकार पु. (लेखस्य अधिकारः) (ईंटों की) रेखा अथवा आकृति का विवरण प्रस्तुत करने वाला (आप.श्रौ.सू. का) ग्रन्थ-भाग, आप.श्रौ.सू. 16.34.1 [दक्षिणावृतः, दक्षिणतः सव्यावृतः ऋजुलेखाः पश्चात् पुरस्ताच्च त्र्यालिखिताः मध्ये]।

लेखासमर न. मेहराबों को लांघने का बिन्दु (आप.शु.सू. 9.1)।

लेप पु. (लिप् + घञ्) पुरोडाश में चिपकने वाले आटे अथवा घृत का लेपन, आप.श्रौ.सू. 3.2.7; चम्मच में चिपकने वाला, बौ.श्रौ.सू. 3.6. बर्हिस् पर पोंछा (सरकाया) जाता है, भा.श्रौ.सू. 6.13.9; तुल. पिष्टलेप।

लोक पु. (लोकृ + घञ्) रिक्तस्थान (बालखिल्यलोकं पश्चात् शिष्ट्वा), का.श्रौ.सू. 17.9.8-9, सप्त. (बहु.) क्षेत्र (अर्थात् चारों दिशाओं एवं मध्य में द्वितीय तह में 5 अश्विन् ईंटें रखी जाती हैं), मा.श्रौ.सू. 6.2.1.2।

लोकप्रत्यय (लोकस्य प्रत्ययः) 1. लोक-विश्वास, लोगों के बीच प्रचलित, सामान्य अनुभव, का.श्रौ.सू. 13.1.9 (लोकप्रत्ययात्)।

लोकम्पृणा स्त्री. लोष्टचिति के चयन के लिए प्रयुक्त ईंटों का नाम, बौ.श्रौ.सू. 1.14.16; वे 'लोकम्पृण छिद्रं पृणो अथो---' इस मन्त्र से इस प्रकार चिनी जाती हैं कि ईंटों की संख्या 1000 हो (पहले से चिनी हुई प्रत्येक दिशा में 100 एवं मध्य में 200 ईंटों के सहित)। श्रौ.को. (अं.) 1.1096, 699, 1103; आप.श्रौ.सू. 16.14.9; वास्तव में इनका प्रयोग अन्य ईंटों के बीच में खाली स्थान को भरने के लिए होता है। ईंटों को मन्त्र के साथ भी योजित किया जाता है और इन ईंटों को यजुष्मती भी कहा जाता है (चयन)।

लोकाग्नि पु. चात्वाल से खोदी गई मिट्टी। (लोकाग्नि के चयन का अर्थ है चत्वाल से खोदी गई मिट्टी का उत्तरवेदि के ऊपर चयन) श्रौ.को. (अं.) 1.788 (बौ.श्रौ.सू. 4.1-2; 20.25, 24. 34-36)।

लोभ पु. (लुभ् = लुप् + घञ्) मिटाना (यथापदलोभं स्तृणन्ति), मा.श्रौ.सू. 2.2.4.12 (वे वेदि पर घास इस प्रकार फैलाते हैं कि पदचिह्न मिट जाएं)।

लोभन न. (लुभ् = लुप् + ल्युट्) चिह्न मिटाने के लिए प्रयुक्त घास, मा.श्रौ.सू. 1.3.5.23।

लोभयेत् (लुभ् = लुप् + णिच् + विधिलिङ्प्र.पु.ए.व.) उन्मूलन करना चाहिए अथवा नष्ट करना या मिटाना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 9.10.16।

लोमन् न. (कौकिल सौत्रामणी में यव के दानों से मिश्रित भेड़िये, चीता, सिंह के) बाल या रोम, मा.श्रौ.सू. 5.2.11.16, 'बर्हिस्'-संज्ञक घास, आप.श्रौ.सू. 11.3.1।

लोमश वि. (लोमन् + श) घास से भरा हुआ, आप.श्रौ.सू. 10.5.15; 10.3.21 (सोम-याग के लिए स्नान करने का स्थान)।

लोष्ट पु. मिट्टी का ढेला, मा.श्रौ.सू. 6.1.6.4; कीचड़ का ढेला, बौ.श्रौ.सू. 6.25।

लोष्टचिति स्त्री. मृत अग्निहोत्री के अग्रभाग पर चिना गया चबूतरा, श्रौ.को. (अं.) 1.1083 = श्मशानकरण, भा.पि.मे. 2.2-5; मृत व्यक्ति की अस्थियों के ऊपर एक टीले में मिट्टी के ढेलों अथवा अपक्व = कच्ची (आम) ईंटों के चयन का कृत्य। सामने गर्दन के बराबर ऊँची एवं पृष्ठभाग में नाभि के बराबर ऊँचाई वाली, बौ.पि.मे. 1.14-16. किसी विषम संख्या वाले दिन के बाद अस्थियों को सञ्चित किया जाता है, भा.पि.मे. 2.2.1,4. ग्राम एवं श्मशान भूमि के बीच में एक छप्पर का निर्माण किया जाता है, और भूमि में तीन कीलें गाड़ दी जाती हैं। वाजिन् 'झाग' एवं दधि से पूर्ण एक सौ छिद्रों वाला (शततृण्ण) घट इसके ऊपर लटका दिया जाता है। द्रव को अस्थियों के ऊपर धारा रूप में बहाया जाता है। अस्थियों को 'धुवन' नाम वाले एक चमड़े के टुकड़े से पंखा (हवा) झलते हैं; अन्त्येष्टि स्थल पर जल छिड़का जाता है, झाड़ू लगाकर (उसे) स्वच्छ किया जाता है, एक रस्सी से नापा जाता है; कौ. सू. कई अन्य कृत्यों का विधान करता है (83-86)। भूमि जोती जाती है। अस्थियों को घी से मिश्रित किया जाता है एवं मनुष्य की शरीर रचना के अनुसार व्यवस्थित किया जाता है, भा.पि.मे. 2.4.26-27. कलश कूड़युक्त हल के भीतर रख दिया जाता है और ओदन एवं अपूपों (शर्करा) एवं बालुका से जड़ दिया जाता है; विभिन्न दिशाओं में 1000 ईंटें रखी जाती हैं, बौ.पि.मे. 1.9.4-7; ऋ.वे. 10.18.12 एवं 13 खम्भों एवं थूनों (स्थूणा) का अस्थियों द्वारा निरूपित पितरों के आश्रय एवं सम्बल (आलम्ब) के रूप में उल्लेख करता है।

लोहशकल न. (लोहं च तत् शकलम्) लाल टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 5.2.3 (आधान-सम्भार) उदुम्बर का।

लोहितपचनीय वि. जिसके माध्यम से (जलाये जाने पर) अन्य धातु भी लाल हो जाती है, आप.श्रौ.सू. 15.3.20; महावीर लाल हो जाता है या लाल रंग में परिवर्तित हो जाता है, भा.श्रौ.सू. 11.1.14.16।

लौकिक वि. (लोके भवः प्रसिद्धो वा, लोक + ठञ्) सामान्य (अग्नि), का.श्रौ.सू. 1.1.14 ('वैतानिक' अग्नि के विपरीत); [गर्दभेज्या]; इसका उत्पत्ति-स्थान ब्रह्मौदनिक अथवा गार्हपत्य माना गया है, आप.श्रौ.सू. 5.13.8; दक्षिणाग्नि के आधान (स्थापन) के लिए प्रयुक्त, वही।

व

वंश पु. 1. बीच में खाली स्थान (चिति की ईंटों के बीच अथवा एक दूसरे से 12 अंगुल की दूरी पर तने के चारों पक्षों के समानान्तर रेखाओं के बीच), मा.श्रौ.सू. 10.2.3.1, 4-6; 10.2.4.1; 10.3.1.7; तुल. अनुवाद गेल्डर, पृ. 220, बाँस की धरन अथवा सरदल Lintel (यज्ञ-मण्डप के निर्माण के लिए प्रयुक्त); एक मध्य धरन होती है, जिसके सामने गार्हपत्य कुण्ड तैयार किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 5.2.3; हविराधान-मण्डप के आगे के भाग में स्थित) सरदल, जिस पर ररााटी लटकाई जाती है, 12.8.7; तुल. प्राचीनवंश।

वंशयात्रा स्त्री. (वंशस्य यात्रा) परिवार की जीविका, मा.श्रौ.सू. 11.3.4।

वक्रा वि. (स्त्री.) (वक्र + टाप्) टेढ़ी-मेढ़ी (ईंट), का.श्रौ.सू. 17.7.5; 'शेषेऽष्टौ वक्राः', का.श्रौ.सू. 17.1.16 (चयन गार्हपत्य)।

वंक्षण न. गोद का भाग, भा.श्रौ.सू. 14.14.7।

वङ्कु वि. वक्र, टेढ़ी-मेढ़ी, ऋ.वे. 1.114.4।

वज्रवती स्त्री. (वज्र + मतुप् + ङीप्) वज्र (शब्द) से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.115।

वडव पु. एक घोड़ा जिसके पुमान् (मर्द) होने पर भी दूसरा घोड़ा उस पर चढ़ता है, बौ.श्रौ.सू. 24.39।

वडवधेनु स्त्री. अश्वा, घोड़ी, 'त्रयस्त्रिंशतं दक्षिणा ददात्यनुशिशुं वडवधेनुम्, का.श्रौ.सू. 19.4.5 (सौत्रामणी में दक्षिणा)।

वडवाप्यय (वडवायाः अप्ययः) घोड़ी का आवरण; अश्वा से सम्मिलन, मा.श्रौ.सू. 9.2.2.9।

वण्ड वि. उचित वृद्धि से हीन (अज), आप.श्रौ.सू. 7.12.1।

वत्सजानु वि. (वत्सस्य जानु इव जानु यस्य) बछड़े की घुटने के आकार वाले घास का गुच्छा, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.1।

वत्सछवि स्त्री. (वत्सस्य छविः) बछड़े का लाल-चर्म, ला.श्रौ.सू. 8.2.1।

वत्सतर पु. बछड़ा, मा.श्रौ.सू. 1.6.4.28 (वत्सतरी = बछिया, मा.श्रौ.सू. 9.4.2.26)।

वत्सापाकरण न. (वत्सस्य अपाकरणम्) बछड़े को गाय के पास से दूर हटाना, श्रौ.को. (अं.) II.ii.828; श्रौ.प.नि. 12.79।

वध पु. प्रहार, आप.श्रौ.सू. 10.27.8 (रु. वधः प्रहारः)।

वध्र पु. चमड़े से निर्मित रस्सी, काशिकर 284 इण्डेक्स।

वनस्पतियाग पु. पशु. में वनस्पति के लिए आहुति के बाद यजमान का उच्चारण, श्रौ.प.नि. 137.106।

वनिष्ठु पु. (अग्नीध्र को दक्षिणा के रूप में दिये जाने वाले) एक पशु की लम्बी (बड़ी) आँत, मा.श्रौ.सू. 1.8.5.35; 5.2.12.31; छोटी आँत (?), भा.श्रौ.सू. 7.19.10, द्रष्टव्य-जौहव।

वनीवाहन न. वाहन पर उख्य-अग्नि का वहन करना (ढोना), का.श्रौ.सू. 16.2.22, 25 (चयन); चि.भा.से. : अग्नि प्रणयन के लिए प्रयुक्त एक शकट पर अग्नि-युक्त पात्र का आना और जाना।

वपा

वपा स्त्री. वपा, वध्य-पशु की नाभि के लगभग चार अङ्गुल नीचे स्थित, मांस से कतरा (काटा) हुआ एवं अध्वर्यु द्वारा हत पशु से काटा हुआ। इसका सबसे संकरा भाग आहवनीय अग्नि पर भूनने का लिए प्रतिप्रस्थाता द्वारा लिया जाता है और वपाहोम-पर्यन्त (वपा होम हो जाने तक) 'शमितृ' द्वारा पकड़ा या संभाला जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.19.2;

भा.श्रौ.सू. 7.14.11-12, 14-16; द्रष्टव्य—श्रौतको. (सं.) 1.574, 596।

वपामार्जन वपाहोम के पश्चात् स्वयं को अपने शिर एवं शरीर पर जल छिड़ककर स्वच्छ करना, का.श्रौ.सू. 9.8.12, श्रौ.प.नि. 133.84।

वपायाग (वपया वपायाः वा यागः तु. यजेश्चकरणे पा. 2.3.63) वपा की आहुति देना, ऋ.वे. 5.43.7।

वपाश्रपण न. (वपायाः श्रपणम्) वपा को भूनना, श्रौ.प.नि. 132.95।

वपाश्रपणी स्त्री. (द्वि.व.) (वपायाः श्रपणी) झिल्ली (शीर्षावरण) अथवा वपा को भूनने के लिए (प्रयुक्त) दो सीखचे, मा.श्रौ.सू. 1.8.3.26; 5.2.12.14।

वपोत्खेदन न. (वपायाः उत्खेदनम्) वपा को खींच निकालने का कृत्य, भा.श्रौ.सू. 7.14.11।

वपोद्धरण न. (वपा उद्धियते यस्मात् यस्मिन् वा) पशु के शरीर में स्थित वह स्थान जहाँ से वपा निकाली जाती है, आप.श्रौ.सू. 7.21.2; 7.19.3; वह छोर, जहाँ वपा निकाली जाती है, भा.श्रौ.सू. 7.14.16; मा.श्रौ.सू. 1.8.4.17. इसे 'शमिता' द्वारा एक मुट्ठी भर घास से आपूरित किया जाता है, द्रष्टव्य—श्रौ.प.नि. 131.68।

वयस् न. पशु, बौ.श्रौ.सू. 6.14; बदले में पशुओं को देने की घोषणा करना (क्रीतः सोम इत्याह सोमविक्रयी वयांसि व्याचक्ष्वेत्येषा ते सोमक्रयणी चन्द्रं ते छागा ते वस्त्रं त इति अथैनं हिरण्येन पणते)।

वयस्या स्त्री. अग्निवेदि में चिनी जाने वाली विशिष्ट ईंटों का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.1.6 (इनकी संख्या उन्नीस है; दक्षिणार्थ में चार और पाँच-पाँच अन्य तीन तरफ)।

वर पु. (वृ + अप् कर्मणि, व्रियते इति वरः) वरदान (अमुक वस्तु मुझे प्राप्त हो--- से यजमान वर का चयन करता है), मा.श्रौ.सू. 1.4.2.22; इष्ट (चाहा गया) उपहार, आप.श्रौ.सू. 5.11.5। यजमान द्वारा ऋत्विज् को दिया जाने वाला उपहार, 7.21.5; सर्वोत्तम दक्षिणा का अतिक्रमण करने वाला, अर्थात् कमतर मूल्य का उपहार, आप.श्रौ.सू. 5.11.5 [द्रष्टव्य **अतिवरति**; पुरोहितों के वरण = चयन के समय किसी व्यक्ति की उपेक्षा करने का कार्य करता है, अर्थात् किसी की उपेक्षा करके वरण करता है, बौ.श्रौ.सू. 24.12]।

वरण न. (वृ + ल्युट्) यजमान द्वारा ऋत्विजों का धार्मिक विधि से चयन, आप.श्रौ.सू. 11.19.10, सङ्गत मन्त्र भी, 10.1.13।

वरत्राकाण्ड न. (वरत्रायाः काण्डम्) तलवे से निर्मित चाबुक, आप.श्रौ.सू. 10.27.6 (रु. चर्मरज्जुकाण्ड); भा.श्रौ.सू. 10.18.13; बाँस का डण्डा, (हिरण्यं सहसाच्छिद्य पृषता वरत्रकाण्डेनाहन्ति वा), का.श्रौ.सू. 7.8.25 (भाष्य-वंश-दण्ड)।

वरस पु. सूजन, वृद्धि, मा.श्रौ.सू. 2.2.2.29; 'तेजन्यां मध्ये दर्भाणां वरसं करोति (छद्याधाने)।

वराहविहत न. (वराहेण विहतम्) सुअर द्वारा खोदी गई (मिट्टी), मा.श्रौ.सू. 4.1.9 (महावीर पात्र के निर्माण के लिए प्रयुक्त द्रव्यों में एक), भा.श्रौ.सू. 11.2.1; श्रौ.प.नि. 189.17।

वराहोपानह् स्त्री. (द्वि.व.) (वराहचर्मणः उपानत्) सुअर के चर्म से निर्मित जूते का जोड़ा, का.श्रौ.सू. 15.6.23 (राजसूय यज्ञ)।

वरुण न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.9.22 सा.वे. 1.355 पर आधृत, एक देवता का नाम।

वरुणनिर्देश पु. (वरुणेन निर्देशः) वरुण द्वारा (यज्ञ के स्थान का) निर्देशन, पृ. 228 *fn*; तु. आप.श्रौ.सू. 10.2.9 (निवर्तते आदितो वरुणनिर्देशश्च), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.8 (सत्रा); अनु-गेल्डर।

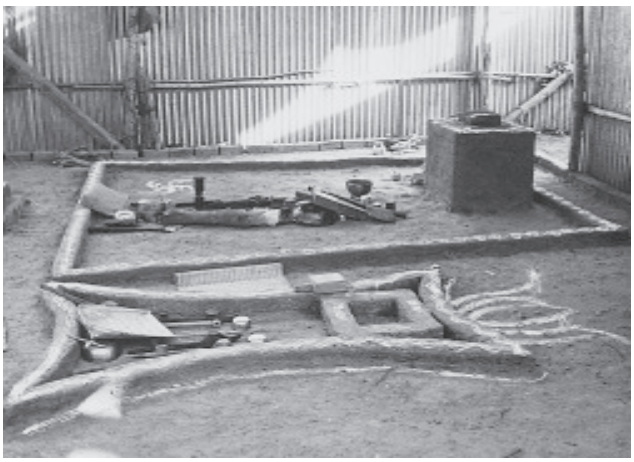

वरुणप्रघास उत्तरवेदि

वरुणप्रघास पु. चातुर्मास्य के अन्तर्गत द्वितीय पर्व का नाम, आप.श्रौ.सू. 8.9.23; द्रष्टव्य—चातुर्मास्य।

वर्गमूल न. (वर्गस्य मूलम्) वर्गमूल, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.10।

वर्ण पु. जाति (शाब्दिक-वर्ण=रङ्ग), भा.श्रौ.सू. 4.4.1; प्रथम तीन वर्ण श्रौत यज्ञ करने के अधिकारी हैं, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य, आप.श्रौ.सू. 24.1.2, का.श्रौ.सू. 1.1.6

(ब्राह्मणराजन्यवैश्यानां श्रुतेः); यज्ञ कराने का अर्थात् ऋत्विक् का कार्य करने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है, का.श्रौ.सू. 1.2.8 (ब्राह्मणा ऋत्विजो भवन्ति भक्षप्रतिषेधादितरयोः); भा.श्रौ.सू. 4.4.1; द्रष्टव्य—रेनू लुई, Publ. de L' Inst Francias d' Indologie, पाण्डिचेरी 1958, 69।

वर्तन न. (वृत् + ल्युट्) (हविराधानशकट का) आगे जाना, प्राक्-सञ्चरण, का.श्रौ.सू. 8.4.2 (प्राङ् नयनम्, स.वृ.)।

वर्ति स्त्री. चक्राकार चिह्न, का.श्रौ.सू. 16.3.30 (उखा के चारों ओर निर्मित)।

वर्त्मन् न. (वृत् + मन्) (कृ = बनाना के साथ) एक मार्ग (एक मार्ग बनाते हुए पश्चिम की तरफ काष्ठीय तलवार (स्फ्य) से वेदि को चिकना बनाना, मा.श्रौ.सू. 1.2.4.22।

वर्षाधृत वि. (वर्षासु धृतम्) वर्षा-ऋतु के समय पहना जाने वाला (परिधान), का.श्रौ.सू. 4.6.16।

वर्षाभू स्त्री. एक वनस्पति (जिसका प्रयोग कारीरीष्टि में किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 13.37:40।

वर्षिष्ठ वि. (वृद्ध+इष्ठन्, प्रियस्थिर पा. 6.4.157 से वर्षि आदेश) सबसे ऊँचा (यज्ञीय स्तम्भ), का.श्रौ.सू. 8.8.22 (वर्षिष्ठाद्दक्षिणं वितष्टं द्वादशं निदधाति------)।

वर्षिष्ठरशन वि. (वर्षिष्ठा रशना यस्य सः) सघनतम रस्सी (से बाँधा हुआ), सघनतम रस्सी वाला, का.श्रौ.सू. 16.1.9 (वर्षिष्ठरशनः पुरुषः पञ्चपशून् आलभेत)।

वर्षीयस् वि. (स्त्री.) (वृद्ध + इयसुन्) लम्बाई (क्षेत्र आदि) में विस्तृततर, (बौ.शु.सू. 1.50); अपने दक्षिणी भाग में विस्तृततर (अथवा उभरी हुई ?), भा.श्रौ.सू. 2.2.12 (दर्श की वेदि)।

वलजा स्त्री. अनाज अथवा घास का ढेर, आप.श्रौ.सू. 3.4.8।

वल्मीकवपा स्त्री. चींटी की बाबी की मिट्टी, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.12; 4.1.9.11; 5.1.8.13; 6.1.2.24; 8.6.5; 9.1.1.17; भा.श्रौ.सू. 5.5.5; प्रवर्ग्य में प्रयुक्त, श्रौ.को. (सं.) II. 514।

वल्श पु. प्रशाखा अथवा अङ्कुर ('शतवल्श' शब्द में), मा.श्रौ.सू. 1.1.1.38. (बर्हिस्)।

वशा स्त्री. 1. वन्ध्या गाय ('उदयनीय' में मित्र और वरुण के लिए एक अथवा तीन वशायें अर्पित की जाती है), भा.श्रौ.सू. 14.24.11-12 (सोम); 2. चयन में प्रयुक्त ईंट (टों) का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.32.4।

वशाचर्मन् न. (वशायाः चर्म) वन्ध्या गाय का चमड़ा, का.श्रौ.सू. 13.3.13 (गवामयन में वेदि के चारों ओर गमन करते हुए चार योद्धाओं = क्षत्रियों द्वारा इसे बींधा जाता है।

वशापृश्नि (वशा चेयं पृश्निः च) वन्ध्या एवं अनेक वर्ण वाली, 'अतिरात्रपशून् उपाकृत्य वशापृश्निं----', का.श्रौ.सू. 14.2.11 (वाजपेय अश्वन्ध्या)।

वषट् (दीर्घतरता अथवा प्लुत के द्वारा वौषट्) सभी याज्याओं और अनुयाज्याओं के अन्त में (होता द्वारा) उच्च स्वर में उच्चारित एक रहस्यात्मक उद्गार, आश्व.श्रौ.सू. 1.5.5, जिसके बाद अध्वर्यु अग्नि में आहुति डालता है। इसका उच्चारण अध्वर्यु को करना चाहिए, 1.5.18. यह किसी सोमपान एवं हविःशेष में भाग पाने की अर्हता प्रदान करता है; 'वषट्कर्तुः प्रथमो भक्षः'; द्रष्टव्य, ओझा म. यज्ञ, जयपुर 1951, पृ. 139 = **० कार**।

वषट्कर्तृ पु. (वषट् करोति इति) वह ऋत्विज् जो 'वषट्कार' करता है। उसे एक धिष्ण्या की सुविधा प्रदान की जाती है। वे 'चमसिन्' लोग हैं, जिनसे अध्वर्यु 'अनुवषट्' का उच्चारण करने के लिए पूंछता है। वे होत्रक भी होते हैं।

वषट्कार = वषट्, आप.श्रौ.सू. 2.16.2 (स्वाहा)। पितरों के लिए इसके स्थान पर 'स्वधा नमः' का प्रयोग किया जाता है।

वषट्कारनिधन न. (वषट्कारे निधनं यस्य तत्) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.1.1 सा.वे. 1.256 पर आधृत।

वसतीवरी स्त्री. रात भर रखे गये जल का पारिभाषिक नाम। इस नाम का जल सुत्या दिन के पूर्व दिन सूर्यास्त से पहले किसी पर्वत-चोटी से आने वाले स्रोत से धारा के विपरीत घड़े को डुबाकर निकाला जाता है, आप.श्रौ.सू. 11.10.5. अध्वर्यु इसे अग्नि एवं वेदि के चारों ओर ले जाते हैं, 11.21.3-5; बाद में इसे 'एकधना' - संज्ञक जल से मिश्रित किया जाता है; निग्राभ्या के साथ रूपान्तरित किया जाता है एवं सोम-रस निकालने में प्रयुक्त होता है, आप.श्रौ.सू. 11.20.5 घट को वसतीवरी - कलश कहा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 8.8।

वसा स्त्री. वह चर्बी जो पशु के मांस से प्राप्त होती है और जिस समय मांस पकाया जाता है यह तल पर तैरने लगती है (ऊपर उतरा आती है) पशु. में वसा की एक आहुति दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 7.25.1।

वसासन्देह पु. (वसानां सन्देहः) पशु-एकादशिनी में विभिन्न वध्य पशुओं की वसाओं का संशय, का.श्रौ.सू. 8.8.31 (न, वसासन्देहात्)।

वसाहोमहवनी स्त्री. (वसाहोमः हूयतेऽनया सा) शोरबे की आहुति देने (वपाहोम) के लिए प्रयुक्त करछुल, मा.श्रौ.सू. 1.8.5.16; 23; चि.भा.से. 'वसाहोम' के लिए द्वितीय जुहू का नाम, आप.श्रौ.सू. 8.3; भा.श्रौ.सू. 7.6.6।

वसाहोमोद्रेक पु. (वसाहोमस्य उद्रेकः = शेषः) मांस के तैलीय भाग का अवशेष (– द्रेकेण दिशः प्रति यजति); भा.श्रौ.सू. 7.20.8।

वसिष्ठ पु. एक एच्छिक यज्ञ का नाम, जिसमें अमावस्या के दिन दर्श एवं पूर्णमास यज्ञ एक दूसरे के बाद अनुष्ठित होते हैं। पूर्णमास यज्ञ का अनुष्ठान पौणमासी के दिन नहीं करना चाहिए, शां.श्रौ.सू. 3.8.2; 3.11.1-6. देखे – दाक्षायण यज्ञ, श.ब्रा. 2.4.4.2।

वसिष्ठस्य जनित्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 7.2.3 सा.वे. 1.241 पर आधृत; द्रष्टव्यः – निह्नव, पञ्च.ब्रा. 5.4.5 (सा.वे. 1.313 पर आधृत); – **प्रिय**, पञ्च.ब्रा. 12.2.9 (सा.वे. 1.244 पर)।

वसोर्धारा स्त्री. (उदुम्बर की लकड़ी से निर्मित कोमल हत्थे से युक्त एक लम्बी करछुल से) वेदि पर गिरायी जाने वाली दुग्ध अथवा आज्य (शाब्दि. धन) की सतत अथवा अविच्छिन्न धारा, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.24; आभ्युदयिक श्राद्ध में पितरों को अर्पणीय, मा.श्रौ.सू. 11.9.3.6; आप.श्रौ.सू. 17.17.8 (चयन)।

वसोर्धारा

वहिनीदधि न. (वहिन्याः दधि) बैलगाड़ी खींचने वाली गाय के दुग्ध से प्राप्त होने वाली दही, का.श्रौ.सू. 15.1.19 (अनो वहति इति वहिनी गौः। तस्याः दधि---, स.वृ.)।

वाकोवाक्य न. धर्मशास्त्रीय उपदेश अथवा वाद जिसे ब्रह्मोद्य कहा जाता है (जैसा कि वा.सं. 23.9-12 और 45.62 में), श.ब्रा. 11.5.6.8; हि.आ.ध. ii.i.701।

वाग्यमन न. (वाचः यमनम्, यमन = यम + ल्युट्) वाणी पर संयम, वाक्संयम (मौन), जिसका पालन यज्ञों के विभिन्न स्तरों (अवसरों) पर अध्वर्यु, ब्रह्मा एवं यजमान को करना पड़ता है : दर्श में प्रणीता-प्रणयन से लेकर 'हविष्कृद्' को बुलाने तक, आप.श्रौ.सू. 1.16.7-19.8. अध्वर्यु गाय दुहने से होम-पर्यन्त वाग्यमन का पालन करता है, का.श्रौ.सू. 4.14.31 (वाग्यतो दोहप्रभृत्याहोमात् क्षीरहोता चेत्)। आप.श्रौ.सू. 1.12.5 के भाष्यानुसार 'वाचं यच्छति' का अर्थ है मन्त्रातिरिक्त एक भी शब्द न बोलना। ब्रह्मा कर्मकाण्ड की सभी सेवाओं में मौनव्रत का पालन करता है, आप.श्रौ.सू. 3.18.6, अथवा उन सेवाओं में जिनमें (दूसरे ऋत्विजों द्वारा) मन्त्र का प्रयोग किया जा रहा हो, आप.श्रौ.सू. 1.12.7; भा.श्रौ.सू. 3.15.6 (वाचंयमः); का.श्रौ.सू. 2.2.2 (वाग्यत वाऽनुयाजप्रसवात्); भा.श्रौ.सू. 3.24. अध्वर्यु इसका पालन सोम० में दीक्षा के अङ्ग के रूप में करता है, बौ.श्रौ.सू. 6.5; इसका उल्टा है 'वाचोऽवसर्गः', द्र. – आश्व.श्रौ.सू. 1.5.35-37 एवं 'वाचो विसर्जनम्', शु.य.1.15।

वाच् स्त्री. 1. (उच्यते या सा, वच् + क्विप्) 1. अग्निवेदि में चिनी जाने वाली विशिष्ट ईंट (टों) का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.10; 2. वाणी; एक देवता (वाग्देवता) के रूप में स्वीकृत, श्रौ.को. (सं.) 1.665, 691; का.श्रौ.सू. 14.2.14 (वाजपेय); वाङ्निधन।

वाचन न. (वच् + णिच् + ल्युट्) मन्त्रों का वाचन करवाना, यजमान के कार्यों में एक, का.श्रौ.सू. 1.10.12; 14.3.19 (वाजपेय)।

वाचस्सामन् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.5.12 सा.वे. 1.580 पर आधृत।

वाचाकर्मीण वि. विहित अभिव्यञ्जनाओं अथवा मन्त्रों के वाचन द्वारा अनुष्ठित (एक कृत्य), आप.श्रौ.सू. 8.5.17।

वाजजित् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.9.20 सा.वे. 1.517 पर आधृत; पञ्च.ब्रा. 15.11.11 सा.वे. 1.554 (भी)।

वाजदावरी न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.7.12 सा.वे. 1.153 पर।

वाजन (वज् + णिच् + ल्युट्) पंखा झलना, श्रौ.प.नि. 24.193।

वाजपेय सामन्

वाजपेय पु. एक यज्ञ का नाम, इसका अनुष्ठान 'षोडशी' की तरह होता है; 17 दीक्षायें, तीन उपसद् और बीसवें (दिन) सुत्या अथवा एक दीक्षा, तीन उपसद् एवं 17 सुत्यायें, प्रयुक्त सभी द्रव्यों की संख्या 17, आप.श्रौ.सू. 18.1.4-7. यह सोम की छठवीं संस्था है। यह उक्थ्य के ढाँचे का अनुकरण करता है, किन्तु इसका अपना पृथक् वैशिष्ट्य है। इसमें कई लोकलुभावन कृत्य समाहित हैं। इसमें 17 स्तोत्र एवं 17 शस्त्र होते हैं, जिनमें वाजपेय स्तोत्र एवं शस्त्र अन्तिम होता है। इतनी संख्या में ही (अर्थात् सत्रह) पशुओं की बलि दी जाती है; सोम एवं सुरा के 17 प्याले तैयार किये जाते हैं। पूर्वनिर्मित सुरा का क्रयण किया जाता है। दोपहर में 17 रथों की धावन-स्पर्धा होती है। कोई धनुर्धर एक तीर चलाता है और तीन के गिरने के स्थान से पुनः तीर चलाता है। यह तीर-चालन की क्रिया 17 बार की जाती है। सत्रह बार के तीरचालन द्वारा चिह्नित भूमि की दूरी तक रथ-धावन-स्पर्धा होती है। चात्वाल के स्थल पर गाड़े गये एक यूप पर जड़े गये रथ पर बैठते समय ब्रह्मा एक साम का गायन करता है। 17 रथों की धावन-स्पर्धा के प्रारम्भ के समय 17 मृदंग बजाये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 18.4.13. सोम के प्यालों के अर्पण के अनन्तर 16 सुरा के प्याले प्रतिस्पर्धियों को दिये जाते हैं, जिनमें स्थित सुरा का वे पान करते हैं। यज्ञीय स्तम्भ से एक चतुष्कोणीय सीढ़ी लगा दी जाती है। यजमान और उसकी पत्नी सीढ़ी से यूप के शीर्ष पर चढ़ते हैं। एक लम्बी लग्गी में बाँधी गई नमक की सोलह पोटलियां यूप के शीर्ष पर उनके तक उठाई जाती है, आप.श्रौ.सू. 18.1-7; का.श्रौ.सू. 14; श्रौ.को. (सं.) II.114; न. एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.636

वाजपेय-रथस्पर्धा

वाजप्रसवीय पु. चौदह आहुतियों का नाम: सात ग्राम्य वनस्पतियों (गाँव में उगाई गईं) एवं सात आरण्य वनस्पतियों (बिना जोते-बोये उगने वाली) की। इनके शेष सोमयाजी के शिर पर छिड़कने के काम में लाये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 17.18.5 (प्रथम सात की आहुतियां 'वाजस्येमां प्रसवः' आदि वा.सं. 9.23-29 मन्त्रों से एवं दूसरी सात की आहुतियां 'वाजस्य नु प्रसवे' आदि, वा.सं. 18.30-36 से प्रदान की जाती हैं)। ये आहुतियाँ उदुम्बर-स्रुव से दी जाती है, जिसको (उदुम्बर स्रुव को) अन्ततः आग में फेंक दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 17.19.1-3; बौ.श्रौ.सू. 10.54 (चयन)।

वाजप्रसव्य पु. राजसूय में यजमान के प्रोक्षण (अभिषेक) के पूर्व दी जाने वाली एक घृताहुति का नाम, मा.श्रौ.सू. 5.2.7.21; सौत्रामणी में यह ताजे दूध की एक आहुति होती है, मा.श्रौ.सू. 5.2.11, 24; अपि द्रष्टव्य - 6.2.5.28; 7.1.3.19; 9.3.3.25।

वाजवती स्त्री. (वाज + मतुप् + ङीप्) (संख्या में दो) ऋचा (यें) जिनमें 'वाज' शब्द प्रयुक्त है। इनका प्रयोग 'स्रुग्व्यूहन' वेदि में करछुलों के चालन में होता है(दर्श), आप.श्रौ.सू. 3.5.3; श्रौ.को. (सं.) I.546; श.ब्रा. 1.8.3.1; 'वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि' इति जुहूम् एवं 'वाजस्येनं प्रसवेनापोहामि'

इति उपभृतम्; का.श्रौ.सू. 3.5.19; द्रष्टव्य – वा.सं. 2.15; भा.श्रौ.सू. 3.5.7।

वाजसनेयक न. वाजसनेय शाखा में अनुसृत कर्मकाण्ड, आप.श्रौ.सू. 2.9.8।

वाजसृत् वि. (वाजं सरति इति वाज + सृ + क्विप्) दौड़ में दौड़ने वाला (ऋ.वे. 9.43.5); तै.ब्रा. 1.3.3.7; आप.श्रौ.सू. 18.6.17; 18.2.4; सोलह प्रतिस्पर्धी रथदौड़ में भाग लेते हैं। उनके रथों में प्रत्येक में चार अश्व जोते जाते हैं। उन्हें सोने का एक टुकड़ा (कृष्णल) दिया जाता है एवं पुनः ले लिया जाता है। वे अपने प्यालों में स्थित सुरा का पान करते हैं, आप.श्रौ.सू. 18.4.13; 5.4–5; 6.17।

वाजिन न. संघनित का झाग (जलीय भाग), जो आमिक्षासंज्ञक ठोस भाग को उड़ेल कर प्राप्त किया जाता है, उसे वाजिन कहते हैं। इसे पूर्व दिन के खट्टे दूध को प्रातःकाल ताजे दूध में मिलाकर तैयार किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 8.2.6; इसका स्वाद तीखा होता है। 'वाजिन' वाजिन् संज्ञक देवताओं को अर्पित किया जाता है (वैश्वदेव, चातुर्मास्य) और इसके आहुतिशेष का भक्षण होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, आग्नीध्र एवं यजमान द्वारा घ्राण से किया जाता है (अर्थात् होता आदि इसे सूंघते हैं), आश्व.श्रौ.सू. 2.16, एक-दूसरे की अनुमति प्राप्त कर, 2.16.17; 8.4.4–6. इसका पात्र पलाश से निर्मित होता है; 'शन्नो भवन्तु वाजिनो----- एवं 'वाजे वाजे अवत वाजिन' 'याज्यापुरोनुवाक्याओं के रूप में प्रयुक्त होते हैं (ऋ.वे. 7.38.7–8), आप.श्रौ.सू. 8.2.1; द्रष्टव्य – श्रौ.को. (सं.) I.321, 495; श्रौ.प.नि. 80–467. वाजिनभक्ष – आश.श्रौ.सू. 2.16.17।

वाजिनचर्या स्त्री. (वाजिनस्य चर्या) वाजिन से सम्बद्ध कृत्य, भा.श्रौ.सू. 18.28.15।

वाजिनशेष पु. (वाजिनस्य शेषः) वाजिन 'हविस्' (आहुति) का अवशेष (बचा हुआ भाग), का.श्रौ.सू. 4.4.13।

वाजिनां सामन् न. 'ब्रह्मा' द्वारा रथ-चक्र पर बैठते समय गाये जाने वाले साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 18.4.9 (वाज.); द्रा.श्रौ.सू. 7.1.24 [आविर्मर्या, आदि सा.वे. 435 (ग्रामगेय) पर आधृत] = वाजपेय साम।

वाण पु. वीणा, मा.श्रौ.सू. 7.2.7–4 घास के सौ तारों वाली (वीणा) वाजपेय में बजाई जाती है, आप.श्रौ.सू. 21.17.10. इसका वादन महाव्रत में स्तोत्र गायन के समय भी किया जाता है, द्रा.श्रौ.सू. 11.1.10, द्रष्टव्य – डांगे, एस.ए. JIH 46 (2), 1968, पृ. 271–280।

वातनाम न. 'समुद्रोऽसि नभस्वान्-----' इस मन्त्र के साथ हाथ जोड़कर दी जाने वाली आहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.20.11 (नहि एतस्यावदानम् अस्तीति विज्ञायते, कृष्णाजिनपुटेन वातं जुहोति इत्येके); भा.श्रौ.सू. 11.10.4; तै.आ. 4.9.1; द्रष्टव्य – श्रौ.को. (सं.) II.113।

वातहोम पु. (वातस्य होमः) रथ के उत्तरी, दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग में वायु की आहुति, का.श्रौ.सू. 18.6.1; (चयन); तुल. वातहोम।

वात्स न. (वत्सेन दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.6.5 सा.वे. 1.8 पर।

वात्सप्र न. 'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मत्' से प्रारम्भ होने वाले तै.सं. के अन्तर्गत एक अनुवाक आप.श्रौ.सू. (4.2.2) का नाम आप.श्रौ.सू. 6.19.8; अग्नि के सम्मान एवं प्रेम का कृत्य, जिसका अनुष्ठान (दीक्षा में) वात्सप्री की 11 ऋचाओं (ऋ.वे. 10.45 = वा.सं. 12.18–28) का वाचन करते हुए किया जाता है; (चयन), का.श्रौ.सू. 16.5.21; अन्य कृत्यों में भी प्रयुक्त, भा.श्रौ.सू. 6.4.3; सायंकालीन अग्निहोत्र के अन्त में प्रार्थना के रूप में प्रयुक्त, का.श्रौ.सू. 1.12.1; एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.11.23 सा.वे. 1.317 पर।

वादन न. (वद् + णिच् + ल्युट्) मृदङ्ग को बजाने के लिए प्रयुक्त (ढोल पर) प्रहार करने वाला उपकरण, का.श्रौ.सू. 13.2.19 (गवामयन)।

वानस्पत्या वि. (वनस्पतिः सम्बोध्यतेऽनया) वनस्पति को सम्बोधित (ऋचा), भा.श्रौ.सू. 9.3.10।

वापयते (वप् + णिच् + ल.प्र.पु.ए.व. आ.प.) मुड़ाता है (रु. स्वार्थे अध्वर्युणा यजमानः सर्वं वापयते इति सत्याषाढः), आप.श्रौ.सू. 8.4.1।

वामदेव्य न. 1 (वामदेवेन दृष्टं साम, वामदेव + ड्य 'वामदेवाड्यड्यौ ----पा. 4.2.7) 'अग्न्याधान' में प्रज्वालित अग्नि-काष्ठ को उठाने के पूर्व गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.39; बौ.श्रौ.सू. 2.16–18. इसका गायन पितृमेध का अनुष्ठान करने वाले को भी करना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) 1.1082; पञ्च.ब्रा. 4.8.13; 5.1.1 सा.वे. 1.169 पर आधृत। द्वादशाह के दसवें दिन

इसका गायन होता है; द्रष्टव्य – द्विनिधन, प.ब्रा. 14.9.22 सा.वे. 1.514 पर; 2. (अग्निवेदि की पाँचवीं तह के मध्य भाग में लगी हुई) एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.1।

वामदेव्यग्रह पु. वाजपेय में अर्पित किये जाने वाले एक सोम के प्याले का नाम, मा.श्रौ.सू. 14.2.18।

वामभृत् स्त्री. अग्निवेदि में चिनी जाने वाली एक विशिष्ट ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.15।

वाम्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.18 सा.वे. 1.268 पर आधृत।

वायव्य न. (वायु + यत् 'वाय्वृतुपित्रुषषो यत्', पा. 4.2.31) उलूखल की तरह मध्य में सङ्कुचित, एक बीता ऊँचा एवं ऊपरी भाग में कटोरे से युक्त एक सोम-पात्र (प्याले) का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.1.4 (हि.आ.ध. II.ii.1161); द्रष्टव्य – श्रौ.को. (सं.) II.264. अनेक देवताओं को सोम अर्पित करने के लिए प्रयुक्त एक कटोरे का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.17.1 = ऊर्ध्वपात्र। इसमें उठे हुए कोने एवं एक चोंचदार जीभ होती है; (बहु.) काष्ठीय प्याले, भा.श्रौ.सू. 12.17.5. भा.श्रौ.सू. 13.1.2 में काशिकर इसका अनुवाद 'वायु से सम्बद्ध सोम के पात्र' (इस) रूप में करते हैं। भा.श्रौ.सू. 13.7.9 में वे दधिग्रह-पात्र की तुलना में इसका अनुवाद 'वायु से सम्बद्ध-प्याला' इस प्रकार करते हैं।

वायव्यप्रकार वि. (वायव्यस्य इव प्रकार : यस्य) 'वायव्य' खरल पात्र के नमूने वाला (महावीर पात्र), मा.श्रौ.सू. 4.1.17 (द्रष्टव्य – 2.3.1.13.36)।

वायव्याकृति वि. (वायव्यस्य इव आकृतिः यस्य) वायव्य संज्ञक काष्ठीय पात्र के सदृश आकृति वाला, भा.श्रौ.सू. 11.2.23 (महावीरत्र्युद्धि, पञ्चोद्धि वा)।

वायसपुच्छा वि. (स्त्री.) (वायसस्य इव पुच्छं यस्याः सा) (पिछले भाग में) कौअे की पूँछ जैसी, भा.श्रौ.सू. 1.16.6 (करछुल)।

वायुवती स्त्री. (वायु + मतुप् + ङीप्) वायु (शब्द) से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.66।

वारण वि. (वरणस्य विकारः, वरण + अण्) वरण की लकड़ी से निर्मित, का.श्रौ.सू. 1.3.37. वे यज्ञीय उपकरण, जिनका सम्बन्ध होम से नहीं होता, इसी के काष्ठ से निर्मित होते हैं, का.श्रौ.सू. 1.3.37, यदि अन्यथा निर्धारित न हो तो।

वारवन्तीय न. आहवनीय अग्नि-स्थान में अश्व के पद-चिह्न पर अग्नि को संगृहीत करते समय गाये जाने वाले एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.40; पञ्च.ब्रा. 5.3.8 सा.वे. 1.17 पर आधृत। अग्निष्टोम साम के रूप में गाया जाने वाला, श्रौ.को. (सं.) II.610।

वाराही वि. (वराह + अण् + ङीप्) सुअर के चर्म से निर्मित (वाराही उपानहा अभ्यारोहति) मा.श्रौ.सू. 9.1.4.6।

वारुणनिष्कास पु. (वरुणाय निष्कासः) वरुण को उद्दिष्ट कर आमिक्षा के खुरचन, भा.श्रौ.सू. 7.6.23।

वारुणस्नान न. (वारुणेन = जलेन स्नानम्) जल से स्नान (अन्य प्रकार के स्नान मन्त्रस्नान, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य एवं मानस से तुलित), हि.आ.ध. II.1.669।

वारुणी स्त्री. 1. (वरुणस्य इयम्, वरुण + अण् + ङीप्) 1. वरुण के सन्दर्भ वाली एक ऋचा, आप.श्रौ.सू. 10.15.6 (इसे उस समय पढ़ना चाहिए जब दीक्षित के यज्ञमण्डप के बाहर रहते सूर्यास्त हो); द्रष्टव्य – उसके यज्ञशाला के बाहर होने पर सूर्योदय हो तो 'सौरी' ऋचा का पाठ करना चाहिए; 2. संघनित दूध का ठोस भाग, अर्थात् आमिक्षा, जिसे वरुण को अर्पित किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.4; –**याग**, श्रौ.प.नि. 93.490।

वारुणीनिष्कास पु. (वारुण्याः पयस्यायाः निष्कासः) वारुणी पयस्या का अवशिष्ट अंश, का.श्रौ.सू. 5.5.28 (वरुणप्रघास-पर्व)।

वारुणीवत् वि. (वारुणी + मतुप्) वारुणी पयस्या के अवदान (कतरे) से सङ्गत, का.श्रौ.सू. 5.5.19 (वारुणीवदवदानम्)।

वार्क्षी स्त्री. (वृक्ष + अण् + ङीप्) पलाश के वृक्ष की, का.श्रौ.सू. 4.14.12 (समिधा, पलाशादिवृक्षीयाम्, स.वृ.)।

वार्त्र न. एक सुरक्षात्मक आवरण, जै.ब्रा. III.140।

वार्त्रघ्न वि. वृत्र के वध के सन्दर्भ वाली (पुरोनुवाक्यायें) यथा – 'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्-------' एवं 'त्वं सोमासि सत्पतिः', मै.सं. 5.1.5.45।

वार्त्रघ्नकल्प वि. वार्त्रघ्न आज्यभागों एवं 'पिप्रीहि देवम्.....' और 'अग्ने यदद्य' के रूप में 'संयाजों' से युक्त कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, मा.श्रौ.सू. 5.1.5.45.

वार्ष न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.11 श.ब्रा. 1.489 पर आधृत।

वर्षाहर न. एक साम का नाम (जिसका गायन प्रवर्ग्योद्वासन के दौरान प्रोक्षण के समय किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 4.4.24; (प्रवर्ग्योद्वासन में) सम्राट्-आसन्दी को पूर्व की ओर रख

देने के पश्चात्, आप.श्रौ.सू. 15.14.2; ऐच्छिक रूप से इसका गायन ऊपर से आसन्दी पर प्रोक्षण करते समय किया जाता है; एक साम, जिसके निधन भाग में सभी सम्मिलित नहीं होते, इष्टाहोत्रीय साम के साथ ऐसी स्थिति नहीं होती, भा.श्रौ.सू. 11.14.2; 'अचिक्रदद् वृषा हरि' पर।

वार्षिक वि. (वर्षासु भवः, वर्षा + ठक्, वर्षाभ्यष्ठक्, पा. 4.3.18) वर्षाकालीन (वायु), मा.श्रौ.सू. 5.2.6.19।

वाल न. बाल की छलनी = चलनी (जिसका प्रयोग सौत्रामणी में दक्षिणी वेदि पर होता है), मा.श्रौ.सू. 5.2.4.11; सुरा छानने के लिए गाय के बाल से बनी हुई छन्नी, बौ.श्रौ.सू. 11.3।

वालखिल्य न. ग्यारह (कुछ लोगों के मतानुसार 6 अथवा 8) सूक्तों का समूह, जो (सूक्त) ऋ.वे. के आठवें मण्डल के 48वें सूक्त के बाद अन्तर्निविष्ट किये जाये हैं; स्त्री. अग्नि-वेदि की तीसरी तह में (लगी हुई) ईटों (65-78) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.39-40; - ब्रा०।

वालधान न. (वालं धीयते अस्मिन् अनेन वा) पूंछ, का.श्रौ.सू. 13.3.16 (गवामयन)।

वालस्राव न. (वालस्य स्रावम्) अश्व के बाल से निर्मित शोधोपकरण, आप.श्रौ.सू. 19.1.17 (सौत्रामणी) सुरा (मदिरा) के शोधन (छानने) के लिए प्रयुक्त।

वालेय वि. (वालः वालविक्रयः पण्यम् अस्य) ऊन का व्यापार करने वाला व्यक्ति, बौ.श्रौ.सू. 2.3।

वावाता स्त्री. अभिमत (प्रिय) रानी, का.श्रौ.सू. 20.5.15 (अश्वमेध)।

वास पु. (वस् + घञ्) यजमान एवं उसकी पत्नी का रात भर पवित्र अग्नि के पास ठहरना, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.10।

वासःप्रबद्ध वि. (वाससा प्रबद्धम्) एक वस्त्र खण्ड से बँधा हुआ, का.श्रौ.सू. 10.2.4।

वासिष्ठ न. (वसिष्ठेन दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 11.8.13 एवं 15.3.33 क्रमशः सा.वे. 1.526 एवं सा.वे. 1.259 पर आधृत।

वास्तु न. एक प्रकार के अनाज का नाम, भा.श्रौ.सू. 9.16.15-27।

वास्तुमय (वास्तुनः विकारः, वास्तु + मयट्) 'वास्तु' नामक अनाज से निर्मित, आप.श्रौ.सू. 9.14.13; (चरु) जिसमें वास्तु का अनाज समाहित हो, भा.श्रौ.सू. 9.16.16।

वास्तोष्पतीय पु. एक (होम) का नाम, भा.श्रौ.सू. 6.6.8।

वास्त्वमय वि. (वास्त्व + मयट्) वास्त्व के अवशिष्ट अंश से निर्मित, मा.श्रौ.सू. 5.1.9.26 ('वास्त्वमयः कणिकः' का अनुवाद इस प्रकार किया गया है 'रुद्र के खाद्य के लिए छोटे दाने', यदि रुद्र सन्तान को मार डालता है तो)।

विकर्ण वि. (विपरीताः कर्णाः यस्य) अपसारी (भिन्न दिशाओं में) कानों वाला (आश्विन-प्याला), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.15 (सोम) = विकर्णपात्र; एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 4.6.15 आर्चिक 5.2 पर।

विकर्णी स्त्री. वेदि में चयनीय (अलग-अलग कानो वाली) एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.3.17 ('शर्करा' कंकड़)।

विकर्षण न. 1. (वि + कृष् + ल्युट्) 1. (चिनी गई अग्नि वेदि के ऊपर एक मेढक को) घसीटने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.33 (चयन); 2. (मेढक को) घसीटने का साधन (विकृष्यते येन), मा.श्रौ.सू. 6.2.4.12; 3. (विकर्षण) स्वरों के ह्रस्व से दीर्घ में अथवा अन्य प्रकार के परिवर्तन (का सङ्केत करता है); इस प्रकार 'ये' 'या 2 यि' के रूप में परिवर्तित हो जाता है, काशिकर 111।

विकार पु. (वि + कृ + घञ्) किसी कृत्य का संशोधित रूप, आप.श्रौ.सू. 7.27.2; गायन में अन्य वर्ण का प्रयोग करते हुए रूप में परिवर्तन, उदाहरणार्थ—'अग्ने' का 'ओग्नायि' इस रूप में परिवर्तन होता है (सामगान के समय सामविकार), काशिकर 111।

विकाल पु. (सप्तमी) (विपरीतः, कालः) अनुचित समय पर (रु. रात्रि), आप.श्रौ.सू. 10.13.6।

विकृतशिल्प न. (विकृतं च तत् शिल्पम्) पृष्ठ्य षडह के छठें दिन 'अनुरूप' के पश्चात् 'होत्रक' द्वारा अपने स्तोत्र में अंगीकृत वाचन का अन्य कलात्मक तरीका (विधि), काशिकर 101।

विकृति स्त्री. (वि + कृ + क्तिन्) मूल अथवा प्रतिदर्श यज्ञ का संशोधन (संशोधित रूप), का.श्रौ.सू. 1.5.4 (प्राकृतं च विकृतौ), एक निष्कृष्ट कृत्य, उदाहरणार्थ - सभी इष्टियां 'दर्श' की विकृति (यां) है। इस तरह के कृत्यों में प्रयुक्त मन्त्र भाव के अनुसार अनुकूलित कर लिये जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 24.3.50; द्रष्टव्य - वैकृति; स्त्री. संशोधित

कृत्य (विकृति) से सम्बद्ध देवता एवं आहुति (द्रव्य), आप.श्रौ.सू. 4.10.1।

विक्रम्य (वि + क्रम् + ल्यप्) पैरों को इधर-उधर चला कर, आप.श्रौ.सू. 3.17.2 (रु. - विविधं क्रमणं विक्रमणं अग्रतः पृष्ठतश्च पादयोः करणम्)।

विगुणः वि. गौण कृत्य से रहित, 'विगुणे फलनिवृत्तिरङ्गप्रधान-भेदात्, का.श्रौ.सू. 1.2.18।

विगृह्णाति (वि + ग्रह् + लट् प्र.पु.ए.व) (तीन) भागों में बाँटकर ग्रहण करता है, का.श्रौ.सू. 9.14.9 (उक्थ्य)।

विग्रह पुं. (वि + ग्रह् + अप्) सञ्चय-पात्र (स्थाली) से सोम रस को अलग करना, अर्थात् रस के एक अंश का वितरण, का.श्रौ.सू. 9.14.13; ऋचा के पदों अथवा पद के वर्णों के बीच वाचन में विभाजन भी, आश्व.श्रौ.सू. 8.1.10 (एकेन द्वाभ्यां च विग्रहः); शरीर।

विग्राहम् क्रि.वि. 1. आनुक्रमिक रूप से, मा.श्रौ.सू. 8.3.3 (गाम्---- त्रिर्विग्राहं दोहयेत्, प्रायश्चित्त); 2. (दो भागों) में बाँटते हुए, भा.श्रौ.सू. 6.14.3 (अग्निहोत्र); 3. प्रत्येक मन्त्र के अन्त में विराम के साथ (रु. : यजुषि अवसाय अनुद्रवम्); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II. 323, 471; बिना ताजी साँस लिए पद, अर्धच एवं उत्तरार्ध ऋचा के अन्त में यति के साथ। इसमें एक साँस में पढ़ी गई ऋचा के अन्त में विराम (यति) का संकेत हो सकता है, काशिकर, पृ. 93।

विघन पु. (वि + हन् + अप्) मोगरी, धुरमुस, भा.श्रौ.सू. 12.4.20 (महावेदिकरण); मिट्टी के ढेलों को फोड़ने के लिए प्रयुक्त हथौड़ा, आप.श्रौ.सू. 11.5.2; (बहु.व.) बौ.श्रौ.सू. 7.9 (सोम)।

विचक्षणवती स्त्री. (विचक्षण + मतुप् + ङीप्) सोम-यज्ञ में दीक्षा के दौरान यजमान द्वारा उच्चारणीय 'विचक्षण' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त वाणी, श्रौ.को. (अं.) II.i.70. आप.श्रौ.सू. 10.12.8।

विचयन न. (वि + चि + ल्युट्) (सोम का) चयन, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.54।

विचारं कृ मलत्याग करना (दिन के समय; दीक्षित व्यक्ति के लिए निषिद्ध), भा.श्रौ.सू. 10.8.13।

विचितकेश वि. (विचिताः केशाः यस्य) (वह परिधान) जिसमें से ढीले रेशे निकाल दिये गये हों, का.श्रौ.सू. 7.2.16 (विचिताः = निष्कासिताः केशाः = सूत्राणि यस्य तत्, स.वृ.) (अप्सुदीक्षा)।

विचितगर्भा वि. (स्त्री.) (विचितः गर्भः यस्याः सा) भ्रूण से मुक्त, गर्भरहित (----पष्ठौही दक्षिणा), आप.श्रौ.सू. 18.10.15।

विचिनुयात् (वि + चि. + वि.लि. प्र.पु.ए.व.) घास के पत्तों आदि को सोम-लता (में) से निकालते हुए साफ करना, आप.श्रौ.सू. 10.20.16 (तृणाद्यपनयनेन शोधनम् विचयनम्)।

विजाता स्त्री. एक ऐच्छिक इष्टि का नाम, जिसका अनुष्ठान पुत्र उत्पन्न होने पर किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 13.1।

वितराम् क्रि.वि. अधिकाधिक, आप.श्रौ.सू. 11.18.5 (वितरां मेखलां विस्रंसते वितरां मुष्टी कर्षते)।

वितष्टि स्त्री. उदुम्बर की लकड़ी से निर्मित, एक गोलाकार बारी (घेरे) वाली नोक या शिर से रहित करछुल, बौ.श्रौ.सू. 10.50 भाष्य।

वितस्ति स्त्री. एक माप = 1 पाद = 12 अंगुल (का.शु. 5.9); भा.पि.मे. 2.5.8, मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4. फैलाये हुए अंगूठे एवं कनिष्ठिका के मध्य का दीर्घ विस्तार (वितस्ति = बित्ता) (पक्षं प्रवर्धयति----प्रादेशेन वितस्त्या वा पश्चात् पुच्छम्), आप.श्रौ.सू. 16.17.4 (चयन); कलाई एवं तर्जनी के बीच की दूरी = लगभग नौ इन्च, श.ब्रा. 10.2.28 = 13 अङ्गुल 6.23 पर कपर्दिभाष्य।

वितान पु. (न.) (वि + तन् + घञ्) फैलाव, अर्थात शाला में उचित स्थानों पर अग्नियों की स्थापना, का.श्रौ.सू. 25.7.15 भाष्य; अग्न्याधेय आदि जैसे वैतानिक कृत्यों को देखें, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.2 (अग्न्याधेय प्रभृतीन्याह वैतानिकानि); आ.गृ.सू. 1.1.11।

वितृण्णि स्त्री. (वि + तृद् + क्तिन्) एकं शुष्क शोधिका, काशिकर 284 इण्डेक्स।

वितृतीय एक तिहाई, बौ.शु.सू. 1.18।

वितृतीयदेश पु. (वितृतीयः देशः) मध्य भाग का पूर्वार्ध, जो वेदि के स्वरूप के एक तिहाई भाग का निर्माण करता है (अर्थात् वेदि का एक तिहाई भाग), आप.श्रौ.सू. 2.1.4; भा. (रु.) 'पूर्वं वेदितृतीयं हित्वा मध्यमस्य वेदितृतीयस्य पूर्वार्धात्'। 'उत्कर' वेदि के पूर्वी एक तिहाई भाग के

उत्तर दो कदम पर स्थित होता है, आप. श्रौ.सू. 2.1.6-7, भा.श्रौ.सू. 2.1.5, की तरफ 'जन्यभयापनोदन' कृत्य का अनुष्ठान किया जाता है, 11.7.2।

विदन्वती स्त्री. 'विदन्वत्' शब्द से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.160।

विधर्म न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.5.31 सा.वे. 1.430 पर आधृत।

विधवा (विगतः धवः यस्याः) विधवा, मृतपतिका, मा.श्रौ.सू. 11.3.4 (यमलशान्ति)।

विधा क्रि.वि. (अनेक) बार (बौ.शु.सू. 2.4); गुणन के द्वारा; स्त्री. साम का एक अंश अथवा भाग। यदि किसी ऋचा से (गृहीत तो) पृथक् रूप से प्राप्त किया गया, एक-एक विशिष्ट गायक के लिये निर्धारित; गीति एवं वाचन का पर्याय; अधिक सूक्ष्मता से (गीति के विपरीत) यह पूरे पद के एक भाग को नियत करता है; स्तोभ-सहित अथवा स्तोभविहीन, जिसमें एक या अधिक 'पर्व' होते हैं और एक एवं उसी स्वर (राग) में निबद्ध होते हैं; अन्यत्र विधा का अभिप्राय साधारणतया साम के पाँच भागों में एक (से) है; विभक्ति का पर्यायवाची (चि.भा.से.)।

विधाभ्यास पु. (विधायाः अभ्यासः) (अनेक) बार, बौ.शु.सू. 2.4 अथवा गुणन द्वारा फैलाव।

विधु पु. छिद्र, भा.श्रौ.सू. 9.4 (भाष्य - 'छिद्रं वा'); (प्रवर्ग्य में महावीर)।

विधृती स्त्री. (द्वि.व.) पकड़ने के लिए विभाजन, दो दर्भपत्रों का पारिभाषिक नाम (दर्श में दर्भ अथवा पशु० में दो बड़े इक्षु-दण्ड)। इन (दोनों) का आकार एक जैसा होता है इन्हें 'बर्हिस्' पर बाद वाले को (अर्थात् बर्हिष् को) सांकेतिक रूप से प्रस्तर से अलग करने के लिए रखा जाता है। और वेदि पर, जहाँ दोनों रखी जाती हैं करछुलों को संभालने के कार्य में भी इनका उपयोग होता है, आप.श्रौ.सू. 2.9.3; 7.7.7; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 20.162।

विध्यपराध पु. (विधौ अपराधः) नियम का उल्लङ्घन, आप.श्रौ.सू. 9.1.1; कृत्य का अतिक्रमण अथवा उल्लङ्घन, अथवा कर्म के प्रसङ्ग में त्रुटि, भा.श्रौ.सू. 9.1.1।

विध्यव्यपदेश पु. (विधेः अव्यपदेशः) नियम का अनुल्लेख, ला.श्रौ.सू. 1.1.1।

विनशन न. (विनश्यत्यत्र, वि + नश् + ल्युट्) उस स्थान का नाम जहाँ सरस्वती लुप्त हुई है, ला.श्रौ.सू. 10.15.1।

विनाट स्त्री. दधि, का.श्रौ.सू. 15.3.29 (विनाट्याद् रथपर्यूढान्नवनीतं स्वयं जातम्)।

विनिरुप्त वि. (वि + निर् + वप् + क्त) विशेषरूप से उड़ेला गया (हविर्द्रव्य), आप.श्रौ.सू. 4.14.9 (विष्णुक्रमण-मन्त्र)।

विनिरूढ (वि+नि+रुह्+क्त) वि. अतिरिक्त (2.), प्रवर्तमान, आप.श्रौ.सू. 4.14.9 (विष्णुक्रम-मन्त्र)।

विपक्ष पु. (विपरीतः पक्षः) विहित पक्ष से इतर, अर्थात् दूसरे दिन, अर्थात् (बाद में आने वाली) प्रतिपदा, का.श्रौ.सू. 4.3.25 (विपक्षे = प्रतिपदि, स.वृ.)।

विपथ पु. (न.) खराब स्थिति में वर्तमान रथ, पूर्व के लोगों से सम्बद्ध, 22.5.5; का.श्रौ.सू. 22.4.14 (जिसे चलाना कठिन हो; विपथः = अमार्गगामी रथः, स.वृ.; विपरीतः पन्था यस्य, 'ऋपूरब्धूःपथामानक्षे', पा.5.4.74)।

विपरायत् वि. (वि + पर + अय् + शतृ) अपने को वापस मोड़ते हुए (अपने को लौटाते हुए), आप.श्रौ.सू. 8.6.25।

विपरिक्रमण न. (वि + परि + क्रम् + ल्युट्) परिवर्तित क्रम में यज्ञीय क्षेत्र के भीतर ऋत्विजों के टहलने (सञ्चरण) का कृत्य। ब्राह्मण उत्तर की ओर सञ्चरण करता है। होता, आग्नीध्र एवं अध्वर्यु दक्षिण की ओर, आप.श्रौ.सू. 8.15.1 (पितृयज्ञ)। इसकी व्याख्या स्थान-परिवर्तन के रूप में की गई है, वही (भाष्य)।

विपरिक्रमन्ति (वि + परि + क्रम् + लट् प्र.पु.ब.व.) वेदि के दक्षिण से उत्तर अथवा अन्यथा अन्य तरफ या विपरीत जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 8.15.1 (पिण्डपितृयाग) स्थान-परिवर्तन करते हैं, भा.श्रौ.सू. 8.2.10।

विपरिहरन्ति (वि + परि + हृ + लट् प्र.पु.ब.व.) करछुलों एवं हविर्द्रव्यों का स्थान परिवर्तन करते हैं, आप.श्रौ.सू. 8.15.1; (मेषप्रतिकृति), भा.श्रौ.सू. 8.8.13 (वरुणप्रघास)।

विपाणितल न. हाथ की हथेली, मा.श्रौ.सू. 8.2.8।

विपेशला वि. (विशेषेण पेशला) अति सुन्दर (बजरी), मा.श्रौ.सू. 1.5.2.14।

विप्रुड् स्त्री. (वि + प्रुष् + क्विप्) (दुहे जाते हुए दुग्ध की) बूंद या शीकर, भा.श्रौ.सू. 1.13.4.11।

विप्रुड्होम पु. (विप्रुषां होमः) अध्वर्यु, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, उद्गाता और ब्रह्मा, इनमें प्रत्येक द्वारा 'प्रचरणी' नामक करछुल से

अलग-अलग अर्पित की जाने वाली प्रायश्चित्तिक घृताहुति। (इसलिए किया जाता है) ताकि सवन के समय छिटकी हुई सोम की बूंदें देवताओं के पास पहुँच जायें, आप.श्रौ.सू. 12.7.11; 16.15 भाष्य; का.श्रौ.सू. 9.6.30 (अभिषवकाले---- सकृद्गृहीतमाज्यं प्रचरण्या क्रमेण जुहुवुः)। दूध के उन बूंदों के बारे में भी कथन (जो मन्त्रों में स्तोक एवं बूंदे कही गई हैं) जिनके लिए मन्त्र पढ़ा जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.13.7 (दर्श); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.276 ('यस्ते द्रप्सः स्कन्दति' आदि मन्त्र के साथ हुत), ऋ.वे. 10.17.12।

विपुड्होम

विप्रेत वि. (वि + प्र + इ + क्त) मृत, का.श्रौ.सू. 7.5.19।

विब्रूयुः (वि + ब्रू + वि लि. प्र.पु.ब.व.) (अविवेक दिन पर दो संशोधित अक्षरों के बारे में) सूचित करना चाहिए, मा.श्रौ.सू. 7.2.3.3।

विभक्ति स्त्री. (वि + भञ्ज् + क्तिन्) 1. अग्निवेदि की प्रथम तह में लगी हुई ईंटों का नाम, भा.श्रौ.सू. 10.31-36; 2. साम का विभाग, जिसे भक्ति भी कहा जाता है; 3. (अग्नि का) देवता - नाम के विपरिणामात्मक रूप (जैसा कि चार प्रयाज मन्त्रों में आवश्यक है), आप.श्रौ.सू. 5.28.6; 'विभक्ती' नीचे देखें।

विभक्तिलोक पु. (विभक्तेः लोकः) कारक-रूपों के अन्तर्निवेशन का स्थल, भा.श्रौ.सू. 5.21.4।

विभक्ती स्त्री. संशोधन, मा.श्रौ.सू. 2.5.5.25 (आग्नेयमेव पञ्चकपालं विभक्तीः प्रयाजानुयाजेषु); ('उद्वासनीया इष्टि', 'इष्टि' को भङ्ग करना); 1.6.5.9।

विभागमन्त्र (विभागे प्रयुक्तः मन्त्रः) हविस् के उद्देश्य से पिष्ट अनाज का विभाजन करते समय प्रयुक्त होने वाला मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 5.14.6 (आधेय); आप.श्रौ.सू. 18.11.13 (वाज)।

विभाग्यसामन् न. एक साम, जिससे ऋचाओं को समान भागों में बाँटकर भक्ति (यां) प्राप्त की जाती है, इस तरह ये पदविभाग्य, स्तोभविभाग्य, पदस्तोभविभाग्य हो सकता हैं। 'अविभाग्य सामन्' में विभाजन असमान भागों में होता है, सिमोन, पुष्प.सू.।

विमाथीकृत्य (अविमाथं विमाथं कृत्या) एक साथ विभाजित कर एवं मिश्रित कर (तालवृन्त०-आच्छिद्य आच्छिद्य), आप.श्रौ.सू. 18.7.8; तु. 1.3.8.4; तुल. तै.ब्रा. 1.3.8.4।

विमान वि. (वि + मा + ल्युट्) महावेदि को नापते समय पढ़ा जाने वाला मन्त्र 'विमिमे त्वा पयस्वतीं देवानाम्', आप.श्रौ.सू. 11.4.14।

विमित न. (वि + मा + क्त, घुमास्था, पा. 6.4.66 इत्यनेन इत्वम्) मण्डप (यजमान के लिए दीक्षा में, तुल. दीक्षितविमित), आप.श्रौ.सू. आप.श्रौ.सू. 10.15.5 (शाला)। चार खम्भों पर अवलम्बित एक अन्य मण्डप, 18.18.5 (राजसूय यज्ञ); प्राचीनवंश का निर्माण, भा.श्रौ.सू. 10.3.1।

विमुख न. 'उग्रश्च' आदि (वा.सं. 39.7) मन्त्र का नाम, जिसका वाचन अश्व की बलि के पश्चात् अपना शिर दूसरी तरफ मोड़कर किया जाता है, का.श्रौ.सू. 20.8.5 (अश्वमेघ यज्ञ); = इस मन्त्र से अरण्ये अनूवाच्य पुरोडाश की आहुति दी जाती है, का.श्रौ.सू. 18.4.24 (चयन)।

विमोचन न. (वि + मुच् + ल्युट्) 1. करछुलों को मुक्त करते हुए जपे जाने वाली 'यानि घर्मे कपालानि----' यह ऋचा, वैखा.श्रौ.सू. 7.8-13; 2. 'को वा अयुक्षीत् स वा विमुञ्चतु' इस मन्त्र के साथ 'प्रणीता' जल को इसके यज्ञीय प्रयोग से मुक्त करने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 3.13.5; कपालों की एक-दूसरे से असंलग्नता के बारे में भी कथन, 3.14.4 (दर्श); 3. यजमान की पत्नी के कमर से करधनी (मेखला) खोलना या मुक्त करना, भा.श्रौ.सू. 3.9.11 (दर्श)।

वियत् स्त्री. (सप्त.) अन्धकार के अदर्शन (लुप्त होने) पर, का.श्रौ.सू. 4.15.12 (प्रातरग्निहोत्रायुष्कामस्य)।

वियतम् क्रि.वि. (वि + यम् + क्त + अम्) विरामों के साथ (प्रतिगृणन्ति वियतम् 'आपो हिष्ठीयाम्'), मा.श्रौ.सू. 2.5.2.23।

वियूष् वि. शोरबे अथवा रस से रहित, बौ.श्रौ.सू. 4.8.29 (द्रष्टव्य यूष 4.8:33)।

विरजस् वि. (विगतं रजः यस्मात्) भस्म से रहित, राख से मुक्त, बौ.श्रौ.सू. 1.14 : 8।

विराज् न. स्विष्टकृत् के लिए 'पुरोनुवाक्या' के रूप में 'प्रेद्धो अग्ने------' एवं याज्या के रूप में 'इमो अग्ने-----' के प्रयोग के लिए पारिभाषिक नाम (मै.सं. 4.10.1); मा.श्रौ.सू. 5.1.1.39; आप.श्रौ.सू. 2.1.30; का.श्रौ.सू. 5.13.2; एक वैदिक छन्द का नाम जिसमें चार पाद एवं प्रत्येक पाद में 10 अक्षर होते हैं, द्रा.श्रौ.सू. 27.5.3।

विराटक्रम पु. (बहु.व.) विराज् छन्द में विभिन्न अग्नियों (दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय एवं आवसथ्य की प्रशस्ति में अथर्व पीतुम्---आदि पाँच मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 5.18.2; भा.श्रौ.सू. 5.11.7; तै.ब्रा. 1.1.7; 2.1।

विराम पु. (वि + रम् + घञ्) एक पारिभाषिक शब्द (एक साम-विकार) जो एक (किसी) अभिव्यञ्जना के गायन में अस्वाभाविक विराम लेने को संकेतित करता है; इस प्रकार 'गृणानो हव्यदातये' का उच्चारण 'गृणानो हव्यदातये' के रूप में किया जाता है, काशिकर 111।

विरिष्टिसन्धान न. (विरिष्टेः सन्धानम्) कर्मकाण्ड में त्रुटि के लिए प्रायश्चित्त का नाम, गो.ब्रा. 1.1.14; काशिकर, पृ. 139; वैसे इसका शाब्दिक अर्थ है 'त्रुटियों को पूरा करना या सुधारना'।

विलम्बसौपर्ण न. सौपर्ण साम की अधिगति (प्राप्ति), प.ब्रा. 14.9.19 सा.वे. 1.125 पर आधृत।

विलाप्य (वि + ली + णिच् + ल्यप्) (आज्य को) पिघला कर या तपाकर, मा.श्रौ.सू. 1.2.3.24; बौ.श्रौ.सू. 9.1 : 23।

विलाभम् क्रि.वि. (वि + लभ् + घञ् + अम्) (हरि योजन से प्रत्येक तीन धानाओं को) लेते हुए, का.श्रौ.सू. 18.8.6-7 (प्राणभक्षं भक्षयन्ति)।

विलोम वि. प्रतिकूल, विपरीत, असहज, जै.ब्रा. II.248।

विवचन न. (विशिष्टं वचनम्) आप्तवाक्य, प्रामाणिक वाक्य, जै.ब्रा. I.271।

विवध पु. कन्धे का जुआ, = वीवध, काशिकर, इण्डेक्स I।

विवयन न. (वि + वेञ् + ल्युट्) बुनी हुई सुतली या डोरी, ला.श्रौ.सू. 3.12.1।

विवाजिन वि. (विगतं वाजिनं यस्य) मट्ठे (वाजिन) से अलग, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.35।

विवाजिनानि (कृ) पशु-भागों से रस (शोरबा) निकालना, मा.श्रौ.सू. 1.8.5.14।

विवृत्य (वि + वृ + ल्यप्) (अपने दाहिने जंघे से) वस्त्र हटाकर (यजमान-पत्नी इसके ऊपर 'पत्नेजनी' - संज्ञक जल उड़ेलती है), का.श्रौ.सू. 10.7.4।

विवेचना स्त्री. (वि + विच् + ल्युट् + टाप्) सूप (शूर्प) से अनाज (के दानों) को पछोरना, भा.श्रौ.सू. 6.6.26 (आग्रयण)।

विवेष्ट्य (वि + वेष्ट् + ल्यप्) चोट करते हुए साफ करके, आप.श्रौ.सू. 16.4.3; = अनुमार्ष्टि (श.ब्रा. 6.4.1.8)।

विवेष्ट्यति (वि + वेष्ट् + लट् प्र.पु.ए.व.) (कमल के पत्तों को) फैलाता या खोलता है, मा.श्रौ.सू. 6.1.1.24।

विशय पु. (वि + शी + अच्) 1. सन्देहपूर्ण स्थिति, का.श्रौ.सू. 4.3.7 (विशये लौकिकमनुक्तत्वात्); 2. वेदि एवं गार्हपत्य के बीच की खाली जगह, बौ.श्रौ.सू. 5.2:21 (मध्य भाग); चिनी गई वेदि की आत्मा (धड़) एवं पक्ष के जोड़ (सन्धि) पर रखी गई ईंटें, आप.श्रौ.सू. 17.8.5 (चयन)।

विशयस्था स्त्री. (विशये तिष्ठति इति, विशय + स्था + क + टाप्) स्त्री. वेदि के मध्य में स्थित ईंट, बौ.शु.सू. 2.34।

विशसन वि. (वि + शस् + ल्युट्) (कृष्णाजिन) का विच्छिन्न भाग, आप.श्रौ.सू. विशस्यते इति 1.19.3 (उत्करे त्रिरवधूनोति ऊर्ध्वग्रीवं बहिष्टाद् विशसनम्)।

विशाख वि. (तने से) अंकुरित होने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.1.1.34; पु. (न.) दर्भपत्र का द्वैधीभाव, आप.श्रौ.सू. 1.3.11; 'औदुम्बरी' खम्भे के शीर्ष पर द्वैधीभाव भी, जहाँ एक स्वर्ण-खण्ड बाँधा जाता है और आज्य की एक आहुति दी जाती है, 11.10.4 (तृतीय, उपसद्, सोम०)।

विशाखदाम न. (विशाखस्य दाम) बछड़े आदि को बाँधने के लिए छोर पर (दो) फन्दों से युक्त एक रस्सी का जोड़ा, आप.श्रौ.सू. 15.5.20; मूँज संज्ञक घास से तीन की संख्या में निर्मित, जिनसे, अजा एवं मेष को खूंटे में बाँधा जाता है, भा.श्रौ.सू. 11.5.22; 6.14 (प्रवर्ग्य)।

विशाखा स्त्री. एव चान्द्र गृह = नक्षत्र का नाम, भा.श्रौ.सू. 5.1.17।

विशास्ति (वि + शास् + लट् प्र.पु.ए.व.) पशु को विच्छिन्न करता है, पशु का विच्छेदन करता है, भा.श्रौ.सू. 7.11.16 (तुल. अवद्यति, पकाये गये अंगों के अंशों को काटता है)।

विशोविशीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.11.36 सा.वे. 1.87 पर आधृत।

विश्या स्त्री. अग्निवेदि की तीसरी तह में (चिनी हुई) ईंटों (14–18) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.39–40।

विश्वजित् पु. एक सोमयाग का नाम, अग्निष्टोम के प्रकार का एक 'एकाह', जिसका अनुष्ठान 'गवामयन' में विषुवत् के पश्चात् चौथे दिन किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 22.1.6; इसकी बहुत लम्बी दक्षिणा होती है : 100 अश्व, 1000 पशु अथवा सम्पूर्ण सम्पत्ति, ला.श्रौ.सू. 8.1.28. सम्पूर्ण सम्पत्ति दक्षिणा रूप में देने का उल्लेख कालिदास ने भी किया है – तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निश्शेषविश्राणितकोशजातम्, रघु. 5.1।

विश्वज्योतिस् वि. 'विश्वत' की अभिव्यञ्जना से युक्त (पुरोनुवाक्या, यथा – 'अग्ने यं यज्ञमध्वरम्-----' एवं 'त्वं नः सोमो विश्वतो', मै.सं. 4.10.3; मा.श्रौ.सू. 5.1.3.7, दो आज्य भागों के लिए नियत)।

विश्वतोमुख पु. एक गार्हपत्य एवं चार महावेदियों वाला एक सोमयाग, युधि, 153।

विश्वरूप न. एक साम का नाम, जिसका गायन सहकालिक सोम-सवन के समय किया जाता है (जब दो यज्ञों के लिए साधारण या उभयनिष्ठ सोम का सवन हो), जै.ब्रा.सू. 1.8; – **पा.** स्त्री. एक ऋचा का (नाम), जै.ब्रा. 1.75; सा.वे. 18.29; श्रौ.को. (सं.) II.242–44।

विश्वलोप न. घास, विव-तृणैः कुशादिना, केश. तृणैर्भूमि-विशोधनपांसुभिश्च, मै.सं. अवटपूरणसमर्थेन तृणादिना, बौ.श्रौ.सू. 10.4.3 पर; एवमवटं विश्वलोपेन पूरयित्वा (उखामृदर्थं कृतम्)।

विश्ववती स्त्री. (विश्व + मतुप् + ङीप्) विश्व (शब्द) से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.91।

विषजति (वि + षञ्ज् + लट् प्र.पु.ए.व.) (उखा) को लटकाता है, मा.श्रौ.सू. 6.1.2.12।

विषाणा स्त्री. मृग-शृंग, मा.श्रौ.सू. 9.1.3.24; एक बीता लम्बा, जिसमें तीन या पाँच मोड़ होते हैं। इसे यजमान के शरीर में अध्वर्यु अथवा स्वयं (यजमान) द्वारा ही बांध दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.9.17–18 (दीक्षा, सोमयाग); इससे वह वेदि से एक लोष्ठखण्ड (ढेला) लेता है, अपने मस्तक का स्पर्श करता है, और यदि वह चाहे तो अपने शरीर को खुजला सकता है, 10.1–3; परिधान में एक गाँठ बांधता है, आप.श्रौ.सू. 18.16.9 (राजसूय यज्ञ)।

विषाणाप्रासन न. (विषाणायाः अप्रासनम् = अप्रक्षेपणम्) (चात्वाल में) शृंग को फेंकने के कृत्य का अभाव, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.50 (द्वादशाह)।

विषुवत् न. मध्य बिन्दु (विषुवति द्वितीयं निधनम् उपयन्ति), भा.श्रौ.सू. 8.19; गवामयन अर्थात् वार्षिक-यज्ञ-मध्यस्थित सोम-दिवस। जिस साम का गायन होता है वह 'एकविंशस्तोम' कहलाता है।

विषूची स्त्री. (विषु + अञ्च् + क्विन् + ङीप्) विपरीत स्थिति में (कृष्णाजिन के) शिरोभाग के दो पृष्ठ (जिनको एक साथ सन्नद्ध किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 10.8.14।

विष्कम्भ पु. एक वृत्त का व्यास, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.13; (जुए, शकट) का आलम्ब (टेक), 2.3.4.19, बौ.शु.सू. 1.23।

विष्कम्भान्त पु. (विष्कम्भस्य अन्तः), व्यास के दो छोर (अन्त) बौ.शु.सू. 1.23।

विष्टरपाणि वि. (विष्टरः पाणौ यस्य) (वह व्यक्ति) जिसके हाथ में नरकट (सरकंडे) का गट्ठर हो, मा.श्रौ.सू. 4.8.3 ('आरण्यक' का अध्ययन); द्रष्टव्य – श्रौ.प.नि. 50.371।

विष्टाव पु. (वि + स्तु + घञ्) (स्तोम का) गायन, मा.श्रौ.सू. 11.1.1.5 (साम के विष्टाव में वरुण उपहारों को हस्तगत करता है); तीन आवृत्तियों वाले एक पर्याय के उपविभागों में एक तीन आवृत्तियां : तृचभाग, आवापस्थान एवं परिचर (ऋचा)।

विष्टुति स्त्री. गायन के समय तीन बार स्तोम की ऋचाओं के आवृत्ति-चक्र में विधा (प्रकार) का पारिभाषिक नाम। यह प्रत्येक पर्याय में गायी जाने वाली ऋचाओं की संख्या एवं क्रम पर निर्भर है। इस तरह (आज्यस्तोत्र के) पञ्चदश-स्तोम में तीन विष्टुतियां (विधायें) होती हैं। पाँच ऋचाओं की तीन आवृत्ति में पन्द्रह की संख्या प्राप्त होती है, प्रत्येक

तृच (तृक) की विशिष्ट ऋचा की पुनरावृत्ति से या अन्यथा (अन्य प्रकार) से उत्पन्न होती है, द्रष्टव्य – तारलेकर, जी.एच., वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे 1986।

विष्टुति

विष्णुक्रम पु. 1. 'विष्णुक्रम' के अनुष्ठान के समय पढ़े जाने वाले 'विष्णोः क्रमोऽसि अभिमातिहा गायत्रेण---' आदि चार मन्त्रों का नाम, आप.श्रौ.सू. 4.14.6; भा.श्रौ.सू. 4.22.13; 2. चार मन्त्रों के साथ, जिसमें प्रत्येक का आरम्भ 'विष्णोः क्रमोऽसि' से होता है, तीन कदम (वस्तुतः चार कदम) का कृत्य। यजमान दक्षिणी श्रोणि से पूर्व की ओर वेदि के दक्षिणी पार्श्व के साथ-साथ चलना प्रारम्भ करता है। वह (क्रमण के समय) अपने दाहिने पैर को सर्वप्रथम रखता है एवं अगले कदम (क्रम) में कदमों के बीच दूरी बढ़ा देता है। किसी भी स्थिति में वह आहवनीय के आगे नहीं जाता, आप.श्रौ.सू. 4.14, 6-7 (दर्श); चतुर्थ क्रम का उल्लेख सोम. के अन्त में किया गया है, 13.18.9. अश्वमेध के प्रवर्ग्य में यजमान उत्तर-पूर्व मुड़कर हाथ में उखा को पकड़कर, जिसे वह प्रत्येक कदम (क्रम) के साथ और अधिक ऊँचा उठाता हुआ प्रस्थान करता है, का.श्रौ.सू. 16.5.11. विष्णुक्रम-संज्ञक एक दूसरा भी मन्त्र है, आप.श्रौ.सू. 4.14.9, द्रष्टव्य श्रौ.प.नि. 41.341-42।

विष्णुक्रमवात्सप्रसमास पु. (विष्णुक्रमवात्सप्रयोः समासः) 'विष्णुक्रम' एवं 'वात्सप्र' नामक दो कृत्यों को एक साथ मिलाना, का.श्रौ.सू. 17.1.1 (एकस्मिन् दिने द्वयोरनुष्ठानं कर्तव्यम्, स.वृ.)।

विष्णवतिक्रम पु. 'अग्निना देवेन-------' आदि चार मन्त्रों के समूह का नाम, आप.श्रौ.सू. 4.14.9-10 ('विष्णुक्रम' सञ्चरण का अनुष्ठान करते समय पठनीय)। तु. अतीमोक्ष।

विष्यण्ण वि. (वि+स्यन्द्+क्त) उबला हुआ अथवा उफनाया हुआ, (दुग्ध) मा.श्रौ.सू. 3.2.7।

विसंस्थितसञ्चर पु. (विसंस्थिते सञ्चरः) सोम-याग की समाप्ति के पूर्व बाहर निकलने (छोड़ने) के लिए (ब्रह्मा नामक ऋत्विक् के लिए) मार्ग (यह ऐच्छिक रूप से मैत्रावरुण की अंगीठी (धिष्ण्या) के दक्षिण से (प्रारम्भ होकर) सदस् के पश्चिमी द्वारा से होकर निकलता है), का.श्रौ.सू. 11.1.27 (विसंस्थितसञ्चरः प्रशास्तृधिष्ण्यं वोत्तरेणापवमाने); सोम याग की समाप्ति से पूर्व सञ्चरण के लिए कार्यसम्पादक ऋत्विक् के लिए (नियत) मार्ग। यह निम्नवत् है : जिनके पास अपनी धिष्ण्यायें नहीं होती उन्हें होता एवं 'ब्राह्मणाच्छंसी' की धिष्ण्याओं के बीच सञ्चरण करना चाहिए एवं जिनके पास 'धिष्ण्यायें' हैं उन्हें उत्तर दिशा के साथ अपनी-अपनी धिष्णाओं के चारों ओर जाना चाहिए, श्रौ.को. (अं.) II.485; बौ.श्रौ.सू. 7.11; DBS : प्रत्येक धिष्ण्या के उत्तर में स्थित एक मार्ग जब तक धार्मिक कृत्य की समाप्ति नहीं हो जाती, तब तक निर्गमन एवं प्रवेश के लिए ऋत्विजों को इसकी सुविधा प्रदान की जाती है, बौ.श्रौ.सू. 7.11 (अथैतेषां विसंस्थित सञ्चरोऽन्तरेण होतुश्च धिष्णियं ब्राह्मणाच्छंसिनश्च येऽधिष्णिया अथ धिष्णियवन्तः स्वं स्वमेव धिष्णियमुत्तरेण परियन्ति। ते संस्थिते सवने यथाप्रसृप्तमेव विनिःसर्पन्ति)।

विसर्जनी स्त्री. 'मदन्ती' – संज्ञक जल।

विसूर्मिका स्त्री. दर्भ का गट्ठर, संख्या में तीन, जिनका प्रयोग अग्नि-प्रणयन में 'इध्म' के स्थान पर होता है (अर्थात् 'इध्म' के बजाय इनका प्रयोग होता है), बौ.श्रौ.सू. 3.1 (पुनराधेय) = कपाल, रेनू, Vacabulair du Rituel vedique (वैदिक कर्मकाण्डकोश), पेरिस।

विसृज्य (वि + सृज् + ल्यप्) (सोम-लता) से सम्पर्क छोड़कर, का.श्रौ.सू. 9.1.6 (सोमात् स्वहस्तं निष्कृष्य, स.वृ.)।

विसृष्टवाच् वि. (विसृष्टा वाक् येन सः) (वह व्यक्ति) जिसने वाग्यमन (वाणी-संयम) को त्याग दिया हो, का.श्रौ.सू. 4.2.27 (विसृष्टवागुत्तरा अनन्वारब्धे); मा.श्रौ.सू. 1.1.3.30।

विस्रंसिका स्त्री. एक वनस्पति (पौधे) का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.12 (राजसूय में एक प्रज्वलित काष्ठ पर विस्रंसिका के दो डण्ठलों (पोरों) के माध्यम से निर्ऋति-नाम्नी देवता के लिए एक पुरोडाश की आहुति दी जाती है)।

विस्रंसिकाकाण्ड न. (द्वि.व.) (विस्रंसिकाया: काण्डम्) विस्रंसिका के दो डण्ठल (या पोर), आप.श्रौ.सू. 18.8.17 (राजसूय, निऋति-भाग)।

विस्तर पु. (वि + स्तृ + अप्) चौड़ाई, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.9।

विहव्य न. एक सूक्त का नाम (ऋ.वे. 10.128 'ममाग्ने वर्चो----' जिसका प्रयोग दर्श में अपने उचित स्थान पर रखी हुई आहुतियों का स्पर्श करते समय किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 1.4.1.17; उपस्थान (प्रार्थना) के लिए भी प्रयुक्त; 'देवी: षडुर्वी:', से प्रारम्भ होने वाला सूक्त, ऋ.वे. 10.128.5; सत्या.श्रौ.सू. 3.7; 6.6-7; श्रौ.को. (अं.) I.1.124।

विहरण न. (वि + हृ + ल्युट्) एक रूपरेखा बनाना, बौ.शु.सू. (Index), आर.पी. कुलकर्णी, (अग्नि का) वितरण।

विहार पु. (वि + हृ + घञ्) पवित्र अग्नियों का क्षेत्र, भा.श्रौ.सू. 1.1.14; 16; मा.श्रौ.सू. 1.2.1.2; सामन्यत: तीन यज्ञीय अग्नियां एवं उनके बीच का स्थान, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.4 (भाष्य); वेदि, आप.श्रौ.सू. 1.18.4; 8.5.5; (शाब्दि.) यज्ञीय अग्नियों का पृथक्करण; यज्ञ-स्थल, मा.श्रौ.सू. 1.7.4.13; 1.1.1.1; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 2.8।

विहारनिर्माणप्रकार पु. (विहारस्य निर्माणम्, तस्य प्रकार:) अग्नि-क्षेत्र के निर्माण की विधि (कात्यायन के अनुसार : पश्चिम में गार्हपत्य के मध्य बिन्दु और पूर्व में आहवनीय के मध्य बिन्दु के बीच की दूरी ग्यारह अथवा बारह 'प्रक्रम' (प्रक्रम = 12 अंगुल) होती है; 31.5 अंगुल की त्रिज्या अथवा अर्धव्यास से युक्त गार्हपत्य; आहवनीय : 24 अंगुल की व्यासविस्तृति से युक्त वर्गाकार। गार्हपत्य एवं आहवनीय के केन्द्र (मध्य) के बीच रस्सी की लम्बाई को छ: भागों में विभाजित किया जाता है। छठवें भाग की नाप के बराबर एक दूसरी को तीन भाग में मोड़ा जाना चाहिए और दो मोड़ों पर चिह्न बना दिया जाना चाहिए। उसके बाद गार्हपत्य एवं आहवनीय के केन्द्र (मध्य) में खूंटे (कील) पर रस्सी लगाते हुए दक्षिण की ओर 'दक्षिणाग्नि' के लिए प्रथम चिह्न पर एक निशान बनाया जाता है, श्रौ.प.नि., पृ. 5.22; द्रष्टव्य 188.15 भी।

विहारयोग पु. साधन, अर्थात् यज्ञीय रङ्गशाला (विहार) के मापन के लिए प्रयुक्त डोरी (रज्जक), आप.श्रौ.सू. 1.1.1।

विहित न. (वि + धा + क्त) (यज्ञ का) विभाजित भाग, भा.श्रौ.सू. 3.15.6 (यत्र क्व च यज्ञस्य विहितं ब्रह्मणि एव तावद्यज्ञो भवति)।

विह्व अग्नि को लेना एवं अन्य अंगीठियों (धिष्णाओं) में ले जाना, जैसा कि आग्नीध्र के लिए 'प्रैष' में आज्ञा दी जाती है 'अग्नीद् अग्नीन् विहर', का.श्रौ.सू. 9.7.5।

विह्वतानुमन्त्रण वि. (विह्वतम् अनुमन्त्रणम् ययोस्तौ) (आज्यभागौ) जिसका 'अनुमन्त्रण' पश्चात्कथन पृथक् रूप से किया गया है (यजमान द्वारा दो मन्त्रों से), आप.श्रौ.सू. 4.9.10 (उसी अभिव्यञ्जना:- अग्नीषोमयोरहम्----- भूयासम्' से अनुमन्त्रण करने के बजाय)।

वीडिता वि. (स्त्री.) सघन, बौ.श्रौ.सू. 2.13:24 (पिष्ट चावल लेने के लिए प्रयुक्त पात्र); तुल 'अवीडिता' असघन, 2.13:25; मजबूत, कठिन ('वसतीवरी' को भरने के लिए प्रयुक्त), बौ.श्रौ.सू. 6.32 (इण्डेक्स = दृढा)।

वीणा स्त्री. भारतीय वीणा, मा.श्रौ.सू. 9.2.2.7,12।

वीर्यवती स्त्री. (वीर्य + मतुप् + ङीप्) वीर्य (शक्ति) से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. II.296।

वीवध न. कन्धे का जुआ (युग) = विवध।

वृकलोमन् न. (वृकस्य लोम) भेड़ियें के बाल, काशिकर, इण्डेक्स I।

वृक्की पु. वध्य-पशु का गुर्दा, इसे काटा जाता है, पकाया जाता है आहुति के रूप अर्पित कर दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.22.6।

वृक्ष पु. उगाया गया पौधा अथवा वृक्ष, का.श्रौ.सू. 2.1.14।

वृङ्क न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.6.9 सा.वे. 1.346 पर।

वृत्त (वृत् + क्त) गोलाकार, ऋ.वे. 1.155.6; (बहु.व.) (वे ऋचायें जिनका सामान्य क्रम होता है)।

वृत्तपुष्कर वि. (वृत्तं पुष्करं यस्य) (एक अंगुष्ठ-पर्व के बराबर नाप वाले) बिल से युक्त गोलाकार कटोरे (मुख) वाला, का.श्रौ.सू. 1.3.38 (अङ्गुष्ठवृत्तपुष्कर: स्रुव:)।

वृत्तिप्रेक्ष पु. (वृत्ते: प्रेक्ष:) जीविका की खोज, जीवन के निर्वाह के साधन से वञ्चित होने की स्थिति में ऋत्विज् लोग पेशेवर नियमों की उपेक्षा कर सकते हैं, बौ.श्रौ.सू. 24.13।

वृद्धि स्त्री. (वृध् + क्तिन्) सोम के सवन के समय यजमान द्वारा पढ़े जाने वाले मन्त्रों का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.620;

अवोवृधम वो मनसा सुजाता------'बौ.श्रौ.सू. 7.5; 8.1;

वृद्धिश्राद्धकल्प पु. उत्सवात्मक धार्मिक क्रिया में पितरों की पूजा का कर्मकाण्ड, मा.श्रौ.सू. 11.9.3; = नान्दीश्राद्ध, श्रौ.प.नि. 43.359।

वृधन्वत् वि. (वृधन् + मतुप्) बढ़ने (वृद्धि) के सन्दर्भ से युक्त (पुरोनुवाक्यायें), यथा, 'अग्निः प्रत्नेन-------' एवं 'सोमो गीर्भिस्त्वा--------' (मै.सं. 4.10.5); मा.श्रौ.सू. 5.1.1.37; आश्व.श्रौ.सू. 1.5.35; दो आज्यभागों के लिए प्रयुक्त, मा.श्रौ.सू. 3.1.1.36।

वृषण पु. (द्वि.व.) अग्निमन्थन के समय लकड़ी की फर्री पर दर्भपत्र के रूप में रखे जाने वाले दो (अण्डकोशीय) अण्डे, का.श्रौ.सू. 8.7.5; द्रष्टव्य - 5.123 (वैश्वदेव पर्व)।

वृषण्वती स्त्री. (वृषन् + मतुप् + ङीप्) 'वृषन्' शब्द से युक्त एक ऋचा, उदाहरणार्थ 'आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये', ऋ.वे. 1.16.1; श्रौ.को. (सं.) II.306।

वृषण्वन्त् वि. 'वृषन्' शब्द से युक्त (पुरोनुवाक्यायें), यथा - 'त्वमग्ने सर्पथ-------' एवं वृषा सोम------' मा.श्रौ.सू. 5.1.2.11 (दो आज्य भागों के लिए उच्चारणीय); मा.श्रौ.सू. 4.10.2।

वृषली स्त्री. (वृषल + ङीष्) शूद्रवर्ण की लड़की, का.श्रौ.सू. 14.2.28 (वाजपेय में दक्षिणा के रूप में दी जाती है)।

वृषारव पु. (वृषणः रवः) बैल की दहाड़, बौ.श्रौ.सू. 1.6 : 19। (अथ दृषदुपले वृषारवेण उच्चैः समाहन्ति); 'बैल की दहाड़' क्षेपण-प्रस्तर (अश्मन्, आप.श्रौ.सू. 1.20.2) का नाम, जिसका प्रयोग दृषद एवं उपल पर चोट करने के लिए किया जाता है (चि.भा.से.)।

वृषाकपि न. पृष्ठ्य षडह के छठें दिन 'ब्राह्मणच्छंसिन्' के द्वारा पढ़े जाने वाले एक सूक्त (10.86) का नाम, शां.श्रौ.सू. 12.6.13।

वृष्टिसनि स्त्री. (वृष्टिं सनोति इति, वृष्टि + षण् + इ) 'वर्षा को जीतने वाली' अग्निवेदि की दूसरी तह में लगी हुई ईंटों (22-26 का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.37-38; मा.श्रौ.सू. 6.2.2.9)।

वृष्णि पु. मेढ़, मा.श्रौ.सू. 6.1.3.1 (चयन)।

वृष्णिवासस् न. (वृष्णेः वासः) अज के ऊन का वस्त्र, काशिकर, इण्डेक्स I।

वेणी वि. बाल की चोटी के आकार वाली, का.श्रौ.सू. 7.3.22 (मेखला) (वेणीम् = वेण्याकारम्, स.वृ.) यजमान-पत्नी की दीक्षा।

वेणीकार्या वि. (वेणी इव कार्यं = आकारः यस्याः सा) बाल की चोटी के आकार वाली (मेखला), बौ.श्रौ.सू. 6.1.2।

वेणु पु. बाँस, बेंत (ऊपर हाथ उठाये हुए यजमान की लम्बाई से युक्त, अर्थात् 144 अङ्गुल), मा.श्रौ.सू. 10.2.2-3 (माप के रूप में प्रयुक्त); 6.1.5.30; 10.2.1.5-10।

वेणुपर्वन् न. बाँस का पोर (सन्धि), आप.श्रौ.सू. 15.3.4 (वेणुपर्वणा बिलं करोति); [प्रवर्ग्य]; भा.श्रौ.सू. 11.2.27 (महावीर)।

वेणुयव पु. (वेणोः यवः) बाँस का बीज, मा.श्रौ.सू. 1.5.4.26 (आग्रयण)।

वेण्वङ्गार पु. (वेणोः अङ्गारः) जले हुए बाँस की राल (अंगार), आप.श्रौ.सू. 16.4.1 (उखासम्भरण)।

वेतसशाखा स्त्री. (वेतसस्य शाखा) बेंत की छड़ी (इसको हस्तान्तरित कर महावीर-स्तोत्र नियत किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.7.5।

वेतससमिध् स्त्री. (वेतसस्य समित्) आग को जलाने के लिए प्रयुक्त सरकण्डे का आवरण, गोतम गृह्य परिशिष्ट (मातृका), पर्जन्यहोम।

वेद पु. कुशमुष्टि (कुश की झाड़ू), भा.श्रौ.सू. 3.7.8 ('वेदम् उपभृतं कृत्वा' 'वेद' का उपभृत् के रूप में प्रयोग कर), पत्नीसंयाज; चि.भा.से. एक रस्सी से बंधी हुई, वत्सजानुसदृश (बछड़े के घुटने के आकार का) अथवा एक बुनी हुई टोकरी अथवा त्रिवृत्त (तीन लड़ी) वाले शिर (त्रिवृतशिरसम्) के आकार के दर्भ के गुच्छ का नाम, आप.श्रौ.सू. 1.6.5; का.श्रौ.सू. 1.3.23 भाष्य। इसे वेदि को बुहारने के काम में लाया जाता है। 'प्रवर्ग्य' में दो 'वेद' प्रयुक्त होते हैं, आप.श्रौ.सू. 15.5.18; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 10.63; 39.321-23; पवित्र ग्रन्थ (विद् + घञ्) - **स्वंसन**।

वेदक वि. (विद् + ण्वुल्) (वह व्यक्ति) जो उद्घोष करता है, मा.श्रौ.सू. 7.2.3.17 (वाजपेय)।

वेदपरिवासन न. (वेदस्य परिवासनम्) दर्भों का काटा हुआ भाग जिससे 'वेद' निर्मित होता है (या साकार होता है), हि.आ.ध. II.1.1015; चि.भा.से. : वेद के दर्भपत्रों के कटे हुए अग्र भाग। बन्धन-रज्जु (बांधने की रस्सी) से लगभग एक बित्ता ऊपर काटा जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.6.6; इससे करछुलों को साफ किया जाता है; 2.4.2।

वेदप्रलव पु. (वेदस्य प्रलवः, प्र + लू + अप्) झाड़ू (वेद) का काटा हुआ भाग, मा.श्रौ.सू. 1.2.5.2; 4.2.6.7।

वेदयोग पु. (वेदेन योगः) (यजुर्) वेद से संयोग, का.श्रौ.सू. 1.8.29 (अध्वर्युः कर्मसु वेदयोगात्)।

वेदशिरस् न. वेद (झाड़ू) का शीर्ष भाग, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.21।

वेदस्तरण न. (वेदस्य वेदे वा स्तरणम्) वेद (झाड़ू) में घास छितराना, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.6 (राज. दर्श के सन्दर्भ में) होता द्वारा आनीत, द्रष्टव्य श्रौ.प.नि. 40.337।

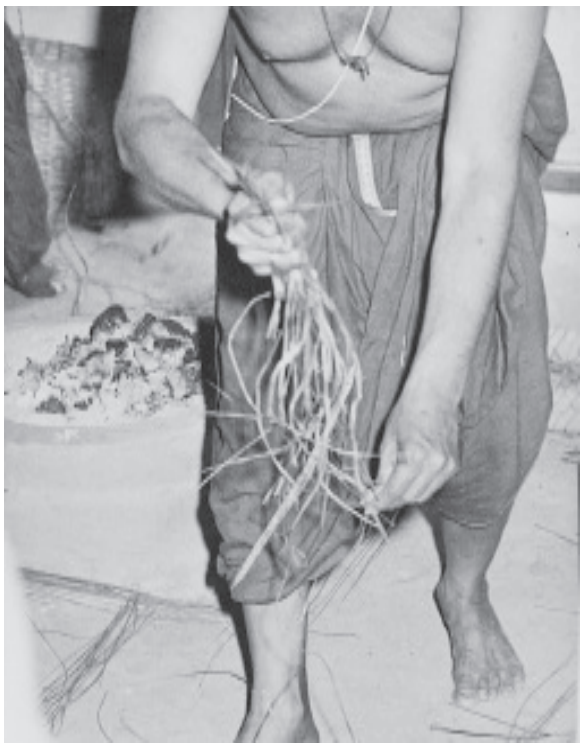

वेदस्तरण

वेदि स्त्री. वेदि, भूमि का उभरा हुआ अथवा उत्खात स्थल, दर्भ से आच्छन्न, जहाँ यज्ञीय सामग्रियाँ, पात्र एवं उपकरण रखे जाते हैं। यह शाला के भीतर आहवनीय एवं गार्हपत्य के बीच में स्थित होती है। वेदि आयताकार (समकोणीय) होती है और ऐसा समझा जाता है कि इसका आकार चौड़े नितम्ब (श्रोणि), चौड़े बाहुओं (प्राञ्चौ अथवा अभितौ अंसौ) एवं पतली कमर (जिसके दो पक्ष उत्तर एवं दक्षिण) समतल हो, ऐसी युवती के समान होना चाहिए, का.श्रौ.सू. 2.6.7; आप.श्रौ.सू. 2.3.1; दर्श की स्थिति में यह अंशवती कहलाती है, आप.शु. 2.4.15; कृत्य की विधा एवं ग्रन्थों के अनुसार वेदि की माप एवं आकृति भिन्न-भिन्न होती है। दर्श के लिए वेदि की लम्बाई यजमान की लम्बाई (ऊँचाई) के बराबर होती है : ब्राह्मण के लिए 8 प्रकम, गहराई में तीन अंगुल,3 अरत्नि पूर्व में, पश्चिम में चार, प्राक्प्रवणा (पूर्व की ओर ढालदार) अथवा उदक् प्रवणा (उत्तर की ओर ढालू), का.श्रौ.सू. 2.6.1-22; आप.श्रौ.सू. 2.1. पशु के लिए 6 अरत्नि लम्बी, पूर्व में तीन (अरत्नि) एवं पश्चिम में चार, आप.श्रौ.सू. 7.3.7.9. वरुण-प्रघास एवं सौत्रामणी में दो वेदियां होती है, एक उत्तरी वेदि अध्वर्यु के लिए एवं एक दक्षिणी 'प्रतिप्रस्थाता' के लिए, 8.5.5; का.श्रौ.सू. 5.3.9-33; 15.9.23; सोमयाग के लिए महावेदि का निर्माण उत्तरवेदि की विधि से किया जाता है, जिसके स्थान पर अग्नि-वेदि भी वैकल्पिक रूप से बनाई जाती है या चिनी जाती है, द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.546-49; बौ.शु.सू. 1.67; मा.श्रौ.सू. 10.1.1.4-6; 'पित्र्या' वेदि वर्गाकार होती है एवं दक्षिणी अग्नि के दक्षिण में स्थित होती है; - **परिग्रह - मानम्** पु., न. वेदि का खाका तैयार करना एवं नापना।

वेदि - परिग्रह

वेदिकरण न. (वेदिः क्रियते एभिः, वेदि + कृ + ल्युट्) वेदि का निर्माण करने में प्रयुक्त साधन अथवा उपकरण, आप.श्रौ.सू. 12.20.6; कूड़े की ढेर (उत्कर) में फेंका गया कचरा, भा.श्रौ.सू. 13.20.13; इस कर्म के लिए प्रयुक्त मन्त्र, श्रौ.प.नि. 19.15.2।

वेदिकर्मन् न. (वेदिसम्बद्धं कर्म) वेदि से सम्बद्ध क्रिया (यें), भा.श्रौ.सू. 2.2.4।

वेदिकार पु. (वेदिं करोतीति, वेदि + कृ + अण्, कर्मण्यण, पा--3.2.1) वेदि बनाने वाला (वेदिकारा वेदिं कल्पयत), बौ.श्रौ.सू. 6.23:5।

वेदिमानम्

वेदिपुरीष न. (वेद्याः पुरीषम्) वेदि की मिट्टी, मा.श्रौ.सू. 1.7.3. 37 'चत्वालात् उपयमनीः कुरुते वेदिपुरीषात् प्रतिप्रस्थाता', (वरुणप्रघासप्रणयनार्थम्)।

वेदिबर्हिस् न. (वेद्यां विस्तृतं बर्हिः) वेदि पर विछाया गया बर्हिस् का.श्रौ.सू. 3.2.5 (वेदि बर्हिः = वेद्यां स्तृतं बर्हिः स.वृ. मेरे द्वारा प्रदर्शित विग्रहवत्)।

वेदिरूप वि. (वेद्याः इव रूपं यस्य) वेदि के समान रूप वाला, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.8 (प्रतिप्रस्थाता दक्षिणतः)।

वेदिवर्धन [वेद्याः (रूपस्य) वधनम्] वेदि (के आकार) को बढ़ाना, का.श्रौ.सू. 8.8.21 (यथायूपं वेदिवर्धनम्)।

वेदिसहित वि. (वेद्या सहितः) वेदि के सम्पर्क से युक्त अथवा वेदि को छुए हुए, का.श्रौ.सू. 11.1.6 (वेदिसहितः - वेदि स्पृष्टः, स.वृ.)।

वेदोपयाम वि. (वेदः उपयामः यस्य सः) वह व्यक्ति जो वेद (झाड़ू) का प्रयोग आलम्बन (टेक) के रूप में करता है, मा.श्रौ.सू. 1.2.6.18; द्रष्टव्य - 1.2.3.13।

वेलार्थ वि. (विभिन्न) इष्टकाओं (स्वयमातृण्णा, रेतःसिच् विश्वज्योतिस् आदि) की इयत्ता को संकेतित करने के लिए अभिप्रेत, का.श्रौ.सू. 17.5.26।

वेष्क न. फन्दा, का.श्रौ.सू. 6.5.18 (वध्यपशु के गले को कसने के लिए प्रयुक्त; वेष्को गलावेष्टकः, स.वृ.)।

वेहत् स्त्री गर्भघातिनी गाय, वह गाय जिसका गर्भ गिर जाता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.17 (ओषधीभ्यो वेहतम् आलभेत् पशुकामः); चार वर्ष की गाय, काशिका 285 इण्डेक्स।

वैखानस न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.4.6 सा.वे. 1.243 पर आधृत; एक सम्प्रदाय का नाम।

वैतस (इध्म) न. बाँस का सरकण्डे का अग्निकाष्ठ (इध्म) (अश्वमेध), मा.श्रौ.सू. 9.2.1.10।

वैहतव्य न. (वीतहव्येन दृष्टं साम) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 11.1.8 सा.वे. 1.155 पर आधृत।

वैतानिक न. श्रौत-यज्ञ के लिए निर्मित अग्निक्षेत्र में स्थित (पवित्र अग्नियां), का.श्रौ.सू. 1.1.18 (वैतानिकेषु सर्वं सर्वार्थत्वात्)।

वैदत्रिरात्र पु. (वैदस्य त्रिरात्रः) वैद का तीन दिवसीय सोम-कृत्य, मा.श्रौ.सू. 9.4.1.36 (विजयकाम राजन्य की स्थिति में इन्द्र एवं अग्नि के लिए अनुष्ठित)।

वैदन्वत न. (बहु.व.) एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.11.9, सा.वे. 1.475 पर।

वैयश्व न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.26 सा.वे. 1.269 पर।

वैराज (कल्प) पु. एक कर्मकाण्डीय युक्ति जिसमें दो आज्य-भाग वृधन्वन्त् एवं 'संयाज' विराज होते हैं; दो धाय्यायें 'पृथुपाज अमर्त्यः-----' एवं 'त्वं सबाधो' पन्द्रह सामधेनी ऋचाओं में जोड़ दी जाती हैं। 'प्रेद्धो अग्ने-----' एव 'इमा अग्ने------' (मै.सं. 4.10.1) संयाज होवे, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.36-39; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (अं.) I.ii.540-41; एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 7.8.11 सा.वे. 1.398 पर।

वैरूप न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 7.8.10, सा.वे. 1.499 पर।

वैश्य पु. वैश्य वर्ण का व्यक्ति, बौ.श्रौ.सू. 10.1:5 (उखासम्भार)।

वैश्यकुल न. (वैश्यस्य कुलम्) वैश्य का कुल, का.श्रौ.सू. 4.7.15 (अग्न्याधान ब्रह्मौदन के लिए वैश्य कुल से अग्नि ली जाती है)।

वैश्यस्तोम प्र. (वैश्यस्य स्तोमः) एक दिवसीय सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.15; पशुकाम (पशुओं की कामना वाले) वैश्य के लिए विहित; 'आशिर' के लिए 100 गायें दुही जाती हैं और उन गायों को ही दक्षिणा के रूप में दे दिया जाता है।

वैश्वकर्मण न. दक्षिणा प्रदान करने के पश्चात् यजमान द्वारा आग्नीध्रीय अग्नि पर दी जाने वाली चार आहुतियों का नाम, बौ.श्रौ.सू. 8.5-6; पाँच आहुतियां, भा.श्रौ.सू. 14.6.5 सोम-याग में।

वैश्वजित पु. एक प्रकार के अग्निचयन का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.15.1।

वैश्वदेव पु. एक सोम-आहुति का नाम (इसे शुक्र-पात्र में लिया जाता है), आप.श्रौ.सू. 12.28.4; बौ.श्रौ.सू. 7.17; चातुर्मास्य के प्रथम पर्व का नाम; वैश्वदेव-संज्ञक शस्त्र का पाठ तृतीय सवन में किया जाता है, का.श्रौ.सू. 5.1-2; श्रौ.को. (सं.) II.439।

वैश्वदेवसूक्त न. (वैश्वदेवं च तत् सूक्तम्) विश्वेदेवों को सम्बोधित सूक्त (ऋ.वे. 10.35), शां.श्रौ.सू. 10.9.10; श्रौ.को. (सं.) II.661।

वैश्वदेविक न. (वैश्वदेवस्य इदम्) चातुर्मास्य के वैश्वदेवपर्व से सम्बद्ध, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.2।

वैश्वदेवी स्त्री. 'विश्वेदेवों से युक्त' एक ऋचा, जै.ब्रा. III.171।

वैश्वमनस न. (प्रातः सवन एवं सायंकालिक सवन में अर्पित किये जाने वाले) सोम के प्याले का नाम, का.श्रौ.सू. 10.7.8; श्रौ.को. (सं.) II.267, 269।

वैष्टम्भ न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.3.9 सा.वे. 1.471 पर।

वैष्णाववारुणी स्त्री. (बहु.व.) विष्णु एवं वरुण के सन्दर्भ से युक्त ऋचायें, वा.सं. 8.59-60; श्रौ.को. (सं.) II.624।

वैष्णावी स्त्री. (विष्णोः इयम् = ऋक्) विष्णु को सम्बोधित एक ऋचा, 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम्', ऋ.वे. 1.154.1; 1.22.17, श्रौ.को. (सं.) II.391।

वैसर्जन न. तृतीय उपसद् में 'प्रचरणी' नाम वाली करछुल से 'शालामुखीय में प्रदेय आज्य की आहुतियों का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.16.15. सम्बन्धी लोग एक जुलूस का रूप बनाते हैं; यजमान अध्वर्यु का स्पर्श करता है, उसकी पत्नी उसका एवं वह अपने पुत्रों आदि का, जिस समय आहुतियां उड़ेली जाती हैं, श.ब्रा. 3.6.3.2।

वैहवी स्त्री. 'विहव्य' सूक्त की ऋचा, मा.श्रौ.सू. 6.2.6.2; द्रष्टव्य-विहव्य।

व्यघ न. जल की एक धारा तक पहुँच कर जपे जाने वाले एक सूक्त (अ.वे. 3.31) का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.1086; अपाघ सूक्त (अ.वे. 4.33) भी देखें।

व्यञ्जनार्थ (व्यञ्जनागम्यः अर्थः यस्य) व्यञ्जित अर्थ वाला (मधु 'अश्नाति' में मधु का व्यञ्जित अर्थ है घी (घृत), आप.श्रौ.सू. 8.4.10 (आश्व.श्रौ.सू. फिलहाल मधु खाने का निषेध करता है, भाष्य रु.)।

व्यतिमर्श पु. (वि + अति + मृश् + घञ्) एक विशिष्ट प्रकार का 'विहार' (प्रथम एवं द्वितीय बालखिल्य सूक्त के कई 'पाद' अथवा अर्धर्चों अथवा सम्पूर्ण ऋचाओं का आपसी स्थान-परिवर्तन, जिन्हें समूह में पृथक् किया जाता है। दो को सदैव एक साथ लिया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 8.2.11; द्रष्टव्य - काशिकर 102 (पृष्ठ्य षडह के षष्ठ सायंकालिक सत्र में (वेला में) प्रयुक्त।

-**मर्शम्** कि.वि. व्युत्क्रमपूर्वक, आश्व.श्रौ.सू. 8.2.6-9।

व्यतिषक्त वि. (वि + अति + सञ्ज् + क्त) कृत्य से जुड़ा हुआ (विष्णुक्रम मन्त्र), आप.श्रौ.सू. 4.14.9; संयुक्त, मिला हुआ, बौ.श्रौ.सू. 4.32; चि.भा.से. 1. अग्नि में पूर्व एवं पश्चिम दोनों (ओर) आघार-आहुति के क्षारण (उड़ेलने) की मिश्रित विधि, आप.श्रौ.सू. 2.12.8 (दर्श); 2. मिली हुई (मिश्रित) आहुतियाँ : चरु एवं पुरोडाश, आप.श्रौ.सू. 24.3.23; 3. वैकल्पिक रूप से पूर्व एवं दक्षिण की ओर उन्मुख घास की मुट्ठी के बारे में कथित, बौ.श्रौ.सू. 6.27; सोम एवं सुरा के वैकल्पिक आहरण (निचोड़ने) के बारे में उक्त, आप.श्रौ.सू. 18.2.7 (वाजपेय); 4. षोडशी-स्तोत्र में पढ़ा जाने वाला होता के लिए अन्तर्ग्रथित 'प्रतिगर' उत्तर, प्रत्येक अर्धर्च के बाद 'ओथा मोद इव मदे' एवं 'मदा मोद इवो मथा' ऋचा के अन्त में, 14.3.4; (व्यतिषञ्जनीयौ होमौ); (स्त्री.) (एक विशेष तरीके से)

एक दूसरे से जुड़ी हुई (दो ऋचायें) अर्थात् बाद वाली ऋचा के द्वितीय अर्ध से जुड़ा हुआ पहली ऋचा का प्रथमार्ध एवं प्रथम का द्वितीयार्ध बाद वाली के प्रथमार्ध के बाद उच्चरित होता है, का.श्रौ.सू. 16.2.22 अश्व के पदचिह्न पर चम्मच से आहुति के लिए इस शब्द को प्रयुक्त मानता है (उखा के लिए पिण्ड-मृत्तिका)।

व्यतिषङ्गम् क्रि.वि. वैकल्पिक रूप से, श्रौ.को. (सं.) II.531 के सम्बन्ध में।

व्यतिषज्य (वि + अति + सञ्ज् + ल्यप्) वैकल्पिक पहुँच के सम्बन्ध से युक्त होने के बाद, श्रौ.को. (सं.) II.531।

व्यतिषिच्य (वि + अति + सिच् + ल्यप्) (जल) उड़ेलकर; (अपो व्यतिषिच्य, बौ.श्रौ.सू. 5.17 (त्र्यम्बकेष्टि)।

व्यतिहृ स्थान-परिवर्तन (प्रतिप्रस्थाता के द्वारा वारुणी पयस्या में मेषी स्थानान्तरित की जाती है, एवं अध्वर्यु द्वारा मारुती पयस्या में मेषी), का.श्रौ.सू. 5.5.16 (स.वृ. का मत भिन्न प्रतीत होता है)।

व्यत्यासम् क्रि.वि. (वि + अति + अस् + घञ् + अम्) वैकल्पिक रूप से बारी-बारी से (व्यत्यासं ब्रूत अगान् अग्नीत् अगन् श्रावय श्रौषट्----), का.श्रौ.सू. 3.6.15 (दर्श); (अर्थात् प्रथम मध्ययूप को उत्तरी तरफ, उसके बाद दक्षिण की ओर, उसके बाद पुनः उत्तर, इसी प्रकार आगे भी, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.4 (यज्ञीय स्तम्भ); षोडशी स्तोत्र का उल्टा प्रतिवाद करता है (इस तरह से 'ओथा मोद इव' एवं 'मोदा मोद इवोम् अथा'), भा.श्रौ.सू. 14.16.6।

व्यथित वि. (व्यथा सञ्जता अस्य, व्यथा + इतच्, तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् पा. 5.2.36), वि. (यदि घर्म) उबलने लगे, भा.श्रौ.सू. 11.18.1।

व्यध्वन् क्रि.वि. 'अवभृथ' - जल-स्थान के मार्ग पर, का.श्रौ.सू. 10.8.20, (सोम), (सप्त.) (गड्ढे से आहवनीय) की ओर आधे रास्ते पर, का.श्रौ.सू. 16.2.3 (चयन, व्यध्वे = अर्धपथे, स.वृ.)।

व्यन्त वि. अलग किया हुआ, प्रथित (फैला हुआ), बौ.श्रौ.सू. 3.5.4 (अङ्गारान् निरुह्य व्यन्तान् कृत्वा); आप.श्रौ.सू. 6.5.6; भा.श्रौ.सू. 6.10.6।

व्यपरिफत् वि. (वि + अप + रिफ् + शतृ) खरोंचते हुए, आप.श्रौ.सू. 12.22.7 (शुक्रमन्थिग्रह)।

व्यवयतः (वि + अव + अय् लट् प्र.पु.द्विव.) पृथक् करते हैं, बौ.श्रौ.सू. 5.8 (वरुणप्रघास); (यजमानश्च पत्नी च) 'अध्वर्युम् अनुमन्त्रयते अक्रन्कर्म, आदि।'

व्यवेत वि. (वि + अव + इ + क्त) (मृत पितर्) जिसकी तीन की शृङ्खला (मध्य में जीवित पिता के द्वारा) विच्छिन्न (व्यवहित) हो गयी है, का.श्रौ.सू. 4.1.27 (न व्यवेते जातूकर्ण्यः, जीवेन पित्रादिना व्यवहिते पितामहादौ, स.वृ. अर्थात् जीवित पिता द्वारा पितामहादि का व्यवधान होने पर)।

व्याख्यान न. (वि + आ + ख्या + ल्युट्) (चतुर्होत मन्त्रों का) वाचन, का.श्रौ.सू. 12.4.16 (चतुहोतृव्याख्यानं होतुः)।

व्याघार पु. (वि + आ + घृ + घञ्) अंगीठियों (धिष्ण्याओं) पर (आग्नीध्र द्वारा) दी जाने वाली (घृत की) आहुतियों का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 16.3-4; श्रौ.को. (अं.) I.641 भी देखें।

व्याघारण न. (वि + आ + घृ + ल्युट्) आघार आहुतियों के विकर्णरेखीय प्रदान का कृत्य, श्रौ.को. (सं.) II.561।

व्याघारणवत् (व्याघारण + वति) आड़ी तिरछी अथवा विकर्णरेखीय द्रवाहुतियों की तरह, का.श्रौ.सू. 17.6.3 ('प्राणभृत्' संज्ञक ईंटें इसी प्रकार रखी जाती है) : द्रष्टव्य - का.श्रौ.सू. 8.5.3।

व्याघारणसम्पात पु. (व्याघारणस्य सम्पातः) (आघाराहुति) प्रदान करने के बाद (करछुल) में बचा हुआ घृत, भा.श्रौ.सू. 14.13.15, 16।

व्याघारमाण वि. (वि + आ + घृ + णिच् + शानच्) छिड़कता हुआ (पुनश्चितिं चिन्वीत चित्वा वा व्याघारमाणो व्याघारितायां उत्तरवेदौ), मा.श्रौ.सू. 6.2.6.30।

व्याघ्रचर्मन् न. (व्याघ्रस्य चर्म) बाघ का चमड़ा, का.श्रौ.सू. 15.5.23 (अभिषेचनीय)।

व्यादिश्य (वि + आ + दिश् + ल्यप्) इडा भागों को नियत करके, भा.श्रौ.सू. 3.3.5।

व्यानयति (वि + आ + नी + लट् प्र.पु.ए.व.) उड़ेलता है (निनयन करता है) का.श्रौ.सू.।

व्यापात पु. (वि + आ + पत् + घञ्) ('सन्निवाप' के प्रतिकूल) अग्नियों का पृथक्करण, आप.श्रौ.सू. 14.22.13।

व्याम पु. = 96 अङ्गुल (का.शु.), खदिलकर; ------ = 4 अरत्नि, आप.श्रौ.सू. 16.1.7; बौ.शु.सू. 1.1.9; वि. छः फीट के एक-एक पक्ष वाला (वर्ग), मा.श्रौ.सू. 6.1.5.1।

व्यायातयति (वि + आ + यत् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) (कील में दो कांटों वाली रस्सी को) बांधता है, भा.श्रौ.सू. 11.6.13।

व्यायाम पु. एक माप = 4 अरत्नियां अथवा 'शयस्' (24 x 4 अङ्गुल), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.4।

व्यावपति (वि + आ + वप् लट् प्र.पु.ए.व.) वितरण करता है (स यावन्त ऋत्विजस्तेभ्य उन्नेता धाना व्यावपति), बौ.श्रौ.सू. 8.16।

व्यावृत्य (वि + आ + वृ + ल्यप्) अन्य लोगों की उपेक्षा कर, जो सम्भवतः दक्षिणा लेने के लिए उन्मुख हो सकते हैं, आप.श्रौ.सू. 14.11.1 (प्रतिग्रहणम्); (रु. आत्मनो अन्यं प्रतिगृहीतारम् अपदिश्येतद् उक्तं भवति या यस्य दक्षिणा द्रव्यस्य देवता तां तस्य प्रतिग्रहित्रीम् अपदिश्य प्रतिगृह्णीयात्)।

व्यास पु. चौड़ाई, बौ.शु.सू. 1.88।

व्याहाव पु. (वि + आ + ह्वे + घञ्) एक अभिव्यञ्जना 'शोम् सावोम्' जो शस्त्र के विभिन्न बिन्दुओं पर 'होता' अथवा 'शस्त्रिन्' द्वारा पढ़ा जाता है, श्रौ.को. (अं.) 2.580; बौ.श्रौ.सू. 8.13 (उभयतो मदमेव प्रतिगृणन्ति मदा मोद इव मदा मोद इव); आप.श्रौ.सू. 12.27.17।

व्याहृति स्त्री. (वि + आ + हृ + क्तिन्) तीन रहस्यात्मक वाचन भूः भुवः स्वः (सुवः), कभी-कभी ये महाव्याहृतियां भी कहलाती हैं, जिनका उच्चारण पृथक् रूप से अथवा सामान्यतया एक साथ (सम्मिलित रूप में) विभिन्न अवसरों पर किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 5.21.1; प्रायश्चित्तिक कृत्य में अध्वर्यु एवं ब्रह्मा इसका जप करते हैं; श.ब्रा. 1.5.2.16 'ओं श्रावय', 'अस्तु श्रौषट्', यज, ये यजामहे एवं वौषट् को महाव्याहृतियां बतलाता है; तुल.इग्लिंग, श.ब्रा.अ. XII.142.42; - होम, जिसमें व्याहृतियों के उच्चारण के समय हविरर्पण अथवा द्रवाहुति दी जाती है, हि.गृ.सू. 1.3.4; विवाह में महाव्याहृति नाम वाली तीन आहुतियां होती हैं, शां.गृ.सू. 1.12.11-12; द्रष्टव्य - राव एस्. एन्, वेद, केस 146 (5), 228-231।

व्युत्क्राम् बाहर आना, कदम बाहर रखना ('वसतीवरी' जल के लिए अग्निषोमीय पशु-याग को पूर्ण करने के बाद सूर्यास्त के समय 'व्युत्क्रामत' यह प्रैष दिया जाता है), का.श्रौ.सू. 8.9.13।

व्युत्त्रास्य (वि + उद् + त्रस् + णिच् + ल्यप्) (कृष्णाजिन से दक्षिणा की गायों को) उत्तेजित कर (डराकर), भा.श्रौ.स. 14.4.10।

व्युत्सर्पन्ति (वि + उद् + सृप् + लट् प्र.पु.बहुव.) अलग-अलग अपसर्पण करते हैं (किसी विशेश क्रम में नहीं), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.51 (द्वादशाह); द्रष्टव्य - प्रसर्पण।

व्युदूहति (वि + उद् + ऊह् लट् प्र.पु.ए.व.) (पुरोडाश को) अलग-अलग (चार भागों में) सरकाता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.1.3।

व्युद्ग्रथन न. (वि + उद् + ग्रथ् + ल्युट्) नीचे से प्रारम्भ कर ऊपर की ओर 17 ग्रन्थियों सहित एक वस्त्र खण्ड को यूप के चारों तरफ लपेटना (वेष्टन), का.श्रौ.सू. 14.1.10 (कर्क-अवचूलकरणम्) वाजपेय में।

व्युद्ग्राहम् क्रि.वि. एक पृथक् आहुति के लिए घी निकालते हुए (उद्ग्रहण करते हुए), मा.श्रौ.सू. 1.5.6.20 (आधान में जया-होम=आहुति)।

व्युद्दिशति (वि + उद् + दिश् लट् प्र.पु.ए.व.) महावीर पात्र के पार्श्वअनुक्रम से इसके ऊपर संकेत करता है, मा.श्रौ.सू. 4.2.20।

व्युन्मर्शम् क्रि.वि. (वि + उद् + मृश् + घञ् + अम्) हिलाते हुए, मा.श्रौ.सू. 2.5.4.7 (हरियोजनं सर्वे भक्षयन्ति)।

व्युषित न. (वि + उष् + क्त) सूर्योदय, दिवसारम्भ, दिन का प्रस्फुटन, जै.ब्रा. I.213।

व्युष्टि स्त्री. अग्नि-वेदि की चौथी तह में (लगी हुई) ईटों (52-56) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.41-43; आप.श्रौ.सू. 17.3.12; तुल.सृष्टि 17.13.11 (चयन)।

व्युष्टिद्विरात्र पु. राजसूय के अन्त में अनुष्ठित, एक अग्निष्टोम एवं एक अतिरात्र से युक्त 'उषा (व्युष्टि)' के नाम से प्रसिद्ध दो दिवसीय सोमयाग, आप.श्रौ.सू. 18.22.12-22।

व्यूढ वि. (वि + ऊह् + क्त) स्थानपरिवर्तित छन्दों के प्रयोग से युक्त (शस्त्र), भा.श्रौ.सू. 7.2.2.30।

व्यूढच्छन्दस् वि. (व्यूढानि छन्दांसि यस्य सः) वाचन में विभिन्न छन्दों के अन्तर्मिश्रण अथवा स्थानपरिवर्तन के प्रयोग से

युक्त (अहीन), का.श्रौ.सू. 12.6.17 (अहीने व्यूढच्छन्दसि दशरात्रस्य चतुर्थनवमयोरह्नोराग्रयणग्रहणं प्रथमम्)।

व्यूहन् न. (वि + ऊह् + ल्युट्) पृथक्करण, श्रौ.प.नि. 25.199।

स्रुग्व्यूहन

व्यृद्धभागिन् वि. (व्यृद्धे = ऋद्धिरहिते भाग: अस्यास्ति) (वह व्यक्ति) जो (उस) हविस् का भाग ग्रहण करते हैं, जो पूर्णता में न्यून हो, आप.श्रौ.सू. 9.4.9।

व्रत न. धार्मिक नियमों का पालन, धार्मिक अनुपालन, आप.श्रौ.सू. 4.2.6; (व्रतमुपैति), का.श्रौ.सू. 2.1.11; बौ.श्रौ.सू. 1.1; इसके कुछ निश्चित भोजन को न खाने का नियम समाहित है, जैसे मांसादि, आप.श्रौ.सू. 4.2, मैथुन (रतिक्रिया) न करना, का.श्रौ.सू. 2.1.8 (अहनि मांसमैथुने वर्जयेत्), भोजन के रूप में गरम दूध पिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.12.4; बौ.श्रौ.सू. 6.7 (सोम); द्रष्टव्य – वी. एम. आप्टे, BDCRI 3.1942; श्रौ.प.नि. 194.23।

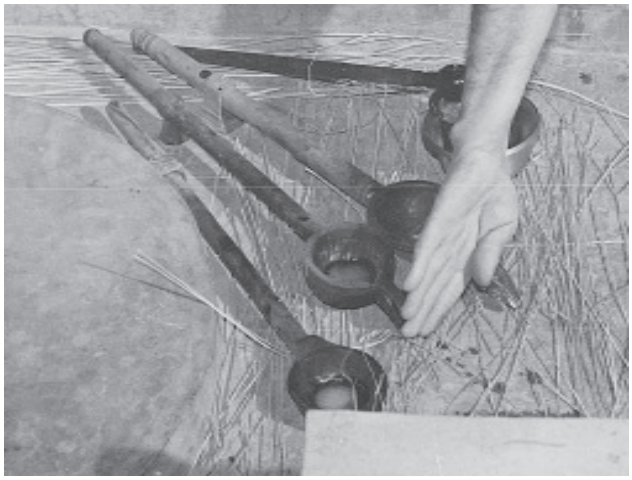

स्रुग्व्यूहन

व्रतन न. व्रत का भोजन तैयार करना, आप.श्रौ.सू. 16.12.10।

व्रतचर्या स्त्री. (व्रतस्य चर्या) व्रत-पालन, भा.श्रौ.सू. 8.11,17।

व्रतचारिन् वि. (व्रतं चरितुं शीलं यस्य, व्रत + चर् + णिनि) व्रत का पालन करने वाला, बौ.श्रौ.सू. 4.4.12 (कामम् उपरि शयीत, व्रतचारी त्वेव स्यात्)।

व्रतदुघा स्त्री. (द्वि.व.) (व्रताय दुह्यते या सा) दीक्षित व्यक्ति के लिए व्रत दुग्ध प्राप्त करने के लिए दुही जाने वाली गाय, का.श्रौ.सू. 7.4.19।

व्रतधुक् स्त्री. (धुक्=दुह्+कप्) यजमान के लिए व्रत-दुग्ध प्रदान करने वाली गाय, मा.श्रौ.सू. 2.2.5.28।

व्रतनवेला स्त्री. (व्रतनस्य वेला) व्रत-भोजन को तैयार करने एवं परोसने के लिए विहित समय, बौ.श्रौ.सू. 6.9 (सोम)।

व्रतपुत्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.4.3 सा.वे. 1.318 पर।

व्रतप्रद वि. (व्रत + प्र + दा + क) (वह व्यक्ति) जो (सोमयाग के दौरान यजमान को) व्रतभोजन प्रदान करता है, आप.श्रौ.सू. 10.16.16; भा. श्रौ.सू. 10.10.15।

व्रतप्रदान (व्रतभोजनं प्रदीयतेऽनेन) यजमान को व्रत का दूध प्रदान करने के लिए प्रयुक्त पात्र, का.श्रौ.सू. 8.1.14 (तानूनप्त्र, येन पात्रेण यजमानाय व्रतं प्रदीयते तद्व्रतप्रदानम्, स.वृ.); भा.श्रौ.सू. 10.7.1; आप.श्रौ.सू. 10.10.6 (प्याला, पानपात्र)।

व्रतयत् वि. (व्रत + क्यच् + शतृ) (व्रत दुग्ध) का उपभोग अथवा आहार करने वाला, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.3 (नादीक्षितो व्रतयन्तं पश्येत्); भा.श्रौ.सू. 10.10.11।

व्रतयति (व्रत + क्यच् लट् प्र.पु.ए.व.) दूध का आहार करता है 12.2.7।

व्रतवत् पु. (व्रत + मतुप्) छ: सवन दिनों वाला (सोम-याग)। यह पाँच दिन का होता है एवं महाव्रत दिन छठा होता है, मा.श्रौ.सू. 9.4.3.1।

व्रतश्रपणागार न. (व्रतस्य श्रपणं व्रतश्रपणं तस्य आगारम्) वह शाला या मण्डप, जहाँ व्रत-भोजन पकाया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.1.12 (शाला या प्राग्वंश के दक्षिणी ओर)।

व्रताक्ता वि. (स्त्री.) (व्रतेन + अक्ता, अक्ता = अञ्ज् + क्त + टाप्) (वि.) व्रतदुग्ध से लिप्त (काष्ठ का लट्ठा), मा.श्रौ.सू. 7.2.1.27।

व्रतोपायन न. (व्रतस्य उपायनम्) (यजमान द्वारा) व्रत-ग्रहण, आप.श्रौ.सू. 4.2.8; श्रौ.प.नि. 11.72 (आहवनीय अग्नि में चार समिधायें रखना एवं जल छिड़कना, द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) I.259।

व्रतोपायनीय पु. इष्टि के प्रारम्भ के समय जपे जाने वाले एक मन्त्र 'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 20.17; आप.श्रौ.सू. 9.1.13; श.ब्रा. 1.1.1; भा.श्रौ.सू. 6.4.1।

व्रतोपेत वि. (व्रतं उपेतः) ग्रहीतव्रत (वह व्यक्ति) जो 'व्रतोपायन' कृत्य (की प्रक्रिया से) गुजर चुका हो (अर्थात् जिसने व्रत ग्रहण कर लिया हो अर्थात् यह उद्घोषणा कि 'मैं कृत्य का अनुष्ठान करने जा रहा हूँ, बौ.श्रौ.सू. 1.1.7; मा.श्रौ.सू. 1.1.1.12।

व्रत्यनिवृत्ति स्त्री. (व्रत्यात् निवृत्तिः) व्रत-भोजन का आहार करने के नियम से मुक्ति, का.श्रौ.सू. 8.7.22।

व्रातभृती स्त्री. वातभृत् अग्नि को अर्पित इष्टि, आप.श्रौ.सू. 9.3.23 (भाष्य - वातभृतिं च अधिकाम्)।

व्रात्य वि. (व्रातात् च्यवते, व्रात + यत्) व्यक्ति जो कृषिजीवी अथवा व्यापारियों के समूह से सम्बद्ध न हो, पञ्च.ब्रा. 17.1.1-2, 9; मा.श्रौ.सू. 9.3.3.2; द्रष्टव्य - हजरा आर्.सी., ए. एन जाली अभि. ग्र. बड़ोदा, 1983, पृ. 143-53. 'व्रात्य' शब्द निर्गलितार्थ है संस्कार-च्युत अत एव जातिबहिष्कृत।

व्रात्यस्तोम पु. एक दिन में समाप्य एक विशिष्ट सोम-याग का नाम, इनकी संख्या चार है; व्रात्य की प्रशस्ति में जाति-बहिष्कृत के पुनः स्वीकरण का एक कृत्य, इसका अनुष्ठान व्रात्यों द्वारा किया जाता है ताकि वे अपने व्रात्यत्व का परित्याग कर सामाजिक रूप से अर्ह (या स्वीकार्य) हो सकें, का.श्रौ.सू. 22.4.28 (व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा व्रात्य-भावाद्विरमेयुः); यह वैदिक कर्मकाण्ड में धर्मान्तरण का ज्वलन्त उदाहरण है। व्रात्य लोग जातिच्युत थे क्योंकि वे अपनी जाति (वर्ण) अथवा सामाजिक वर्ग के लिए विहित कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करते थे, पञ्च.ब्रा. 17.1.1-2, 9; का.श्रौ.सू. 22.4.1-28, बौ.श्रौ.सू. 18.24-26; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.682।

व्रीहि पु. चावल, जै.ब्रा. II.34।

व्रीह्ययूप पु. (व्रीहेः अपूपः) चावल का पुआ (भुर्ता), का.श्रौ.सू. 4.11.8 (पुनराधेय)।

श

शंयु पु. 'तच्छंयोरावृणीमहे------' यह अभिव्यञ्जना, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.34; द्रष्ट. शंयोर्वाक्, 1.4.2.19; 6.2.6.18; लाभदायक या कल्याणकारी, ऋ.वे. 10.143.6; श्रौ.को. (सं.) II.593; द्रष्टव्य - थीमे पा., KZ 69, 172-78।

शंयुवाक पु. 'शंयु' का उच्चारण; 'तच्छंयोरावृणीमहे' शब्दों से युक्त स्वस्तिवाचन (शुभाशंसा) का एक मन्त्र, तै.ब्रा. 3.5.11; श.ब्रा. 1.9.1.26. इसका उच्चारण होता द्वारा अध्वर्यु के आग्रह पर परिधियों को अग्नि में फेंके जाते समय किया जाता है (दर्श), आप.श्रौ.सू. 3.7.10; का.श्रौ.सू. 3.6.16; शंयुवन्त एक इष्टि है, जिसका अवसान 'शंयु' से होता है; उदाहरण के लिए सोम-याग की प्रयाणीयेष्टि का आमु-खात्मकभाग, आप.श्रौ.सू. 10.21.13; चातुर्मास्य में; भा.श्रौ.सू. 8.21.17 (ऐच्छिक रूप से); द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 37.310-11।

शकट पु. (न.) गाड़ी, यह जोती जाता है और इसका प्रयोग इसके मध्य भाग (नीड) में सोम लताओं का वहन करने के लिए जाता है, आप.श्रौ.सू. 10.27.10; दर्श में इसमें चावल रखा जाता है, 1.7.6; गार्हपत्य के नीड में प्रणयन के लिए एवं आहवनीय के प्रउग में वहन के लिए (प्रयुक्त), बौ.श्रौ.सू. 6.9; द्रष्टव्य- Janet K.L, KZ 71, 108-109।

शकटीप्रकार वि. (स्त्री.) (द्वि.व.) (शकट्याः इव प्रकारः ययोस्ते) शकट के आकार (प्रकार) वाली (दूध की बाल्टियां), मा.श्रौ.सू. 4.1.20 (प्रवर्ग्य)।

शकल पु. (द्वि.व.) शुक्र एवं मन्थी सोम-प्यालों के अर्पण के समय प्रयुक्त लकड़ी का टुकड़ा या फर्री, का.श्रौ.सू. 9.10.3। (एक प्रोक्षित एवं दूसरा अप्रोक्षित, एक का प्रयोग ढक्कन = अपिधान और दूसरे का प्याले को नीचे से ऊपर की ओर पोछने के लिए किया जाता है); द्रष्टव्य - 9.10; यूप के लिए वृक्ष काटते समय प्राप्त इसकी चैली (टुकड़ा); प्रथम आहुति के रूप में अर्पित कर दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.9.10 (पशु.) 1. प्रवर्ग्य में शकल आहुति के रूप में अर्पित कर दिया जाता है, 15.11.6-7; पुरोडाश का एक कतरा, बौ.श्रौ.सू. 7.15; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 224-113; - होम, युधि. 69।

शकलपरिधि पु. (शकलश्च परिधिश्च) लकड़ी की फर्रि (यां) एवं परिधि (यां), का.श्रौ.सू. 5.6.6 (इध्मस्थाने शकलपरिधी न्निधाय मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यः सायं चरुः पयसि; साकमेधः); द्रष्टव्य - श.ब्रा. 2.5.3.4-5; परिधीन्श्च शकलान् च।

शकलवर्जम् क्रि.वि. शकल (के प्रयोग) को छोड़कर (यूप के प्रसङ्ग में उल्लिखित), आप.श्रौ.सू. 11.9.11 (औदुम्बरी)।

शकैध वि. (शकृत् एधः यस्य) जिसका ईंधन उपला हो, (वह) अग्नि जिसमें ईंधन के रूप में गोबर के उपले लगाये जाते हों, आप.श्रौ.सू. 9.9.12 (देखें - तृणैध, वही)।

शक्करी स्त्री. = महानाम्नी (7 x 8) ऋचाएं, जै.ब्रा. I.194।

शङ्कु पु. (काष्ठीय) नोकदार खपची, मा.श्रौ.सू. 2.1.2.14 (पत्नी द्वारा पति को खुजलाने के लिए प्रयुक्त), इसे यजमान की पत्नी के वस्त्रों में बांध दिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.5; (दीक्षा); महावेदि, सदस् आदि के क्षेत्र को चिह्नित करने के लिए भूमि में गाड़ी गई कील या खूंटी, आप.श्रौ.सू. 11.4.12; का.श्रौ.सू. 83.7-11 (सोम); प्राचीनवंश के दक्षिणी द्वार के पूर्वी यूप के दक्षिण की ओर जड़ी गई कील (खूंटी) भी, जिसमें बछड़ा बांधा जाता है। एक और खूंटी अज के लिए जड़ी जाती है, मण्डप के भीतर एक (खूंटी) मेमने के लिए, भा.श्रौ.सू. 11.6.11-12 (प्रवर्ग्य); (रज्जु के प्रवर्धन के आधे पर) एक खम्भा या लट्ठा), मा.श्रौ.सू. 10.1.1.11; न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 11.10.11 सा.वे. 1.581 पर आधृत।

शङ्खिन् वि. (शङ्खः अस्यास्ति) शंख से युक्त (झील), बौ.श्रौ.सू. 10.4.2 (सोम-स्नान); (शङ्खिनी) स्त्री. वह जल जिसमें शङ्ख हों, आप.श्रौ.सू. 10.5.15।

शण न. सन, पटसन, का.श्रौ.सू. 7.3.22 (शणमुञ्जमिश्रा मेखला), (सोम)।

शणसूत्र न. पटसन से निर्मित सूत्र (डोरी), का.श्रौ.सू. 16.5.1 (चयन में रुक्म)।

शतकृष्णला स्त्री. (शतं कृष्णलानि यस्यां सा) एक इष्टि का, जिसका अनुष्ठान पूर्णावधि जीवन = दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए घी के साथ हविर्द्रव्य के रूप में प्रयुक्त होने वाले

सौ स्वर्ण-खण्डों से किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 5.1.9.6-11।

शतमान न. 100 'मानों' का एक स्वर्ण खण्ड, एक माप, शां.श्रौ.सू. 2.3.22 (अग्न्याधेय); द्रष्टव्य - सरकार डी.सी. INSI. 15 (2), 136-150।

शतरुद्रिय पु. 1. सन्तान के रुद्र से आक्रान्त होने पर उत्तर-पूर्व प्रस्थान करते समय जपे जाने वाले एक मन्त्र का नाम, मा.श्रौ.सू. 3.2.13; 2. अग्निवेदि के उत्तरी तरफ के पश्चिमी कोने पर (जुहू के बजाय) 'अर्क' के पत्ते से दी जाने वाली गवेधुका के आटे (सत्तू) के साथ जंगली तिल (जर्तिल) की आहुति। प्रसादन (सन्तुष्टीकरण) के कृत्य के रूप में रुद्र के लिए 425 आहुतियां दी जाती हैं, आप.श्रौ.सू. 17.11.3; का.श्रौ.सू. 18.1.1।

शतरुद्रियहोम पु. चिनी गई अग्निवेदि के दक्षिणी पक्ष के पश्चिमी कोने पर पलाश के पत्ते एवं पलाशदण्ड से दी जाने वाली आहुति। इस होम में हविर्द्रव्य के रूप में जंगली तिल से मिश्रित गवेधुका के सत्तू अथवा बकरी के दूध (अजाक्षीर) का प्रयोग होता है, का.श्रौ.सू. 1.1.27-37, विभिन्न स्तरों पर, त्र्यनुवाकान्ते (वा.सं. 16.1-26) जानुदघ्ने पञ्चान्ते नाभिदघ्ने (1.6.27-37) प्रत्यवरोहेभ्यो (वा.सं. 16.63-65) मुखमात्रे।

शतातृण्णा स्त्री. (शतं आतृण्णानि यस्यां सा) (सौत्रामणी में प्रयुक्त) सौ छिद्रों वाली थाली, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.11. प्रतिप्रस्थाता इस थाली को दक्षिणाग्नि पर रखता है एवं शेष सुरा को इसके ऊपर उड़ेलता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.31; 5.2.11.28।

शन्नोदेवीय न. शन्नो देवीरभीष्ट---- से प्रारम्भ होने वाली चार ऋचाओं का पारिभाषिक नाम, जिनका उच्चारण कार्य-सम्पादक ऋत्विजों (उद्गातृगण) द्वारा भूमि पर अपने प्यालों में निहित सामग्री को उड़ेलने के बाद अपने वक्षःस्थलों का स्पर्श करते हुए किया जाता है (अप्सुषोम के भक्षण के पश्चात् सम्पाद्य कृत्य), शां.श्रौ.सू. 8.8.6-9; तुल. 2.4.14; 11.6-23।

शफ पु. (द्वि.व.) उखा से अग्नि को उठाने के लिए प्रयुक्त काष्ठीय (उदुम्बर की लकड़ी से निर्मित) चिमटों का एक जोड़ा, आप.श्रौ.सू. 15.5.11; बौ.श्रौ.सू. 9.5, महावीर उठाने के लिए (प्रवर्ग्य)।

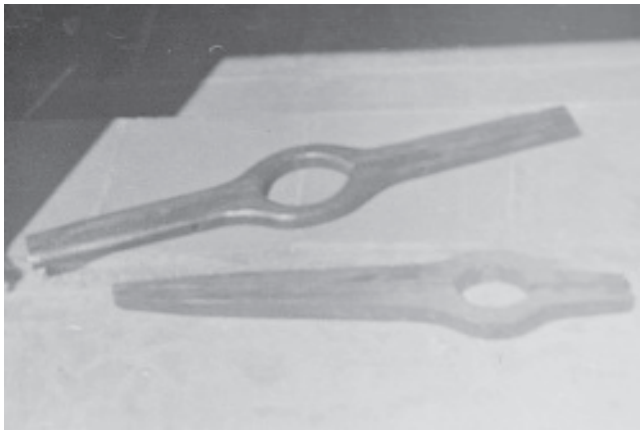

शफ

शफोपयमन न. (शफौ च उपयमनं च, एकशेष) दो काष्ठीय चिमटे या सड़सियां एवं लम्बी काष्ठीय करछुल, बौ.श्रौ.सू. 9.5।

शबली स्त्री. चित्तीदार या चितकबरी गाय, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.34; (तुल. कृष्णशबली); 9.5.6.25 (तु. शबलीहोम, द्रा.श्रौ.सू. 26.4.1)।

शमनहोम पु. (शमनाय होमः, शमनश्चासौ होमो वा) यदि पवित्र अग्नियों के आधान के समय, सूर्य (बादलों से) घिरा हो या राहुग्रस्त हो (अर्थात् सूर्यग्रहण हो) और सूर्योदय न दीख पड़े (तो तन्निमित्तक) प्रायश्चित्तिक आहुतियों का नाम। ये आहुतियां 'उद्वयं तमसस्परि------', 'उदु त्यं जातवेदसम्-----' एवं 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्--', इन मन्त्रों के साथ दी जाती हैं, आप.श्रौ.सू. 9.12.3; वैखा.श्रौ.सू. 20.24।

शमनीचामेढ्र वि. जिसका जननेन्द्रिय (लिङ्ग) नीचे की ओर झुका हो; दुर्बल, ला.श्रौ.सू. 8.6.4। (शमेन नीचैः आमेढ्रं = मेढ्रं यस्य सः), इसका पाठ 'शमनीचमेढ्र' अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

शमितृ पु. वह व्यक्ति जो वध्य-पशु को उसका गला घोटकर शान्त करता है (अर्थात् मार डालता है), आप.श्रौ.सू. 7.16.3, एवं अङ्गों को काटता है, 14.14; सोमयाग के सोलह ऋत्विजों से भिन्न व्यक्ति, द्रष्टव्य, का.श्रौ.सू. 6.7.1 (विशास्ति पशुमन्यः); का.श्रौ.सू. 6.7.1-3 भी देखें; यह ब्राह्मण या अब्राह्मण कोई भी हो सकता है, आश्व.श्रौ.सू. 12.9.11 (तद्ब्राह्मणः स्याच्छमिता यद्यब्राह्मणः स्यात् तदा एवं भागं ब्राह्मणाय दद्यात्, स. वृ.)।

शमीगर्भ पु. शमी वृक्ष का भ्रूण, आप.श्रौ.सू. 5.1.2; 5.10.7 (अश्वत्थ का विशेषण); इस लकड़ी से दो अरणियां निर्मित होती हैं, (शम्यां गर्भः उत्पत्तिः यस्य) वि. 'शमी' वृक्ष के ऊपर उगा हुआ (प्ररूढ), भा.श्रौ.सू. 5.1.1 (अश्वत्थ की जड़े चाहे भूमि तक पहुँचें या न पहुँचें); मा.श्रौ.सू. 1.5.1.9; द्रष्टव्य – आश्व.श्रौ.सू. 2.1.17; आप.श्रौ.सू. 5.1.2; 10.7।

शमीगर्भी वि. (स्त्री.) अश्वत्थ के भ्रूण का निर्माण करने वाली (= 'शमी' के ऊपर प्ररूढ = उगी हुई), बौ.श्रौ.सू. 2.6 : 28 (अरणी उत्सेध – 4 अंगुल, विस्तीर्ण – 12---- आयता------16------)।

शमीगर्भ

शम्या स्त्री. (द्वि.व.) 1. युग (जुएँ) की शलाका, का.श्रौ.सू. 7.2.23; मा.श्रौ.सू., 2.1.4.38; 32 अंगुल के बराबर नाप वाली एक छड़, का.शु.सू. 2.5; 36 अंगुल के बराबर नाप वाला खादिर की लकड़ी का पच्चर (बौ.शु.सू. 1.14; आप.शु.सू. 6.22); आठ अंगुल के व्यास से युक्त गोलाकार अग्रभाग (शीर्षभाग) वाला, जिसका प्रयोग अग्नीध्र द्वारा नीचे वाले पीसने के पत्थर (शिल) के सहारे के रूप में एवं पाट (पेषणी) पर आघात करने के साधन के रूप में किया जाता है, श्रौ.प.नि. 8.42; सोम की गाड़ी (सोमशकट) की थून (टेक) के रूप में काम में आने वाली, बौ.श्रौ.सू. 6.15; दूरी के मापन के लिए फेंकी जाने वाली, आप.श्रौ.सू. 9.1.17; इसके द्वारा ताडित बिन्दु को 'शम्याप्रव्याध' कहते हैं, बौ.श्रौ.सू. 12.17।

शम्या-प्रास पु. फन्नी (शम्या) का प्रक्षेप, श्रौ.कौ.(सं.) 1.109; बौ.श्रौ.सू. 12.17

शम्यारोह वि. (शम्याम् आरोहः यस्य) शमी वृक्ष पर उगने वाला (अश्वत्थ), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.9 (इति शम्यारोहस्य अश्वत्थस्य अरणी आहरति); गेल्डर इसका अनुवाद अन्य प्रकार से करते हैं [स्वर के आधार पर 'शम्यारोह' का वास्तव में अर्थ है 'शमी पर उत्पन्न एवं वृद्धि को प्राप्त 'अश्वत्थ']।

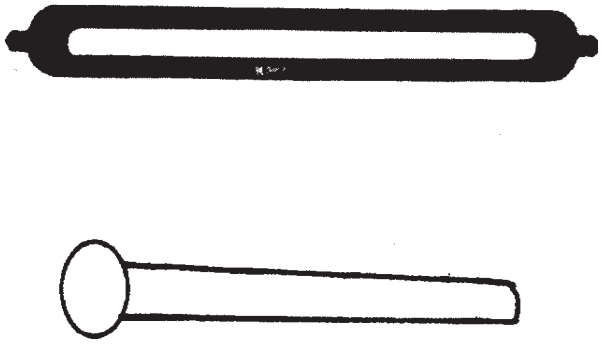

शम्या

शय पु. एक माप का नाम = एक अरत्नि, मा.श्रौ.सू. 10.1.1.4; 1.7.1.3; (दर्शपूर्णमासार्थ वेदि के लिए रस्सी 6 अरत्नि = 144 अङ्गुल की होती है); वि. (एक) आरक्षित (दिन), आप.श्रौ.सू. 21.15.9,14; गवामयन में प्रायणीय के बाद जोड़े गये दो दिन आरक्षित दिन कहलाते हैं।

शर पु. पके हुए चावल (भात) का झाग, आप.श्रौ.सू. 8.10.7 (साकमेध-गृहमेधीय)।

शरण न. शाला, मण्डप, आप.श्रौ.सू. 5.4.1.2 (उदीचीनवंशं शरणं करोति); उत्तर की ओर उन्मुख बाँस की धरन वाला; इसके मध्य धरन के नीचे गार्हपत्य की स्थिति होती है। इसका (शरण का) प्रयोग अध्वर्यु आधेय में करता है।

शराव पु., एक पात्र, सकोरा, जै.ब्रा. II.262।

शरीर न. शरीर के अङ्ग, भा.श्रौ.सू. 11.21.20।

शरेषीका स्त्री. (शरस्य इषीका) 'शर' नामक घास की अग्रशलाका (पत्र), का.श्रौ.सू. 7.3.4 (दीक्षा); 'शर' के तूल (सूत) से निर्मित तूलिका, बौ.श्रौ.सू. 6.1 (सोम०);

सरकण्डे की नाल या शलाका, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.38 (आँखों में अञ्जन लगाने के लिए प्रयुक्त)।

शर्करा स्त्री. (बहु.व.) कंकड़, मा.श्रौ.सू. 1.5.2.15; जिससे अन्त्येष्टि स्थान = श्मशान का निर्माण किया जाता है, भा.पि.मे. 1.10.9, एवं मृत के भस्मीकृत अस्थियों से युक्त कलश (जिससे) मूंदा जाता है, 2.4.15; श्रौ.को. (सं.) II.514 (प्रवर्ग्य)।

शर्धवती स्त्री. (शर्ध + मतुप् + ङीप्) 1. 'अग्ने शर्ध महते सौभाग्याय-----' एवं 'वातोपधूत इषितो वशामनु---' ये दो ऋचायें (इनमें) 'शर्ध' शब्द के प्रयोग के कारण 'शर्धवती' कही जाती हैं, आप.श्रौ.सू. 3.15.5 एक अतिरिक्त देवता के रूप में 'इन्द्र वैमृध' के लिए पुराडाश - प्रदान की क्रिया से युक्त इष्टि में 'संयाज्या' ऋचाओं के रूप में प्रयुक्त; 2. संयाज्या (ओं) का पारिभाषिक नाम : स्विष्टकृत् के लिए 'जुष्टोदमूना------' पुरोनुवाक्या के रूप में एवं 'अग्ने शर्ध महते-----' याज्या के रूप में (मै.सं. 4.11.1); मा.श्रौ.सू. 5.1.5.11।

शलपरिचाय्य पु. (शलेन परिचाय्यः, परिचाय्य, अग्नौ परिचाय्योप-चाय्यसमूह्याः, पा. 3.1.131 परि + चि + ण्यत्) लकड़ी की फर्रियों से निर्मित अग्निवेदि, मा.श्रौ.सू. 4.1.22।

शलली स्त्री. तीन धारियों से युक्त साही का काँटा, जिससे यजमान के बाल विभाजित किये जाते हैं, भा.श्रौ.सू. 8.4.12।

शला स्त्री. दण्ड, मा.श्रौ.सू. 5.2.9.4 (पशुयाग); (प्रशस्ता बाहुशला दोषणी कश्यपेवांसशिद्रे धोणी कवषोरा)।

शलाका स्त्री. काष्ठ की छड़ी ('मन्थ' - संज्ञक मिश्रण को चलाने = विलोडन के लिए प्रयुक्त), का.श्रौ.सू. 5.8.18 (सन्तापनीय); घासग्र, भा.श्रौ.सू. 11.13.5 (काशिकर-अनुवाद)।

शलाकामुष्टि (शलाकायाः मुष्टिः) एक मुट्ठी भर लकड़ियों के फर्रे अथवा लकड़ियों के फर्रे का गुच्छा, आप.श्रौ.सू. 15.13.3 (प्रवर्ग्योद्वासन), इनकी संख्या तीन होती है।

शल्क न. काष्ठ-खण्ड, लकड़ी का टुकड़ा = शकल, काशिकर 287 इण्डेक्स।

शष्कुली स्त्री. एक बड़ा गोलाकार पुरोडाश, कचौड़ी, पिष्ट चावल, चीनी एवं तिल के सम्मिश्रण को तैल में पकाकर शष्कुली तैयार की जाती है, कौशि.सू. 23.8।

शष्पपवित्र न. (शष्पस्य पवित्रम्) नवाङ्कुरों (नव तृणों) से निर्मित पवित्र, मा.श्रौ.सू. 5.2.4.11 (सौत्रामणी)।

शष्प न. (सुरा में प्रयुक्त) यव की कोमल घास, श्रौ.को. (अं.) 1.903।

शस्त्र न. (मेल खाते) गेय स्तोत्र से भिन्न स्तुति, जिसका वाचन होता है (अर्थात् स्तोत्र का गायन होता है एवं शस्त्र का पाठ, अप्रगीतमन्त्रसाध्यास्तुतिः शस्त्रम्, प्रगीत मन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम्)। यह 'स्तोत्र का पूरक एवं पश्चाद्वर्ती है, 'स्तोत्रमग्रे शस्त्रात्', आश्व.श्रौ.सू. 5.10.1. सोमाहुति की संगति के रूप में (अर्थात् साथ में) होता एवं उसके सहायकों, जो होत्रक कहलाते हैं, के द्वारा पठित ऋचाओं से निबद्ध होता है। शस्त्र के वाचन में घनिष्ठता से सम्बद्ध अन्य पहलू हैं : 'आहाव' प्रतिगर, तुष्णींशंस, निविद् या पुरोरुच्। इसके बाद की क्रियाये हैं : प्रातःकाल में उक्थं 'वाचि' जप, मध्याह्न में उक्थं वाचि इन्द्राय एवं सायंकाल के समय उक्थं वाचि इन्द्राय देवेभ्यः का जप, ऐ.ब्रा. 3.12; शां.श्रौ.सू. 14.3 के अनुसार वे हैं 'उक्थम् अवाचि', 'उक्थम् अवाचि इन्द्राय' एवं अवाचि इन्द्राय देवेभ्यः, आश्व.श्रौ.सू. 5.9.2-11; एवं अध्वर्यु द्वारा उच्चारित 'ओम्' से समाप्ति होती है। शस्त्र को कई भागों में तोड़ा जा सकता है जैसे 'आज्य' एवं 'प्रउग' में : स्तोत्रिय 'एक तृच' जिसका गायन मेल खाते स्तोत्र में हो चुका है, 'अनुरूप' संज्ञक एक तृच जो छन्द में समान है या मेल खाता है, स्तोत्र तृच से युक्त देवता, 5.10.26-37 (स्तोत्रियेणानुरूपस्य च्छन्दः-प्रमाणलिङ्गदैवतानि; आर्षं चैके); शस्त्र का मुख्य भाग 'उक्थमुख', शां.श्रौ.सू. 7.11.3. अथवा मरुत्वतीयवत् भाग हैं : 'प्रतिपद्', 'अनुचर' आदि। अग्निष्टोम-याग में तीन सवनों में वितरित (विभक्त) 12 स्तोत्र और 12 शस्त्र होते हैं (5 + 5 + 2)। प्रातःकाल होता 'आज्य' एवं 'प्रउग' शस्त्र का पाठ करता है एवं उसके बाद आने वाले तीन आज्य (स्तोत्रों) का पाठ क्रमशः मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसिन् एवं अच्छावाक करते हैं, पाठ्य के लिए द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.323, 332, 338, 343, 318. मध्याह्न के समय 'मरुत्वतीय', निष्केवल्य एवं तीन निष्केवल्य जिनका पाठ होत्रक करते हैं श्रौ.को. (सं.) 383, II.(i) 383, आदि। तृतीय सवन में वैश्वदेव एवं अग्निमारुत शस्त्र का वाचन 'होता' करता है; शस्त्र के बाद होता 'वषट्' का उच्चारण करता है एवं अध्वर्यु सोम की आहुति डालता है एतदनन्तर

'अनुवषट्कार' एवं सोम की आहुति के शेष भाग का पान होता है; प्रशस्ति-सूक्त, गोंड, जे. प्रातरनुवाक, पृ. 33।

शस्त्रदोह पु. 'शस्त्रस्य शस्त्रम् असि ऊर्जं मह्यं शस्त्रं दुहाना मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यात्' इस मन्त्र का नाम, जिसका उच्चारण यजमान द्वारा अध्वर्यु के अनुदेशानुसार सम्बद्ध ऋत्विज् द्वारा शस्त्र का पाठ करते समय किया जाता है, श्रौ.को. (सं.) II.572 = शस्त्रस्य दोह : (इसके बाद वह 'अभ्यास' मन्त्र का भी वाचन करता है)।

शस्त्रिन् पु. (शस्त्र + इन्) (होत्रकों के मध्य) वह जो शस्त्र का पाठ करने के लिए अधिकृत हो, अर्थात् मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसिन् एवं अच्छावाक, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.10 (-------प्रशास्ता ब्राह्मणाच्छंस्यच्छावाक इति शस्त्रिणो होत्रका:)।

शाकल न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.9, सा.वे. 1.126 पर आधृत; गृहमेधीय के पश्चात् (अग्नि में प्रक्षिप्त फर्रियां, श्रौ.को (सं.) I.547; एक सम्प्रदाय (ऋग्वेद की एक शाखा)।

शाकलहोम पु. (शाकलानां होम:) आहवनीय में (जिस वृक्ष से यूप बना हो उसकी) फर्रियों की आहुति, एक प्रायश्चित्तिक कृत्य, आप.श्रौ.सू. 13.17.9; बौ.श्रौ.सू. 8.17 (यज्ञीय स्तम्भ)।

शाक्त्य न. अतिरात्र सोम-याग में एक साम का नाम, जै.ब्रा. I. 215।

शाक्कर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.8.12।

शाखा स्त्री. अध्वर्यु द्वारा आहृत एवं काटी गई पलाश अथवा शमी की टहनी, जिसका प्रयोग बछड़ों को उनकी माँ से दूर हटाने (वत्सापाकरण) के लिए होता है, भा.श्रौ.सू. 1.2.8, 12 (दर्श); सम्प्रदाय।

शाखानियोजन न. (शाखायां नियोजनम्) वध्यपशु को वृक्ष की शाखा में बाँधना, का.श्रौ.सू. 6.10.30 (गृह्य पशुयाग में)।

शाखापवित्र न. (शाखाया: पवित्रम्) शाखा की शोधिका, शाखा से निर्मित पवित्र, मा.श्रौ.सू. 1.1.3.10 (दर्शेष्टि में प्रयुक्त); तीन 'पवित्र' दर्भपत्र (शमी अथवा किसी यज्ञीय वृक्ष) की शाखा (टहनी) में शीर्षभाग पर संलग्न अथवा लपेट दिये जाते हैं; कर्मकाण्डीय उपकरणों को पवित्र करने वाले के रूप में प्रयुक्त टहनी, आप.श्रौ.सू. 1.6.9; 11.5. एक विशेष प्रकार का साफ करने का साधन, जो उस शाखा से निर्मित होता है, जिससे उपवेष (बेलचा) तैयार किया गया था एवं उस शाखा के उस शीर्ष भाग से युक्त जो चोटी की तरह दर्भ से चारों ओर बँधा होता है, हि.आ.ध. II.ii.1015 *fn* (पा.टि.); श्रौ.प.नि. 12.81।

शाखापवित्र

शाट्यायनि पु. एक धर्मशास्त्री आचार्य का नाम, जै.ब्रा. II.168।

शान्ति स्त्री. यजमान जब मरने वाला होता है, उस समय अध्वर्यु द्वारा पढ़ा जाने वाला 'शन्नो मित्र:----' तै.उप. 1.1, से आरम्भ होने वाले अनुवाक के मन्त्रों का नाम, वैखा.गृ.सू. 5.1-6; बुरे पहलुओं की शान्ति के लिए पठित; दो भागों में विभक्त, बौ.श्रौ.सू. 9.5; गार्हपत्य के समीप मुञ्ज के कटे स्थानों पर प्रथम महावीर पात्र को रखने के पूर्व अध्वर्यु द्वारा खौलते जल को छूते समय जपे जाने वाले 'नमो वाचे' से प्रारम्भ होने वाले मन्त्रों का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 13.7-11; प्रवर्ग्य में, श्रौ.को. (अं.) II.180; अनिष्ट की शान्ति या सन्तोषण, The Ritual Sutras, J Gond, Glossory (शब्दसूची), पृ. 662.

शामित्र पु. शामित्र मण्डप में स्थित अग्नि का नाम (जिसमें वध्यपशु का शमन होता है)। अग्नीध्र द्वारा यहाँ से लाल तप्त कोयलों को लाया जाता है और वेदि के पश्चिम भाग के उत्तरी कोने पर, उस पर के कुशों को हटाकर रख दिया

जाता है, हि.आ.ध. II.ii.1130; चि.भा.से : अग्नि का नाम। इस अग्नि पर पशु के अङ्ग भुने जाते हैं। अग्नीध्र ज्वलित-काष्ठ (उल्मुक) को आहवनीय से निकाल लेता है, जो (अग्नीध्र) इसे एक पूर्व व्यवस्थित पात्र पर कुचलता है। यह स्थान शामित्र बन जाता है। ऐच्छिक रूप से अग्नि को घर्षण से भी उत्पन्न किया जा सकता है, भा.श्रौ.सू. 7.12.10, 13.15; का.श्रौ.सू. 4.5.14 (पशु)।

शामीली स्त्री. (शम्याः + अवयवः, शमी + टलञ् (शम्याष्टलञ्, पा. 4.3.142) + ङीप्) शमी-वृक्ष की शाखा, का.श्रौ.सू. 4.2.1 (पर्णशाखां छिनत्ति शामीलीं वा, दर्श.)।

शामूल न. ऊनी कमीज, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.10 (वे इससे घोड़े का गला घोटते हैं)।

शाम्मद न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.5.10 सा.वे. 1.483 पर।

शार्कर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.5.14 सा.वे. 1.400 पर।

शार्ङ्ग न. एक साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.88; इसका गायन प्रवर्ग्य में किया जाता है।

शार्दूलाजिन न. (शार्दूलस्य अजिनम्) व्याघ्र का चर्म, जै.ब्रा. I.341।

शाला स्त्री. पूर्व-केन्द्रित धरन वाली अतएव 'प्राचीनवंश', महावेदि के पश्चिम की ओर स्थित यज्ञीय शाला, बौ.श्रौ.सू. 6.1; आप.श्रौ.सू. 10.5.1; प्राग्वंश, 3.4; इसे विमित भी कहते हैं। यह एक चतुष्कोणीय मण्डप है, जिसकी नाप 20 × 10 'अरित्र' होती है, का.श्रौ.सू. 7.1.24 (भाष्य - 16 × 12 प्रक्रम); इसमें कोनों में चार खिड़कियां एवं चार द्वार (अतीकाश) होते हैं (आप.श्रौ.सू. 10.5.4); चटाई (कट) से ढकी हुई एवं घिरी हुई। दक्षिण की ओर व्रतदुग्ध पकाने के लिए एक कक्ष होता है और पश्चिम में यजमान पत्नी के लिए एक झोपड़ी (पत्नीशाला); उत्तर की तरफ चटाई से घिरे हुए दो शौचालय यजमान एवं यजमानपत्नी के लिए, यदि जल-स्थान दूरी पर स्थित हो। शाला के भीतर तीन अग्नियां स्थापित की जाती हैं (तुल.-विहार), बौ.श्रौ.सू. 6.1; आप.श्रौ.सू. 10.5.1-5. इस शब्द का अर्थ 'अग्निशाला' भी है, आप.श्रौ.सू. 3.4.8 भाष्य = अग्न्यागार।

शालाक पु. (शलाकायाः विकारः) लकड़ी की फर्री (चैली) से निर्मित (अग्नि) (ये तृतीय सवन में 'धिष्ण्या' - संज्ञक अंगीठी पर फैला दी जाती है), बौ.श्रौ.सू. 8.11।

शालाद्वार्य पु. (शालाद्वारे भवः) 'प्राग्वंश' शाला के पूर्वी द्वार पर (स्थित) आहवनीय अग्नि, 'चतुर्गृहीतं शालाद्वार्ये जुहोति-\---', का.श्रौ.सू. 8.3.25 (जो गार्हपत्य है, जहाँ तक उत्तरवेदि पर आहवनीय अग्नि की बात है)।

शालामुखीय वि. (शालामुखे भवः शालामुख + छ, वृद्धाच्छः, पा------) शाला के सामने स्थित, अर्थात् प्राग्वंश, बौ.श्रौ.सू. 6.22 (शङ्कु; पु. (सप्त.) शाला के सामने स्थित शालामुखीय अग्नि के समीप, भा.श्रौ.सू. 12.16.5 (पाशुका-न्याज्यानि गृह्णाति)।

शालास्तम्भ पु. (शालायाः स्तम्भः) अग्निशाला का खम्भा, का.श्रौ.सू. 7.1.30।

शालीन वि. (शाला+खञ्, पा. 5.2.20) अग्निक्षेत्र से युक्त, भा.श्रौ.सू. 5.2.11।

शासप्रैष पु. (शासाहरणाय प्रैषः) कटार (छुरी) लाने के लिए आवाहन, का.श्रौ.सू. 16.1.13; तुल. 'दशेष्ट्वा प्रयाजानाह शासमाहर इति', का.श्रौ.सू. 6.4.9।

शिक्य न. छींका, रस्सी के फन्दों से निर्मित एवं उसमें लटकाने के लिए प्रयुक्त एक लटकन (छींका या शिकहर, छीकें में किसी वस्तु को रखकर उसे लटका देते हैं), का.श्रौ.सू. 16.5.2; जमे हुए दुग्ध को रखने के लिए बौ.श्रौ.सू. 6.6; उखा को संभालने या रखने के लिए, आप.श्रौ.सू. 16.10.8 (चयन)।

शिखण्डिनी स्त्री. एक प्रकार की वेदि (एकादशिनी के लिए अभिप्रेत, इस अवस्था में यज्ञीय स्तम्भ = यूप दो भागों में आगे एवं पीछे की ओर लाए जाते हैं, आप.श्रौ.सू. 16.10.8)।

शितिवाल पु. (शितिवर्णः वालः यस्य स.) श्वेत अथवा कृष्ण वर्ण की पूंछ (पुच्छ) वाला, का.श्रौ.सू. 15.3.15 (शितिवालः कृष्णपुच्छः। श्वेतपुच्छ इत्यपरे, स.वृ. राजसूय)।

शिपाल पु. आहवनीय अग्नि के उत्तर-पूर्व में निर्मित, घुटने भर गहरे एक गड्ढे में रखा हुआ एक प्रकार का सेवार, श्रौ.को. (अं.) I.1073 (पितृमेध)।

शिपिविष्टवती स्त्री. (बहु.) (शिपिविष्ट + मतुप् + ङीप्, शिपिविष्ट शब्दः अस्ति अस्यां) 'शिपिविष्ट' (विष्णु) शब्द से युक्त ऋचा, ऋ.वे. 7.100.5,7; श्रौ.को. (सं.) II.652।

शिरशिराभवति 'शिर-शिर' की आवाज करते हुए उबलता है, आप.श्रौ.सू. 9.6.10।

शिरशिरायत् वि. शिर-शिर करता हुआ, छनछनाता हुआ, मा.श्रौ.सू. 3.2.6।

शिरोनिष्काष पु. (शिरसः निष्काषः) मलाई-खुरचना अथवा उबलते दूध का झाग, मा.श्रौ.सू. 1.7.5.18।

शिलिशिलीभवति बुदबुदाने लगता है (यदि दूध बुदबुदाने लगे), भा.श्रौ.सू. 9.8.8।

शिल्प न. वाचन में कलाकारी, मा.श्रौ.सू. 7.2.2.34 (तृतीयसवने उक्थेषु शिल्पं प्रतिगरः) छठें दिन, पृष्ठ्य षडह; आभूषण (माहेन्द्रकाले शिल्पानि व्यायतयन्ति), मा.श्रौ.सू. 7.1.2.21।

शिल्पवत् वि.(शिल्प + मतुप्) वैशिष्ट्ययुक्त, अर्थात् प्रतिदर्श प्रकार (प्राकृत) से अलग हटकर (भाष्य-'प्राकृतात् कार्ष्मर्यमयादिना विशेषेण विशेषवत्), बौ.श्रौ.सू. 6.18; 17.9 में, तथात्व-हीन; या परिशुद्धि से रहित; शिल्पवन्त इव। शिथिलप्रयत्ना इव अत्वरमाणा इव; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II. 528, 546।

शिव पु. आधान के समय यजमान द्वारा उच्चारित 'शिव' शब्द (की अभिव्यञ्जना) से युक्त मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 5.15.2।

शिश्नप्रणेजनी स्त्री. (शिश्न + प्र + णिजिर् + इनि + ङीप्) योनि के रूप में साफ करने (मार्जन) के साधन से युक्त, ला.श्रौ.सू. 4.3.11।

शीतभस्मन् न. (शीतं भस्म) शालामुखीय की (ठण्डी राख), मा.श्रौ.सू. 2.2.4.25 (पदार्धम् उपवपति)।

शीतातङ्क्य वि. (दही) जो ठण्डे दूध को जमाता है मा.श्रौ.सू. 2.5.1.4। (शीतम् आतङ्क्यं कठिनीकार्यं येन)।

शीर्षण्यानूच्या वि. (वह आसन) जो एक अरत्नि लम्बी और शीर्ष पर चौड़ी हो, आप.श्रौ.सू. 16.10.16।

शीर्षन् न. 'आसन्दी' संज्ञक चौपाये आसन का ऊपरी भाग (सभी तरफ); 'तस्या (उख्या आसन्द्या) अरत्निमात्राणि शीर्षाणि भवन्ति', भा.श्रौ.सू. 10.12; (काशिकर, अग्र-रोधिकायें एवं पार्श्व-रोधकायें, जो प्रत्येक 1 अरत्नि लम्बी होती है।)

शुक्त्याकृति वि. (शुक्त्या इव आकृतिर्यस्य) 'शुक्तिका (सीपी) के समान आकृति वाला (पात्र), मा.श्रौ.सू. 5.2.1.15।

शुक्र पु. द्रोणकलश में स्थित सोमरस (जो पवित्र = शोधक से शुद्ध या शोधित होकर नीचे टपका हो), 'शुक्रो द्रोणकलशे', का.श्रौ.सू. 9.5.18; 9.9.21; एक साम का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.88।

शुक्रपात्र न. (शुक्र च तत् पात्रम्) शुभ्र अथवा दीप्त पात्र, मा.श्रौ.सू. 2.4.2.35; शुक्र (शुभ्र) आहुति के लिए प्रयुक्त प्याला, मा.श्रौ.सू. 2.4.6.17. इसी प्याले का प्रयोग महेन्द्र-आहुति के लिए होता है, बौ.श्रौ.सू. 7.6; मन्थिग्रह के साथ-साथ, आप.श्रौ.सू. 12.1.12 (भोज्य मिश्रित 'शुक्र' संज्ञक सोम); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.551 (प्रथम सत्र में कलश से इसमें वैश्वदेव का ग्रहण किया जाता है अर्थात् वैश्वदेव को लिया जाता है); भा.श्रौ.सू. 13.1.1।

शुक्रपुरोरुच् स्त्री. 'शुक्र' के प्याले के लिए पठित 'पुरोरुच्' मन्त्र, अर्थात् 'तं प्रत्नथा' आदि, वा.सं. 7.12।

शुक्रधारा स्त्री. सोमरस की शुभ्र या साफ धारा, मा.श्रौ.सू. 2.3.4.21, 23।

शुक्राग्र वि. (शुक्रः अग्रे यस्मिन्) प्रथम प्याले के रूप में साफ प्रवाह (शुक्र प्याले) से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.3.5.2 (यदि 'बृहत्सामा' सोमः)।

शुक्रिय न. प्रवर्ग्य का पारिभाषिक नाम ('शुक्रियं व्रतं चरिष्यामि' अवान्तरदीक्षा के समय सङ्कल्प) बौ.श्रौ.सू. 9.19।

शुक्ल न. एड़ी का श्वेतभाग (पैर के काले भाग की तुलना में वेदि एड़ी के श्वेत भाग जितनी गहरी खोदी जाती है), आप.श्रौ.सू. 2.2.7; (बौधायन; पृथमात्रा = 13 अङ्गुल, रथवन्मात्री, सीतामात्री, प्रादेशमात्री।)।

शुच् स्त्री. ताप (शुचा एव अस्य प्राणम् अपिदधाति), बौ.श्रौ.सू. 11.16.6।

शुण्ठ पु. सरकण्डा (?), मा.श्रौ.सू. 8.2.5; 'दर्भाः परिस्तरणे। तेषामलाभे पर्वतीभिः काण्डवतीभिरोषधीभिः स्तरणार्थान् कुर्वीत कटसीरशूषशुण्ठनलपरिवाभूतपल्ववर्जम्'।

शुद्धाशुद्धीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.27 सा.वे. 1.350 पर।

शुनस्करणस्तोम पु. एक सवन दिन वाले एक विशिष्ट सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.3.28।

शुनासीरीय न. चातुर्मास्य के (अन्तिम) पर्व का नाम, ऋ.वे. 4.57.5,8; 'नित्येभ्योऽधिकानि शुनासीराभ्यां द्वादशकपाल इन्द्राय वा शुनासीराय', का.श्रौ.सू. 5.11.5 [वायु = शुन

एवं आदित्य (सीर) 'शुनासीरौ' के लिए बारह कपालों पर संस्कृत पुरोडाश से विशेष आहुति] भाष्य; आप.श्रौ.सू. 8.20.5-6 (इसमें 5 प्रयाज एवं तीन अनुयाज या प्रत्येक नौ होते हैं; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 109.511।

शुल्ब न. रज्जु (से नापना), मा.श्रौ.सू. 10.1.1.1; विशेष रूप से 'प्रस्तर' नाम के घासगुच्छ को बाँधने के लिए प्रयुक्त 3 या 5 लड़ियों (गुणों) में बुने गये दर्भ से निर्मित रस्सी, आप.श्रौ.सू. 1.4.10. 'दर्श' में शुल्ब को वेदि की दक्षिणी 'श्रोणि' से उत्तरी अंश तक फैला दिया जाता है, भा.श्रौ.सू. 2.8.12; बहुवचन में यह शब्द 'शुल्बसूत्रों' का सङ्केत करता है, आप.श्रौ.सू. 17.26.2।

शुष्कदृति स्त्री. (शुष्का चेयं दृतिः) सूखा चमड़े का झोला (मशक), मा.श्रौ.सू. 9.1.5.40 (दक्षिणा) राजसूय यज्ञ।

शूका स्त्री. यव के अन्नावरण (बाली) का अग्र या अन्तिम भाग, भा.श्रौ.सू. 1.20.9 ('सशूका' में); वि. रिक्त, आप.श्रौ.सू. 1.19.1; भाष्य-शूकं चूडम्; बाली की शिखा।

शूद्र पु. भारतीय समाज के चतुर्थ वर्ण का व्यक्ति, आप.श्रौ.सू. 10.12.12-13 (दीक्षित यजमान को शूद्र से वार्तालाप नहीं करना चाहिए। इन सब के बावजूद भी यदि बात करना चाहे तो वाजसनेय परम्परानुसार ऐसे व्यक्ति के माध्यम से बात करना चाहिए जो ब्राह्मण, राजन्य अथवा वैश्य वर्ण का हो; शाट्यायन फिलहाल यजमान को शूद्र से इस स्थिति में सीधे बातचीत की अनुमति देते हैं, यदि शूद्र अच्छे बर्ताव (कुशल व्यवहार) वाला हो); तुल. अग्निहोत्री गाय को दुहने के लिए अनर्ह घोषित, का.श्रौ.सू. 4.14.1, तु. 'अहविरेव तद् यच्छूद्रो दोग्धीति' किन्तु आप.श्रौ.सू. 6.3.11-14 द्वारा ऐच्छिक रूप से ऐसा करने के लिए अनुमत (अर्थात् दोहन करने के लिए अनुमत)।

शूर्प न. बाँस से निर्मित चौड़ी सतह वाली वस्तु (सूप), इसका प्रयोग कूटे गये चावल की भूसी हटाने के लिए किया जाता है, श्रौ.प.नि. 7.38; का.श्रौ.सू. 2.3.8 (भाष्य); अनाज ओसाने के लिए प्रयुक्त, आप.श्रौ.सू. 1.75।

शूर्प

शूल पु. (न.) तीक्ष्ण नोंक वाला एक काष्ठ निर्मित सीखचा, जिसका प्रयोग पशु के हृदय को भूनने के लिए किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 7.8.3; पशु की वपा दो काँटे वाले सीखचे (द्विशूल) पर रखी जाती है और एक काँटे वाले (एकशूल) सीखचे से बेधी या छेदी जाती है, 7.9.1 (पशु); तुल. वपाश्रपणी; - कर्म, श्रौ.प.नि. 219.205।

शूलगव पु. एक यज्ञ का नाम, शिव को एक वृषभ की आहुति। आ.गृ.सू. (4.9.2) के अनुसार इसका अनुष्ठान शरद् या वसन्तु ऋतु में आर्द्रा नक्षत्र में करना चाहिए। बौ.गृ.सू. 2.7.1-3 के अनुसार इसका अनुष्ठान प्रत्येक वर्ष मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन अथवा उसी महीने के 'आर्द्रा' नक्षत्र में अथवा नाशक जीव अथवा व्याधि से पशु के आक्रान्त होने पर किया जाता है। का.गृ.सू. 52.2.3 विभिन्न कामनाओं (की पूर्ति) के लिए इसका विधान करता है। नारायण सामासिक पद की व्याख्या इस प्रकार से करते हैं : शूल 'शूलिन्' अर्थात् रुद्र एवं गव अर्थात् वृषभ। इस प्रकार यह वह यज्ञ है जिसमें रुद्र को एक बैल अर्पित किया जाता है। हरदत्त इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं : यह एक ऐसा धार्मिक कृत्य है, जिसमें बैल को शिव के दण्ड से चिह्नित किया जाता है, मा.गृ.सू. 2.5.1-6 विवरण प्रस्तुत करता है। इसका अनुष्ठान रात्रि में ग्राम में उत्तर पूर्व किया जाता है, किन्तु गाँव के पास नहीं। इसमें बैलों के मध्य में एक यूप होना चाहिए, जिसमें (अन्य यज्ञों की तरह इसे अष्टकोणीय आकृति में ढालने के लिए) छेनी का प्रयोग नहीं होता। उबले चावल के स्वाभाविक होम के 'अग्निस्विष्टकृत्' के पूर्व रक्त-सहित आठ पात्र सज्जित

किये जाते हैं और इसकी आहुति आठ अनुवाकों (तै.सं. 4.5.1 अथवा वा.सं. के सोलहवें अध्याय) से प्रधान एवं मध्यवर्ती दिशाओं में दी जाती है। उन्हें पशु के शेष भाग को भूमि में गाड़ देना चाहिए = ईशानबलि. हि.आ.ध. II.ii.831-32।

शूलपाद पु. अध्यर्धा का एक आठवाँ भाग, एक प्रकार की ईंट, द्रष्टव्य - अध्यर्धा।

शूल्य न. (शूल + यत् शूलोखाद्यत्, पा. 4.2.17) सीखचे पर हृदय को भूनना, मा.श्रौ.सू. 9.2.4.30।

शूष वि. श्वेत, मा.श्रौ.सू. 9.3.3.29 (सर्वस्वार स्तोम यज्ञे); शूषा स्त्री. हल्के शरीर वाली, आप.श्रौ.सू. 10.22.7 (सोमक्रयणी)।

शृणत्ति (शृ + लट् प्र.पु.ए.व.) प्रोक्षण करता है, छिड़कता है [पयसा शृणत्ति (महावीरम्)], बौ.श्रौ.सू. 9.4।

शृतङ्कार पु. मन्त्रों के समूह का नाम (आप.श्रौ.सू. 12.1.9) जिसका उच्चारण 'ब्रह्मा' नाम से ऋत्विक् द्वारा वपामार्जनम् के बाद अन्य ऋत्विजों के प्रातःकालिक सवन के लिए प्रसर्पण (आगे प्रस्थान करते) समय किया जाता है; (एक मन्त्र) जिसमें 'शृत' शब्द प्रयुक्त है, 'शृतौ स्थ' आदि, आप.श्रौ.सू. 12.19.4 (इस प्रकार के मन्त्रों का उच्चारण ब्रह्मा द्वारा सोम-याग में विभिन्न वस्तुओं को देखने के कृत्य में किया जाता है (भाष्य), श्रौ.को. (अं.) II.489; आप.श्रौ.सू. 14.10.6।

शृतदधि न. (शृतं च तद् दधि) तप्त दही, भा.श्रौ.सू. 11.10.13।

शृतशीत वि. उबालने के पश्चात् ठण्डा किया गया (दुग्ध) मा.श्रौ.सू. 2.2.5.29। (शृतं पक्वं तदनन्तरं शीतं शीतलीकृतम्)

शृतातङ्क्य न. गरम दुग्ध के संघनन (जमाने) से प्राप्त दही, जिसका प्रयोग 'आदित्यग्रह', तृतीय उपसद् एवं तृतीय सवन में होता है, बौ.श्रौ.सू. 6.34; आप.श्रौ.सू. 11.21.8, 13.9.6।

शृतावदान न. (शृतम् अवदीयते खण्ड्यते येन) 1 प्रादेश लम्बा, अग्रभाग में कटोरे (बिल) से युक्त एक काष्ठीय उपकरण (का.श्रौ.सू. 1.3.36 भाष्य) जिससे पक्व पुरोडाश कतरों (अवदान) में विभक्त किया जाता है, का.श्रौ.सू. 2.6.42 (तप्त दुग्ध को उड़ेलने के लिए प्रयुक्त पात्र)।

शेष पु. (न.) (शिष् + घञ्) अवशेष, बौ.शु.सू. 1.55; 'सदस्' में आहुति के अनन्तर अध्वर्यु द्वारा पिया जाने वाला सोम का बचा-खुचा (अवशिष्ट) भाग (प्रथम-सवन), भा.श्रौ.सू. 13.8.3 (सोम)।

शैशव न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.3.23 सा.वे. 1.462 पर।

शोंसावोम् पु. होता द्वारा पढ़ा जाने वाले 'शस्त्र' के लिए 'आहाव' के रूप में ज्ञात उद्घोष, शां.श्रौ.सू. 7.9.1; आश्व.श्रौ.सू. 5.9.1-2।

शोधन न. (शुध् + ल्युट्) पत्तियों एवं छोटी-छोटी शाखाओं को काटते हुए (यूप के) तने को साफ करना, का.श्रौ.सू. 6.1.8 (छिन्नस्य यूपवृक्षस्य कुठारेण शाखापर्णादिपातनं कुर्यात्, स.वृ.)।

शोष पु. (शुष् + घञ्) ईंटों का सूखना, मा.श्रौ.सू. 10.3.1.1।

शौक्त न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.5.15 सा.वे. I.568 पर आधृत।

शौनकयज्ञ पु. (शौनकेन उपकल्पितः यज्ञः) शौनक द्वारा उपकल्पित इष्टि का एक संशोधित रूप, आप.श्रौ.सू. 3.17.12।

शौनःशेप न. शुनःशेप के आख्यान के सन्दर्भ से युक्त एक शस्त्र का नाम, 'शौनःशेपं च प्रेष्यति', का.श्रौ.सू. 15.6.1। [ऋग्वेद के सूक्त 1.24 एवं 1.25 (यच्चित् ते, आदि)]; द्रष्टव्य शुनःशेप - आख्यान, शां.श्रौ.सू. 15.17-27 (राजसूय यज्ञ)।

श्रौष्ट न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.11.21 सा.वे. 1.541 पर।

श्मशान न. (मृत पूर्वज के लिए) समाधि (कब्र), श.ब्रा. 13.8.1.1; 'श्मशानं श्मशयनम्' --निरु.3.5; जल के लिए परिखा (खाईं) अथवा किसी पात्र का उभरा हुआ कटक अथवा छोर, ऋ.वे. 10.105.1; शव को दफनाने के लिए प्रयुक्त एक उभारयुक्त स्थान। इसका मापन शङ्कु से किया जाता है, यह स्थान गाँव से बाहर होता है, इसके निकट आवासीय गृह नहीं होने चाहिए (अर्थात् यह आवासीय घरों के सन्निकट नहीं होता)। इस भूखण्ड पर पर्याप्त प्रकाश (सूर्य की किरणें) होना चाहिए एवं यह स्थान वृक्षों से घिरा होना चाहिए; सड़क से दूरस्थ होना चाहिए। एक

खम्भा, जिसमें शीर्ष पर घास का गट्ठर बँधा हो और जिसे एक व्यक्ति पकड़े रहता है, अन्त्येष्टि के दौरान भूमि पर लाया जाता है एवं घर में रखने के लिए के लिए मृत के घर वापस ले जाया जाता है, का.श्रौ.सू. 21.3.13-34; आप.शु.सू. 14.9.15; बौ.शु.सू. 8.5; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) I.790।

श्मशानायतन न. (श्मशानस्य आयतनम्) अन्त्येष्टि-स्थल, भा.पि.मे. 1.3.7।

श्मश्रुण वि. मूँछ वाला, मूँछ से युक्त, आप.श्रौ.सू. 10.29.6 (अग्नीषोमीय अज)।

श्याव वि. बभ्रु, भूरा ('अश्वं श्यावम् आलभ्य'; भूरे वर्ण के अश्व को छूकर), मा.श्रौ.सू. 6.1.8.16।

श्यावाश्व न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.8.2 सा.वे. 1.545 पर।

श्येन पु. श्येन पक्षी (गरुड़) के (समान) आकार वाली अग्नि-वेदि, मा.श्रौ.सू. 10.3.22.20; 'साद्यस्क्र' नामक एक-दिवस-सम्पाद्य (एक दिवसीय) सोम-याग का नाम, 9.3.2.22; न. छाती (वक्षः स्थल), मा.श्रौ.सू. (श्येनं वक्ष उद्गातुः); ('उद्गाता के लिए छाती एवं स्तन, अनु.गेल्डर'); द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.208; न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.10.12 सा.वे. I.379 पर।

श्येनचिति स्त्री. (श्येन इव चितिः यस्याः सा) 'श्येन' पक्षी के आकार की एक वेदि अर्थात् चार कोनों वाली या गरुड-सदृश, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.20; बौ.श्रौ.सू. 17.28; 24.5; चार कोने वाली श्येनचिति दो प्रकार की होती है : पक्षि - सदृश वेदि अथवा वर्गाकार जैसा की चित्र में प्रदर्शित है, बौ.शु.सू. 3.24 से 3.38 एवं 4.31 से 4.72 तक।

श्येनपत्र न. (श्येनस्य पत्रम्) गरुण का पंख, मा.श्रौ.सू. 5.2.11.20 (श्येनपत्रेण यजमानं पावयति; कौकिल सौत्रामणी); (धू. के अनुसार 'श्येनपुच्छम्' बाज की पूंछ), आप.श्रौ.सू. 19.1.17 (कैलेण्ड : 'Adler - Feder'; बाज का पंख)।

श्येनी वि. रक्ताभ-श्वेत (अग्निहोत्र की समिधा), मा.श्रौ.सू. 1.6.1.36; श्वेत, मा.श्रौ.सू. 1.8.4.27 ('श्येनं शृतम्'; जब झिल्ली भूने जाने पर श्वेत हो जाए); रक्ताभ (थोड़ा लाल), भा.श्रौ.सू. 7.15.10।

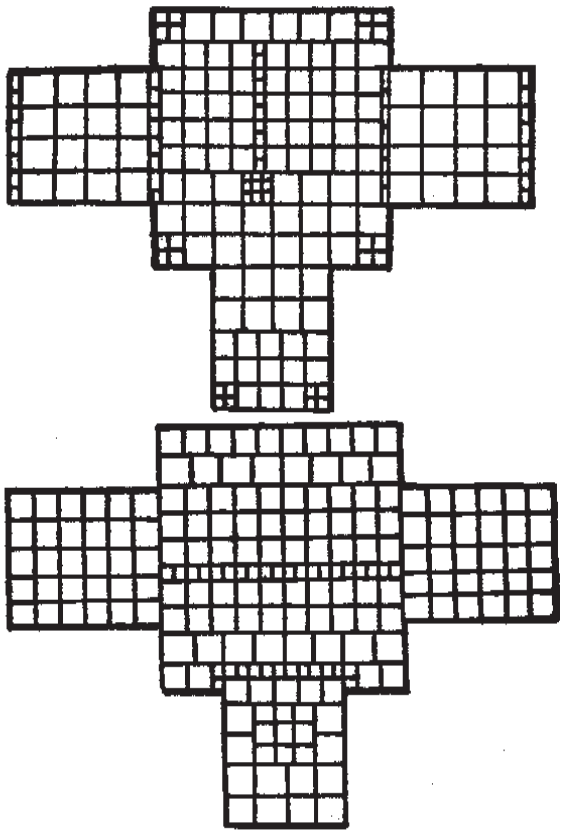

श्येनचिति

श्यैत न. अश्व के पदचिह्न पर धार्मिक विधि से आहवनीय अग्नि के आधान के समय अध्वर्यु अथवा ब्रह्मा द्वारा गाये जाने वाले एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.40; पञ्च.ब्रा. 7.10.2; ग्राम० 6.1.32 पर; सा.वे. 1.235; तृतीय पृष्ठ स्तोत्र में गाया जाने वाला, पञ्च.ब्रा. 1.9.9 'अभि प्रवः सुराधसम्', आदि पर।

श्रपण न. (श्रा + णिच् + ल्युट् करणधिकरणयोश्च, मितां ह्रस्वः पा. 5.4.92) पकाने का पात्र, आप.श्रौ.सू. 19.1.17 (सौत्रामणी); (बहु.व.) में यज्ञीय भोजन (हविस्) पकाने के लिए (लकड़ी के) लट्ठे, बौ.श्रौ.सू. 1.8; ईंधन, का.श्रौ.सू. 16.4.10, 11. वह अग्निस्थान जिसमें सेंकने अथवा पकाने की क्रिया की जाती है, का.श्रौ.सू. 2.5.23।

श्रयण न. (श्रि + ल्युट्) मिश्रित करने (मिलाने) का कृत्य, का.श्रौ.सू. 9.6.10 (पयस्या श्रीणाति कुशावन्तर्धाय, एवं सर्वत्र श्रयणेषु); (बाजरे एवं चावल को) मिश्रित करना, मा.श्रौ.सू. 5.1.10.67 (द्रष्ट. - मै.सं. 11.2.13); (बहु.व.) मिश्रण, आप.श्रौ.सू. 19.7.7 (सुरावत् श्रयणानि)।

श्राद्धकल्प पु. (श्राद्धस्य कल्पः) पितरों को चावल के पिण्डों को अर्पित करने की कर्मकाण्डीय प्रक्रिया, मा.श्रौ.सू. 11.9.1।

श्रामयाव्य पु. दीर्घकालिक व्याधि, मा.श्रौ.सू. 8.12.5 (अत्यये यूपवृक्षचयने)।

श्रायन्तीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.29 सा.वे. 1.267 पर।

श्राव्यमन्त्र पु. (श्राव्यः चासौ मन्त्रः) एक श्रवणीय (सुनने लायक) मन्त्र (दक्षिणा ग्रहण करते हुए इस प्रकार के मन्त्र के साथ कुछ क्षण के लिए ब्राह्मण अपने घर से बाहर अवश्य जाएगा), मा.श्रौ.सू. 11.1.2.2।

श्रिति स्त्री. (श्रि + क्तिन्) (वाजपेय यज्ञ में प्रयुक्त) एक करछुल, काशिकर 287 इण्डेक्स; बौ.श्रौ.सू. 11.1।

श्रीमती स्त्री. (श्री + मतुप् + ङीप्) धन के सन्दर्भ से युक्त एक ऋचा, श्रौ.को. (सं.) I.472।

श्रीष्टोम पु. एक सवन दिन वाले एक विशिष्ट सोमयाग का नाम मा.श्रौ.सू. 9.3.5.36 (ऐसे व्यक्ति के लिए विहित जो वैभव की या इच्छा या कामना वाला हो; इसकी दक्षिणा 10000 है। इनका द्वादश की संख्या में अनुष्ठान करना चाहिए। यह 'उक्थ्य' के स्वरूप से युक्त है)।

श्रुतिलक्षण वि. (श्रुतौ लक्षणं यस्य) वेद में विहित प्रक्रिया से युक्त (अर्थात् जिसकी प्रक्रिया वेद में बतलाई गई है), भा.श्रौ.सू. 9.1.1 (प्रायश्चित्त); आप.श्रौ.सू. 9.1.1।

श्रुध्य न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.1.32 सा.वे. 1.99 पर।

श्रोणि स्त्री. एक ऋजुरेखीय आकृति के पश्चिमाभिमुख कोने, बौ.शु.सू. 1.35; उत्तरवेदि के दो नितम्ब, अर्थात् दक्षिणी-पश्चिमी एवं उत्तरी पश्चिमी कोने, आप.श्रौ.सू. 7.5.5; दर्श के वेदि की 2.3.1; 'महावेदि' की भी, 11.4.13; द्रष्टव्य – श्रौ.प.नि. 6.27.28।

श्रोत्रिय पु. (श्रुति + छ, श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते, पा. 5.2.84) वेद की ऋचाएं, जै.ब्रा. I.261; उद्धृत पाणिनि सूत्रानुसार इसका अर्थ है—अधीतवेद अथवा वेदज्ञ।

श्रौतकक्ष न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.2.7 सा.वे. 1.158 पर।

श्रौषट् अव्य. एक अभिव्यञ्जना का नाम, श्रौ.प.नि. 27.226।

श्लश्लीकरण न. (श्लश्ण + च्वि + कृ + ल्युट्) चिकना बनाने एवं एकीकृत करने के लिए प्रयुक्त सामग्री, आप.श्रौ.सू. 15.2.15 (प्रवर्ग्य); चिकना बनाने अथवा चमकाने की सामग्री, भा.श्रौ.सू. 11.3.9।

श्लेष्मातक पु. एक वृक्ष का नाम, वैदिक कर्मकाण्ड में जिसकी लकड़ियों का गट्टर के रूप में प्रयोग करना निषिद्ध है, श्रौ.को. (अं.) I.234।

श्लोक न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.4.10 सा.वे. 1.439 पर।

श्वःसुत्या स्त्री. (श्वः सम्पत्स्यमाना सुत्या) (आने वाले) कल का सवन (यदि आग्नीध्र इसके लिए आवाहन करता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.8.22।

श्वभ्र न. गर्त, गड्ढा (उखा के लिए मिट्टी इकट्ठा करने के लिए भूमि में निर्मित), का.श्रौ.सू. 16.3.2 (चयन); का.श्रौ.सू. 13.3.16 (वाजपेय में मिट्टी की दुन्दुभि के लिए)।

श्वस्तन पु. (आने वाले) कल का दिन, जै.ब्रा. I.204।

श्वित्रोपकाशा वि. (श्वित्रं उपकाशे यस्याः सा) आँख के छोरों पर श्वेत चिह्न से युक्त, आप.श्रौ.सू. 10.22.4।

श्वेतन्यङग वि. (श्वेतं न्यङगं यस्य) श्वेत (सफेद) चिह्न वाला, आप.श्रौ.सू. 8.19.3 (रु. श्वेतचिह्नमात्रो वा)।

श्वेतलप्सुदि पु. एक सफेद मांसल अज, का.श्रौ.सू. 16.1.41 (चयन)।

श्वेतानूकाशः पु. (श्वेतः अनूकाशः यस्य) पीछे श्वेत चमक से युक्त (बैल), मा.श्रौ.सू. 5.2.10.44।

ष

षट्तय न. (षट् + तयप्, संख्याया अवयवे तयप्, पा. 5.2.42) छः वस्तुओं का समूह, भा.श्रौ.सू. 11.21.8; द्रष्ट. – सप्ततय (अवान्तर दीक्षाः अग्नि, आदित्य, उदकुम्भ, अश्मन् वत्स, महानग्ना, हिरण्य)।

षडर्चधर्म पु. (षण्णां ऋचां समूह षडर्चम् तस्य धर्मः विनियोगः) छः ऋचाओं (के समूह) की प्रकृति (अथवा विनियोग), मा.श्रौ.सू. 5.2.8.30 (सामान्यतया तीन युग्मों में प्रत्येक कर प्रथम ऋचा 'पुरोनुवाक्या एवं उसके बाद वाली अर्थात् दूसरी 'याज्या' होती है); 'अग्ने नय' इति, (ऋ.वे. 1.189.1–6) वपा, पशुपुरोडाश एवं पशु के लिए।

षड्योग वि. (षण्णां वृषभाणां योगः यस्मिन्) (वह हल) जिसमें छः बैल जोते गये हों, का.श्रौ.सू. 5.11.12 (शुनासीरीय), आप.श्रौ.सू. 8.20.10।

षडरत्निः वि. (षड् अरत्नयः प्रमाणं यस्य) छः अरत्नि के बराबर, छः अरत्नि का (आग्नीध्र–मण्डप का वर्ग), मा.श्रौ.सू. 10.1.3.3; छः अरत्नि के बराबर माप वाला।

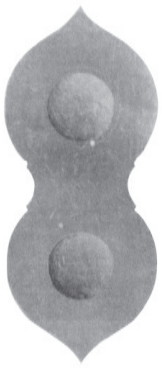

षडवत्त पात्र

षडवत्त पु. छः बार काटने से प्राप्त इडा–भाग (इडा का अंश), 'द्यावापृथिव्योरुपहवनेऽग्नीध्रे षडवत्तम्' का.श्रौ.सू. 3.4.16 (अग्नीध्र के लिए अभिप्रेत), अग्नीध्र के हाथ पर अथवा किसी कतरे में उपस्तरण, दो कतरों को काटना, एक कतरे के लिए पुनः उपस्तरण और अन्त में तीसरे कतरे (टुकड़े) पर दो अभिघारण, आप.श्रौ.सू. 3.3.6)।

षडह पु. (सोम के) छः सवन दिनों की एक अवधि (विशेष रूप से द्वादशाह के दूसरे से सातवें दिन तक) सत्र का प्रधान वैशिष्ट्य है, जिसमें यह दो रूपों में घटित होता है, 'अभिप्लव' एवं पृष्ठ्य, शां.श्रौ.सू. 10.1.7 = द्वादशाह के अन्तर्गत 'षडह'; (प्रवर्ग्य एवं उपसद् के) छः दिनों की इकाई, श्रौ.को. (सं.) II.537।

षड्होतृ पु. 1. छः विशिष्ट मन्त्रों के एक समूह का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.16.3 (उसका उच्चारण उस पशुयाग के प्रसङ्ग में नहीं होता, जो एक दूसरे यज्ञ की रूपरचना करता है। फिलहाल वायव्य, पञ्चपशु एवं सौत्रामणी के मामले में, इन कृत्यों के दूसरे यज्ञों का किसी प्रकार से अङ्ग के रूप में मान्यता) होने पर भी इन मन्त्रों का प्रयोग होता है; चि.भा.से. छः होत्र (होताओं) के मन्त्रों का नाम (अग्नीध्र एवं प्रस्तोता के साथ चार प्रधान ऋत्विज्), ये मन्त्र तै.आ. 3.4 में समाम्नात हैं, श्रौ.को. (सं.) 1.127; पशु के प्रारम्भ में इनका वाचन किया जाता है (आप.श्रौ.सू. 7.1.2); भा.श्रौ.सू. 7.1.1; सोम के विभिन्न अवसरों पर भी, यजमान द्वारा भी इनका वाचन किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 13.12.11; द्रष्टव्य – चतुहोतृ मन्त्र 'वाग्घोता------' आदि। यदि कोई यह कामना करता है कि ऋतुएं उसके लिए भाग्यप्रद हों, तो उसे प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में इससे एक आहुति अर्पित करनी चाहिए। इसकी आहुति उस व्यक्ति द्वारा भी दी जाती है, जो अपने एवं अपने पुत्र के लिए सोमपायित्व (सोमपान का अधिकारी होने की) कामना करता है, श्रौ.को. (अं.) I.207 (आप.श्रौ.सू. 4.13–15). 'यूपाहुति' के पूर्व एक आहुति के लिए चार चम्मच घी लेने के पहले मन्त्र को मन में पढ़ना होता है, बौ.श्रौ.सू. 4.1–2, पशुयाग में, मा.श्रौ.सू. 1.8.1.1–20 के अनुसार (मन में पढ़े जाने वाले) इस मन्त्र से एक आहुति उस व्यक्ति द्वारा दी जाती है, जो 'इन्द्राग्नी' के लिए पशुयाग के अनुष्ठान की इच्छा रखता है। वध्य (पशु) के अङ्गों को इस मन्त्र से वेदि के दक्षिणी नितम्ब पर रख देना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 7.22.1–26.7. पितृमेध में 'सूर्यं ते चक्षुः' आदि की 'षड्होतृ' के रूप में मान्यता है, जिसका वाचन शव के आग की लपटों को पकड़ लेने पर किया जाता है। वैखा गृ.सू. 5.1–6 अनुसार

'सूर्यं ते' आदि (छः भागों वाले) इस मन्त्र से तिल, तण्डुल (चावल के दानों) आदि के मिश्रण को मृत की आँखों में डालना चाहिए, कुछ लोग इसका विधान दोनों कानों के लिए करते हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.1063. मन्त्र 'षडहोता सूर्यं ते चक्षुः-----' इस प्रकार प्रारम्भ होता है और इसका उच्चारण 'श्मशानचिति' के चयन के कृत्य के समय अस्थियों के कलश को साफ करने के बाद किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 1.1099; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 120.8; 2. एक आहुति का नाम जिसे 'षड्होतृ' मन्त्र के साथ अर्पित किया जाता है। यह पशुयाग के दौरान अनुष्ठित पाँच 'दर्वीहोमों' में अन्यतम के रूप में व्यवहृत होता है (अन्य हैं 'यूपाहुति', बूंदों से सम्बद्ध होम, शोरबे की आहुति एवं दिशाओं तथा 'उपयज्' के लिए), बौ.श्रौ.सू. 4.1-10; श्रौ.को. (अं.) I.833।

षष्ठी स्त्री. अग्निवेदि की पाँचवी तह में चिनी गई ईंटों (181-185) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.44-46; छठवीं परत, बौ.श्रौ.सू. 10.46:26।

षोडषसीत वि. (षोडश सीताः सन्ति यस्य यस्मिन् वा) सोलह हलरेखाओं से युक्त, आप.श्रौ.सू. 16.19.9 (चयन-स्थल)।

षोडशिग्रह पु. (षोडशिनः ग्रहः) ज्योतिष्टोम-याग में सोलहवें आहरण का नाम, आप.श्रौ.सू. 12.18.20, षोडशिन् का अतिरिक्त आहरण, 14.2.3।

षोडशिचमस पु. (षोडशिनः चमसः) 'षोडशी' नाम की द्रवाहुति से सम्बद्ध पात्र (चमस), मा.श्रौ.सू. 2.5.3.5; 7.1.3.27; चि.भा.से. : चतुष्कोणीय आकृति वाला खदिर-काष्ठ से निर्मित एक अतिरिक्त प्याला, आप.श्रौ.सू. 14.3.8; प्रातः अथवा सभी सवनों में प्रयुक्त।

षोडशिन् पु. (सोलहवीं) सोम-आहुति का नाम, ऋ.वे. 6.67.10; का.श्रौ.सू. 1.5.15 (षोडशिनि त्वानुपूर्व्यभूयस्त्वात्); एक सोम-याग का नाम, तृतीय सोम-संस्था, इन्द्र को समर्पित (इसमें) उक्थ्य से सम्बद्ध 15 स्तोत्र एवं 15 शस्त्र होते हैं एवं तृतीय सवन में एक अतिरिक्त 16वां स्तोत्र एवं शस्त्र (दोनों षोडशी कहे जाते हैं); आप.श्रौ.सू. 14.2-3; इस आहुति की स्थिति को प्राथमिकता देने का नियम, श्रौ.को. (अं.) 1.969।

षोडशिपात्र न. 'षोडशी' नाम वाला सोमपात्र (यह चार कोनों वाला एवं खदिर की लकड़ी से निर्मित होता है), मा.श्रौ.सू. 3.3.1.15; द्रष्टव्य - षोडशि-चमस।

षोडशिशस्त्र न. षोडशि-स्तोत्र से मेल खाता 'षोडशी' (सोलहवां) नाम वाला शस्त्र (स्तुति), आप.श्रौ.सू. 14.3.1 = 15 उक्थ्य याग से सम्बद्ध एवं अतिरिक्त सोलहवां। यह दो प्रकार का है 'विहृत (विभाजित) एवं अविहृत (अविभाजित)। प्रथम में ऋचा (अर्थात् 'त्रिकद्रुकेषु महिषो' इस तृच की) दो भागों में बाँटी जाती है एवं पादशः (एक-एक पाद करके) पढ़ी जाती है, काशिकर, पृ. 97; —साम, जै.ब्रा. 1.203।

स

संयत् स्त्री. अग्नि-वेदि में चिनी गई एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.6; 10.2.3.4।

संयवन न. (सम् + यु + ल्युट्) आटे को जल से मिश्रित करना, बौ.श्रौ.सू. 20.8; (संयौत्यनेन) संयवन के लिए प्रयुक्त जल, बौ.श्रौ.सू. 18 = 'मदन्ती' - संज्ञक जल।

संयाज्या स्त्री. (द्वि.व.) स्विष्टकृत् के लिए याज्या एवं पुरोनुवाक्या, का.श्रौ.सू. 5.13.2; आप.श्रौ.सू. 3.15.5 (दर्श), साथ-साथ।

संयानी स्त्री. अग्नि-वेदि में लगाई जाने वाली एक ईंट का नाम। वे दश होती हैं (अर्थात् इनकी संख्या दश है) सभी पाँच तहों में (प्रत्येक में) दो-दो, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.6; 10.2.3.4।

संयान्या स्त्री. (द्वि.व.) एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.10।

संलोभ्य (सम् + लुभ् + णिच् + ल्यप्) अन्य मिट्टी से गड्ढे को पुनः भरकर, आप.श्रौ.सू. 16.4.7।

संवत्सरप्रवात वि. (स्त्री. आ) (संवत्सरं प्रवाता) एक वर्ष तक बाहर वायु में रखी हुई (दर्भ संज्ञक घास), आप.श्रौ.सू. 5.27.10; सूखने के लिए, आप.श्रौ.सू. 5.19.8।

संवत्सरभृतिन् पु. (संवत्सरं भृतं यस्य) जिस व्यक्ति ने मुख्य अग्नि को एक वर्ष तक संभाला हो, का.श्रौ.सू. 16.6.9 (संवत्सरमुख्योऽग्निर्भृतो येन, स.वृ.)।

संवत्सरसम्मित न. (संवत्सरं संवत्सरेण वा सम्मितम्) एक वर्ष तक सतत चलने वाला एक सत्र (याग), मा.श्रौ.सू. 9.5.2.16, 20।

संवन्त् पु. (द्वि.व.) संयाजों का पारिभाषिक नाम; स्विष्टकृत् के लिए 'सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने------' पुरोनुवाक्या के रूप में एवं 'सखायः सं व सम्यञ्चम्----- याज्या के रूप में (मै.सं. 4.11.1) मा.श्रौ.सू. 5.1.5.21।

संवपनपात्री स्त्री. (संवपनस्य पात्री) वह पात्र जिसमें पिष्ट अनाज का आटा उड़ेला जाता है, मा.श्रौ.सू. 1.2.1.4. (इष्टि)।

संवरण न. (सम् + वृ + ल्युट्) 'प्रवर्ग्य' (नाम वाले कृत्य) में प्राचीनवंश के सभी द्वारों को बन्द करना, भा.श्रौ.सू. 11.5.1।

संवर्गेष्टि (स्त्री.) एक ऐच्छिक इष्टि का नाम, जिसका अनुष्ठान वह व्यक्ति करता है, जो भोजन की प्रचुरता अथवा सम्पन्नता तथा युद्ध में शक्ति की कामना से युक्त हो, श्रौ.को. (अं.) 1.6.28।

संवाद पु. (सम् + वद् + घञ्) ऋत्विजों एवं रानियों आदि के बीच वार्तालाप (अश्लील बातचीत), का.श्रौ.सू. 20.6.18 (अध्वर्युब्रह्मोद्गातृहोतृक्षत्तारः कुमारीपत्नीभिः संवदन्ते------ अश्वमेध); दो ऋत्विजों के मध्य वार्तालाप, अर्थात् कुछ कर्मकाण्डीय कृत्यों के लिए अनुमति माँगना, आप.श्रौ.सू. 24.1.10।

संवाप पु. (सम् + वप् + घञ्) पुरोडाश बनाने के लिए आटे को भूनने के लिए दर्भपत्रों के माध्यम से अग्नि पर रखे गये पात्र में (चावल के) आटे को उड़ेलने का कृत्य, श्रौ.प.नि. 9.54; सं--------विशेत (सं------विजेत) टुकड़ा-टुकड़ा हो जाता है, आप.श्रौ.सू. 9.16.11 (पुरोडाश) = संवपन।

संवृत्त वि. (सम् + वृत् + क्त) हत्थे पर वृत्ताकार चिह्नों से युक्त (चमस), का.श्रौ.सू. 9.2.22।

संवेशन न. (सम् + विश् + ल्युट्) लेटने अथवा सोने (शयन) का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 10.11.13 (प्रतिबोधन अर्थात् जागने का उल्टा)।

संवेशनयजुस् न. (संवेशनेन सम्बद्धं यजुः) लेटने से सम्बद्ध मन्त्र (यजुर्मन्त्र); 'अग्ने त्वं सुजागृहि', श्रौ.को. (सं.) II. 521 (दीक्षा)।

संशान न. मांस के तैलीय अंश के अवशिष्ट भागों से कौकिल सौत्रामणी में यजमान को दिये जाने वाले पवित्रीकरणात्मक अथवा पापमोचनात्मक स्नान के समय दो अग्नियों के मध्य आगे जाने के पश्चात ब्रह्मा द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, ला.श्रौ.सू. 5.4.11-21. इस साम के 'निधन' भाग में सभी ऋत्विज् यजमान के शिर का स्पर्श करते हैं; द्रष्टव्य; द्रष्टव्य - काशिकर 115।

संशास्ति (सं + शास् + लट् प्र.पु.ए.व.) निर्देश देता है; 'मा राजानम् आहवनीयं चान्तरेण कश्चन सञ्चारीत्', आदि, बौ.श्रौ.सू. 6.17।

संशिञ्जयति (सम् + शिञ्ज् + णिच् लट्.प्र.ए.व.) ध्वनित करता है, आप.श्रौ.सू. 2.13.6।

संश्यति (सं + शो + लट् प्र.पु.ए.व., 'ओत: श्यनि, पा. 7.3.71' से 'ओ' का लोप) तीक्ष्ण बनाता है, तेज करता है, भा.श्रौ.सू. 2.1.1।

संश्राव पु. (सं + श्रु + घञ्) सदस्य का सहायक, जो प्रात:कालिक सवन में अध्वर्यु को ध्यान दिलाता है, कि 'वषट्कार' (वषट् का उच्चारण) कब करना है, बौ.श्रौ.सू. 2.3 भाष्य।

संश्लिष्ट वि. (सं + श्लिष् + क्त) सम्पृक्त, मिला हुआ, जुड़ा हुआ, बौ.शु.सू. 1.5।

संसक्तमध्य वि. (संसक्तं मध्यं येषां तानि) मध्य में अन्दर की ओर झुके हुए अर्थात जिनका मध्य भाग अंदर की ओर झुका हो (वायव्यपात्राणि), मा.श्रौ.सू. 2.3.1.13।

संसदामयन न. 24 सवन दिनों वाले एक 'सत्र' (याग) का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.5.1.23।

संसर्ग पु. (सं + सृज् + घञ्) वह स्थान जहाँ दो रेखायें (एक दूसरे को) काटती हैं, बौ.शु.सू. 1.28।

संसर्गार्थम् क्रि.वि. मिश्रण करने के लिए, बन्धन-सामग्री के रूप में प्रयोग करने के लिए (भस्म-प्रवेशनं दीक्षितस्य कृतासु इष्टकासु अकृतासु संसर्गार्थं भवति), आप.श्रौ.सू. 16.13.2।

संसर्जनीय वि. (सं + सृज् + अनीयर्) 'उखा' बनाने के लिए मिलाई जाने वाली = मिश्रित की जाने वाली (विभिन्न सामग्रियां), आप.श्रौ.सू. 16.4.2 (चयन) = संसर्जन, 2.7.15 (प्रवर्ग्य)।

संसर्प पु. चार सवन दिनों वाले एक सोम-याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.4.2.11 (इसका अनुष्ठान वशिष्ठ ने किया था); संसर्पो असि अंहस्पत्याय त्वा' आदि, मा.श्रौ.सू. 2.4.2.13. इस मन्त्र से अध्वर्यु अन्तिम 'ऋतुग्रह' को भरता है।

संसव पु. एक ही समय में उसी क्षेत्र में अनुष्ठित द्रवाहुतियों से उठने वाली भ्रान्ति या हड़बड़ी, आप.श्रौ.सू. 14.20.4. इसे पाप समझा जाता है, सहकालिक सोम-याग, शां.श्रौ.सू. 13.5.1 (क्रियमाणकर्मज्ञानगोचरे--------सुत्ययोरह्नोर्य: सन्निपात:।----------सककालोपनिपात: पदार्थानां तं संसव इत्याचक्षते याज्ञिका:); द्रष्टव्य - साहू पी.सी. VIJ 24 (1-2) 1986, पृ. 30-36।

संसादन न. (सं + सद् + णिच् + ल्युट्) यज्ञपात्रों को दर्भ पर रखने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 3.16.15; तुल.—पात्रयोग 7.22.2।

संसादयति (सम् + सद् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) रखता है (यज्ञायुधानि अग्रेण गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्य), बौ.श्रौ.सू. 1.4.6; द्रष्टव्य - आप.श्रौ.सू. 1.15.6; दर्भ गार्हपत्य एवं आहवनीय के उत्तर फैला दिये जाते हैं, और इन पर दो-दो करके पात्र रख दिये जाते हैं : स्फ्य आदि पश्चिम की ओर स्रुव् जुहू आदि पूर्व की ओर----------।

संसिञ्चेत् (सम् + सिच् + वि.लि. प्र.पु.ए.व.) पुन. भरना चाहिए, आप.श्रौ.सू. 9.13.4।

संसिञ्जयति (सम् + सिञ्ज् + णिच् + लट् प्र.पु.ए.व.) ध्वनित करता है, भा.श्रौ.सू. भा.श्रु.सू. 2.13.5।

संसृज् (प्रस्तर से एक दर्भ पत्र) को ढीला करना या शिथिल करना (अवधी-छोरना), मा.श्रौ.सू. 1.3.4.14।

संसृप् स्त्री. एक आहुति का नाम। वे संख्या में दस हैं, जिनका आरम्भ उदवसानीय कृत्यों में अष्टाकपाल सावित्र से होता है, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.11-12 (सोम)।

संसृपांहवींषि न. (बहु.व.) एक यज्ञ-स्थल (अर्थात्) अभिषेचनीय) से दूसरे यज्ञस्थल (अर्थात्) दशपेय की ओर सञ्चरण करते हुए दी जाने वाली दस आहुतियों का नाम, का.श्रौ.सू. 15.8.2-9; द्रष्टव्य - श.ब्रा. 5.4.5.3-16; साथ-साथ सरकते हुए आहुति, सामान्य उपसद् के स्थान पर राजसूय में अभिषेचनीय एवं दशपेय के बीच में दस दिन स्थान ग्रहण करने वाली (चलने वाली) इष्टियों की शृङ्खला। आहुति द्रव्य हैं : अग्नि, सरस्वती, सवितृ, पूषन् बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, सोम त्वष्ट्रा एवं विष्णु के लिए चरु या पुरोडाश। इसका नामकरण सम्भवत: इस कौतूहलपूर्ण प्रविधान के कारण हुआ जिसमें प्रत्येक इष्टि में यज्ञ-स्थल इस तरह से एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होता है कि आठवीं इष्टि तक पूर्व दिन का आहवनीय दूसरे दिन गार्हपत्य बन जाता है, जिसका अनुष्ठान दशपेय के स्थल पर सम्पन्न होता है, आप.श्रौ.सू. 18.20.8-10; आश्व.श्रौ.सू. 9.3.17; द्रष्टव्य—काशिकर 9.1।

संसृष्ट पु. (सम् + सृज् + क्त) सायंकालीन अग्निहोत्र में 'अग्निर्ज्योति-ज्योतिरग्नि: स्वाहा' एवं 'सूर्यो ज्योति'-'ज्योतिरग्नि: स्वाहा' इन मन्त्रों का पारिभाषिक नाम, श्रौ.को. (अं.) I.i.92 (संयोजन के लिए); वि. आपस में (एक दूसरे से) मिले हुए (मिश्रित आज्य एवं पृषदाज्य), भा.श्रौ.सू. 8.2.12; तुल. 7.7.7।

संसृष्टहोम पु. (संसृष्टः होमः) प्रवर्ग्य में एक प्रकार की संयुक्त आहुति, भा.श्रौ.सू. 11.12.10।

संस्कार पु. (सम् + कृ + घञ् 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे पा. 6.1.13 इति सुडागमः) यज्ञ का एक कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.10.21, अर्थात् अग्नि के चारों ओर आस्तरण, लकड़ी के कुन्दों (टुकड़ों) को लाना, आदि, 8.5.19; पकाने एवं तैयार करने जैसे कृत्य, 'गार्हपत्ये संस्काराः', का.श्रौ.सू. 1.8.34 (संस्कार गार्हपत्य पर सम्पन्न किये जाते है; अधिश्रयण-पर्यग्निकरणप्रतपनादयः संस्कारा गार्हपत्ये कर्तव्याः, स.वृ. वही)

संस्तवन न. (सम् + स्तु + ल्युट्) प्रशंसा, 'यान् वो नरो', आदि ऋ.वे. 3.8.6-11 ऋचायें यज्ञीय खम्भे (यूप) की प्रशंसा में पढ़ी जाती हैं, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.22 एवं 3.1.10. 'अभिहिंकार' अर्थात् 'हिं ३ भूर्भुवः स्वरोम्' से इसका प्रारम्भ नहीं किया जाता है।

संस्तुत पु. (सम् + स्तु + क्त) (वह व्यक्ति) जो यजमान की पत्नी की प्रशंसा का पात्र (अथवा उसका प्रणयी) है, 'संस्तुता नाचष्टे' का.श्रौ.सू. 5.5.6 (संस्तुतान् - भर्तृव्यतिरेकेण ये सङ्गता जारास्तान्, स.वृ., यजमान - पत्नी का जार = उपपति); 'प्रतिसंस्तुतम्' (प्रत्येक जार (प्रेमी) के लिए) भी द्रष्टव्य।

संस्था स्त्री. (सम् + स्था + अङ् + टाप्, द्र. आतश्चोपसर्गे, पा. 3.3.106) 1. (यज्ञ की) पूर्णता (समाप्ति), भा.श्रौ.सू. 3.18.5; 2. यज्ञ का प्राथमिक स्वरूप, आप.श्रौ.सू. 14.2.1; उदाहरणर्थ—सोम-याग के सात मौलिक स्वरूप हैं : अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, 'उक्थ्य' आदि (अन्तिम छः प्रथम की विकृतियां हैं अर्थात् संशोधित रूप हैं), का.श्रौ.सू. 10.9.28।

संस्थाजप पु. (संस्थायां जपः) कृत्य के पूर्ण होने पर किया गया जप, यह जप 'होता' द्वारा अन्तिम कृत्य के अनुष्ठान कर लेने के बाद किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 1.11.14-15 (दर्श); श्रौ.प.नि. 41.399. होता एवं (साथ-साथ ही) ब्रह्मा के द्वारा यह जप किया जाता है, अर्थात् 'ओम् च मे स्वरश्च मे यज्ञोप च ते नमश्च, यत्ते न्यूनं तस्मै ते उप यत् तेऽतिरिक्तं तस्मै ते नमः', आश्व.श्रौ.सू. 3.6.29 (पशु.) भी द्रष्टव्य, श्रौ.को. (अं.) I.821।

संस्थान न. (सम् + स्था + ल्युट्) यज्ञ की पूर्णता या समाप्ति, भा.श्रौ.सू. 3.18.9।

संस्थावाजपेय पु. प्रतिमान (मानक) वाजपेय-याग, पञ्च.ब्रा. 18.6.7; अन्य दो प्रकार है 'आप्तवाजपेय' (सुरा के साथ) एवं 'कुरुवाजपेय' (सत्रह के लिए बराबर दक्षिणा वाली), काशिकर 47।

संस्थितयजुस् न. (संस्थिते यजुः) अन्तिम आहुति, श्रौ.को. (सं.) II.47।

संस्थितहोम पु. (संस्थिते होमः सस्थितः होमो वा) श्रौत-यज्ञ के अन्त में दी जाने वाली आहुतियों का नाम। प्रायश्चित्त के लिए मूल आहुतियों में विभिन्न आहुतियों का अन्तर्निवेशन (समावेश) होता है, अ.वे. प्राय. 2.3. वैता.श्रौ.सू. (1.1.10) के अनुसार इन आहुतियों के लिए मन्त्रों का पाठ ब्रह्मा (नाम वाला ऋत्विक्) करता है; प्रातःकालीन सत्र में 'अग्निः प्रातः सवने पात्वस्मान्' इस मन्त्र से सवन के अन्त में अध्वर्यु द्वारा (दी जाने वाली) दो आहुतियों का नाम, शां.श्रौ.सू. 8.8; 10.8; 'विश्वे देवा मरुत इन्द्रो----' एवं 'यो द्रप्सो अंशुः पतितः------' मा.श्रौ.सू. 2.4.6.25-28 (वैता.श्रौ.सू. के अनुसार, ये आहुतियां 'ब्रह्मा' द्वारा दी जाती है) मन्त्रों से मध्याह्न सवन के लिए एवं तृतीय सवन के लिए 'पत्नी संयाज' के 'समिष्टयजुस्' के बाद (वैता.श्रौ.सू. 23.10-19) जैसा कि 'सव' के लिए विधान किया गया है, श्रौ.को. (अं.) II.820।

संस्राव पु. (सम् + स्रु + घञ्) 1. सहायक, सदस्य का सहयोगी, श्रौ.को. (अं.) I.9; 'आज्य' का अवशिष्ट भाग, जिसकी बूंदे 'जुहू' एवं 'उपभृत्' से परिधि पर गिराई जाती हैं (परिधि-होम का एक भाग), आप.श्रौ.सू. 3.7.14 (दर्श); का.श्रौ.सू. 3.6.13; भा.श्रौ.सू. 3.5.12 सोम के पूर्व आहरण (के सोम) का बचा हुआ भाग (तलछट), आप.श्रौ.सू. 12.13.11; श्रौ.को. (सं.) II.308, 523 (प्रायणीय इष्टि) - संश्राव।

संस्रावभाग पु. (संस्रावस्य भागः) 'जुहू' एवं 'उपभृत्' नाम वाली करछुलों में स्थित अवशेषों के मिश्रण का भाग, मा.श्रौ.सू. 1.3.4.27; 1.4.2.21. इसकी आहुति आवरण करने वाली छड़ियों (परिधियों) पर दी जाती है।

संहाय (सम् + हा + ल्यप्) (बालों को) छोड़कर, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.28।

संहित न. एक साम नाम, पञ्च.ब्रा. 8.4.8 सा.वे. 1.468 पर।

संहितकुलीन वि. (सहितं कुलं यस्य, संहितकुल + ख, 'कुलात्खः'-पा. 4.1.139) सम्बद्ध वंश (कुल) का (ब्राह्मण), मा.श्रौ.सू. 11.8.10.3 (प्रवर)।

सकर्णका वि. (कर्णेन सहिता) उभारयुक्त (समिधा, औदुम्बरी समिध्), का.श्रौ.सू. 18.4.6 (कर्णको दारुस्फोटो रोगस्तद्वती, स.वृ.)।

सकर्णपुच्छा वि. (कर्णेन पुच्छेन च सहिता) कान एवं पूंछ (पुच्छ) वाला (वत्स-चर्म 'बछड़े का चमड़ा'), मा.श्रौ.सू. 9.3.1.22 (विश्वजित्)।

सकर्णप्रावृत वि. (कर्णेन सह प्रावृता) कानों के साथ-साथ ढकी हुई, भा.श्रौ.सू. 14.14.5; तुल.—'यज्ञायज्ञिय'।

सकृदतिक्रान्त वि. जिसने (दक्षिण की ओर) केवल एक बार पार किया है, आप.श्रौ.सू. 11.3.10 (उपसद् इष्टि)।

सकृदाच्छिन्न वि. एक बार काटा गया (चि.भा.से. हंसिये के केवल एक प्रहार से), उस बर्हिस् के बारे में कथन, जिसे वेदि पर फैलाते हैं, भा.श्रौ.सू. 1.7.8 (दर्श)।

सकृन्नाराशंस वि. (सकृद् नाराशंसम् यस्य) केवल एक बार नाराशं- स पात्र से युक्त, ऐ.ब्रा. 2.24; श्रौ.को. (सं.) II.447।

सक्तु पु. आटा, सत्तू, आप.श्रौ.सू. 18.9.16 (अपामार्गान्----सक्तून् कृत्वा); भुने हुए सत्तू का चूर्ण, जिसका उपभोग यजमान व्रत-आहार के रूप में करता है, भा.श्रौ.सू. 10.10.3 (सोम०); एक होम में इसकी आहुति दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 4.11 (सोमयाग के अन्त में); चयन में भी, आप.श्रौ.सू. 17.23.11।

सक्तून् कृत्वा (कृत्वा = कृ + क्त्वा) (अपामार्ग के बीज को) भून कर एवं पीसकर, मा.श्रौ.सू. 9.1.1.22।

सख्यविसर्जन न. (सख्युर्भावस्य विसर्जनम्) 'तानूनप्त्र' - संज्ञक कृत्य में प्रविष्ट पुरोहितों एवं यजमान के बीच मैत्री का भङ्ग होना; यह कृत्य सोमयाग के अन्त में होता है, आप.श्रौ.सू. 13.18.2।

सख्यवैसर्जन पु. 'मैत्री-मोचन' के समय पढ़े जाने वाले (उभा कवी आदि) मन्त्र (सोम), बौ.श्रौ.सू. 8.18; द्रष्टव्य-श्रौ.को. (सं.) II.594।

सख्यविसर्जन

सगृह वि. पत्नी के साथ, सपत्नीक, आप.श्रौ.सू. 6.28.1 ।

सगोत्र वि. (समानं गोत्रं येषाम्) जिनका एक ही गोत्र हो, एक गोत्र (अथवा कुलपरम्परा) से सम्बद्ध, जै.ब्रा. II.113।

सग्रहम् क्रि.वि. (ग्रहेण युगपत्) 'दशहोतृ' मन्त्र के 'ग्रह'-संज्ञक पाठ्य-भाग के साथ-साथ, आप.श्रौ.सू. 5.22.8. (धू. उपदेशो मनसा होता ग्रह उपांशु, अन्ये तु मनसा ग्रहम् उक्त्वा पुनर्होतृणां ग्रहणम् च उपांशु कुर्वन्ति) चित्तिः स्रुक्, चित्तम् आज्यं वाग्वेदिः, आधीतं बर्हिः, केतो अग्निः, विज्ञातम् अग्निः, वाक्पतिर्होता, मन उपवक्ता, प्राणो हविः, सामाध्वर्युः इति दशहोता, वाचस्पतिविधे नामन्, विधेमते नाम विधेस्त्वम् अस्माकं नाम, वाचस्पतिस्सोमं पिबतु, आस्मासु, नृम्णं धात स्वाहा (तै.आ. 3.2) इति ग्रहाः', तुल. - भा.श्रौ.सू. 5.16.5।

सङ्कल्प

सङ्कल्प पु. (सम् + क्लृप् + घञ्) निश्चय, प्रण; 'यथार्थ' सम्भृतसंभारस्य--------अप्यकृतसङ्कल्पस्य----- यज्ञसंकल्पात्पूर्वक्षणे शुद्धिर्भवति, स्मृ.च.वि. 71.4।

संकसुक पु. (पितृमेध में) चिति के पश्चिम में इसके (चिति के) चिने जाने (चयन) के समय 'समिन्धते----' के साथ प्रज्वलित की जाने वाली अग्नि का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.1109।

संकृति न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.28 सा.वे. 1.239 पर।

संक्राम पु. (सम् + क्रम् + घञ्) विहित कर्म का उल्लङ्घन (अथवा अननुष्ठान), आप.श्रौ.सू. 3.16.8।

संक्षालन न. (सम् + क्षाल् + ल्युट्, संक्षाल्यते अनेन) वह जल जिससे दोहनपात्र (कुम्भी) साफ किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.14.1; जिससे 'दधिग्रह' नाम वाला प्याला साफ किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 7.4।

संख्यापय् (सम् + ख्या + णिच्, 'पुगागमः' अर्तिह्री------ पा. 7.3.36) (अध्वर्यु द्वारा उद्गाता को) दिखाना (उद्गात्रा संख्याय), का.श्रौ.सू. 10.6.19, आप.श्रौ.सू. 10.23.6; दिखाना।

संगव पु. एक विशिष्ट मुहूर्त 'शुभ एवं कल्याणकारी समय' का नाम, अरुणोदय अथवा तड़के उषाकाल; दिन के पाँच विभागों में द्वितीय (प्रातः, संगव, मध्याह्न, अपराह्न एवं सायाह्न), (बौ.श्रौ.सू. 14.30) जब चरने वाली गायों को दूध दूहने के लिए एकत्रित किया जाता है अथवा जब वे अपने बछड़ों के साथ होती हैं (ऋ.वे. 5.76.3)। उषाकाल से लेकर दोहन के समय तक प्रातर्होम के लिए (विहित) समय, आश्व.श्रौ.सू. 3.12.2 (यस्मिन्काले गावो वत्सैः सहासते स संगवः कालः। तावत्पर्यन्तं प्रातर्होमकालः); व्रत में प्रवेश करने के लिए (व्रतग्रहण के लिए), बौ.श्रौ.सू. 20.1; 'प्रवर्ग्य' का अनुष्ठान करने के लिए, आप.श्रौ.सू. 15.18.13।

संगृहीतृ पु. (सम् + ग्रह् + तृच्) (करों) का संग्रहकर्ता, जो द्यूत-क्रीडा (जुए के खेल) के 'उपद्रष्टा' अर्थात् निर्णायक के रूप में कार्य करता है, आप.श्रौ.सू. 18.19.6-8।

सछदिष्क वि. (छदिषा सह 'उरःप्रभृतिभ्यः कप्' पा 5.4.151) आवरण (छाजन) से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.1.3.48।

सजात पु. सहोदर (सगा) भाई, का.श्रौ.सू. 15.7.12-13।

सञ्चयन न. (सम् + चि + ल्युट्) (अन्तिम संस्कार किये गये व्यक्ति) की अस्थियां एकत्रित करने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 8.20.6।

संचर पु. (सम् + चर् + अच्) यज्ञ के अनुष्ठान के समय यज्ञानुष्ठान स्थल के भीतर ऋत्विजों के भ्रमण (चहलकदमी) के लिए नियत मार्ग और उनके प्रवेश एवं निर्गमन के लिए, उन कृत्यों में जिसमें उत्तरवेदि की आवश्यकता होती है (सोम आदि) एवं इष्टियों में प्रणीता एवं उत्कर के मध्य (स्थित मार्ग), का.श्रौ.सू. 1.3.42-43; होम करने के लिए ऋत्विज् द्वारा प्रयुक्त मार्ग, 3.1.17 (परिधीनपरेण सञ्चरो होष्यतः); = तीर्थ; सोम-याग में अध्वर्यु एवं पर्यवेक्षकों के सञ्चरण के लिए 'आग्नीध्रीय' एवं 'चात्वाल' के बीच मार्ग, आप.श्रौ.सू. 11.13.10; (सरकने 'प्रसर्पण' का मार्ग), भा.श्रौ.सू. 14.10.7; वि. समानरूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमना (सञ्चरण); उन पाँच सर्वनिष्ठ आहुतियों के बारे में कथन, जो (आहुतियां) चातुर्मास्य के सभी पर्वों में घटित होती है, आप.श्रौ.सू. 8.2.3।

सञ्चितोक्थ न. (सञ्चितेन सम्बद्धम् उक्थम्) चिनी गई अग्नि वेदि से सम्बद्ध 'शस्त्र', आप.श्रौ.सू. 17.12.12 (पिता मातरिश्वा, आदि)।

सञ्जय पु. चार सवन-दिनों से युक्त एक सोमयाग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.4.2.13 (इसका अनुष्ठान विश्वामित्र ने किया था); न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 13.6.6 सा.वे. 1.419 पर।

संज्ञपन न. यज्ञीय पशु को मारने का कृत्य, इस कृत्य में पशु के गले को एक रस्सी से घोटकर उसे इस प्रकार मृत्यु दी जाती है कि वह चिल्ला न सके। पशुमारणकर्म शामितृ-कर्तृक है (अर्थात् इसे शमित्र करता है), आप.श्रौ.सू. 7.16.5 (पशु); अश्वमेध में 20.17.9; इसका शाब्दिक अर्थ है कि वध्य पशु ने अपने वध की सहमति दे दी है (संम् + ज्ञा + णिच् + ल्युट्, 'मितां ह्रस्वः' 'संज्ञा' को ह्रस्व); द्रष्टव्य - अक्षतस्य मारणम्, श.ब्रा. 3.8.1.15; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 129.63।

संज्ञप्त पु. जिस समय पशु की बलि (मार दिये जाने) की घोषणा होती है उस समय अध्वर्यु द्वारा अनुष्ठित एक आहुति का नाम। यह आहुति 'यत् पशुं मायुम् अकृत--' इस मन्त्र के साथ दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 4.6-7।

संज्ञप्तहोम पु. पशु के नि:शब्द करने (मारने) के प्रसङ्ग में घी की आहुति, आप.श्रौ.सू. 7.17.3; मा.श्रौ.सू. 1.8.3.34 (तुष्टीकृत पशु के लिए); संज्ञप्तहोमाहुति, बौ.श्रौ.सू. 11.4; भा.श्रौ.सू. 7.13.5।

संज्ञानी स्त्री. (सम् + ज्ञा + ल्युट् + ङीप्, संज्ञायतेऽनया) यजमान के सम्बन्धियों से उसके 'मुख्य' के रूप में अभिज्ञान की सहमति प्राप्त करने के लिए एक इष्टि, बौ.श्रौ.सू. 13.20; आप.श्रौ.सू. 19.20.3।

सत न. एक बड़ा भाण्ड, आप.श्रौ.सू. 19.1.18; जलते अङ्गारों के वहन (ले जाने) के लिए इनकी संख्या दो होती है, बौ.श्रौ.सू. 2.13; अग्नि-प्रणयन के लिए, 2.17 (आधेय); पलाश-काष्ठ से निर्मित, इसमें शुद्धीकृत 'सुरा' रखी जाती है, आप.श्रौ.सू. 19.1.17; युधि. 125।

सतक्षन् वि. (तक्ष्णा सहित:) बढ़ई के साथ, 'आज्यशेषमादाय सतक्षा गच्छति यूपम्', का.श्रौ.सू. 6.1.15 (पशु-याग, यूप)।

सतनुकरण न. सोम को साकार बनाने का कृत्य, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.40 [अन्येन वाससा द्वादशं (सोमस्य) उपावहरन्ति------सिद्धं सतनुकरणात्]; [द्वादशाह]; वही 2.3.3.5।

सतूला वि. (तूलेन सहिता) जूड़े से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.38।

सतोबृहती स्त्री. 'बृहती' नाम वाले छन्द का एक प्रकार-विशेष जिसमें 36 अक्षर (8 + 8 + 12 + 8) होते हैं, शां.श्रौ.सू. 7.25.3; द्रष्टव्य-रामगोपाल, 28 PAIOC, 1978; VIJ 12 (1-2), 1974, पृ. 301-305।

सत्रासाहीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.9.20 सा.वे. 1.170 पर।

सत्र न. यज्ञीय सत्र, एक प्रकार का सोमयाग (इसकी अवधि 12 दिन से एक वर्ष अथवा उससे भी अधिक सवन-दिनों वाली हो सकती है। 'द्वादशाह' सत्र की प्रकृति है और इसका आवश्यक वैशिष्ट्य है 'षडह'। 'गवामयन' वार्षिक 'सत्र' की प्रकृति है। सत्र का एक और भी प्रकार है—'रात्रि सत्र' (आप.श्रौ.सू. 19.15.7)। इसमें कोई यजमान नहीं होता एवं सबी कार्य-सम्पादक ऋत्विज् यजमान के रूप में व्यवहृत होते है (अर्थात् सभी ऋत्विज् ही यजमान होते हैं)। इसमें दक्षिण नहीं होती, आप.श्रौ.सू. 23; का.श्रौ.सू. 24.1-7; शां.श्रौ.सू. 11.14, 13.3.1।

सत्रस्य ऋद्धिं गायति 'सत्रस्य ऋद्धिम्' आदि मन्त्र (वा.सं. 8.52) का गायन करता है; का.श्रौ.सू. 12.4.10।

सत्रासाहीय न. एक साम का नाम, जै.ब्रा. I.182।

सत्रोत्थान न. (सत्रस्य उत्थानम्) 'सत्र-याग से निवृत्त होना'; (दसवें दिन 'पत्नी संयाज' के बाद) जल-स्पर्श से लेकर शाला में अग्नि पर समिधाएँ रखने तक का (जिसमें सत्र ऋद्धि-गायन, प्रजापति को मानस आहुति आदि भी समाहित हैं) कृत्य, का.श्रौ.सू. 12.4.27 (अप उपस्पर्शनाद्येतत्सत्रोत्थानम्)।

सत्यदूत पु. कल्याण प्राप्ति की कामना वाले पुरुष द्वारा दी जाने वाली आहुतियों का नाम (इसमें 'प्रसवितृ सवितृ' के लिए 'सतीन' के अन्न का अष्टाकपाल पुरोडाश, 'पुषा-अश्विन्' के लिए एकादश कपाल पुरोडाश एवं 'सत्यवाक्' सरस्वती के लिए ओदन की आहुति 'प्रायश्चित्ति' की प्रक्रिया से दी जाती है। छ: ऋचाएं 'य इमा विश्वा जातानि----' क्रमश: 'याज्या(यें)' एवं पुरोनुवाक्या(यें) हैं, मा.श्रौ.सू. 5.2.7.25-27।

सत्यदूत हविस् न. कल्याण काम व्यक्ति (वह व्यक्ति जो अपना कल्याण चाहता है) के द्वारा अनुष्ठेय 'सत्यदूत'-संज्ञक कृत्य के लिए एक हर्विद्रव्य का नाम, मा.श्रौ.सू. 5.2.7.25; 9.1.5.39 (बौद्धिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए)।

सदन न. (सद् + ल्युट्) यज्ञ भूमि में पुरोहितों का आसन (सीदन्त्यस्मिन्), भा.श्रौ.सू. 3.12.5; 3.14.2।

सदस् न. एक विशिष्ट तिर्यक् मण्डप का नाम (सोमयाग में महावेदि में निर्मित, नौ अरत्नि चौड़ा एवं 27 अरत्नि विस्तृत), आप.श्रौ.सू. 11.9.7; ऋत्विजों के समावेशन के लिए; उनकी धिष्ण्यायें यहाँ रखी जाती हैं। यह प्राचीनवंश के पूर्व की ओर तीन 'प्रक्रम' होता है। 'औदुम्बरी' स्तम्भ लगभग सदस् के मध्य में होता है; इसे नौ चटाइयों अथवा छाजन = छदिस् (उक्थ्य में 15, षोडशी में 16 एवं वाजपेय में 17) से ढक दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 11.10.13; इसमें दो द्वार होते हैं, एक पूर्व में एक पश्चिम में, बौ.श्रौ.सू. 6.26; आप.श्रौ.सू. 11.9.5-10; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 243-175।

सदस्य पु. (सदसि भव:, सदस् + यत्) (वह) जो 'सदस्' में ही रहता है; सोमयाग में 17वां पुरोहित, 'महर्त्विज्', बौ.श्रौ.सू. 2.3; **० चमस।**

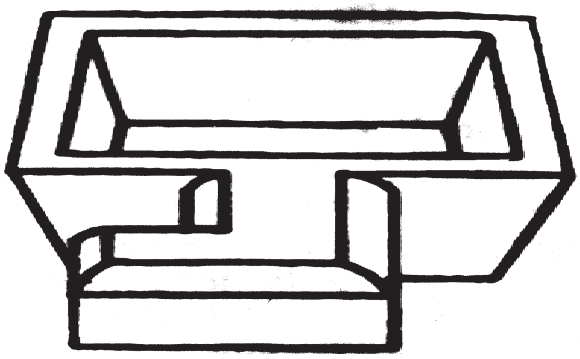

सदस्यचमस

सदोबिल न. (सदसः बिलम्) 'सदस्' नामके मण्डप का पूर्वी प्रवेश द्वार, आप.श्रौ.सू. 12.27.11; भा.श्रौ.सू. 12.14.4।

सदोविशीय न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 18.4.8 सा.वे. 1.511 पर।

सद्यस्काल वि. उसी दिन अथवा उसी क्रम में (यज्ञ का) अनुष्ठान, जिसमें प्रारम्भिक कृत्य (उपवसथ) उसी मुख्य दिन पर अनुष्ठित होते हैं। 'इष्टि' एवं पशु या तो 'सद्यस्काल' हो सकते हैं अथवा इनका अनुष्ठान प्रारम्भिक कृत्य के दूसरे दिन हो सकता है, आप.श्रौ.सू. 7.6.3; 'सद्यस्काला वा वरुणप्रघासाः', 8.5.31।

सद्यस्क्री पु. एक सोम-याग (एकाह) जिसमें सोम का क्रयण (खरीद) वास्तविक सवन के दिन किया जाता है, अग्निष्टोम की तरह नहीं, जिसमें सोम (एक) पूर्ववर्ती दिन (में) खरीदा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 18.20 = साद्यस्क्र, आप.श्रौ.सू. 22.2.6।

सद्वत् वि. (द्वि.व.) (सद् + मतुप्) दो पुरोनानुवाक्या ऋचायें, ऋ.वे. 5.13.4 एवं 1.91.9।

सनि पु. प्रार्थनीय (सम्भजनीय) अथवा इष्ट सामग्री, श्रौ.प.नि. 200.45; याचन. 200.46।

सनिमन्त् पु. (द्वि.व.) स्विष्टकृत् के लिए 'पुरोनुवाक्या' के रूप में 'इदमग्ने परौजसम्-----' एवं 'याज्या' के रूप में 'त्वं नो अग्ने सनये------' (मै.सं. 4.11.1) संयाज्याओं का पारिभाषिक नाम; मा.श्रौ.सू. 5.1.5.33।

सनीहार पु. अन्न को प्राप्त करने वाला, भा.श्रौ.सू. 10.12.1 (सोम); (वह व्यक्ति) जो उस यजमान की ओर से उपहार ग्रहण करता है, जिसे सोमयाग का अनुष्ठान करना है, आप.श्रौ.सू. 10.18.5; श्रौ.ध.चि. 36; 10.18.5; यज्ञीय-अनुष्ठान के लिए चन्दा (शुल्क) एकत्रित करने के लिए भेजे जाने वाला अभिकर्ता (प्रतिनिधि), सत्या.श्रौ.सू. 16.1.40; द्वि.आ.ध. II.ii.1241।

सन्तत न. (सम् + तन् + क्त) सामिधेनी ऋचाओं के पाठ की विस्तारित एवं सतत प्रविधि जिसमें ऋचा के अन्त में विद्यमान स्वर तीन मात्राओं वाले (त्रिमात्रिक) 'ओ' में परिवर्तित कर दिया जाता है और इसमें 'म्' जोड़ दिया जाता है, उदाहरणार्थ—'सुम्नयु' = सुम्नयोम् उसके बाद, दूसरी ऋचा आती है, आश्व.श्रौ.सू. 1.2.10 (स्वरादिमृगन्त-मोकारं त्रिमात्रं मकारान्तं कृत्वोत्तरस्या अर्धर्चेऽवस्येत्। तत्सन्तम्)।

सन्तति स्त्री. (सम् + तन् + क्तिन्) 1. यदि किसी व्यक्ति को पवित्र अग्नियों का नवीनीकरण करने के बाद पुनः उनके (पवित्र अग्नियों के) आधान की आवश्यक पड़ जाय, तो तीनों अग्नियों, अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिण पर दी जाने वाली छः आहुतियों का नाम (इस प्रकार प्रत्येक अग्नि में दो आहुतियां दी जाती हैं), मा.श्रौ.सू. 1.6.5.8; श्रौ.को. (अं.) 1.77; 2. अग्निवेदि में चिनी जाने वाली ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.2.17. इनकी संख्या नौ होती हैं एवं इनका चयन तह के अग्र एवं पश्च भाग में किया जाता है।

सन्तनि पु. एक अतिरिक्त (अतिग्राह्य) प्याला, मा.श्रौ.सू. 7.2.5.3; एक साम का नाम, द्रा.श्रौ.सू. 7.4.16; पञ्च.ब्रा. 18.5.9 सा.वे. 1.584, 585 पर आधृत।

सन्तनी स्त्री. यात्रा से लौटकर वापस आने पर विभिन्न पवित्र अग्नियों में दी जाने वाली एक आहुति का नाम, बौ.श्रौ.सू. 3.14.4; यात्रा पर निकले यजमान द्वारा दी जाने वाली एक आहुति का नाम, यदि उसे अग्निहोत्र के अनियमित अनुष्ठान की सूचना मिले। यह (आहुति) 'मनोज्योतिर्जुषताम्----' इस मन्त्र से दी जाती है, श्रौ.को. (अं.) I.97. यह एक प्रायश्चित्तिक आहुति है, यदि अग्नियां इनमें ईंधन लगाने के बाद बुझ जाएं, बौ.श्रौ.सू. 27.5. इसी तरह यदि कपाल इस पर पुरोडाश रखने से पहले टूट जाए, तो भी यही क्रिया होती है, बौ.श्रौ.सू. 3.15।

सन्तराम् क्रि.वि. ज्यादा नज़दीक से, आप.श्रौ.सू. 11.2.1 (सन्तरां मेखलां समायच्छते)।

सन्तान न. चर्म, मा.श्रौ.सू. 8.19.19।

सन्तृण्ण वि. (सम् + तृद् + क्त) खोखला बनाया हुआ, भा.श्रौ.सू. 12.11.2 (उपरव)।

सन्तृद्य (सम् + तृद् + ल्यप्) मिट्टी के नीचे 'उपरव' संज्ञक छिद्रों को एक दूसरे से जोड़कर, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.8।

सन्तृप्त वि. (सम् + तृप् + क्त) सन्तुष्ट, सोम की टहनियों के बारे में कथन, जिन्हें जल से फुला दिया गया है, बौ.श्रौ.सू. 7.5।

सन्दंश पु. एक सवन-दिन वाले एक सोम याग का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.5.31।

सन्दान न. लगाम, मा.श्रौ.सू. 5.2.6.6 (कारीरी); स्तम्भन-रज्जु (अगाड़ी), काशिकर, 288 इण्डेक्स।

सन्द्राव पु. (सम् + द्रु + घञ्) एक वाचन में आवाज का सञ्चरण, आप.श्रौ.सू. 24.1.5।

सन्धा स्त्री. 'ब्रह्म सन्धत्तम------' आदि आठ मन्त्रों का समूह, जिनका पाठ अध्वर्यु एवं प्रतिप्रस्थाता द्वारा उस समय किया जाता है जब वे 'शुक्र' एवं 'मन्थिन्' प्यालों को अर्पित करने के लिए आगे प्रस्थान करने से पहले उत्तरवेदि के निकट अपनी कोहनियों अथवा प्यालों को एक दूसरे से सटाते हैं, श्रौ.को. (अं.) I.532।

सन्धि पु. (सम् + धा + कि) एक स्तुति का नाम, द्रा.श्रौ.सू. 26.3.12; रात्रि एवं दिवस की सन्धि (जोड़, पर्व), गोधूलि वेला; (तृती.) हविराधान मण्डप की सीमा-बिन्दु से (सन्धिना आहृत्य पात्रे बालेन पुनाति), का.श्रौ.सू. 14.1.25 (वाजपेय में सुरापात्राणि); जै.ब्रा. I.209।

सन्धिचमस पु. (सन्धौ चमसः) रात्रि एवं दिन के सन्धिकाल अर्थात् उषाकाल में (प्रयुक्त) प्याला, मा.श्रौ.सू. 2.5.3.17; भा.श्रौ.सू. 14.17.5।

सन्धिनी स्त्री. गरमायी गाय, वह गाय जो दिन में एक बार दूध देती है। वह गाय जो अपने बच्चे के मर जाने पर दूसरे बच्चे को इसके पास लाने पर दूध देती है, 1.170 पर मिता.; हि.आ.ध. II.ii. 782 n.

सन्ध्यावन्दन न. (सन्ध्यायां वन्दनम्) साँझ अर्थात् धुंधलके में जलप्रदान के साथ प्रार्थना।

सन्नख वि. सघनता में इस प्रकार के आकार का कि मुट्ठी बन्द कर लेने के बाद अंगुष्ठ (अंगूठे) एवं तर्जनी के नाखून एक दूसरे से मिल जाए, भा.श्रौ.सू. 1.3.13 (दर्भमुष्टि); (घास की) मुट्ठी या मुट्ठी भर (घास), भा.श्रौ.सू. 11.13.5; आप.श्रौ.सू. 1.3.15; काटे गये नखों वाला, आप.श्रौ.सू. 15.13.3 (शलाकामुष्टि)।

सन्नखमुष्टि स्त्री. अंगूठे के नख एवं प्रथम अङ्गुलि से प्राप्त विवर से नापी गई मुट्ठी भर की मात्रा, आप.श्रौ.सू. 1.3.15।

सन्नत वि. (सम् + नम् + क्त) सङ्कीर्ण, संकरा, बौ.शु.सू. 4.10।

सन्नततरा वि. (सन्नत + तरप् + टाप्) संकीर्णतर (अधिक संकरी), मध्य (मध्य में) सिकुड़ी हुई (वेदि), आप.श्रौ.सू. 2.3.2।

सन्नम् (णिच्) (वत्सापाकरण के लिए काटी हुई शाखा) को सीधा करना (ऋजूकरण), मा.श्रौ.सू. 1.1.1.15; तुल. का.श्रौ.सू. 4.2.3 (सन्नमयामीति वोत्तरे)।

सन्नमति (सम् + नम् + लट् प्र.पु.ए.व.) (मन्त्र में) संधोधन करना है, आप.श्रौ.सू. 6.26.5।

सन्नमन न. (सम् + नम् + ल्युट्, अन्तभावितण्यर्थ) 1. दर्श की वेदि के दोनों तरफ वक्रता (घुमाव) उत्पन्न करना, भा.श्रौ.सू. 12.5.1; 2. कृत्य की आवश्यकता के अनुसार मन्त्रों का विपरिणाम (मन्त्रों में संशोधन), भा.परि. 68।

सन्नमनवर्जम् क्रि.वि. बिना सिकुड़न के, आप.श्रौ.सू. 7.3.10 (पशु के लिए वेदि)।

सन्नमनविरोध पु. (सन्नमने विरोधः) संशोधित मन्त्र में अतारतम्य की स्थिति (इसे छोड़ देना चाहिए), भा.परि. 68।

सन्नमयति (सम् + नम् + णिच् लट् प्र.पु.ए.व.) (शाखा को) सीधा करना, भा.श्रौ.सू. 1.2.10. मन्त्रों को विपरिणमित करता है, भा.श्रौ.सू. 4.19.4।

सन्नवती स्त्री. बैठने के सन्दर्भ वाली ऋचा, (जो) एवंविध है। 'सं सीदस्व महाँ असि', ऋ.वे. 1.36.9; श्रौ.को. (सं.) II. 87।

सन्नहन न. (सम् + नह् + ल्युट्) फैलाने या विखेरने के लिए अभिप्रेत दर्भपत्रों एवं इध्म को बाँधने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.5.5, मुष्टि एवं प्रस्तर को एक साथ बाँधने के लिए प्रयुक्त एक रस्सी (शुल्ब, भाष्य) 2.9.1 (दर्श)।

सन्नहनी स्त्री. (सन्नह्यतेऽनया, सन्नहन + ङीप्) 1. पवित्र घास के बन्धन से सम्बद्ध ऋचा, आप.श्रौ.सू. 1.5.4, इन्द्राण्यै सन्नहनम्, तै.सं. 1.1.2; अपरिमितां परिमिताः सन्नह्यो, आदि; भा.श्रौ.सू. 1.5.1; तै.ब्रा. 3.4.7.9-10।

सन्नामन न. (सम् + नम् + णिच् + ल्युट्) ऋचा में संशोधन, द्रा.श्रौ.सू. 6.3.3 (अनुब्राह्मणम्)।

सन्नाहयति (सम् + नह् + णिच् लट् प्र.पु.ए.व.) (क्षत्रिय को) धनुष् एवं बाण धारण कराता है (या धनुर्बाण से लैश करता है), का.श्रौ.सू. 13.3.10 (गवामयन)।

सन्निध पु. (सम् + नि + धा + क, आतश्चोपसर्गे, पा. 3.1.136) निकट का पाठीय सम्बन्ध या संयोग, का.श्रौ.सू. 10.9.21।

सन्निपातन न. (सम् + नि + पत् + णिच् + ल्युट्) मन्त्र के अन्त के समकाल यज्ञीय कृत्य के आरम्भ कराने का कृत्य। यज्ञीय कृत्य (उस) मन्त्र के तुरन्त बाद होना चाहिए जो कृत्य की प्रकृति एवं उद्देश्य का सङ्केत करता है, आप.श्रौ.सू. 24.2.1; द्रष्टव्य – सान्निपात्य, का.श्रौ.सू. 1.3.5 (------ मन्त्रमुच्चार्य तत्समाप्तिक्षणे एव यागादि क्रियाऽनुष्ठेया इत्यर्थः----------मन्त्रस्यार्थाभिधाने सामर्थ्यादिति, स.वृ. वही)। आहुति को उड़ेलना वषट्कार का अनुगमन करे, आप.श्रौ.सू. 24.3.14।

सन्निवाप पु. (सम् + नि + वप् + घञ्) 'उखा' एवं 'प्रतिसमेधनीय' की अग्नि का एकीकरण, बौ.श्रौ.सू. 15.17 (अश्वमेघ यज्ञ)।

सन्न्युप्य (सम् + नि + वप् + ल्यप्) (व्यक्तिगत अग्नियों को) एक साथ नीचे रखकर, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.14 (सत्र)।

सपलाशा स्त्री. (वि.) (पलाशेन सह) पत्रों से युक्त, भा.श्रौ.सू. 5.3.12।

सपिण्डन वि. पूर्व पुरुषों (पूर्वज पितरों) के पिण्डों के साथ प्रेत-पिण्ड को संयुक्त करना (या मिलाना), निर्ण.सि. 335.9; 429.17।

सप्तदेवगवी स्त्री. होता द्वारा 'इडोपाह्वान' का उच्च स्वर से वाचन करते समय यजमान द्वारा जपे जाने वाले सात मन्त्रों का नाम, 'भूयस्य एहि', श्रेयस्य एहि, वस्व्यस्य एहि, चित्त एहि, देधिष एहि, इड एहि, सूनृत एहि, भा.श्रौ.सू. 3.1-3; 3.17-18; 4.15 (सप्त तत्त्वों सहित)।

सप्तमनुष्यगवी स्त्री. होता द्वारा स्वयं अपने लिए 'इडा' के आह्वान के समय यजमान द्वारा जपे जाने वाले मन्त्र 'उदसि मनासि वस्वी रन्ती रमतीः सूनुः सूनरा' (मै.सं. 4.2.5) का नाम, बौ.श्रौ.सू. 3.1-3, 3.17-18, 4.15 (सप्त-तत्त्वों के सहित)।

सप्तवती स्त्री. (सप्त + मतुप् + ङीप्) 'सप्त' शब्द की अभिव्यञ्जना से युक्त एक ऋचा (तै.ब्रा. 3.11.5.1) अर्थात् 'सप्त वो अग्ने समिधः सप्त जिह्वा' आदि, आप.श्रौ.सू. 7.7.1 (अग्नि प्रणयन के पश्चात् उत्तरवेदि के ऊपर इससे 'पूर्णाहुति' दी जाती है); भा.श्रौ.सू. 7.4.5-9-6; 7.5.6।

सप्तसप्तिनी स्त्री. (स्तोत्र के गायन में) में एक 'विष्टुति' जिसमें प्रत्येक में (सभी में तीन आवृत्ति की) सात ऋचाये होती हैं; विशेषतया 21 ऋचाओं वाले स्तोम (एकविंश-स्तोम) की 'यज्ञायज्ञिय' (अग्निष्टोम) के स्तोत्र में अनुप्रयुक्त (पञ्च.ब्रा. 2.15)। आवृत्तियां निम्नवत् हैं—अ अ अ, ब ब ब, स; अ, ब ब ब, स स स; अ अ अ, ब, स स स।

सप्तस्थवीर्य पु. एक यज्ञ का नाम। इस यज्ञ की दक्षिणा या तो एक वस्त्र अथवा एक स्वर्ण खण्ड है, मा.श्रौ.सू. 9.5.5.3. इसका अनुष्ठान सात गायों के घृत एवं सात गायों के दुग्ध में उबाले गए चावल से होता है, मा.श्रौ.सू. 9.5.5.19।

सप्तहोतृ पु. सात मन्त्र : 'महाहविर्होता, सप्त हविरध्वर्युः, अच्युतपाजा अग्नीत्, अच्युतमना उपवक्ता, अनाधृष्यश्च अप्रतिधृष्यश्च अब्जिगरौ अयास्य उद्गाता (तै.आ. 3.5), आप.श्रौ.सू. 4.11.7; बहिष्पवमान के पूर्व एक आहुति के साथ प्रातःसवन में यजमान द्वारा अश्राव्य जप (दर्श), आप.श्रौ.सू. 12.16.18; द्रष्टव्य—श्रौ.को. (सं.) I.128; यदि अग्निहोत्र के अनुष्ठान में दो-तीन दिन छूट जाए, तो जिस मन्त्र से आहुति दी जाती है उस मन्त्र का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 20.14-15. यदि कोई व्यक्ति सोम-याग का अनुष्ठान करने के बाद अप्रसन्नता का अनुभव करता है, तो वह मौनपूर्वक मन्त्र के ग्रहभाग का वाचन करते हुए आहुति दे सकता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.14।

सप्तास्थिता स्त्री. 17 ऋचाओं की राशि से युक्त एक प्रकार की विष्टुति का नाम (7 + 3 + 7 अथवा 5 + 3 + 9 अथवा 3 + 5 + 9), काशिकर 122।

सफ न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.5.6 सा.वे. 1.578 पर।

सभ न. एक साम का नाम, जिसका गायन 'अग्न्याधेय' संज्ञक कृत्य के समय सभ्य अग्नि के निक्षेप के समय किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.I.52।

सभा स्त्री. वह प्रकोष्ठ जहाँ द्यूतस्थान (जुआ खेलने का स्थान) 'अधिवेदन' स्थित होता है, आप.श्रौ.सू. 15.9.2; = द्यूतशाला, आप.श्रौ.सू. 5.4.7 भाष्य (आधेय)।

सभार वि. (समानः भारः यस्य) समान, सदृश, बराबर, जै.ब्रा. II.31।

सभासद् पु. (सभायां सीदति, सभा + षद् + क्विप्) द्यूत-शाला में बैठने वाला व्यक्ति, अर्थात् जुआरी। वे दाँव की रकम के रूप में गाय को लेते हैं, भा.श्रौ.सू. 5.12.9. अथवा गाय से चावल खरीदा जाता है, पकाया जाता है और सभासदों को दे दिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 5.20.2-3; सभागार में बैठने का कृत्य का.श्रौ.सू. 4.15.31 (अग्निहोत्र)।

सभासन न. (सभायाम् आसनम्) सभागार में बैठने का कृत्य, 'अनशित्वा प्रातर्मुहूर्तं सभासनं सभ्यस्य', का.श्रौ.सू. 4.15.31 (अग्निहोत्र)।

सभ्य न. (सभायां साधुः सभायां भवः वा, सभा + यत्) सभागार में स्थापित अग्नि। इसे या तो घर्षण द्वारा अथवा आहवनीय या गृह्य अग्नि से प्राप्त किया जाता है।) कुछ आचार्य इस अग्नि की स्थापना के विरुद्ध हैं, तो कुछ इसे ऐच्छिक मानते हैं। आप.श्रौ.सू. के अनुसार एक वर्ग पर प्रत्येक तरफ 12 अंगुल के बराबर एक कुण्ड (अंगीठी) का स्थापन अपरिहरणीय है।

समचतुरस्त्र पु. (समानाः चत्वारो अस्राः यस्य) वर्ग, बौ.शु.सू. 1.52।

समङ्गिन् वि. (समानि अङ्गानि यस्य सः) जिसके सभी अङ्ग सम हों, सभी भागों में अभेद्य, का.श्रौ.सू. 7.9.4; 2.3.12 (शकट, सर्वाङ्गैरुपेतम्, स.वृ.)।

समञ्जत् वि. (सम् + अञ्ज् + शतृ) महावीर में आज्य का अनुप्रयोग अथवा अनुलेपन करते हुए, भा.श्रौ.सू. 11.8.13 (प्रवर्ग्य)।

समन्त न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.4.6 सा.वे. 1.61 पर।

समन्य (सम् + अन् प्राणने + ल्यप्) साँस लेकर, भा.श्रौ.सू. 8.21.2 (समन्य जपति)।

समन्वारब्धनिष्क्रमण न. (पुरोहितों से) सम्पर्क बनाते हुए (हविराधान मण्डप) से बाहर निकलना, का.श्रौ.सू. 10.1.14, द्रष्ट. — प्रसर्पण।

समभिवासन न. (सम् + अभि + वस् + णिच् + ल्युट्) (गरम) राख (भस्म) से पुरोडाश को ढकना, बौ.श्रौ.सू. 3.24 : 8 (V.I आभस्मनाभिवासनात्)।

समभिव्याहार पु. (सम् + अभि + वि + आ + हृ + घञ्) (मुख्य स्वरूप) के साथ-साथ उल्लेख का.श्रौ.सू. 1.23 वाक्य 'समभिव्याहारो वाक्यम्' अ.सं.------- (एकस्मिन् वाक्ये शेषशेषिणोः सहोच्चारणम्, अर्थात् एक ही वाक्य में शेष एवं शेषी का एक साथ उच्चारण, का.श्रौ.सू. 1.2.3 पर स.वृ.)।

समभ्युच्चीयेरन् (सम + अभि + उद् + चि + वि. लि. प्र.पु.बहुव.) एक दोष अथवा त्रुटि के लिए विहित सभी प्रायश्चित्तिक कृत्यों का वे अनुष्ठान करें, भा.श्रौ.सू. 9.1.2।

समम्बिला वि. (स्त्री.) (समीकृतानि बिलानि यस्याः सा) (ईंटों की तह) जिसके विवर (छिद्र) भरे हुए हों, का.श्रौ.सू. 17.1.20 (समम्बिला = सममुखा, स.वृ.)।

समयाध्युषित पु. अग्निहोत्र के लिए उपयुक्त काल, जिस समय तारे अदृश्य हो जाते हैं एवं सूर्य उदित नहीं हुआ होता, म.स्मृ. 2.15 (उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञः इतीयं वैदिकी श्रुतिः); युधि. पृ. 24।

समयाध्वे क्रि.वि. आधी दूरी पार कर लेने के बाद, आधी दूरी तय कर लेने के बाद, भा.श्रौ.सू. 5.8.9-10 (आधान)।

समयार्चिस् क्रि.वि. लपट अथवा ज्वाला के निकट, भा.श्रौ.सू. 6.11.9।

समयार्ध न. (सप्त.) (समयस्य अर्धम्) आधे रास्ते की दूरी पर, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.12; 2.2.4.4 (उत्तरतः) सदोह-विर्धानयोः समयार्धे------आग्नीध्रं मिनोति)।

समयाविषित वि. (सप्तमी) दिन के प्रस्फुटन के समय, उसी समय जब दिवस का प्रस्फुटन होता है, आप.श्रौ.सू. 6.4.9; भा.श्रौ.सू. 6.9.8 (प्रातःकालिक अग्निहोत्र)।

समयिन् वि. सदृश, जै.ब्रा. III.244।

समर न. (सम + ऋ + अप्) एक मिलन-बिन्दु, मा.श्रौ.सू. 10.1.1.4; 10.3.2.25।

समवत्त न. (सम् + अव + दो + क्त) 'इडा' की एक कतरन, आप.श्रौ.सू. 7.23 = 11 = इडापात्री (पशु); श्रौ.को. (सं.) II.209; बौ.श्रौ.सू. 7.18.10।

समवत्तधानी (समवत्तस्य धानी) स्त्री. वध्य (पशु) के काट गये अङ्गों को रखने के लिए अभिप्रेत पात्र, आप.श्रौ.सू. 7.23.11=इडापात्री (पशु); श्रौ.को.(सं.) II. 209; बौ.श्रौ.सू. 7.18.10.

समवदानीकृत्य (समवदान + च्वि + कृ + ल्यप्) एक (बड़ा) टुकड़ा काट कर, मा.श्रौ.सू. 4.1.14 (प्रवर्ग्य-मृत्तिका)।

समवस्त्राविणी स्त्री. (सम् + अव + स्रु + णिनि + ङीप्) यज्ञीय स्तम्भों के एक प्रकार की व्यवस्थिति का नाम :

(जिसमें) मध्य वाला (खम्भा) नीचा एवं शेष दोनों तरफ के उच्च एवं उच्चतर होते हैं, आप.श्रौ.सू. 14.6.5 (अभिचार के लिए)।

समस्त पु. (सम् + अस् + क्त) 1. 'पातम् अग्रय' आदि मन्त्रों के वर्ग का नाम, द्रा.श्रौ.सू. 5.3.2, (सोम के) बाद वाले दो सवनों में 'धिष्ण्या' संज्ञक अंगीठी की प्रार्थना के लिए उच्चारणीय, श्रौ.को. (अं.) II.719; 2. 'यायावरों' की परम्परा के अनुसार यदि यजमान यात्रा पर हो, तो अग्निहोत्र (सायं एवं प्रातः) आहुतियों की स्थानापत्ति के लिए (अर्थात् बदले में) एक आहुति के रूप में दी जाने वाली आहुति का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.99; बौ.श्रौ.सू. 3.4-9; 13; 14; 17; 14.9 बौ.श्रौ.सू. 14.16 के अनुसार उपर्युल्लिखित क्रम में एक बार में दी गई अभ्यातान आहुतियां, जया आहुतियां एवं राष्ट्रभृत् आहुतियां मिलकर समस्त आहुतियां होती हैं (अर्थात् समस्त-आहुतियों का स्वरूप-निर्माण करती हैं); श्रौ.को. वही 205; वि. एक दूसरे से मिले हुए (वैश्वदेव, श्वोभूते वरुणप्रघास और इसी तरह आगे), मा.श्रौ.सू. 8.17.11।

समस्तहोम पु. (समस्तःहोमः) (दुग्ध की) संघनित = घनीकृत आहुति (अग्निहोत्र का एक रूप, जिसका अनुष्ठान सड़क पर उसी प्रकार किया जाता है जैसा 'यायावर' - संज्ञक ऋषि लोग किया करते थे), बौ.श्रौ.सू. 24.31; तुल.भा.श्रौ.सू. परि. 211, श्रौ.को. (सं.) I.142।

समस्तानुमन्त्रण न. (समस्तम् अनुमन्त्रणम्) (अग्नि एवं सोम के लिए) आज्य भाग आहुतियों पर मन्त्र का संयुक्त (अथवा सम्मिलित) उच्चारण (अलग से अभिमन्त्रण का उच्चारण करने के बजाय) भा.श्रौ.सू. 4.14.2, यजमानकतृक।

समस्य (सम् + अस् + ल्यप्) (मित्रविन्दा की दर्सों आहुतियों) को सम्मिलित रूप से एक मानकर, का.श्रौ.सू. 5.12.4 (सर्वेषां देवानां पदानि पृथक् पृथक् अविभक्तिलोपेन उच्चार्य, स.वृ. वही)।

समस्यन् वि. (सम् + अस् + शतृ पु.) (दो क्षेत्रों) का एक समष्टियोग बनाते हुए, बौ.श्रौ.सू. 1.50।

समस्यन्ते (सम् + अस् + यक् लट् प्र.पु.बहु.व.) अन्तर्मिथुनीकृत, आपस में मिला दिये जाते हैं, भा.श्रौ.सू. 1.4.8 (एक रस्सी बनाने के लिए दर्भ-पत्र)।

समस्येत् (सम् + अस् वि.लि. प्र.पु.ए.व.) दो कृत्यों को मिला देना चाहिए (प्राचः क्रमेत् उप च तिष्ठेत्), आप.श्रौ.सू. 16.11.9।

समाख्यान न. (सम् + आ + ख्या + ल्युट्) सामान्य नामकरण अथवा नाम से मेल खाता अथवा नामानुकूल (ब्रह्मचमस, आदि), आप.श्रौ.सू. 12.25.18 (समाख्यानेन अपि भक्षं लभन्ते); चि.भा.से. विशेष रूप से चमस का अभिधान [जिसकी विशिष्टता के बल पर (यजमान सहित) कुछ ऋत्विज् जो इस प्रकार के चमस का प्रयोग कर सकते हैं, सोमपान के अधिकारी होते हैं। इसे समाख्या भक्षण कहते हैं]; अभिधान (नाम) के वैशिष्ट्य से केवल उन्नेता ही प्यालों को भर सकता है (एवं उसमें स्थित सोम का) पान कर सकता है, का.श्रौ.सू. 9.5.32. कार्य के सन्दर्भ में एक शब्द की व्युत्पत्ति, का.श्रौ.सू. 1.8.43 (उदा० आ अस्मिन् हूयते इत्य आहवनीयः) तुल. समाख्या यौगिकः शब्दः, अर्थ सं. 33

समानतन्त्र वि. (समानं तन्त्रं यस्य) जिसकी प्रक्रिया समान हो, एक एवं उसी प्रकार की प्रक्रिया वाला अथवा समान प्रक्रिया से अर्पित, भा.श्रौ.सू. 5.13.22 (काशिकर : संयुक्त सम्मिलित)।

समानतन्त्रम् क्रि.वि. (समानं तन्त्रं यथा स्यात्) संयुक्त या सम्मिलित रूप से, स्वयं प्रकृति रूप पूर्णमास इष्टि की सामान्य प्रक्रिया से, भा.श्रौ.सू. 3.13.9 (वैमृध दशकपाल-पुरोडाश)।

समानत्र क्रि.वि. (समान + त्रल्, सप्तम्यास्त्रल् पा. 5.3.10) उसी स्थान पर, भा.श्रौ.सू. 2.16.6; 8.18.21।

समानब्राह्मण वि. (समानं ब्राह्मणं यस्य) उसी ब्राह्मण की महत्ता से युक्त (शाब्दिक - जिसका ब्राह्मण समान हों), आप.श्रौ.सू. 12.13.6 ('अभिचरण' के सन्दर्भ में उपांशु एवं अन्तर्याम ग्रह = प्याले)।

समानयन न. (सम् + आ + नी + ल्युट्) (किसी चीज में) उड़ेलते हुए मिलाना, आप.श्रौ.सू. 8.2.16 (वैश्वदेव पर्व का प्रयाज); द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 90-488. तुल. समानयते जुह्वाम्।

समानीय (सम् + आ + नी + ल्यप्) (किसी चीज में) उड़ेल कर, का.श्रौ.सू. 3.5.5 औपभृतं समानीय (जुह्वां समानीय, स.वृ.); अनुयाज।

समान्त पु. (समः अन्तः यस्य) समरूप, एक तरह समाप्त होने वाला, मा.श्रौ.सू. 5.1.5.80।

समायम्य (सम् + आ + यम् + ल्यप्) (मेखला को) कसकर, मा.श्रौ.सू. 2.2.1.8।

समारोपण न. (सम + आ रुह् + णिच् + ल्युट्) अग्नि का काष्ठीय खाँचे में स्थानान्तरण या नियतीकरण (आरोपण); किन्तु श्रौ.प.नि. 98.494 (समिधाओं में)।

समारोप्य पु. (सम + आ + रुह् + णिच् + ल्यप्) अग्नि को दो लकड़ी के खाँचों (अरणी) में आरोपित कर, आश्व.श्रौ.सू. 6.10.8 (अग्नीनस्य समारोप्य दक्षिणतो बहिर्वेदि दहेयुः); द्रष्ट. — 'Zum Verständnis des Āsvalāyana Śrauta Sūtra' II J 37, 1994, पृ. 317–24।

समावती वि. (स्त्री.) समान या बराबर होती हुई (समावती यज्ञस्य आशीर्गच्छति इति); प्रयुक्त होती हुई 'व्याहृति', बौ.श्रौ.सू. 3.17 : 22 (अनुमन्त्रण में) पुरोनुवाक्या के प्रसङ्ग में।

समावपमान वि. (समं आवपमानः) एक साथ सभी प्रकार की हवियों (पुरोडाश, करम्भ, परीवाप एवं आमिक्षा) को काटता हुआ, बौ.श्रौ.सू. 7.12 (सोमसवनीय पुरोडाश)।

समाविकर्त वि. सीधी रेखा में न काटा हुआ (अभिषवण-फलक), अर्थात् अग्रभाग में उभार या वक्रता से युक्त, आप.श्रौ.सू. 11.13.1।

समासिच्य (सम् + आ + सिच् + ल्यप्) (वाजिन – संज्ञक जल का) छिड़काव (सिञ्चन) करके अथवा अर्पण करके, का.श्रौ.सू. 5.5.24 (वरुणप्रघास)।

समाहनन न. (सम् + आ + हन् + ल्युट्) फान अथवा पच्चर से पात्रों को पीटना, श्रौ.प.नि. 15.114।

समित्पाणि वि. (समित् पाणौ यस्य सः) जिसके हाथ में समिधा हो का.श्रौ.सू. 4.12.16–17 (यात्रा से लौटने के लिए 'उपस्थान')।

समिदन्त पु. (समिधः अन्तः) (पृषदाज्य लेने के लिए प्रयुक्त) समिधा का सिरा, का.श्रौ.सू. 5.4.24।

समिदाधान न. (समिधाम् आधानम्) (अवभृथ एवं हृदयशूलोपगोहन' से लौटने के बाद आहवनीय आदि पर) समधिाओं को रखना, का.श्रौ.सू. 6.10.9; द्रष्टव्य – 5.5.24–35 (पशु)।

समिदामन्त्रित वि. (समिधः सम्बन्धे आमन्त्रितः) (अनुयाज के लिए अलगायी गई) समिधा के सम्बन्ध में अनुज्ञात (सम्बोधित), का.श्रौ.सू. 2.2.19।

समिदाहुतिलोकतीर्थ न. (समिधि आहुतेः लोकः तस्य तीर्थम्) समिधा पर आहुति देने के लिए अभिप्रेत स्थान का मार्ग, मा.श्रौ.सू. 8.26.9 (यह पाँचवीं सड़क या मार्ग है; दक्षिणस्मिन् परिधिसन्धौ)।

समिद्ध पु. (सम + इन्ध + क्त) 'समिद्धो अग्न आहुत---' (ऋ.वे. 5.28.5) इस ऋचा का नाम, बौ.श्रौ.सू. 28.1; श्रौ.को. (अं.) 1.617 (यही ऋचा 'आप. होत्र' में 'समिद्धवत्' ऋचा कही गई है, श्रौ.को. (अं.) 1.814; समिद्धवती भी देखें (सप्त०) जब अग्नि ज्वालारूप में जलने लगती है, अग्नि के प्रज्वलित होने पर, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.21।

समिद्धवती (समिद्ध + मतुप् + ङीप्) सामिधेनी ऋचाओं में 'समिद्धो अग्न आहुत-----' (ऋ.वे. 5.28.5) इस ऋचा का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.18.1–13।

समिद्वती स्त्री. (समिध् + मतुप् + ङीप्) सामिधेनी ऋचाओं की-समिध्यमानो अध्वरे-------(ऋ.वे. 3.27.4) एवं 'समिद्धो अग्न'-----(ऋ.वे. 5.28.5) इन दो ऋचाओं का अवबोधक शब्द, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.18।

समिध् स्त्री. (सम् + इन्ध् + क्विप्) अग्नि-समिधा अथवा काठ के लट्ठे, 21 इध्मों का भाग, जिससे 'सामिधेनियों' के वाचन के समय अग्नि का पोषण किया जाता है, आप.श्रौ.सू. 2.12.4. तीन विशेष समधियें होती हैं : दो आघार के लिए एवं एक अनुयाज के लिए, 1.5.11; तीन छड़ियां जिनसे 'ब्रह्मौदन' का विलोडन किया जाता है, भी 'समिध्' कही जाती हैं। पत्ते से युक्त सूखी छड़ियां, एक बीता लम्बी, 5.5.10 (आधेय); शां.श्रौ.सू. 1.12.12; 2.12.8; मा.श्रौ.सू. 1.2.6.10।

समिधः कृत्वा समिधाओं को एकत्रित कर, भा.श्रौ.सू. 7.23.4 (काशिकर); (हृदयशूल के पश्चात् पशु-याग)।

समिध्यमान पु. (स्त्री. आ) (सम् + इन्ध् + यक् + शानच् प्र.पु.ए.व.) 'समिध्यमानो अध्वरे--------' (ऋ.वे. 3.27.4) इस सामधेनी ऋचा का नाम; बौ.श्रौ.सू. 28.1; श्रौ.को. (अं.) I.617. यही ऋचा समिध्यमानवती ऋचा के रूप में भी जानी जाती है, 1.814; द्रष्टव्य – श्रौ.प.नि. 13.92।

समिध्यमानवती स्त्री. (समिध्यमान + मतुप् + ङीप्) सामिधेनी ऋचाओं में 'समिध्यमानो अध्वरे--------' (ऋ.वे. 3.27.4) इस ऋचा का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.18.1-13।

समिन्धनी स्त्री. (समिध्यते आभिः, सम् + इन्ध् + ल्युट् + ङीप्) (अग्नि) प्रज्वलित करने के लिए तीन ऋचायें 'यत्त्वा कुद्धः परो वप मन्युना' (तै.सं. 1.5.3.1) आदि, मा.श्रौ.सू. 1.6.5.13।

समिष्टयजुस् न. इष्टि की (तीन) अन्तिम आहुतियों का नाम। अध्वर्यु वेदि के भीतर खड़ा होता है और 'देवा गातुविदो ------यजमानं स्वाहा' इस मन्त्र से ध्रुव (में) से घृत की प्रथम समिष्टयजुस् आहुति आहवनीय में डालता है; उसे वहीं खड़े होकर बर्हिस् (में) से कुछ दर्भपत्र लेने चाहिए एवं 'वाचि स्वाहा' मन्त्र से उन दर्भ-पत्रों के साथ-साथ द्वितीय आहुति देना चाहिए। 'वाते धाः स्वाहा' से वह तृतीय आहुति देता है, भा.श्रौ.सू. 3.7.13, 18; 4.19.20; तुल.का.श्रौ.सू. 3.6-8; 2.2; बौ.श्रौ.सू. 1.20-21; 3.19-20, 26, 'शुनासीरीय' के अन्त में केवल एक समिष्टयजुस् होता है, भा.श्रौ.सू. 8.23; श्रौ.को. (अं.) I.761. पशुयाग में प्रथम समिष्टयजुस् (आहुति) चम्मच से 'यज्ञ यज्ञं गच्छ----' से, द्वितीय चम्मच से 'एष ते यज्ञो यज्ञपते-----' इस मन्त्र के साथ एवं तृतीय करछुल से 'देवा गातु विदो----' इस मन्त्र के साथ दी जाती है, बौ.श्रौ.सू. 4.10-11. शालिकी के अनुसार सभी तीनो (आहुतियां) करछुल से दी जाती हैं [एक बार वह ध्रुवा को भरता है, वह यज्ञीय घास से एक मुट्ठी दर्भपत्र लेता है, उसके बाद सीधे-खड़ा होकर वेदि के भीतर ध्रुवा से 'देवा गातुविदो------' मन्त्र के अन्त तक सतत रूप से (लगातार) समिष्टयजुस् आहुति डालता है; 'स्वाहाकार' के पूर्व वह मुट्ठी भर दर्भपत्रों को अग्नि में फेंक देता है; वायु देवता के लिए एक आहुति, आप.श्रौ.सू. 3.13.2; बौ.श्रौ.सू. 1.21 (दर्श)। समिष्टयजुसों की संख्या नौ है, आप.श्रौ.सू. 13.18.4 (सोम); का.श्रौ.सू. 10.8.13; चयन में ग्यारह, आप.श्रौ.सू. 17.23.9; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) I.239।

समीक्ष्य (सम् + ईक्ष् + ल्यप्) संवाद करके (भाष्य-संवादं कृत्वा), बौ.श्रौ.सू. 8.13।

समीची वि. (सम् + अञ्च् + क्विन् + ङीप्) एक रेखा में होने वाला, मा.श्रौ.सू. 6.1.5.4 (गार्हपत्य के मध्य में स्थित चार इष्टकाओं की तरह उसी दिशा में उन्मुख 'शालामुखीय' - संज्ञिका चिनी गई वेदि की चार ईंटों के बारे में कथित), आप.श्रौ.सू. 16.14.6; (सम्भवतः समीची का अर्थ क्षैतिज एवं 'तिरश्ची' का लम्बवत् अथवा उर्ध्वाधर = तिर्यक् है)।

समुञ्झा वि. (मुञ्झेन सहिता) पत्रावरण से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.38।

समुदन्त वि. जिसका झाग बारी (किनारे) तक उठा हुआ हो, आप.श्रौ.सू. 6.6.2।

समुद्रवती स्त्री. (समुद्र + मतुप् + ङीप्) 'समुद्र' शब्द से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.85।

समुपहावम् क्रि.वि. (सम् + उप + ह्वे + घञ् + अम्) अन्य सम्बद्ध पुरोहितों से पूछकर अथवा उनकी सहमति के बारे में पूछकर, का.श्रौ.सू. 10.1.12।

समूढ वि. (सम् + ऊह् + क्त) सामान्य 'सामों' के निर्धारित क्रम में अनुप्रयोग से युक्त (शस्त्र), मा.श्रौ.सू. 7.2.22.29 (रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्कर एवं रैवत)।

समूहक पु. (सम् + ऊह् + ण्वुल्) झाड़ू (समूहकेन खानातकेन वा यजमानो भक्षम् इच्छेत्), आप.श्रौ.सू. 17.26.17।

समूह्यचित न. अग्निवेदि के चयन का एक प्रकार, काशिकर 59।

समृतयज्ञ पु. (समृताभ्याम् (अनुष्ठितः) यज्ञः) एक ही समय में दो प्रतिस्पर्धी यजमानों द्वारा अनुष्ठित सोम-याग, मा.श्रौ.सू. 5.1.1.3; 3.7.4।

समेयतम् क्रि.वि. (जहाँ यह) मिलता है, बौ.शु.सू. 1.25।

समैनि स्त्री. रूप में समान, छन्दस्, आदि, जै.ब्रा. III.208।

समोपवृक्ण वि. (द्वि.व.) (सम् + उप् + व्रश्च् + क्त) पीछे समान रूप से काटा गया, मा.श्रौ.सू. 2.2.3.35।

सम्पत्नीय पु. सम् पत्नी पत्न्या-----तै.ब्रा. 3.7.5.11 से प्रारम्भ होने वाली ऋचा से (पत्नी संयाज में) 'स्रुव' नाम के चम्मच से दी जाने वाली द्रवाहुति, जिस समय यजमान की पत्नी अध्वर्यु को छूती है, सत्या.श्रौ.सू. 2.5; आप.श्रौ.सू. 3.9.10 (दर्श के अन्त में)।

सम्पात पु. (सम् + पत् + घञ्) 1. सोमरस का अवशिष्ट भाग या तलछट, आप.श्रौ.सू. 12.11.5; 2. अन्त्येष्टि में प्रत्येक आहुति के बाद एक पात्र में उड़ेले जाने वाले घृत का

अवशिष्ट भाग, भा.पि.मे. 1.11; और वैधव्य-दोष से हीन महिलायें (अर्थात् सधवा महिलायें) अपने चेहरे को इससे धोती हैं, भा.पि. मे 1.11.3; द्रष्टव्य - काशिकर 35।

सम्पातावनयन न. (सम्मातानाम् अवनयनम्) अवशिष्ट सोम रस को आग्रयण-स्थाली में उड़ेलना, भा.श्रौ.सू. 13.13.7; तुल. 13.11.9।

सम्पावन न. (सम् + पू + णिच् + ल्युट्) पवित्रीकरण (की प्रक्रिया), मा.श्रौ.सू. 2.5.1.21।

सम्प्रकीर्य (सम् + प्र + कृ + ल्यप्) आहवनीय अग्नि में बिखेरकर (फेंककर) (प्रस्तरपरिधिं सम्प्रकीर्य), बौ.श्रौ.सू. 5.4 : 10।

संप्रक्षाप्य (सम् + प्र + क्षप् + णिच् + ल्यप्) बुझाकर, भा.श्रौ.सू. 6.6.11 (सुलगते या दहकते हुए 'अवक्षाण' अंगारों को)।

सम्प्रच्छन्न वि. (सम् + प्र + छद् + क्त) (वह व्यक्ति) जिसके शिर पर चँदोवा (वितान) लगाया गया हो, बौ.श्रौ.सू. 2.13.2 ('आधान' के लिए अम्बरीष अग्नि को एकत्रित करने के लिए जाते समय)।

संप्रयौति (सम् + प्र + यु + लट् प्र.पु.ए.व.) मिलाता है, मिश्रित करता है (सम्भारों को), भा.श्रौ.सू. 5.5.16 (आधान)।

सम्प्रोक्षणी स्त्री. (सम्प्रोक्ष्यतेऽनया, सम् + प्र + उक्ष् + ल्युट् + ङीप्) ऋचाओं के युग्म, अर्थात् 'अति धन्वानि---' (अ.वे. 7.42.1) एवं 'श्येनो नृचक्षा------' (अ.वे. 7.42.2) का नाम, जिस (ऋग्युग्म) से मृत व्यक्ति के लिए जल पवित्र किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.1084।

सम्प्लोप्राय एक साथ (प्रवर्ग्य के लिए मिट्टी) को कुचल करके (तोड़ करके), भा.श्रौ.सू. 11.2.22।

सम्भक्षयेत् (सम् + भक्ष् + वि.लि. प्र.पु.ए.व.) (अच्छावाक के साथ ग्रह = प्याले) का भक्षण करे (अर्थात् प्याले में स्थित सोम का पान करे या अपने हिस्से का उपभोग करे), भा.श्रौ.सू. 13.28.10।

सम्भारयजुस् न. (बहु.व.) (सम्भारसम्बद्धानि यजूंषि) यज्ञ-सामग्री से सम्बद्ध यजुर्मन्त्र, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.17; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) I.128; तै.आ. 3.8; 'अग्निर्यजुर्भिः सविता स्तोमैः', आहुतियों से सङ्गत अथवा समवेत, श्रौ.को. (अं.) II.56।

सम्भारशेष पु. (सम्भारस्य शेषः) सामग्री का शेष भाग (आधान के लिए विहित), मा.श्रौ.सू. 1.5.4.3।

सम्भिन्दन न. (सम् + भिद् = भिन्द् + ल्युट्) एक साथ या एक में मिलाना, आप.श्रौ.सू. 8.15.6 (पिण्डपितृयज्ञ)।

सम्प्रति क्रि.वि. अग्नीध्र-मण्डप के समानान्तर (होने वाली 'मार्जालीय धिष्ण्या'), का.श्रौ.सू. 8.6.20 (आग्नीध्राद्दक्षिणां सम्प्रति वेद्यन्ते दक्षिणामुखो मार्जालीयम्); अग्नीध्र-शाला के लिए, द्रष्टव्य 8.6.10; इस प्रकार से कि वस्तु न तो आहवनीय से अति दूर और न ही इसके अति निकट हो, का.श्रौ.सू. 2.3.3 (प्रणीता, सम्प्रति = अनन्तिके अनतिदूरे, स.वृ. वही); 6.3.8 (यूप)।

सम्प्रधाव्य (सम् + प्र + धाव् + ल्यप्) साफ करके अथवा धोकर, बौ.श्रौ.सू. 6.2।

सम्प्रयच्छति (सम् + प्र + यम् + लट् प्र.पु.ए.व. 'इषुगमियमाच्छः से यम को यच्छ्') सोम को सुरक्षा प्रदान करता है, आप.श्रौ.सू. 11.18.1 (हविराधान-मण्डप में); (रु. रक्षणार्थं परिदधाति)।

सम्प्रवेश पु. (सम् + प्र + विश् + घञ्) की सङ्गति में प्रवेश करना, का.श्रौ.सू. 7.5.4।

सम्प्रसृप्त वि. (सम् + प्र + सृप् + क्त) आगे बढ़ा हुआ, (वह व्यक्ति) जो आगे बढ़ चुका है, बौ.श्रौ.सू. 7.12 = प्रसृप्त।

सम्प्रैष पु. एक पुकार (आह्वान), एक दूसरे पुरोहित को यज्ञ से सम्बद्ध कुछ काम करने के लिए अध्वर्यु द्वारा दिया गया अनुदेश, आप.श्रौ.सू. 2.3.11 (दर्श)। इसका उच्चारण उच्च स्वर में किया जाता है, का.श्रौ.सू. 1.3.11 भाष्य; 'सम्प्रैष' का प्रैष से वैभिन्न्य बतलाया गया है।

सम्भरणी स्त्री. (सम् + भृ + ल्युट् + ङीप्) द्रव (ज्यादातर जल) भरने के लिए प्रयुक्त एक मिट्टी का पात्र; एक कलश, का.श्रौ.सू. 9.5.6 (सोम) वारण-काष्ठ से निर्मित एक पात्र, जिसमें आर्द्र एवं रसयुक्त कूटे हुए सोम की लतायें इनको आधावनीय में रखने के पूर्व संग्रहीत की जाती हैं, बौ.श्रौ.सू. 7.6।

सम्भार पु. (सम् + भृ + घञ्) यज्ञ के लिए आवश्यक सामग्री जिनमें पाँच या सात प्रकार के तत्त्व समाहित हैं। [सात पार्थिव सम्भार अर्थात् 'सिकता' (बालू), क्षार (ऊष, ऊषर की मिट्टी) आखुकरीष (चूहों द्वारा खोदी गई मिट्टी), वल्मीक-वपा (दीमक के बाबी की मिट्टी) सूद (न सूखने

वाले तालाब की मिट्टी), वराहविहित, शर्करा (छोटे-छोटे पाषाण या कंकड़), आठवां हिरण्य (सोना), यज्ञ त. प्र. 30; एवं पाँच वार्क्ष (वृक्षसम्बन्धी सम्भार), चि.स्वा.शा. ने सात वार्क्षों की गणना की है - अश्वत्थकाष्ठ, उदुम्बर, पलाशकाष्ठ, शमीकाष्ठ, विकङ्कत काष्ठ, अशनिहतवृक्षशकल (विद्युत्ताडित वृक्ष-शकल), पद्मपत्र (द्रष्टव्य-वही)], द्रष्टव्य, आप.श्रौ.सू. 5.1.4, 7; 5.2.5; यज्ञ में प्रयुक्त दूसरी वस्तुओं, जैसे कृष्णाजिन आदि के बारे में भी कथन, बौ.श्रौ.सू. 6.1; मा.श्रौ.सू. 1.5.2.10 आदि।

सम्भुज्य (सम् + भुज् + ल्यप्) विभाजित करके, बौ.शु. 1.68।

सम्भेद पु. (सम् + भिद् + घञ्) (किसी) पुरोडाश के कतरों के रूप में विभक्त अंशों (अवदान) का सम्पर्क-बिन्दु, भा.श्रौ.सू. 3.1.3; = पुरोडाश का मध्य भाग, आप.श्रौ.सू. 3.1.8; वह स्थल जहाँ दो 'आघार' भाग एक दूसरे को काटते हैं या पार करते हैं, मा.श्रौ.सू. 3.5.1.1।

सम्मर्शन् न. (सम् + मृश् + ल्युट्) वेदि के भीतर खींची गई तीनों रेखाओं को छूने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 5.3.15 (स्फ्याद्यासम्मर्शनात्करोति)।

सम्मार्ग पु. (सम् + मृज् शुद्धौ + घञ्) (अग्नि को) साफ करने का साधन (अर्थात् इध्मसन्नहनानि), आप.श्रौ.सू. 4.11.6; 'इध्म' को बाँधने के लिए प्रयुक्त रज्जु, आप.श्रौ.सू. 2.15.4, अंगीठी (धिष्ण्या) साफ करने के लिए प्रयुक्त घास का गुच्छ भी, वैता.श्रौ.सू. 1.9; अग्नि का सम्मार्जन, मा.श्रौ.सू. 1.3.1.3।

सम्मार्जन न. (सम् + मार्ज् + ल्युट्) 1. (करछुल = सुक् एवं स्रुव) को मांजने का कृत्य 'स्रुक्सुवं च सम्मार्ष्ट्यनुद्वारस्य वा सम्मार्जनम्', का.श्रौ.सू. 5.6.15; (तीन बार) अग्नियों का सम्मार्जन (साफ करना), मा.श्रौ.सू. 1.1.3, 42; 2. (बहु.व.) करछुल को मांजने के लिए प्रयुक्त दर्भ का अग्रभाग, का.श्रौ.सू. 2.6.43 (सम्मार्जनानि = सम्मार्जनसाधनानि वेदाग्राणि, स.वृ.वही); मा.श्रौ.सू. 1.2.5.8; वेद-संज्ञक दर्भगुच्छ, जिससे पात्रों को साफ किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 2.5.1।

सम्मातृ वि. (समानी माता यस्य) समान या एक ही माता से जन्म लेने वाला व्यक्ति, उसी माता से जन्मा व्यक्ति, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.8।

सम्मृष्ट वि. (सम् + मृज् + क्त) साफ किया हुआ, मांजा हुआ, भा.श्रौ.सू. 6.9.3; 'सम्मृष्ट उत्तरोऽग्निर्भवति असम्मृष्टो दक्षिणः' (वरुणप्रघास); स्पृष्ट, छुआ हुआ, कृतस्पर्श, का.श्रौ.सू. 3.2.15, श.ब्रा. 1.5.1.21।

सम्यञ्च् क्रि.वि. (सम् + अञ्च् + क्विन्) स्थापित क्रम में, अर्थात् घटिकावत्, दक्षिण-पूर्वी उपरव से प्रारम्भ होकर, का.श्रौ.सू. 8.5.5।

सम्राट् स्त्री. (सम् + राज् + क्विप्) अग्निवेदि की तीसरी तह की ईंटों का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.39-40।

सम्राडासन्दी स्त्री. (सम्राजः आसन्दी) सम्प्रभु राजा (यहाँ पर अभिप्राय 'महावीर' से है) की कुर्सी (आसन्दी); प्रवर्ग्य-पात्र, द्रष्टव्य - श्रौ.को. (सं.) II.76।

सम्राड्दुह स्त्री. (राज) गौ जिससे घर्म का दुग्ध दुहा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 6.34।

सयुज् स्त्री. अग्नि-वेदि की प्रथम तह में लगी ईंट का नाम, बौ.श्रौ.सू. 10.31-36।

सरित् स्त्री. गो-चिति में चिनी जाने वाली (आठ) ईंटों का नाम, आप.श्रौ.सू. 17.7.1।

सरीसृप पु. (सृप् + यङ् + अच्) सर्प, साँप, काशिकर 288 इण्डेक्स, (शाब्दिक - कुटिलगतिक)।

सर्पण न. (सृप् + ल्युट्) बहिष्पवमान शस्त्र के लिए जाते समय, अथवा सदो-मण्डप में प्रवेश करते समय कार्यसम्पादक ऋत्विजों का धीमे-धीमे सञ्चरण, का.श्रौ.सू. 10.1.1।

सर्पदेवजन पु. (बहु.व.) सर्प-देवगण, इग्लिंग अनु.श.ब्रा. 11.5.3.7; सर्पों के दिव्य मेज़बान (कैलन्ड); साँप लोग, देवलोक (कीथ, कौषी.ब्रा. 2.2) देवजनाः = 'La genr divine' (एक देवयोनि), रेनू ऋ.वे. 9.67.27 में; मनुष्य से भिन्न एक श्रेणी या वर्ग (गोंड, प्रातरनुवाक, पृ. 13)।

सर्पराज्ञी स्त्री. (सर्पराज द्वारा दृष्ट अथवा प्रत्यक्षीकृत) ऋचा, आप.श्रौ.सू. 5.27.8 (ये ऋचायें चार हैं 'भूमिर्भूम्ना', 'आयं गौः पृश्निरक्रमीत्', 'त्रिंशद्धाम् वीराजति' एवं 'अस्य प्रत्नाद् अपानती' और इनका विनियोग गार्हपत्य के पुनराधान अर्थात पुनःस्थापन में होता है); ऋ.वे. 10.189.1-3; भा.श्रौ.सू. 5.19.6; तै.सं. 1.5.3.1।

सर्पशिरस् न. (सर्पस्य शिरः) साँप का शिर, मा.श्रौ.सू. 6.1.8.3 (इसका नियतीकरण चिति के उत्तरी तरफ किया जाता है)।

सर्पिर्धान न. (सर्पिषः धानम्) घी का डब्बा या पात्र, आप.श्रौ.सू. 2.6.1।

सर्पिस् न. साधारण शुद्धीकृत या पिघलाया हुआ घृत, भा.श्रौ.सू. 1.7.7 (चावल पकाने के लिए प्रयुक्त), (दर्श)।

सर्वतोमुख क्रि.वि. (सर्वतःमुखं यथा स्यात्) सभी तरफ (हिरण्येष्टकाभिः सर्वतोमुखम् उपदधाति), आप.श्रौ.सू. 17.10.2।

सर्वतोमुखेष्टका स्त्री. (सर्वतः मुखं यस्याः, सा इष्टका) अग्निवेदि की प्रथम तह में लगी हुई ईंटों (149 से 153), बौ.श्रौ.सू. 10.31-36 (सभी तरफ मुख वाली)।

सर्वपृष्ठ वि. (सर्वाणि पृष्ठानि = सामानि यस्मिन् सः) सभी प्रकार के सामों (जिनका नाम है : रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्कर एवं रैवत) के प्रयोग से युक्त (अर्थात् जिसमें सभी पृष्ठ-साम प्रयुक्त हुए हों ऐसा) सोमयाग, का.श्रौ.सू. 13.2.14।

सर्वपृष्ठविश्वजित् पु. (सर्वपृष्ठेन विशेषीकृतः विश्वजित्) सर्वपृष्ठ द्वारा विशेषीकृत 'विश्वजित्' नाम वाला सोम-याग, श्रौ.को. (अं.) I.38, 258।

सर्वपृष्ठा स्त्री. सभी (छः) पृष्ठ-साम से युक्त एक इष्टि, मा.श्रौ.सू. 5.2.3.1; एक ऐच्छिक इष्टि का नाम, यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियों की शक्ति अथवा पौरुष की कामना वाला हो। इस कृत्य के देवता हैं : इन्द्र राथन्तर, इन्द्र बार्हत, इन्द्र वैरूप, इन्द्र वैराज, इन्द्र शाक्कर एवं इन्द्र रैवत। साधारणतया द्वादश कपालों पर संस्कृत एक पुरोडाश सभी देवताओं के लिए होता है। दक्षिणा के रूप में एक अश्व, वृषभ, मेष एवं अज प्रदान किये जाते हैं, बौ.श्रौ.सू. 13.29-30; द्रष्टव्य - सर्वपृष्ठेष्टि, श्रौ.को. (सं.) I.445।

सर्वप्रायश्चित्त न. (सर्वेषां = दोषाणां प्रायश्चित्तम्) 1. सभी त्रुटियों या भूलों का प्रायश्चित्त। यह (सर्वप्रायश्चित्त) होता द्वारा आहवनीय के उत्तरपूर्व में खड़े रहते समय स्रुव से घृत की सात आहुतियाँ प्रदान करते हुए किया जाता है, आश्व.श्रौ.सू. 1.11.13; सत्या.श्रौ.सू. 11.6, पृ. 232 'अयास्यग्ने-----' 'अतो देवा-----धामभिः स्वाहा' (ऋ.वे. 1.22.16), 'इदं विष्णुः-------' (ऋ.वे. 1.22.17) एवं अन्त में स्वाहा-सहित व्याहृतियों वाला; 2. अग्निहोत्र में यदि दो-तीन दिन का भङ्ग (अननुष्ठान) आ पड़े तो (अर्थात् दो-तीन दिन अग्निहोत्र न हो) तो (उसके लिए) अनुष्ठित एक प्रायश्चित्त का नाम, वैखा.श्रौ.सू. 20.1.20.14-15. इसको (इस आहुति को) ब्रह्म प्रतिष्ठा मनसो----' से प्रारम्भ होने वाले अनुवाक की ऋचा से इष्टि में पत्नी-संयाज के बाद अर्पित किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) 1.410, 860, 1145 (पितृमेध); सर्वप्रायश्चित्तीय (आहुति) भी द्रष्टव्य, श्रौ.को. (अं.) 1.800।

सर्वभक्ष वि. (सर्वं भक्ष्यते यस्य) जिसके अवशिष्ट भाग का पूरा-पूरा अथवा सम्पूर्ण रूप से भक्षण कर लिया जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.28.10।

सर्वयन्त्रिन् वि. (सर्व + यन्त्र् + णिनि) सब कुछ नियन्त्रित करने वाला, अर्थात् अग्रगामी (अश्व), का.श्रौ.सू. 14.3.9 (वाजपेय)।

सर्वरूप वि. (सर्वं रूपं यस्य) चितकबरा, सर्वरूपसम्पन्न, सब रूपों वाला, मा.श्रौ.सू. 9.2.1.3 (अश्वमेध के लिए अर्पणीय ऋषभ)।

सर्ववेदसदक्षिण वि. (सर्वं वेदसं दक्षिणा यस्मिन् यस्य वा) जिसमें सम्पूर्ण सम्पत्ति दक्षिणा के रूप में दे दी जाती है, मा.श्रौ.सू. 3.8.8 (विश्वजित् याग)।

सर्वसुरभि वि. (सर्वे सुरभयः सन्ति यस्मिन्) (वह भोजन) जिसमें सब प्रकार की सुगन्धियां हों, का.श्रौ.सू. 7.4.23 (दीक्षा)।

सर्वस्तोम पु. सभी स्तोमों का समूह (नौ, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश = इक्कीस, सप्तविंश = सत्ताईस एवं त्रयस्त्रिंश = तैंतीस ऋचाओं से युक्त), जै.ब्रा. I.248।

सर्वस्वार न. 1. चिता में विभिन्न स्थलों पर युगपत् आग लगाने के समय पढ़े जाने वाले एक साम का नाम, गौत.पि.मे 2.7।

सर्वहुत वि. (सर्वं हुतं यस्य) (वह एक कपाल पुरोडाश) जिसकी सम्पूर्णरूप से आहुति दे दी जाती है, का.श्रौ.सू. 1.9.15 (एककपालः)।

सर्वाधान न. सभी पवित्र अग्नियों के संरक्षण की प्रविधि। जब कोई मनुष्य तीनों पवित्र अग्नियों का संस्कार करता है (अथवा व्रतग्रहण करता है), तो इसे ऐसा अपने स्मार्त अग्नि से करना चाहिए और स्मार्तअग्नि का दूसरा अर्धभाग रख लेना चाहिए। यदि स्मार्त-अग्नि को अलग नहीं रखता है, तो यह 'सर्वाधान' होता है, आप.श्रौ.सू. 5.4.12-16; हि.आ.ध. II.ii.919।

सर्वानुगम पु. (सर्वासाम् अनुगमः) (आहवनीयादि) सभी (अग्नियों) का निस्सरण अथवा विलोपन; मा.श्रौ.सू. 3.3.3।

सर्वौषधिहोम पु. (सर्वासाम् ओषधीनां होमः) सभी प्रकार की ओषधियों का होम, श्रौ.प.नि. 56.386।

सर्षव पु. एक सरसों का बीज (½ सर्षप = तीन साल की बछिया के तीन बाल), मा.श्रौ.सू. 10.1.4.3।

सलक्ष्म वि. (समानं लक्ष्म लक्षणं रूपं वा यस्य) उसी रूप का अथवा समान लक्षण से युक्त, जै.ब्रा. II. 234।

सलोकता स्त्री. (समानस्य लोकस्य भावः, सलोक + तल् + टाप्, 'तलन्तं स्त्रियाम्') समान लोक में होने की स्थिति, जै.ब्रा. I.26।

सव पु. (षुञ् + अप्) वह कृत्य जिसमें सोम का सवन सम्पन्न होता है, आप.श्रौ.सू. 17.19.11. किन्तु सामान्यतः एकदिवसीय यज्ञों का वर्ग जिसमें एक अभिषेक सम्पन्न होता है एवं इसका अनुष्ठान किसी कामनाविशेष की पूर्ति के लिए किया जाता है, उदाहरणार्थ-बृहस्पतिसव, सोमसव [वास्तव में एक पशु-यज्ञ], आप.श्रौ.सू. 22.25-28. तै.ब्रा. 2.7. में सवों ('सव' नाम वाले) कृत्यों का उल्लेख किया गया है; कौशि.सू. 60-68।

सवन न. (सु + ल्युट्) 'सुत्या दिन' में सोम-लताओं के सवन (रस निकालने) का कृत्य। वास्तव में 'सुत्या दिन' के समय-विभागों को अभिहित करता है, जिसमें सवन के अतिरिक्त विभिन्न इतर कृत्यों का भी अनुष्ठान होता है, आप.श्रौ.सू. 12.8.2; प्रातः, माध्यन्दिन एवं तृतीय अथवा सायं-सवन। अन्तिम दो सवन प्रातः सवन के प्रतिदर्श का अनुकरण करते हैं, आप.श्रौ.सू. 13.1.2।

सवनकरणि स्त्री. द्रवाहुति, मा.श्रौ.सू. 2.4.3.29; 2.4.6.26; 2.5.4.17. यह आहुति 'इदं तृतीयं सवनम्----- अभि वस्यो नयन्तु' इस ऋचा के साथ अनुष्ठान अथवा सवन के कृत्य के प्रसङ्ग में दी जाती है, श्रौ.को. (अं.) I.796 (सोम)।

सवनमुख न. (सवनस्य मुखं=प्रारम्भः) सोम सवन-सत्र का आरम्भ। सवनमुख से सोम के उपभोग (पान) से सम्बद्ध तीन भक्ष-मन्त्र हैं, बौ.श्रौ.सू. 25.22; - **भक्ष** पु. सोमसवन के सत्र के प्रारम्भ में सोम का उपभोग (भक्षण या पान), वही।

सवनीय वि. सोम-सवन के सत्र से सम्बद्ध (आहुतियां); एक आज्याहुति, आप.श्रौ.सू. 12.3.3; एक पुरोडाश, 12.4.4; एक पशु, 18.1.2; सामान्य रूप से, 13.10.7।

सवनीयकलश पु. (सवनीयः कलशः) सवन-कलश, मा.श्रौ.सू. 2.3.1.19; 11; 19.24, 26।

सवनेष्टि स्त्री. चातुर्मास्यों के अन्त में औपमन्यव के अनुसार अनुष्ठित एक इष्टि का नाम। इसकी प्रधान आहुतियां हैं : अग्नि के लिए एक पुरोडाश (8), इन्द्र-अग्नि के लिए पुरोडाश (11) एवं विश्वदेवों के लिए एक पुरोडाश (12)। 'चातुर्मास्य - सुबोधिनी' के अनुसार यह इष्टि 'द्वादशाह' के सम्बन्ध में विहित है, श्रौ.को. (अं.) 1.760।

सवल्कल वि. (वल्कनेन सहित) छाल से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 1.5.6।

सविशेष पु. एक वर्ग के पक्ष के बराबर विकर्ण रेखा की लम्बाई का अनुपात, बौ.शु.सू. 1.62।

सव्य न. हाथ की हथेली का वाम पक्ष या भाग (मानव प्राणियों के लिए जलप्रदान के लिए प्रयुक्त), का.श्रौ.सू. 4.1.9; द्रष्टव्य - श.ब्रा. 2.4.2.16; बायाँ हाथ, का.श्रौ.सू. 5.9.14; — पु. क्रि.वि. बाईं ओर, द्रा.श्रौ.सू. 3.1.1।

सव्याशून्ये क्रि.वि. (सप्त.) वाम हस्त से (कृष्ण मृग के चर्म के) स्पृष्ट (छुए हुए) होने पर (अर्थात् उस समय जब वाम हस्त से कृष्णजिन का स्पर्श हुआ रहे), अर्थात् अशून्य (खाली न होने पर), का.श्रौ.सू. 2.4.4।

सव्योत्तरिन् वि. (सव्यः उत्तरम् अस्ति यस्य) जिसकी बाईं (हथेली) दाहिने के ऊपर हो बौ.श्रौ.सू. 6.2.1।

सव्योत्तान वि. (सव्यः उत्तानः यस्य) जिसकी बाईं हथेली का मुह ऊपर की ओर (अवधी-उतान) हो, आ.श्रौ.सू. 11.4.2 (सायं निह्नवः; सायंकालीन 'उपसद्' में अनुष्ठित 'निह्नव' - संज्ञक श्रद्धाञ्जलि में)।

सव्योपक्रम वि. (सव्येन उपक्रमः यस्य) (जिसका युग्मन) बाईं तरफ से प्रारम्भ होता है, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.3।

सव्योरु पु. (सव्यः ऊरुः) वाम जघन (बायां जङ्घा), का.श्रौ.सू. 5.10.13 (-----आघ्नानाः); त्र्यम्बकेष्टि।

सशूका वि. (शूकेन सहिता) जिस दाने की दाढ़ी (शूक) अभी लगा हुआ ही हो, अनाज के शूक (दाढ़ी) से सम्पृक्त या समवेत, भा.श्रौ.सू. 1.20.9।

सहकारिप्रत्यय वि. (सहकारी प्रत्ययः यस्य) सहायकों के सामञ्जस्य से कार्य करने वाले, बौ.श्रौ.सू. 2.2:16।

सहविहार वि. (विहारेण सहितः) अग्निक्षेत्र-सहित, अग्निक्षेत्र के साथ, मा.श्रौ.सू. 6.1.4.32 (सहविहारो यायावरः) इधर-उधर घूमने वाला, मा.श्रौ.सू. 1.6.3.4।

सहस्रवती स्त्री. (सहस्र + मतुप् + ङीप्) 'सहस्र' (शब्द) से युक्त एक ऋचा, 'नू नो रास्व सहस्रवत्', आदि, का.श्रौ.सू. 5.13.3।

सहस्रवन्त् वि. 'संयाजों' का एक पारिभाषिक नाम, स्विष्टकृत् के लिए 'उत नो ब्रह्मन्-------' पुरोनुवाक्या के रूप में एवं 'नू नो रास्व-----' याज्या के रूप में (मै.सं. 4.11.2), मा.श्रौ.सू. 5.1.5.76।

सहारणिक वि. अग्नि की मथानी (अरणि) के साथ या सहित (अग्नि), मा.श्रौ.सू. 8.7.4 (उत्तरान् सहारणिकान्----- अनुप्रहृत्य)।

सहोढ वि. (सह ऊढः) (वह सन्तान) जिसे किसी स्त्री ने अपने विवाह के पूर्व गर्भ में धारण किया था (अविवाहित माता का पुत्र), बौ.श्रौ.सू. 2.3; (वह सन्तान) जो अपनी माँ के विवाह के समय उसके गर्भ में रहता है (विवाह के समय गर्भिणी स्त्री का पुत्र), श्रौ.को. (अं.) 1.8; वैदिक कर्मकाण्ड में पुरोहित का कार्य करने वाला व्यक्ति ऐसा नहीं होना चाहिए (अर्थात् 'सहोढ' पुरोहित नहीं हो सकता)।

सहोपवेषम् क्रि.वि. चलाने अथवा कोंचने वाली छड़ी (उपवेष) के साथ-साथ, का.श्रौ.सू. 4.2.43 (परिधिभिः सहोपवेषं जुहोति)।

सांवर्त न एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.7 सा.वे. 1.193 पर।

सांवाशन न. (संवाशनमेव सांवांशनम्) गायों का एक साथ रंभाना (पृष्ठ्य षडह के छठे दिन के लिए 'स्तोत्र' इसी से नियत या निर्दिष्ट किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.33।

सांस्पर्शिक वि. (संस्पर्श + ठञ्) आनुषङ्गिक या गौण कार्यों से सम्बद्ध (पात्र), मा.श्रौ.सू. 8.18.10।

साकमश्व न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.8.4 सा.वे. 1.7 पर; पञ्च.ब्रा. 14.9.17 सा.वे. 1.193 पर।

साकमेध न. चातुर्मास्य यज्ञ का तृतीय पर्व, का.श्रौ.सू. 5.6.1 सामान्य रूप से यह दो दिन में सम्पाद्य है : प्रथम दिन - अनीकवती, सान्तपनी, ग्रहमेधीय एवं दूसरे दिन-दर्वीहोम, साकमेध, पित्र्येष्टि एवं त्र्यम्बकेष्टि।

साकंप्रस्थायिन् वि. (साकं प्रस्थातुं शीलमस्य) (वह व्यक्ति) जो पास-पास, अर्थात् एक साथ दो अमावस्या दिनों के अनुष्ठान के साथ प्रस्थान करता है, आप.श्रौ.सू. 3.16.11।

साकंप्रस्थायीय पु. दर्श का एक आनुषङ्गिक कृत्य, जिसमें अध्वर्यु अपने साथ कई दूध की बाल्टियों (दोह अथवा कुम्भी-भाष्य) लेकर पशुप्राप्ति की कामना से आहुति प्रदान करने के लिए प्रस्थान करता है, आप.श्रौ.सू. 3.16.10; तुल. 17.1; - **इष्टि**, स्त्री. एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.324। (०यीयेष्टि)।

सांकाशन वि. द्वार या अवकाश से युक्त, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.10; 2.3.6.13; - द्वार, अवकाशों से युक्त द्वार।

सांकाशिन न. 1. सभी ओर (सब तरफ) से दृश्यता, आप.श्रौ.सू. 11.7.10 (सर्वेतो दर्शनं सांकाशिनम् तदेषाम्); [शालामुखीयहोत्रीयौत्तरवेदिकानां समानं भवति, यथा देशस्थः सर्वान् अपि पश्येत् तथाऽऽर्जवेन एषां द्वारावकाशः कार्य इत्यर्थः]; 2. एक मार्ग, जिसके माध्यम से शालामुखीय सीधे दृश्य (देखने योग्य) होता है या दिखाई देता है (उत्तरवेदि से), का.श्रौ.सू. 16.7.4 (सुत्यास्वाहवनीये सांकाशिनेन हृत्वा); बौ.श्रौ.सू. 7.8; चि.भा.से : पृष्ठ्य रेखा के साथ-साथ (ओर-छोर तक) सम्पूर्ण दृश्यता, प्राचीनवंश, सदस् एवं हविर्धान मण्डप के द्वारों के इस प्रकार के स्थापन से नियत कि कोई व्यक्ति इन तीनों मण्डपों में किसी एक में बैठकर पूर्वी एवं पश्चिम दिशाओं में झांक सकता है; वि. जहाँ से 'विहार' का सम्पूर्ण स्थल दृश्य होता है अर्थात् दिखाई पड़ता है, बौ.श्रौ.सू. 7.8 (संकाशिन-पथा पृष्ठ्याम् स्तृणाति), बौ.श्रौ.सू. 7.8।

सांकृतेः सामन् न. आधान (स्थापना) के लिए अग्नि के मथे जाते समय गाये जाने वाले एक साम का नाम, आप.श्रौ.सू. 5.10.11।

साङ्गावृत्ति स्त्री. (अङ्गेन सह आवृत्तिः) गौण (अङ्ग) कृत्यों के साथ मुख्य कृत्य की आवृत्ति, का.श्रौ.सू. 1.7.27 (प्रधान-द्रव्यव्यापत्तौ साङ्गावृत्तिस्तदादेशात्)।

सांग्रहणी स्त्री. काम्येष्टियों में अन्यतम, जिससे यजमान एक गाँव प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त करता है, आप.श्रौ.सू. 19.23.6; 'सांग्रहणीं निर्वपेद् ग्रामकामः'; इसका अनुष्ठान

अश्वमेध के पूर्व चैत्रमास की पूर्णिमा के दिन किया जाता है, काशिकर 52।

साण्ड वि. प्रजननात्मक सामर्थ्य से युक्त, का.श्रौ.सू. 15.1.15; सवीर्य, मा.श्रौ.सू. 6.1.3.1।

सादन पु. (साद्यतेऽनेन, सद् + णिच् + ल्युट्) सोम के प्याले को नीचे रखने के लिए नियत मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 13.14.11; करछुलों को रखना, बौ.श्रौ.सू. 14.4.8।

सादनप्रवाद पु. इष्टकाओं के आधान (सादन) के लिए विहित मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 16.31.1 (चयन)।

साद्यस्क्र पु. = साद्यस्क्री, एक सोम-याग जिसमें सोम का आनयन उसी सवन के दिन होता है।

साधीयस् वि. (बाढ + इयसुन्, 'अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ', पा. 5.3.63इति 'साध') अधिक अच्छा (साधीयो अङ्गुलीर्न्यञ्चति), मा.श्रौ.सू. 2.2.1.8।

साध्य पु. अर्धदेव, जै.ब्रा. I.33. तु. 'यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः' (ऋ.वे. 10.90.16)।

साध्र न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.5.23 सा.वे.1.298।

सान्तपनेष्टि स्त्री. चातुर्मास्य के साकमेध पर्व के अन्तर्गत एक इष्टि का नाम, श्रौ.प.नि. 99.497।

सान्नाय्य पु. (सम् + नी + ण्यत्, पा. 3.1.129) पूर्ववर्तिनी रात्रि के दूध के खट्टे दूध अथवा दही के साथ ताजे उबले हुए दूध का मिश्रण, इस मिश्रण की आहुति इन्द्र अथवा महेन्द्र को उस व्यक्ति द्वारा अर्पित की जाती है, जिसने सोम का अनुष्ठान कर लिया है (अथवा नहीं किया है), आप.श्रौ.सू. 1.11.4 (दर्श)। इसका 'आज्य' से प्रोक्षण होता है, भा.श्रौ.सू. 2.10.6; – **पात्र** न. सान्नाय्य के लिए प्रयुक्त पात्र, भाण्ड, आप.श्रौ.सू. 1.11.4; द्रष्ट. श्रौ.प.नि. 12.78; – **विकार** पु. सान्नाय्य की आहुति का संशोधन, भा.परि. 162।

सान्नाय्यकुम्भी स्त्री. (सान्नाय्यस्य कुम्भी) दो पात्र, जिनमें दूध जमाया जाता है (दधिरूप में परिणत किया जाता है), आप.श्रौ.सू. 1.6.12, भा.श्रौ.सू. 1.6.15।

सान्नाय्यतपनी स्त्री. (सान्नाय्यः तप्यतेऽस्याम्, सान्नाय्य + तप् + ल्युट् + ङीप्) जमाने (दधिरूप में परिणत करने के लिए) अभिप्रेत दूध को गरम करने के लिए प्रयुक्त पात्र, बौ.श्रौ.सू. 1.3.7।

सान्नाय्यधानी स्त्री. (सान्नाय्यो धीयतेऽनया अस्यां वा, सान्नाय्य + धा + ल्युट् + ङीप्) वह पात्र जिसमें जमाया हुआ दूध रखा जाता है, मा.श्रौ.सू. 8.19.15।

सामन् न. ऋचा पर निबद्ध एक राग, और इसे मन्त्र के रूप में मान्यता दी गई है, का.श्रौ.सू. 1.3.1, ऋ.वे. 10.90.9; इसको 'गीति' शब्द से अभिहित किया गया है 'गीतिषु सामाख्या', मी.सू. 2.1.36. साम निश्चित मन्त्रों से सम्पृक्त होते हैं, जो (ऋचायें) इसीलिए 'स्वकीय' कही जाती हैं। किन्तु साम अपनी ऋचाओं से भिन्न ऋचाओं पर भी हो सकता है। ऋ.वे. 7.32.22,23 रथन्तर साम से सम्बन्ध रखती हैं। किन्तु यह (साम) 'कवती' ऋचाओं (ऋ.वे. 4.31.1-3) पर भी हो सकता है, पञ्च.ब्रा. 15.10.1; साम का गायन ऋचा में कुछ परिवर्तन करके किया जाता है, जैसे-स्वरों का तोड़ना-मरोड़ना (दीर्घकाल तक उच्चारण, अक्षरों की पुनरावृत्ति, गान के अनुकूल पदों को जोड़ना आदि प्रमुख हैं (सामविकार-विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम, स्तोभ)। इसका उच्चारण उद्गाताओं (उद्गातृवर्ग) द्वारा खण्डों में किया जाता है – प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतीहार, उपद्रव एवं निधन (विभक्तियों के नाम से प्रसिद्ध)। आधेय में इसका गायन ऐच्छिक रूप से ब्रह्मा द्वारा किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 5.10.6-7; द्रष्टव्य – गोंड जे, The Ritual sutra, शब्दसूची पृ. 663

सामन्त पु. (बहु.व.) चक्रीय क्रम में अनुष्ठेय कृत्य, का.श्रौ.सू. 1.7.25 (आवृत्ति-सामन्तेषु प्रदक्षिणम्)।

सामप्रगाथ पु. पृष्ठ-स्तोत्र में मूल ऋचाओं की द्विपदी, काशिकर 96।

सामप्रतिषेध पु. (साम्नः प्रतिषेधः) साम-गान का विरोध=निषेध (वरुणप्रघास के अवभृथ में निषेध), का.श्रौ.सू. 4.3.5।

सामराज न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.35 सा.वे. 1.555 पर।

सामि क्रि.वि. अपरिपक्व रूप से, मा.श्रौ.सू. 3.8.8।

सामितूष्णीक वि. (तृती.) (आहुति + दान अथवा प्रस्थान के समय के पूर्व) आधे मार्ग चुपचाप (मौनपूर्वक) बिना किसे मन्त्र के (मन्त्रों से विहीन), मा.श्रौ.सू. 7.2.8.14।

समिधेनी स्त्री. एक प्रज्वालन – ऋचा (काम्येष्टि में 'कयाशुभीया' सूक्त से उद्धृत 11 ऋचायें सामिधेनी कहलाती हैं),

मा.श्रौ.सू. 5.1.6.44; 'कृणुष्व पाज' इति एकादश सामिधेनीः, 5.1.7.40; दर्श में सामिधेनी ऋचाओं का वाचन 'होता' द्वारा 'एकश्रुति' (ता एकश्रुतिं सन्ततमनुब्रुयात्) में अग्नि के प्रज्वलित किये जाते समय किया जाता है; इसमें ग्यारह ऋचायें समाहित है (ऋ.वे. 3.27.1; 6.16.10-12; 3.27. 13-15; 1.21.1; 3.27.4; 3.27.4; 5.20.5-6); आश्व.श्रौ.सू. 1.2.7. सामिधेनी ऋचायें संख्या में ग्यारह है किन्तु इनकी संख्या 15 तक बढ़ाई जाती है, अतः प्रथम एवं अन्तिम ऋचा की तीन बार आवृत्ति की जाती है। अन्तिम ऋचा 'परिधानीया' कहलाती है। जब प्रत्येक ऋचा के 'ओम्' का उच्चारण किया जाता है, तब ईंधन की लकड़ी आग पर रख दी जाती है, आप.श्रौ.सू. 2.12.4; 'आधेय' के लिए 17 सामिधेनी ऋचायें हैं, 5.22.2; पशु के 7.3.12; वैश्वदेव में, ला.श्रौ.सू. 8.14.8 चार्तुमास्य में; चयन के लिए प्रथम पशुयाग में इनकी संख्या 24 है (अर्थात् कुल 24 सामिधेनी ऋचायें हैं), मा.श्रौ.सू. 6.1.3.3; प्रथम एवं अन्तिम तीन ऋचायें अध्यर्ध के तरीके से पढ़ी जाती हैं। इसका समापन चार मन्त्रों के 'ओम्' से किया जाता है, श्रौ.को. (सं.) I.200। —**दारु** न. सामिधेनी ऋचाओं के लिए अग्नि पर रखने के लिए अभिप्रेत लकड़ी, भा.श्रौ.सू. 1.5.4।

सामिधेनी

सामधेनीविवृद्धि स्त्री. (सामधेन्याम् विवृद्धि) सामधेनियों (की संख्या में) वृद्धि (15 से 17, 21 आदि), आप.श्रौ.सू. 2.12.5।

साम्युत्थान वि. (वह सत्र) जिसको बीच में रोक दिया जाता है अथवा बीच में ही समाप्त कर दिया जाता है, अर्थात् इसकी नियमित-पूर्ति से पूर्व, का.श्रौ.सू. 1.6.24।

साम्येक्ष न. आँख की कोर या कनखी (बगल) से देखने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 10.20.16 (रु. कटाक्षेण; उसे सोमलता को इस प्रकार नहीं देखना चाहिए)।

सायंदोह पु. सान्नाय्य बनाने के लिए सायं के समय (तीन या छः) गायों के दोहन का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 1.11.3 (दर्श)।

सायमाश पु. सायंकालीन भोजन, आप.श्रौ.सू. 4.3.7।

सायुज्य न. नज़दीकी, ऐक्य, जै.ब्रा. I.27।

सारतण्डुलम् क्रि.वि. इस तरह (पकाता है) कि चावल के दाने (अभी) थोड़ा कच्चे ही रहें, का.श्रौ.सू. 4.1.6।

सारस्वत पु. नव-स्थापित आहवनीय में दी जाने वाली दो आहुतियों का नाम। यह अन्वारम्भ-यज्ञ के अनुष्ठान के पूर्व प्रथम पौर्णमास एवं दर्श याग का गौण (अंग) कृत्य है। प्रथम आहुति 'अग्निसोमौ प्रथमौ--------' के साथ एवं द्वितीय आहुति 'यत् ते देवा------' के साथ दी जाती है। प्रथम आहुति की लिए घृत 'पूर्णा पश्चात्----' एवं दूसरे के लिए 'निवेशनी सङ्गमनी वसूनाम्------' से लिया जाता है, श्रौ.को. (सं.) II. 549; ये आहुतियाँ ज्वलित चिता के दक्षिण की ओर अर्पित करने के लिए विहित हैं; आहुति-अर्पण के मन्त्र हैं 'सरस्वतीं देवयन्तो------' सरस्वती या सरथं ययाथ------' सरस्वती व्रतेषु ते----' एवं 'इदं ते हव्यम्-----', श्रौ.को. (अं.) 1.1085।

सार्परा‌ज्ञी स्त्री. (चार) ऋचाओं के एक समूह का पारिभाषिक नाम। ये चार ऋचायें हैं : 'भूमिर्भूम्ना----', 'आयं गौः ------' एवं 'अस्य प्रन्नादपानति', श्रौ.को. (अं.) I.i.43; भा.श्रौ.सू. 5.19.6 (अग्न्याधान) = सर्पराज्ञी, तै.सं. I.5.3.1।

सार्वत्रैष्टुभ पु. त्रिष्टुभ् छन्द द्वारा सभी दृष्टि से विशेषीकृत एक पशुयाग का नाम। इस प्रकार इसमें ग्यारह प्रयाज, ग्यारह अनुयाज, ग्यारह कपालों पर संस्कृत पशुपुरोडाश, ग्यारह अङ्गों के अंश एवं ग्यारह आहुतियां होती हैं, श्रौ.को. (अं.)

I.850. 'त्रिष्टुभ्' छन्द के प्रत्येक पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं।

सार्वचितिक्य वि. (सर्वासु चितिषु अनुप्रयुक्तः) (अग्निवेदि की पाँचों तहों) में अनुप्रयुक्त, मा.श्रौ.सू. 6.2.1.21।

सार्वसूत्र वि. (सर्वाणि सूत्राणि सन्ति अस्य, सर्वसूत्र + अण्) विभिन्न प्रकार के धागों वाला, भा.श्रौ.सू. 5.12.15 (उपधान= तकिया, आधान); 14.5.6 (सोमदक्षिणा)।

सार्ववर्णिक वि. (सर्वेषां वर्णानाम् इदम्, सर्ववर्ण + ठञ्, 'अनुशतिकादीनां च--------' से उभयपदवृद्धि) (हिन्दुओं के) सभी वर्णों के लिए विहित, भा.श्रौ.सू. 5.2.5 (शिशिर, आधान)।

सार्वसेनि स्त्री. दीक्षणीय यज्ञ की विधि से अनुष्ठेय एक ऐच्छिक यज्ञ, आप.श्रौ.सू. 3.17.4-11. शां.श्रौ.सू. 3.10.1-6 के अनुसार 'सार्वसेनि', के लिए पौर्णमास एवं दर्श की आहुतियाँ एक यज्ञ में दी जाती हैं। पौर्णमास की आहुतियां पहले उसके बाद दर्श की। इनमें 'अर्चन्तस्त्वा-----' (ऋ.वे. 5.13.1) यह अग्नि के पुरोडाश के लिए 'पुरोनुवाक्या' के रूप में प्रयुक्त होती है एवं 'अस्माकम् अग्ने अध्वरम्--- (ऋ.वे. 5.4.8) याज्या के रूप में। दर्श इष्टि का अनुष्ठान दर्श के दिन नहीं करना चाहिए किन्तु पिण्डपितृ का अनुष्ठान करना चाहिए।

सार्वसेनियज्ञ पु. (सर्वसेनेन उपकल्पितः यज्ञः) इष्टि का सर्वसेन द्वारा उपकल्पित एक संशोधित रूप (विकृति), आप.श्रौ.सू. 3.7.12; द्रष्टव्य - सार्वसेनी।

सालावृक पु. जंगली कुत्ता, काशिकर इण्डेक्स, 288।

सावका वि. (अवकया सहिता) 'अवका' नामक वनस्पति से युक्त (जल) (पृष्ठ्य षडह की पाँचवीं के लिए स्तोत्र का निर्धारण इसी से किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 7.2.2.22 (संह्रादयमानाषु स्तुवते), जल के प्रति ध्वनि करने पर वह गायन करता है।

सावित्र पु. (सवितुः इदम्, सवितृ + अण्) 1. सवितृ को सम्बोधित यजुर्मन्त्र 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्', भा.श्रौ.सू. 10.21.8; (सर्वेषु सावित्रं जुष्टं चानुषजेत्); प्रसङ्ग : आतिथ्या 7.3.3; 'अभ्रि' लेते समय उच्चारित, प्राशित्र ग्रहण करते समय (पकड़ते समय) ब्रह्मा द्वारा उच्चारित, आप.श्रौ.सू. 3.19.7; 2. एक प्रकार की अग्निवेदि के चयन का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.11.1 [मध्ये शङ्कुं निहत्य सर्वतः परिमण्डलं रथचक्रमात्रं सावित्रं परिलिख्य]; मा.श्रौ.सू. 10.3.4.5।

सावित्रग्रह पु. (सवितुः अयं ग्रहः) तृतीय सवन में 'सवितृ' को अर्पित किये जाने वाले सोम के प्याले का नाम, आप.श्रौ.सू. 13.13.1-3।

सावित्रनिवृत्ति स्त्री. (सावित्रस्य निवृत्तिः) सवितृ के सन्दर्भ वाले 'देवस्य त्वा' आदि मन्त्र का निवारण अथवा बहिष्करण, सावित्रनिवृत्तिः श्रुतिविरोधाभ्याम्, का.श्रौ.सू. 8.1.3 (सवितृपदघटितस्य मन्त्रस्य निवृत्तिः, स.वृ.)।

सावित्रसंस्त्रव पु. (सावित्रस्य ग्रहस्य संस्त्रवः) सवितृ-सोम-प्याले का अवशेष, मा.श्रौ.सू. 2.5.1.43।

सावित्री स्त्री. (सवितृ + अण् + ङीप्) तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो----' ऋ.वे. 5.8.2.1 ऋचा का नाम। इसके तीन चरणों का प्रयोग उद्गाता द्वारा क्रमशः तीन भागों में मधुपर्क का भक्षण करते समय किया जाता है, श्रौ.को. (अं.) I.310; ला.श्रौ.सू. 1.2.1।

साशीर्क वि. (आशीर्भिः सह) आशीर्वाद से युक्त या सज्जित, बौ.श्रौ.सू. 3.17:15 (वेदि में हविर्द्रव्य को रखने के लिए व्याहृतियों का प्रयोग); (अनुमन्त्रण में)।

सासन्दीक वि. (आसन्द्या सहितः, 'नद्यृतश्च' पा. 5.4.153 इति कप्) (उख्य अग्नि की) आसन्दी (कुर्सी) के सहित, का.श्रौ.सू. 16.6.16 (आसन्दीसहितमुख्यमग्निमुत्थाप्य, स.वृ., चयन)।

सिंहचर्मन् न. (सिंहस्य चर्म) सिंह का चर्म, मा.श्रौ.सू. 9.2.5.6. (सिंहचर्मणि अभिषिच्यते) अश्वमेध।

सिकताकरण न. कंकड़ों का विभाजन, मा.श्रौ.सू. 10.3.2.16।

सिच् स्त्री. परिधान का किनारा [सिचि (कृष्णविषाणम्) आदधाति], मा.श्रौ.सू. 2.1.2.12।

सिद्धम् क्रि.वि. (सिध् + क्त + अम्) विहित प्रक्रिया के अनुसार, भा.श्रौ. 5.13.7,19; प्रकृति के अनुसार अनुष्ठित एक इष्टि के बारे में कथन, 5.13.3।

सिद्धेष्टि स्त्री. पुरोडाश का यज्ञ, मा.श्रौ.सू. 1.7.1.4।

सिध्रक पु. एक प्रकार के वृक्ष का नाम; इससे निर्मित मुसल का प्रयोग अश्वमेध में किया जाता है, काशिकर 289 इण्डेक्स; युधि. 153।

सिन्धु न. कर्म में दूध उड़ेलते समय 'प्रस्तोता' द्वारा गाये जाने वाले साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.213।

सिमा स्त्री. ऋचाओं का नाम = 'महानाम्नी' ऋचायें, जै.ब्रा. III.84।

सीता स्त्री. हलरेखा (कूंड़); लोष्टचिति में अन्त्येष्टि-भूमि (श्यमान) पर छः की संख्या में जोती गई (हलरेखा), भा.पि.मे. 2.4.9।

सीतान्तराल न. (सीतयोरन्तरालम्) दो हलरेखाओं के बीच अन्तराल, आप.श्रौ.सू. 16.20.7 (अभिमृषति 'छूता है' घृतेन सीता इति)।

सीदन्तीय न. एक साम का नाम, = शङ्कुसाम, पञ्च.ब्रा. 11.10.12।

सीर न. हल, बैलों को हल में जोतता है, का.श्रौ.सू. 17.2.7, 17.2.22 (सीरम् उत्करे कृत्वा), (चयन)।

सुगन्धितेजन न. (शोभनः गन्धः यस्य तच्चादः तेजनं च) कुश के स्थानापान्न (विकल्प) के रूप में विहित घास का प्रकार, श्रौ.को. (अं.) 1.230।

सुजन्तु पु. (शोभनः जन्तुः) सुन्दर कीड़ा (कृमि); (भाष्य) सुजन्तुरिव शोभनाकृतिसदृश आयतो एकतोऽणिमत्। कोशकारिक्रिमिसदृश इत्यन्ये, बौ.श्रौ.सू. 7.5; जो अभी कोश में ही हो, ऐसा रेशमी कीड़ा, श्रौ.को. II.410।

सुज्ञान न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 5.7.7 सा.वे. 1.572 पर।

सुतासुती स्त्री. 'कारोतर' छलनी का एक अन्य नाम, जो या तो लकड़ी या बाँस अथवा मिट्टी से निर्मित होती है, चर्म से ढककर घट पर रख दी जाती है (सौत्रामणी), श्रौ.को. (अं.) 1.904।

सुत्या स्त्री. (सु + क्यप् + टाप्) सोम लताओं के सवन (का दिन), आप.श्रौ.सू. 15.18.1; = सुत्यम् अहः।

सुधातुदक्षिण वि. समुचित रूप से सज्जित एवं प्रभावकारी, ब्राह्मणमद्य राध्यासम्---सुधातुदक्षिणम्, बौ.श्रौ.सू. 8.6: 2।

सुन्वत् पु. (सु + शतृ) जो सोम का रस निकालता है, सोम-रस निचोड़ने वाला (निकालने वाला), आप.श्रौ.सू. 11.19.9; का.श्रौ.सू. 14.4.6।

सुपुर्वाह्ण पु. (सप्त.) दिन के प्रथमार्ध में देर से, आप.श्रौ.सू. 11.4.1; द्रष्टव्य - 'स्वपराह्ण' 11.4.1; (रु. पूर्वाह्णापराह्णान्ते चरन्ति इत्यर्थः)।

सुब्रह्मण्य पु. चतुर्थ गायक का नाम, आप.श्रौ.सू. 10.1.9; भा.श्रौ.सू. 12.1.11-14।

सुब्रह्मण्य

सुब्रह्मण्या स्त्री. 'सुब्रह्मण्य' - संज्ञक के ऋत्विज् द्वारा गेय एक स्तोत्र का नाम, श्रौ.को. (सं.) II.58, 527; (अं.) I.117।

सुमना स्त्री. एक इष्टि का नाम, श्रौ.को. (सं.) I.324।

सुमन्द्र पु. मन्द्र स्वर का एक भेद, जो उस स्वर में निम्न प्रवणता को रूप देता है, आश्व.श्रौ.सू. 2.15.11 (अपि वा सुमन्द्र तन्त्राः)।

सुमित्रिया स्त्री. 'सुमित्रा न' आदि से युक्त ऋचा, श्रौ.को. (अं.) I. 815।

सुरा स्त्री. यज्ञीय पेय (मदिरा) जिसका निर्माण चावल के दानों से किया जाता है; अङ्कुरित यवों (तोक्म), भुने हुए चावल के दानों एवं खमीर (नग्नहू) का कार्य करने वाली शाकौषधियों के सत्त्व से (सुरा का निर्माण किया जाता है), का.श्रौ.सू. 19.1.20-21, श्रौ.प.नि. 160.186; - ग्रह, श्रौ.प.नि. 159-183-187।

सुरासोम पु. सुरा के निर्माण के लिए मुलायम घास अथवा धान एवं यव, श्रौ.को. (अं.) II.ii. 903।

सुरूप न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.10 सा.वे. 1.468 पर।

सुरोपयाम पु. (सुरायाः उपयामः) सुरा को आलम्बन (सहारा) देने वाला पात्र, मा.श्रौ.सू. 7.1.3.30; द्रष्ट०-सुरा, ऋ.वे. 1.16.7।

सुवर्णसर्प पु. (सुवर्णस्य सर्पः) सोने का साँप, मा.श्रौ.सू. 11.4.4 (आश्लेष-विधि)।

सुहित वि. (सु + धा + क्त, 'दधातेर्हि' पा. 7.4.42) पूर्ण रूप से सन्तुष्ट, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.6।

सूकरविकर्तम् क्रि.वि. सुअर द्वारा अलग-अलग टुकड़ों में काटे गये के समान (.....प्राजापत्यं विशसन्ति), मा.श्रौ.सू. 9.2.4.27।

सूक्त न. (सु + वच् + क्त) ऋ.वे. के सूक्त जैसा कि 'ऋचा' से इनका वैशिष्ट्य बतलाया गया है; इसके प्रारम्भ के उल्लेख के द्वारा सङ्केतित, आश्व.श्रौ.सू. 1.1.18; 'शस्त्र' के मुख्य शरीर का संघटक, ऐ.ब्रा. 10.1।

सूक्तवाक पु. 'होता' द्वारा पढ़े जाने वाले एक मन्त्र का नाम, आप.श्रौ.सू. 3.6.6 (दर्श); इसका अर्थ 'देवता' भी है; चातुर्मास्य के लिए कुछ वैभिन्न्य, आप.श्रौ.सू. 8.3.4; पशु. के लिए इसका वाचन मैत्रावरुण करता है 7.27.6; द्रष्ट. श्रौ.को. (सं.) I.228, 291; शां.श्रौ.सू. 1.14; 'इदं द्यावापृथिवी---', आदि।

सूच्चैः क्रि.वि. अतिशय उच्चस्वर (जोर) से, भा.श्रौ.सू. 13.15।

सूच्चैस्तराम् क्रि.वि. (उच्चैः + तरप् + आमु) अतिशय (बहुत) ऊँचे स्वर (ज़ोर) से, मा.श्रौ.सू. 2.5.1.16।

सूतवशा स्त्री. (सूता चेयं वशा) केवल एक बच्चे को जन्म देने वाली गाय, मा.श्रौ.सू. 5.2.10.20-21।

सूतिकाग्नि पु. (सूतिकायाः अग्निः) रसोई के अग्नि-स्थान पर किसी घट के टूटे हुए टुकड़े को रखकर एवं इसको बैल के सूखे हुए गोबर से गरम कर तैयार की गई अग्नि, वैखा.गृ.सू. 3.15, हि.आ.ध. II.1.232n.

सूद पु. जल के नीचे दलदली मिट्टी, आप.श्रौ.सू. 5.1.7 (भाष्य-जलस्थमृत्तिका = जल में स्थित मिट्टी); अवशेष, मा.श्रौ.सू. 23.4.30।

सूददोहसंकृ 'ता अस्य सूद दोहसः-----' मन्त्र का उच्चारण करना, बौ.श्रौ.सू. 3.6:4।

सूदवत् वि. (सूद + मतुप्) मीठे बनाये गये पेय से युक्त; अन्तर्याम के बारे में कथन, आप.श्रौ.सू. 12.23.11; द्रष्ट. मा.श्रौ.सू. 2.3.4.30 जहाँ इसका अर्थ है 'अवशेष से युक्त अन्तर्यामपात्र'।

सूना स्त्री. यात्रा का स्थान, हि-आ.ध. II.I.699; इनकी संख्या पाँच हैं, और इनका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि वे चर एवं अचर सचेतन (संवेदनशील) प्राणियों को मार देते हैं; भँवरयुक्त - जल, अन्धकार में घूमना - फिरना; (कुल्हाड़ी, आदि से) वृक्ष पर प्रहार करना; फसलों को काटना एवं (ईंधन) को जलाना; तुल. पञ्चयज्ञ, हुत, प्रहुत, अहुत, ब्राह्मणहुत, प्राशित एवं जप (ब्रह्मयज्ञ) होम (देवयज्ञ), भूत-यज्ञ, मनुष्ययज्ञ एवं पितृयज्ञ, शां.गृ.सू. 1.5; तुल.—

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिभौंतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

(म.स्मृ. 3.68-70)

एक प्रकार का पात्र; बौ.श्रौ.सू. 2.18:28; ग्रहणपात्र के रूप में प्रयुक्त तख्त, बौ.श्रौ.सू. 9.1.5 (प्रवर्ग्य) सूनामधिकरणी-----(प्रवर्ग्य-सम्भार), बौ.श्रौ.सू. 9.1:5 अधिकरणी-मुपरिष्टादुखाक्रियायोग्या; टोकरी, मा.श्रौ.सू. 9.1.5.6; द्रष्टव्य काशिकर, इण्डेक्स 289; लकड़ी का तख्त।

सूर्म्या स्त्री. 'एकविंश स्तोम' की तृतीय 'विष्टुति' का नाम, काशिकर 123।

सूर्यवती स्त्री. (सूर्य + मतुप् + ङीप्) 'सूर्य' (शब्द) से युक्त एक ऋचा, जै.ब्रा. III.67।

सूर्योढ वि. सूर्यास्त के बाद आने वाला (अतिथि), आप.श्रौ.सू. 5.25.5।

सृककुब्ज वि. (सृके कुब्जः) शीर्ष पर कुटिल (टेड़ा-मेढ़ा या कूबड़ा), मा.श्रौ.सू. 8.12.2 (यूप के लिए वृक्ष)।

सृगा स्त्री. सीढ़ी, मा.श्रौ.सू. 7.1.3.4 (यजमान के 'स्वर्गारोहण' के लिए प्रयुक्त) वाजपेय में।

सृष्टि स्त्री. (बहु.व.) एक ईंट का नाम, मा.श्रौ.सू. 6.2.1.25 (अग्नि-वेदि में चिनी जाने वाली), (35-51) अग्निवेदि की चौथी तह में, बौ.श्रौ.सू. 10.41-43।

सेतु (सामन्) न. मरणासन्न व्यक्ति के दाहिने कान में बुदबुदाये

(गुनगुनाये) जाने वाले एक साम का नाम, श्रौ.को. (अं.) 1.1078।

सैध्रक वि. (सिध्रकस्य विकार:, सिध्रक + अण्) सिध्रक की लकड़ी का (मुसलम्, अश्वमेध), मा.श्रौ.सू. 9.2.1.19।

सिन्धुक्षित न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 12.12.5 सा.वे. 1.21 पर।

सोपपदा स्त्री. (उपपदेन सहिता) विशिष्टि दिवसों (तिथियों) का नामकरण, उदा., ज्येष्ठ शुक्ल 2, आश्विन शुक्ल 10, माघशुक्ल 4 एवं 12. इन तिथियों पर 'अनध्याय' (अध्ययनावकाश) रखना चाहिए, हि.आ.ध. II.1.396।

सोम पु. सोम-याग, भा.श्रौ.सू. 13.4.2; आप.श्रौ.सू. 10.1.2 (रु. तेभ्य: सोमं प्राह; यजमानप्रहित: सोमप्रवाक:----- सोमम् आह सोमेन असौ यक्षते, याजयितव्यस्त्वया इति); सोमलता का समीकरण एक बहुत पेंचीदा विषय रहा है। एतद्विषयक विभिन्न मतवाद के लिए द्रष्टव्य, वैदिक इण्डेक्स, हि.अ. 525-526, वेदचयनम्, विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-26-27; सोम-रस एवं इसका प्याला।

सोमकरणी स्त्री. (सोम: क्रियते = सूयतेऽनया सा, सोम + कृ + ल्युट् + ङीप्) सोम को निचोड़ने के लिए विहित विशिष्ट मन्त्र, भा.श्रौ.सू. 13.7.13, अर्थात् 'तिस्रो यह्वस्य', भा.श्रौ.सू. 13.7.1; सोम का रस निचोड़ने के सन्दर्भ से युक्त मन्त्र, आप.श्रौ.सू. 12.7.10; सवन का साथ देने वाली ऋचा के रूप में विनियुक्त, श्रौ.को. (अं.) II.403; 404 दधि-ग्रह के शीघ्र पश्चात् वाले प्याले (ग्रह) के लिए, सोमविक्रयिन् = सोमविक्रेता, जै.ब्रा. I.354।

सोमक्रयण वि. (सोम: क्रीयतेऽनेन) (वह बैल) जिससे सोम खरीदा जाता है, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.8 (साद्यक्र:; साण्ड: त्रिवत्स: सोमक्रयण:); द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 204.52-54; 206.61।

सोमद्रप्सवती स्त्री. अध्वर्यु द्वारा उदुम्बर की टहनी से सोम के बचे-खुचे भाग (ऋजीष) के दधि से प्रोक्षण के समय उच्चारित 'यत्ते ग्राव्णा चिच्छिदु: सोमराजन्---------' से आरम्भ होने वाली दस ऋचाओं के एक समूह का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.817।

सोमपरिश्रयण न. (सोम: परिश्रीयतेऽनेन) वह वस्त्र जिससे सोम की टहनी ढकी जाती है, भा.श्रौ.सू. 14.23.5 (अवभृथ)।

सोमपर्याणहन न. (सोम: पर्यानह्यतेऽनेन अस्मिन् वा, सोम + परि + आ + नह् + ल्युट्) सोम की टहनी को ढकने के लिए प्रयुक्त वस्त्र-खण्ड, का.श्रौ.सू. 7.7.1 (तुल. सोमोपनहनम्, वह वस्त्र जिसमें सोमलता रखी जाती है, वही)।

सोमविक्रयिन्

सोमप्रथम वि. (सोम: प्रथम: यस्मिन्) अग्नीषोमीय-प्रणयन का कृत्य, जिसमें सोम सामने अथवा प्रथम स्थान पर होता है, आप.श्रौ.सू. 11.17.3 (द्रष्ट. अग्निप्रथम), जिसमें सोम की टहनियां आगे (रखी जाती) है, भा.श्रौ.सू. 12.17.6।

सोमप्रवाक पु. सोम-याग में कार्य करने के लिए (ऋत्विक् के कार्य का निर्वाह करने के लिए) आमन्त्रित करने वाला, काशिकर 239; श्रौ.प.नि. 187.5।

सोमभक्ष पु. (सोमस्य भक्ष:) सोमाहुति के शेष भाग का उपभोग (भक्षण, पान), भा.श्रौ.सू. 13.8.5; द्रष्टव्य - सोमपीथ, जै.ब्रा. I.220।

सोमयाग पु. सोम-यज्ञ, स्मृ.च. ii.418.10।

सोमवाहन वि. (सोमस्य वाहनम्) सोम का वहन करने वाला (ढोने वाला); सोमवाहनावानड्वाहौ सोमवाहनमन:, बौ.श्रौ.सू. 6.10.4।

सोमसव पु. एक सोम-याग का नाम, जिसका अनुष्ठान राजाओं द्वारा किया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 24.11।

सोमसामन् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 10.3.8 सा.वे. 1.470 पर।

सोमस्थाली स्त्री. (सोमस्य स्थाली) एक सोम-पात्र (सोम-स्थालीषु श्रपयति), मा.श्रौ.सू. 2.5.5-11।

सोमस्य ऋतपेय पु. एक सवन-दिवस वाले 'प्रजापतेरुपहव्य'-संज्ञक सोम-याग में प्रथम 'बृहत्पृष्ठ' का नाम, मा.श्रौ.सू. 9.3.4.4।

सोमातिपवित वि. (सोमेन = सोमपानेन अतिपवितः) सोम को अधिक मात्रा में पीने से अतिशय पवित्रित (यजमान), बौ.श्रौ.सू. 13.25; = पूत, का.श्रौ.सू. 15.10.21।

सोमाभाव (सोमस्य अभावः) सोम की अनुपलब्धता, आप.श्रौ.सू. 14.24.12,13 (इसके स्थानापन्न है - पूतिका, आदार) फाल्गुनानि तृणविशेषः, तदभावे याः काश्च ओषधीः क्षिरिणीः अरुणदुर्वाः कुशान् वा हारितान् इति वाजसनेयकम् अप्यन्ततो व्रीहियवान्।

सोमार्थ पु. सोम की टहनियों से रस निकालने के लिए अभिप्रेत उपकरण (अर्थात् स्वर्ण, कुचलने वाला पत्थर = ग्रावन्, निग्राभ्या - संज्ञक जल, सम्भरणी, दशापवित्र, परिप्लवा-संज्ञिका पात्री आदि), का.श्रौ.सू. 9.1.7।

सोमाहुति स्त्री. (सोमस्य आहुतिः) सोम के निस्सारित रस की आहुति, जै.ब्रा. I.14।

सोमोपनहन न. (सोमः उपनह्यतेऽनेन, सोम + उप + नह् + ल्युट्) सोम का गट्ठर बनाने के लिए प्रयुक्त एक वस्त्र-खण्ड; बाद में 'अवभृथ' के बाद यजमानपत्नी इसे पहनती है, आप.श्रौ.सू. 13.22.3; ला.श्रौ.सू. 4.4.14।

सोष्यत् वि. (सु + स्य + शतृ, 'लृटः सद्वा', पा. 3.3.14) (वह व्यक्ति) जो सोम याग (शाब्दि. सोम का सवन) करेगा, का.श्रौ.सू. 16.6.9 (संवत्सरं सोष्यतः)।

सौत्रामणी पु. (सुत्राम्णः इयम्, सुत्रामन् + अण् + ङीप्) इन्द्र सुत्रामन् के लिए एक याग का नाम, आप.श्रौ.सू. 19.5.1; यह दो प्रकार का है, चरक एवं कौकिल; पहला वाला राजसूय एवं चयन का अङ्ग है। इसमें (उन) सुरा के प्यालों के लिए अतिरिक्त खर होता, जिसका पान ऋत्विजों द्वारा नहीं किया जाता एवं जिसकी आहुति 'प्रतिप्रस्थाता' के द्वारा अश्विनों, सरस्वती एवं इन्द्र को प्रदान की जाती है। यह चार दिन में सम्पाद्य है (3 + 1), का.श्रौ.सू. 19.1-7; द्रष्टव्य - श्रौ.को. (अं.) I.899, 943।

सौनिक पु. (सूनया=वधकर्मणा जीवति) आखेटक, शिकारी, मा.श्रौ.सू. 8.15.7।

सौपर्ण न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.3.9 सा.वे. 1.125 पर।

सौभर न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.8.9 सा.वे. 1.408 पर।

सौमारौद्र न. 'वार्त्रघ्न' आज्य-भागों एवं गायत्री संयाजों से युक्त एक युक्ति अथवा प्रविधि का नाम, श्रौ.को. (अं.) II.5.41।

सौमिक वि. (सोम + ठञ्) सोम-याग से सम्बद्ध प्रक्रिया (तन्त्र), श्रौ.को. (सं.) II.518।

सौमेध न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 9.2.20 सा.वे. 1.163 पर।

सौम्यचरु पु. (सोमदेवताकः चरुः) सोम के लिए चरु, श्रौ.प.नि. 309-422; जै.ब्रा. I.167।

सौरप्रतिग्रह पु. (सुरायाः अयं सौरः तं प्रतिगृह्णाति) सुरा के प्याले को उपहार के रूप में स्वीकार करने वाला राजन्य अथवा वैश्य, का.श्रौ.सू. 14.4.15 (वाजपेय में उसे मधुग्रह प्रदान किया जाता है)।

सौर्यर्च् स्त्री. (सुर्यस्य इयम् ऋक्) 'उदु त्यं जातवेदसम्' यह (सूर्य से सम्बद्ध) ऋचा, बौ.श्रौ.सू. 6.15; तु. 'वारुण्यर्च — भा.श्रौ.सू. 6.17; 'तत्त्वा यामि प्रब्रह्मणा'।

सौहविष न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.5.24 सा.वे. 1.427 एवं पञ्च.ब्रा. 15.11.10 सा.वे. 1.427 पर क्रमशः।

स्तन न. उखा का दो से आठ की संख्या में उत्थान-सीमा (रास्ना) से बाहर की ओर उभरा हुआ स्त्री के स्तन के सदृश चिह्न, आप.श्रौ.सू. 12.7.11।

स्तनकल्प पु. उस यजमान के लिए विहित (अग्निहोत्र की गाय) के थन के लिए नियम, जो (यजमान) व्रत-भोजन के रूप में एक थन से ही निकाले गये दूध पर जीवन-निर्वाह करे, भा.श्रौ.सू. 12.5.18; आप.श्रौ.सू. 10.16.15; दो, तीन अथवा चार थनों से, भा.श्रौ.सू. 12.4.5; 5,10,13 (सोम का उपसद्)।

स्तनविभाग पु. थन का श्रेणीकृत (विभक्त) दोहन, भा.श्रौ.सू. 10.9.15।

स्तनव्यूह पु. (स्तनानां व्यूहः) (यदि उपसद् की संख्या बढ़ा दी जाती है तो) व्रत-दुग्ध के लिए दुहे जाने वाले थनों की संख्या की व्यवस्थिति, मा.श्रौ.सू. 2.2.1.50।

स्तम्ब पु. एक मूल (जड़) से उगने वाला घास-समूह, आप.श्रौ.सू. 1.3.8; भाष्य।

स्तम्बयजुर्हरण पु. घास को हटाने का मन्त्र; 'स्फ्य' से घास के पत्तों को काटने एवं उन्हें वेदि से बाहर फेंकने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 2.1.4 (दर्श); काटी हुई घास के साथ मिश्रित ढीली मिट्टी (धूल) को हटाना। सोमयाग में भी जहाँ इसे आग्नीध्र द्वारा 'उपरव' से बाहर फेंका जाता है।

स्तम्बयजुस् न. 1. दर्भपत्र, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.28 (अपरेण उत्तरां स्तम्बयजुर्हरति) (वरुणप्रघास); वेदि का निर्माण करते समय, विशेष रूप से स्थल की खुदाई करते समय संगृहीत किये जाने वाले एवं उत्कर पर फेंके जाने वाले घास के टुकड़े, श्रौ.को. I.2.679 2. घास के साथ धूल, आप.श्रौ.सू. भाष्य (रु.) 2.2.1 पर; भा.श्रौ.सू. 2.1.4।

स्तरणी स्त्री. (स्तीर्यतेऽनया, स्तृ + ल्युट् + ङीप्) 'बर्हिस्' संज्ञक घास को फैलाते समय उच्चारित 'आ घा ये अग्निम् इन्धते-----' इस ऋचा का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.10.17 (जो अन्यथा अध्वर्यु द्वारा उच्चारणीय 'ऐन्द्रिया' ऋचा के रूप में व्यवहृत होती है, यदि वह अर्थात् अध्वर्यु सदोमण्डप के पश्चिम की ओर जाता है), भा.श्रौ.सू. 12.6.18; बर्हिष् को बिछाना या छितराना, भा.श्रौ.सू. 12.6.8; द्रष्टव्य - 'परिस्तरण'।

स्तिभिकवती वि. (स्त्री.) (स्तिभिक + मतुप् + ङीप्) फलयुक्त अश्वत्थ-शाखा, भा.श्रौ.सू. 5.3.12 (आग्नेय)।

स्तिभिगवती वि. (स्त्री.) (स्तिभिग + मतुप् + ङीप्) पुष्पण से युक्त (समिध्), मा.श्रौ.सू. 1.5.1.24 (आधेय)।

स्तिभिनी स्त्री. (प्रचुर मात्रा में = बहुत से) न्यग्रोध के फल, आप.श्रौ.सू. 12.24.5 (यदि राजन्यं वैश्यं सोमं बिभक्षयिषेत्)।

स्तुत (स्तु + क्त) = स्तोत्र, बौ.श्रौ.सू. 14.9।

स्तुतदोह पु. यजमान द्वारा उच्चारित (बहिष्पवमान) स्तोत्र (की समाप्ति का सूचक) दोहन (अर्थात् मन्त्र = दोहन-मन्त्र) (सुतस्य दोहं वाचयति), बौ.श्रौ.सू. 14.9 (स्तुतस्य स्तुतमसि, आदि); द्रा.श्रौ.सू. 5.2.19।

स्तुतशस्त्रे न. (द्वि.व.) (स्तुतं च शस्त्रं च) स्तोत्र एवं शस्त्र, मा.श्रौ.सू. 2.4.3.16; आप.श्रौ.सू. 14.8.3।

स्तोकाहुति स्त्री. अध्वर्यु द्वारा पशुयाग में वपा पर चम्मच से डाली जाने वाली एक घृताहुति का नाम, श्रौ.प.नि. 131.74।

स्तोकीय न. पशु-याग में 'स्तोकीय' द्रवाहुतियों के समय 'जुषस्व सप्रथस्तमम्', ऋ.वे. 1.75.1 आदि छः मन्त्रों का नाम। इनका उच्चारण मैत्रावरुण करता है, मा.श्रौ.सू. 5.2.8.1-10।

स्तोत्र न. शस्त्र 'जिसका वाचन किया जाता है, के विपरीत मुख्यतः ऋ.वे. से ली गई ऋचाओं पर निबद्ध गान (अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्, प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्, प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम्)। यह सदैव शस्त्र का पूर्ववर्ती होता है, आश्व.श्रौ.सू. 5.10.1 (स्तोत्रमग्रे शस्त्रात्)। वह गान, जिसमें असंख्य राग बद्ध होते हैं एवं स्तोभ जोड़े जाते हैं एवं अनेक रूपों (स्तोम) में गाये जाते हैं। सभी स्तोत्रों का गायन 'उद्गाता' 'प्रस्तोता' एवं प्रतिहर्ता के द्वारा किया जाता है। कभी-कभी यजमान भी उनके गायन में सम्मिलित हो जाता है, आप.श्रौ.सू. 12.17.11-12. बहिष्पवमान को छोड़कर सभी स्तोत्र औदुम्बरी के निकट 'सदस्' में गाये जाते हैं : (गायन के समय) 'उद्गाता' का मुख उत्तर, प्रस्तोता का पश्चिम एवं प्रतिहर्ता का पूर्व की ओर होता है। 'अग्निष्टोम' में बारह स्तोत्र होते हैं (5 + 5 + 2); प्रत्येक सवन का प्रथम स्तोत्र 'पवमान' कहलाता है, प्रथम 'आज्य स्तोत्र' को क्षुल्लक वैश्वदेव एवं धुर्य भी कहते हैं। मध्याह्न में माध्यन्दिन पवमान होता है; द्वितीय पृष्ठ्य वामदेव्य होता है; तृतीय नौधस् एवं चतुर्थ कालेय। तृतीय सत्र (सायंसवन) में आर्भव पवमान एवं अग्निष्टोम (अथवा यज्ञायज्ञीय) गान होता है; द्रष्ट. स्तोत्रवृद्धी, जै.ब्रा. II.7।

स्तोत्रिय पु. (स्तोत्र +घ) उस 'ऋक्' का नाम जो स्तोत्र से सम्बद्ध है किन्तु जिसका वाचन होत्रकों में किसी एक के द्वारा मिलते-जुलते शस्त्र के आरम्भ में किया जाता है ('होता' के प्रथम शस्त्र में इसे 'प्रतिपद्' कहते हैं), आश्व.श्रौ.सू. 5.10.13 ('स्तोत्रि- यानुरूपेभ्य प्रतिपदनुचरेभ्यः---------'); शां.श्रौ.सू. 7.14.1।

स्तोत्रिया स्त्री. (स्तोत्रिय + टाप्) स्तोत्र से सम्बद्ध ऋचा, द्रा.श्रौ.सू. 8.2.32; श्रौ.को. (सं.) II.567; = स्तोत्र्या, जै.ब्रा. II.47।

स्तोभ पु. (स्तुभ् + घञ्) संगीतीय अध्याहार, साम में प्रक्षिप्त या अध्याहृत गानानुकूल पद : 'हाउ, हुं, हौ, औहो' आदि। इसे गायी गई ऋचा में जोड़े गये वर्णों के रूप में परिभाषित किया गया है। उन ऋचाओं पर जिस पर सामगान आवश्यक है, शा.भा. मी.सू. 11.2.29 पर।

स्तोम पु. स्तोत्र के गायन का रूप, जिसमें ऋचायें आवृत्ति द्वारा निश्चित संख्या तक बढ़ा ली जाती हैं, त्रिवृत् (9), पञ्चदश (15), 17, 21, 24, 27, 33, 48. चतुर्विंश (24) को छोड़कर सभी स्तोम विभिन्न विष्टुतियों के माध्यम से प्राप्त किये जा सकते हैं एवं सभी विष्टुतियों के तीन पर्याय होते हैं। अग्निष्टोम में प्रथम चार स्तोम प्रयुक्त होते हैं। प्रथम आज्यस्तोत्र में ऋ.वे. 6.16.10-12 पर आधृत एवं पाँच के प्रत्येक तीन पर्यायों से युक्त 15 का स्तोम (पञ्चदश) होता है : अ अ अ ब स, अ ब ब ब स, अ ब स स स। इसे 'पञ्चपञ्चिनी विष्टुति' कहते हैं। स्तोम प्रथमतया वृत (चुने गये) अध्वर्यु द्वारा जोड़ा जाता है, बौ.श्रौ.सू. 2.3:22।

स्तोमभाग पु. (स्तोमस्य भागः) स्तुति (स्तोम) का एक महत्त्वपूर्ण भाग, द्रा.श्रौ.सू. 15.3.15; क्रमशः 12 एवं 21 मन्त्रों वालों 'रश्मिरसि' एवं 'तन्त्रिरसि' अनुवाक; होता द्वारा पठित एक मन्त्र (तै.सं. 4.4.1) का नाम, जिससे वह स्तोत्र के गायन के लिए अनुमति (प्रसव) प्रदान करता है, आप.श्रौ.सू. 14.8.2; बहु. में उन ईंटों का नाम जिन्हें मन्त्र-जप के साथ लगाया जाता है, आप.श्रौ.सू. 17.3.53 (चयन); काशिकर 290 इण्डेक्स के टिप्पण्यानुसार इसका जप ब्रह्मा द्वारा गायन के लिए अपनी सहमति देने के पूर्व किया जाना चाहिए।

स्तोमयोग पु. (स्तोमेन योगः) बहिष्पवमान के समय अध्वर्यु द्वारा 'प्रस्तोता' नामक ऋत्विज् के लिए स्तोम आवृत्ति का नियतीकरण (स्तोमोपाकरण); इग्लिंग, श.ब्रा.इ. XXVI. 311; काशिकर, पृ. 118 का कथन है कि अध्वर्यु, प्रस्तोता को प्रस्तर प्रदान करता है और तब प्रस्तोता स्तोम-आवृत्ति के नियतीकरण की विधि से 'अग्ने तेजसा मन्त्र से ब्रह्मा (के लिए) गुच्छ (गट्ठर) से उसके (ब्रह्मा के) दाहिने जङ्घे का स्पर्श करते हुए उद्घोषणा करता है, पञ्च.ब्रा. 1.3.5; आप.श्रौ.सू. 21.6 भी द्रष्टव्य; द्रा.श्रौ.सू. 4.1.2।

स्तोमविभाग्य वि. स्तोम-आवृत्ति के अनुसार विभाजन योग्य, ला.श्रौ.सू. 7.6.3।

स्तोमविमोक पु. (स्तोमानां विमोकः) स्तोमों का विमोचन, अर्थात् ऋचाओं की पुनरावृत्ति (ऋचाओं को दुहराना)। यह 'उद्गाता' द्वारा 'ऋतस्य त्वा-----' ऋचा का जप करते हुए तृतीय सत्र के अन्तिम स्तोत्र के गाये जाने के पश्चात् किया जाता है, ला.श्रौ.सू. 2.11.2; काशिकर 125।

स्तोमातिशंसन न. (स्तोमस्य अतिशंसनम्) सम्बद्ध स्तोत्रों में स्तोमों की आवृत्त संख्या का अतिक्रमण करने वाले 'शस्त्र' (ऋचाओं) का वाचन, काशिकी 94।

स्तोमायन न. सोम-याग में सवन के दिनों अर्पित किये जाने वाले यज्ञपशुओं का विशिष्टीकरण (निर्धारण) अर्थात् अग्निष्टोम के लिए सवनीय पशु अग्निदेवताक अज होना चाहिए; उक्थ्य में इन्द्र-अग्नि के लिए पशु; षोडशी में इन्द्र को अर्पित एक मेष होना चाहिए; अतिरात्र में सरस्वती के लिए अज अथवा मेषी होनी चाहिए, का.श्रौ.सू. 9.7.4-8, 16; श्रौ.को. (अं.) I.480।

स्त्रीव्यञ्जन स्त्री. (स्त्रीणां व्यञ्जनम्) अंग, भा.श्रौ.सू. 8.7.5 (तु. पुंव्यञ्जन) वरुणप्रघास।

स्थगर न. उस सामग्री का नाम जिससे उबटन (विलेप) तैयार किया जाता है। यह उबटन उस व्यक्ति को लगाया जाता है, जो किसी का प्रिय बनना चाहता है अथवा यह चाहता है कि कोई उसका प्रिय बने, श्रौ.को. (अं.) 1.207।

स्थण्डिल न. चबूतरा, मिट्टी का उठा हुआ चबूतरा, काशिकर 290 इण्डेक्स; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 43.357।

स्थल न. भूमि का एक उठा हुआ टुकड़ा, आप.श्रौ.सू. 10.20.9 (परोक्षं पृष्ठानि उपेयुः--------स्थले यजेत)।

स्थलतर पु. (स्थल + तरप्) सोम-याग का अनुष्ठान करने के लिए गुणवत्ता में बेहतर भूभाग, ला.श्रौ.सू. 1.1.17।

स्थाणु पु.लड़खड़ाता (ठोकर खाता) खाँचा अथवा दोष, जै.ब्रा. I.21 एक सिटकिनी अथवा शलाका जिसमें रथ का पहिया जड़ा जाता है (लगाया जाता है), का.श्रौ.सू. 14.3.12 (अथवा एक यूप = खम्भा), (वाजपेय)।

स्थान न. (स्था + ल्युट्) मन्त्र में स्वर की अवस्थितिः मृदु, उत्तम (उच्च, तीक्ष्ण), मध्यम, आश्व.श्रौ.सू. 4.13.6; 15.10 (विभिन्न कृत्यों : इष्टि, सोम आदि में अनुप्रयुक्त प्रविधि);

सोम. में नामकरण एवं विध है : मन्द्र, मन्द्रतर, उपांशु, उपांशुतर एवं उच्चैः।

स्थानं प्रतियन्ति (प्रति + इण् + लट् प्र. पु. ए. व.) का स्थान ग्रहण करते हैं (तुषा ऋजीषस्य स्थानं प्रतियन्ति), बौ.श्रौ.सू. 8.11.9 (वरुणप्रघास)।

स्थाल न. थाली (अवधी-थार), मा.श्रौ.सू. 6.2.5.15; द्रष्टव्य—'मधुस्थाल', 7.1.3.33; बौ.श्रौ.सू. 9.1.10 (प्रवर्ग्यसम्भार); = स्थाली।

स्थाली स्त्री. मिट्टी का प्याला अथवा कटोरा जिसमें चावल रखा हो, आप.श्रौ.सू. 1.7.5; अनाज के छिलके के लिए, 8.8.12; द्रष्टव्य - आदित्य-, उक्थ्य-, आग्रयण-, ध्रुव-, बौ.श्रौ.सू. 25.13, The Ritual sutras, J. Gonda, शब्द-सूची, पृ. 662.

स्थालीपाक पु. वह आहुति, जिसमें दुध में उबाला हुआ चावल अथवा यव समाहित हो; चि.भा.से. उस भूसीरहित अनाज को उबालने वाला पात्र, जिसे दक्षिणाग्नि पर पकाया जाता है एवं घृत से मिश्रित किया जाता है, एवं पितरों के लिए हविस् के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, भा.श्रौ.सू. 1.7.6,9 (दर्श)।

स्थाल्यादान न. (स्थाल्याः आदानम्) पात्र को लेने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 4.2.19।

स्थावरा (स्त्री.) (स्था + वरच् + टाप्) ठहरा हुआ (जल), मा.श्रौ.सू. 1.7.4.37।

स्थूणा स्त्री. सदस् के बाँस का खम्बा, आप.श्रौ.सू. 11.10.5; हविराधान के पूर्व की ओर उन्मुख काष्ठ-ग्रन्थियों से युक्त, बौ.श्रौ.सू. 6.25 = शङ्कु (वाज. का), ला.श्रौ.सू. 5.12.9।

स्थूणाराज पु. (स्थूणानां राजा, राजाहःसखिभ्यष्टच्, पा. 5.4.91) यज्ञशाला (प्राचीनवंश) का केन्द्रीय एवं मुख्य खम्भा, आप.श्रौ.सू. 10.3.4।

स्थूरि पु. एक घोड़े द्वारा खींचा जाने वाला रथ, मा.श्रौ.सू. 9.3.2.3 (ब्रह्माणम् आनयन्ति); साद्यस्क्र याग में प्रयुक्त।

स्नातवस्य न. (स्नाते वस्यम्) स्नान करने के बाद पहना जाने वाला वस्त्र, का.श्रौ.सू. 7.2.16. (स्नातवस्यं वाऽमौत्रधौतं विचितकेशं प्रसारितदशं दीक्षातपसोरिति)।

स्नुषाश्वसुरीयेष्टि स्त्री. (श्वश्रूस्नुषयोरियम् इष्टिः) इन्द्र अथवा शूर इन्द्र के लिए आहुति से युक्त एक ऐच्छिक इष्टि का नाम, आश्व.श्रौ.सू. 2.11.7-9 (स्नुषाश्वसुरीनामिष्टिः, ना.वृ. वही), 8-9; (द्रष्टव्य - त्रैधातवीयेष्टि); इसका अनुष्ठान सास एवं बहू के बीच (उत्पन्न होने वाली) समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जाता है।

स्नूहन् पु. खाँसी, बलगम, आप.श्रौ.सू. 10.14.1; श्रौ.को. (सं.) II.671।

स्पन्द्या स्त्री. फन्दा, आवरण-रज्जु, बौ.श्रौ.सू. 6.22; 'अनुस्पन्द्यम्' 6.22 भी द्रष्टव्य; चि.भा.से. चारों कोनों पर गाड़ी गई कीलों (शङ्कु = खूटों) को जिससे जोड़कर (महावेदि) घेरी जाती है (उस रस्सी का नाम, आप.श्रौ.सू. 11.4.15)।

स्पृत् स्त्री. (बहु.व.) अग्नि वेदि में चिनी जाने वाली ईंटें, मा.श्रौ.सू. 6.2.1.24; 10.2.4.3।

स्पृति स्त्री. उन मन्त्रों का नाम, जिनसे प्रायश्चित्तिक (प्रायश्चित्तीय) आहुति देना चाहिए, यदि पशुयाग के लिए अभिप्रेत वध्यपशु भाग जाए, अ.वे.प्राय. 2.9; 5.5।

स्प्य

स्प्य पु. एक काष्ठनिर्मित तलवार (खादिर, अस्याकृति), का.श्रौ.सू. 1.3.34, 40; 'एकद्रव्य साज्ये वेदेनोपग्रहणम् अन्यत्र', का.श्रौ.सू. 1.10.7; 'कुशैरसत्सु', का.श्रौ.सू. 1.10.8; एक प्रादेश लम्बा, वैखा.श्रौ.सू. 11.7; अरत्निमात्र, 14 अंगुल चौड़ा खदिर की लकड़ी से निर्मित काष्ठीय

तलवार, श्रौ.प.नि. 6.34; सुरक्षा के लिए प्रयुक्त, भा.श्रौ.सू. 2.2.5; वेदि का खाका खीचने के लिए (रूपरेखा बनाने के लिए), आप.श्रौ.सू. 1.8.8; कड़ाही के सहारे के रूप में, 3.8.5; 'अग्नीध्र' अध्वर्यु को उत्तर देते समय इसे लम्बवत् (सीधा, सीधा करके) पकड़े रहता है, का.श्रौ.सू. 12.2.15 (सोम), प्रत्याश्रावण के समय भी आग्नीध्र द्वारा धृत, Janert K.L, KZ 97 (2) 1984, पृ. 202-203, श्रौ.प.नि. 6.34।

स्फ्यादान न. (स्फ्यस्य आदानम्) स्फ्य (काष्ठीय तलवार) को हाथ में लेने का कृत्य, का.श्रौ.सू. 8.8.24।

स्फ्योपहित वि. (स्फ्ये उपहिता) जिसके नीचे स्फ्य रखी जाती है, का.श्रौ.सू. 2.3.28 (पात्र्यां स्फ्योपहितायाम्)।

स्यामूल न. आवरण (धू. कम्बलम्; स. वासो-विशेषः 'एक प्रकार का वस्त्र), आप.श्रौ.सू. 5.29.3।

स्योनदण्डा वि. (स्योनः दण्डः यस्याः सा) कोमल हत्थे वाली, मा.श्रौ.सू. 6.2.5.24 ('वसोर्धारा' आहुति-प्रदान करने में प्रयुक्त औदुबरी नाम वाली करछुल।

स्त्रक्ति स्त्री. कोण, बौ.शु.सू. 2.25

स्रुक्पाणि वि. (स्रुचौ पाणौ यस्याः सा) जिस व्यक्ति के हाथ में ('जुहू' एवं 'उपभृत्' नाम वाली) दो करछुलें हों, का.श्रौ.सू. 5.5.14 (स्रुक्पाणिरास्ते प्रतिप्रस्थाता; वरुणप्रघास)।

स्रुक्पुष्कराकृति वि. (स्रुक्पुष्करस्य इव आकृतिः यस्य) करछुल (स्रुक्) के कटोरे की तरह आकृति वाला, का.श्रौ.सू. 9.2.13 (ऋतुपात्रे); द्रष्टव्य - स्रुक्पुष्करा परिप्लवा (थाली), का.श्रौ.सू. 9.2.15।

स्रुच्

स्रुच् स्त्री. (एक प्रकार की) करछुल, मा.श्रौ.सू. 1.1.3; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 10.62; 36.302; - **सम्मार्जन** न. स्रुक् को माँजना।

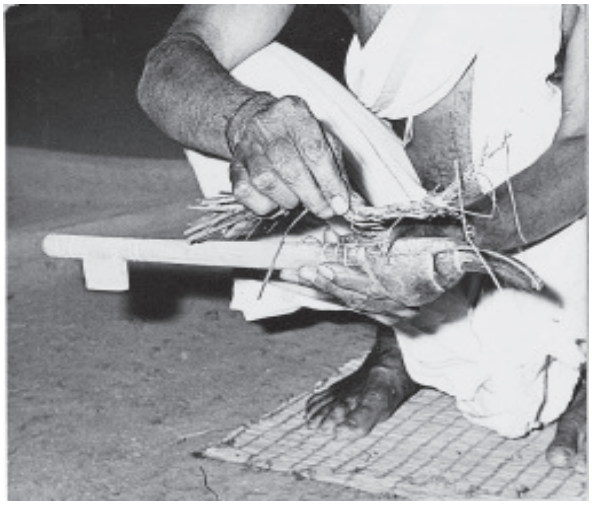

स्रुक् - सम्मार्जन

स्रुच्य वि. (स्रुच्+ यत्) स्रुच (करछुल) से दी जाने वाली (आघार-आहुति, भा.श्रौ.सू. 4.12.9; 14.22.1)।

स्रुव पु. काढ़ने (निकालने) का एक चम्मच, ऋ.वे. 1.116.24; 'स्रुवेण' यूपाहुतिं जुहोति (भा.श्रौ.सू. 7.1.2; द्रष्टव्य - वा करनागाल जे, KZ 67, 154-82; श्रौ.प.नि. 8.48।)

स्रुव

स्रुवदण्ड पु. (स्रुवस्य दण्डः) स्रुव (काँछने या निकालने वाले चम्मच) का हत्था, बौ.श्रौ.सू. 1.17.29; (प्राशित्रम्) स्रुवदण्डेनाभिघार्य जघनेन प्रणीताः सादयित्वाद्भिः स्रुवदण्डं स्पृश्यावदधाति)।

स्रुवपञ्चम वि. (स्रुवः पञ्चमः एषु) (चार करछुल) जिनमें स्रुव (चम्मच) पाँचवां हो, मा.श्रौ.सू. 1.7.3.8 (वरुणप्रघास); द्रष्टव्य - 1.7.1.14।

स्रुवबुध्न न. (स्रुवस्य बुध्नम्) चम्मच का अग्रभाग, मा.श्रौ.सू. 3.1.27 (अनु.), (क्या यह स्रुव का तल है?) वस्तुत: अवेस्ता में बुध्न का अर्थ पेंदी है। तुल. बुध्नधात = आ.फा. बुनियाद।

स्रुववाद पु. अग्निहोत्र-दुग्ध को स्रुव (चम्मच) से ग्रहण करने का उल्लेख, भा.श्रौ.सू. 9.8.2 ('प्रायश्चित्त' पर आलेखन का विचार)।

स्रौच (स्रुच् + अण्) स्रुच (करछुल) से सम्बद्ध, मा.श्रौ.सू. 1.4.1.23।

स्व पु. (यजमान का) अपना भाई, का.श्रौ.सू. 15.5.28।

स्वकर्माविप्रतिषेध पु. (स्वस्य कर्मण: अविप्रतिषेध:) अपने कर्तव्यों के साथ संघर्ष का अभाव, मा.श्रौ.सू. 7.2.1.16।

स्वकृत इरिण वि. (निवास-स्थान) स्वभावत: बंजर (अनुपजाऊ), भा.श्रौ.सू. 5.16.22।

स्वज वि. (स्वस्मात् जायते, स्व + जन् + ड) स्वयम्-उत्पन्न, अपने से पैदा हुआ, स्वयं-जात, भा.श्रौ.सू. 11.20.5 (अभिव्याहरण), (यं द्विष्यात् तस्य गोष्ठं गत्वा स्वजम् ओषधिं निखनेत्)।

स्वधा नम: अव्य. पित्र्येष्टि में 'वौषट्' के स्थान पर उच्चारित उद्बोधन, का.श्रौ.सू. 5.9.9; आप.श्रौ.सू. 1.8.3-4. सामान्यत: इसका प्रयोग 'प्रत्याश्रावण' में श्रौषट् के स्थान पर होता है, 8.15.11।

स्वधिति पु. यज्ञीय पशु को काटने के लिए प्रयुक्त दो तरफ पत्तियों (धार) वाली छुरी, आप.श्रौ.सू.7.14.10।

स्वधूर् क्रि.वि. स्वतन्त्र रूप से, जै.ब्रा. I.333।

स्वपराह्ण पु. (सप्त.) अपराह्ण में देर से, अर्थात् सायंकाल में शीघ्र (सायंकालिक प्रवर्ग्य के काल के रूप में विहित), भा.श्रौ.सू. 12.5.11 (किन्तु काशिकर, तड़के अपराह्ण में)।

स्वयंचिति स्त्री. उत्तरवेदि का स्पर्श करते समय विनियुक्त 'यस्ते अग्ने समिध' ऋचा का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.21.6 (चयन)।

स्वयंदिन (स्वयं + दो + क्त) अपने आप कटा हुआ या गिरा हुआ (अभिषेचनीय के लिए बर्हिस्), आप.श्रौ.सू. 18.11.9।

स्वयंरुग्ण वि. (स्वयं रुग्णम् स्वयम् + रुज् + क्त) अपने आप टूटी हुई (अश्वत्थ-शाखा), मा.श्रौ.सू. 1.2.3 (इससे एक पात्र का निर्माण किया जाता है)।

स्वयमातृण्णा

स्वयमातृण्णा स्त्री. (स्वयम् + आ + तृद् + क्त + टाप्) स्वयं - छिदी हुई ईंट (सम्भवत: सरन्ध्र - छेदयुक्त पत्थर) का नाम, आप.श्रौ.सू. 16.13.10. इनमें तीन अग्निवेदि की प्रथम, तृतीय एवं पञ्चम तह के मध्य (केन्द्र) में रख दी जाती हैं (चयन)।

स्वर पु. (स्वृ + अच्) वैदिक स्वरों में प्रयुक्त उदात्ताति स्वर; स्वर उदात्त (उच्चैरुदात्त:, पा. 1.2.29), अनुदात्त (नीचैरनुदात्त: पा.1.2.30), और स्वरित (समाहार: स्वरित: पा. 1.2.31) के भेद से तीन प्रकार का है। यज्ञ में साधारणतया मन्त्रों का उच्चारण 'एकश्रुति' - नामक स्वर में किया जाता है।

स्वरक्रिया स्त्री. (स्वरस्य क्रिया) स्वर लगाना, स्वर का प्रयोग, का.श्रौ.सू. 1.8.16 (मन्त्रे स्वरक्रिया यथाम्नातमविशेषात्)।

स्वरविभक्ति (स्वरस्य विभक्ति:) गायन में अन्त्य स्वर का पृथक्करण, जै.ब्रा. III.333।

स्वरसामन् पु. गवामयन के 'विषुवत्' के पूर्व एवं पश्चात् अनुष्ठेय एक त्रिदिवसीय सोम-याग का नाम, आप.श्रौ.सू. 23.3.9; न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 4.5 सा.वे. (आर्चि.) II. 17 पर निबद्ध।

स्वरु पु. यज्ञीय यूप की पहली फर्री, (शकल, टुकड़ा) ऋ.वे. 3.8.10; भा.श्रौ.सू. 12.20.18. (अग्निष्टोमीय पशुयाग में जैसा कि सवनीय में भी इसे अनुयाज आहुतियों के अन्त में अग्नि में नहीं फेंकते। यह ध्यातव्य है कि सामान्य पशु-यागों में इसे अग्नि में फेंक दिया जाता है)। 'अनुबन्ध्या' में इसकी अग्नि में आहुति दे दी जाती है, वही। इसमें रस्सी

बाँधने के बाद इसे यूप (यज्ञीय स्तम्भ) में बाँध दिया जाता है, का.श्रौ.सू. 1.7.17; आप.श्रौ.सू. 7.3.3; यूप-वृक्ष के धड़ अथवा तना का पहला टुकड़ा।

स्वरुहोम पु. (स्वरुणा होमः, स्वरोः होमः वा, तु. - 'तृतीया च होश्छन्दसि' पा 2.3.3) अग्नि में (यज्ञिय स्तम्भ = यूप) के 'स्वरु' संज्ञक फर्री (शकल) का अग्नि में आहुति, मा.श्रौ.सू. 1.8.6.11।

स्वविधान-प्रकृति वि. (स्वविधानं प्रकृतिर्यस्य) सामान्य रूप वाला, मा.श्रौ.सू. 4.1.1।

स्वस्त्ययन न. 'पितृमेध' के अनुष्ठाता द्वारा मृत्यु के बाद बारह दिनों के दौरान पढ़ी जाने वाली विशिष्ट ऋचाओं का नाम। सायण के मतानुसार ये ऋचायें है : अ.वे. 18.3.61,67, 67; 18.4.70।

स्वस्थानविवृद्धि स्त्री. (स्वस्य स्थाने विवृद्धिः) अपने स्थान पर संख्या में वृद्धि या पुनरावृत्ति, अर्थात् द्वित्व आदि, का.श्रौ.सू. 8.3.5 (उपसद् इष्टि : यदि तीन के स्थान पर छः उपसद् हों तो प्रथम तीन का मूल क्रम 'अयः', 'रजः' एवं हरि के रूप में प्रत्येक इसके स्वयं के क्रम में दो बार अनुष्ठान करते हुए बरकरार रखा जाता है)।

स्वाछृण्णा स्त्री. (सु + आ + छृद् + क्त + टाप्) (मन्त्र से) समुचित रूप से प्रोक्षित, ('उखाकरण' में आच्छृण्णां कृत्वा), बौ.श्रौ.सू. 10.8।

स्वादुष्किलाय न. 'स्वादुष्किलायम्-----' से प्रारम्भ होने वाले सूक्त, ऋ.वे. 6.47.1-3 का नाम, जिसका वाचन होता द्वारा 'आग्निमारुत शस्त्र' में किया जाता है, मा.श्रौ.सू. 2.5.2. 23-28; शां.श्रौ.सू. 8.6.14।

स्वाध्याय पु. (स्व + अधि + इ + घञ्) वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन, का.श्रौ.सू. 12.4.3. 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' में इसका अर्थ वेद है।

स्वार वि. (वह साम) जिसके अन्त में स्वरित हो = औदल साम, जै.ब्रा. III.228।

स्वाशिराम् अर्क न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.11.8 सा.वे. 1.468 पर।

स्वाहा (कार) मन्त्र के अन्त में एक यज्ञीय उद्गार ('स्वाहा' शब्द का उच्चारण) जिसके साथ-साथ अग्नि में आहुति डाली जाती है, भा.श्रौ.सू. 5.11.1, 3 (आधेय); द्रष्टव्य - काशिकर-, पृ. 14।

स्वाहाकृति स्त्री. पशु की ग्यारहवीं प्रारम्भिक (प्रयाज) आहुति का नाम, आप.श्रौ.सू. 7.20.4; का.श्रौ.सू. 6.6.20; - प्रैष, श्रौ.प.नि. 160-140 (पशु)।

स्विष्टकृत् वि. (स्विष्टं = शुभं करोति इति, स्विष्ट + कृ + क्विप्) (अग्नि का) एक विशेषण, 'शुभ करने वाला', श.ब्रा. 1.5.3.23; नियत रूप से एक भाग (हिस्सा) प्राप्त करता है, श.ब्रा. 1.7.3.7. अग्नि को प्रधान आहुति के पश्चात् दी जाने वाली एक द्वितीयक (गौण) आहुति। आहुति में प्रत्येक 'हविस्' के (अनेक) अवशेषों से (उद्धृत) अवदान भाग (कटा हुआ भाग) समाहित होना चाहिए, का.श्रौ.सू. 3.3.26-27. इस आहुति को अन्य आहुतियों के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए (अर्थात् इस आहुति का अन्य आहुतियां से सम्पर्क नहीं होना चाहिए), का.श्रा.सू. 3.3.29; - होम; द्रष्टव्य - श्रौ.प.नि. 32.264।

ह

हंसमुखप्रसेचन वि. (हंसस्य मुखमिव प्रसेचनं यस्य) हंस की चोंच की तरह चोंच (प्रसेचन) वाला, भा.श्रौ.सू. 1.16.6।

हंसमुखी स्त्री. एक प्रकार की ईंट का नाम, बौ.शु.सू. 4.27।

हंससांची पु. एक प्रकार का पक्षी [अश्वमेध में अदिति के लिए चार आहुतियां विहित हैं, विष्णुपत्नी अदिति के लिए पका चावल, अदिति के लिए हंससाची पक्षी, लाल रंग (एवं कुछ अन्य रंगों के प्रतीकों से चिह्नित) तीन गायों की एवं तीन मेषियों में अदिति के लिए (ही) अभिप्रेत एक मेषी], बौ.श्रौ.सू. 24.11; श्रौ.को. (अं.) I.ii.953।

-**हरण** न. अध्वर्यु के घास काट लेने के पश्चात् आग्नीध्र द्वारा दार्शिकी वेदि से ढीली मिट्टी (धूल) एवं काटी गई घास को हटाने का कृत्य। कूड़ा उत्कर में फेंक दिया जाता है, बौ.श्रौ.सू. 1.11; द्रष्टव्य - पात्रहरण; पात्रों को लाना, बौ.श्रौ.सू. 1.11।

हरिणपृणाका स्त्री. (हरिणी चेयं पृणाका च) एक जवान हरिणी, आप.श्रौ.सू. 9.14.14 (निषादैः कृतपरिचया हरिणवशयार्थं विशिष्टा), भा.श्रौ.सू. 9.16.18।

हरिणी वि. (स्त्री.) हरी (अर्थात् न सूखी हुई, वृक्ष की शाखा), आप.श्रौ.सू. 10.28.3; शव को ले जाते समय उच्चारित आठ ऋचाओं के समूह का नाम, उदा., 'अतिद्रव----', कौशि.सू. 80.1-22, 80-31-82.5।

हरित न. स्वर्ण, बौ.श्रौ.सू. 12.3.18।

हरितयव पु. (हरितः यवः) एक प्रकार का अनाज, काशिकर 291 इण्डेक्स।

हरितसूत्र न. (हरितं सूत्रम्) पीली रज्जु, (डोरी) मा.श्रौ.सू. 9.1.4.1।

हरिद्रु पु. एक पौधे (वनस्पति) का नाम (पितृमेध-चिति के स्थान पर यह पौधा नहीं उगा होना चाहिए), श्रौ.को. (अं.) I.ii.1104।

हरिपूषसरस्वतिमित्रावरुणवत् वि. हरि आदि से सङ्गत = युक्त (इन्द्र), का.श्रौ.सू. 9.1.16; हरिवन्त् (इन्द्र), पूषवन्त् (इन्द्र), सरस्वतिवन्त् (इन्द्र), मैत्रावरुणवन्त (इन्द्र)।

हरिवती स्त्री. (हरि + मतुप् + ङीप्) 'हरि आ वहन्तु' की अभिव्यञ्जना वाली' एक ऋचा, ऋ.वे. 1.16.1; जै.ब्रा. III.23।

हरिश्रीनिधन न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.3.9 सा.वे. 1.195 पर।

हव पु. (ह्वे + अप्) आह्वान, यज्ञीय आवाहन, जै.ब्रा. III.24।

हवन न. (हु + ल्युट् हूयतेऽनेन) शतरुद्रिय होम की आहुति डालने का साधन, अर्थात् 'अर्क' का पत्ता एवं अर्क की लकड़ी, का.श्रौ.सू. 18.1.6 (अर्कपर्णार्ककाष्ठे, स.वृ.)।

हवनी स्त्री. (हूयतेऽनया, हु + ल्युट् + ङीप्) अग्निहोत्रहवणी, का.श्रौ.सू. 10.2.4ऽ; आहुति प्रदान करने वाली करछुल (भाष्य-जुहू) जिससे घृत की आहुति दी जाती है, का.श्रौ.सू. 10.2.5।

हविर्ग्रहणी स्त्री. (हविः गृह्यतेऽनया अस्यां वा हविस् + ग्रह् + ल्युट् + ङीप्) (अग्निहोत्रहवणी 'करछुल') जिससे आहुति-सामग्री (हविर्द्रव्य) ली जाती है, का.श्रौ.सू. 2.3.32।

हविर्धान-मण्डप

हविर्धान न. (हविः धीयतेऽनेनास्मिन् वा, हविस् + धा + ल्युट्) दो गाड़ियों (शकटों) का नाम, जिन पर सवन दिन के पूर्व दिन सोम की टहनियों के रूप में 'हविस्' रखा जाता है। गाड़ियां महावेदि में 'पृष्ठ्या' रेखा से एक अरत्नि की दूरी पर पास-पास स्थापित कर दी जाती हैं, एक इसके उत्तर और दूसरी दक्षिण। दक्षिण वाली दूसरे वाली

से बड़ी होती है और इसके दण्ड पूर्वाभिमुख होते हैं। ये 'वारण' काष्ठ से निर्मित होती हैं, का.श्रौ.सू. 1.3.36 भाष्य एवं 8.3.21-22 भाष्य। ये चटाइयों से ढक दी जाती है। - **मण्डप** पु. (न.) दो भागों (दक्षिण एवं वाम) से युक्त दो अथवा चार धरनों वाले 12 या 8 स्तम्भों पर खड़े किये गये (निर्मित) द्वारों, जो प्रत्येक पूर्व एवं पश्चिम में अवस्थित होते हैं, से युक्त महावेदि के अन्तर्गत निर्मित एक मण्डप; तीन 'छदिस्' से आवृत; आगे 'रराटी' लगाई जाती है, पश्चिम की अपेक्षा पूर्व में थोड़ा अधिक ऊँचा मण्डप, आप.श्रौ.सू. 11.7-8; - बन्धव, हविर्धान - मण्डप को बाँधना, श्रौ.प.नि. 241-169।

हविर्निर्वपण

हविर्निर्वपण वि. (हविः निरुप्यतेऽनेन) हविर्दव्य उड़ेलने अथवा निकाल कर लेने के लिए अभिप्रेत (पात्र), आप.श्रौ.सू. 4.4.5।

हविरातञ्चन न. (हविः आतच्यतेऽनेन, हविस् + आ + तञ्च् + ल्युट्) हविस् को जमाने वाला अभिकरण या संघटक, अर्थात् दुग्ध, बौ.श्रौ.सू. 1.1.2।

हविराहुति स्त्री. (हविषः आहुतिः) हविर्द्रव्य (व्रीहि, यव आदि) की आहुति, मा.श्रौ.सू. 1.4.2.3 (अग्नि में)।

हविर्भक्ष पु. (हविषः भक्षः) हविःशेष का भक्षण (सोमयाग में आग्नीध्रमण्डप में किया जाने वाला), भा.श्रौ.सू. 13.8.5; तुल. सोमभक्ष; 'सदस्' में सम्पन्न होने वाला।

हविर्यज्ञ पु. (हविषा सम्पाद्यः यज्ञः) यज्ञों की एक श्रेणी जिसमें हविस् : दुग्ध, घृत, चावल, यव (जौ) एवं सदृश द्रव्यों की आहुति दी जाती है। इसका 'सोमयाग' से वैशिष्ट्य (पृथक्त्व) बतलाया गया है; हविर्यज्ञों को इष्टि भी कहते हैं। इसकी सात संस्थायें हैं : आधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, पशुबन्ध, चातुर्मास्य, सौत्रामणी एवं पाकयज्ञ, ला.श्रौ.सू. 5.4.22; तुल. आप.श्रौ.सू. 23.10.8।

हविर्यज्ञविध वि. दो प्रकार के पशु-याग का, अर्थात् यह और दूसरा जिसे 'सवविध' कहते हैं। प्रथम प्रकार में व्रत-ग्रहण, औपचारिक प्रणीता-प्रणयन (प्रणीता-जल का प्रणयन) दो आज्यभागों की आहुति आदि प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है, द्रष्टव्य श्रौ.को. (अं.) I.801।

हविष्कृत् वि. (हविस् + कृ + क्विप्) 'हविष्कृदेहि' यह आवाहन; 'हे! हविस् का निर्माण करने वाले, आओ', का.श्रौ.सू. 2.4.9 (दर्श); अध्वर्यु द्वारा तीन बार दुहराया जाता है। आह्वान ब्राह्मणादि वर्णानुसार भिन्न-भिन्न होता है, श.ब्रा. 1.1.4.12 तानि वा चत्वारि वाचः। एहीति ब्राह्मणस्य, हविष्कृत् के ब्राह्मणत्व के कारण उसे 'एहि' इस क्रियापद से सम्बोधित कर बुलाया जाता है। आप.श्रौ.सू. 1.19.8; यजमान-पत्नी हविष्कृत् के रूप में अनाज (हविस्) का कण्डन करती है, भा.श्रौ.सू. 1.22.10; आवश्यकता होने पर 'हविष्कृदेहि' इस आह्वान का प्रयोग किया जा सकता है, आप.श्रौ.सू. 24.1.43।

हविष्कृदाह्वान न. (हविष्कृतः आह्वानम्) 'हविष्कृत्' को बुलाना, 'हविष्कृदेहि' यह आवाहन, का.श्रौ.सू. 6.7.18।

हविष्य पु. आहुति (-सामग्री), मा.श्रौ.सू. 1.2.2.2।

हविष्यस्कन्नहोम पु. (स्कन्नस्य हविष्यस्य होमः) विखरे हुए हविर्द्रव्य की (दक्षिणी अग्नि के दक्षिण ज्वलित-काष्ठ पर निर्ऋति के लिए) आहुति, का.श्रौ.सू. 17.1.24।

हविस् = 'व्रीहि' चावल के दाने एवं 'यव' जौ, का.श्रौ.सू. 1.8.46; अग्नि में आहुति के रूप में डाले जाने वाले या उड़ेले जाने वाले हविर्द्रव्य : यव, व्रीहि आदि का नाम, का.श्रौ.सू. 1.9.1; इन सामग्रियों से निर्मित चीजें : पुरोडाश चरु आदि; दुग्ध भी, भा.श्रौ.सू. 1.1.2; घृत, पशु के अंग सम्मिलित हैं। इनके पाँच प्रकार हैं = औषध, पयस्, पशु, सोम एवं आज्य, बौ.श्रौ.सू. 2.1।

हव्य न. हवनीय वस्तु, जै.ब्रा. I.14।

हस्त पु. एक चान्द्र भवन का नाम (हस्त नक्षत्र), का.श्रौ.सू. 4.7.3 ('हस्तो लाभकामस्य') (आधेय); हाथ, बौ.श्रौ.सू. 6.27।

हस्तकौशल न. (हस्तस्य कौशलम्) हाथ की कुशलता या दक्षता, बौ.श्रौ.सू. 6.27।

हस्तवती स्त्री. (हस्त + मतुप् + ङीप्) 'हस्त' शब्द से युक्त एक ऋचा, अर्थात् 'आ यं हस्तेन खादिनाम्', ऋ.वे. 6.16.40; श्रौ.को. (सं.) II.70।

हस्तावारा स्त्री. आप.श्रौ.सू. 21.20.2 में उद्धृत 'वाग्वेद हस्तवारां सैनां गायतु' आदि ऋचा का प्रतीक।

हस्तिन् पु. हाथी, जै.ब्रा. I.11,38।

हस्ती स्त्री. हाथ की हथेली (हस्त्यां होत्रे उपस्तृणाति), भा.श्रौ.सू. 3.1.13।

हायन पु. (बहु.व.) लाल धान की एक प्रजाति, का.श्रौ.सू. 14.4.10 (देवसूहवींषि चरति) एक वर्ष में उगने वाली।

हारायण न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 14.9.33 सा.वे. 1.253 पर निबद्ध।

हारिणी स्त्री. 'अति द्रव' से प्रारम्भ होने वाली ऋचाओं के एक समूह का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.1083, जिसके वाचन के साथ शव ले जाया जाता है।

हारियोजन ग्रह

हारियोजन न. शंयुवाक के पश्चात् सम्पन्न होने वाली सोमाहुति का नाम (ऊर्द्धवं शंयुवाकाद्धारियोजनः, आश्व.श्रौ.सू. 6.11.8)। इसका उद्देश्य इन्द्र के यज्ञ से प्रस्थान के लिए इन्द्र के अश्वों को जोतना होता है, का.श्रौ.सू. 12.8.1-3; द्रोणकलश के साथ।

हारिवर्ण न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 8.9.1 सा.वे. 1.383 पर निबद्ध, जै.ब्रा. I.183।

हालेय (वि.) जिसने अपने को हल के साथ सम्बद्ध कर दिया है, बौ.श्रौ.सू. 2.3।

हाविष्कृत् न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 15.5.17 सा.वे. 1.138 पर।

हाविष्मत न. एक साम का नाम, पञ्च.ब्रा. 11.10.8 सा.वे. 1.38 पर।

हिंकार पु. 'हिं' शब्द का यज्ञीय उद्गार, जो साम के प्रारम्भ का सूचक है, 'होता' इसे तीन बार दुहराता है, आप.श्रौ.सू. 24.11.5; उद्गाता द्वारा, जो इसके स्थान पर 'हुम्मा' शब्द का प्रयोग करता हैं, 13.15.8; द्रष्टव्य - अभिहिंकार।

हिम्बिनी स्त्री. आप.श्रौ.सू. 21.20.2 में उद्धृत 'वाग्वेद हिम्बिनीं सैनां गायतु' आदि के लिए प्रतीक।

हिरण्यपुरुष पु. मनुष्य की आकृति से युक्त एक सोने की चद्दर, (रुक्म), का.श्रौ.सू. 17.4.3 (उत्तानं प्राञ्चं हिरण्यपुरुषं तस्मिन्----) (चयन)।

हिरण्यप्रउग न. स्वर्णमय त्रिभुज, ऋ.वे. 1.35.5 (रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः)।

हिरण्यर्मूध्ना वि. (स्त्री.) (हिरण्य निर्मितः मूर्धा यस्याः सा) स्वर्णमय शिर वाली (वामभृत् इष्टका), मा.श्रौ.सू. 6.1.7.15।

हिरण्यलेखा स्त्री. (हिरण्येन कृष्टा लेखा) (मरने वाले आहिताग्नि की निर्मित चिता के चारों ओर) एक स्वर्णखण्ड से खींची गई रेखा, मा.श्रौ.सू. 8.19.22।

हिरण्यवती स्त्री. (हिरण्य + मतुप् + ङीप्) 'हिरण्य' शब्द से युक्त एक ऋचा, अर्थात् 'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः' आदि, श्रौ.को. (सं.) II.534, मार्जन (साफ करने) के लिए प्रयुक्त।

हिरण्यशकल पु. (न.) (हिरण्यस्य शकलः) एक स्वर्ण-खण्ड (इसका प्रयोग वपा-याग में किया जाता है), मा.श्रौ.सू. 1.8.4.32; शुक्रग्रह के लिए सोने की दो पपड़ियां प्रयुक्त होती हैं, मा.श्रौ.सू. 2.2.5.29; 'प्रवर्ग्योत्सादनम्' में महावीर पात्र उत्तरवेदि पर सोने की पपड़ियों पर रखे जाते हैं, मा.श्रौ.सू. 4.4.15; मा.श्रौ.सू. 6.1.5.7; चयन में प्रयुक्त प्रधान

पशु की आँखों में दो सोने की पपड़ियां डाली जाती हैं, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.26. सोने की दो पपड़ियां उस घी के भीतर रख दी जाती है, जिससे 'स्वयमातृण्णा' ईंटे सींची जाती हैं, मा.श्रौ.सू. 6.2.4.17; वे मृत आहितानि के छिद्रों में भी रखी जाती हैं, मा.श्रौ.सू. 8.19.13।

हिरण्येष्टका स्त्री. (हिरण्यस्य इष्टका) संरचित अग्नि-वेदि के निम्नतम तह में (स्थित), 'स्वयमातृण्णा' इष्टका के पूर्व में चिनी जाने वाली सोने की ईंट, मा.श्रौ.सू. 6.1.7.14; 10.2.3.1।

हिल्लुका स्त्री. आप.श्रौ.सू. 21.20.2 में उल्लिखित 'वाग्वेद हिल्लुका सैनां गायतु' ऋचा के लिए प्रतीक।

हुत न. (हु + क्त) सात पाक संस्थाओं में एक का नाम, बौ.श्रौ.सू. 42.4, अग्नि में डाला गया।

हूतवत् वि. (ह्वे + क्त = हूत + मतुप्) 'आह्वान' के सन्दर्भ से युक्त (पुरोनुवाक्यायें), उदा. एह्यू षु ब्रवाणि----' एवं इमं यज्ञम्--------', मै.सं. 4.12.1; मा.श्रौ.सू. 5.1.8.15 दो आज्यभागों के लिए।

हृदय पु. चिता पर विभिन्न पवित्र अग्नियों को रखने के बाद अध्वर्यु द्वारा जपे जाने वाले एक मन्त्र का नाम, श्रौ.को. (अं.) I.ii.1061. इनका प्रारम्भ 'सुवर्णं घर्मम्-----' से होता है, श्रौ.को. (अं.) I.1116; 'प्रजापतेर्हृदय' एक साम का नाम है, द्रा.श्रौ.सू. 2.1.20; हृदय।

हृदयशूल पु. वह शूल (काँटा), जिससे पशु को पकाते समय उसका हृदय पकड़ा जाता है। इसे पशुयाग के अवभृथ में गीले एवं सूखे की सन्धि पर अवस्थित किया जाता है; द्रष्टव्य - शूल; शां.श्रौ.सू. 8.12.11; श्रौ.प.नि. 121.20।

हेलव पु. म्लेच्छ की अभिव्यक्ति, 'तेऽसुरा हेलय हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः तस्माद्ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः (महाभाष्य पश्पशाह्निक); द्रष्टव्य. अग्रवाल वा.श. इ.हि. क्रा. 27 (1), पृ. 1-17।

हो पु. चात्वाल (-संज्ञक गड्ढे) पर प्रस्तोता द्वारा 'पवमान' के गायन के समय यजमान द्वारा गायी जाने वाली अभिव्यञ्जना, भा.श्रौ.सू. 13.17.9; तुल. 'ओ इत्यन्य ऋत्विजः' अन्य ऋत्विज् 'ओ' इस रूप में गायन करते हैं।

होतु पु. आहुति प्रदान करने का कृत्य, आप.श्रौ.सू. 9.6.9।

होतृ पु. सोम याग के चार प्रधान ऋत्विजों में एक जिसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है; 'मनस्वती' (संज्ञक दो) आहुतियों के साथ दी जाने वाली प्रायश्चित्तिक आहुतियों का नाम; जहाँ किन्हीं विशिष्ट प्रायश्चित्तिक कृत्यों का विधान न किया गया हो (उस स्थिति में) 'मिन्दाहुति' (आहुति) एवं व्याहृति आहुतियां, जै.श्रौ.सू. 29.12; द्रष्ट. श्रौ.प.नि. 2.5; 26.217।

होतृचमस पु. (होतुः चमसः) सोम के प्याले को भरते समय पवित्रे से गुजार कर उड़ेले जाते हुए विभिन्न प्रकार के जल का संयोजन करने के लिए होता (के सहायक) द्वारा हाथ से पकड़े जाने वाले प्याले का नाम, श्रौ.प.नि. 265.259, आदि।

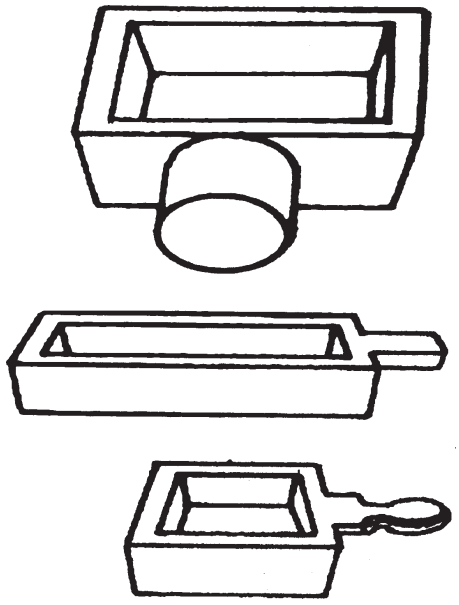

होतृचमस

होतृधिष्ण्य पु. 'होता' के लिए अभिप्रेत आग की अंगीठी (धिष्ण्या), का.श्रौ.सू. 9.9.9 (सोम)।

होतृनामग्रहण न. (होतुर्नाम्नः ग्रहणम्) 'होता' नाम वाले ऋत्विज् का नाम लेना (होता के नाम का उच्चारण), का.श्रौ.सू. 3.2.13।

होतृप्रत्यय वि. होता की शाखा में प्राप्त अभ्यास (क्रिया) से सम्बद्ध, उदाह. 'आश्वलायन एवं शाङ्खायन श्रौत सूत्र' का.श्रौ.सू. 1.3.15 (होतृप्रत्ययः प्रतिगरः)।

होतृवरण न. (होतुः वरणम्) 'होता' नाम वाले ऋत्विक् का चयन, ऋ.वे. 10.52.1।

होतृषदन न. (बहु.व.) (होतु. सदनम्) 'होता के आसन' (के पत्र), मा.श्रौ.सू. 1.3.5.26; द्रष्टव्य - ऋ.वे. 2.9.1; भा.श्रौ.सू. 3.11.5 (इष्टि)।

होतृ-सामन् न. होतृ-शस्त्र की संगति वाला साम, मा.श्रौ.सू. 9.3.1.21।

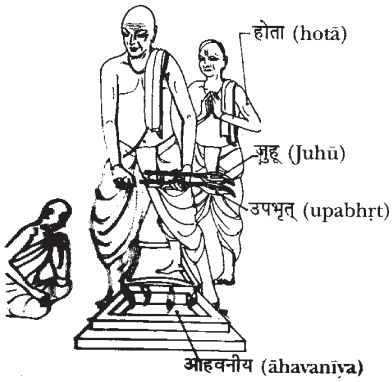

होतृ

होत्र न. विशिष्ट ऋत्विजों के समूह से सम्बद्ध मन्त्र, अर्थात्, चतुर्होतृ, पञ्चहोतृ आदि व्याहृतियों के रूप में भी, का.श्रौ.सू. 1.8.8 (होत्राऽऽधानयोः)।

होत्रक पु. एक सहायक पुरोहित (सोम याग में इनकी संख्या 12 होती है, मा.श्रौ.सू. 2.1.1.4; 2.4.1.21 (चमसाध्वर्यु लोग अथवा सहायक ऋत्विज् लोग); 2.1.5.14 (दक्षिणायें); 'होता' का सहायक; इनका वरण (चयन) इनके स्व-स्व कार्यों के सम्पादन के समय किया जाता है। ये एवं चमसाध्वर्यु लोग प्रधान ऋत्विजों के सहायक होते हैं, श्रौ.को. (अं.) 1.9; II.5.37; द्रष्टव्य - The Ritual sutra, जे.गोंड, शब्दसूची, पृ. 662; चि.भा.से. : कुल मिलाकर छः, 'चमसिन्' लोगों से अंशतः मिलते-जुलते (सदृश), आप.श्रौ.सू. 22.23.4. प्रातःसवन में पाँच होत्रक, एवं मध्याह्न के समय में छः होत्रक होते हैं, बौ.श्रौ.सू. 21.22, शस्त्र के पाठ में भाग लेने वाले होत्रक हैं : मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी एवं अच्छावाक, काशिकर 291 (नेष्टा, पोता एवं आग्नीध्र को भी होत्रकों की सूची में सम्मिलित करते हैं) इण्डेक्स; भा.श्रौ.सू. 13.20.21।

होत्रा स्त्री. = चमसेज्या, प्याले से द्रवाहुति प्रदान करना, आप.श्रौ.सू. 12.23.14; (शुक्रामन्थि); 13.4.15, 17, 24.2.5।

होत्राशंसिन् पु. (बहु.व.) (होत्र + आ + शंस् + इनि) ऋग्वेद की आह्वानात्मक ऋचाओं का वाचन करने वाला, 'होता' का सहायक, भा.श्रौ.सू. 10.1.12; बहु. = होत्रक लोग [मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा, अच्छावाक, आग्नीध्र], आप.श्रौ.सू. 10.1.14; 10.3.1।

होत्रीय पु. (होतुरिदम्, होतृ + छ) होता की (अंगीठी), मा.श्रौ.सू. 2.2.4.4; 2.2.5.22; 5.5.16.17।

होत्र्य वि. (होतृ + यत्) होता से सम्बद्ध (अंगीठी), मा.श्रौ.सू. 6.2.6.2।

होम पु. (हु + मन्) जुहू-संज्ञक करछुल से अग्नि में आहुति प्रदान करने का कृत्य (भाष्य - अङ्ग - अदर्वि - अपामार्ग-उद्यत् - उप - ओषधि - दर्वि नारिष्ट- पार्वण - फलीकरण-रौहिण - वनस्पति - वसा - शकलाहरणाव्रश्चन-शकली-शरीर - संसृष्ट - सक्तु - संज्ञप्त - सन्नति-), का.श्रौ.सू. 1.8.38; 44-45. यह कृत्य प्रधान अथवा अङ्ग (प्रयाज एवं अनुयाज) हो सकता है, आप.श्रौ.सू. 24.2.31; तुल. का.श्रौ.सू. 1.2.4. होम की दो श्रेणियां होती हैं 'तिष्ठत् खड़े होकर या खड़े होने की स्थिति में 'यजति' कहलाता है एवं बैठे हुए 'उपविष्ट' 'जुहोति' कहलाता है, 'तिष्ठद्धोमा वषट्कारप्रदाना याज्या - पुरोऽनुवाक्यावन्तो यजतयः, का.श्रौ.सू. 1.2.6ऽ; 'उपविष्टहोमाः स्वाहाकारप्रदाना जुहोतयः', का.श्रौ.सू. 1.2.6-7।

होमाभिषवकारिन् (होमश्च अभिषवश्च तौ कर्तुं शीलमस्य) वि. (वह व्यक्ति) जो सोम का सवन करता है और इसकी आहुति प्रदान करता है, का.श्रौ.सू. 9.11.13; जो आहुति-प्रदान एवं सवन के समय कार्य करता है, मा.श्रौ.सू. 2.4.1.31।

हौण्डिन पु. (द्वि.व.) 'षोडशी शस्त्र' में ऋचाओं के विशिष्ट स्थान परिवर्तन का नाम, आप.श्रौ.सू. 8.2.17।

हौत्र न. (होतुः कर्म, होतृ + अण्) होतृ-नामक ऋत्विज् द्वारा सम्पाद्य कार्य, आप.श्रौ.सू. 8.13.32; 'हौत्रामर्श' होता की दृष्टि अथवा विचार।

ह्रासवृद्धी स्त्री. (द्वि.व.) (ह्रासश्च वृद्धिश्च) कम और अधिक, अधिक या कम, बौ.शु. 8.17 (वस्तुतः 'घटना एवं बढ़ना')।

ह्वलति (ह्वल् + लट् + प्र.पु.ए.व.) कर्मकाण्ड के शुद्ध अथवा विहित प्रक्रिया से विचलित होता है, आप.श्रौ.सू. 18.7.12 (तुल. अयज्ञसंयुक्त)।